श्री सहजानन्द शास्त्रमाला

प्रवचनसार प्रवचन

तृतीय, चतुर्थ व पंचम भाग

प्रवक्ता:

अध्यात्मयोगी सिद्धान्तन्यायसाहित्य शास्त्री, न्यायतीर्थ

पूज्य श्री गुरुवर्य्य मनोहर जी वर्णी

"श्रीमत्सहजानन्द महाराज"

प्रकाशक:

खेमचन्द जैन सर्राफ,

मंत्री, श्री सहजानन्द शास्त्रमाला

१८५ ए, रणजीतपुरी, सदर मेरठ (उत्तर प्रदेश)

स्वाध्यायार्थी बन्धु, मन्दिर एवं लाइब्रेरियोंको
भारतवर्षीय वर्णी जैनसाहित्य मन्दिरकी ओरसे अर्धमूल्यमें।

द्वितीय संस्करण ११०० | सन् १९७४ | मूल्य १२)

श्री सहजानन्द शास्त्रमालाके संरक्षक

(१) श्रीमान् ला० महावीरप्रसाद जी जैन, बैंकर्स, संरक्षक, अध्यक्ष एवं प्रधान ट्रस्टी, सदर मेरठ
(२) श्रीमती सौ० फूलमाला देवी, धर्मपत्नी श्री ला० महावीरप्रसाद जी जैन, बैंकर्स, सदर मेरठ
(३) श्रीमान् लाला लालचन्द विजयकुमार जी जैन सर्राफ, सहारनपुर

श्री सहजानन्द शास्त्रमालाके प्रवर्तक महानुभावों की नामावली—

१	श्रीमान्	सेठ भवरीलाल जैन पाण्ड्या,	झूमरीतिलैया
२	,,	वर्णीसघ ज्ञानप्रभावना समिति, कार्यालय,	कानपुर
३	,,	कृष्णचन्द जी जैन रईस,	देहरादून
४	,,	सेठ जगन्नाथ जी जैन पाण्ड्या,	झूमरीतिलैया
५	,,	श्रीमती सोवती देवी जी जैन,	गिरिडीह
६	,,	मित्रसैन नाहरसिंह जी जैन,	मुजफ्फरनगर
७	,,	प्रेमचन्द ओमप्रकाश, प्रेमपुरी,	मेरठ
८	,,	सलेखचन्द लालचन्द जी जैन,	मुजफ्फरनगर
९	,,	दीपचन्द जी जैन रईस,	देहरादून
१०	,,	बारूमल प्रेमचन्द जी जैन,	मसूरी
११	,,	बाबूराम मुरारीलाल जी जैन,	ज्वालापुर
१२	,,	केवलराम उग्रसैन जी जैन,	जगाधरी
१३	,,	सेठ गेंदामल दगडूशाह जी जैन,	सनावद
१४	,,	मुकुन्दलाल गुलशनराय जी, नई मंडी,	मुजफ्फरनगर
१५	श्रीमती	धर्मपत्नी बा० कैलाशचन्द जी जैन,	देहरादून
१६	श्रीमान्	जयकुमार वीरसैन जी जैन,	सदर मेरठ
१७	,,	मंत्री, जैन समाज,	खण्डवा
१८	,,	बाबूराम अकलकप्रसाद जी जैन,	तिस्सा
१९	,,	विशालचन्द जी जैन रईस,	सहारनपुर
२०	,,	बा० हरीचन्दजी ज्योतिप्रसाद जी जैन, ओवरसियर,	इटावा
२१	,,	सौ० प्रेमदेवी शाह सुपुत्री बा० फतेलाल जी जनसघी,	जयपुर
२२	,,	मंत्राणी, दिगम्बर जैन महिला समाज,	गया
२३	,,	सेठ सागरमल जी पाण्ड्या,	गिरिडीह
२४	,,	बा० गिरनारीलाल चिरंजीलाल जी जैन,	,,
२५	,,	बा० राधेलाल कालूराम जी मोदी,	,,

२६	श्रीमान् सेठ फूलचन्द बैजनाथ जी जैन, नई मण्डी,	मुजफ्फरनगर
२७	,, सुखबीरसिंह हेमचन्द जी सर्राफ,	बडौत
२८	,, गोकुलचद हरकचद जी गोधा,	लालगोला
२९	,, दीपचद जी जैन रिटायर्ड सुप्रिन्टेन्डेन्ट इजीनियर,	कानपुर
३०	,, मत्री, दि० जैनसमाज, नाई की मंडी,	आगरा
३१	,, सचालिका, दि० जैन महिलामडल, नमककी मडी,	आगरा
३२	,, नेमिचन्द जी जैन, रुड़की प्रेस,	रुड़की
३३	,, झब्बनलाल शिवप्रसाद जी जैन, चलकाना वाले,	सहारनपुर
३४	,, रोशनलाल के० सी० जैन,	सहारनपुर
३५	,, मोल्हडमल श्रीपाल जी, जैन, जैन वेस्ट	सहारनपुर
३६	,, बनवारीलाल निरजनलाल जी जैन,	शिमला
३७	,, सेठ शीतलप्रसाद जी जैन,	सदर मेरठ
३८	,, दिगम्बर जैनसमाज	गोटे गाँव
३९	,, माता जी धनवती देवी जैन, राजागज,	इटावा
४०	,, ब्र० मुख्त्यारसिंह जी जैन, "नित्यानन्द"	रुड़की
४१	,, लाला महेन्द्रकुमार जी जैन,	चिलकाना
४२	,, लाला आदीश्वरप्रसाद राकेशकुमार जैन,	चिलकाना
४३	,, हुकमचद मोतीचद जैन,	सुलतानपुर
४४	,, ला० मुन्नालाल यादवराय जी जैन,	सदर मेरठ
४५	,, इन्द्रजीत जी जैन, वकील, स्वरूपनगर,	कानपुर
४६	श्रीमती कैलाशवती जैन, ध० प० चौ० जयप्रसाद जी	सुलतानपुर
४७	श्रीमान् ※ गजानन्द गुलाबचन्द जी जैन, बजाज	गया
४८	,, ※ बा० जीतमल इन्द्रकुमार जी जैन छावडा,	झूमरीतिलैया
४९	,, ※ सेठ मोहनलाल ताराचन्द जी जैन वडजात्या,	जयपुर
५०	,, ※ बा० दयाराम जी जैन आर. एस. डी. ओ.	सदर मेरठ
५१	,, × जिनेश्वरप्रसाद अभिनन्दनकुमार जी जैन,	सहारनपुर
५२	,, × जिनेश्वरलाल श्रीपाल जी जैन,	शिमला

नोट:—जिन नामोंके पहले ※ ऐसा चिन्ह लगा है उन महानुभावोकी स्वीकृत सदस्यताके कुछ रुपये आ गये है, शेष आने है तथा जिन नामोके पहले × ऐसा चिन्ह लगा है उनकी स्वीकृत सदस्यताका रुपया अभी तक कुछ नही आया, सभी बाकी है ।

हूं स्वतन्त्र निश्चल निष्काम । ज्ञाता द्रष्टा आतमराम ।।टेक।।

अन्तर यही ऊपरी जान, वे विराग यहं रागवितान ।
मैं वह हूं जो हैं भगवान, जो मै हूं वह हैं भगवान ।।१।।

मम स्वरूप है सिद्ध समान, अमित शक्ति सुख ज्ञान निधान ।
किन्तु आशवश खोया ज्ञान, बना भिखारी निपट अजान ।।२।।

सुख दुःख दाता कोइ न आन, मोह राग दुःख की खान ।
निजको निज परको पर जान, फिर दुःखका नहिं लेश निदान ।।३।।

जिन शिव ब्रह्मा राम, विष्णु बुद्ध हरि जिसके नाम ।
राग त्यागि पहुंचू निज धाम, आकुलताका फिर क्या काम ।।४।।

होता स्वयं जगत परिणाम, मै जगका करता क्या काम ।
दूर हटो परकृत परिणाम, 'सहजानन्द' रहूं अभिराम ।।५।।

•••○○•••

[धर्मप्रेमी बंधुओ ! इस आत्मकीर्तनका निम्नाकित अवसरों पर निम्नाकित पद्धतियो में भारतमे अनेक स्थानोंपर पाठ किया जाता है । आप भी इसी प्रकार पाठ कीजिए]

१—शास्त्रसभाके अनन्तर या दो शास्त्रोके बीचमे श्रोतावो द्वारा सामूहिक रूपमे ।

२—जाप, सामायिक, प्रतिक्रमणके अवसरमे ।

३—पाठशाला, शिक्षासदन, विद्यालय लगनेके समयमे छात्रो द्वारा ।

४—सूर्योदयसे एक घंटा पूर्व परिवारमे एकत्रित बालक, बालिका, महिला तथा पुरुषो द्वारा ।

५—किसी भी आपत्तिके समय या अन्य समय शान्तिके अर्थ स्वरुचिके अनुसार किसी अर्थ, चौपाई या पूर्ण छदका पाठ शान्तिप्रेमी बन्धुओ द्वारा ।

प्रवचनसार प्रवचन तृतीय भाग

अब तक केवलज्ञानके विषयमे वर्णन हुआ, अब आनन्दका वर्णन शुरू होता है। आनन्दाधिकार यहाँसे प्रारभ होता है। ज्ञानप्रपञ्चके अनतर आनन्दप्रपञ्च कहनेका प्रयोजन यह है कि आत्मामे यद्यपि ज्ञान और आनद दोनो सहज गुण है तथापि सवेदन ज्ञान द्वारा ही है, अतः पहिले ज्ञानप्रपञ्च किया। अब ज्ञानसे अभिन्न आनन्दके स्वरूप बनाते है और साथ ही साथ यह भी कहते है कि उस सुखके अनेक परिणामनोमे कौनसा मुख हेय है, कौन सा सुख उपादेय है ?

अत्थि अमुत्त मुत्त अदिदिय इदिय च अत्थेसु।
णाण च तहा सोक्ख ज तेसु पर च त णेय ॥५॥

उपादेय ज्ञान और सुखके विवरणका संकल्प—इस गाथामे सबसे पहले यह बताते है कि सुखका स्वरूप ज्ञानसे अभिन्न है। सुखका जो सवेदन है, सुखरूप जो परिणति है, वह ज्ञानसे अभिन्न है। जहाँ सच्चा सुख नही होता, जहाँ शुद्ध सुख नही होता, वहाँ तो यह छाँट की जा सकती है कि यह सुख और यह ज्ञान, परन्तु जहा सच्चा सुख होता है वहाँ यह छाट करना कठिन है। वहाँ तो सुख और ज्ञान अभिन्न है। इस प्रकारसे ज्ञानसे अभिन्न जो सुख है उसका स्वरूप बताते हुए यह बताते कि कौनसा ज्ञान व सुख हेय है और कौनसा ज्ञान व सुख उपादेय है ?

उपादेय ज्ञान व सुखका निरूपण—ज्ञान और सुख मूर्तिक और इन्द्रियज भी है और ज्ञान और सुख अमूर्तिक और अतीन्द्रियज भी है। सबसे पहले सुखका स्वरूप पहिचानने के लिए सुखके दो प्रकार बनालो—एक मूर्तिक और इन्द्रियज व दूसरा अमूर्तिक और अतीन्द्रियज। मूर्तिक सुखके जाननेको पहले स्मरण कीजिये कि अवधिज्ञानका विषय क्या क्या है ? अवधि ज्ञान कर्म परमाणुओ को जानने वाला है, राग द्वेष आदि भाव जो कर्मपरमाणुओके कारण है उनको भी जानने वाला है, राग द्वेष आदि भावोसे होने वाले सुख दु ख परिणामोको भी जानने वाला है, उपशम सम्यग्दर्शन और क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शनको भी जानने वाला है, तो अवधिज्ञान मूर्तिकको ही जानता। उसके विषय क्या क्या बन गये ? रागद्वेष भी, सुख दुःख

भी, क्षायोपशमिक और औपशमिक भाव भी, ये सब उनके विषय है । तो जिनको वह ससारी जीव सुखका अनुभव करता है और जो कर्मके उदयसे है, इसलिये ये मूर्तिक ही है । इन्द्रियोसे और कर्मके उदयसे जो सुख उत्पन्न होता है, वह तो मूर्तिक और इद्रियज ही है । दूसरे प्रकार से ज्ञानसुख अमूर्तिक और अतीन्द्रियज होता हे । वह अतीन्द्रिय और अमूर्तिक ज्ञान सुख ही यहा मुख्य माना गया है, और उसे ही उपादेय समझना चाहिये । मूर्तिक ज्ञान और मूर्तिक सुख हेय है । जितने भी मूर्त भाव है, सब हेय है । भगवानकी भक्तिमे जो अनुराग है वह भी कर्मके उदयसे है, तो वह भी हेय है । वृत्तिमे सयमसे, व्रतसे चलनेकी, उसे पालनेकी जो बुद्धि है, और उनमे जो अनुराग रहता है, तो वह भी कर्मके उदयसे होता है, इसलिए वह भी हेय है । जो कर्मके उदयसे उत्पन्न हो, वह अनुराग और बुद्धि हेय होती है, उपादेय नही । वस्तुत तो निश्चयसे जो बुद्धि लगती है, वह भी उपादेय नही । जो शुद्ध अवस्थामे पहुच गया उसके तो उपादेयकी बुद्धि ही नही है, वे तो निश्चयको भी उपादेय नहीं बता सकते । निश्चय तत्त्व उपादेय है, यह भाव भी कर्मके उदयसे होता, तो निश्च्य तत्त्व उपादेय है, यह भाव भी मूर्तिक ही होता । तो यह भी हेय परिणाम है । व्यवहारकी तो चीज जाने दो, निश्चय तत्त्व उपादेय है, ऐसा परिणाम भी हेय है ।

अतीन्द्रिय ज्ञानकी व सुखकी उपादेयता—कहते कि ज्ञान और सुख मूर्तिक भी होता, इन्द्रियज भी होता, अमूर्तिक भी होता, अतीन्द्रियज भी होता, उन चारोके बीचमे जो अमूर्तिक और अतीन्द्रियज है, वह उपादेय है । जो मूर्तिक और इद्रियज सुख व ज्ञान है, वे क्षायोपशमिक इन्द्रियोके द्वारा उत्पन्न होते, इसलिए वह ज्ञान और सुख पराधीन होते । आनन्दके शुद्ध स्वरूपको बतानेके लिए उसके अशुद्ध स्वरूपको बताया जायगा, और फिर शुद्ध स्वरूप समझमे आयगा । शुद्ध आनन्दका मूल्य अशुद्ध आनन्दका वर्णन करके जाना जायगा । यह अशुद्ध आनन्द इन्द्रियोसे पैदा होता है, इसलिये पराधीन है । जितने भी सुख हैं, वे सब पराधीन है । स्वाधीन सुख तो सहज शुद्ध आत्माका अवलोकन, उसीमे अह अह ऐसा प्रत्यय करके अभेद ज्ञानकी स्थितिसे रहता ही है । जितना भी इन्द्रियोसे जायमान सुख है, वह पराधीन सुख है । दुनियाके लोग बडे-बडे महल, बडी-बडी सपत्तियाँ जोडनेके लिए परिश्रम कर जाते, परतु परिश्रम पूरे होनेपर भी उसे भोग सकते है या नही, ऐसी वहा कोई गारटी नहीं लगा सकते, इसलिए यह सुख पराधीन है । पराधीन सुख होनेके कारण यह हेय है । ज्ञान मूर्तिक भी होता और अमूर्तिक भी होता, इसी तरहसे सुख भी मूर्तिक भी होता और अमूर्तिक भी होता । जो ज्ञान और सुख मूर्तिक है वह तो हेय है, और जो ज्ञान और सुख अमूर्तिक है, वह उपादेय है ।

अतीन्द्रिय ज्ञान सुख व इन्द्रियज ज्ञान सुखमे अन्तर—मूर्तिक होनेके कारण और इन्द्रियोसे पैदा होनेके कारण तो क्रमसे इसकी प्रवृत्ति है । केवलीके ज्ञान और सुख अमूर्तिक

होनेके कारण वह इन्द्रियोसे पैदा नही होता और उसमे क्रमसे प्रवृत्ति नही होती। उनके जैसे सर्वज्ञानकी पर्याय सर्व ज्ञेयोमे एक साथ आई, इसी तरहसे सर्व सुखकी पर्याये, जिसे अनन्त सुख कहते है उस अनत सुखकी सारी चीज उनमे एक साथ आती है। उस अनन्त सुखका यदि अनुमान करें तो यहाँके जीवोको जितना सुख मिलता है उन सब जीवोंका सर्व सुख जोड डालो और उनके तीनो कालोके सब सुखोको जोड लो, जोड़ने पर जो सुख आवे उससे भी अनन्त गुणा सुख वहा पाया जाता है। एक साथ तीनो कालोके सब सुख जितने से भी अधिक सुख उनमे होते है। परन्तु जीवोके तीनों कालोके सुखोकी जाति उनके अमूर्त सुखमे मिलती ही नही है, इसलिए उनके सुखकी जाति तो बिल्कुल ही न्यारी है। यहाँके जीवोमे तो जो सुख है वह कर्मके उदयसे है, इन्द्रियसे पैदा होते है, पराधीन है, दुःख भी उसमे बीच बीचमे आते जाते है। कोई मनुष्य ऐसा नही है कि वह एक दिन भी लगातार सुखी ही सुखी रहे, कोई मनुप्य ऐसा नही मिल सकता जो निष्पक्ष दृष्टिसे ऐसा कह दे कि वह आज दिन भर सुखी रहा। यहाँके जीवोका यह ज्ञान और यह सुख दोनो पराधीन, विनाशीक, कर्मके उदयसे होने वाले, क्रमसे होने वाले, प्रतिपक्ष दु ख सहित, हानि लाभके अन्तर वाले है, इसलिए यह ज्ञान और यह सुख गौण है, लक्ष्यमे लाने योग्य व आदर्शके योग्य नही है, इसलिए यह ज्ञान और यह सुख मूर्तिक है और मूर्तिक होनेके कारण हेय है।

मोहमें चिन्तनकी शैली—किसीसे भी प्रेम बढा रहे, किसीसे भी सुख बढा रहे, उसीसे अन्तमे सुख न मिलकर दु:ख मिला। जिसके लिए इतना परिश्रम किया, जिसके सुखके लिए इतना उद्यम किया, वही अतमे जाकर दुःखके कारण बन जाते। मोहमे यह नही सूझता। दो वर्षके बच्चेको यह कहकर खिलाते कि वाह रे राजा, तू बडा होगा तो हमे सुख देगा। उस वक्त किसीको यह नही ख्याल आता कि वह अन्तमे दुःख पहुचा सकता है। वहाँ मोहमे तो इष्टपनेकी कल्पना ही सूझती है, अपने अनिष्टपनेकी बात ही कल्पनामे नही उठती है। सागरकी बात है कि हम और गुरुजी दोनोने वहाँ जेठ सुदी १४ का उपवास किया जब कि गर्मी बहुत पडती है। रात्रिमे दोनो करीब पास-पास सो रहे थे। एक बजे रात तक हम दोनोको नीद नही लगी तो हमने गुरुजीसे कहा कि महाराजजी ! कुछ ऐसा लगता कि हमारे दर्शनावरणका क्षय हो गया। यह सुनकरके वे हंस दिये और उसी समय पडी ठड तथा हमे नीद आ लगी। सुबह चले मदिरके लिए तो रास्तेमे एक स्त्री एक लडकेको, जिसकी हड्डी निकल रही थी, नाकसे नाक बह रहा था, इस तरहसे खिला रही, वाहरे बन्दरिया सुख देन बन्दरिया। तो यह सुनकर हमने गुरु जी से कहा कि क्या इसका वेद बदल गया है और क्या गारन्टी भी हो गई कि यह सुख ही देगा। कहते हुए मुझे भी हसी आई, गुरुजी भी जोरसे हसे, हसीके

मारे चलते ही न बने, तब मुझे मधुर तमाचा मारकर बद किया। परन्तु वह मोहसे दे रही थी। तो मोहके उदयमे कोई पुरुष अपनी सतानके प्रति यह नही सोच सकता कि व उसके विरुद्ध भी कभी हो सकता है। ऐसे वह उसमे इष्ट ही इष्ट देखता है, अनिष्टकी कल्पन नही करता। तो यह सुख इन्द्रियज सुख है। इसमे उपादेय बुद्धि नही करनी चाहिए।

आत्माका स्वास्थ्य—समन्तभद्र आचार्य सुपार्श्वनाथ भगवानकी स्तुति कर रहे थे, उस स्तुतिमे कहते कि स्वास्थ्य यदात्यन्तिकमेव पुसा, स्वार्थो न भोग परिभगुरातमा। तृषोऽनुषङ्गान्न च तापशान्तिरितीदामख्यद्भगवान् सुपार्श्वः॥ सब लोग अपने शरीरको स्वस्थ देखकर कहते है कि मैं स्वस्थ हू। कोई पूछे तो भी उसका यही प्रयोजन लगाते। परन्तु स्वास्थ्य का मतलब क्या होना ? स्व माने आत्मा और स्व माने स्थित, उसका भाव है स्वास्थ्य। जो अपनी आत्मामे स्थित हो जाता है, वही स्वास्थ्य है। सेठ जी से पूछे कि आप स्वस्थ हो तो अपना शरीर देखकर कह देते कि हाँ, मै तो स्वस्थ हू। तब पूछने वाला ज्ञानी कहता कि सेठ जी जरा दिमाग ठिकाने कीजिये कि आप स्वस्थ कैसे है ? आप झूठ क्यो बोलते है, आप अपनी आत्मामे स्थित कहाँ है ? शरीरपर दृष्टि गई और शरीरकी परिस्थितिको देखकर जो उत्तर दे रहे हैं, वह गलत है। आपको यह कहना चाहिए कि मेरा स्वास्थ्य रच भी नही है। हमेशाके लिए आत्मामे स्थित हो जाना, यही अवस्था स्वास्थ्य है। स्वार्थ क्या है, हमेशाके लिए निजकी आत्माके अर्थ लग जाना, यही स्वार्थ है। भोगना अर्थात् भोग स्वार्थ नही है। ससारके सुखका भोग क्षणिक है, इसलिए हेय है। जितनी देरको यह सुख भोगा है, उतनी देरको भी वह सुख नही, क्योकि उसमे भी भीतरसे तृष्णाका सम्बन्ध है। भोग भोगते हुए, विषयसेवन करते हुए भी कितनी तडफडाट, कितनी गडबडात उसमे आ सकती ? जो जीव मोहके कारण दो सालके बच्चेमे यह बडा सुख देगा, यह कल्पना कर सकता है, वह मोही जीव अपने अन्दरके तृष्णा भावमे इसीको सुख मानकर कल्पना करे तो कौनसी आश्चर्यकी बात है ? यहाँ तृष्णाका सम्बध है, इसलिए वह स्वास्थ्य नही, सुख नही और स्वार्थ नही।

इन्द्रियज सुखकी असारता—आचार्यश्रीने इसमे ऐसी हितमय वाणी कही है कि यह सब सुख मात्र हवाई हैं और इनका बताना जो देह है, वह हवाई जहाजकी तरह है, यह शरीर उसका यन्त्र है और ड्राइवरकी तरह यह हमारी आत्मा है। इसके कारण ही शरीरकी प्रवृत्तिया होती हैं। जैसे अजगम यत्र जगम पुरुषके द्वारा चलाया जाता है, इसी तरहसे यह शरीर आत्माके द्वारा चलाया जाता है। उसमे बैठने वाले तो अनन्त लोग रहते, भैया ! हमे एक बात याद आई, हमे कई बार जब सडकपर चलते हैं, तो बढिया मोटर देखकर यह लगता कि इसमे तो कोई देवता बैठा होगा, परन्तु जब अन्दर देखते तो लगता कि यह तो वही हाड मास नाक मल मूत्र आदिसे भरा हुआ पुतला बैठा है। यह जो शरीर है, चाहे

कितना ही सुन्दर रहो, परन्तु यह शरीर हितू नही है। इसके चार अवगुण है। यह वीभत्स है अर्थात् भयानक है। जब जीव निकल जाता है, तो शरीरको देखकर अन्दाज करो कि वह कितना भयानक होता है ? दूसरी बात यह कि मोहके उदयमे लगता है कि शरीर सुन्दर है। परन्तु उस सुन्दर शरीरमे क्रोधका भाव आ जाय तब उसके चेहरेको देखो कि वह कितना असुन्दर लगता ? वह उस समय भी भयानक होता, और समयमे जब वह शान्तिसे बैठा है, तो उस समय उसके मुखमे जो सुन्दरता आई वह सुन्दरता शान्तिके प्रतापसे आई। इसलिए यह शरीर वीभत्स है। इसके अलावा यह अपवित्र भी है अथवा यह तो जैसा है, सो तैसा ही है। यदि इसको अपवित्र बनाया तो आत्माके राग मोहने बनाया। रागद्वेष मोह जैसी पर्यायो मे रहनेके कारण यह आत्मा ही अभी अपवित्र है। ये सारे खून, मास और हड्डी अपवित्र है, यह तो लोकव्यवहार है। परन्तु इनको व्यावहारिक भी अपवित्र बनाया किसने ? जिसने अपवित्र बनाया, वह हेय है या जिसे अपवित्र बनाया गया, वह हेय है ? एक लडकेने एक चाडाल को छू लिया, इसलिए उससे कहते कि तुम नहावो, वरन् तुम अशुद्ध हो और उससे लडके दूर रहते, यदि वह अछूता किसीको छू ले तो वह दूसरा लडका भी अछूता माना जाता तो फिर इन दोनोमे से अधिक अछूता कौन ? जो लडका छू गया वह अपवित्र हुआ या जिससे छुआ गया वह अपवित्र रहा। वह लडका तो सम्बन्धसे अछूता हुआ तथा दूसरा भी, परन्तु प्रथम अछूता तो पहिला है व चाण्डाल तो अपवित्र है ही। इसी तरह अपवित्र तो वह आत्मा हुई जिसके कारण शरीरको अपवित्र बनना पडा। तथा शरीर भी अपवित्र ही है। सुन्दरसे सुन्दर चीज, सुन्दरसे सुन्दर आँख सब अपवित्र है। इसका लक्ष्य कर जिस समय भी सोचता उस समय भी आनन्द नही आता।

अतीन्द्रियसुखकी स्वाभाविकता—आत्मा रागमय है, परन्तु उसमे एक ही तरहका राग नही होता। यदि एक ही तरहका राग हो तो वहा तो विश्राम मिल जाता। यह विषय सुख पराधीन सुख है, सदा रहने वाला नही। यह साराका सारा मूर्तिक सुख है, इन्द्रियज सुख है। इससे विलक्षण दूसरी तरहका ज्ञान सुख, जहाँ अमूर्त और अतीन्द्रियपना रहता है वह कैसा है ? पहले तो ऐसी दृष्टि बनाओ कि वह जो सुखकी बात सोची वह सुख अनन्त ज्ञानसे अभिन्न है। वह ज्ञानसुख अमूर्तिक आत्मपरिणामकी शक्तियोसे पैदा होता है, जो चैतन्यका सम्बन्ध रखने वाली है, एक ऐसी आत्माके स्वाभाविक परिणमन शक्तियोसे अतीन्द्रिय होनेके कारण वह सुख स्वाभाविक है जो सुख कि केवल आत्माके स्वाधीन भावसे पैदा होता। अमूर्त आत्मशक्तिसे ही जिसकी उत्पत्ति है वह ही अमूर्तिक अतीन्द्रिय सुख है।

आनन्दमें अतीन्द्रिय विशुद्ध आह्लाद—यहाँ यह शका होती कि आत्मामे सुख दुखके बिना नही होता। जहाँ दुःख ही नही है ऐसे सिद्धोमे, अरहतमे, सुख जैसी चीज ही क्या

रहे ? इसका उत्तर यह है कि पहिली बात तो यह है कि उसे सुख शब्दमे कहा जाय या आनन्द शब्दसे कहा जाय। आत्मामे एक जातिका गुण अनादिसे अनन्त काल तक रहता। ससार अवस्थामे जितनी भी पर्याय होती है वे कोई न कोई गुणकी वजहसे होती है। आत्मा मे जो दुःख पैदा होता है वह भी किसी गुणकी अवस्थासे रहता तो जहाँ दुःख न रहे केवल सुख कहा, वहाँ आनन्दको सुख कहा। आनन्दमे दुःखकी अवस्था नही रहती है। तो वह अवस्था आनन्द नामसे पाई गई है। हम जीवोकी दृष्टि सुखसे ज्यादा परिचित है। तो उसकी वह जो अवस्था है उसको जाननेके लिए जहाँ ज्ञानके विकारमे दुःख आया था उसके अभावमे उस स्थितिको समझाने के लिए हम सुख शब्दसे कहते हैं। वहाँ तो उसको आनन्द शब्दसे कहा जाय तो ज्यादा अच्छा है। आनन्दका अर्थ क्या ? आ माने चारो ओर, और नन्द माने समृद्धि आ जाये। चारो ओरसे जहा समृद्धि आ जाये उसे आनन्द कहते है। इस तरह जो केवलका सुख है वह सुख आत्माकी परिणमन शक्तियोसे पैदा होता। वह आत्माके ही आधीन है, स्वाधीन ही है। सहज शुद्ध आत्माके अभेद ज्ञानके कारण पैदा होता, ऐसा वह सुख, जिसमे सकल्प-विकल्पोका नाम नही, वह सुख स्वाधीन है, पराधीन नही है। उस सुख की एक साथ प्रवृत्ति है। वह सारेके सारे अभेद परिच्छेदोसे एक ही साथ प्रवृत्ति है। जिस समय सुखके विषयमे कोई तारीफ की जाय, उतनी ही तारीफ ज्ञान के विषयमे जानो और ज्ञानके विषयमे जितनी भी तारीफ है वह सुखकी तारीफ जानो, क्योकि उन दोनोमे अभेदपना है। ज्ञान और सुख विरोध रहित है, प्रतिपक्ष रहित है, जो अवस्था सर्व दुःख रहित है, ऐसा ज्ञान सुख मुख्य है, ऐसी बात जानकर ऐसी श्रद्धा करो कि ज्ञान और सुख ऐसा ही उपादेय है।

श्रद्धाकी सूक्ष्मतर सावधानी—अतीन्द्रिय ज्ञान सुख उपादेय है, ऐसा जो परिणाम होता उसमे यह श्रद्धा करो, इस श्रद्धाके साथ निश्चय उपादेय है, ऐसा परिणाम जो बना वह परिणाम भी हेय है। ऐसा भी विचार करो निश्चय उपादेय है ऐसा जो परिणाम हुआ वह परिणाम भी हेय है। ज्ञानी भगवानकी भक्ति कर रहा, परन्तु भगवानकी भक्ति ही करता रहना चाहे, तो यह बुद्धि जो है वह हेय है, परन्तु ऐसा परिणाम ज्ञानीके पैदा नही होता। भक्ति उसके आती है, परन्तु उसको पकड कर बैठ जाय कि यह चीज मेरे ही मे नित्य जमा रहे, ऐसा परिणाम उसके नही होता। कितना सावधान वह ज्ञानी है। किसी समुद्रके बीचमे कोई आदमी जैसे एक बालिस्त भर की पुलिया पर चलता है तो कितना सावधानी रखकर चलता है कि कही मेरी सावधानी भग न हो जाय जिससे मैं समुद्रमे गिर जाऊ, इसी तरहसे वह ज्ञानी कितना सावधान है कि वह कही भी डिग नही सकता। कितने विचारकी उसमे शक्ति है ? ऐसे योग्य आत्मामे जब विकल्पोसे दूर ऐसा जो ज्ञानसुख होता है, जो अतीन्द्रिय

भी है और अमूर्तिक भी है, वह उपादेय है, परन्तु जो यह परिणाम विकल्प कर रहा, यह परिणाम भी हेय है। इस प्रकार अमूर्तिक, ज्ञायक, अतीन्द्रिय चिदानद ही जिसका स्वत सिद्ध स्वरूप है, ऐसे सुखका कारण जो ऐसा ही ज्ञान है, वह उपादेय है, परन्तु ऐसे विकल्प परिणामोमे भी जमकर बैठ जाना हेय है। इस प्रकार आनदकी यह भूमिका है। इससे मूर्त सुख मे जो हेय बुद्धि और अमूर्त सुखमे उपादेय बुद्धि आयेगी।

निर्मल ज्ञानके साथ निर्मल ज्ञानकी उद्भूति—यह सुखका प्रकरण चल रहा है। सुख वही उत्तम है जो अतीन्द्रिय हो, स्वाभाविक निराकुलता रूप हो और अतीन्द्रिय हो, ऐसा सुख उपादेय है। इस अतीन्द्रिय सुखका कारण अथवा साधन अतीन्द्रिय ज्ञान है। यद्यपि भेदविवक्षामे ज्ञानगुणका स्वरूप जुदा है और आनन्द गुणका स्वरूप जुदा है, ज्ञानका चिह्न सचेतन है और आनन्दका चिह्न आह्लाद है, तथापि वस्तुत देखो तो ज्ञान और आनन्द भिन्न भिन्न सत् नही है, ज्ञानकी सहज अवस्था आनन्दकी सहज अवस्थाको लेकर होती है, और आनन्दकी सहज अवस्था ज्ञानकी सहज अवस्थाको लेकर होती है। इन्द्रियज्ञानके समय इन्द्रिय सुख है, और अतीन्द्रियज्ञानके कालमे अतीन्द्रिय सुख है, मलिन ज्ञानमे मलिन सुख व निर्मल ज्ञानमे निर्मल सुख है। सुख ज्ञानके अनुरूप होता है तब यह प्रतीत होता है कि सुखका साधन ज्ञान है, हमे सुख चाहिये तो ज्ञानकी सम्हाल करनी चाहिये, जो ज्ञानकी सम्हाल न करे और बाह्य पदार्थोकी सम्हालका यत्न विकल्पित करे तो वह सुखका पात्र तो क्या, उल्टा वेदना ही पाता है, क्योकि सुखका साधन बाह्य द्रव्य नही, किन्तु निज ज्ञान ही है। यह आनन्दका प्रकरण चल रहा है। इसमे यह तर्कणा चल रही है कि सुख कौनसा उपादेय है ? तब सिद्ध किया कि अतीन्द्रिय सुख ही उपादेय है। अब प्रश्न हुआ कि उसका साधन क्या है ? तब उत्तरमे अतीन्द्रिय ज्ञान साधन है और वह उपादेय है। ऐसा अभिस्तवन करते है, उत्तम बात कहना स्वय स्तुति बन जाती है।

ज पेच्छदो अमुत्त मुत्तेसु अदिदियं च पच्छण्ण।
सयल सग च इदर त णाण हवदि पच्चक्च ॥५४॥

अतीन्द्रिय ज्ञानका स्तवन—इस गाथामे यह बताते है कि अतीन्द्रिय सुखका साधन अतीन्द्रिय ज्ञान है और वह अतीन्द्रिय ज्ञान ही उपादेय है। अतीन्द्रिय ज्ञान वह है जो अपनी सत्ताके लिये इन्द्रियकी अपेक्षा न करे। अतीन्द्रिय ज्ञान भी दो प्रकारका होता है। एक तो नित्य कार्यरूप और दूसरा स्वानुभव रूप। स्वानुभव रूप अर्थात् सहज शुद्ध आत्माका अभेद ज्ञान भी अतीन्द्रिय ज्ञान है। ऐसा ज्ञान मानसिक ज्ञान नही और जो मानसिक ज्ञान है, वह स्वानुभव नही। छद्मस्थ अवस्थामे मति और श्रुतज्ञान चलते है और ये दो इन्द्रियज या मानसिक ज्ञान है। सो जब तक विकल्पावस्था है, उस अवस्थामे स्वानुभव नही होता। इन्द्रियज

ज्ञानके कारणसे अतीन्द्रिय ज्ञान हो जाय, यह बात असम्भव है, इसलिए मानना होगा कि केवलज्ञान अथवा अतीन्द्रिय ज्ञानकी उत्पत्तिका कारण कोई न कोई अतीन्द्रियज्ञान ही होगा। दूसरी बात यह है कि जो मतिज्ञानके बारेमें यह बताया गया कि यह इन्द्रिय और मनके निमित्तसे पैदा होता, नो उसका पैदा होना ही तो बताया गया। आत्मामे नित्य प्रकाशमान सहज शुद्ध जो सामान्यतत्त्व है, उसका अभेद ज्ञान जब पैदा होनेको है, तो मनके विकल्प निमित्त कारण पडते है, जब उस विकल्पज्ञानके अनन्तर निर्विकल्प अवस्था आती है, तो उस समय विकल्पज्ञान नही चलता, उसका लक्ष्य करके स्वतः प्रकट होने वाला जो परमपद है, वहाँ अतीन्द्रिय सुखका साधनभूत जो ज्ञान है, वह अतीन्द्रिय ज्ञान है और अतीन्द्रिय ज्ञान ही उपादेय है, ऐसा स्तवन करना, इस ५४वी गाथामे बताया गया है।

अतीन्द्रिय ज्ञानमे अमूर्त और प्रच्छन्नोका ज्ञातृत्व—जो ज्ञान देखते वाले पुरुपके ज्ञान तरगरूप जो ज्ञान है, वह अमूर्तिकको भी जानता। वह अमूर्तिक क्या चीज है? धर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य, अधर्मद्रव्य, कालद्रव्य और इनसे भी श्रेष्ठ अतीन्द्रिय राग रहित सच्चिदानन्द ही है, एक स्वभाव जिसका ऐसा परमात्म द्रव्य, ये ५ चीज अमूर्त हैं, इस अमूर्तको भी जानता, मूर्त पदार्थ जो है उनको भी जानता, और जो प्रच्छन्न है, कालसे प्रच्छन्न हैं, ऐसे भूत भविष्य की चीज, और जो क्षेत्रसे प्रच्छन्न अलोकाकाश प्रदेश आदि और भावसे प्रच्छन्न सूक्ष्मसे सूक्ष्म परमाणु आदि, द्रव्यसे प्रच्छन्न वे सभी पिण्ड उन सब प्रच्छन्नोको भी जानता है और कुछको भी जानता है। वह और कुछ क्या? भूतकालमे अपने द्रव्यमे आने वाली या परद्रव्यमे आने वाली जो और भी चीज है, विभाव, अशुद्ध अवस्था इन सबको भी जानता है, ऐसा ज्ञान अतीन्द्रिय ज्ञान है और वह ज्ञान ही सर्वज्ञके अतीन्द्रिय सुखका साधन है। इन्द्रियज्ञानमे यह शक्ति नही कि वह अतीन्द्रिय सुखका साधन बन सके, केवल अतीन्द्रिय ज्ञानमे ही ऐसी शक्ति है। अतीन्द्रिय ज्ञान अमूर्तिक और मूर्तिकको भी और अमूर्तिक मूर्तिकमे भी प्रच्छन्न आदि सबको जानता है। जो बडी मुश्किलसे कोशिश करनेपर भी समझमे नही आने वाले द्रव्य, जो क्षेत्र, काल और भावसे भी प्रच्छन्न है, क्षेत्रसे प्रच्छन्न अलोकाकाशके प्रदेश, कालसे प्रच्छन्न जो वर्तमानमे नही है ऐसी भूत और भविष्यकी पर्याए और भावसे प्रच्छन्न स्थूल पर्यायोमे घुसी हुई जो सूक्ष्मसे सूक्ष्म पर्याए होती, वे सब केवलीकी ज्ञान पर्यायोमे रहती ही है। क्योकि वे सबकी सब वहाँ प्रत्यक्ष है। द्रव्यमे सबसे अधिक सूक्ष्म चीज कालद्रव्य है। वह कालद्रव्य ऐसा है जिसकी पर्याय समय है, वह द्रव्यसे प्रच्छन्न है, क्षेत्रसे अलोकाकाशके प्रदेश प्रच्छन्न है और कालसे प्रच्छन्नभूत और भविष्यकी पर्याए है, जो कालमे ढकी होती है, भावसे प्रच्छन्न स्थूल पर्यायोमे घुसी हुई सूक्ष्म पर्याए है। जैसे एक बालक एक महीनेमे एक अगुल बढ गया, परन्तु

वह तो समय-समयपर बढ रहा, परन्तु उसका वह प्रतिसमय बढना भावसे प्रच्छन्न है और उसका वर्णन नही किया जा सकता और एक महीने भरमे उसका एक अगुल बढना दिखाई दे गया तो उसका वर्णन किया गया। एक मोटी पर्यायसे भी प्रति समय सूक्ष्म पर्याए चल रही है, जिन्हे हम परिवर्तन कहते, वे सूक्ष्म पर्याए भावसे प्रच्छन्न है। ऐसे सब प्रच्छन्नो को भी जो देख लेते है, ऐसे अतीन्द्रिय ज्ञानी जीवोके स्वय अतीन्द्रिय सुख होता है।

सुख और ज्ञानकी अविनाभाविता—अतीन्द्रिय सुख उसीके होता है, जिसके अतीन्द्रिय ज्ञान हो। ज्ञानको छोडकर सुख नही रहता, और सुखको छोडकर ज्ञान नही हो सकता। सुख और ज्ञानमे ऐसा ही भाईचारा है। ऐसे ज्ञान और सुखका सम्बध अभिन्न है। ज्ञानके बिना सुख नही रहता, और जहाँ सुख नही हो, वहाँ ज्ञान नही रहता। वहा ही यह बात बतलाते कि अतीन्द्रिय सुखका साधन अतीन्द्रिय ज्ञान है। यहा यह प्रश्न हुआ कि जब ज्ञानसे अभिन्न सुखको बतलाया जा रहा है तो ज्ञान और सुख दो गुण नही बतलाना चाहिए। इसका उत्तर यह है कि वहाँ स्वरूपदृष्टिसे तो ज्ञान और सुख दो हैं, परतु ज्ञानसे जुदा सुखका सवेदन नही बताया जा सकता और सुखसे जुदा ज्ञानका सवेदन नही बताया जा सकता, इसलिए वे अभिन्न है। यहाँ फिर यह प्रश्न होता कि और ऐसे गुण है, जो ज्ञानसे अभिन्न नही बताये जा सकते तो उनको भी ज्ञानसे अभिन्न कर दो। इसका समाधान यह है कि जब उन गुणोका वर्णन आयगा तो वे भी ज्ञानसे अभिन्न हो जाएंगे। जैसे सूक्ष्म गुण ज्ञानसे अभिन्न है। यदि ज्ञानके स्वरूप निर्माणमे से सूक्ष्म गुणको निकाल दो तो उसका सूक्ष्मपना मिट जाना चाहिए और वह स्थूल हो जाना चाहिए, परन्तु ज्ञान स्थूल तो नही हो जाता। इसलिए सभी गुणोको देखो, जो आत्मामे भरे हुए हैं, वे सब अपना भिन्न-भिन्न लक्षण सत्ताको लिए हुए होते है, परन्तु वे ज्ञानसे भिन्न नही। उस आत्माकी शक्तियोको बताया जा रहा है कि वे सब गुण उस आत्मा द्रव्यसे भिन्न नही है और द्रव्यकी सत्तामे ही है, इसलिए सब अभिन्न है।

अध्यात्म मोक्षमार्ग—प्रारम्भिक दशामे शिष्योको समझानेके लिए भेददृष्टिसे वर्णन होता है और समझ चुकनेके बाद अभेददृष्टिसे वर्णन होता है, यह अध्यात्म वर्णनका तरीका है। अध्यात्म अनुभवमे उतरे हुयेको पूछे कि मोक्षमार्ग क्या है ? तो वह एकदम यह नही कहेगा कि दर्शन, ज्ञान, चारित्र ही मोक्षमार्ग है। परन्तु यह कहेगे कि जो एक ज्ञानमात्र अभेद परिणति होती, उस एक परिणतिको कहेगे कि यह अभेदानुभव मोक्षका मार्ग है। फिर वे कहेगे कि ज्ञानका श्रद्धान स्वभावसे रहना, सो सम्यग्दर्शन है, ज्ञानका ज्ञानस्वभावसे होना, सो सम्यग्ज्ञान है और ज्ञानका रागादि भावोके त्यागके स्वभावसे होना सो सम्यक्चारित्र है। इसलिए ज्ञान ही दर्शन, ज्ञान ही ज्ञान और ज्ञान ही चारित्र है, यह अभेददृष्टिसे बता रहे। चारित्र वह जो किसी वस्तुको जाने और ऐसा जाने कि उसके जाननेमे रागादि भाव नही रहे, परन्तु वह

चारित्र क्या ? चारित्र वह कि जो बहुत देर तक ज्ञानमय बना रहे। दर्शन क्या ? ज्ञानका ज्ञानरूपमे बना रहना और इससे विपरीत श्रद्धा न लाना, इसीको दर्शन कहते हैं। तो ज्ञानका ज्ञान रूपमे बना रहना यह सामान्यतया अनुभव किया, यही दर्शन हुआ और ज्ञानका ज्ञानरूप से होना, यह ज्ञान हुआ व बहुत देर तक बना रहना यह हुआ चारित्र। तो इस प्रकार दर्शन ज्ञान और चारित्र—ये तीनो गुण अभेद ही हैं।

विभुताका साम्राज्य—अब यह प्रश्न होना कि ज्ञानमे यदि अनन्त गुण आ गए तो ज्ञान द्रव्य हो जायगा। गुण जो होते हैं वे द्रव्यके आधारसे होते हैं, तो सारे गुण ज्ञानके आधार होते हैं तो ज्ञानको द्रव्य हो जाना चाहिए। इसका समाधान यह है कि यहाँ अन्य गुणोको जो ज्ञानमे मिलाया वह आधारसे नही मिलाया है। वे तो सहयोगी होकर मिले हैं। आधारसे होकर मिलना यह तो द्रव्यमे ही होता और सहयोगी होकर मिलना यह अलग चीज है। सहयोगी होकर वह अभेद हो जाय तो वह एक स्वरूप है ही क्या ? ज्ञानमे से सब गुण निकाल दो तो फिर इनको निकाल देनेमे ज्ञानमे उल्टी चीज आ जानी चाहिए। फिर उस ज्ञानका स्वरूप क्या रह जायगा—यह सोचो। इस आत्माको देखो। वह आत्मा ज्ञानमय है। अब यह ज्ञान कितनेमय है। ज्ञान सूक्ष्म भी है, ज्ञान परिणमता इसलिए अगुरुलघु भी है, ज्ञान अमूर्तिक भी है, ज्ञान स्थिर भी है। यदि ये गुण सहयोगी होकर एक दूसरेको ठोस लेनेके साधन न रहे तो यह बताओ कि ज्ञानका कोई अस्तित्व भी रहेगा क्या ? नही रहेगा। इस तरह ज्ञानमे जितने गुण हैं वे अपृथक् रूपसे रहते, फिर भी एक गुण दूसरे गुणके आधाररूप नही, सहयोगी रूप है। सहयोगी रूपमे वे सब गुण न्यारे नही हैं। उन सब गुणोका अभेदपिंड एक आत्मद्रव्य है और वह आत्मा ज्ञानमय है। यदि उसमे से कोई एक गुण भी निकाला जाय तो कोई गुण उसमे नही टिक सकता। द्रव्यकी दृष्टिमे देखो—एक चीज है और वह परिणमती है। परिणमन भी एक है। एक समयमे एक परिणमन है, ऐसी उस चीजमे कल्पना करके गुण ढूंढते। द्रव्य की तरफसे देखते तो ऐसा लगता कि गुण तो उसमे मानी हुई चीज है। यदि गुणकी तरफसे देखते तो ऐसा लगता कि द्रव्य क्या है, समस्त गुणोका एक अभेद-पिण्ड द्रव्य है। तब और द्रव्य क्या रहा ? द्रव्य तो मानी हुई चीज है। यह तत्त्वका विकट रहस्य है।

वस्तुस्वरूपकी वचनागोचरता—जो है वह अनुभवमे तो सत्य उतरता है परन्तु वचनोसे सत्य नही उतरता। हर पहलुओमे दीखा वह तो चीज है और जो कल्पनासे जिस एक तत्त्वका आलबन किया वह चीज नही। जैसे अगुलीके सहारे चन्द्रमा दिखाया जाय तो देखने वाला केवल उगलीको ही नही देखता और न बीचके मार्गको ही देखता, वह तो उस उगलीकी सीधसे चन्द्रमाको देखता। इसी तरहसे सब दृष्टियोसे जहाँ वह एक निर्विकल्प अखड

एक ज्ञानस्वभाव अनुभवमे आए तो वह सत्य लगा और उस अनुभवमे विकल्प किया तो वह सत्य नही लगेगा। उस अनुभवको यदि वचनसे कहे तो वह सत्य बात नही बैठेगी। यह चीज पुद्गलद्रव्योके भी ऐसी ही है, केवल आत्मद्रव्यके ही नही। जैसे कोई कहे कि मिश्री तुमने जो खाई उसका स्वाद समझादो। परन्तु मिश्रीका स्वाद समझाने मे असमर्थ हो जाओगे। कहोगे कि बडी मीठी चीज है, गन्नेसे बनती है। गन्नेमे से इतना मैल निकालते तो गन्ने मे जो मीठा निर्मल रस रह जाता है उससे अधिक मीठा गुड बनता है। गुडमेसे भी मैल निकालकर शक्कर बनाते जो गुडसे भी ज्यादा मीठी होती है। उस शक्करको भी और स्वच्छ बनाकर मिश्री बनाते तो वह शक्करसे भी ज्यादा मीठी होती है। यह तो बताया कि वह मिश्री इतनी अधिक मीठी होती है, परन्तु सुनने वाले को मिश्रीके मिठासकी सचाईका अनुभव नही हो पाया और स्वयं जिसने उसे खाई तो वे उसके रसका अनुभव कर लेंगे, परन्तु समझा नही सकेंगे। इसी प्रकारसे ज्ञानके अनुभवको वचनसे कहे तो वह सही नही बैठेगा।

गुणोकी द्रव्याश्रयता—सारे गुणोका एक समूह, ऐसा एक जो पिंड है वही तो एक द्रव्य है। गुण द्रव्यके आधारमे है। द्रव्यकी जगहमे देखो तो द्रव्य है, द्रव्यका परिणमन द्रव्य को यह तरग है, और तरगमे सब गुण विद्यमान है। आत्मा जानता है तो ज्ञानगुण, देखता है इसलिए दर्शनगुण, रागादिसे रहित है इसलिए चारित्रगुण निराकुलताका भाव है इसलिए सुखगुण, अमूर्तिक है इसलिए अमूर्तिक गुण अनुभव होते है, ये आत्माकी शक्तियाँ है, जिनके परिणामस्वरूप आत्माकी तरग होती है, उन्हे कहते है शक्तियाँ या गुण। इन सब गुणोमे से किसी भी एक गुणका निर्माण ही सारे गुणोकी वजहसे होता है। यदि उसमेसे और गुणोको भिन्न मानें तो एक गुण भी अपना स्वरूप कायम नही रख सकता। परन्तु एक गुणका भी अन्य कोई गुण आधार नही है। आधार होगा तो उनमे अभेद सिद्ध नही होगा।

आत्मामे ज्ञानका प्राधान्य—देखो भैया! अमृतचन्द सूरि महाराजको ज्ञानसे इतना पक्षपात हो गया कि सुखका वर्णन करनेकी बात कह रहे थे, परन्तु उनको तो ज्ञानकी ही धुन है, आनन्दका वर्णन करते हुए उसमे भी ज्ञानको रख दिया, ऐसा उनके पक्ष लग गया। कुछ भी वर्णन करें तो बीचमे ज्ञानका वर्णन करने लग जाते, यह उनमे पक्षपात हो गया। सब जगह उन्होने ज्ञानको खोस दिया। तो अमृतचन्द आचार्य ज्ञानगुणके ही पक्षमे इतने क्यो आए? एक दृष्टिसे यदि देखे तो इन सब गुणोमे राजा एक ज्ञानगुण है, और ऐसा मालूम होता कि इस ज्ञानकी रक्षाके लिए ही वे सारे गुण है। ज्ञानमे यदि अमूर्तिकपना न आये तो यह ज्ञान मूर्तिक बन बैठेगा और वह अतीन्द्रिय ज्ञान ही नही रहेगा। इस प्रकार ज्ञानके स्वरूपकी रक्षाके लिए अमूर्त गुण आया। ज्ञानकी सत्ता रख देनेके लिए ही उसमे सूक्ष्म गुण

आया। आत्मामे सूक्ष्म गुण है। ज्ञान ज्ञान ही रहे अन्य गुणरूप या अन्य द्रव्यरूप अथवा अध्रुव पर्यायरूप न बन जाये, इस शक्तिको अगुरुलघु बनाये हैं। सो देखो अगुरुलघुने भी ज्ञान की रक्षा की। कल्पना करो कि किसी ज्ञानसे किसी आत्मासे यह गुण मिट जाय तो वह आत्माका स्वरूप कैसे रह सकता ? परन्तु किसी आत्मासे सूक्ष्म गुण न मिट जाय, यह सोच-कर ज्ञानकी भावना आत्मामे करनी पडी हे, ऐसी तो कल्पना नही होती। सहज आत्माका ज्ञानगुण समाप्त न हो जाय, इसलिए ज्ञान आया, ऐसी बात भी कल्पनामे नही आ पाती। परन्तु ज्ञान न मिट जाय, इसलिए अगुरुलघु गुण आया। जितने भी गुण हैं, मानो इन सबको ज्ञानगुणकी आवश्यकता नही परन्तु ज्ञानगुणको सब गुणोकी आवश्यकता है। आत्माके अन्दर ज्ञानगुण एक ऐसा ही प्रधान गुण है।

आत्माकी साधारणासाधारणधर्मस्वरूपता—यदि आत्मासे कहते है कि तुझे बहुत गुणोमे रहते हुए बहुत दिन हो गये, आज एक गुण कम करना चाहता हू तो सोचे कि किस गुणको नष्ट किया जाय ? किसी भी गुणको निकालेंगे तो आत्मा ही बिखर जायेगी। आत्मा की ही सत्ता नही रह सकेगी। इसके अतिरिक्त ये ज्ञानके अतिरिक्त बाकी गुण ऐसे हैं, जो किसी तरह ज्ञानके बिना कहीं टिक सकते हैं, परन्तु आत्मामे और जितने गुण है, उनके बिना ज्ञान नही टिक सकता। पुद्गलमे अगुरुलघु धर्म और अधर्ममें सूक्ष्म और अमूर्तिक गुण आदि प्रकार रह सकते है, ये ज्ञानके बिना टिक सकते हैं, परन्तु इन सबके बिना ज्ञान नही टिक सकता। सूक्ष्म कहते किसे है ? जो सूक्ष्म हो, ज्ञान उसे कहते है, जो जानता है। इस बुद्धिमे स्वरूपका भेद आया, इसलिए उनमे भेद पडा, परन्तु आत्मामे भेद नही चल सकता। आत्मा का वह ज्ञान तो सब गुणो सहित है। वही ज्ञान सर्वगुण है। किसी भी द्रव्यको जिस गुणकी मुख्यतासे देखो वह द्रव्य उसी गुणरूप प्रगट होता है। ऐसे सर्व गुणोका पिड अभेद रूप आत्मा है। उस आत्मामे जब तक ज्ञान अतीन्द्रिय नही आयगा, वह ज्ञान जिसमे अनादिसे चैतन्य सामान्यका सम्बध हैं, एक ही ऐसी आत्माको जो प्रतिनियत है, इतर किन्ही भी सामग्रियोको नही खोजता, अपनी अनत शक्तियोके कारण जो अनत बन गया। ऐसी अपनी स्थितिको अनु-भव करने वाला ज्ञान है, जो ज्ञान किसीके द्वारा निवारण नही किया जा सकता, वह ज्ञान जब तक आत्मामे नही आयगा तब तक अनत सुख प्राप्त नही हो सकता। वह ऐसा अतीन्द्रिय ज्ञान ही अनन्त सुखका कारण है।

अतीन्द्रिय ज्ञानानुभवकी उपादेयता—अतीन्द्रिय सुख इन्द्रियज्ञानमे नही आ सकता। अतीन्द्रिय ज्ञानकी दृष्टिसे ही अतीन्द्रिय सुखको देख सको तो वह अनुभव हो सकेगा। यहाँपर प्रश्न हुआ कि अतीन्द्रिय सुख अतीन्द्रिय ज्ञानके बिना नही होता, यह तो समझमे आया, परतु हमारे हो रहा है इन्द्रियजज्ञान जिसके द्वारा वह सुख समझमे आयेगा ही नही, तो जो चीज

समझमे आ ही नही सकेगी, उसको समझानेका कष्ट क्यो किया जाता है ? इसका समाधान यह है कि अतीन्द्रिय ज्ञान दो प्रकारके है—एक सबमे रहने वाला और दूसरा केवलीमे रहने वाला। छद्मस्थमे रहने वाला अतीन्द्रिय ज्ञान वह है जो सहज शुद्ध सामान्य तत्त्वमय आत्माके अभेद ज्ञान सामान्य है, उसमे जो मानसिक विकल्प होता है, उसकी उत्पत्तिके बाद वह निश्चय जब दृढतामे आता है, तो आत्मा उन विकल्पोको छोडता है और यह आत्मा तब स्वानुभवको पाता है, और स्वानुभवकी उस स्थितिको अतीन्द्रिय ज्ञान कहते है। उस चीजको बतानेके लिए यह इन्द्रियज ज्ञान और यह मानसिक ज्ञान बताया गया। जैसे शास्त्रोका पढना शास्त्रोको भूलनेके लिए ही होता। इनमे विकल्प जो किया उसकी सफलता इस विकल्पके त्यागमे ही है। यहाँ कोई कहे जब निर्विकल्प अवस्थाकी बात है, जब फिर विकल्पोको छोडना ही है, फिर शास्त्रविकल्पसे लाभ क्या तो भाई! शास्त्रोके विकल्प उस निर्विकल्प अवस्थाको पानेके लिए ही किया। जब यह अवस्था आ जायगी, तो उन्हे भूलना ही पडेगा। यदि यह कहो कि जब शास्त्रोको भूलना ही पडेगा, तो शास्त्रोको पढनेसे फायदा ही क्या ? परन्तु ऐसा किये बिना वह निर्विकल्प अवस्था पाओगे कैसे ? इसी प्रकार इन्द्रियज ज्ञानके द्वारा इतने विकल्पोको पैदा करनेके बाद निर्विकल्प अवस्थाको पाने वाले अतीन्द्रिय सुखके स्वरूपको भी समझ सकते है। यहाँ इस तरह यह सिद्ध किया कि अतीन्द्रिय सुखका साधन अतीन्द्रिय ज्ञान है, इसलिये अतीन्द्रिय ज्ञान ही उपादेय है, और इन्द्रिय ज्ञान हेय है।

अतीन्द्रिय ज्ञानके निरूपणके बाद इन्द्रियज ज्ञानका हेयतया निरूपण—कलके प्रकरण मे यह बात बताई थी कि अतीन्द्रिय सुखका साधन अतीन्द्रिय ज्ञान है, और बात है भी यही कि जैसा ज्ञान होगा उसी विषयक, उसी शैलीका सुख होता। मिठाईके ज्ञान बिना मिठाईके स्वादका सुख क्या ? इन्द्रियज्ञानसे इन्द्रियसुख होता, और अतीन्द्रिय ज्ञानसे अतीन्द्रिय सुख होता। जैसी ज्ञानकी तारीफ वैसी ही सुखकी तारीफ और जो सुखकी तारीफ वह ही ज्ञानकी तारीफ, ज्ञान और सुखमे इसी तरहका भाईचारा या अभेदपना है। आज बतलाते है कि जो इन्द्रियज्ञान इन्द्रियसुखका साधन है, वह हेय है। इन्द्रियसुखका साधनभूत जो इन्द्रियज्ञान है, वह हेय है। इस जीवके अनादिकालसे जो इन्द्रिय ज्ञान रहा, वह अब नही चाहिए। अब ५ इन्द्रियोके विषयोमे जो सुख आते है, वे नही चाहिए। वह इन्द्रियज्ञान जो अतीन्द्रिय ज्ञानका विपक्ष है, हेय है, उस इन्द्रियज्ञानकी प्रकृष्ट निन्दा करते है, देखो भैया! श्रीमत्कुन्दकुन्द देवने अतीन्द्रियज्ञानका कुछ स्वरूप ५४वी गाथामे कहा था, वह तो स्तवन बन गया था, वहाँ कही आचार्य श्रीने स्तवन नही किया था, मात्र कुछ स्वरूप ही बताया था, और अब इस ५५वी गाथामे भी इन्द्रियज्ञानका स्वरूप ही बता रहे है। किन्तु स्वरूप ही ऐसी पराधीन अपूर्ण विशुद्ध अवस्थाको लिये हुए है कि स्वरूप कहते ही निन्दा हो जाती है, इसमे केवल इन्द्रिय

ज्ञानकी ही निन्दा नही है, इन्द्रियमुखकी पहिले निन्दा है। प्रकरण भी मुखका ही तो चल रहा है, इन्द्रियज्ञान तो हमारे सत्पथके प्रारम्भिक यत्नमे कभी कोई सहकारी भी हो सकता है, किन्तु इन्द्रियमुख तो सदा मेरी शातिके विरुद्ध ही रहता है। यहाँ इन्द्रियमुखके साधनीभूत इन्द्रियज्ञानका हेयतया प्रणिनदन करते है, वर्णन करते है।

जीवो सय अमुत्तो मुत्तिगदो तेण मुत्तिणा मुत्त।
ओगेण्हित्ता जोग्ग जाणदि वा तण्ण जाणादि ॥५५॥

इन्द्रियज्ञानका क्या ज्ञानपना—यह इन्द्रियज्ञान कैसा है ? यह जीव तो स्वय अमूर्तिक है, परन्तु शरीरसे इसका सम्बन्ध होनेके कारण यह मूर्तिकके द्वारा ही मूर्तिकको ही जानता है। इन्द्रिय विकल्प, क्षयोपशम, मानसिक विकल्प, ये सब मूर्तिक है। इनके द्वारा मूर्तिक यह जीवको अवग्रह करके जानता है। यह जीव प्रारभिक अस्पष्ट विकल्प करके जानता है और योग्यको जानता है। जो सामने पडा है या स्थूल है ऐसी चीजको जानता है अथवा नही भी जानता। यह जो भी जानता है वह जाननेमे जानना नही कहा जा सकता। जैसे कभी पिता किसी बेटेसे जबरदस्ती कोई काम कराता है तो वह कहता है कि क्या यह करनेमे करना है, पहलेसे ही प्रेम और विवेकसे यह कार्य होता, तो वह करनेमे करना होता। इसी तरहसे जो ज्ञान ऐसा है, जो मूर्तिकके द्वारा जानता, मूर्तिकको जानता, अवग्रह करके जानता, और कुछ ही को जानता, वह कोई जाननेमे जानना है। आत्मामे स्वभाव तो सर्वज्ञ त्रैकालिकका है, यह स्वभाव होते हुए भी पराधीनकी तरह जानना क्या जाननेमे जानना है। इस प्रकारसे जो इतनी गडबडियो वाला ज्ञान है, वह कोई ज्ञानमे ज्ञान है। इसे आचार्य कहते है कि यह ज्ञान नही है। इन्द्रियज्ञानके जरियेसे नाना प्रकारके अवगुण आते है। यह ना कुछ इन्द्रियज्ञान मिला, जब तो इतना घमड इस जीवके है, यदि असम्भव एक कल्पना करें, यह केवली मान कपायका जरासा भी अश अपने ज्ञानमे पाले तो कल्पना कर लें कि वे अपने ज्ञानके द्वारा दुनियाकी क्या दशा कर डालते ? तात्पर्य यह है कि इस जीवको यदि इतना बडा ज्ञान इस कपायमे रहता तो अनर्थकी हद हो जाती, तो ज्ञानमे मानकपाय नही आता, इसीसे सर्वज्ञपनेमे मानकपाय नही आता।

इन्द्रियज ज्ञानकी कमजोरिया—यहाँ हमारा इन्द्रियजज्ञान कैसा है, यह बात बतलाते है। इन्द्रियज्ञान मूर्तिसे तो जानता है और मूर्तिको ही जानता है। मूर्तिकको ये ही जानता है, इसलिए वह पराधीन है, स्थूल पदार्थोको ही जानता और मूर्तिकके द्वारा अर्थात् इन्द्रियज्ञानके द्वारा ही जानता। स्वभावसे अमूर्तिक होते हुए भी यह जीव पाँच इन्द्रिय वाले मूर्त शरीरको प्राप्त हुआ। अमूर्तसे मूर्तकी सन्निधि पाई तो ऐसा फल हुआ कि यह मूर्तके द्वारा ही जान पाता और मूर्तको ही जान पाता। तो ज्ञानके उत्पन्न होनेमे जबरदस्तीका कारण लग जानेके

कारण ये इन्द्रियादि चेलेंज दे रहे है, तुम कुछ जान पाओगे तो हमारे हुक्मसे, हमारे सहयोग से ही जान सकते हो । हमारे बिना कुछ नही कर सकोगे, यह बलाधान निमित्त ऐसा हो गया कि इसके बिना कुछ गडबड ये कर ही नही सकता । ऐसा जो इन्द्रियज्ञान है, वह मूर्तिक के द्वारा मूर्तिकको ही, जिनमे कि स्पर्श, रस आदि गुण है, ऐसे योग्यको ही अवग्रह करके जानता है । यह इन्द्रियज्ञान किसी पदार्थको जानता है तो पहले अवग्रह होता है । अब इसके बाद क्षयोपशम विशेप हो व यदि हमारा उपयोग लगा तो और ज्यादा ईहादि ज्ञान होने लगा और यदि यह बात नही हुई तो अवग्रह होकर ही समाप्त हो जाता । इस प्रकार थोडासा प्रतिभासमे आ पाता और समाप्त हो जाता, ऐसा इन्द्रियज्ञान है । इसमे शुद्धि हो तो आगे भी जान पाता । हम किसी चीजको भी देखते है, तो हमारा ज्ञान पराधीन होनेके कारण ऐसा लगता कि हमने जल्दी ही उसे समझ लिया, परन्तु वहाँ अवग्रह आदि क्रमसे ज्ञान हुआ । कदाचित् क्षयोपशम विशेष होता तो आगे बढे अर्थात् कुछ ज्यादा समझ लेते । यह इन्द्रियज्ञान मेरा हितू नही है, यह तो मेरे स्वभावका घातक ही है अर्थात् बहकाने वाला है । ऐसे विशुद्ध स्वभाव वाले चैतन्यके लिए यह ज्ञानगुण और इसमे ही रमकर रह जाना, यह तो एक बडा अपराध है, बडा कलक है, और आगेकी उन्नतिमे बडा भारी रोडा है । यदि ऐसी बात आई तो अतीन्द्रिय सुखकी प्रवृत्ति नही रही । इसलिए यह बताया कि इन्द्रियज्ञान हेय है ।

परोक्षज्ञानमें व्यग्रता व शक्तिघात—यह परोक्ष ज्ञान कैसा है ? यद्यपि इस आत्मामे अनादिकालसे ही शुद्ध चैतन्य सामान्यका सम्बन्ध है । इस इन्द्रियज्ञानी जीवको समझा रहे कि तेरे अन्दर चैतन्यसामान्यका सम्बन्ध अनादिकाल ही से स्वत ही है परन्तु इन्द्रियजालमे फसे होनेके कारण स्वय अपने आप स्वाधीनतया आत्माके द्वारा अर्थोको जान लेनेमे असमर्थ हो गया । जैसे आँखसे सब देखते है, फिर भी आँखमे पट्टी लगा देवें तो स्वय अपने देखनेमे असमर्थ हो गया, इसी तरह अनादि कालसे चैतन्य सामान्यका सम्बन्ध पाया, परन्तु फिर भी अज्ञानरूपी अधकारसे अधा हो गया और अर्थोको जाननेमे असमर्थ हो गया । इसके बाद प्राप्त और अप्राप्त जो परनिमित्तक सामग्रियाँ है, उनकी खोजके लिए व्यग्र हो गया । जब स्वय नही जान पाता यह जीव, तो जाननेके लिए १० अन्य चीजोका सहारा लेता और उनको खोजनेकी व्यग्रता पैदा करता । इस व्यग्रतासे वह अपनी शक्तियोको खो देता । यह जीव अल्पज्ञानी है और स्वय जाननेमे असमर्थ है और अपने जाननपनेसे जाननेके लिए अन्य सामग्रियोकी खोजमे व्यग्र हो गया तो उसने अपनी स्वयकी शक्तिया खो दी । हमारी अनन्त शक्तियां इसीलिये खराब हो गई कि हम अज्ञानकी ग्रन्थीमे गु ठित होनेमे पदार्थोको स्वय जाननेमे असमर्थ हो गये, परन्तु बुद्धिमे बहुत बहुत जाननेकी इच्छा पैदा हो गई, जब स्वय जाननेमें असमर्थ है तो फिर आश्रय खोजते, इस तरह आश्रय खोजनेकी व्यग्रता पैदा होती,

तो उससे इस आत्माकी अनन्त शक्तियाँ नष्ट हो गई।

मोहमल्लका आक्रमण—यहाँ यह विशेषण दिया कि प्राप्त सामग्री और अप्राप्त दोनो सामग्रीको अपने ज्ञानको बढानेके लिए खोजनेमे व्यग्र हो जाते। परन्तु उस जीवकी सत्ता तो उसीके आधीन है। आँख कमजोर हो गई, उसका जाला निकलवाते हैं, तो यह आँख तो हमारी सत्ता नही है। आँख सुधरना या बिगडना यह जो परिणमता है वह तो मेरे आधीन नही है, परन्तु जो परपदार्थ है अथवा परसामग्री है उसको खोजनेमे जो व्यग्रता आती, वह व्यग्रता तो पराधीन सामग्रीको खोजनेके लिए होती, इसलिए उस व्यग्रताके कारण उसका ज्ञान मोटा बन गया, ऐसा जो सस्थूल ज्ञान है वह अनन्त शक्तिके मिट जानेमे अधीर है और अपने आपको टिका नही सकता, सस्थिर हैं। ऐसा जो यह इन्द्रियज्ञान है वह महान मोह मल्लके वशमे होनेके कारण है। जैसे कि एक लडकेको मारने वाले उसके चार भाई हैं, तो उसकी कैसी दशा होती, एकने पटका, एकने मुक्का मारा, एकने घसीटा और एकने थप्पड मारा, और उस लडकेका कचूमर निकल गया। तो हम इस इन्द्रियज्ञानमे कैसी दुर्गति चल रही है, कदाचित् इन्द्रियज्ञान भी हो जाय तो टिके भी नही, १० जगह भी जाय, इतना ही हो जाय तो भी ठीक है, सतोपकी बात है, परतु इतना ही नही रहने दिया, वहाँ तो महा मोहमल्ल जिन्दा है, इसलिए परपदार्थकी परिणतिमे उसका अभिप्राय आ गया। परपरिणतिमे अभिप्राय होना ही मिथ्यात्व है। यही ससारमे रुलाने वाला भाव है। ऐसा अभिप्राय होनेपर भी जगह-जगहपर ठगाया गया। यह जीव अनादिकालसे ठगाया गया ही तो रहा। यदि परकी परिणति मेरे आधीन होती और परकी परिणतिका अभिप्राय भी आता तो भी बुरा नही था, किन्तु मोहसे यह ज्ञान बार-बार ठगाया जाता है, यह तो इसका कचूमर ही निकालता।

इन्द्रियज ज्ञान सुखकी अहितरूपता—एक दुष्टके अथवा एक पापीके नावमे आनेसे कहते है कि सारी नौका डूब जाती, इसी तरहसे एक मोहके आनेसे इन्द्रियज्ञानको भी गालिया मिल रही है, और न जाने कितनी गालिया और मिलेंगी? इन्द्रियज ज्ञान कैसा है, इसके अवगुण बतला रहे है। यह मूर्तिकके द्वारा जानता, मूर्तिकको ही जानता, बलाधान निमित्त होते है, निमित्त जिनके उनके निमित्तसे जानता, ऐसा पराधीन भी है, फिर अवग्रह करके रह जाता, कदाचित् ही ऊपरको जाता। कहते यहाँ तक भी ठीक है। जैसे एक चतुर लडकेको कोई पीट रहा, वह लडका पिटता हुआ यह सोच रहा कि चलो मुक्के ही तो लग रहे, हटर तो नही लग रहे, फासी तो नही लगी। इसी तरहसे इस पिटते हुए ससारी जीवको ऐसा बतलाते है कि चलो इतना ही सही, अभी यह तो नही हुआ, परतु यह और तो लगा ही है, अनादिकालसे अज्ञान होनेके कारण यह स्वय पदार्थोको नही जानता, कहते कि इतना भी हो तो कोई बात नही, परतु वहाँ तो पदार्थोको जाननेके लिए पराधीन सामग्रीको खोजोमे व्य-

ग्रता ग्राती, ग्रौर उस व्यग्रताके होनेसे उसके ज्ञानकी ग्रनंत शक्ति नष्ट हो जाती। इतना होने पर भी उसमे निरतर विप्लव होते, ग्रौर वह एक जगह नही टिक सकता। इसके बाद भी एक ग्रौर लगी है कि मोहमल्ल लगा है, उसके कारण परिणतिका ग्रभिप्राय भी उसके साथ लग गया, उससे तो उसमे बडा बुरापन ग्रा गया। परको मै यो कर दू, ऐसा परिणमा दूं, ऐसा ग्रभिप्राय इसके साथ लग गया ग्रौर उस लगनेके साथ एक बात ग्रौर लगी कि यह समय समयपर बहुत ठगाया भी तो जाता है। परपदार्थको यो परिणमा दू, ऐसा ग्रभिप्राय बना रहे ग्रौर ऐसा होता भी रहे तो भी कोई बात नही, वह पिटने वाला कहता है कि ग्रभी तक भी हमारी कोई हानि नही है, परतु यह बार-बार ठगाया भी तो जाता है। ग्राचार्य महाराज कहते है कि एक जिस ज्ञानके ग्रदर इतनी गडबडियां दिखती है, ग्रौर उसपर भी ठगाया ही गया, ऐसा इन्द्रियज्ञान यदि जानता है तो मै समझता हू कि यह तो जानता ही नही। ऐसा ज्ञान ऐसी सम्भावनाके ही योग्य है। इसलिए यह जो इन्द्रियज्ञान है, वह हेय है।

इन्द्रियजज्ञानमे प्रेरक भावका ग्रपराध—इन्द्रियज्ञान ही मेरा स्वरूप है, इन्द्रियज्ञान ही मेरा सर्वस्व है, इस प्रकारकी बुद्धि ही हेय है। वह ग्रतीन्द्रिय सुख इन्द्रियज्ञानके सम्बन्धसे नही ग्राता। जहाँ इन्द्रियज्ञान होता है, इसके निमित्त रागद्वेष ग्रादि भाव भी साथ चला करते है, इसलिए वह इन्द्रियज्ञान जगह-जगहपर गालिया ही खाता है, परन्तु वास्तवमे इन्द्रियज्ञान का दोष क्या ? ग्रांखसे जो देखते तो देखनेमे जो राग भाव लगा है उसमे बुरा होता, ग्राखके देखनेमे तो बुराई नही हुई। साधु पुरुष घर छोडकर साधु हो जाता है, उसे कभी स्त्री ही पडगाहनेको ग्राती। यदि वह सोचे कि यह मेरी स्त्री है, इसलिए मै यहाँ ग्राहार नही करता, तो उसका मुनिपना नष्ट हो गया। यदि वह सोचे कि मैंने उसे छोड दिया है, इसलिए ग्राहार नही करता, तो उसने स्त्रीको ही छोडा, तद्विषयक विकल्प तो नही छोडा तो वह मुनि ही नही बना। वास्तवमे मुनि होता तो रागको छोडता। वहाँ नेत्रोसे ही देखते, परतु नेत्रोसे देखने पर भी वह बुद्धि तो नही है, जो गृहस्थ ग्रवस्थामे थी। तो ग्रांखका तो दोष नही होता, यदि दुर्भाव हो तो वहाँ रागभावका ही दोष होता। यह राग इतना चालाक है ग्रौर बदमाश है कि घरमे ग्राग तो यही लगावे ग्रौर बदनाम करे इन्द्रियज्ञानको। राग ही सारी चालाकी कर रहा है, ग्रौर इन्द्रियज्ञानकी गालिया पड रही है। इस रागके ही इन्द्रियज्ञानमे लगे रहनेके कारण ग्राकुलताकी सतति नष्ट न होगी, ग्रत यह इन्द्रियज्ञान हेय है। वह इन्द्रियज्ञान ग्रतीन्द्रियसुखका घातक भी है, इसलिए ही हेय है।

धर्मधाम—इन्द्रियज्ञानको छोडकर ग्रतीन्द्रियज्ञान ग्रौर ग्रतीन्द्रियसुखकी हो प्राप्त करने में प्रयत्नशील रहना, इसीके मायने धर्म है। भगवानके सामने प्रार्थना करते समय भी उस ज्ञानसामान्यका ध्यान करो। जो जीव ग्रपने चैतन्य सामान्यके ग्रनुभवमे लग गया तो उन

अनुभवमे रम जानेसे वहाँ कितने ही कर्म नष्ट हो गये। परतु २४ घटे अन्य कार्योंमे दृष्टि रहने से वह निरावलम्ब अवस्थामे नही लग सका, इसलिए वह अवलम्वन करता। भगवान जो अतीन्द्रियज्ञानी है और अतीन्द्रिय आनन्द वाले है, वे अमूर्तिक परमात्मद्रव्य भगवान है। वह भगवान हमारी स्वयकी आत्मा ही है। उस अतीन्द्रियसुख वाले, अतीन्द्रियज्ञान वाले परमात्मा का कोई आकार नही दिखता, वह तो ज्ञानके द्वारा अपनी ही परिणतिमे उसका ध्यान करने से अपनी ही परिणतिमे उसका दर्शन होता है। भगवानको भगवानमे नही देख सकते, भगवानको तो हमारी आत्मामे ही देख सकते है। सिद्धलोकमे रहने वाले सिद्धोको हम वही देखें तो सिद्धको नही जान पाते, क्योकि वहाँ विकल्प है। उसके स्वरूपका आलम्वन लेकर जो हमारी अपनी ज्ञानपरिणति होती, उस परिणतिमे जो अनुभव बना, उस अनुभवमे उनके दर्शन होते। अपनी ही ज्ञानपरिणतिके अमृतभावमे हम सिद्धो और अरहतोंके दर्शन कर सकते, परतु सिद्धके अथवा अरहतके स्थानपर उनके दर्शन नही कर सकते। भगवानके मिलनेकी जगह तो यह हृदय है। भगवानकी मूर्ति भी यही मिलेगी, फिर बाहर जानेकी क्या आवश्यकता है ?

हमारे समस्त लोकका आधार—एक मनुष्य अपने हाथमे कुछ लिए था। उसने दूसरे मनुष्यसे पूछा कि मेरे हाथमे क्या है ? जिन जिनसे उसने पूछा सब हैरान हो गये और किसीने भी कुछ नही बताया। एकने कहा कि हम तो नही बता सकते, आप ही बताओ कि आपके हाथमे क्या है ? तब वह बोला कि मेरे हाथमे हाथी, घोडे, मन्दिर, यहाँ तककी तीनो लोक विद्यमान है। तब वे बोले कि महाराज खोलकर बताओ, हाथ खोला तो उसमे स्याहीकी टिकिया थी, तब लोगोने कहा कि वाह आपने तो बताया था कि मेरे हाथमे इतनी चीजे है, और यहा तो यह स्याहीकी टिकिया ही है। आप तो झूठ बोलते है। तब उसने कहा कि ठहरो, अभी बताता हू और यह कहकर उसने वह स्याहीकी टिकिया थोडेसे पानीमे मिला दी और एक कलम लेकर अपने हाथमे हाथी बनाकर कहने लगा कि देखो मेरे हाथमे यह हाथी है, फिर घोडा बनाकर कहने लगा कि यह घोडा है। इस प्रकार हाथमे तो स्याही थी, परन्तु कलमसे लिखना शुरू किया तो सब कुछ बन गया। आत्मा तो इसी तरह हाथ है, ज्ञान उसमे स्याही है और कलम चारित्र है, यदि इस कलमकी मददसे स्याहीसे लिखना शुरू करे तो सबसे ऊचीसे ऊची चीज यही मिलेगी, फिर कहाँ आँख गडाए ? आलम्बन हमारा है, परतु आलम्बनमे रह कर भी हम उस भगवानकी खोजमे जाए तो वह भगवान हमको यही मिलेगा।

प्रभुदर्शनकी विधि—समवशरणमे भी जो देखते है, उस आकारसे भी भगवान नहीं, जिनको हम त्रिशलाका नन्दन, सिद्धार्थका नदन बोलते है, वह भी भगवान नही, जिनको हम

नामसे पुकारते है—महावीर, वर्द्धमान, वह भी भगवान नही, भगवान तो आत्माके क्षेत्रमे रहने वाला जो विशुद्ध ज्ञानानदमय स्वरूप है, वह है। बहुत समयसे हम अन्यत्र अपना उपयोग लगा रहे थे, उस उपयोगको वहाँसे निकालकर भी परमात्मामे जो उपयोग लगा रहे थे, वहापर हमने भगवानको नही पाया, परन्तु भगवानको हमने अपने आपके ज्ञानपर प्रयोग करके अपनी ही परिणतिसे उस ध्यानमे बनाया तो वहाँ जो वीतरागपनेका जो स्वाद आया, उसमे हमने भगवानको पहिचाना। मैं स्वय परमेश्वर हू, इसलिए परमेश्वरके दर्शन कर सकता हूँ। व्यक्त परमेश्वर नही हू, फिर भी जो परमेश्वरका स्वभाव पडा है, और हम उपयोग लगानेके कारण हम अपनेमे जो परमेश्वरका थोडा अनुभव कर पाते, उस अनुभवके द्वारा हममे पूर्ण परमेश्वरताका स्वरूप जाननेमे आ जाता। परमेश्वरका दर्शन मै अपनी ही परिणतिसे, अपने ही विवेकसे कर लेता हू। उसका दर्शन व परिणमन ही सत्य सुख है, वह इन्द्रियज्ञानसे नही होता। तो अतीन्द्रिय सुखका घातक जो इन्द्रियज्ञान है, उसमे हेय बुद्धि रखना, यही हमारी बुद्धि होनी चाहिए। लालच करो तो सबसे बडेका करो, जिस बडेके लालचमे लालच नही टिक पाता।

इन्द्रियज्ञानकी हेयताके अवधारणका संकल्प—कल तो यह वर्णन था कि यह इन्द्रिय ज्ञान मूर्तिकके द्वारा जानता और मूर्तिकको ही जानता, अवग्रह करके जानता, योग्यको जानता और इसके अलावा अनत शक्तिके न रहनेसे, मोहमल्लके जीवित रहनेसे विभावरूप हुआ। यह इन्द्रियज्ञान बुरा है, और इतना ही नही, वह परपरिणति करता, और परपरिणतिके करनेपर भी ठगाया ही जाता है, इसलिए यह इन्द्रियज्ञान हेय है। इस प्रकार इन्द्रियज्ञानकी हेयताका इतना कडा वर्णन किया, और फिर भी आज कहते कि यह इन्द्रियज्ञान हेय ही है। जो किसी जीवके लिए हितकारी नही है, वह इन्द्रियज्ञान हेय ही है, ऐसा अब निश्चय करते है। प्रश्न—तो क्या अब तक यह निश्चय किया नही जा सका था? उत्तर—आचार्यश्रीको तो ये सब निश्चय है ही, फिर भी उन्होने जो अवधारयति शब्दसे व्यक्त किया, उसके यहाँ ३ रहस्य है—१ इस अतराधिकारके इस स्थलमे इन्द्रियसुख और इन्द्रियज्ञानके बारेमे कुछ वर्णन तो कर ही दिया था, उस नि सार तत्त्वके प्रति अधिक समय या उस ओर वर्णन करनेमे अधिक उपयोग देना बडे पुरुषोकी नैसर्गिक आदत नही होती है। नि:सारके विषयमे अधिक वर्णन करना, कुछ उसकी महत्ता प्रकट कर देनेके बरावर है। अत इस स्थलमे अधिक न कहकर यह हेयत्व बताने वाली अतिम गाथा कह रहे है। २ अवधारयति शब्द णिजत भी होता है, जिससे वह अर्थ होता है कि निश्चय कराते है, जिन भव्य जीवोपर करुणा करके भगवतका प्रयत्न हो रहा है, उनको उपदेश देकर अतमे ऐसा निश्चय करवाते ही है, आचार्यश्री तो दयालु ही है। यदि कोई धर्मपुत्र उनकी आज्ञाको स्वीकार न करे तो वे निश्चय कराते ही है। ३ वक्ता भी

वर्णन करते-करते गहरी हल्की सत्पथकी उमगोमे चढते ही रहते है। यहाँ सूरीश्वर ऐसे विरक्तताकी तीव्र काष्ठामे आ गये कि इन्द्रियसुख ज्ञानका उपयोग ही दूर करनेवाले है। सो जघन्य एवं मध्यम अतरात्माओपर दया कर, इस वर्णनके कामको समाप्त करनेके लिये स्वयके वैराग्य से भरे हुए देव अवधारयति कर अपनेको निर्मलतामे ले जा रहे है।

फासो रसो य गधो वण्णो सद्दो य पुग्गला होंति ।
अक्खाख ते अक्खा जुगव ते णेव गेण्हति ॥५६॥

इन्द्रियोपर विषयग्रहणके क्रमका कंट्रोल—अब यह बतलाते कि यह इन्द्रियाँ अपने विषयमात्रमे भी एक साथ प्रवृत्ति नही कर सकती, इसलिए हेय ही है ऐसा निश्चय करते है। इन्द्रियोंके क्या-क्या विषय है? इन्द्रियाँ ५ है। स्पर्शन कितनेका नाम है? साराका सारा शरीर स्पर्शन है, नाक भी, जीभ भी, यह कान दिख रहा यह कान भी, यह आख जो दिखती यह आँख भी, ये सब स्पर्शन ही है। परतु इसी स्पर्शनमे कोई ऐसी चीज है, जो घ्राण, चक्षु, कर्ण अथवा रसना कहलाती है, परतु रसना, घ्राण, चक्षु और कर्ण ये इन्द्रिया दिख ही नही सकती। जो दिखती है, वे तो सब स्पर्शन इन्द्रिय हैं। जो घ्राण कर लेते है, सुन लेते हैं या स्वाद लेते हैं, वे कौनसी चीजें है। ये दिखते नही, किन्तु हैं। इन्द्रियोके विषय पाच है, स्पर्श, रस, गध, वर्ण और शब्द। उनमेसे स्पर्श, रस, गध और वर्ण तो प्रधान है और एक शब्द अलगसे कहा गया है। इन पाँचो इन्द्रियोमे रति है, वह तो डूबनेका साधन है, ससारमे रुलने का साधन है। स्पर्श, रस, गध और वर्ण ये ४ पुद्गलके अदर गुण हैं, इसलिए प्रधान हैं। शब्द पुद्गल द्रव्यकी पर्याय है, इसलिये वह प्रधान नही है। शब्द पुद्गलका गुण नही है, वह तो पुद्गल द्रव्यकी पर्यायि है, वह पुद्गल द्रव्यके सयोग अथवा वियोगमे निकला करता है। द्रव्यके सयोग वियोगमे ये पर्यायें होती है। शब्दवर्गणा नामकी खुद एक अलग पुद्गल द्रव्य है, और उसकी पर्याये भी हैं। उस शब्दवर्गणामे रहने वाली भी जो रूप, रस, गध आदि पर्यायें है, उनमे भी शब्द पर्याय नही है। शब्द तो बिल्कुल अलग पर्याय है।

देवनागरीमे स्वर वर्णोंके क्रमका रहस्य—वहासे भाषा प्रचलित हुई, वहाँसे ये शब्द प्रचलित हुए, ये अकारादि आदिनाथ स्वामीके समयसे चले। प्रश्न—हिन्दीके इन शब्दोको इस क्रमसे क्यो रखा? हिन्दीमे क्रम इसलिए है कि सबसे पहले जो आवाजका उद्गम स्थान है वह कठ है। उसमे से निकलकर वह आवाज दूसरी ठोकर तालूपर देती है। तालू कहते है जीभके नीचे ऊपर दातके समीप हिस्सेको, फिर इसके बाद मिलता है ओठ, फिर मूर्धा मिलती। इस तरहसे ही और इसी क्रमसे इन अक्षरोका भी उद्गम हुआ। स्वर एक अलग चीज है और व्यञ्जन अलग चीज है। स्वरोका बटवारा पहले लगाते है। सबसे पहले अ आ आता और वह कण्ठकी प्रधानताको लिए होता है। फिर इ ई आती है, वह तालूकी प्रधानता

से होती । फिर आता है उ ऊ, उसे ओठकी प्रधानताके बिना नही बोल सकते । इसके बाद आती मूर्धा । ऋ ॠ ये मूर्धाकी प्रधानताके बिना नही बोले जा सकते । इसके बाद ऌ ॡ ये दातोकी प्रधानताके बिना नही बोले जा सकते । इस प्रकार स्वरोमे स्थानोका क्रम है । जैसे स्वरोमे स्थानोका क्रम है, उसी तरह जिनवाणीमे भी यत्रादिमे यही क्रम है । स्वर किसे कहते है ? स्व माने स्वय अथवा स्वतत्र होकर और रा माने शोभायमान हो बोले जाए । जो स्वतत्र रूपसे बोले जाए वे स्वर ।

व्यञ्जन वर्णोके क्रमका रहस्य—व्यञ्जन किसे कहते है ? जो स्वय अथवा स्वतत्ररूपसे न बोले जाए । बिना स्वरोकी मददके व्यञ्जन नही बोले जा सकते । हलत भी बिना स्वरोंके सहारेके नही बोले जा सकते, चाहे पहले सहारा लें अथवा बादमे । इसलिए पहले उनका नम्बर रखा जो स्वतत्रतासे बोले जा सकें, और फिर जो लगडे रह गये व्यञ्जन, उनका नम्बर रक्खा । व्यञ्जनोका क्या क्रम है ? व्यञ्जनोका भी वही क्रम है, जो स्वरोका क्रम है । पहले वे अक्षर आते, जो कण्ठकी प्रधानतासे बोले जाते, जैसे क ख ग घ ङ । इनमे क शुद्ध अक्षर है और ख मे कुछ और गर्म हवा मिलती । अग्रजीमे भी के मे एच मिलाकर ख लिखा जाता है, इसी प्रकार हिन्दीमे शुद्धमे थोडा जोर लगाकर ख लिखा जाता या बोला जाता । ग दूसरी चीज है, और घ को भी ग मे थोडा जोर लगाकर बोला जाता । फिर कठके बाद तालू आया, और वे अक्षर आये जो तालूकी प्रधानतासे बोले जाते, जैसे च छ ज झ ञ । इनमे भी वही क्रम मिलता । च शुद्ध अक्षर और उसमे थोडा जोर और लगाकर छ, ज अलग अक्षर और उसमे भी थोडा जोर लगाकर झ, ञ नासिकासे बोलते है, इसलिए उसे अतमे पटक दिया । फिर आते ट ठ ड ढ ण, ये मूधासे बोले जाते । इनमे भी वही क्रम रहता और ण नासिकासे बोला जाता, इसलिए उसे अतमे रख दिया । फिर दन्त आया, त थ द ध और न, ये दाँतकी प्रधानतासे बोले जाते । इनके बोलनेमें भी वही क्रम आता । इनमे भी न नासिकासे बोला जाता, इसलिए अतमे रखा गया । फिर ओठके सम्बधसे बोले जाने वाले अक्षर प फ भ ब भ म ये अक्षर आते । इनमे भी वही क्रम होता, और म नाकसे बोला जाता ।

अन्त.स्थ और ऊष्मवर्णोके क्रमका रहस्य—फिर आते य र ल व । वास्तवमे इनका क्रम है य व र ल, और ये दो स्वरोके मिलनेसे बनते । इ और अ मिलकर य, उ और अ मिलकर व, ऋ और अ मिलकर र, ऌ और अ मिलकर ल । इन्हे भी ऐसा बनाकर फिर अ निकालकर देखो । इनको २५ व्यञ्जनोके बाद इसलिए रखा कि ये दो स्वरोसे मिलकर बने हैं । दो स्वरोके मिलनेके कारण वे स्वरकी जातिके न रहे, और व्यञ्जनो जैसे लगनेपर भी शुद्ध व्यञ्जन न थे । अत स्वरोमें से निकालकर बाहर कर दिये गये और उन्हे व्यञ्जनोमे २५ अक्षरोके बाद स्थान मिला, और बोल निकालनेमे सुविधा य र ल व बोलनेमे लगी, इसलिए

इनका क्रम य व र ल न होकर य, र ल व हो गया। फिर आते श ष स ह। इनको ऊष्मा कहते है। इनको बोलनेमे मुहसे गर्म हवा निकलती है। ऐसे तेज हवा वाले अक्षरोंको अतमे रख दिया है। श तालूसे बोला जाता है, इसलिए यह तालवी श कहलाता है, ष मूर्धामे बोला जाता है, इसलिए इसको मूर्धनी कहते है, स दातोकी प्रधानतामे बोला जाता है,, इसलिए इसको दती स कहते हे।

संयुक्त पिण्ड व्यञ्जन और सयुक्त स्वर—फिर अतमे जो अक्षर आते, वे है क्ष त्र ज्ञ। इनको अतमे यो रखा गया, कहते कि ये तो कोई शब्द ही नही है। क और ष के सम्बधसे क्ष बनता है, त और र के सम्बधसे त्र बनता है, ज और ञ के सम्बधसे ज्ञ बनता है। तो ये तो दो व्यञ्जनोके सम्बधसे बनते हैं, इसलिए कहते कि ये तो कोई शब्द ही नही है। इसलिए इनको अतमे रखा गया है। इसी तरह स्वरोमे भी ए ऐ ओ औ अ और अ आते है, परंतु कहते कि ये भी शुद्ध स्वर नही है, इसीलिए इनको भी स्वरोमे अतमे पटक दिया है। अ और इ के सम्बधसे ए, अ और ए के सम्बधसे ऐ, अ और उ के सम्बधसे ओ, अ और ओ के सम्बध से औ बनता है, फिर कहते कि अ और अ तो कोई स्वर ही नही है। यदि इन्हे ही स्वर माने तो और भी कई स्वर और बन सकते है। स्वरोके उच्चारणमे नाकका जोर पडा व कठ का जोर पडा, इसलिए ये अक्षर और बन गये। मुख्य स्वर तो अ इ उ ऋ और लृ ही हे। इस प्रकार ये क्रम हिन्दी भाषाकी उत्पत्तिका है। इस तरह ये जो शब्द है, ये पुद्गल शब्द वर्गणाकी पर्याय है, पुद्गलके रस, रूप, गुण इसके गुण नही है।

इंद्रियोमे विषयोके युगपत् ग्रहणकी अयोग्यता—२३ वर्गणाओमे शब्द वर्गणा एक अलग वर्गणा है। उन वर्गणाओको यह शब्दवर्गणा बनाती है, परन्तु यह स्वय भी एक पर्याय है, इसलिए इसको सबसे अन्तमे रख दिया। इस प्रकार स्पर्श, रस, गध और वर्ण ये तो प्रधान हैं और शब्द अलग है। तो यह जो इन्द्रियज्ञान है, उसके द्वारा उसके ये सारे विषय एक साथ ग्रहणमे नही आ सकते, क्योकि उसमे इस जातिकी क्षयोपशमकी अवस्था नही है। ऐसा वह इन्द्रियज्ञान जो स्वय अपने विषयोको ही एक साथ न जान पाये वह हेय ही है। पहले पूर्णतया इन्द्रियज्ञानको हेय बता दिया और उसकी हद कर दी। फिर भी आचार्य महाराज कहते कि इसमे एक और दोष है, वह यह कि वह इन्द्रिय ज्ञान एक साथ अपने विषयोको भी तो नही ग्रहण कर सकता। जैसे कहते कि कोई आदमी अपने घरमे भी तो आराममे, मित्रतासे नही रह सकती, इसी तरह इन्द्रियज्ञान अपने विषयमे भी तो एक साथ प्रवृत्ति नही कर सकता और की बात तो छोड दो। ५ इन्द्रियोंके जो विषय है, उनको यह आत्मा एक साथ नही करती, क्योकि ऐसे क्षयोपशमका उपयोग युगपत् नही है, उसके अन्दरकी शक्ति क्रमसे चलती है। इसलिए इन्द्रियज्ञान अपने सारे विषयोको क्रमसे जान

पाता है ।

दृष्टान्तपूर्वक इन्द्रियोकी क्रमप्रवृत्तिका समर्थन—जैसे लगता ऐसा है कि कौवेके दोनो आँखोमे १ गटा याने एक तारा है । जल्दी-जल्दी आँखे चलनेकी वजहसे ऐसा लगता है कि दोनो आँखोमे गटा तारे है । इसी प्रकार इन्द्रियोके जाननेकी शक्ति अलग अलग है, इन्द्रिय-ज्ञान क्रमसे होता, परन्तु जल्दी-जल्दी काम होनेसे ऐसा लगता कि उसके सब काम एक साथ हो रहे है । परन्तु इन्द्रियज्ञानमे अपने विषयोके पाचो इन्द्रियोके काम एक साथ नही हो रहे । जैसे सौ पानोको एक पिनसे छेदा जाता और एक छेद होनेके बाद ऐसा कहते कि एक साथ सारे पानोमे छेद कर दिया, परन्तु वहाँ तो वह एक पानेमे छेद होनेके बाद दूसरे पानमे छेद होनेमे भी असख्यात समय लग गया । उन असख्यात समयोका अन्तर्मुहूर्त होता । तो इन्द्रिय ज्ञानद्वारा जो उसके विपयक जानना हुआ वह न जाने कितने अन्तर्मुहूर्तमे हुआ ? इसलिए इन्द्रियज्ञानमे यह शक्ति नही है कि वह एक साथ सब ज्ञान कर सके । कौवेके तारेकी तरह तो उपयोग और आँखकी तरह ये इन्द्रिया । द्वार तो सब मौजूद है, परतु उपयोगरूपी तारा तो क्रम-क्रमसे ही फिरा करता । वहा एक साथ सारी इन्द्रियोके ज्ञानका बोध नही होता । जैसे कि किसी पशुसे विरोध था, तो वह उसे मारकर बेहोश कर देता और फिर हाथसे हिला हिलाकर देखता कि वह मरा कि नही, यदि उसमे थोडासा भी प्रतीत हो कि जीव है, तो वह उसके एक मामूलीसा घाव और कर देता, जिससे कि वह मर जाये । यहाँ दृष्टातकी क्रूरतापर न जाकर शैली देखो । उसी तरह आचार्य महाराजने बडे-बडे घाव दे देकर यह बताया कि इन्द्रियज्ञान कितना हेय है, इसके बाद फिर हाथ लगाकर देखते कि अभी भी यह पूर्ण हेय सिद्ध हुआ कि नही, और अब फिर देखते तो पता लगता कि एक और दोष लगा कि यह एक साथ अपने विषयोमे भी प्रवृत्त नही होता । तो यह भी एक घाव और लगा दिया कि यह तो हेय ही है ।

ज्ञानानुराग—यह प्रकरण सुखका चल रहा है और ज्ञानी अमृतचन्दसूरि महाराजको ज्ञानका इतना ध्यान है कि सुखका वर्णन करते हुए ज्ञानको भी बीचमे ले आते । सुखका वर्णन तो कर रहे है कि सर्व प्रकारसे उपादेय जो अनन्त सुख है, उसका उपादानरूप जो ज्ञान है वह केवलज्ञान है, जो एक साथ सारे पदार्थोको जानता है । वह केवलज्ञान ही अनन्तसुख को भोगता है । इन्द्रियज्ञान एक साथ बहुत चीजोको नही जानता, इसलिए वह हमारे सुखका क्या कारण होगा, वह अनन्त सुखका क्या कारण होगा ? इसका कारण तो अतीन्द्रियज्ञान ही है जो एक साथ सबको जानता है । अतीन्द्रिय ज्ञानकी कला सब जीवोके अन्दर मौजूद है, सब अपने शुद्ध स्वभावको लिये हुए है, परन्तु रागद्वेष मोहके कारण जो विपय कपायोकी रुचि है उसके कारण हमारा ज्ञान ठगाया हुआ है ।

सुधारका अवसर—इस प्रकरणसे यह शिक्षा लेनी चाहिए कि रात दिन जो हम कल्पना कर रहे है, जिसमे हम एकदम पडे हुए है या जिस प्रवाहमे हम पडे हुए है उसमे न पडें और थोडे रुकें और सोचे कि ये तो हमारे हितकी चीज नही है, तो ही हमारा कल्याण होगा । जब वस्तुकी स्वतन्त्रताकी श्रद्धा आ गई तो सबको निश्चय हो ही जाना चाहिए कि एक दिन सबको इन विषयोको छोडना ही पडेगा । यदि यह श्रद्धा हो जाय, तो ऐसे जीवोको विषयोमे श्रद्धा ही ही सकती है । जैसे किसीको राजा बनाया जाय और कहा जाय कि ६ महीने बाद तुमसे यह राज्य छीन लिया जायगा और तुम्हे वनमे ढकेल दिया जायगा, जहां तुम सड-सडकर मरोगे, तो उस ६ महीनेके राजाको अपने उस राज्यमे कैसी श्रद्धा होगी ? वह तो यही सोचेगा कि मुझे तो ६ महीने बाद राजगद्दीसे उतारा जायगा व वनमे चला जाना पडेगा और वहा सड-सडकर मरना पडेगा । तो ऐसे आदमीको तो चाहिए कि वह अपने वन को ही इस ६ महीनेमे सुधार ले, जहा कि उसको अतमे जाकर रहना है । इसी तरह जिस सम्यक्दृष्टिकी यह श्रद्धा हो गई कि ये पर्याए तो छूट ही जाएगी तो उसकी वर्तमानके विषयो मे क्या श्रद्धा या क्या रुचि रहेगी ? उसे तो उन्हे छोडना ही होगा तो जिसे इस तरह छोडकर एक दिन जाना है तो उस जानेके स्थानको अभीसे सुधारो तो सुखकी प्राप्ति होगी । यदि यहासे अलग होकर ही जाना है तो हमे चाहिए कि हम हमारी परिस्थितिको मजबूत बना ले ताकि सड-सडकर न मरना पडे । उस समय हमे कोई मदद नही करेगा । हमे अकेला ही जाना पडेगा । जो कुछ हम अपनी परिणति यहा सुधार लेंगे, उसीसे हमारा यह लोक और परलोक सुधरेगा । इसलिए हमे सबसे बुद्धि हटाकर अपने निज आत्मस्वरूपपर अपने ज्ञान स्वभावकी दृष्टि स्थिर करनी चाहिए । अतीन्द्रिय सुखका साधन अतीन्द्रिय ज्ञान है और उसी अतीन्द्रिय ज्ञानमे हमे अपनी बुद्धि लगानी चाहिए । इन्द्रियज्ञानको हेय समझना चाहिए ।

आत्माकी ज्ञानस्वभावता—आत्मा ज्ञानस्वभावी है, ज्ञानपुञ्जको ही आत्मा कहते है । इस आत्मामे जाननेका स्वभावसे सामर्थ्य है और जो जाननेका स्वभाव रखता है वह स्वत जानता रहता है । इस जाननेमे यह भी अटक नही है कि यह वर्तमानको जाने, पासकी चीज को जाने, किन्तु जो भी सत् हो उस सबको जाननेका स्वभाव ज्ञानमे होता है । इन इन्द्रियोसे ऐसा मालूम होता है कि हम सामनेकी बातोको ही जान सकते है, आँखके सामने हो, उसे हम जानेंगे, पीछेकी हम कैसे जानेंगे, लेकिन जरा मनके द्वारा जो जानना होता है, उसकी भी तो बात बताओ । सामनेकी बातको जानते है, पीछेकी जानते है, भूतकालकी जानते हैं और भविष्यकी भी जानते है, चाहे वह सच निकले या न निकले, पर भविष्यकी जाननेकी अब भी प्रकृति तो है । चाहे कल्पना कर लो, कल्पना भी ज्ञानका ही रूप है ।

विकारोके कारण ज्ञानकलाके विकासमे रुकावट—निर्मल ज्ञप्ति कहनेका प्रयोजन

यह है कि ज्ञानमे समस्त सतोको जाननेका स्वभाव है, किन्तु कुछ ऐसी मलीमसता है इस आत्मापर कि इसके ज्ञानका यह स्वाभाविक विलास रुक गया है। जैसे किसी बहुत ऊँचे कलाकारको खेल करनेसे कोई रोक दे, तो बडी सुन्दर कलायें वह कर रहा था, कर सकता था, लेकिन रोकेसे रुका हुआ है, ऐसे ही समझिये कि आत्मामे जो विकार भाव उत्पन्न हुए, उन विकार भावोने आत्माके ज्ञानको स्वाभाविक कलाको तिरोभूत कर दिया है, और ऐसी स्थिति बन गयी है कि यह इन्द्रियोके निमित्तसे जान सकता है, सो सीमित जानेगा, सामनेकी जानेगा और क्रमसे जानेगा, पाँचो इन्द्रियोसे एक साथ नही जान सकता। लगता ही है ऐसा कि हम देख भी रहे, सुन भी रहे, बोल भी रहे, सूंघ भी रहे और छू भी रहे, सभी काम एक साथ कर रहे है, लेकिन एक साथ नही हो रहे है, इतनी जल्दी-जल्दी इतने क्रम चल रहे है कि एक साथ लगते है।

परोक्षज्ञानमे युगपत् सबको जाननेकी अक्षमता—परोक्षज्ञानमे इतना जल्दी-जल्दी परिवर्तन हो सकता है कि इसका क्रम समझमे ही नही आयगा। जिस समय कभी अनेक तीर्थङ्करोका एक साथ जन्म हो जाय, कोई भरतक्षेत्रमे पैदा हो, कोई ऐरावत क्षेत्रमे, कोई विदेह क्षेत्रमे, कोई धातकी द्वीपके, पुष्कर द्वीपके भरत ऐरावत विदेह क्षेत्रोमे पैदा हो जाय तो जन्म कल्याणकका प्रबध करने वाला मुख्य एक इन्द्र है सौधर्मइन्द्र। तो क्या उसे कोई ऐसा प्रोग्राम रचना चाहिए कि पहिले इस तीर्थङ्करका जन्म कल्याणक मनायें, पीछे दूसरे तीर्थंकरका, उसके बाद अन्य तीर्थङ्करका। एक साथ जन्मे है तीर्थङ्कर तो एक साथ ही समारोह होना चाहिए। उसमे कोई क्रम तो नही लगाना चाहिए। सौधर्मइन्द्रका जो मूल देह है, वह तो स्वर्गसे कभी आता ही नही है। जब आता है तब विक्रिया आती है। ऐसी परिस्थितिमे उसे उतने देह बनाने होगे विक्रियामे जितने तीर्थङ्कर एक साथ जन्मे है, और उन वैक्रियक देहोसे सब काम भी एक साथ होते है, देह तो रच डाले अनेक पर मन तो एक है, मन तो अनेक न हो जायेंगे। तो उन समस्त देहोमे मन द्वारा क्रिया चलती है, और इतनी शीघ्रतासे चलती है कि क्रमका अदाज नही रह सकता। अभी बिजलीका पखा बहुत तेज चला दो तो उसमे तीन पखुडी है, पर कुछ पता ही न पडेगा। कोई बहुत बडी बेसनकी तेलमे पपरिया बना दे कोई या खूब कडकडा पापड हो और मुहसे खाये तो वहाँ पाँचो बातें हो रही है। कडा लग रहा तो स्पर्श, खानेमे आ रहा है तो रस भी है, तेलकी बडी तेज गध भी आ रही है, आँखो देख भी रहे है, चुर्र-चुर्रकी आवाज भी सुननेमे आ रही है, इससे और जल्दीका क्या दृष्टान्त लें। लेकिन वहाँ भी ५ प्रकारकी इन्द्रियोका ज्ञान क्रमसे चल रहा है। तो इन्द्रियोंमे पदार्थोंका एक साथ ग्रहण करनेका सामर्थ्य नही है, क्योकि यह परोक्ष हैं।

इन्द्रियज्ञानमे प्रत्यक्षताके प्रतिषेधका निश्चय—परपदार्थोंका आश्रय लेकर जो ज्ञान

होता है, वह परोक्षज्ञान है। तो यह इन्द्रियज्ञान प्रत्यक्ष नही होता, और जो प्रत्यक्ष ज्ञान नही है, उसके साथ विशुद्ध सुख भी नही होता। यह प्रवचनसार ग्रथ है, इसकी यह ५७वी गाथा आ रही है। इसमे कुन्दकुन्दाचार्य देव यह बता रहे है कि इन्द्रियज्ञान प्रत्यक्ष नही होता, ऐसा निश्चय करते। अमृतचदजी सूरिकी प्रतिभा इतनी विशाल थी कि उनके एक-एक शब्दमे रहस्य छिपा है। गाथा बोलनेसे पहले भूमिकामे जो वे क्रिया रखते है, उसमे अनेक रहस्य होते है। अर्थ तो सामान्यतया एक है, "कहते है" अब हम यह विषय कहते है, पर कहते है को निश्चय करते हैं, उपलक्षित करते है, पास फेंकते है, उपसहार करते हैं, अभिनदन करते हैं, निन्दन करते हैं, कितने ही शब्द लगाते जाइये, भाव है—"कहते है।" तो इस गाथाकी भूमिकामे उत्थानिकामे यह कहा है कि इन्द्रियज्ञान प्रत्यक्ष नही होता, ऐसा निश्चय करते है। निश्चय शब्दका अर्थ शाब्दिक दृष्टिसे देखा जाय तो पूरे तौरसे सग्रह करना अर्थ होता है। इसमे चिनु चयने धातु है, जिसका अर्थ है सग्रह, सचय, निश्चय। तो इन्द्रियज ज्ञान प्रत्यक्ष नही है, ऐसे सब उठा-उठाकर जता-जताकर उसको रखते हैं, देखो यह इद्रियज्ञान कहाँ प्रत्यक्ष, यह इन्द्रियज्ञान कहाँ प्रत्यक्ष ? यो इन्द्रियज्ञानका ढेर कर रहे है, और उसमे निर्णय कर रहे है कि लो कहाँ है प्रत्यक्ष। यो अब इन्द्रियज्ञानकी प्रत्यक्षताके प्रतिषेधमे सूत्रका अवतार होता है।

परदव्व ते अक्खा णेव सहावोत्ति अप्पणो भणिया।
उवलद्ध तेहि कह पच्चक्ख अप्पणो होदि ॥५७॥

परापरापेक्ष ज्ञानमे प्रत्यक्षताकी असंभवता—इन्द्रियाँ परद्रव्य है, आत्मतत्त्व तो नही है, आत्माका स्वभाव नही है। उन इन्द्रियोके द्वारा जो ज्ञान किया जाय, वह प्रत्यक्ष कैसे हो सकता है ? जो ज्ञान केवल आत्माको ही प्रतिनियत करके उत्पन्न हो, वह हो सकता है प्रत्यक्ष। केवल आत्मासे आत्माके ही आलम्बनसे जो ज्ञान उत्पन्न होता है, उसे तो प्रत्यक्ष कहते है, और किसी परपदार्थका आश्रय करके जो ज्ञान उत्पन्न होता है, उसे परोक्ष कहते है। अगली गाथामे प्रत्यक्ष और परोक्षका लक्षण सविवरण कहा जायगा। तो जो आत्माका ही सहारा लेकर ज्ञान हो, वह प्रत्यक्ष है, लेकिन इद्रियोके निमित्तसे होने वाला ज्ञान तो इद्रिय से उत्पन्न हुआ ना, सो वह ज्ञान परोक्ष है। वे इन्द्रियां पर है, ये आत्मासे भिन्न अस्तित्व रखती हैं, अतएव परद्रव्य कहलाती है। जो इन्द्रियाँ आत्माके स्वभावको रच भी छू नही सकती, ऐसी इन्द्रियोके निमित्तसे उत्पन्न हुआ ज्ञान आत्माका प्रत्यक्ष हो नही सकता।

परपरिहारमे आत्मोन्मुखतामे विकल्पविपदाओकी समाप्ति—जैसे कोई पक्षी कुछ खानेकी चीज लिए हो और उसपर बीसो पक्षी उसे छुडानेके लिए झपटने लगें तो वह विह्वल हो जाता है। तो उसे केवल इतना ही भर काम करना है कि उस चीजको चोचसे छोड दे।

लो पूरा विश्राम मिल गया। उस आक्रमणकी जो विपदा थी वह शान्त हो गयी। ऐसे ही हमपर बहुतसे विकल्पोका आक्रमण हो रहा है। बडे उलझनमे पड गए है तो हम जिन पर-तत्त्वोका ग्रहण किए है उन्हे छोड दें और अकेले जैसे है ज्ञानस्वरूप वैसे ही रह लें तो सारी विपदाए एक साथ खत्म हो जाती है। उस समय जो ज्ञान हो रहा है वह प्रत्यक्ष है।

प्रत्यक्ष शब्दका अनेक पदोमें प्रयोग—प्रत्यक्ष शब्दका भी अनेक प्रकारके ज्ञानोमे व्यवहार होता है। प्रथम तो यही लो जो आँखो देखा उसे लोग प्रत्यक्ष कहते हैं। वाह मैने तो प्रत्यक्ष देखा, मैने तो प्रत्यक्ष सुना तो इसमे लोग प्रत्यक्षका व्यपदेश कहते है, यह है व्यावहारिक प्रत्यक्ष, कहना मात्र प्रत्यक्ष, रूढि प्रत्यक्ष। वास्तवमे वह परोक्ष है, फिर उससे ऊंचे चलो तो मानसिक प्रत्यक्ष। मनके द्वारा जो समझा जाता वह तो सब घरेलू मामला जैसा लगता है। हमने बिल्कुल स्पष्ट जाना, वह भी मानसिक ज्ञान प्रत्यक्ष कहलाता है। इससे अब ऊँचे चलो तो जहा आत्माका अनुभव होता है स्वानुभवदशा, वहा न इन्द्रियका काम चल रहा है और न मनका काम चल रहा है। इन्द्रियका काम तो है ही नही। मनका काम अति निकटमे था लेकिन मनका तो काम विकल्प उत्पन्न करना है। यह तो निर्विकल्प अनुभूति है, यह स्वानुभव भी प्रत्यक्ष कहलाता है। फिर अवधिज्ञान, मन पर्यय ज्ञान विकल प्रत्यक्ष कहलाता है और केवलज्ञान सकलप्रत्यक्ष कहलाता है। तो प्रत्यक्ष शब्दसे अनेक जगह कही रूढिसे, कही एक देश सम्बन्धसे, कही स्पष्टरूपसे प्रत्यक्षका प्रयोग किया जाता है जो भिन्न है, परद्रव्य है, आत्माके स्वभावको रंच भी छू नही सकते, उन परद्रव्योको ऐसे पर-इन्द्रियोंके द्वारा पा पा करके निकट लेकर उत्पन्न हुआ जो ज्ञान है वह प्रत्यक्ष ज्ञान नही है।

परोक्षज्ञानमे विडम्बनायें—इस प्रकरणमे यह वर्णन चल रहा है कि सुखका सम्बन्ध प्रत्यक्ष ज्ञानसे है। पारमार्थिक सुख प्रत्यक्ष ज्ञानके साथ होता है, परोक्षज्ञानके साथ नही होता है। देखो सारी हँसी जैसी बात लग रही है लोकमे। सभी जीव कोई किसी कल्पनामे है, कोई किसी कल्पनामे है, कोई किसी तरहके दिमागका है और आधार किसीका भी सही नही है। तो सब मायारूप है, काल्पनिक है, पर यहाँ इन सबपर हसे कौन ? सभी एकमे ढग की कल्पनाए करते, निराधार सोचते, कुछ अपना है नही और कल्पनामे अपना मानते है। कषायोका रग चढा है, मेरा तेरा माननेका गहरा रग छाया हुआ है। ये सब बाते उन्मत्त जैसी चेष्टाएँ है कि नही ? पर जहाँ सभी उन्मत्त हो वहाँ कौन किसे कहे ? जहाँ सबके ही मोहका और कल्पनाओका रग बन रहा है, वहाँ उनकी वृत्तिपर कौन हसे ? और जो जानते है वे हँसने आते नही। उनके शुद्ध ज्ञान रहता है। तो आनेको अपनी करतूतपर कुछ खेद होना चाहिए, कुछ अचरज भी होना चाहिए और कुछ उपेक्षा भी होनी चाहिए। यह हमारा परोक्षज्ञान अनेक विडम्बनाओका कारण बन जाता है।

परोक्ष और प्रत्यक्षके लक्षणोका निर्देशन—अब परोक्ष और प्रत्यक्षका लक्षण उपलक्षित करते है अर्थात् कहते है। यहाँ कहने अर्थमे उपलक्षित शव्द आया है, जिसका भाव यह है कि लक्ष्य करनेके मायने तो देखना लोग कहते है ना, तुम हमारी तरफ बडी देरमे लख रहे हो, तो लखना लक्ष्यसे ही तो बना, और उपके मायने समीप है। चूंकि इस ज्ञान प्रकरण को कहने वाले और सुनने वाले भी सम्यग्दृष्टि लोग है तो उनको प्रत्यक्ष ज्ञानका भी परिचय है और परोक्ष ज्ञानकी तरफ लगे ही है। तो यह अपने आपके अदर परोक्ष और प्रत्यक्षका लगाव कर रहे है। इस आशयमे कुन्दकुन्दाचार्यदेव गाथाकी उत्थानिकामे कहते हैं कि अब परोक्ष और प्रत्यक्षके लक्षणको उपलक्षित करते है।

ज परदो विण्णाण त तु परोक्खत्ति भणिदमत्थेसु।
जदि केवलेण णाद हवदि हि जीवेण पच्चक्ख ॥५८॥

परोक्षज्ञान—जो विज्ञान परके निमित्तको पाकर उत्पन्न हुआ हो, वह परोक्ष ही कहलाता है। देखिये यह परोक्ष ज्ञान मन और इन्द्रियके निमित्तसे उत्पन्न होता है। तो मन क्या चीज है? वह भी शरीरका अग है, पौद्गलिक रचना है, पुद्गल पदार्थ है, और इन्द्रिय क्या है? ये परद्रव्य है। इनका निमित्त पाकर जो ज्ञान बनता है, वह परोक्ष है, यह हमारा परोक्ष ज्ञान परके उपदेशका निमित्त पाकर होता है। तो इसमे उपदेशकी भी आधीनता है। यह उपलव्धिके सस्कारसे उत्पन्न हुई है। तो वह उपलव्धिका जो सस्कार है, वह भी परभाव है। प्रकाश आदिकके निमित्तसे उत्पन्न होता है। तो प्रकाश पुद्गल द्रव्यकी पर्याय है, इस निमित्तसे अपने विपयको प्राप्त हुए अर्थका जो परिच्छेदन है, ज्ञान है, वह परसे उत्पन्न होता हुआ परोक्ष है, ऐसा लक्षित किया जाता है। यह है परोक्ष ज्ञानकी बात।

प्रत्यक्ष ज्ञान—प्रत्यक्ष ज्ञानमे देखिए प्रत्यक्ष ज्ञान सभी प्रकारके परद्रव्योकी अपेक्षा न रखकर उत्पन्न होता है, न यहाँ मनकी अपेक्षा रखना न इन्द्रियकी, न पर उपदेशकी, न उपलव्धिके सस्कारकी, न अलोक आदिककी। किसी भी परद्रव्यकी अपेक्षा न रखकर केवल आत्माके स्वभावको ही कारक रूपसे ग्रहण करके अर्थात् यह करने वाला है, इसीके लिये होना है। सब कुछ आत्मस्वभावके कारकरूपसे होने वाला जो द्रव्य पर्यायके समूहका परिज्ञान है, वह सब केवल आत्मासे उत्पन्न हुआ, अतएव प्रत्यक्ष कहलाता है। देखो अब अपने आपके स्वभावका आलम्बन करके अत्यत समीप होकर जो ज्ञान उत्पन्न होता है, वह ज्ञान सहज सुखका साधनभूत है। यही महाप्रत्यक्ष ज्ञान कल्याणार्थीको इष्ट है।

विश्वास्यताकी परख—इस प्रकरणसे हम आपको यह शिक्षा ग्रहण करना है कि हम परपदार्थोंमे तो विश्वास करें ही नही कि ये मेरे हितरूप है, ये मुझे सुख देंगे और इस देहमे भी विश्वास करना योग्य नही है कि यह देह भी मेरे लिए सुखकारी है और

हितकारी है। यह तो विश्वासके योग्य है ही नही, किन्तु जो हमारा इन्द्रियज्ञान है, जो चल रहा है बराबर, यह ज्ञान भी विश्वासके योग्य नही है कि यह हमारे हितरूप है। लेकिन किसी हद तक, किसी रूपमे हम इस इन्द्रियज्ञानको ही इस तरहसे प्रवर्तायें कि हम आत्म-हितमे बढें और इन्द्रियज्ञानोसे छूटकर आत्मीय अतीन्द्रिय ज्ञानको प्राप्त कर लें। आनन्दका सम्बन्ध प्रत्यक्ष ज्ञानसे है, परोक्ष ज्ञानसे आनन्दका सम्बन्ध नही है, बल्कि परोक्ष ज्ञान हमारे आनन्दमे बाधक बनता है, जैसे कोई कोई लुटेरा कुछ थोडीसी सम्पदामे बहकाकर बडी निधिको लूट ले। ऐसे हो यह परोक्ष ज्ञान इन विषय सुखोमे बहकाकर हमारे अनन्त आनन्द की निधिको लूट रहे है, मानो इस प्रकारसे अहितकारी है। हमे अपने योगपूर्वक भावपूर्वक इस आत्मप्रत्यक्षका आदर करना चाहिए और इस ही स्वभावमे मग्न होनेका यत्न करना चाहिये।

जाद सय समत्त णाणमणतत्थवित्थिद विमलं।
रहिड तु ओग्गहादिहि मुहति एयतिय भणिद ॥५६॥

परोक्षज्ञानमें सुखका प्रतिषेध—पूर्व गाथामे परोक्ष और प्रत्यक्षका लक्षण कहा है। परोक्ष तो पराधीन ज्ञान है और प्रत्यक्ष स्वाधीन ज्ञान है। आनदका सम्बध प्रत्यक्ष ज्ञानसे है, परोक्षज्ञानसे नही है। जिस ज्ञानमे परविषयकी, परइन्द्रियकी, परप्रकाश आदिककी, पर उप-देश आदिककी अपेक्षा रहती है, उस ज्ञानमे तो व्यग्रता रहा करती है। न इष्ट साधन मिले तो व्यग्रता, इष्ट साधन जुटानेकी व्यग्रता, नाना तरहकी व्यग्रता वहाँ आनद नही है,

प्रत्यक्षज्ञानमे आनन्दका सद्भाव—जो ज्ञान सर्वविकल्पोको त्यागकर केवल शुद्ध सहज निज भावका आश्रय करता है, उसको कोई पराधीनता नही और ऐसा ज्ञान अपने आपके ज्ञानस्वभावसे मिलकर स्वभावत विशुद्ध परम आनन्दका अनुभव करता है, यह ही प्रत्यक्ष ज्ञान पारमार्थिक सुखरूपसे है, ऐसा इस गाथामे कहा जा रहा है। जो ज्ञान स्वय उत्पन्न हुआ है, जो ज्ञान चारो ओरसे समस्त पदार्थोको जानता है, जो ज्ञान परिपूर्ण है, अनत अर्थमे विस्तृत फैला हुआ है, जो अत्यत निर्मल है, जिसमे अवग्रह, ईहा अवाय आदिक अपूर्ण-ताएँ और क्रमादिक दोष नही है वह प्रत्यक्ष ज्ञान ही स्वय कह लीजिए, आनंदस्वरूप है, ऐसा दृढ निश्चय किया जा रहा है, आनद तो अनाकुलतास्वरूप है, जहाँ आकुलता नही है, वही वास्तवमे सुख है।

परोक्षज्ञानमे परतन्त्रता—अब देखिये जो ज्ञान परसे उत्पन्न हुआ है, परइन्द्रियका निमित्त पाकर होता है, वह तो पराधीन रह गया, और पराधीनतामे आनद और शाति नही होती, लेकिन मोही जीव उन पराधीनताओमे ही स्वाधीनताकी कल्पना करते है। जैसे खुदका अच्छा घर है, आजीविका भी अच्छी चलती है कुटुम्बके लोग भी बडे समझदार है, सब

प्रकारके सांसारिक आराम है, ऐसी स्थितिमे यह मनुष्य कहता है कि हम तो आजाद है, आजादीसे रोटी खाते है, चैनमे रहते है, मगर बतावो तो आजादी है कहाँ ? भले ही खुदका घर है, आजीविका बढिया है, परिजन भी समझदार है, सब कुछ बात भली है, लेकिन आजाद तो मत कहो कि हम स्वतंत्र है, बेफिक्र है, हमे तो आजादी मिल गई है, जिस ज्ञानमे इन्द्रिय की आधीनता है, जो ज्ञान परपदार्थोंको विषय करके कल्पनाए किया करता है, उस ज्ञानको आजादी है कहाँ ? ऐसी आजादी मानने वाले लोग भी पद-पदपर अपनेको परतंत्र अनुभव किया करते है, क्लेशानुभव किया करते है ।

असज्ज्ञानमें क्लेशकी प्राकृतिकता—जो अपनेको भली स्थितिमे मान ले, और स्थिति भली हो नही तो उसे भी क्लेश होता है। कोई विपदामे है और मान ले कि हम विपदामे पडे है, तो विपदामे रहकर भी वह उतना क्लेश न मानेगा, और अपनेको मौज वाला मान रहा है और उसे विपदा आ जाय तो उसे जो क्लेश होगा, विपदा वालेको न होगा । किसी गरीबको उतना क्लेश नही है, जितना धनिकको कुछ थोडीसी हानि होनेपर हुआ करता है । मुकाबला करे तो अब भी गरीबसे हजारगुना धन है, पर धनसे तो सुख दुःख नही है, सुख दुःख तो कल्पनाओंपर चलता है । जगतके समस्त पदार्थ विनाशीक हैं और कोई मान ले कि ये तो मेरे है, सदा रहेगे तो उसे बडा क्लेश उठाना पडता है, और रह रहा है घरमे और अपनी सच्ची श्रद्धा बनाये है, घर तो कभी छूटेगा, ये समागम तो कभी अचानक बिछुडेंगे, तो उसे कष्टका सामना कम करना पडेगा । तब तो बस यही बात आयगी कि लो देख लो ना, जो हम जानते थे, सो ही हो गया । वह अनहोनी तो न बतावेगा । जो पुरुष पराधीन दशामे अपनेको आजाद समझकर मौजमे रहते है, वे पुरुष अवश्य दुःखी होंगे ।

परोक्षज्ञानके प्रति ज्ञानीको खेद—ज्ञानी जन परोक्षज्ञानमे खेद किया करते है कि यह पराधीन ज्ञान है, इसमे कहाँ मौज है ? जिसके बडा विवेक भी जगा, ज्ञान भी जगा, फिर भी यह आत्मप्रत्यक्षज्ञान नही हो पाया, यह स्वानुभव जो निरर्गल ज्ञानविकासके लिए उद्यत रहा करता है, ऐसी स्थिति नही बन पाई; इसका खेद होता है । ये सब ज्ञान हो रहे हैं, ठीक है, पर इन इन्द्रियजन्य और मानसिक ज्ञानोसे अपने आपको परतंत्र समझकर इसमे भी जिसका मन नही लगता, कहाँ तो ऐसी ज्ञानियोकी बुद्धि और कहा मोहियोकी कुमति कि जो घर वैभव आदिक जड पदार्थोंके समागमको पाकर ऐसा मौज मान रहे हैं कि हम तो आजाद है, सुखी है, भरपूर है, सब कुछ ठीक है । अरे कुछ भी ठीक नही है । ठीक तो आत्माकी निर्मल दृष्टिमे होगा । तो जो ज्ञान परसे उत्पन्न हुआ है, वह तो पराधीन है, ऐसे ज्ञानमे तो आकुलता ही है, अथवा यो कह लीजिए कि ऐसा ज्ञान तो आकुलित ही होता है । हम दुःखी हो रहे है इसका दूसरा भाव यह है कि ज्ञान दुःखी हो रहा है ।

ज्ञानके सम्बंधमें नयविभाग—एक दृष्टिमे देखो तो ज्ञानका स्वरूप दु खरूप परिरगमना है ही नही, इसलिए यह कह दो ज्ञान न कभी सुखी होता और न कभी दु खी होता। मेरा ज्ञान तो जाननमात्र है। जितनी चाहे बाते समझते जाइये, नयविभाग है। जो ज्ञान परसे उत्पन्न होता है वह तो अत्यन्त आकुल है। ये परोक्षज्ञान हमारे सब परसे ही उत्पन्न होते रहते है। तो यह यद्यपि ज्ञानपरिरगमन आत्मासे ही जगा है परतु निमित्त पाये बिना ऐसा ज्ञानपरिरगमन नही होता है इसलिए परसे उत्पन्न हुआ कहते है और जो श्रुतज्ञान आत्माका हित करनेमे कारण है वह भी यद्यपि परसे उत्पन्न हुआ है, लेकिन परसे उत्पन्न नही होता ऐसे ज्ञानकी प्राप्तिके लिए जो ज्ञान जगा है वह परसे उत्पन्न होकर भी कुछ शान्तिके लिए बनता है। जिस ज्ञानमे पराधीनता भी है, दृष्टि भी मलिन है उस ज्ञानमे तो आकुलता ही आकुलता है। जिस ज्ञानमे पराधीनता तो जरूर है, पर दृष्टि निर्मल हो गयी है तो उस ज्ञान मे आकुलता कम हो जाती है।

असमंत व कतिपयार्थ प्रवृत्त परोक्षज्ञानमें आकुलता—जो ज्ञान समस्त नही है, परिपूर्ण नही है, अधूरा है, उसके अन्य ज्ञानद्वार रुक आवृत हो गये है, वहाँ क्षयोपशम विशेष नही है, इससे वह परोक्षज्ञान आकुलित रहता है। जो ज्ञान कुछ ही अर्थमे प्रवृत्त हुआ है उस ज्ञानमे अन्य अर्थोंके जाननेकी जो इच्छा है, भोगनेकी जो भूख है उसके कारण वह ज्ञान आकुलित रहता है। अभी कोई रोकडबहीका ही हिसाब कर रहा हो, एक आनेका फर्क रह गया, हिसाब नही मिलता तो कहो उसके पीछे ४ आनेकी बिजली फूँक दे। पर उस एक आनेको जाननेकी एक उत्सुकता रहेगी, नही तो कोई बडी बात है, एक आनेकी जगह पर एक रुपया डाल दें, अगर कम होता है तो। पदार्थोंके जाननेकी जो इच्छा है और उनके अनुभवने की जो बुभुत्सा है उससे यह ज्ञान आकुलित रहता है। घरका बडा आदमी बाजारसे थैला हाथमे लिए हुए घर आये, तो लाये चाहे कोयला ही हो, पर घरके जो बच्चे होगे वे थैलेमे टटोलकर देखे बिना न मानेंगे। चाहे उनके कुछ कामकी भी चीज न हो और रोज-रोज भी उनके कामकी चीज नही मिलती, मगर देखे बिना चैन नही है। हम आप कही बैठे हो, सामनेसे जो भी लोग निकलते है उनसे प्रयोजन कुछ नही है मगर झांके बिना, जाने बिना माना नही जाता। हवाई जहाज रोज उडते है, बाहर खुलेमे बैठे हो तो उडते हुए जहाजको देखे बिना चैन नही पडती। तो देखनेकी क्या पडी है ? जब ज्ञान अधूरा है, असमस्त है, कुछ अर्थमे लगता है इसलिए यह इच्छा बनी रहा करती है कि मैं और जानू। केवलज्ञानमे समस्त पदार्थ झलका है, जाननेको कुछ रह ही नही गया, अतएव उनके आकुलताका नही रहती है। तो जो ज्ञान अधूरा है, असमस्त है, परोक्ष है वह ज्ञान तो आकुलित ही रहा करता है, क्योंकि जाननेका द्वार रुक गया है। तो जो असमस्त है और कुछ भी अर्थमे लगा करता

है उस ज्ञानमे विह्वलना है ।

दृष्टिविभागसे ज्ञानके जीवनकी झांकी—अभेदविवक्षासे यह कहा गया है कि आत्मा क्या आकुलित रहता है ? ज्ञान आकुलित रहता है, आत्मामे और ज्ञानमे चूंकि भेद नही है और जितना जो कुछ भी करने धरनेका परिणमनका प्रसङ्ग है, वह सब ज्ञानके नाते ही जाना जाता है और बताया जाता है । ज्ञानमे दुःखका अनुभव हुआ तब आत्मा दुःखी हुआ । तो उस क्लेशरूप अनुभवन करने वाला ज्ञान है । यो गुणगुणीके अभेदमे ज्ञानको आकुल कहा है, और जब स्वरूपदृष्टि करे तो ज्ञानका काम तो मात्र जानन है, उसमे आकुलताकी बात कहाँ है ? तब उस विशुद्ध दृष्टिमे यह तक कहा जायगा कि मिथ्यादृष्टिका भी ज्ञान मिथ्या नही है, उसमे भी आकुलता नही है, जो जानन है, उसका जाननमात्र ही काम है ।

समल ज्ञानमे आकुलता—जो ज्ञान समल है, मलिन है, रागद्वेपसे युक्त है अथवा ज्ञानावरणादिक कर्मोका विशेप आवरण है, भली प्रकारसे जान नही सकता, तो यथार्थ न जाननेके कारण वह ज्ञान आकुलित रहता है । किसीमे कोई पहेली पूछी जाय, इस पहेलीका उत्तर दो तो जब तक उत्तर नही आता है तब तक क्या दशा हो जाती है ? कैसा दिमाग, कैसी विह्वलता उसका यथार्थ बोध न होनेसे आकुलता होती कि नही होती ? तो असमतमे सम्यक् बोध न होनेके कारण आकुलता रहती है ।

क्रमप्रवृत्त ज्ञानमें आकुलता—जो ज्ञान अवग्रह, ईहा अवाय, धारणा—ऐसे क्रमरूप ग्रहण करता है, तो क्रमसे जो अर्थ ग्रहण होता है, उसमे खेद होता है । ज्ञानमे जाननेकी इतनी निरर्गल विकासकी प्रकृति पडी हुई है कि वह यह गम खानेको तैयार नही है कि थोडा हमने जाना, चलो कल जान लेंगे । यह तो चाहता है कि सब अभी जाननेमे आ जाय । ज्ञानकी ओरसे कोई गम नही है, ज्ञानकी प्रकृति है कि सबको जाने और एक साथ जाने । पर जब क्रमसे अर्थ ग्रहण हो रहा हो उसमे खेद उत्पन्न होता है । तो ये सब अवगुण परोक्ष ज्ञानमे है । तो परोक्ष ज्ञान तो आकुलित रहता है, इस कारणसे परोक्ष ज्ञान परमार्थदृष्टिसे सुखस्वरूप नही है ।

स्वाधीन प्रत्यक्षज्ञानमे अनाकुलता—परोक्षज्ञान तो सुखरूप नही है, किन्तु इस प्रत्यक्ष ज्ञानको देखिये—यह सर्व ओरसे परिपूर्ण सुखस्वरूप है । यह प्रत्यक्षज्ञान स्वय उत्पन्न हुआ है, इसमें इन्द्रिय मन प्रकाश विपय पदार्थ उपदेश किसीकी भी उपेक्षा नही है, यह आत्मा ज्ञानस्वरूप है, अपने ही उस सहज ज्ञानकलासे अपने आपमे ही उन्मुख होकर यह जान रहा है, तो उसमे किसीकी भी आधीनता नही है । स्वय जायमान है, और किस प्रकार जायमान है कि जो ज्ञान सामान्य स्वभाव है, उसके ऊपर उसके परिणमनमे महान विकासरूपसे फैलकर व्यापकस्वरूप उत्पन्न हुआ है । जैसे कोई सूखा चूनेका ढेला होता है, तो वह शीत वातावरणमे स्वय

अपने आपमे अपने ही ऊपर अपने ही विकाससे फैलकर फैल जाता है, ऐसे ही जब विकारका आक्रमरण है, ऐसा शात वातावरण है, तो उसमे यह आत्मा, यह ज्ञान इस ज्ञानशक्तिके ऊपर इस ज्ञानशक्तिके ही महाविकासरूपसे फैलकर स्वय उत्पन्न हो जाता है। यह प्रत्यक्षज्ञान ऐसा स्वाधीन है। तो जो आधीन है, उस ज्ञानमे आकुलताका काम नही है।

समंत ज्ञानमें समंत आनन्द—जो प्रत्यक्ष ज्ञान समत आत्मप्रदेशोसे पूर्ण समक्ष ज्ञानोपयोगी होकर सर्वको फैलकर उत्पन्न होता है वह ज्ञान समतज्ञान है। इस विशेषणसे यह भी अन्तर ज्ञात होता है कि हमारे परोक्षज्ञानमे यद्यपि ज्ञानमय आत्मा होनेके कारण पदार्थोमे ज्ञान जगता है पर परोक्षज्ञानमे उन समत आत्मप्रदेशोमे एक आनन्दानुभूति अथवा तरगोका अनुभव-सा होता हुआ नही होता है, तभी तो ये भेदव्यवहारमे प्रसिद्ध हो गये कि दिमागसे तो जाना जाता है, आँखोसे देखा जाता है, प्रतिनियत अङ्गोसे ज्ञान प्रकट होता है ऐसी प्रसिद्धि हुई है। यह परोक्ष ज्ञान होनेके कारण आत्मप्रभुकी विडम्बनाकी बात बन रही है, बनाई जा रही है। जो ज्ञान समत चारो ओरसे स्पष्ट प्रकट है और चारो ओरके प्रकाशको अभिव्याप्त करके प्रसिद्ध है उस ज्ञानमे आकुलता नही है। कहते है ना—अधजल गगरी छलकत जाय। पूरा पानी भरा हो तो नही छलकती। जहाँ सर्वप्रदेशोमे प्रत्यक्ष ज्ञानमय अनुभव हो रहा है, वहा परम आनन्द प्रकट है।

निष्कलुषज्ञानमें विलक्षण आनन्द—एक बात देखी होगी किसीको इन्द्रियजन्य सुखके भोगते हुएमे सारे शरीरमे रोमाचसा प्रकट नहीं होता। किन्तु किसी तत्त्वज्ञान अथवा अभूत पूर्व बात या किसी विशिष्टज्ञानके समय जो आनन्द उत्पन्न होता है वह आत्मामे तो तरगित होकर होता ही है, पर शरीरमे भी एक रोमाञ्चसा हो जाता है। कितना ही बढिया हलुवा कोई खाये पर उसके सुखके कारण शरीरके रोगटे खडे नही होते। कोई भी इन्द्रियसुख भोगा जाय तो उससे शरीरमे रोमाञ्चसा न होगा और कोई विशिष्ट जातिका ज्ञान बन जाय तो रोगटे खडे हो जाते है। जिसका इन्द्रिय सुखसे सम्बन्ध नही है ऐसा कोई विलक्षण ज्ञान उत्पन्न होता है तो हम आपके भी रोमाञ्च खडे हो जाते है। इससे भी यह अन्दाज करलो कि जो ज्ञान अपने समस्त पदेशोमे ज्ञानप्रकाशका अनुभव करता हुआ होता है वह अनाकुल होता है, परिपूर्ण आनन्द वाला होता है। तो यह समस्त ज्ञान प्रत्यक्ष अनाकुल है। जो ज्ञान अनन्त अर्थमे विस्तृत है, जिसने समस्त वस्तुवोके ज्ञेयाकारको पी लिया है अर्थात् समस्त सत् जिस ज्ञानमे ज्ञात हो गए है ऐसी परम विनश्वररूपताको प्राप्त करके अर्थात् लोकालोक व्यापकरूपसे जो व्यवस्थित है उस ज्ञानमे चूँकि समस्त सत् आ गए इसलिए किसी भी सत्को जाननेकी भोगनेकी, अनुभवनेकी इच्छा नही होती, अतएव वह महाप्रत्यक्षज्ञान अनाकुल है।

प्रत्यक्षज्ञानमें निर्दोषता व अनाकुलता—जिस ज्ञानमे पूर्ण विकास है, समस्त शक्तियो का प्रतिषेध करने वाले कर्म जहाँ टूट गए है, समस्त ज्ञानप्रकाशसे जो देदीप्यमान है, अपने स्वभावको व्याप करके जो उत्पन्न हुआ है, ऐसा निर्मल ज्ञान यथार्थ वधके कारण अनाकुल रहा करता है। उस केवलज्ञानमे, प्रभुके ज्ञानमे जो कि एक साथ सभी त्रिलोक त्रिकालवर्ती पदार्थ ज्ञात हो गए है अथवा पदार्थ क्या ज्ञात हो गए है ? ऐसा ज्ञानरूप परिणमता हुआ आत्मस्वरूप जहाँ केवल दर्शनके द्वारा अवलोकित हो रहा है, उस ज्ञानमे क्रम कैसे बने ? सभी पदार्थ ज्ञानमे आ गए, तो जहाँ क्रमको ग्रहण करनेका खेद भी नही रहता, वह प्रत्यक्षज्ञान निराकुल होता है।

प्रत्यक्षज्ञान और आनन्दकी आदेयता—हम अपने इन्द्रियजन्य ज्ञान और इद्रियजन्य सुखमे मौज न माने—यह शिक्षा इस गाथामे मुख्यतया दी गई है। अतीन्द्रियज्ञान, सहज ज्ञान, बिना श्रमके अपने आप उत्पन्न हुआ ज्ञान और बिना ही श्रमसे अपने आपमे अनुभूत हुआ आनद वही उपादेय है, पराधीन बन-बनकर अयथार्थको यथार्थ बनानेका श्रम कर करके आनद और शाति प्रकट नही हो सकती। ऐसा प्रत्यक्षज्ञान ही जो स्वय उत्पन्न हुआ है, समत है, अनन्त अर्थोको जानता है, निर्मल है, जिसके अदर क्रम नही है। ऐसा ही ज्ञान सुखस्वरूप है, ऐसा ही निर्णय करके अपने आपमे उस सुख और ज्ञानके स्रोतरूप चैतन्यस्वभावका अवलम्बन करना चाहिए। इस ही परमब्रह्मकी उपासनाके प्रसादसे हम आपके ससारके सारे सकट छूट सकते हैं।

केवलज्ञानकी आनन्दरूपतापर एक जिज्ञासुकी आशङ्का—इस गाथामे यह कहा गया कि बिना इद्रियके सहारे, बिना आलोकादिक निमित्तके, अपने आप अपने ही ज्ञानस्वभावके ऊपर विकासरूपसे फैलकर जो प्रत्यक्ष ज्ञान होता है आत्मप्रत्यक्ष उसके साथ आनदका सम्बध है, परोक्ष ज्ञानके साथ आनदका सम्बध नही है। इस बातको सुनकर एक जिज्ञासुके चित्तमे यह आशङ्का उत्पन्न हुई कि प्रभुके केवलज्ञान भी हो गया, केवल आत्मा रह गया, सारे लोकालोकको जानने वाला वह ज्ञान है, लेकिन क्या वह केवलज्ञान कूटस्थ नित्य है ? क्या प्रतिसमयमे नया-नया वहाँ परिणमन नही होता है ? प्रति समय परिणमन होता रहना तो वस्तुका स्वभाव है। अगर प्रति समय परिणमन न हो तो वहाँ आत्माका ही अभाव हो जायगा, इस कारण प्रति समय परिणमन मानना तो अति आवश्यक है, और परिणमन होता ही है। जब परिणमन वहाँ चलता है, तो परिणमन होनेके नाते उनके भी खेद होना चाहिए, केवलज्ञान होनेपर भी चूकि प्रतिसमय केवलज्ञानरूप परिणमन चलता रहता है, अर्थात् इस समयके केवलज्ञानके बाद दूसरे समयमे नये केवलज्ञानरूप पर्याय होती है, और प्रतिसमय नवीन-नवीन ज्ञानपरिणमन होता रहता है। भले ही उस ज्ञानपरिणमनमे विषय परिवर्तन

नही होता अर्थात् तीन लोक और अलोककी त्रिकालवर्ती पर्यायोको जैसा इस समयके ज्ञानने जाना, वैसा ही अगले समयका ज्ञान जाने, इतनेपर भी प्रतिसमय उस द्रव्यका परिणमन तो है ही । तो जहाँ परिणाम है, परिणमन है, वहाँ खेद होना सम्भव है, फिर केवलज्ञानकी अवस्था नियमसे सुखरूप ही है, वहाँ आनदरूपता ही है, ऐसा क्यो कहा जा रहा है ? मेरे ख्यालसे तो केवलज्ञानमे भी चूँकि परिणमन होता है तो खेद सम्भव है । अतः नियम नही बना सकते कि वहाँ आनद है, ऐसी एक जिज्ञासुके चित्तमे आशका उत्पन्न होती है, उसका प्रतिषेध करते हुए समाधान दिया जा रहा है ।

ज केवलत्ति णाण त सोक्ख परिणमति सो चेव ।
खेदो तस्स ण भणिदो जम्हा घाती स्वय जादा ॥६०॥

केवलज्ञानकी आनन्दरूपतापर जिज्ञासुकी आशङ्काका समाधान—जो केवलज्ञान है, वही तो सुख है और वही एक परिणमन है अर्थात् वह परिणमन ही ज्ञानरूप और सुखरूप है, वहाँ खेदकी क्या बात है, क्योकि वहा घातिया कर्मोंका अभाव हो गया है । ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अतराय, इन चारो घोतिया कर्मोका क्षय हो गया है । ज्ञानावरण के क्षय हो जानेसे समस्त परिपूर्ण निर्मल ज्ञान प्रकट हुआ है, दर्शनावरणके क्षयसे अनत केवल दर्शन प्रकट हुआ है और मोहनीयके क्षय निर्मोहता प्रकट हुई है, वही सुखरूप अवस्था है, और अतरायके क्षयसे पूर्णशक्ति प्रकट हुई है, जहाँ अनंत चतुष्टयरूप अवस्था है, वहा खेदका क्या काम ? ज्ञान प्रति समय नवीन-नवीन होता रहता है, तो वही ज्ञान जो इस समयमे परिपूर्ण आनदरूप है, तो दूसरे समयमे भी जो केवलज्ञान हुआ, वैसा ही तो ज्ञान हुआ, वैसा ही आनदरूप परिणमन हुआ । परिणमन होते जावें अनत केवलज्ञानके भी, लेकिन वे अनत ही परिणमन केवलज्ञानरूप है और अनत आनदरूप है । वहा खेदका कोई काम नही है ।

केवलज्ञानकी आनन्दरूपताकी आशङ्काके समाधानका विवरण—अब इस समाधान को प्रश्नोत्तरके रूपमे और स्पष्टतासे कहते है । यह तो बतावो कि खेद नाम किसका, और यह बतावो कि केवल रहना और आनदरूप रहना, इनमे कुछ अतर है क्या ? एक सही समाधान मिलनेपर बात स्पष्ट हो जायगी कि केवलज्ञानमे भी आनंदका ऐकान्तिक नियम है या नही ? जिज्ञासुने जो यह आशङ्का रखी थी कि केवलज्ञानीके नियमसे आनद होना, यह वात नही घटती, आनद नही है तो खेद है, खेद नाम किसका है ? और क्या तुम्हारी दृष्टिमे ज्ञानरूप रहना और आनदरूप रहना, ये क्या दो भिन्न स्थितिया है, इसपर विचार करो । खेद नाम तो घातिया कर्मोके उदयमे जो एक इष्ट अनिष्टकी कल्पना होती है, विषय परिवर्तन होता है, उसका है । पर घातिया कर्मोंका जहा उदय नही रहा और इसी कारण न तो विषय परिवर्तन है और न इष्ट अनिष्ट कल्पनाए है, तो वहा खेद कैसे होगा ? केवलज्ञानमे तुम खेद

की आशङ्का करते हो तो कारण भी बतावो। केवल परिणाम मात्र खेदका कारण नही हुआ करता। कोई पर्याय है, और उसके बाद फिर पर्याय हुई, तो पर्यायोका होते रहना, यह खेद की बात नही है, यह तो वस्तुका स्वरूप है।

केवलज्ञानीके परिणाममात्रसे खेद न होनेकी पुष्टि—यहा तो ससार अवस्थामे विभिन्न अनेक परिणमन चलते रहते है, पर्यायें बदलती रहती हैं तो पर्यायोके बदलते रहनेका कार्योंसे खेद यहा भी नही है, किन्तु घातिया कर्मोंका उदय होनेसे जो इष्ट अनिष्ट कल्पनाओ आदिक रूप परिणमन होता है, वह खेदका कारण होता है। जैसे किसी पुरुषसे कोई काम बिगड जाय मित्रका, तो मित्र वहाँ यह कहता है कि यह काम बिगड गया इसका खेद नही है, किन्तु तुम्हारे परिणाममे हमारा विरोध आ गया, इसका खेद है। तो यो सासारिक जितने भी परिणमन होते हैं, उनमे भी बदलते रहना इससे खेद नही है, किन्तु जो मोह रागद्वेषकी तरग उठ रही है, इससे खेद होता है। हा, यह बात जरूर है कि जहा मोह रागद्वेषकी तरग होती है, वहा सासारिक परिणमन भी इस प्रकारका चलता रहता है, पर विश्लेषण करके यदि देखो तो परिणमन होते रहनेसे खेद नही है, किन्तु आशयमे मलिनता आनेसे खेद है, यह तो सासारिक अवस्थाओकी बात कह रहे है। पर युक्त अवस्थामे तो सासारिक अवस्थाओ जैसा परिणमन होता ही नही है वहा तो जैसा परिणमन अब है वैसा ही परिणमन आगे है, और अनतकाल तक वैसा ही परिणमन होता रहेगा, वहा तो कल्मपता भी लेश नही है, वहा खेद का अवसर हो कहा है ?

केवलीके समान परिणमनसे आनन्दरूपताकी पुष्टि—शुद्ध अवस्थामे भी यद्यपि वही-वही परिणमन नही है, किन्तु वैसा ही वैसा परिणमन तो है। जैसे कोई बिजली १५ मिनट तक जले तो १५ मिनटके जितने सेकेन्ड है, सभी सेकेन्डोमे एकसी बिजली जली, प्रकाश एक सा ही हुआ, लेकिन प्रति सेकेन्डमे बिजलीने नया-नया काम तो किया, वह नया काम समान है। इस कारण भेद नही जच रहा, यदि वह बिजली नया-नया काम प्रति सेकेन्ड नहीं करती, तो फिर मीटर कैसे बढ जाते है ? प्रति सेकेण्ड उस बिजलीका नया-नया काम है। इसी प्रकार केवलज्ञानके द्वारा भी प्रति समय यद्यपि जानते है वही समस्त सत, जो जाना वही फिर जाना, लेकिन परिणमन तो नया-नया है। तो परिणमन मात्रसे खेद नही होता, वह तो एकदम समान परिणमन है। दूसरी बात उस केवलज्ञानमे, कैवल्य अवस्थामे और आनदरूप परिणमनमे कोई आधार भेद नही है, कोई व्यतिरेक नही है, वही है तो जैसे यो कह लो कि प्रतिसमय प्रभु केवलज्ञान केवलज्ञानरूप परिणमते रहते है, तो यो कह लीजिए कि प्रति समय प्रभु आनदरूप आनदरूप परिणमते रहते हैं, खेदका वहाँ कहा अवसर है ?

खेदका निदान—खेद किस प्रकार होता है, उसका विवरण सुनिये । घातिया कर्मोंमे जो मोहनीय नामक कर्म है, यह महान मोहका उत्पादक निमित्त है, मोहनीयके उदयमे मोह परिणाम बना और मोह परिणाममे यह जीव उन्मत्तकी तरह जो जैसा नही है, उसके वैसी बुद्धि करने लगता है । जैसे पागल लोग पदार्थ और भाति है, बुद्धि और भाति करते है । जैसे प्रसिद्ध बात है कि पागल कभी मा को स्त्री कहने लगते, और कभी स्त्रीको मा कहने लगते, अथवा नाना प्रकार बकने लगते है । जो बात जैसी नही है, उसको उस रूपसे कहना, यही तो पागलपन है । जैसी बात है, वैसी ही कह दे, उसे तो स्वस्थ बुद्धि वाला कहेगे । तो जब मोहनीय कर्मका उदय है, तो इस जीवमे महामोह उत्पन्न होता, उससे जो अतत् है, उसमे तत्की कल्पनाए हुई । जैसे ये सब शरीर तो है जड और मान ले अजीव अथवा सब परपदार्थ है तो भिन्न, उनका परिणमन उनमे ही परिसमाप्त होता है, लेकिन यह मानता है कि अमुक पदार्थसे मुझे सुख मिला, तो यो जो बात जैसी नही है, उसमे वैसी कल्पनाएँ उत्पन्न हुईं, इससे अब उसकी हालत क्या हो गयी कि जो ज्ञेय पदार्थ है उनके प्रति अनुराग बनाया, उनके अनुसार अपने आपको परिणमाकर व्यर्थका श्रम बनाया, बस यही खेद हो गया । कोई इष्ट पदार्थ नष्ट हो रहा है, तो यह भी भ्रमसे अपनेको नष्ट हुआ मानता है । कोई इष्ट पदार्थ फल फूल रहा है, तो भी यह अपनेको फल फूल रहा मानता है, बस यही खेदका निदान है ।

परोन्मुखतासे शान्तिका विघात और विडम्बनाओका भार—भैया ! अब समझ लीजिए कि भीतरमे ये असावधानिया कितनी बडी विडम्बनाये है ? सारा नक्शा पलट जाता है । जैसे कोई पुरुष राज्यमे या किसी सस्थामे कानूनकी दुहाई देकर कुछ विशिष्ट वृत्त उत्पन्न करता है, तो क्यो जी ! यदि विधिपूर्वक उस कानूनको ही मिटा दे या उसके एवजमे नया विधान पास कर लें, तो वह नियत्रण एकदम खतम हो जायगा ना । ऐसे ही जगतकी यह बहुत बडी विडम्बना जो हो रहो है, इसका मूल तो इतना ही है कि परपदार्थोंमे इसने आत्म-बुद्धि की, और भीतर ही भीतर इसने ज्ञेय पदार्थोंके अनुरूप अपना परिणमन बनाया, तो जो एक आत्मामे वैधानिक बात रहनी चाहिए थी शाति, आनद, विश्राम वह सबकी सब एकदम उलट दिया । भीतरमे केवल एक परके प्रति आत्मबुद्धि होनेसे एकदम नक्शा ही दूसरा बन रहा हे । खेदका कारण तो रागद्वेप मोह है । केवलज्ञानमे रागद्वेप मोह है नही तो परिणमता जाय उसी-उसीरूप, इसमे खेद नही होता ।

छीटाकसी या भक्ति—देखिये यह जिज्ञासु भगवान तक पर छीटाकसी कर रहा है । एक परिणमनके प्रतिपादनके माध्यमसे चूकि वे भी बदलते रहते है, प्रभुमे भी समान समान सही परिणमन बनते हुए रहते है । इस कारण वहाँ भी खेद सम्भव है अथवा यो समझिये

कि जिज्ञासुको परके प्रति विशेष भक्ति उत्पन्न हुई है। सो आखिरी एक चर्चा छोडकर आचार्य देव प्रभुके आनदरूपका बहुत बार समर्थन कर रहे है। प्रभुके रागद्वेप मोहका अभाव होनेसे वहाँ कोई श्रम नही होता। परिणम-परिणाम करके भी जैसे मोही जीवको श्रम होना रहता था, प्रभुके प्रतिसमय केवल ज्ञानरूप नवीन-नवीन परिणमन होकर भी उनके खेद नही होता। तो जब घातिया कर्म ही नही रहे तो केवलज्ञानमे खेदका कारण क्या रहा ?

धर्मपालन और धर्मविकास—यहाँ यह स्पष्ट किया है कि केवल जाननहार रहे, इसी विधिसे तो केवलज्ञानकी उत्पत्तिका विधान है, और इसी विधिसे समस्त सकटोके दूर होनेका विधान है। जहाँ कोई रागद्वेप मनमे आता है, वहाँ खेद उत्पन्न होता है, रागद्वेप न रहे, केवल जाननहार स्थिति रहे, तो वहाँ खेदका अवकाश नही है, ऐसा ही करना यही धर्मपालन है, धर्ममूर्ति यह स्वय आत्मा है, धर्म इसका स्वभाव है, उस स्वभावपर अपना उपयोग स्थिर करना यही धर्मपालन है। धर्मपालनकी लम्बी चौडी व्याख्या नही है। जैसा मेरा सहज स्वरूप है ज्ञानमात्र, उस ज्ञानमात्र स्वरूपको ही "यह मै हू" इतना मानने लगे, बस धर्मपालन होने लगा।

व्यवहारधर्मका मूल प्रयोजन—व्यवहार धर्ममे जितने भी और कष्ट करने पडते है—अब नहावो, अब पूजामे खडे हो, अब इस तरह अमुक क्रिया करो, ये व्यवहार धर्ममे जितने भी काम करने पडते है, हम यदि उल्टा न चलते होते तो करनेकी क्या जरूरत थी ? हम उल्टा चलते है, अधर्मसे चलते है, तो उसका यह प्रायश्चित्त है। यो समझ लीजिए, धर्मपालन तो सुगम है, धर्म इतना ही मात्र है कि जो निज आत्मस्वरूप है, बस उस स्वरूपके जाननहार रहे। कहने मात्रकी बात नही है, रह सकें, उसकी बात है। इसमे कही व्यवहारधर्मके निषेधकी बात नही कही, परिग्रह और आरम्भमे रहकर कोई जाननहार रहा आये, यह तो सम्भव नही है। परिग्रह और आरम्भको तजकर इस धर्मकी साधना की जाती है, इसीके मायने है साधु होना। इतना ऊँचा काम जो नही कर सकता है, वह परिग्रह और आरम्भकी वासना तजनेके लिए ही इतने व्यवहारके काम करता है। मदिर आये, क्यो आये ? इसलिए कि आरम्भ और परिग्रहकी वासनाएँ बहुत-बहुत रहती है, और उनका उपयोग चलता है, तो यहाँ प्रभुके गुणोका स्तवन करें, मदिर जायें, तो वह आरम्भ और परिग्रहका उपयोग हमारा हो जायगा। तो एक यह एकदेश मुनिधर्मके लक्ष्यका ही तो काम किया मदिरमे आकर। जितने व्यवहार धर्म है, उन सबमे आरम्भ परिग्रहकी कमी हो और ज्ञानस्वभावी अतस्तत्त्वकी दृष्टि बने तो वह सफल है।

धर्मपालनका निरीक्षण—भैया ! विधिमे हो, अपने आत्म के स्वभावका स्पर्श और निषेधमे हो आरम्भ और परिग्रहका त्याग, बस इस कुञ्जीसे परीक्षा करते जाइये कि हमने

कितना धर्मपालन किया है, हममे कितनी शक्ति ऐसी जगी है कि हम कितनी जल्दी-जल्दी अपने आपके ज्ञायकस्वभावकी ओर हम अपनी दृष्टि दे लिया करते है, इस तरह धर्ममे हम कितना बढे है, इसकी परीक्षा हो जायगी। दूसरे हम कितनी जल्दी-जल्दी आरम्भ और परिग्रहके ख्यालको तजकर विश्रामसे रह सकते है। इस अंदाजसे आप यह अनुमान कर लेगे कि हम धर्मके पालनमें कितना बढे है। आरम्भ तो वही रहे, परिग्रह मूर्छा वही रहे, रागद्वेष विषय कषाय वही रहे, आत्माके सुधकी कुछ बात न हो और चाहे वर्षभर खूब उत्सव समारोह भी मनाये जाते है, पूजन वदन आदि भी किए जाते है, किन्तु यह बात रच भी न जगी हो कि हटावो ये आरम्भ परिग्रह, तो बतावो धर्मका पालन कितना किया ?

स्वभावपरिणमनमे खेदका अभाव—घातिया कर्मोका अभाव होनेसे केवलज्ञानमे खेद की उत्पत्ति नही है। त्रिकालवर्ती समस्त पदार्थोको जाननेका आकार कैसा है प्रभुका ? विश्व रूप है। तो इस प्रकार विशुद्ध ज्ञानरूपसे जो परिणाम रहा हो, उसका केवल परिणमन ही तो है। खेदकी बात कहाँसे आयगी ? प्रभुका ज्ञान ऐसा स्पष्ट है। जैसे कोई किसी बोर्डपर १० साल पहिले हुए बुजुर्गकी फोटो बनाये, १०० साल पूर्वकी फोटो बना दे और कल्पना करके या किसी तरह जान करके आगे जो होगे उनकी फोटो बना दे, इस समय जो कुटुम्बमे है, उनकी फोटो बना दे तो उस बोर्डको देखकर जैसे एक ही समयमे उन सब कालकी बातोका एक साथ ज्ञान हो गया, यह एक दृष्टात मात्र दिया है। यो केवलज्ञानमे अनतकाल तकका, पहिले अनतकाल तकका आगे समस्त भूत भविष्यका वर्तमानका ज्ञान एक साथ होता है। वह तो एक विशुद्ध आत्माका शुद्ध परिणमन है। उसमे खेदकी कहाँ गुँजाइश है।

केवलके पारमार्थिक आनन्दका दृढ नियम—केवलीके तो घातिया कर्म दूर हो गए, आत्माके स्वभावका घात करने वाले जब कर्म नही रहे तो निरकुश बेरोकटोक अनत शक्ति प्रकट हुई है, वहाँ वह समस्त लोक और अलोक जानते है और उस जाननरूप आकारको व्याप करके अत्यत निष्प्रकम्प उनके जैसा ज्ञान रहता है। ऐसे ही निष्प्रकम्प अनाकुलता भी रहती है, आनन्द भी रहता है। वहाँ आत्मासे भिन्न न तो अनाकुलता है और न आत्मासे भिन्न कोई ज्ञान है। यह प्रभु विशुद्ध ज्ञानरूप परिणम रहे है तो उस ही के साथ-साथ विशुद्ध आनन्दरूप भी परिणाम रहे है। इस कारण यह भी ध्यानमे रख लीजिए कि केवल रहनेमे, और आनन्दमय रहनेमें कोई अतर नही है, केवल होनेका ही नाम आनन्दमय होना है। इस कारण केवलज्ञान जैसे महाप्रत्यक्ष ज्ञानके साथ पारमार्थिक आनन्दका ऐकान्तिक नियम है। प्रभु सर्वज्ञ है और अनत आनन्दमय है। यो प्रभुके स्वरूपको निहारकर उनकी आनन्दमयता का अनुमोदन करना चाहिए, याने प्रभुके ज्ञान और आनन्दके ज्ञानके अनुसार अपने आपमे भी ज्ञान और आनन्दको जगाना चाहिए। इस प्रकरणमे मुख्यतया यह सिद्ध किया है कि इन्द्रिय-

ज्ञान, इन्द्रियसुख हेय है और अतीन्द्रियज्ञान व अतीन्द्रिय आनन्द ही उपादेय है।

ज्ञानकी सुखरूपताका अनुमोदन—उक्त ६० वीं गाथामे यह भली प्रकार सिद्ध कर दिया है, बता दिया है कि केवलज्ञान ही सुख है, ऐसी ही अनुमोदना की। भगवान सर्वज्ञदेव का सुख कैसा है यह विचारते ही उसही जातिका सुख ध्याताको भी होने लगे तो सच्ची अनुमोदना वहाँ है। प्रश्नकारने प्रश्न किया था कि केवलज्ञानमे भी तो परिणमन करते रहने का कष्ट है वहाँ अनत सुख कैसे हो सकता है ? इस सूक्ष्म उलाहनका भी जहाँ समाधान पूर्ण दे दिया जावे व मग्न हो जावे तो भैया ! ऐसे वक्ता और श्रोता ही सच्ची अनुमोदना कर ही चुकते, इसमे सशय कहाँ रहा ? परिणमन तो स्वरूप है उपाधि नही, स्वरूप स्वका घात नही करता तब ज्ञानका पूर्ण ज्ञानरूप निष्कप क्षोभरहित बना रहना ही तो अनत सुख है। केवलज्ञानमे और सुखमे व्यतिरेक कहाँ ? इसलिए केवलज्ञान ही सुख है ऐसा निश्चयकर उसके अनुरूप अपना अन्तश्चरण करना। इस निरूपणके अनतर फिर भी आचार्यदेव केवलज्ञानकी सुखस्वरूपताका निरूपण कर चैतन्यनेत्रसे देख भालकर उपसहार करते है याने उस स्वरूपको उप—अपने समीप (अन्तरमे); स—भलेप्रकार सावधानीसे जैसे कि फिर बिखर न जावे इस तरह हरण करते है अर्थात् अपनेमे उस स्वरूपको रखते हैं—उपसहारसे लोकमे भी यह भाव रहता है कि जो करना है सो करलो अब चर्चामे समय न गमावो। यहाँ अपनी चर्चाका उपसहार करते है—

> णाण अत्थतगय लोयालोयेसु वित्थडा दिट्ठी।
> णट्ठमणिट्ठ सव्व इट्ठ पुण ज तु त लद्ध ॥६१॥

आनन्दप्रपञ्चमे ज्ञान व संयमका योग—यह आनदका प्रकरण है। आनन्दकी अवस्था क्या है ? जो केवल सत्य सुखमय अवस्था है वही आनन्दकी अवस्था है। सुखका स्वरूप तो केवल ही है। अज्ञान भाव या अज्ञानकी परिणतिमे जो भी समझमे आता है, वह आकुलतामय है। यह पिड तीन चीजोका समूह है, जीव कर्म और नो कर्म। कर्म तो निमित्त होता और नोकर्म आश्रय होते। यहाँ यह समझा जाता कि जगतके बाह्य पदार्थोसे मुझे सुख मिलता है, परन्तु जगतके बाह्यपदार्थ मेरी कोई भी परिणतिमे प्रेरणा देने वाले नही है। उत्तम मकान अपनी जगह ही तो है, उत्तम वस्तुए अपनी ही सत्तामे तो हैं, यह जीव ही आत्मस्वभावसे च्युत होकर उन पदार्थोके विषयमे कल्पनाए स्वय करता है और तभी यह जीव सुखी होता है। सच्चे सुखका स्वरूप तो वह केवल अवस्था ही है। निगोद आदिमे भ्रमता हुआ यह जीव मनुष्यजीवनकी स्थितिमे आया तो फिर इसको व्यर्थ ही नही खोना चाहिए। मनुष्यभव ही एक ऐसा भव है जो ऊचेसे ऊचे स्थानपर भी पहुचा सकता। मनुष्य ही श्रुतकेवली कहला सकता है, इसके विपरीत देव भी चाहे करीबन इतनी ही योग्यता रखते

हो, परन्तु वे भी श्रुतकेवली नही कहला सकते । ऐसा प्रभाव इस मनुष्य भवपर किसका पड रहा है ? एक सयमका ऐसा प्रभाव पड रहा है । मनुष्य जन्मका कितना उत्कृष्ट स्वरूप है ? इसीसे मोक्ष मिल सकता है ।

निजस्वभावदृष्टिसे व परोन्मुखताके अभावसे क्लेश विनाश—इन्द्रियसुख तो हमने अब तक वहुत भोगा, मात्र आकुलता ही प्राप्त कर सके है । जगतके पदार्थोमे तो कुछ प्राप्त करनेके वजाय यह जीव खोकर ही चला जाता है । परके सयोगमे सुख नही है । प्राणियोको जो इतना दु.ख हो रहा है वह मात्र परपदार्थके सयोगसे हो रहा है । आज हम मनुष्यभवमे नही होते, और किसी तिर्यञ्च आदि जीवके स्वरूपमे होते, तो फिर हमारे लिए तो ये सारे यहाँके समागम तो नही होते, उस समय हमारे ये परिचय आदि तो कुछ भी नही होते । अव यहाँ भी हम यह समझ सकते है कि हमारा यहाँ किसीसे परिचय नही है, ये सारे समागम मेरे लिए त्याज्य है । विषय कषाय मोह आदि भाव इन परिचयोमे ही तो वढ़ते है । जितनी भी आत्मामे आकुलता पैदा होती है, वह परिचयको ही पाकर होती है । इसलिए जितना भी कभी दु ख होता है, वह परपदार्थके सयोगकी बुद्धिसे होता है । जब तक परपदार्थके सयोगमे बुद्धि है तव तक यह जीवन दु:खस्वरूप ही है, परतु सुखस्वरूप तो सम्यग्दर्शनमे ही विद्यमान है । भरत चक्रवर्ती घरमे भी रहते हुए वैरागी थे, यह उनके सम्यग्दर्शनका प्रभाव है । वस्तुकी सत्ता अनादि अनन्त अखड स्वतःसिद्ध है । जब तक वस्तुकी स्वतत्र अवस्था, अपनी स्वतत्र सत्ताका ठीक स्वरूप जीवनमे नही उतरता, तब तक जीवका मोह भाव नही हट सकता और दु ख नही मिट सकता । दुःखको मिटानेका सरल हल यही है कि ठीक जैसा वस्तुका स्वरूप है, वैसी ही श्रद्धा बना लो । वस्तुकी सत्ता विल्कुल स्वतत्र है, उस स्वरूपको समझो । ऐसा सम्यग्दर्शनका उद्यम करो । इस सम्यग्दर्शनको प्राप्त कर लिया तो सव कुछ पाया, यदि इसे नही पाया और जगतमे चाहे जितना पा लिया तो सव वेकार ही है । मानव जीवनकी सफलता आत्मकल्याणसे है ।

विषयकी खाजमे नरजन्मकी व्यर्थता—एक अधा भिखारी था । उसने सोचा कि मैं शहरकी चहारदीवारीके सहारे-सहारे चलता चलूं, और जव दरवाजा आ जाय तो शहरमे घुसकर भीख माँग लूं । वह चहारदीवारीके सहारे चलता गया, परन्तु ज्यो ही दरवाजा आया, तो वह अपना सिर खुजाने लग गया और आगे वढ गया । आगे वढ़नेपर उसने फिर चहारदीवारी सम्हाली तो उसे वह मिल गई, और फिर उसके सहारे-सहारे वह आगे वढने लगा । फिर दरवाजा आया तो वह फिर अपना सिर खुजाने लग गया । इस प्रकार ज्यो ही दरवाजा आता तो वह अपना सिर खुजाने लग जाता, और उसको दरवाजेका भान ही नही रहता, और वह आगे वढ जाता । तो वह शहरके अदर घुस नही सका, और न भीख ही माग

सका। इसी तरह यह जीव अज्ञानका अधा, विषयोका खजेला, इच्छाओका भिखारी मुखके भरे शाति शहरमे जाना चाहता है और परपदार्थका सहारा लेता है। सहारा लेते-लेते कुछ सुबुद्धि आई तो मनुष्यभवका एक दरवाजा मिला, तो वह वहाँपर ही अपने विषयकी खाज खुजाने लग जाता, और आगे बढता है तो फिर उन्ही जातियोमे चलता रहता। फिर उसको मनुष्यभव मिलता, तो फिर उसके वही सिरकी खाज खुजानेका काम लग जाता, तो वह कभी ससारसे मुक्ति पा ही नही सकता। यदि अन्यत्र हर जगह देखें, हर जीवोको देखे, तो वहाँ पता लगेगा कि पशुओमे भी विषय भोग आदि करनेमें नियम बना होता है, फिर मनुष्य भव मे क्या नियम नही बन सकता? रात दिन मनुष्य विषय कषायमे लगा रहता, परतु ऐसा चाहिए कि जैसे दोपहरका भोजन १० बजे किया तो फिर ६ घटेका त्याग कर दिया। ऐसा करनेपर ६ घटे तक तो उसकी प्रवृत्ति भोजनमे हट जायगी। परन्तु जिस मनुष्यके त्याग नही होता, सकल्प नही होता, वह मनुष्य जरा चाट वाला दिखाई दिया तो चाट भी खाने लग गया। चाट खाये भी नही तो भी उसका मन ऐसे सस्कारमे चल रहा कि कुछ खाऊ। तो इस प्रकार उसके बध होता। बध सस्कारोसे होता है।

परविषयक स्नेह सस्कारोसे चित्तकी अस्थिरता—अभी एक शका की गई कि हम जब दुकानमे बैठे होते है तो उस समय तो हमे दुकानका ही ख्याल रहा करता है, और जब सामायिक करते है, तो उस समय १० बातोका ख्याल आता है, इसलिए सामायिकसे तो दुकानमे बैठा रहना अच्छा है, क्योकि दुकानमे तो केवल एक ही बातका बध होता, और सामायिकमे तो १० बातोका बध हो जाता। इसका उत्तर यह है कि तुम्हारा यह भ्रम हो गया कि सामायिकमे तो १० चीजोका ख्याल आता है, इसलिए १० चीजोका बध होता है और दुकानमे एक ही चीजका ख्याल आता है, इसलिए वहाँ एक ही चीजका बध होता है, तो यह तुम्हारा भ्रमपूर्ण विचार है। बध तो सस्कारमे ही होता है, सामायिक तो कृपा करने वाली चीज है। वह अपने दोषोको दिखा देती है। वह तो बतला देती है कि हमारे अदर इतना राग लगा हुआ है। दुकानमे तो कुछ पता ही नही लग सकता। सामायिकमे यह तो पता चलता कि तुम्हारे १० चीजोमे राग लगा हुआ है, बध इतना सदा चल रहा है, इतना पता तो चला। अब क्या करना सो देखो, तुम्हारे जिस जिसका भी ध्यान आया, तो उसमे ही अपना पूर्ण ध्यान लगा दो, और ऐसा ध्यान लगा दो कि उसके सच्चे स्वरूपको समझ सको। इनका सच्चा स्वरूप अथवा सच्चा स्वभाव क्या है? यह सोचो कि इनका मेरे साथ क्या सम्बध है? कोई सम्बध नही। तो फिर उन रागोसे अपने आप दिल हट जायगा, फिर तुम्हे करना क्या? बाह्य पदार्थोसे दिल हटाकर आत्माके सच्चे रूपमे ही रह जाना, केवल एक आत्माके ही रूप रह जाना, ऐसा करनेसे ही तो अनत सुख होता है।

परपरिहारसे पवित्रता—परका लक्ष्य हटे तो केवलपना अपने आप आ सकता है। उस आत्माको पवित्र बना लो। जैसे चौकीपर बीट पडी और कहते कि इसको पवित्र बना दो, और पानी लेकर उस बीटको साफ कर देते। क्यो साफ कर देते ? इसलिए कि वह चौकी खालिस हो जाय, अकेली चौकी रह जाय। इस प्रकार चौकीकी बीट इसलिए साफ नही करते कि बीटको हटा दिया जाय, परन्तु इसलिए साफ करते कि वह चौकी खालिस रह जाय। खालिस चौकीको रखनेके लिए चौकीको धो रहे है। यदि बीट हटानेके लिए चौकीको धो रहे हो तो फिर जहा भी वह बीट उठाकर फेकी गई है, वहाँसे भी उसे उठाकर फेंको, क्योकि बीटको ही तो उठा रहे हो ना, फिर जहाँ कही वह बीट गई, वहाँसे भी उसे उठाओ। तो फिर यही एक व्यवसाय वन जायगा कि बीटको उठाये जाओ और फैंकते जाओ। इसलिए बीटको हटानेके लिए चौकीको नही धोते, बल्कि चौकीको खालिस करनेके लिए चौकीको धोते। इसी तरह परका लक्ष्य परके लक्ष्यको हटानेके लिये नही हटाते, परन्तु परका लक्ष्य अपनी आत्माके शुद्ध स्वरूपके विकासके लिए हटाते।

अन्तस्तत्त्वके आलम्बनमे धर्म और आनन्द—हमारा यह जो पिड है, उसमे अनेक प्रकारके मैल आ गये। उन मैलोके कारण हम दुःखी हो रहे। इन सबसे न्यारा जो हमारा ज्ञानस्वभाव है, हम उसका अवलम्बन लेगे, तो परमसुखी हो जायेंगे। सुखी होनेके लिए हमे किसी न्यारी चीजका आलम्बन नही लेना है, उसका तो तरीका स्वय अपनेमे ही मौजूद है। इसलिए केवल अपने इस धर्मको पालो। इस धर्मको पानेके लिए बहुत परिश्रमकी जरूरत नही पडती। दो पैसे कमानेमे तो बहुत कठिनाई आ सकती है, परन्तु धर्मका पालन करना बिल्कुल सरल है, परतु मोही जीवको तो पैसा कमाना बहुत आसान लगता। धर्मके पालनमे तो किसी दूसरे पदार्थके आलम्बनकी आवश्यकता ही नही। पैसा तो परपदार्थ है, इसलिए उसका प्राप्त करना कठिन है, परतु धर्म तो परके आलम्बनसे पैदा नही होता, इसलिए वह बिल्कुल सरल है।

अतीन्द्रिय ज्ञानानन्दकी बहुशः प्रतिपाद्यता—आचार्य महाराज इस गाथामे कहते है कि अनन्तसुखका असली स्वरूप बताकर मै उपसहार करता हू। परन्तु ऐसा लगता कि वे बार-बार वही चीज तो बतलाते है और फिर उपसहार करनेकी बात ला देते। और एक बार उपसहार करके फिर उसी बातको बतलाने लग जाते। परन्तु बात यह है कि अतीन्द्रिय ज्ञान और अतीन्द्रिय सुखकी बात बतानेके सिवाय आगम और शास्त्रोमे क्या अन्य उत्तम बात लाई जावे ? वही बारबार आचार्य महाराज भी बतला रहे है और श्रोतागण थक न जाए, इसलिए बीच बीचमे उससहारकी बात कहकर उनको विश्रामसा देते है। यह झूठ भी नही है मध्यमे आने वाले अन्तराधिकारोका उपसहार आवश्यक भी है।

स्वभावविकासमे आनन्दलाभ—कहते कि सुख चीज क्या है ? सुख वह स्थिति है जो स्वभावके घातके अभावमे पैदा होती है। स्वभावके घातका अभाव होना ही सुखकी स्थिति है और जहाँ स्वभावका घात होता वह स्थिति दुःखकी है। आत्माका स्वभाव दर्शन और ज्ञान है और केवलीके दर्शन ज्ञानका प्रतिघात होता नही। उनके उनकी शुद्ध आत्माके स्वभावका घात नही हो सकता। त्रिलोक तक विस्तृत सारे पदार्थोको जिसने जान लिया और अपनी स्वच्छन्दतासे जो बढ गया तो उसके ज्ञानकी तो सीमा हो ही नही सकती। भगवानके राग द्वेष मोहादि भाव तो है ही नही, तो केवलीको ऐसी स्वच्छन्दता मिली कि उनके तो स्वभावका घात होता ही नही और स्वभावका घात नही होना वही स्थिति सुख है। उसी अभेद अवस्थामे उस केवलका स्वरूप है। ज्ञानकी ऐसी स्थिति होना यही तो सुख है। इसके अलावा कोई सुख दुनियामे नजर नही आ सकता। इसी अभेद अवस्थामे सौख्य है। अभी एक भाईने प्रश्न किया है कि ज्ञानकी इस वृद्धिमे स्वच्छन्दता शब्दका प्रयोग क्यो किया जा रहा है ? भैया ! जब ज्ञान पहिले समयमे तो अतिमद था और दूसरे ही समयमे सर्व सत्का जानने वाला हो गया, ऐसा बेहद बढ गया इस महान् तारतम्यका जो कि एकदम हो गया बताना ही स्वच्छन्दता शब्दका प्रयोजन है।

कैवल्यमें ज्ञानानन्द—ज्ञानकी ५ अवस्थाए या पर्याए होती है—मति, श्रुति, अवधि, मन पर्यय और केवल। उस केवल पर्यायको अनन्त भी कह सकते है, परन्तु मनुष्यकी बुद्धिको अनन्तज्ञान कहकर हितपर पहुचाना कठिन था, इसलिए उनके ज्ञानका नाम केवलज्ञान बतलाया। उनका वह केवलज्ञान केवल ही होता है, बिल्कुल शुद्ध। ऐसा शुद्ध नही जैसा मशीन से क्रीम याने सार निकाल जाकर दूधको बजारमे खालिस बताया जाता है, उस तरहका खालिस नही परन्तु जो अपने समस्त अविभाग प्रतिच्छेदोको सारोको लेकरके फिर प्रगट हुआ है, ऐसा वह खालिस केवलज्ञान, वह केवल सुखपना ही है। अन्य कोई ज्ञान सुखरूप नही है। ससारके सुख तो मात्र आकुलता ही है लोकमे भी देखा जाता है जब राग व हर्ष अधिक होता तब हार्टफेल तक भी हो जाता।

समागम और हर्षमें भी आकुलता—एक साहब १०, १० रुपयेकी लाटरी लगाकर अपने भाग्यको देखा करते थे, परन्तु उनका भाग्य कभी नही चमका। एक दिन उन्होने अपने नौकरसे कहा कि देख मै तेरे नामसे लाटरी लगाता हू, यदि जीत हो गई तो २ लाख रुपये मिलेगे और वे तेरे हो जाएगे। लाटरी लगाई गई और जीत भी हो गई, तब वह व्यक्ति कुछ विवेकी था, उसने सोचा कि खुशीकी अवस्थामे नौकरको दो लाखका इनाम दे दिया जायगा तो वह तुरन्त हार्टफेल होकर मर जायगा, क्योकि उसने कभी अपनी जिन्दगीमे सौ रुपये भी नही देखे होगे, दो लाख देखकर तो वह अपनी खुशी बरदाश्त नही कर सकेगा और मर

जायगा। तब उसने क्या किया कि अपने नौकरको बुलाया और उसको खूब मारने लगा, मारते मारते जब वह नौकर खूब अधमरा हो गया तो उसने उससे कहा कि अरे बेवकूफ तेरी लाटरीका फल आ गया और तू जीत गया, तुझे दो लाख रुपये मिल गये, जा तू मेरी कम्पनीका उन रुपयोमें मालिक बन गया। उस मारके दु.खमे जो उसे वह खुशी हुई तो उस खुशीको वह बरदाश्त कर गया। इस तरह उस विवेकीने उसको मरनेसे बचा लिया। उसने उसे कम्पनीका मालिक बना दिया, तो वह बोला कि मैं तो अनपढ हू, मै उसे सभालनेके लायक नही हू, मैं मालिक बन गया सो तो ठीक है, परन्तु आप ही इसको सभालो। तो इस प्रकार वह नौकर तो मालिक बन गया और वह मालिक उसका मैनेजर बन गया। इसमे हर्षकी आकुलताका अनुमान कराया।

ध्रुव आत्मस्वभावके अवलम्बनमें सत्य विश्राम—देखो भैया! जगत विचित्र है। जगतके जितने भी सुख है, वे विश्रामके योग्य नही है। मनुष्य कर्मके आधीन परवश है और अतमे उसे मरना पडता है। सब कुछ जितना वह पा सकता था, उसने पाया, परन्तु इन सबको एक दिन छोडकर उसे मरना होगा और नवीन भवमे पैदा होना होगा। इसलिए यहाँ के सारे मोहादि भावोको छोडकर और अपने आपमे लक्ष्य करके आगे बढो तो ही अनत सुख की प्राप्ति हो सकती है। इस दुनियाके सारे समागमोसे अपना लक्ष्य हटाना चाहिए। केवलज्ञान ही एकमात्र सुख है, क्योकि उसमे सारे अनिष्ट दूर हो गये और सारे इष्ट मिल गये तथा किसी भी परपदार्थका आलम्बन नही करना पडा। केवलज्ञानकी अवस्थामे सुख होता है, उसकी प्रतिपत्तिका विपक्ष जो दु.ख अथवा शातिके अनुभवनका विपक्ष जो दु ख होता, जिसका कारण अथवा साधन अज्ञान होता है। जब उनके अज्ञान ही नष्ट हो गया तो वहाँ तो केवलीके सारे अनिष्ट अथवा दु.ख दूर हो गए। उनका वह परिपूर्ण उत्पन्न हुआ ज्ञान अनन्त सुखका साधन हो गया। यदि मनुष्य अपनी एक आत्माको चिदानन्द खालिस देखे और अनुभव करे कि मै बाहरी पर्याय कुछ भी नही हू और एक बार भी स्वानुभव प्राप्त करे, पर्यायबुद्धिको दूर करके निज शुद्ध आत्माकी बुद्धि हो जाय तो जब तक उसके ससार होगा, उसको अच्छा-अच्छा भव मिलेगा। किसी भी एकातमे बैठकर यदि मनुष्य सोचे कि मै क्या हू ? तो सबसे बादमे यही उत्तर आयेगा कि मैं यही ध्रुव आतमस्वभावी हू। किसीसे पूछे कि तू क्या मरना चाहता है, तो वह यही कहता कि नही, मै तो ध्रुव ही रहना चाहता हूँ। तो उसे कहते कि हे आत्मन्! तू मरना नही चाहता तो तू वही है, जो ध्रुव है।

ध्रुव अन्तस्तत्त्वके अवलम्बनमें हित—एक ही चीजको पकडकर बैठ जाओ तो सब कुछ मिल जायगा। जो ध्रुव नही, सो मै नही, जो विनाशीक है, वह मै नही हू। ये बाह्य समागम इसी आकारमे हमारे समीप सदा रहने वाले हे क्या, नही है। हमारा खुदका शरीर

ध्रुव है क्या ? नही, यह भी मिट जायगा। फिर कहते कि भाग्य तो हमारा ध्रुव है, तो उत्तर मिलता कि भाग्य और कर्म भी ध्रुव नही है, इसलिए वह भी तू नही। फिर रागद्वेष मोह आदि भाव ध्रुव है क्या ? वे भी ध्रुव नही, इसलिए वह भी तू नही, क्योकि तू तो वह है जो ध्रुव है। यहाँ वह मनुष्य एकान्तमे बैठा शेखचिल्लीकी तरह कल्पना और ज्ञान चल रहा है, उसकी ये कल्पना और ज्ञान भी ध्रुव नही, इसलिए वह भी वह नही है। यह तो खड ज्ञान है, यह जो सदा नही रहता। मझोला क्षयोपशम तो किसी आत्माके वडा बनते ही मिट जाता और किसी आत्माके छोटा बननेपर भी मिट जाता। केवलीके भी मिट जाता और जीवके निगोदमे जानेपर भी मिट जाता। इस तरह तो उसको भी क्षति पहुचती। तो इसलिए यह भी तू नही है। तो मैं क्या हू ? क्या केवलज्ञान मैं हू ? कहते कि अव्वल तो इस तरहका प्रश्न ही नही उठाना चाहिए, ऐसी चर्चा करना तो अप्रकृत है, वह प्रकरणसे बाहर होती क्योकि हम तो अपनेमे जो अभी है उसपर विचार कर रहे है और पूछो भी तो देखो प्रतिसमयमे होने वाले ज्ञानस्वभावकी जो शुद्ध तरग है, स्वाभाविक तरग है, वह एक समयकी तरग भी दूसरे समयमे नही रहती और वह भी ध्रुव नही, इसलिए वह भी मैं नही हू। जहाँ नाना अवस्थाए होती है तो एक चीज ऐसी भी होती है, जिसकी कि वे नाना अवस्थाए हुई है। इसी तरह ज्ञानकी सारी अवस्थाए जिस स्वभावकी होती है, वह तो मैं एक ही हू। उस चीजको कहते कि वह एक चीज वह ज्ञानस्वभाव है, जिसकी कि ये सब अवस्थाए होती है। तो यह ज्ञानस्वभाव जो मेरा है, जो अनादिसे है, वह मैं हू।

वह ज्ञानस्वभाव केवलज्ञानसे मिलकर भाईचारेकी तरह हो गया, परन्तु ध्रुव तत्त्व तो ज्ञानस्वभाव ही है, और केवलज्ञान उसकी पर्याय है। इसलिए वह ज्ञानस्वभाव अनन्त भी है। वही ज्ञानस्वभाव मैं हू, जो कि ध्रुव ही है। इसके अतिरिक्त और कुछ भी मै नही हू। इस प्रकार एक केवल दृढताके साथ ज्ञानस्वभावकी भावना सदा की जाय तो वही केवलपना और वही सुखका स्वरूप है। इसके अतिरिक्त और कुछ भी सुखका स्वरूप या मार्ग नही है।

केवलीके पारमार्थिक सुखका श्रद्धान करानेका उपक्रम—अब केवली भगवानके ही पारमार्थिक सुख है, अर्थात् वास्तविक सुख केवली भगवानके ही ऐसी श्रद्धा करवाते हैं। ज्ञानी गुरुवोकी देशनाके निमित्तसे आत्मा सम्यक्त्वको प्राप्त होता है। निमित्तदृष्टिसे यह बात कही जा रही है कि श्री कुन्दकुन्ददेव वास्तविक सुखकी श्रद्धा करवाते है, धन्य वह समय जव देवके साक्षात् दर्शन हो रहे थे, जिनकी परोक्ष इस वाणीसे भव्य अपना उद्धार कर रहे थे तो जब दर्शन व वचन भी साक्षात् मिलते थे, जिन्हे मिलते थे उन्होने मोक्षपथका लाभ लिया ही है। यहाँ आचार्यदेव केवलीके ही पारमार्थिक सुख है, ऐसी श्रद्धा कराते हैं।

णो सद्दहंति सोक्खं सुहेसु परमंति विगदघादीणं ।
सुणिऊण ते अभव्वा भव्वा वा तं पडिच्छंति ॥६२॥

केवलीके पारमार्थिक सुखका श्रद्धापन—मोहनीय आदि कर्मोंके जालमे जो फसा होता है ऐसे जीवने सुखाभासमे सुखकी ऐसी रूढि बना रखी है कि वही उसे सुख दिखाई देता है, परन्तु वह रूढि वास्तविक चीज नही है, क्योकि वह स्वभावको प्रतिघात लिए होती है और आकुलताको लिए होती है । जो स्वभावका घात करने वाली अवस्था है वह सुखका कारण नही । जैसे किसी बर्तनमे पानी रखा है, यदि उसमे ककर डाल दो तो उस पानीमें आकुलता पैदा हो जायगी, इसी तरहसे जब भी रागद्वेषका कंकर आत्मामे पडता, दर्शन ज्ञान आदिकी स्थितिमें प्रतिघात हो जाता है और आकुलता पैदा हो जाती है, परन्तु वह स्थिति सुखकी नही । जिनके घातिया कर्म नष्ट हो गये, जिनके स्वभावके घातका अभाव है, उनके ही पारमार्थिक सुख है । यही तो सुखका लक्षण है, वह केवलीके है, अत. केवलीमे पारमार्थिक सुख है, ऐसी श्रद्धा करनी चाहिए ।

आत्मीय आनन्दकी स्वाभाविकता—एक भाईने अभी प्रश्न किया कि यहाँ हमको जो सुख मालूम पडता है वह दु खके कारण मालूम पडता है, यदि दु ख नही होता तो सुख ही है, ये हम कैसे मानते ? ऐसी यहाँ शका हुई । परन्तु बात ऐसी है कि जब तक स्वानुभव अवस्थाका अनुभव न हो जाय तब तक उस सुखका अनुमान हो ही नही सकता । सिद्धोकी बातको जाने दो, अपने आपमे जैसा कि आत्मस्वरूप बताया, वस्तुका स्वरूप बताया, ऐसी स्थिति करके अपने ही स्वानुभव अवस्थाको पहिचानो तो उसके वहाँ ऐसा प्रत्यय हो जाता है कि सुख और दु.खसे परे आनन्द नामकी कोई चीज है । स्वानुभवके सुखका मुकाबला भगवानके सुखसे करना चाहिए, लौकिक सुखसे नही । सुखका अर्थ है, ख माने इन्द्रिया, सु माने भले प्रकारसे रहे, जहाँ इन्द्रियाँ भले प्रकारसे सतुष्ट रहे, उस स्थितिको सुख कहते है तथा जहाँ ख-इद्रियोको दु.—बुरा लगे वह दु.ख है । इससे तो यही प्रसिद्ध हुआ कि भगवानका ज्ञान अतीन्द्रिय है और सुख भी अतीन्द्रिय है, सो अतीन्द्रिय होनेके कारण उसे सुख शब्दसे कहना उपयुक्त नही उसे आनन्द शब्दसे बताना योग्य है । परन्तु व्यवहारियोको समझाना है सो सुख शब्दसे प्रारम्भ किया जाता है ।

प्रभुके आनन्दकी सासारिक सुखसे विलक्षणता—भगवानके सुखका मुकाबला इन्द्रियसुखसे न करे । किन्तु स्वानुभव सुखसे ही भगवानके सुखका मुकाबला भले प्रकारसे हो सकता है । जैसे किसी आदमीने दो पैसेके पेडे खरीदकर खाये और किसी आदमीने एक रुपयेके पेडे खरीदकर खाये, परन्तु दो पैसेके पेडे खाने वालेको उस स्वादका अन्दाजा होता है, जो १) रु० के पेडे खाने वालेको प्राप्त होता है । इसी तरह सम्यग्दृष्टि स्वानुभवके पश्चात् समझता है कि

जो आनद हमने अनुभव किया, केवलीके स्वानुभवका अनुभव भी वैसा ही, किन्तु पराकाष्ठाको प्राप्त होगा। इसलिए रागद्वेष आदि भावोमे रहकर सिद्धोके सुखका अनुभव नही हो सकता।

मोक्षसुखसुधापानसे दूर रहने वालोकी स्थिति—यहाँ यह बताया जा रहा है कि इन्द्रियसुख तो वास्तवमे दु:ख ही है। उसमे जो सुखकी रूढि पड गई, यह तो बिल्कुल अपरमार्थिक ही है। भगवानका अतीन्द्रिय सुख ही पारमार्थिक और वास्तविक सुख है। जिन्हे यह श्रद्धा नही है, वे मोक्षमार्गसे विपरीत अवस्था बनाते है। वे मोक्षसुखके अमृतपनसे दूर हटकर मृगतृष्णामे जैसे मृग जलके भारको ही देखता है, वे अभव्य जीव इन्द्रियोके सुखोमे सुखको खाजते है। भगवानका अतीन्द्रिय सुख ही पारमार्थिक सुख है, ऐसी जिनको श्रद्धा नही है, वे मोक्षके अमृतपानसे दूर है। मोक्षकी शुरुआत चौथे गुणस्थानसे होती है, जिसे कहते है निर्जरा वह मोक्षका आशिक रूप है, और सिद्ध अवस्था होने तक वह निर्जरारूप मोक्ष ही चला करता है, मोक्षका ही एकरूप निर्जरा है। शुरू मोक्षका भी नाम मोक्ष ही है, परन्तु जो समस्त मोक्ष होता है, वही मोक्ष शब्दसे पुकारा जा सकता है। इसलिए मोक्षकी शुरूआतको निर्जरा शब्दसे पुकारा गया। आत्मामे जो उन कषायोके भावोसे स्वरूपाचरण होता है, वह मोक्षसुखके अमृतपानसे दूर हटकर मृगतृष्णासे जलके भारको जैसे मृग देखता है वैसे अभव्य जीव इन्द्रियसुखमे ही सुखका अनुभव करते है, मिथ्यादृष्टिका ऐसा ही अनुभव होता है। आत्माका सही अनुभव सम्यग्दृष्टिमे ही हो सकता है।

स्वानुभूतिमें निर्भयता—यहाँ शङ्का होती कि सम्यग्दृष्टिके कई प्रकारका भय रहता है तो उन्हे सम्यक्त्वका अनुभव नही रहता होगा। उत्तर—देखो भैया! भय ८वं गुणस्थानके छठे भाग तक रहता है। चौथे गुणस्थानमे सबसे ज्यादा पाचवेंमे उससे कम, इस प्रकार कम भले ही होता जाता हो और वह भी इतना कम कि बुद्धिगम्य भी नही रहता, परन्तु भय रहता इसी स्थान तक है। फिर शङ्का होती कि भय और सम्यक्त्व दोनो एक साथ रह कैसे सकते है? इसका उत्तर यह है कि प्राक् पदवीमे सम्यक्त्व तो सदा रहता है, परन्तु स्वानुभव सदा नही रहता है, स्वानुभवकी स्थितिमे भय नही रहता और स्वानुभवके सम्यक्त्वमे अन्तर्भय नही रहता। भय और जुगुप्सा इनका आस्रव आगममे सदा नही कहा गया। जैसे पूछा जाय कि चौथे गुणस्थानमे एक जीवके एकदा कितने आस्रव होते है तो उत्तर होगा कि अधिकसे अधिक ९ और कमसे कम ७। वह इस प्रकार है—अप्रत्याख्यानावरणकी १, प्रत्याख्यानावरणकी १, सज्वलनकी १, हास्यादियुगलमे २, वेद १, भय व जुगुप्सा तथा योग १, इस तरह तो ९ हुए। भय जुगुप्सामे से एक ही लो तो ८ हुए। भय व जुगुप्सा दोनो ही न लो ७ हुए। इतना ही नही कि भय आस्रव किसी सम्यग्दृष्टिके नही होता। किन्तु मिथ्यादृष्टिके भी कदाचित् भय व जुगुप्सा उदयमे नही होते, यहाँ भी आस्रव एक जीवकी अपेक्षा

१०-९-८-७ बताये गये है, हॉ सज्ञारूपमे भय ८वेके छठे भाग तक है ।

स्वानुभवकी लब्धिरूपता व उपयोगरूपता—स्वानुभव दो प्रकारके होते है, स्वानुभव लब्धिरूप और स्वानुभव उपयोगरूप । स्वानुभवके उपयोगरूपमे होनेपर मैथुन आदि कोई प्रकारकी बात नही रह सकती । परन्तु सम्यक्दृष्टिके तो सम्यक्त्व रहते हुए भी गृहस्थावस्था मे सभावित अल्पमैथुन है, स्त्रीसेवन है । वहॉ भी उसका स्वानुभव लब्धिरूप है, दृष्टिरूप है । उस सम्यग्दृष्टिका स्वानुभव वहॉ उपयोगरूप नही है । सम्यग्दृष्टिके भय, मैथुन आदि सम्यक्त्व के साथ रह तो सकते है, किन्तु स्वानुभवकी उपयोगरूपता प्राप्त होनेपर रह सकते नही है । जैसे एक आदमी अग्रेजी और हिन्दी दोनो जानता है । जब वह हिन्दीका कोई पत्र पढ रहा है, तो उस समय हिन्दी तो उसके उपयोगरूप होती, और अग्रेजी केवल लब्धिरूप रहती । यह बात नही है कि उसमे अग्रेजीकी योग्यता ही नही । अग्रेजीके विषयमे योग्यता तो है, परन्तु उपयोगरूप उस कालमे हिन्दी ही रहती । उस वक्त उसे अग्रेजीके विषयका सम्यक्त्व तो है, परन्तु उसका उपयोग नही है । इसी प्रकार अन्योपयोगी सम्यग्दृष्टि जीवका स्वानुभव केवल लब्धिरूप है ।

सम्यक्त्वमें अन्तःसस्कृति—यहा प्रश्न हुआ कि सम्यग्दृष्टि जीव अपने रोजगारमे, व्यापारमे विषाद आदि क्यो करता है ? हाकिम नाराज होता है, तो उसे विषाद क्यो होता है ? क्या ऐसे सम्यक्त्व हो सकता है ? इसका उत्तर देते है कि विषाद आदि सब कुछ होते हुए भी वह सम्यग्दृष्टि है । जो सम्यग्दृष्टि ६ महीने तक किसी मुर्देसे प्रेम करने वाला है, तो इन छोटे-छोटे प्रश्नोसे, इन छोटी-छोटी बातोसे उसके सम्यक्त्व न रहे, यह बात नही हो सकती । इतना विषाद आदि होते हुए भी कुछ देर बाद ही उसका लक्ष्य स्वकी ओर पहुचता है । अप्रत्याख्यान आदि कषायोके उदयमे उसकी विषादकी परिणति हो गई, परन्तु मिथ्या-दृष्टि जैसा भाव उसके नही रहेगा ।

अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूपकी भावनामें लाभ—यहॉ यह बतलाते कि इन्द्रिय सुख हेय है और अतीन्द्रिय सुख उपादेय है, ऐसी भावना जो किसीके मनमे आ गई है तो वे निकट भव्य जीव है और जिनके ऐसी भावना आगे आवेगी, वे दूर भव्य जीव है । वे ही ससारसे पार हो सकते है जिनके कि ऐसी श्रद्धा आ गई । अतीन्द्रिय सुखकी श्रद्धा करना, भगवानके स्वरूपकी श्रद्धा करना, भगवानकी भक्ति करना, ये सब एक ही चीज है । अतीन्द्रिय सुखकी भावना करो तो कर्मोकी व्यवस्थासे जो भी क्लेश आते है वे सब वहॉ निर्जराके लिए ही आते है और उनकी निर्जरासे अतीन्द्रिय सुखकी जड अन्दर ही अन्दर दृढ ही होती है ।

प्रभुभक्तिका प्रसाद—एक आदमी भगवानका पुजारी था और उसने उनकी प्रतिमा अपने ही घरमे रख रक्खी थी । प्रति दिन ही वह बडे भक्तिभावसे उसकी पूजा करता था ।

उस पुजारीकी चार आदमियोसे लडाई होगई । पुजारी धनी भी था । वे चारो आदमी एक दिन डाकू बन कर उसके घरमे घुस गये कि हम तेरा धन लूटेंगे और तुझे मार डालेंगे, तब उसने जवाब दिया कि मैं मरनेको तैयार हू, परन्तु उससे पहले मुझे एक काम कर लेने दो। मेरे मकानमे मेरे भगवानकी मूर्ति है, मरनेसे पहले मुझे उसे नदीमे सिरा आने दो। उन्होने स्वीकृति दे दी और दो आदमी उसके साथ कर दिये कि कही वह दगा देकर भाग न जाय । नर्मदा नदी पास ही थी, इसलिए वह मूर्तिको लेकर चला और नदीके बीचमे पहुचकर पानीमे मूर्तिको सिराते समय यह कहने लगा कि मुझे बडा दुःख है कि मैंने जिस भगवानकी पूजा मैंने प्रति दिन की, उनको जीते जीते जी मैं नदीमे सिरा रहा हू, मुझे मरनेका दुःख नही है । इतनेमे ही कहीसे आवाज आई कि हमे सिरा दो, तू तो बडा भाग्यशाली है । तूने अपने पूर्व भवमे इन चारो आदमियोको मार डाला था, और उसके फलसे तुझे इन चारोके हाथसे अलग अलग मरना था, परन्तु भगवानकी भक्तिके प्रसादसे तेरा ३ जगहका मरण तो कट गया और चारो आदमी अलग अलग न मार कर एक ही साथ तुझे मारनेको आये है । उसको बडी खुशी हुई । वह सिराने लगा तो जो दो डाकू साथ आये थे, उन्होने भी उस आकाशवाणी को सुन लिया था, इसलिए उन्होने सोचा कि अभी इसको मूर्ति मत बहाने दो और उससे कहा कि भाई तुम एक बार हमारे साथ चलो, हम चारो आदमी कुछ सलाह करेंगे, फिर आकर भले ही इसे बहा देना और उसको अपने साथ वापस उसके घर ले गये । वहाँ पहुचनेपर बाकी दो डाकुओने पूछा कि वहाँ क्या हुआ तो उन डाकुओने उनको सारी बात बताई । यह सुनकर चारोने सोचा कि भगवानने तो इसके तीन मरण काट दिये तो क्या हम इसका एक भी मरण नही काट सकते और उन्होने उसे मारने और धन लूट ले जानेके बजाय उसी प्रकार छोड दिया और हाथ जोडकर वे चारो चले आये । इसी प्रकार आपके शुभोपयोग और पुण्य कितने ही प्रकारकी आकुलताओको नष्ट कर देते हैं, तो धर्मरूप परिणति जो कि अतीन्द्रिय परिणतिका घात करती है, ऐसा क्या उस रही सही विभावपरिणतिको भी नष्ट नही कर सकती ? बाह्यदृष्टि छोडकर अन्तर्दृष्टि करो, वस्तुत तो धर्म ही आकुलताको नष्ट करता है । समवशरणकी बात करते हो तो समवशरण तो यहाँ भी है, जहाँ आप रोज आते हो । ठीक दृष्टि करके देखो तो दिव्यध्वनि ही यहाँपर नही मिलेगी, और सारी चीजे यहाँ मिल जायेंगी ।

अन्तर्दृष्टिके आलम्बनका अनुरोध—ज्ञानी जीव व्यवहारका अवलम्बन नही करता, वह तो व्यवहारमे आता रहता है । अवलम्बन रखता है तो वह निश्चयका ही अवलम्बन रखता है । जब स्वानुभवकी अवस्था आती है तो निमित्त हट जानेकी हालतमे ही आता है । अब तक तो इस जीवने व्यवहारका आश्रय कर करके अपने आपको जो कुछ माना, वह तो

किया ही किया है, परन्तु जो दृष्टि आज तक उसने नही पाई, उस दृष्टिका आलम्बन करना चाहिए। उस दृष्टिमे सत्यरूपसे व्यवहार भी जगमग आ जाता। इस प्रकार जो अभी अतीन्द्रिय सुखकी श्रद्धा कर ले, वे तो निकट भव्य जीव है और जो जो आगे श्रद्धा करेंगे, वे दूर भव्य जीव हैं। मनुष्य भव अति दुर्लभ है, झट आत्मस्वरूपकी ओर आवो।

अब इन्द्रियज्ञानका इन्द्रियसुखके साथ सम्बध बताते हुए इन्द्रियसुखका कुहेतु और कुफल दर्शाते हुए उपेक्षामार्गको प्रबल बनवाते हैं। जिन जीवोके ज्ञान परोक्षज्ञान है अर्थात् इन्द्रिय और मनके निमित्तसे ज्ञान व्यक्त होता है, उनके जो इन्द्रियसुख होता है, वह अपरमार्थिक है, आभास है, आकुलता रूप है, इस बातका विचार करते है।

मणुआऽसुरामरिदा अहिद्दु दुआ इदिएहि सहजेहि।
असहता त दुक्ख रमति विसएमु रम्मेमु ॥६३॥

ऐन्द्रिय वेदनाओसे पीडित नरेन्द्र देवेन्द्रोके भी ज्ञानकी परोक्षता—साधारण मनुष्य व असुर व अमर आदिकी तो बात ही क्या, इनके व इन्द्र, चक्रवर्ती, असुरेन्द्र, देवेन्द्र आदि प्राणियोके भी प्रत्यक्षज्ञान तो है नही। अत परोक्षज्ञानका आश्रय बन रहा है, सो परोक्षज्ञान का आश्रय करने वाले इन जीवोके भी इन्द्रियोमे मित्रता चल रही है, क्योकि इन्द्रिय परोक्षज्ञानके विकासमे निमित्त है। वस्तुत प्रत्यक्षज्ञान तो केवलज्ञान है। केवलज्ञान होनेसे पहिले जितनी भी प्रवृत्ति देखी जाती है, वहाँ परोक्षज्ञान ही प्रवृत्तिका सहायक है। परोक्षज्ञान आत्मा से ही उत्पन्न होता है, कही इन्द्रियोसे उत्पन्न नही होता, किन्तु इन्द्रियँवृत्ति परोक्षज्ञानमे निमित्तमात्र हैं। जैसे देखने वाली तो आँख हैं, देखना आँखसे होता है, किन्तु जिसकी आँख कमजोर है, उसको देखनेमे चश्मा निमित्तमात्र है। वह लौकिक जनोके परिचयमे अच्छी तरह से आया हुआ है। चश्मा जड है, काच है, वह देखने वाला नही है, किन्तु देखने वाला नेत्र है। वस्तुत देखने वाला भी नेत्र नही है, किन्तु आत्मा है, परन्तु आत्मा स्वरूपदृष्टिसे च्युत रहनेके कारण इतना अशक्त, ऐसा देखने वाला भी हो गया है कि वह इस अवस्थामे इन्द्रियवृत्तिके निमित्तके अभावमे जान नही सकता है।

परोक्षज्ञानमे विषयवेदनाकी पीड़ायें—यहाँ कही इन्द्रियोसे जानना नही होता है, किन्तु जानना तो आत्मासे ही होता है, परन्तु परोक्षज्ञानीके ज्ञानके विकासमे इन्द्रियवृत्ति निमित्तमात्र है। सो ये परोक्षज्ञानी प्राणी इन्द्रियाभिलापाकी पीडासे सताये गये उस दु खको न सहन करते हुए रम्यविपयोमे रमण करते है। विपय जितने है, वे सब जड है। वे स्वय न रम्य है, न अरम्य है। विपयभूत अर्थ तो निज स्पर्श रस गध वर्णके परिणमनसे परिणमते रहते है। मोही जीव ही अपनी कपायके अनुकूल पदार्थोमे कल्पनायें करता रहता है, सो विपयाभिलाषीको जो विषय विपयेच्छाके क्षणिक दूर होने रूप सुखाभासमे निमित्त है, उन्हे

तो रम्य समझता है, और जो इच्छाके विपरीत प्रतीत होते है, उन्हे आरम्य समझने लगता है ।

ऐन्द्रिय वेदनाके असहनसे विषयविपत्तिमें पतन—अपने कषायभावके कारण विषयोके प्रेमरूप विकल्प होता है, फिर उस विकल्पजन्य दुःखकी निवृत्तिके लिए विषयका ही उद्यम होने लगता है, यह सब इन्द्रिय और मनके निमित्तसे होता है, सो विषयसुखके लोभियोको विषयसुखकी साधन सामग्री जो इन्द्रिय व मन है, उसमे प्रीति हो जाती है, सो इन्द्रियोमे मित्रताको प्राप्त करने वाले प्राणियोको उदित मोहरूप अग्निने ग्रस लिया है, सो उनमे अत्यन्त तृष्णा उत्पन्न हो गई है । जैसे अत्यन्त गर्म किया लोहेका गोला ऐसा सतप्त हो रहा है कि पासके पानीको शीघ्र सोख लेता है, वैसे ही इन्द्रियविषयाभिलाषासे यह जीव ऐसा सन्त्रस्त हो गया है कि उस दुःखके वेगको सहन न कर सकनेसे वह विषयविपत्तिमे गिर पडता है । जैसे व्याधिसे त्रस्त रोगी व्याधिका प्रतीकार करता है, इसी तरह इन्द्रियाभिलाषकी व्याधि वाला यह रोगी ससारी प्राणी विषयोके भोगसे प्रतीकार करता है । इसलिए मोही परोक्षज्ञानी जीवो के वास्तवमे सुख कहाँ है ? वह तो कल्पित सुखाभास है । ऐसे सुखाभासमे ही रत होकर मोही प्राप्त हुई ज्ञानशक्तिको व्यर्थ गवा देते है । इन सब अनर्थोका कारण वास्तविक तत्त्वका अपरिज्ञान है ।

आत्मार्थानुभवनका अनुरोध—आत्मतत्त्व आत्मार्थानुभवगम्य है । यह आत्मपदार्थ द्रव्यमय है, द्रव्य गुणात्मक है, इन गुणोसे पर्याय प्रकट होती है । जगतके जीवोको इन पर्यायो का परिचय है, परन्तु पर्यायोका मूल स्रोतरूप गुणोका परिचय नही, गुणोके अभिन्न आधारभूत द्रव्यका परिचय नही और द्रव्यके निर्विकल्प ज्ञानमात्रसे अनुभाव्य अर्थका दर्शन नही है । देखो भैया ! कितना कष्ट है, अपने सहजस्वरूपके उपयोग द्वारा च्युत होकर लडकता खडकता कहा जाकर अटका है ? कहाँ तो अर्थानुभवका सहज आनन्द और कहा पर्यायमूढताका महान् क्लेश । हे आत्मन् ! बहुत भटक लिए पर्यायमूढ बनकर इन्द्रियोके दास होकर विषयकी गहन अटवीमे । अब उनको अपने विकास-महलमे बसो । पर्यायकी मुग्धता छोडकर यह देखो पर्यायो का उद्गम कहाँसे हुआ ? गुणोसे । गुण क्या बिखरी वस्तु है ? उनका अखण्ड एक अभिन्न पिण्ड द्रव्य सत् है । सर्व भेद विकल्पोसे हटकर अभेद स्वरूप निज आत्मद्रव्यका अनुभव करो । इन्द्रियोसे सुख होता है, इन्द्रियोसे ज्ञान होता है, इस भ्रमको छोडो । तुम ही तो स्वय सहज स्वभावसे ज्ञानमय हो, आनन्दमूर्ति हो । अब इन्द्रियोकी मित्रता छोडकर ध्रुव मित्र आत्मतत्त्वको निरखो व अपना समय सफल करो, पर्यायोमे दृष्टि फसाकर जीवन व्यर्थ न खोओ । यहा जो भी समागम है, वह पर्यायोका प्रसार ही तो है ।

स्वभावद्रव्यपर्याय—पर्याय दो प्रकारसे हैं—१. द्रव्यपर्याय, २ गुणपर्याय । द्रव्य-

पर्याय भी २ प्रकारकी है—१ स्वभावद्रव्यपर्याय २. विभावद्रव्यपर्याय। द्रव्यपर्यायका दूसरा नाम व्यञ्जनपर्याय भी है। जो प्रदेशोका आकार होता है वह द्रव्यपर्याय कहलाता है। स्वभावद्रव्यपर्याय तो धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य व कालद्रव्यके शाश्वत रहता है। पुद्गलद्रव्यके परमाणुमात्र अवस्थामे स्वभावद्रव्यपर्याय कहा है। यद्यपि वस्तुतः परमाणु ही द्रव्य है, स्कध द्रव्य नही, परन्तु अनेक परमाणुवोका मिलकर एक पर्याय स्कध बनता है, इस दृष्टिसे उस पर्यायसे निवृत्त करनेके लिए परमाणुमात्रके स्वभावद्रव्यपर्यायका कथन किया है। जीवद्रव्य मे मुक्त परमात्माके स्वभावद्रव्यपर्याय कहा है। प्राणियोकी दृष्टि स्वभावद्रव्यपर्यायपर भी कठिनतासे पहुचती है। यदि स्वभाव द्रव्यपर्यायपर भी दृष्टि पहुचे तो उसे छोडकर स्वभावदृष्टि बनानेमे कुछ सुकरता आ सकती है।

विभाव द्रव्यपर्याय—विभावद्रव्यपर्याय २ प्रकारका है—१. समानजातीय द्रव्यपर्याय, २ असमानजातीय द्रव्यपर्याय। समानजातीय द्रव्यपर्याय तो पुद्गल स्कन्धोकी है, क्योकि समान जाति वाले अर्थात् पुद्गल परमाणुवोका मिलकर वह स्कधपर्याय बना है। वस्तुतः तो वहाँ भी द्रव्य सत्की दृष्टिसे देखो तो सर्व परमाणुवोका अपना-अपना आकार अलग है, फिर भी वह अतिसघातसे स्कध बना है। अत वह समानजानीय द्रव्यपर्याय हुआ। मनुष्य नरक तिर्यंचदेव ये सब असमानजातीय द्रव्यपर्याय है, क्योकि मनुष्य आदि जीवद्रव्य अनेक पुद्गल कर्मवर्गणायें अनेक नोकर्मवर्गणाये इनका पुञ्ज आकार है। ये चेतन तथा अचेतन ऐसे असमान जातिके द्रव्योसे यह पर्याय हुआ है। जगत्के मोही प्राणी इन्ही पर्यायोमे मुग्ध बन रहे है। जो शरीर मिला, जो समागम मिला, इस ही मे एकमेक बने जा रहे है। एक माननेसे कही वस्तुतः एक नही हो जाता है, केवल कल्पनासे आकुलित बने रहते है।

गुणपर्याय—अब गुणपर्यायकी कथा सुनिये—गुणपर्याय कहते है गुणोकी प्रतिसमय की अवस्थावोको। गुणपर्याय दो प्रकारके है—१ स्वभावगुणपर्याय, २ विभावगुणपर्याय। स्वभावगुणपर्याय तो जैसे परमात्मा प्रभुमे है, यथा ज्ञानका केवलज्ञानपर्याय, दर्शनका केवलदर्शनपर्याय, सुखका अनन्त सुख शक्तिका अनन्तवीर्य आदि। विभावगुणपर्याय वे है, जो स्व परके प्रत्ययसे उत्पन्न होते है, इनमे तारतम्य भी अवश्य पाया जाता है। विभावगुणपर्याय जीवमे तो मतिज्ञानादि, चक्षुर्दर्शनादि, क्रोध, मान, माया, लोभ, आकुलता आदि है। तथा स्कधोमे ये सब ज्ञानमे आ रहे—रूपविशेष काला, पीला, रसविशेप खट्टा, मीठा आदि, गधविशेष सुगध, दुर्गन्ध, स्पर्शविशेष रूखा, चिकना आदि है। जगतके मोही जीव इन विभावगुणपर्यायोमे आसक्त हो रहे है। इन्द्रियविषयाभिलापकी पीडासे ऐसे पीडित हो गये है कि कल्पित विपर्यायोमे दीपपर पतगा (कीडा) की तरह गिरे जा रहे है। अहो, मोहका प्रसार देखो जहा सारका नाम भी नही है, उसीको सार समझा जा रहा है। इस सबका कारण तत्त्वके परि-

ज्ञान श्रद्धाका अभाव है।

आत्मार्थानुभवका प्रसाद—आत्मतत्त्वको पानेके लिये भैया ! यह उपाय करना है कि पर्यायें जहासे उद्भूत हुई, उनकी दृष्टि रखकर पर्यायोको गुणोमे विलीन कर दो, और गुणोका अभेद आधार देखकर गुणोको द्रव्यमे विलीन कर दो, और द्रव्यदृष्टिकी ऐसी विशुद्धता बतावो कि द्रव्यका भी विकल्प टूटकर मात्र आत्मार्थानुभव रह जाय। पर्यायकी मुग्धता सर्वप्रथम छोड ही देना चाहिये। विपयवृत्तिका मूल पर्यायमोह है, और विपयप्रवृत्तिका साधन इन्द्रिय-ज्ञान है। ये इन्द्रियवृत्तियाँ व्याधि है। इस व्याधिवालोको पारमार्थिक सुख नही हो सकता।

इन्द्रियसुखकी अपरमार्थिकता—इन्द्रियसुख अपारमार्थिक हैं, ऐसा यहाँ विचार किया है। जिन प्राणियोके अनादि अनन्त अहेतुक ज्ञानस्वभावपर ही लक्ष्य नही होता, उन प्राणियो की इन्द्रियोसे मित्रता है। प्राणी और आत्मा शब्दमे भी फर्क होता है। जिनके प्राणोमे राग है, उन जीवोको प्राणी शब्दसे सबोधित किया गया और जो कुछ विवेकी होते है और अपने ज्ञानस्वभावके निकट पहुचते है उन जीवोको हे आत्मन् इन शब्दोसे कहते हैं। कहते कि इन प्राणियोके प्रत्यक्षज्ञान तो है नही और उनके परोक्षज्ञानका ही सहारा है। परोक्षज्ञानकी सामग्री इन्द्रिया होती है। परोक्षज्ञानका सहारा लेने वाले इन प्राणियोंके परोक्षज्ञानकी सामग्री जो इन्द्रिया है उनमे उनकी सदा मित्रता चलती है। जिनके इन्द्रियोमे मित्रता आ गई ऐसे इन जीवोके उदयमे आये जो महामोह दावानल, जो नही सहे जा सकते, तो उस दु खको सहते सहते, व्याधियोको प्राप्त होते होते कभी कोई स्थिति ऐसी आई कि कुछ व्याधिया कम हुई या दब गईं अथवा कुछ देरके लिए उन व्याधियोकी दवा लगी, उस दवाका जो सुख हुआ उसमे अपनो बुद्धि रखते हैं। कहते है कि व्याधियोकी दवा। दवा किसे कहते है ? जो रोगी के रोगको दबा देती है, जडसे नही मिटाती। जो रोगको जडसे नही निकाल दे वही दवा है। ससारी सुख, इन्द्रियोका सुख, उन व्याधियोके लिए उसी प्रकारकी एक दवा है जो उस दु ख को दबा देती है, जडसे नही मिटाती। परन्तु इसके विपरीत औषधि ज्ञानावलम्बन, वह तो अमृत है और उससे क्लेश रोग मूलसे नष्ट हो जाता है।

इन्द्रियसुखमें सुखकी भ्रान्ति—तृष्णासे दु खको नही सह सकने वाले प्राणीको विषय की दवा मिली और उसके विपय राग उत्पन्न हो गया, फिर क्या हुआ ? रागकी तरह तो ये इन्द्रिया हुईं और रोगकी दवाकी तरह यह विपय हुए। उस प्राणीके विपयोके प्रभावसे इच्छाएं बदलती रहती है, इसलिए उसे सुख मिलता है या सुख मालूम देता है। उस समयमे वह ऐसा समझता है कि उसे सुख हुआ। जैसे कोई कुत्ता हड्डी चबाता हो उस बीचमे कुछ खूनकी बूंद भी उसके मुहमे आ जाय तो वह यह समझता है कि इस हड्डीमे से खून खाया और उसी हड्डीमे श्रद्धा करने लग जाता है, और उसकी रक्षा दूसरे कुत्तेसे लडकर भी करता

है । उसी तरह मोही जीवके परपदार्थके विपयोमे उनके सेवनमे सुखकी प्रवृत्ति होती, उसके कारण उसने यह माना कि विपयोसे यह सुख आया, इसलिए वह भी विषयोकी आसक्ति करता और उसके सिवाय कोई दूसरी निज चीजका आश्रय नही करता । इस प्रकार छद्मस्थ जीवोके वास्तवमे सुख नही हो सकता । हमारे जितना इन्द्रिय सुख है, वह तो मात्र दुःख है । इनमे सुखकी श्रद्धा मत लाओ । इसके विपरीत जो स्वानुभवका सुख है, जो अतीन्द्रिय सुख है वह इन सुख और दुःखोसे कितना विपरीत है ?

सांसारिक सुखोके व्यामोहमें अनन्त निधिका घात—जैसे किसी रईस जागीरदारके मरनेपर लडका नाबालिग रह जाता है, और सरकार उस रईसकी सारी जायदाद कोर्ट कर लेती है तथा उस नाबालिग लडकेको १००) रु० माहवार खर्चके लिए दे दिया करती है, और वह लडका नाबालिग अवस्थामे सरकारके गुण गाया करता है, वही जब बडा हो जाता है, और समझ आती है कि मेरी करोडो रुपयेकी जायदाद सरकारने कोर्ट कर ली तो वह सरकारपर दावा कर देता है कि मै बालिग हो गया हू । इसी तरहसे जिसका ज्ञानसुख कोर्ट हो गया, पुण्य सरकारने उसे छीन लिया, उस नाबालिग अवस्थामे जरा पुण्य सुख मिला, जरा धन वैभव आदि मिले, तो उस पुण्य सरकारकी स्तुति करते है, और कदाचित् दुःख हो जाय तो कहते है कि कर्म फूट गये । परन्तु कर्म तो सिद्धोके फूटा है अर्थात् समस्त कर्मकलङ्कोका क्षय हो गया है । तुम्हारे कर्म कहा फूट गये ? यदि इस समय पुण्यकर्म नही रहे तो पापकर्म तो है, फिर कर्म फूटा कहाँ ? कर्म तो सिद्धोका ही फूटा है । यदि तुम्हारे भी कर्म फूट जाते तो तुम भी सिद्ध हो जाते । जैसे कि पुण्यके कारण कुछ सुख हमे मिला तो हम उस पुण्य सरकारकी स्तुति करते है । जब यह सम्यक्‌दृष्टि या बालिग हो जाता है तो यह सोचता है कि मै तो स्वभावसे ही ज्ञानसुखका पिण्ड हूँ । ज्ञानसुख तो मेरा स्वभाव ही है, सुखमे मेरी परिणति स्वयसे ही होती है, फिर ससारी सुखोमे मेरी दृढता कैसे हो गई ? तो फिर क्या किया ? ऐसे इस पुण्यके विरुद्ध दावा कर दिया और उससे कहा कि हे पुण्य ! तू मेरा साथ छोड दे । भेद किया कि वह सम्यग्दृष्टि हो जाता, जब यह सम्यग्दृष्टि हो जाता तो पुण्य सरकारको जीत लेता । वह जीव भव्य होता है और ससारसे पार हो सकता है, और जो विपय सुखोमे सुखबुद्धि करता है, और यही सडता है, गलता है, वह ससार क्लेश ही सहता, उसका मोक्षमार्ग नष्ट हो जाता है ।

अब श्रीमद्‌भगवत्कुन्दकुन्दाचार्य देव सयुक्ति निर्णय देते है तथा मुमुक्षुवोको पूर्ण निश्चय कराकर उपेक्षासम्बधी आगेके मार्गमे पहुचनेका मौन आदेश देते हुए यह वितर्क कराते है कि जहाँ तक ये इन्द्रियाँ है, वहा तक दु.ख होना स्वाभाविक बात है ।

जेसि विषयेसु रदी तेसि दुक्खं वियाण सब्भाव ।
जइ तं णहि सब्भाव वावारो णत्थि विसयत्थ ॥६४॥

विषयरतिमें क्लेशकी प्राकृतिकता—जिनका विषयोंमे प्रेम है, उनको दुःख स्वाभाविक है। यहाँ स्वाभाविकसे तात्पर्य आत्माके स्वभावसे अन्य निमित्त निरपेक्ष होता है, यह अर्थ नही लेना, किन्तु जो विषयोंमे प्रेम करता है, अब उसे दुःखी होनेके लिये कुछ प्रतीक्षा नहीं करनी है, विषयराग ही दुःखको लेकर उठता है अथवा दुःख नामकी परिणति किसी बाह्य पदार्थसे नही होती, आत्माके आनन्दगुणके विभावपरिणमनसे ही दुःख होता है, परतु विभाव-परिणमन निमित्तके असद्भावमे नही हो सकता। जब कर्मोदयादिक बाह्य निमित्त उपस्थित हो और आत्मा विषयोमे प्रेम करे तो अब देख लीजिये कि दुःख होना प्राकृतिक बात है या नही। जैसे अग्निकी यथाविधि सन्निधि प्राप्त हो, वहाँ जलका गर्म होना प्राकृतिक है। इसी तरह कर्मोदयको निमित्त करके जब विषयोमे प्रेम होता है तब दुःख होना भी प्राकृतिक है।

इन्द्रियोकी उद्धततामे अनर्थ—जिन प्राणियोके हत्यारी ये इन्द्रियाँ जीवित हो रही है, प्रचण्ड हो रही है उनकी विषयोमे रति होती है और उनको दुःख होना स्वाभाविक ही है। इन्द्रियोकी उद्धततासे उन्हे तुरन्त दुःख मिल ही जाता है। उनका वह दुःख कही विषयभूत पदार्थोंसे नही हुआ है किन्तु इन्द्रियविषयाभिलाषका स्वरूप ही दुःख लिए हुए है। जिन प्राणियोने असमानजातीय पर्यायरूप देहमे अहबुद्धि करली है कि शरीर ही मैं हू वे शरीरके व्यवहारमे ही तो लगेंगे, जैसे कि चैतन्यमात्र आत्मतत्त्वमे जिन्हे अहपनेकी श्रद्धा हुई है वे मै चैतन्यमात्र हू, ज्ञाताद्रष्टा रहना मेरा कार्य है, इस भावनासे आत्माके व्यवहारमे लग जाते है। जो शरीरमे आत्मपनेके व्यवहारसे लग जाते है उन्हे इन्द्रियविषयाभिलाष होना आवश्यक ही है और इन्द्रियविषयभिलाषकी वेदनासे पीडित होकर विषयोमे रति हो जाना स्वाभाविकी प्रेरणा है। यह प्रेरणा इन्द्रियोके विभावके स्वभावका फल है, आत्माकी स्वाभाविकी प्रवृत्ति नही समझता इसीलिये दुःख होना स्वाधीन हो गया। क्योकि इन्द्रियोकी उद्धतताका स्वभाव ही ऐसा है। इस सारी गडबडीका कारण अविद्या है। अविद्याका मूल है देहमे आत्मबुद्धि।

ऐन्द्रियवेदनासे विषयविपदाभिपात—अहो! यह आत्मा स्वय स्वरूपसे सहज असीम ज्ञान व आनदका घर है, परन्तु इस नाथने अपनी ही अविचारतासे क्या परिस्थिति बना ली? हे आत्मन्, अभी भी कुछ बिगडा नही है, यह सत्स्वरूपकी स्वाभाविकी व्यवस्थाका फल है। यदि परके उपयोगको छोडकर निज सहज शुद्ध चैतन्यसामान्य स्वभावमे उपयोग देवे तो अभी ही सारी आपत्तियाँ किनारा कर जावेंगी। यह सब अपनी असावधानीका फल है कि नाना द्रव्यपर्यायो और विविध गुणपर्यायोमे पिसकर विपर्य व विह्वल होना पड रहा है। जीव पुद्गल दोनोके सम्बन्धसे उत्पन्न हुई इन मनुष्य पशु आदि अवस्थाओमे ही जब आत्म-संस्कार पड चुका तब आत्मस्वरूपकी तो सभावना तक भी मैं असमर्थ हो गया। इसी कारण अचेतन पदार्थोंमे भी तीव्र आसक्ति हो गई है। शरीरकी पोषणा व विषयोकी साधनामे जो

जो भी अन्य वाह्य अर्थ निमित्त पड रहे है उनमे भी आसक्ति हो गई है। इस आसक्तिके फलमे बाह्य अर्थका समागम बनाना चाहता है किन्तु किसी परद्रव्यके विषयमे कुछ भी परिणमन कोई अन्य नही कर सकता है। उनका परिणमन इस आत्माके आधीन तो है नही, अतः अनुकूल प्रतिकूल परिणमनमे नाना सकल्प विकल्पोका क्लेश होना आपतित है ही। यह सब दुःख कही किसी उपाधिसे नही आ रहा है किन्तु इन्द्रियविपयाभिलाषियोको यह दुःख इद्रियोके स्वभावसे स्वयमे हो रहा है। इद्रियोसे प्रयोजन यहाँ भावेन्द्रिय है। भावेन्द्रियके कार्य में द्रव्येन्द्रिय निमित्त है। यह सब दुःख उनके स्वग्र ही है, इसका हेतु यह है कि उनकी विषयोमे रति देखी जाती है। यदि उन्हे दुःख न होता तो विषयविपत्तिमे क्यो गिरते ?

स्पर्शनविषयासक्तिसे अनर्थ—सुना है कि हाथी पकडे जाते है गड्ढेमे गिराकर। कही गड्ढेमे कोई अन्य गिराता नही है, हाथी स्वय ही आशावश ऐसी प्रवृत्ति करता है कि गड्ढेमे गिर पडता है। हाथी पकडने वाले लोग जगलमे एक गड्ढा खोदते है, उसपर एक हथिनी कागजकी बनाते है, और एक ओर ५० हाथ दूरपर एक दौडता हुआ हाथी भी बनाते है। उस जगलमे बनहस्ती कुट्टिनी हथिनीको सच्ची हथिनी ही समझता है। यह तो हुआ उसका अज्ञान, मोह। फिर हथिनीसे रागभाव होनेके कारण वह वहा दौडता है, यह हुआ राग। उसके जल्दीसे दौडनेमे एक कारण और बनता है कि वह दूसरे हाथीको इस प्रकार देखता है कि वह दौडकर हथिनीकी ओर आ रहा है, कही यह मेरे विपयसाधनको न बिगाड दे, इस आशयमे उस कूट हाथीपर भी (जिसे कि वह सच्चा समझ रहा है) द्वेष करता है, इसी कारण शीघ्र हथिनीके पास पहुचता है। देखो भैया ! जिसे मोह अज्ञान होता है, उसे पद-पद पर अज्ञान ही छाया रहता है। उस हाथीको कितना अज्ञान साथ लगा हुआ है ? झूठे हाथी को हाथी समझ रहा है, झूठी हथिनीको हथिनी समझ रहा है, गड्ढेको भी साफ मैदान समझ रहा है, अपने शरीरको स्वय आत्मा समझ रहा है, विषयकपायके भावोको हितरूप समझ रहा है। ध्रुव निजस्वरूपका भान ही नही है।

हाथी सज्ञी पचेन्द्रिय जीव है, पशुवोमे सबसे प्रधान बुद्धिमान माना गया है। इसमे वह योग्यता है कि समस्त मिथ्याभावोको दूर करते हुए अधःकरण, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण परिणामो द्वारा अनंतानुवधी कपायका विसयोजन और दर्शनमोहनीयका उपशम करके उपशम सम्यक्त्व उत्पन्न कर लेता है। यदि पहिले इस ही भवमे या अन्य भवमे उपशम सम्यक्त्व उत्पन्न किया हो, और अब वेदकसम्यक्त्व योग्यकाल हो तो अधःकरण व अपूर्वकरण परिणाम द्वारा क्षयोपशम (वेदक) सम्यक्त्व उत्पन्न कर लेता है। परन्तु देखो मोहकी लीला ! सम्यक्त्वकी बात तो दूर रही, लौकिक सभ्यता व विवेक भी इसे नही है। हाथी मोह, राग और द्वेषवश अपनी चेष्टा करता है और वहा गड्ढेमें जाकर गिर जाता है। यह है स्पर्शनेन्द्रिय-

जन्य विषयवासनाकी उद्धतताका फल। यदि विषयासक्ति न होती तो क्यो विपत्तिमे पड़ता? दुःख हाथीको कही हथिनी या हाथी अथवा गड्ढा आदि किसी अन्यके कारण नही हुआ है। यह तो उसकी इन्द्रियवासनाके कारण होना ही पडता है, सो हुआ है। ऐसा ही यहा कितने ही मनुष्योमे भी पाया जाता है। मनुष्य भी तो सारा ज्ञान खोकर विषयवासनाकी प्रेरणामे विषयोमे प्रवृत्त होता है। चाम हाड वाले शरीरसे कौनसी शातिकी बात निकालना चाहता है अपना वीर्य खोकर? हे आत्मन्! अपना वीर्य देखो, ज्ञानदर्शनके शुद्ध विकासका प्रभाव देखो। शातिमार्गमे उत्साह बढावो। विषयमार्गसे अपना घोर अहित कर डालोगे। ज्ञानमार्गसे अपना पूर्ण हित कर लोगे। विषयमार्गमे तो दोनो भवोमे आपत्तिया ही है।

रसनेन्द्रियविषयासक्तिसे अनर्थ—अब रसनेन्द्रियके विषयकी दशा देखो! अपनेपर जो बीतती है वह तो अपने अनुभवमे है ही, उस आपत्तिपर दृष्टि नही देते, क्योकि जहाँ इतना अज्ञान हो कि आकुलता-सुखाभास ही जहाँ सुख दिखता हो, वहाँ सद्बोधकी कथा ही क्या? अपनी आपत्तिपर ध्यान नही जाता। तो देखो इसी रोगकी परकी विपदायें। मछली रसनेन्द्रियके विषयके लोभमे आकर कहाँसे कहाँ स्थान पाती? विषयासक्तिसे पहिले वह तालावमे केलि कर रही थी, अब वशीके फदेके पास लगे हुए मासखंडकी ओर झुककर लोहेकी फासमे फस रही है, और उसका अतका परिणाम क्या होगा? सो प्राय. लोग जानते ही है। ये वधिक लोग आगमे भून डालते है। यहाँ भी तो देखो आज लोग त्राहि त्राहि मचा रहे हैं कि खर्च बहुत है क्या करें? यह सब खर्च रसनेन्द्रियके लोभसे तो हुए है तथा चामके शृङ्गारसे। भैया! मनुष्यभवको तो धर्मसाधनमे लगाना था, परन्तु मनुष्योंने किया क्या? साधारण भोजनदानसे क्षुधा तृषाकी पीडा मेटकर धर्मसाधनमे जीवन व्यतीत करो, फिर आनन्द ही आनन्द है। अन्यथा विषयाभिलाषामे मरणकर पीछे पछताने तककी भी बुद्धि नही रहती।

घ्राणेन्द्रियविषयासक्तिसे अनर्थ—देखो तो भ्रमरकी गधाभिलाषाको। वह शामको कमलकी गधमे आसक्त हुआ कमलमे पहुचता है, सूर्यास्त होनेके अनन्तर कमल बद हो जाता है, उस बन्द कमलमे वह या तो वायुके सचार न होनेसे वही स्वय मर जाता है या अन्य कोई हाथी आदि तोडकर उस कमलको चबा जाता है। देखो भैया! कहनेको तो कमल एक सुन्दर वस्तु है, परन्तु खतरनाक कितना है? कमलका पिता नीर (जल) भी कमलसे सम्बध नही रखना चाहता, दूर रहता है, और कमलका मित्र सूर्य कमलसे हजारो योजन दूर रहता है। परन्तु गधलोभी यह भ्रमर जिसमे इतनी सामर्थ्य है कि काठको भी फोडकर निकल जाय, कमलके नाजुक पत्तोमे बद रहकर प्राण गवा देता है। यहाँ भी देखो भैया! गंधका कितना लोभ बना रखा है? सामने टेबलपर अगरबत्ती जलना, कानमे इत्रका फोवा होना, कोटोपर इत्र मसलना, मस्तिष्कपर चन्दन सेन्ट होना, गलेमे फूलमाला होना, नासिकाके पास फूल लिये

रहना कितना गजब है, और देखो भैया जरा शरीरसे पसीना निकला कि सब गुडगोबर हो गया ।

नेत्र और कर्णके विषयमे आसक्तिसे अनर्थ—विषयोंकी वृत्तिमे दुःख ही दुःख है । इससे ही अन्दाज कर लो । यदि विषयोमे दुःख न होता तो विषयोसे थककर विषयको छोडते क्यो ? स्त्रीभोग, भोजनभोग, गधभोग, रूपदर्शन, रागश्रवण देर तक कोई नही चाहता, ऊबकर उन्हे छोडना ही पडता है । भ्रमरकी भाँति ही चक्षुरिन्द्रिय विपयके लोभी पतगेकी भी तो दशा देखो ! पतग तो एकदम रूपके लोभमे दीपकपर गिर पडता है और मर जाता है । हरिण भी रागमे इतने अधे होते है कि शिकारीके रागालापके प्रेमी बनकर पास खडे हो जाते है और पकडे जाते है । देखो विषयाभिलापका कितना क्लेश है ? रहा नही जाता विपत्तिमे पडे बिना ।

क्लेश बिना विषयव्यापारकी असंभावना—विपयोमें जो इतना व्यापार होता है, वह बिना क्लेशका प्रयोग नही है । जैसे जिसे ज्वर नही है, वह काहेको पसीना लेनेका प्रयास करेगा, जिसकी आँखोमे रोग नही है, वह क्यो खपडियेका चूर्ण आँखमे आजेगा, जिसके कानमे दर्द नही है, वह क्यो बकरेका मूत्र कानमे डालेगा ? देखो ना ! जब तक घाव रहता है तभी तक मलहमका उपयोग किया जाता है । घाव पूरा भर गया या जिसके घाव ही नही है, वह क्या मलहम लगानेकी बेवकूफी करेगा ? ये सब विपत्तिया इन्द्रियोकी उद्धततासे है । जिनकी इन्द्रियाँ विपयके अर्थ प्रबल हो रही है, उनके दुःख होना स्वाभाविक बात है । अतः बधुवो ! जिन इन्द्रियोमे मित्रता बना रखी है, वह गहरा धोखा है । इस शरीरका, इन्द्रियोका विश्वास छोडकर यही श्रद्धा करो कि आत्माका स्वभाव इन्द्रियरहित है, निज चैतन्यस्वरूप है । स्वभावकी उपासनासे प्रकट होने वाला स्वभावविकास ही सुखकी सच्ची भूमि है । अत परोक्षज्ञान भी हितरूप नही है । अपनेको तो सामान्य प्रतिभासमय अनुभव करो । परोक्षज्ञानमे व इन्द्रियजसुखमे हितकी बुद्धिका परिहार करो । जो पराधीन है, विषम है, सान्त है, उसमे हितकी कल्पना करना पागलपन है ।

प्रश्न—अन्य बाह्य पदार्थ सुखके कारण हो या न हो, परन्तु शरीरका तो अतिनिकट सम्बध है, और देखा भी जाता है कि शरीरके स्वस्थ रहनेसे आत्मा भी सुखी रहता है और शरीरकी पीडासे आत्मा भी दुःखी रहता है । सो कमसे कम शरीर तो अवश्य ही सुखका साधन होगा ? इसके उत्तरमे गाथा सूत्र कहते है ।

पय्या इट्ठे विसये फासेहि समस्सिदे सहावेण ।
परिणममाणो अप्पा सयमेव सुहं ण हवदि देहा ॥६५॥

विषयप्रसङ्गमे भी आत्माके सुखरूपके परिणमनसे सुखका लाभ—इन्द्रियोके द्वारा ग्रहण किये गये इष्ट विषयोको पाकर भी यह आत्मा अपने ही सुख गुणके अशुद्ध परिणमनसे

परिणमता हुआ आत्मा स्वय सुखस्वरूप होता है, देह सुखस्वरूप नही होता, और न देहसे सुख उत्पन्न होता है । मुक्त जीवोके तो देह भी नही है, वहाँ वे पूर्ण सुखस्वरूप है । इस तत्त्व को समझनेमे तो सुगमता है ही, किन्तु जिन जीवोके शरीर है और शरीरके निमित्तसे इन्द्रिय विषयसेवना भी हो रही हो, तथापि यह आत्मा स्वयके सुख गुणके परिणमनसे परिणमता है, वहाँ देह सुखका साधन नही है । सुख आत्मासे ही प्रकट हुआ है । ये इन्द्रियाँ तो मद्यपायी पुरुषकी भाँति मत्त होकर तीव्र मोहके वश होकर विषयग्रहणमे प्रवृत्ति करती है, वहाँ आत्मा मोहके कारण यह अनुभव करता है, ये विषय मेरे लिये इष्ट है । इन कुसंस्कारोके वश स्वभावविरुद्ध आचरणोसे परिणमते हुए इस आत्माका सहज वीर्य तो रुक गया । अब जो विपरीत बल मन, वचन, कायके अवलम्बनसे प्रकट है, उसके द्वारा योग करता है । वहाँ भी जो सुख हुआ है, सो निश्चयसे सुख गुणके परिणमनसे ही हुआ है । इस परिणमनमे जो देहीके ज्ञान, दर्शन व वीर्य प्रकट है, उसका ही सहयोग है, किसी बाह्य पदार्थका सहयोग नही है । प्रत्येक आत्मा ज्ञान, दर्शन, सुख व शक्ति—इन चारो गुणोसे परिणमता है । मुक्त जीव भी इन चारो गुणोसे परिणमते है, वे अनन्तज्ञान, अनतदर्शन, अनन्तशक्ति व अनन्तसुखरूपसे परिणमते है । यहाँ प्राणी एकदेशज्ञान, एकदेशदर्शन, एकदेशशक्ति व विकृतसुखसे परिणम रहे हैं । शरीर अचेतन है, वह सुखपरिणतिका उपादान कारण कभी हो ही नही सकता ।

शरीरकी दृष्टिसे सुखका अलाभ—प्रश्न—शरीर सुखका उपादान कारण तो नही है, किन्तु इन्द्रियोकी वृत्तिके निमित्तसे ही तो सुख प्रकट हो रहा है । सो शरीरको सभालना तो उचित ही होगा ? उत्तर—परमार्थ सुखके द्रष्टा व इच्छुकोकी किसी भी अवस्थामे शरीरपर हितदृष्टि नही रहती, वे तो शरीररहित स्थिति चाहते है । फिर भी प्राक् पदवीमे शरीरकी जो उचित सभाल होती है, वह रागकी चेष्टा है, उसे उचित कभी नही समझते । उचित तो चैतन्यस्वभावकी दृष्टिकी सभाल है । शरीर समानजातीय द्रव्य पर्याय है, वह अचेतन अनेक अणुवोका पिण्ड है, आत्मा एक चेतन द्रव्य है । जिस द्रव्यमे जो गुण होते है, उन गुणोसे उनकी पर्याय प्रकट होती है । शरीर तो रूप, रस, गध, स्पर्शकी पर्याय करनेमे समर्थ है । आत्मा ज्ञान, दर्शन, सुख, शक्ति आदि निज गुणोके परिणमनमे समर्थ है । ससारी सुखीके जो विषयसुख देखा जाता है, वह भी उस आत्माके सुख गुणकी विकृत पर्याय है, और जो दुःख देखा जाता है, वह भी आत्माके सुखगुणकी विकृतपर्याय है । आत्मा विकृत पर्यायके व्ययस्वरूप स्वभावपर्यायके उत्पाद करनेमे स्वय समर्थ है । स्वभावपर्याय निमित्तदृष्टिमे नही होती, परदृष्टिसे मात्र विकारका ही कारण बनता है, अत शरीर आदि सर्व परद्रव्योसे दृष्टि हटाकर एक चैतन्यस्वभावकी दृष्टि करो और प्रसन्न एव आनन्दपूर्ण समृद्ध रहो ।

प्रश्न—मनुष्यका शरीर तो अनेक व्याधिमय है, वह सुखका कारण नही है, सो तो

ठीक है । परन्तु देवका शरीर तो दिव्य वैक्रियक है, रोगरहित है, स्फटिक समान स्वच्छ कांतिमान है, उसमे तो दुःखकी कोई बात नही है । अत. उसे तो सुखका कारण कहो । इसके उत्तरमे भगवान श्री कुन्दकुन्द प्रभु कहते है ।

एगंतेण हि देहो सुहं ण देहिस्स कुणइ सग्गे वा ।
विसयवसेण दु सोक्खं दुक्खं वा हवदि सयमादा ॥६६॥

शरीरमे सुखोत्पादकताका अभाव——यह बात पूर्ण नि:सदेह निश्चित है कि शरीर प्राणीके सुखको उत्पन्न नही कर सकता है, वह चाहे स्वर्गमे उत्पन्न हुआ दिव्य वैक्रियक शरीर वाला भी हो । सुख तो ज्ञानका अविनाभावी है । अतः ज्ञानके अनुकूल सुखका भी परिणमन होता है । शरीर तो सभी अचेतन है, उनसे सुखके लिये क्या साधकता मिलेगी ? आत्मा तो निश्चयसे विषयोके बिना स्वाभाविक शाश्वत आनन्दस्वभाव वाला है । किन्तु अनादिकालसे कर्मबन्धनवश विषयोकी दृष्टि करके परिणाम-परिणमकर सुख अथवा दु:खरूप स्वय आत्मा होता रहता है । यहाँ भी देखो भैया ! आत्मा अपने सुख गुणके परिणमनसे सुखी हो रहा है अथवा दु:खी हो रहा है । देव लोग भी तो ससारी विषय कषाय व इच्छा वाले होते है, उनकी इच्छा ही स्वय सुखाभास एव दु:खका कारण है, शरीरादि नही । वैक्रियक शरीर परमाणुवो का मिलकर एक स्कन्ध है, समानजातीय द्रव्यपर्याय है, अचेतन है, आत्मद्रव्यसे सर्वथा भिन्न है, दोनोमे परस्पर अत्यन्ताभाव है ।

शरीरका व आत्माका भिन्न-भिन्न परिणमन——तीन कालमे कभी भी आत्मा न तो शरीरके अशमात्ररूप भी बनता, न कोई अणु आत्मा बन सकता । फिर कोई किसीका परिणमन करे, यह स्वप्नमे भी नही हो सकता अर्थात् कल्पना भी नही की जा सकती । शरीर अपने रूप, रस, गंध, स्पर्शके परिणामनसे परिणमता है, आत्मा अपने ज्ञान, दर्शन, सुख व शक्तिके गुणके परिणमनसे परिणमता है । देव यदि मिथ्यापरिणामसे परिणम रहे है, तो शुद्ध स्फटिकसकाश वैक्रियक शरीरमे भी रहते हुए घोर दु:खी है । यदि सद्दृष्टिदेव चैतन्यस्वभावके ध्यानसे परिणम रहे है तो वे सुखी कही देहकी शक्तिसे नही है, किन्तु आत्मस्वभावकी उन्मुखतासे है । यदि निमित्तदृष्टि भी लो तो देवोका शरीर सत्य आनन्दमे बाधक है । विवेकी देव मनुष्यदेहके लिये तरसते है । देवशरीरमे रहकर आत्मा चतुर्थ गुणस्थानसे ऊपरका परिणाम वाला नही हो सकता । आजकल मुक्ति साक्षात् नही है । अत. सम्यग्दर्शनके रहते हुए मरण होता है तो देवगतिमे ही जन्म लेता है, परन्तु देवगतिमे उत्पन्न होकर और हजार देवागनावो का समागम पाकर भी सम्यक्त्वके प्रभावसे सम्यग्दृष्टि खेदखिन्न नही होता । उन्हे कही वैक्रियक शरीरका सुख नही है, उन्हे तो आत्मध्यानसे होने वाली निराकुलताका सुख है ।

देवगतिमे भी शरीरसे सुखकी अनुत्पत्ति——देवगतिमे जन्म शुभरागमे बधी हुई प्रकृ-

तियोका विपाक है, वह कही अमरदशा नही । हा, पुण्यका एक उदाहरण है । देवोका जन्म उपपादशय्यापर स्वय माता-पिताके बिना होता है । उत्पन्न होनेके अनन्तर अतर्मुहूर्तमे जो कुछ सेकेन्ड या मिनट प्रमाण होगा, युवा हो जाते है, अवधिज्ञानी हो जाते है । इनकी सागरो पर्यन्त आयु होती है । जितने सागरकी आयु होती है उतने हजार वर्षमे क्षुधा लगती है सो शीघ्र कण्ठसे अमृत झर जाता है और क्षुधा शात हो जाती है । जितने सागरकी आयु होती है उतने पक्षो (पखवाडे) मे श्वासोच्छ्‌वास वे देव लेते है। इनका शरीर वैक्रियक होता है, इस शरीरमे हड्डी रुधिर आदि नही है, कोई शारीरिक रोग नही होता । देवाङ्गनावो सहित सुखमे अपनी आयु व्यतीत कर डालते है । इनमे कितने ही सम्यग्दृष्टि होते है वे आत्मसुखके अभिमुख होते हैं । मोह देवोके भी पाया जाता है सो इतने सुखसम्पन्न होते हुए भी तृष्णा—लालसाके वश दु·खी रहते हैं । इनका व सभी प्राणियोका सुख दु ख इष्ट अनिष्ट कल्पनाके आधारपर होता है सो वहाँ भी सुख आत्मासे ही उद्भूत है ।

देवोका संक्षिप्त परिचय—देवोमे भी जातियाँ अनेक हैं । सक्षेपरूपसे चार विभागमे कहा है—१ भवनवासी, २. व्यन्तर, ३. ज्योतिप, ४. वैमानिक । इन चारोमे आदिके दो निकाय अर्थात् भवनवासी और व्यन्तर तो इस रत्नप्रभा नामक पहिली पृथ्वीके भीतर पहिले २ खडोमे (खरभाग, पकभागमे) जन्म लेते है और ज्योतिषी इस मध्यलोकमे ही यहाँसे ७९० योजन ऊपर तथा इतने ही करीब यथासभव ऊपर रहते है । इन देवोमे सम्यग्दृष्टि जीव सम्यक्त्वमे मरण कर उत्पन्न नही होता है । इनमे तृष्णा-ईर्ष्याका अधिक दुःख है । वैमानिक देवोमे भी १६ स्वर्गमे तो इन्द्रकी व्यवस्था है, ऊपर तक ग्रैवेयक यद्यपि अहमिन्द्र है तथापि सम्यग्दृष्टि होनेका नियम नही । यहाँ तकके देव मिथ्या आशयवश घोर कर्मबध करते रह सकते हैं । नव अनुदिश व पाँच अनुत्तर इन १४ विमानोंमे सम्यग्दृष्टि ही होते है, सो इनके सयम नही होता है जिसको कि ये अन्तरगसे चाहते है ।

शरीर व विषयोकी सुखपरिणमनमे अकिञ्चित्करता—देखो भैया ! यदि वैक्रियक शरीर सुखका साधन होता तो भवनवासी व्यन्तर ज्योतिषियोकी प्रवृत्ति देख लो, हाय हाय मचा कर कितना प्रयत्न करते रहते है ? वैमानिकोमे भी प्राय देख लो । वस्तुत सुख आत्मा का ही है, यदि बाह्य पदार्थसे सुख आता होता तो देव या यहाँके धनी आदि लोग तो महा अधेर मचा डालते, पर क्या किया जाय, सुख तो ज्ञानका अविनाभावी है । अत· इन लोगोका वश नही चलता । सुखपर तो अधिकार ज्ञानी जीवोका ही है । तथा मुक्त आत्मावोके जो अनन्त अतीन्द्रिय सुख है वहा तो आत्मा ही कारण है यह विशेषरूपमे स्पष्ट ही है, परन्तु कर्म से आवृत्त ससारी मोही जीवोका भी जो सुखाभास प्रकट है, उसमे भी उनका आत्मा ही उपादान कारण है अर्थात् वे आत्मा ही स्वय परिणमकर सुखरूप अथवा दुःखरूप होते हैं ।

इसलिये बधुवो। अपनी किसी भी परिणतिको किसी बाह्य अर्थसे उत्पन्न हुआ मत देखो।

प्रश्न—शरीर तो आत्माके एक क्षेत्रावगाहमे है, सो अलगसे यह मालूम नही होता कि शरीर सुखका कारण है, परन्तु भोजनादि बाह्य सामग्रियोसे सुख हो रहा है, यह तो प्रकट सबको विदित है सो देह सुखका कारण नही घटित होता है तो मत होओ विषयोको तो सुख देनेका अधिकार मानना चाहिये। उत्तर—प्रथम तो स्वरूप सत्को पहिचान करके देखो—आत्मा पृथक् सत् है, शरीर पृथक् है। अतः आत्माके परिणमनको शरीर नही करता, और भोजनादिक तो प्रकट अत्यन्त पृथक् पदार्थ है उनका भी सुखदानमे अधिकार नहीं है। शरीर की तरह विषय भी अकिञ्चित्कर है। विषयोकी अकिञ्चित्करता तो बिल्कुल ही सुगम है। इसी भावका प्रकाश करनेके लिये श्री भगवान् कुन्दकुन्दाचार्य गाथासूत्र कहते है—

तिमिरहरा जइ दिट्ठी जणस्स दीवेण णत्थि कादव्व।
तध सोक्ख सयमादा विसया कि तत्थ कुव्वति ॥६७॥

आनन्दस्वभावी आत्माके आनन्दपरिणमनमें अन्यकी अकिञ्चित्करता—जैसे नक्तचर जीवोकी दृष्टि स्वय तिमिरहरा है तब उन जीवोको देखनेके लिए प्रदीपप्रकाशादिकी आवश्यकता नही है, वहा प्रदीप अकिञ्चित्कर ही है उसी प्रकार यह आत्मा विषयरहित अमूर्त समस्त प्रदेशोमे आह्लाद उत्पन्न करने वाले सहज आनन्दमय स्वभाव वाला है। उस आनन्दके विकासके लिये विषय अकिञ्चित्कर है। विषय पदार्थ तो मात्र स्वय खुदका परिणमन करता है। मुक्ति होनेपर भी आत्मा स्वय सुखरूपसे परिणमता है और यहाँ ससार अवस्थामे रहने वाले जीव भी स्वय सुखरूपसे परिणमते है। यह तो मात्र अज्ञानी जीवोकी कल्पनामात्र है है कि विषय सुखके साधन हैं। विषयभूत पदार्थ तो आत्माके लिये अत्यन्ताभाव वाले पदार्थ है उन्हे अपने गुणोमे परिणमते रहनेके कार्य सतत है।

प्रश्न—दृष्टान्तमे नक्तचरका दृष्टान्त दिया, सो नक्ताचरको तो आवश्यकता नही प्रदीप प्रकाशकी, यह तो ठीक है, परन्तु मनुष्य आदिको तो आवश्यकता है ही। इसी तरह मुक्त जीवोको सुखके लिये विषय पदार्थकी आवश्यकता नही यह तो ठीक है, परन्तु ससारी जीवोको तो सुखके लिये विषय पदार्थकी आवश्यकता तो रहेगी ही, फिर यह कैसे कहा जा सकता है कि विषय अकिञ्चित्कर हैं। उत्तर—मनुष्य आदिको देखनेमे प्रकाश कुछ परिणमन नही करता, वहा तो देखने जाननेका परिणमन आत्मा ही करता है। इसी तरह सुखस्वभावकी किसी परिणतिसे परिणमते हुए आत्माके सुखमे विषय कुछ भी नही करते है, वहाँ भी आतमा ही अपने सुख गुणके परिणमनने परिणमता रहता है।

आनन्दगुणके सभी परिणमनोमे परका अग्रहण—द्रव्यके सत्स्वरूपपर दृष्टि देकर

यह सब निर्णय करो। निमित्त अपनी परिणति उपादानमे नही देता। सुखगुणके स्वभाव परिणमनके लिये तो निमित्त भी कोई नही होता, वह तो स्वभावपरिणति अनैमित्तिक परिणति है, परन्तु सुखगुणके विकृत परिणमनरूप वैषयिक सुख यद्यपि निमित्तकी उपस्थिति बिना प्रकट नही होते तथापि इस निमित्तनैमित्तिक सम्बन्धको इतना ही समझना कि उपादानभूत यह आत्मा अपने सुखगुणके विभावपरिणमनको विषयभूत पदार्थकी कल्पना करके कर पाता है अर्थात् निमित्तको पाकर उपादान स्वय अपनी प्रभुतासे प्रभावको उत्पन्न करता है। ससार अवस्थामे भी यह जीव शरीरके कारण सुखी नही है, किन्तु आनन्द गुणका परिणमन ज्ञानके अविरोधसे होता है। जब सशरीर अवस्थामे भी जीव स्वगके परिणमनसे सुखी है तब मुक्त जीवोके अतीन्द्रियसुखमे सदेहका स्थान ही कहाँ ?

आत्माके स्वकार्यमे अन्यकी अप्रयोजकता—भैया! वास्तवमे तो बात यह है कि शरीर आनन्दका कारण नही, प्रत्युत आनन्दका बाधक ही है निमित्तदृष्टिसे। निश्चयत शरीर आत्माके किसी गुणका या किसी पर्यायका न साधक है, न बाधक है। प्रत्येक पदार्थ अपने ही गुणका स्वामी है, अपने ही पर्यायका अधिकारी है। यहा दृष्टान्त लौकिक है—सिंह, सर्प, विडाल, श्वान आदिकी दृष्टि अन्धकारको हरने वाली है, तो उन्हे दीपसे कोई प्रयोजन नही है। वस्तुत अन्धकार पर्याय उसी पुद्गलकी है, जहाँ अधकारका परिणमन है, और अन्धकार का व्यय होनेके समय प्रकाश भी उस ही पुद्गलकी पर्याय है, जहाँ प्रकाशका परिणमन है, किसी वस्तुके अन्धकार पर्यायको नक्तचरकी चक्षु नही हर सकती है। यहाँ दृष्टान्तका प्रयोजन यह है कि नक्तचरके नेत्र ऐसी शक्ति रखते है कि बिना प्रदीप आदिके निमित्त पाये भी देख सकते है।

सहजानन्दपरिणमन— आत्मा सुखस्वरूप है, सो बाधक भावके अभाव होते ही आत्मा सत्य पूर्ण सुखरूप परिणमता है। ससार अवस्थामे अथवा विकार अवस्थामे भी जो सुख होता है, वह भी सुखशक्तिके परिणमनसे होता है। स्वयके चतुष्टयसे परिणमते हुए आत्माकी परिणतिमे विषय क्या करेंगे ? भैया! आप सुखी भी अपने आप होते, और जब दुखी होते हो तो दुःखी भी अपने आप होते हो। इसलिये परपदार्थकी अकिञ्चित्करता जान परदृष्टिको छोडो अर्थात् विश्रामसे स्थित हो जावो। यही अद्वैतदृष्टि होती है, जिस अद्वैतदृष्टिके प्रसादकी दृष्टिसे भी अतीत दर्शन, ज्ञानका सहजपरिणमन हो जावेगा। श्रीदेवके उपदेशका तात्पर्य यह है कि जैसे सुखका कारण देह नही है, वैसे सुखका कारण विषय भी नही है। यह आत्मा निश्चयसे निर्विषय सुखस्वभाव वाला है, अमूर्तिक समस्त प्रदेशोमे एक परिणतिसे आह्लाद उत्पन्न करने वाला है। आत्माका आनन्द सहज ही है, सो सुखके लिये (आनन्दके लिये) अन्यपर उपयोग न हो। इतरके सुखप्रदत्वकी श्रद्धामे आकुल ही रहोगे, अत निश्चयनयके

विपयभूत अद्वैत निजको देखो।

केवल अवस्थामें तीन विशेषतायें—केवल अवस्थामे अर्थात् जब यह आत्मा मात्र स्वय रह जाता है, इसमे किसी परपदार्थका लेप नही रहता, और न परभावोका सग रहता है, उस स्थितिमे तीन खास बाते उत्पन्न होती है। एक तो यह ज्ञान समस्त अर्थोंके अन्तको प्राप्त हो जाता है अर्थात् समस्त लोकालोकव्यापी ज्ञान बन जाता है। दूसरी बात, जितने भी अनिष्ट है, वे सब अनिष्ट नष्ट हो जाते है। तीसरी बात जो इष्ट है, वह प्राप्त हो जाता है। तो जहाँ सर्वव्यापी ज्ञान हो गया, कुछ अज्ञान नही है और अनिष्ट खतम हो गये, और स्वरूपसे बढकर अभीष्ट है क्या, जो कि आनन्दमय है वह पूर्ण प्राप्त हो गया, फिर वहाँ दु खका क्या काम ? यह तो है केवली प्रभुकी बात, और अब परोक्ष ज्ञानियोकी बात देखो।

इन्द्रियसुख विषयवेदनाका प्रतीकार—परापेक्ष ज्ञान और सुखकी प्रवृत्ति वाले प्राणियो के वास्तविक सुख है ही नही। परोक्षज्ञानी जीव तो चाहे वे बडे देवेन्द्र भी हो, चक्री भी हो तब भी उनके परोक्षज्ञान है, उस स्थितिमें इन्द्रियसे पीडित होकर दुःखको नही सह सकते, इसलिए वे विषयोमे रमते है, कोई आनन्दपूर्वक विषयोमे नही रमते। आकुलता नही सही जाती, सो इन्द्रियजन्य ज्ञानमे रागवश होकर वे विपयोमे रमते है। विषयोमे रमना भी दुःख का कारण होता है, और विषयोमे रमकर भी दु खमे गिरना होता है। जैसे किसीके कानमे दर्द हो गया तो कानके दर्दकी अच्छी पुरानी दवा है बकरेका मूत्र डालना। यह पुराने लोग किया करते थे। तो जब कानकी वेदना नही सही जाती है तभी तो ऐसी प्रवृत्ति करनी पडती है। जिसके शरीरमे फोडा निकल आया, वही तो मलहम पट्टी करेगा। जिसका शरीर नीरोग है, क्या वह मलहम पट्टी करेगा ? ऐसे ही इन ५ प्रकारके इन्द्रियके विषयोमे वही तो रमेगा, जिसको कोई विशेष वेदना उत्पन्न हुई हो। तो दु खके कारण ये विपय भोगे जाते है, और उनके भोगनेके कारण दु ख मिलता है। इससे यह ध्यानमे लाना चाहिए कि आत्माको जो शुद्ध आनन्द प्राप्त होता है वह देहकी साधनासे प्रकट नही होता, किन्तु ज्ञानस्वभावी अन्त-स्तत्त्वके आलम्बनसे प्रकट होता है। ज्ञानी और अज्ञानीकी दुनिया परस्परमे भिन्न और निराली है। अज्ञानीकी दुनिया तो यह विपयप्रसग है और ज्ञानीकी दुनिया अपना अतस्तत्त्व ज्ञानस्वभाव है।

शरीर और विषयोमें सुखसाधनताका अभाव—शरीर सुखका साधन नही है। मुक्त जीवोके शरीर है ही नही, किन्तु ससार अवस्थामे भी हम आप सबको विपयोको पाकर भी जो सुख होता है, वह शरीरके साधनसे नही होता, किन्तु अपने ही विचार अपने ही परिणमन से वह सुख होता है। तो इससे यह निर्णय रखना चाहिए कि सुखका साधन शरीर नही है, किन्तु ज्ञानकला है। जैसे देह सुखका साधन नही है, इसी प्रकार ये विषयभूत पदार्थ भी सुख

के साधन नही है । हाँ, परोक्ष ज्ञानियोको वे विषयभूत पदार्थ विषक होते है तब वे सुखका अनुभव करते है, मगर सुखका साधन विषय नही है, सुखका साधन तो ज्ञानकला ही है । अज्ञानी जनोने भ्रमवश उन विषयोको सुखका साधन माना है । वस्तुत प्रत्येक पदार्थ स्वतन्त्र है अपने आपमे अपनी परिणतिसे अपनी ही अपनी पर्यायें बनती हैं । तब हमारे सुखपरिणमन मे भी बाह्य पदार्थ अथवा देह ये सब साधन कैसे बन सकते है ? आत्मा सुखस्वभावी है, इस बातको अब एक दृष्टान्तसे दृढ करते है ।

सयमेव जधादिच्चो तेजो उण्हो य देवदा णभसि ।
सिद्धोवि तधा णाण सुह च लोगे तधा देवो ॥६८॥

आदित्यके तेजस्वरूपवत् आत्माकी स्वय ज्ञानस्वरूपता—जैसे आदित्य, सूर्य तेजस्वरूप है, उष्ण है, देव है तो उस सूर्यको तेजस्वरूप क्या आसमानने बना दिया या देखने वालो ने बना दिया या उसमे किसी परवस्तुसे तेज ला लाकर सचित किया ? वह सूर्य स्वय तेजस्वरूप है, वह तो आकाशमे है, और अन्य कारणोकी अपेक्षा नही रखता, वह स्वय ही बहुत प्रचुर अपनी किरणोसे, प्रभावसे देदीप्यमान और उस प्रभापुञ्जके कारण वह सदैव प्रकाशमान है । सूर्य स्वय तेजस्वरूप है, किसी दूसरेने उसे तेजोमय नही बनाया । ऐसे ही लोकमे किसी भी अन्य कारणकी अपेक्षा बिना स्वय ही भगवान यह आत्मा अपने और परके प्रकाशनमे समर्थ है, ऐसा अमोघ अनन्तशक्तिरूप सहज निज स्वरूपका जो सम्वेदन होता है, उसमे अपना और अपने उपयोगका ज्ञानप्रकाशका तादात्म्य होनेसे यह कहना चाहिए कि यह आत्मा स्वय ज्ञानस्वरूप है ।

आत्माके ज्ञानस्वभावके विघातका अभाव—जैसे सूर्यमे तेज किसी परपदार्थसे लाकर नही डाला गया, इसी प्रकार आत्मामे ज्ञान किसी परपदार्थसे लाकर नही डाला गया । सूर्य सदैव प्रकाशशील है । नीचे बादल आ जायें तो क्या बादलोंने उसके तेजमे बिगाड कर दिया ? बादल आडे आनेसे सूर्यका प्रकाश यहाँ नही आ सकता, पर सूर्य अपने आपमे मूलमे तो तेजस्वरूप ही है । ऐसे ही कदाचित् ससार अवस्थामे इन विकार भावोंके कारण इसका ज्ञानस्वरूप विकसित नही हो पाता, परन्तु स्वभावमे तो निरखो, क्या यह ज्ञानस्वभाव मिट गया ? यह ज्ञानस्वरूप ही है ।

ज्ञानस्वरूपमें महत्त्व और आदरकी भावना—जैसे किसी होनहार छोटे बच्चेमे उसकी कलाको निरखकर उसमे किसी महापुरुष होनेकी कल्पना करते हैं और उसे उस दृष्टिसे देखते हैं, और यो देखा जाय तो आज जो बालक हैं, वे देशके कर्णधार बनेंगे, ये ही देशको चलायेंगे, एसी शक्तियोपर दृष्टि देकर बालकोको देखा जाय तो उनमे आस्था और आदर वृद्धि बढती है । ये ही तो धर्म चलायेंगे । जैसे बडे बुजुर्ग लोग आजकलके इस धर्मव्यवहारको चला

रहे है, ये तो निपट जायेंगे, पर उस गाडीको चलाने वाले ये ही तो बच्चे है। ऐसी जब दृष्टि डालते है तो उनमे महत्त्व और आदरकी भावना होती है। ऐसे ही छोटेसे छोटे जीवमे भी वनस्पति हो, निगोद हो, कीडा मकोडा हो, जब हम उनके स्वरूपपर दृष्टि देते है तो वही तो पदार्थ है जो कभी सिद्ध परमात्मा मुक्त जीव बन सकता है। स्वरूप और स्वभाव तो वही है। ऐसा जब हम स्वरूप और स्वभावपर दृष्टि देते है तो प्रत्येक जीवोमे महत्त्व और आदरकी भावना पहुचती है। प्रत्येक जीव स्वय ज्ञानस्वरूप है।

आत्माकी शाश्वत ज्ञानानन्दस्वरूपता—इस प्रकरणमे तो प्रभुकी बात कही जा रही है। वह तो प्रकट ज्ञानस्वरूप है, विकासमे भी ज्ञानरूप है और शक्तिमे भी ज्ञानरूप है। इस प्रकार जैसे ज्ञानरूप रहना आत्माका स्वभाव है यो ही आनन्दरूप रहना भी आत्माका स्वभाव है। आत्मा ज्ञानरूप रहकर भी ज्ञानरूप परिणमता नही है, उल्टा परिणमता है, मिथ्याज्ञानरूप बनता है। तो इससे कही ज्ञानस्वरूपका प्रतिषेध न हो जायगा, कुछ कारण है। जैसे कारणसे मूलमे अपने ज्ञानस्वभावको न छोडकर उपाधिवश किसी सीमा तक उल्टा ज्ञानरूप बन रहा है। इसी प्रकार कोई जीव ससार अवस्थामे सुखरूप, आनन्दरूप न परिणमकर क्लेश रूप परिणम रहे है तो क्लेशरूप परिणम जानेसे कही आत्मामे आनन्दस्वरूपताका प्रतिषेध न हो जायगा, कुछ कारण है, जो उपाधिवश मूलमे आनन्दशक्तिका परित्याग न करके कुछ सीमा तक इस आनन्दगुणके उल्टे परिणमनसे विकाररूपमे सुख या दु खरूप अवस्थामे यह परिणम रहा है अर्थात् सासारिक सुख रूप और क्लेशरूप यह परिणम रहा है, इतने पर भी आत्माके आनन्दरूपताका प्रतिषेध नही हो सकता।

आत्माकी स्वतः ज्ञानानन्दमयता—सूर्य जैसे स्वय ही उष्ण स्वरूप है, लोहा तो कभी-कभी सम्पर्कवश उष्णरूप परिणत होता है किन्तु यह सूर्य तो नित्य ही उष्णरूप परिणत हो रहा है। तो जैसे सूर्य उष्ण है, यह स्वय अपने आप है। कही आगमे से गर्माहट निकाल कर सूर्यमे किसीने डाला हो, ऐसा तो नही है। इसी प्रकार भगवान आत्मामे जो ज्ञान है, वह ज्ञानपरिणमन स्वय स्वभावसे है। कही अन्य वस्तुवोसे ज्ञान निकलकर इसमे दिया हो, ऐसा नही है। वह स्वय ही ज्ञानस्वभावी है, इस प्रकार यह आत्मा स्वय ही आनन्दस्वभावी है। उल्टा काम न करें, आनन्द तो बना ही बनाया है।

सहज आनन्दलाभ—भैया! आनन्द प्राप्त करनेके लिए न कोई तरकीब सोचना है, न कोई परिश्रम करना है, दु-खके लिए जो तरकीब सोच रहे है, दु खका जो श्रम कर रहे है, उस श्रम और तरकीबको छोड दे तो आनन्द तो स्वय ही है। जैसे दर्पणमे काचमे स्वच्छता के लिए हमे कुछ यत्न नही करना है, वह स्वय स्वच्छ है, पर उसपर जो विकार आया, धूल आयी, तेलका दाग लग गया या कभी जानबूझकर कुछ किया हो, उसको खतम करना है।

दर्पण तो स्वच्छ है ही, उसका उद्यम नही करना है, इसी प्रकार आत्मामे आनदका कुछ उद्यम नहीं करना है, किन्तु जितना हम उल्टा चल चुके है अथवा चल रहे है, उस उल्टेपनको मिटाना है। बस श्रम भी अगर समझिये तो इस उल्टेपनको मिटानेका समझिये, आनन्द पाने का श्रम न समझिये।

श्रमको दूर करनेका श्रम—कोई भूल हो जाती है, तो वह भूल न रहे, सही उसी स्थानपर आ जाय जिस स्थानसे बाहर आनेपर भूलमे आ गए थे, उस स्थानपर लौटनेके लिए श्रम पड़ता है, वह भूल मिटानेका श्रम है, ऐसे ही आत्माको जो भी कठिनाई पडती है—ध्यानमें, ज्ञानमे मन नही लगना, कुछ जान-बूझकर ज्ञानमे उपयोग लगाना है, ध्यानमे मन लगाना है। तो ऐसा जो कुछ भी हम जान-बूझकर करते है, वह हम भूलको मिटानेके लिए, उल्टे रास्तेका परिहार करनेके लिए करते है। जैसे व्यवहारधर्म करते है, तपश्चरण, पूजन, दर्शन, तो ये प्रवृत्तियाँ हमे सीधे धर्ममे नही लगाती हैं, किन्तु हम जो अधर्ममे लगे हुए थे, उन उपयोगोको उन प्रवृत्तियोको बदलनेमे ये व्यवहारधर्मके काम कर रहे है। धर्ममे लगनेका हमे क्या श्रम करना, हम तो स्वय धर्मस्वरूप है, हम आप सभी और प्रत्येक पदार्थ शाश्वत निज धर्मस्वरूप है। पुद्गलमे जो स्वभाव है, वह पुद्गलका धर्म है। आत्मामे जो स्वभाव है, वह आत्माका धर्म है। तो धर्मस्वरूपमे आत्मामे हमे धर्म क्या ज्यादा लगाना है, वह तो है ही, पर उस धर्मको भूले है और अधर्ममे हमारी प्रवृत्ति बढ गई है, तो उस अधर्मकी उल्टी प्रवृत्तियोसे दूर होनेके लिए यह श्रम करना पडता है। आत्मा तो स्वय आनदस्वभावी है, धर्मस्वरूप है।

आत्मामें स्वय दिव्यरूपता—आदित्यको देव कहते है। उस पर्यायमे देवगति नामकर्म के उदयके कारण ऐसी ही स्वाभाविक बात है कि वह देव हो गया। उसे देव हमने आपने बनाया क्या ? क्या मानने वालोने बनाया ? भले ही मानने वालोने उसे देव माना, लेकिन उसके देव होते हुएमे जो कुछ बातें है, वे तो उसको उसके ही कारण हैं। माननेसे देव बनने की बात तो एक पहुचे हुए भक्तकी अलकारिक स्तुति है। जैसे कहा जाता है कि हे प्रभो ! आपको भगवान भक्तोने ही तो बनाया है। भक्त न होते, पूजने मानने वाले न होते तो भगवान क्या ? ठीक है, यह भगवान है, इस तरहका जो व्यवहार है, यह भक्तोंके द्वारा प्रकट हुआ है। लेकिन प्रकट हुआ तो क्या, भक्त न मानें तो क्या ? प्रभुका जो स्वरूप है, शुद्ध ज्ञानानन्दमय रहना, यह क्या भक्तोने बना दिया ? यह तो प्रभुमे अपने आप है।

वस्तुत. भगवान आत्माका स्वयं ज्ञानानन्दरूप उत्कृष्टता—एक जगह तो स्तवन करते हुए भक्तने यहाँ तक कह डाला कि कितने ही लोग ऐसा कहा करते हैं कि भगवान भक्तोको तारते है, तारनेके मायने ऊँचा उठाना, पर हमे तो ऐसा लगता है कि भक्त भगवानको तार

रहे है। भगवानको ऊंचा कौन उठा रहा है ? भक्त न होते तो पडे रहते भगवान एक कोनेमे, उनको लोकमे मानने वाला कौन होगा ? देखिये––जब निकट परिचय हो जाता है तो ऐसी अनेक खुले दिलसे बातें होती है। शायद कोई इस बातपर कुछ गौर न करे तो दृष्टात लीजिए। किसी नदीको तैरनेके लिए एक मसक या मटकियाका प्रयोग किया जाता है, पानीमें उसको औंधाकर लोग नदी तैर जाते है, तो उस प्रसगमे यह बतावो कि मसकने आदमीको तैराया या आदमीने उस मसकको तैराया ? इसके दोनो ही उत्तर हो सकते है। यो ही मान लो कि भगवानने भक्तोको तार दिया और भक्तोने भगवानको तार दिया। एक यह बहुत ऊँची प्रेम-भरी स्तुति है। भगवानको भक्त क्या तारेंगे, वे तो अपने स्वरूपसे तिर गए। तो लोकव्यवहार मे अलकारिक भाषासे कुछ भी कह दिया जाय, पर भगवान आत्माका जो उत्कृष्ट स्वरूप है, तेजरूप है, वह तेजस्वरूप, ज्ञानस्वरूप स्वय हो गया। आत्मा सुखस्वभावी है, सो सूर्यमे उष्णता के स्वभावकी तरह इस आत्मामें भी सुखका स्वभाव मौजूद है, किसी साधनसे, देहसे, विषयो से, किसीसे सुख नही मिलता, किन्तु आत्मा स्वय आनदस्वरूप है। सो अपने ही इस आनन्द-स्वभावसे आनन्द प्रकट होता है।

भगवान आत्माके दिव्यस्वरूपमें आस्था––यह भगवान आत्मा स्वय दिव्यस्वरूप है। निकट जो आत्मतत्त्व है, उसको प्राप्ति होनेसे अपने शिलास्तम्भपर उकेरा गया जो दिव्यस्वरूप है, जैसे उस स्वरूपमे यहाँ हम आप दिव्यस्वरूपका अनुभवन करते है। ऐसे ही वह परमात्मा प्रभु अपने सर्वाङ्गमें एक दिव्य चैतन्यस्वरूप होनेसे निरन्तर उस ज्ञानचेतनाका ही अनुभव होते रहनेसे वह स्वय देवस्वरूप है। दिव्यतासे मतलब ज्ञान और आनन्द दोनोका प्रतिनिधित्व करने वाले चैतन्यस्वभावसे है। आत्मा चिन्मात्र है, और यह चिद्‌ज्योति एक दिव्यज्योति है, जो केवल शुद्ध चिन्मात्रका अनुभवन करता है। इस प्रकार यह निश्चय करना कि आत्मा ज्ञान और आनन्दस्वरूप स्वय है, कही इन्द्रियके कारण अथवा विषयोके कारण अथवा देहके कारण आनन्द नही है। केवलज्ञानमे आनन्दस्वभाव पूर्ण विकसित हुआ ही है, इतना भी भेद न डालें, किन्तु वह ज्ञान स्वय आनन्दस्वरूप ही है—ऐसा निर्णय करना और अपने इन्द्रिय-ज्ञान, इन्द्रियसुखपर विश्वास न करना, ये सब इसके स्वरूपसे भ्रष्ट करके किसी ओर बहकाने के साधन है। हम इनसे पृथक् होकर ज्ञान और आनदस्वरूप अपनेको अनुभव करें, ऐसी अन्तः प्रेरणा होनी चाहिए।

आनन्द-प्राप्तिके उपायमें इन्द्रिय-सुख-साधनस्वरूपका उपन्यसन—कल आनन्द प्रपञ्चकी समाप्ति हुई थी। ग्रन्थके वर्णनमे समाप्ति हुई थी। कही अपनेमें समाप्ति न समझ लेना। यह बात अनुभवसिद्ध हो गई थी कि यह आत्मा स्वय ज्ञान है, स्वय सुख है, स्वय देव है। इसलिये इस भगवान आत्माको सुखके झूठे साधनोसे कोई प्रयोजन नही है।

सच्चा साधन स्वय ही है। इस प्रकार आनन्दप्रपञ्चका वर्णन करके पुनरपि सत्य आनन्दके बाधक इन्द्रियमुखके स्वरूपके विचारको करनेसे पहिले इन्द्रियसुखके साधनके स्वरूपका उपन्यास करते है, वर्णन करते हैं। उपन्यास शब्द उप और नि उपसर्गपूर्वक असु क्षेपणे दिवादिगणीय असु धातुसे बना है, जिसका अर्थ है---पासमे सब प्रकारसे फेंक देना। पासकी चीज अत्यन्ताभाव वाली होती है, जो तादात्म्य रखे, वह पास नही, किन्तु वह वही है। यहा इन्द्रियके सर्वस्वको भले प्रकार पूर्णरूपसे फेंक देनेका प्रोग्राम है। सो जिसे फेंकना है, उसके साधनोका विचार करते है। शत्रुके विजयके लिये शत्रुके सहायक, साधन आदिका परिज्ञान करना आवश्यक हो जाता है, जिससे विजयके अनुरूप प्रोग्रामका प्रारम्भ होता है।

यहाँ इन्द्रियसुखके साधनोके स्वरूपपर विचार चल रहा है—

देवदजदिगुरुपूजासु चेव दाणम्मि वा सुसीलेसु।
उपवासादिसु रत्तो सुहोव ओगप्पगो अप्पा ॥६६॥

इन्द्रियसुखका साधनभूत शुभोपयोग— अरहत सिद्ध देव, आत्मसाधनामे प्रकर्ष सिद्ध यति, दीक्षा शिक्षादायक गुरुजनोकी पूजामे, दानमे, शीलव्रत पालनमे उपवास आदिमे जो धर्मानुराग करने वाला आत्मा है, वह शुभोपयोगात्मक है। प्रश्न—यहाँ इन्द्रियसुखके साधनो पर विचार चल रहा है, तब साधनकी बात न कहकर साधकको क्यो बताया गया ? उत्तर— निश्चयसे साधक व साधन भिन्न नही होते। यहाँ शुभोपयोगात्मक आत्माको ही तो कहा गया है, आत्माको केवलको तो नही कहा गया। जिस कालमे आत्मा शुभोपयोगसे परिणमता है, उस कालमे वह समस्त आत्मा शुभोपयोगमय है। अत भेदविवक्षासे शुभोपयोग साधन हुआ और शुभोपयोगात्मक आत्मा साधक हुआ, परन्तु अभेदविवक्षासे शुभोपयोगात्मक आत्मा ही साधक हुआ और यही साधन हुआ। अभेदनयसे कहनेपर यही साध्य हुआ। भेदनयसे इन्द्रियसुख साध्य है तो शुभोपयोग साधन है। शुभोपयोगसे तो तत्काल मानसिक सुख साध्य होता है, और निमित्तोपनिमित्तकी दृष्टिसे देखें तो शुभोपयोगके निमित्तसे पुण्यकर्मका बध हुआ, और फिर इस पुण्यकर्मके उदयसे इन्द्रियसुख मिलता। निमित्तोपनिमित्तकी दृष्टिसे शुभोपयोग भावी अन्य कालमे फल गया, इस कारण इन्द्रियसुखका साधन शुभोपयोग कहा गया है।

इन्द्रियसुखमें अपेक्षा व व्यग्रता—देखो भैया ! असत्यार्थकी सिद्धिके लिये कितनी वकालतकी जरूरत हो गई है तथा परिश्रम, अपेक्षा, व्यग्रता भी तो देख लो, हाय ! बडा कष्ट है। स्वरूपसे चिगे और क्लेश ही क्लेश है। समस्त विपदावोकी भूल अपनी भूल है। लोग सुख, शातिके लिये कितना बाह्य व्यर्थका परिश्रम करते है ? शातिकी कुञ्जी तो अति सुगम है, कठिनतासे मिलने वाली तो अशाति ही है। यहाँ इन्द्रियसुखके साधन बताये जा रहे हैं। सो इसमे स्वय ही यह परीक्षा कर लेना कि परावलम्बनता कितनी है और इसमे

तत्काल व इसके भावी उदयमे व्यग्रता कितनी है ?

इन्द्रियसुखके साधन—इन्द्रियसुखका निमित्त पुण्यकर्मका उदय है व पुण्यविपाकका नोकर्म बाह्य सामग्री है। पुण्यका उदय पुण्यकी सत्ता बिना नही होता, पुण्यकी सत्ता बध बिना नही होती। पुण्यके बधका निमित्त शुभोपयोग है, शुभोपयोगका निमित्त कषायका मदोदय है व नोकर्म देवता, यती, गुरु, दु खी, मुमुक्षु, तत्त्वजिज्ञासु, शुभक्रियाये आदि है। जब यह आत्मा अशुभोपयोगकी भूमिकाको उल्लघन करके देवपूजा, यतीपूजा, गुरुपूजा, वैयावृत्य, प्रायश्चित, दीक्षाग्रहण, व्रतपालन, धर्मोपदेश, करुणा आदिके आश्रय धर्मके अनुरागको अङ्गीकार करता है, तव यह आत्मा शुभोपयोगकी द्वितीय भूमिकापर चढ गया समझ लीजिये।

वेदनाके प्रतीकारमें शुभोपयोग व अशुभोपयोग—शुभोपयोग वेदनाका वेदनारूप प्रतीकार है, और अशुभोपयोग भी वेदनाका वेदनारूप प्रतीकार है। अशुभोपयोगका फल तो बुरा है ही, परन्तु अशुभोपयोगके फलके समय भी ज्ञानी जीव अपना शातिमार्ग पा लेते है। शुभोपयोगका फल यद्यपि सपदा वगैरा इष्टसमागम, इन्द्रियसुख, यश, कीर्ति, प्रतिष्ठा आदि है तथापि अज्ञानी जीव इनके अहकारके वेगमे बहकर अशान्तिमय दुर्गमन पा लेते है। वस्तुत बतावो शुभोपयोग व अशुभोपयोग तथा इन दोनोके फलोमे किसको अच्छा कहा जावे ? बडे ढचरेके व्यवहारधर्मियो द्वारा शुभोपयोगका इतना माहात्म्य फैला दिया गया है, तो इसमे यह कारण हुआ कि "शुद्धोपयोगसे पहिले शुभोपयोगका होना हुआ करता है तथा शुभोपयोगके मार्गसे गुजरकर शुद्धोपयोगका मार्ग मिलता है" इस रहस्यसे तो अपरिचित थे और ज्ञानियोके मन, वचन, कायकी चेष्टाको ही पकड लिया। अशुभोपयोग और शुभोपयोग दोनोको ही क्लेशरूप और क्लेशका साधन कहा गया है। अन्तर इतना है कि अशुभोपयोग तो तीव्र क्लेशरूप है और शुभोपयोग मद क्लेशरूप है। अशुभोपयोग २ प्रकारसे होता है—१ द्वेषरूप, २. इद्रियविषयोके अनुरागरूप। द्वेष जितना भी है, वह सब अशुभोपयोग है, परन्तु रागमे इन्द्रियविषय व नामवरीकी चाह आदि मानसिक विषयका अनुराग यह सब अशुभोपयोग है, और परमेष्ठियोकी पूजा, वैयावृत्य, दान, सदाचार आदि सब शुभोपयोग है।

शुभोपयोग व अशुभोपयोगसे शुद्धोपयोगकी विलक्षणता—अशुभोपयोगका फल महा दु ख है, शुभोपयोगका फल इन्द्रियसुखरूप दुःख है, परन्तु अशुभ व शुभ दोनो उपयोगोसे परे शुद्धोपयोगका फल शाश्वत सहज आनन्द है। अशुभ व शुभ दोनो उपयोग विकार है, शुद्धोपयोग धर्म है, अविकार तत्त्व है। विकारके व्ययसे अविकार भावकी उत्पत्ति है अथवा विकार भावका व्यय ही अविकार भावका उत्पाद है। विकारसे अधिकार प्रकट नही होता तथा अविकारी पूर्व पर्यायसे भी अविकारी उत्तरपर्याय का उत्पाद नही होता है। पूर्व अविकारी पर्यायके व्ययसे उत्तर अविकारी पर्याय का उत्पाद होता है अथवा पूर्व अविकारी

पर्यायका व्यय उत्तर अविकारी पर्यायका उत्पाद है। इससे सिद्ध है कि शुभोपयोगसे अथवा शुभोपयोग करते-करते शुद्धोपयोगपर्यायका उत्पाद नही होता है। अतएव ज्ञानीकी दृष्टि शुभोपयोग करनेकी नही होती है, फिर भी शुभोपयोग हो जाता है जब तक रागप्रकृतिका विशेपोदय अथवा उदीरणा चलती है। शुभोपयोग ज्ञानीका वाह्य चिह्न है, किन्तु जिस प्राणी ने स्वलक्ष्य नही कर पाया, उसके भक्ति आदि भी वस्तुत: शुभोपयोग नही है। शुभ उपयोग वास्तवमे वही है, जिसका विपय शुद्ध वने, किन्तु जिसका विपय अशुद्ध तत्त्व वने, वह अशुभ उपयोग है। सम्यग्ज्ञानके बलसे जिसने परमपारिणामिक भावरूप ध्रुव अहेतुक अनाद्यनन्त अखंड निज चैतन्यस्वभावको अनुभवा है वे अन्तरात्मा रागोदयको निमित्त पाकर जब प्रवृत्ति मे आते है तो उनकी प्रवृत्ति परमेष्ठी प्रभुकी पूजा, दान, दया, उपवास व्रताचरणरूप होती है, यही शुभोपयोग है। यह भी शुभका उपयोग नही है, किन्तु उपयोग शुभ है। सर्व विशुद्ध अविकारी भावका उपयोग शुभ है, इसके अतिरिक्त सर्व भेद पर्यायोका ही लक्ष्य रह जाना अशुभ है।

अशुभोपयोग और शुभोपयोगका फल—अशुभोपयोगके प्रसादसे नरक, कुमानुप, तिर्यचके दु खोकी भेट होती है तो शुभोपयोगके प्रसादसे तृष्णाके साधनोकी प्राप्ति होती है। यद्यपि पुण्यके उदयसे इन्द्रियसुख प्राप्त हो तो भी इन्द्रियसुखके वडेसे वडे अधिकारी चक्री, इन्द्र को भी देख लो, उन्हे भी सत्य सुख प्राप्त नही है, प्रत्युत क्लेश ही है अन्यथा वे इष्टविषयोमे हापड-धूपड क्यो मचाते ? देख लिया ना शुभोपयोगका प्रसाद ! अहो मदसे भी मद राग ससार का मूल बनाये रख सकनेमे मूल जड हो जाती, स्वाभाविक सुखके दहन करनेमे चिनगारीका काम करती। अस्तु, शुभोपयोग आता है और इसके फलमे इन्द्रियसुख भी प्राप्त होता है तथापि ज्ञानी जीव शुभोपयोगके कालमे भी सावधानी रखने वाला होता है और फलके कालमे भी। शुभोपयोगकी जबरदस्ती और इसके फलको खूब तकित कर लो।

अब शुभोपयोग द्वारा साध्य जो इन्द्रियसुख है, उसका आख्यान कल करेंगे।

नोट:—(गाथा नं० ७० का प्रवचननोट प्राप्त न हो सकनेका खेद है।)

इन्द्रियसुखका दु.खपनेमे क्षेपणका संकल्प—इन्द्रियसुखके साधन और स्वरूपका कल विचार चला था और यह अच्छी तरह सिद्ध हो गया था कि शुभोपयोगका सामर्थ्य इन्द्रियसुख प्राप्त करानेमे विशेप अधिक है। जीव शुभोपयोगके प्रसादसे तिर्यञ्च, मनुष्य व देव—इनमेसे किसी भी गतिको प्राप्त होकर जितने काल शुभोपयोगके निमित्तसे बाधे गये कर्मोका उदय चलता है, वे नाना प्रकारके इन्द्रियसुख प्राप्त करते है। इन्द्रियसुख व शुभोपयोगका वर्णन

करके अब आचार्यदेव इन्द्रियसुखको फेंककर दुखकी टोकरीमे डालते है।

सोक्ख सहावसिद्ध णत्थि सुराणपि सिद्धमुवदेसे।
ते देहवेदणट्टा रमति विसएसु रम्मेसु ॥७१॥

इन्द्रियसुखका दुःखपनेमे क्षेपण—इन्द्रियसुख जिन्हे प्राप्त होते है, वे तिर्यञ्च, मनुष्य या देव हो सकते है, उनमे भी तिर्यंच अल्प इन्द्रियसुख वाले हो पाते है। उनसे अधिक इद्रिय सुख मनुष्योके पाया जाता है, और मनुष्योसे भी अधिक इन्द्रियसुख देवोमे पाया जाता है। इन्द्रियसुखके अधिकारियोमे सबसे प्रधान देव है। इन्द्रियसुख होनेपर भी इनकी आयु सागरो पर्यन्त होती है, सो चिरकाल तक इन्द्रियसुख भोगते है। यह सब शुभोपयोगका प्रसाद है।

देवोकी आयु जितने सागरकी होती है, उतने पखवाडे तक तो श्वासोच्छ्वासका कष्ट नही पाते, और उतने हजार वर्ष बाद भूख लगती है, बीचमे भूखकी वेदना भी नही होती। भूख लगनेपर स्वतः ही उनके कठसे अमृत झर जाता है और उनकी क्षुधा शात हो जाती है। उनका शरीर धातु उपधातुरहित, वातपित्तकफरहित, नीरोग, युवा सर्वबाधारहित होता है।

इनके देवाङ्गनाये सैकडो हजारोकी तादातमे होती है। देखो भैया! देवोके मनमाना तो इन्द्रियसुख है और उस सुखमे बाधा देने वाला भी रोग, भूख आदि कुछ नही है। कमाने धमानेका तो प्रश्न ही नही है। शृङ्गार शौक आदिके लिये वहाँ विविध कल्पवृक्ष है। इच्छा होते ही अनेक भोगोपभोगसामग्री प्राप्त हो जाती है। यह सब शुभोपयोग के निमित्तसे बधे हुए पुण्यकर्मके उदयके निमित्तसे बिना श्रमके ही हो जाता है। इनकी देवियो का यदि मरण हो जाय तो यशाशीघ्र दूसरी देवी उत्पन्न हो जाती है और सेकिन्डोमे ही युवती हो जाती है। देखो ना! ठाट-बाट देवोका मनमाना इन्द्रियसुख है। भैया! इस समय पहिले भोगे हुए ठाट-बाटोको आप भूल रहे है। अच्छा है, भूल जाना ही श्रेयकर है। यदि इस भवके भोगोकी चिन्तना न रखो। अस्तु! उक्त सारे सुख देवोको प्राप्त है, परन्तु भैया! उनके भी वास्तवमे सच्चा स्वाभाविक सुख नही है।

पुण्यप्रशंसासे पापपुण्यपरिहारी शुद्धभावकी महिमाका प्रकाश—वीतराग महर्षियोने कदाचित् शुभोपयोगका और उसके माहात्म्यका वर्णन किया हो तो विवेकियोको वही तक सुनकर नही रह जाना चाहिये, वहाँ तक आचार्योका भाषण पूरा नही हुआ है, आगे सुनना चाहिये। तब उनकी शुभोपयोगकी प्रशसा करने व पुण्यकी प्रशसा करनेका यथार्थ मतलब समझमे आ जायगा। उनका प्रयोजन यही है कि इतना बडा ठाट पाकर भी जीवका उसमे व उसके भोगमे लेश भी हित नही है। लोग शुभोपयोगको ललचाकर न रह जायें, अपने जीवन का सभावित साफल्य न खो बैठें। इसलिये शुभोपयोगकी महत्ता बताकर उससे भी अनतगुणी महत्ता और वास्तविकता जिसकी है उसका वर्णन करते है।

भैया! एक चतुर वकील था। उसने एक मुवक्किलका मुकदमा ले लिया। उसकी

बहसमे वह वकील अपने खिलाफ ही बोलता गया । बीचमे आधा घण्टा रैस्टकी छुट्टी हुई, तब मुवक्किल बोला कि वकील साहब अब तो हमारी हार ही होगी । आपने तो अपने खिलाफ ही सारी बहस कर डाली । वकील कहता है—घबडावो नही, सब ठीक हो जायेगा । रैस्टके बाद फिर बहस शुरू हुई तो वकील कहता है कि अब तक तो हमने वे सब दलील दी है, जिन्हे हमारा विरुद्ध मुवक्किल या वकील कह सकता था । अब उन दलीलोका खडन सुनिये, पूर्वकी सब दलीलें थोथी और निराधार है । यह कहकर वकीलने सबका खडन करके अपनी विजय प्राप्त कर ली । हमारे आराध्य गुरुदेव भी इसी शैलीसे शुभोपयोग व इन्द्रियसुखका वर्णन कर गये । अब उस वर्णनके पश्चात् कह रहे है कि वह सब तो पर्यायमूढ बहिरात्मावोके द्वारा मूर्खतावश माना हुआ सुख था, वास्तवमे तो इन्द्रियसुखके नाटक करने वाले पात्रोमे से मुख्य पात्र देव भी महादु खी है । देवोके भी स्वाभाविक सुख नही है, प्रत्युत अज्ञानकी इस परिस्थितिमे उनको दु ख होना स्वाभाविक बन गया है, क्योकि यदि देव दुःखी न होते तो कल्पित मनोज्ञविपयोमे क्यो गिरते ? देवियोको मनाना, मनमे नाना कल्पनाये करना, लोकमे यथाशक्ति चारो ओर दौडधूप करना, महादेवोकी विभूति देखकर मनमे सक्लेश ईर्ष्या करना, उनकी आज्ञामे रहनेका कष्ट भोगना, सुन्दर सुन्दर आवासोमे क्रीडाके लिये हापटा मारना, छोटे देवोको आज्ञा देकर अहङ्कार, कर्तृत्वके घोर अन्धकारमे बरबाद होना—ये सब क्या दु ख नही है ? दृष्टि जमाकर देखो तो कभी यह कह बैठोगे कि अरे, ये नारकियोसे भी अधिक दुःखी है ।

देवोका भी विषयविपदामे अभिपात—भैया ! वास्तविकतासे देखो तो अज्ञानी देव दु खी है और ज्ञानी नारकी सुखी है । सुखपर्याय सुखगुणसे व्यक्त होती है । किसी द्रव्यके गुण की पर्यायको अन्य अनन्तानत द्रव्य मिलकर भी नही कर सकते हैं । यही वस्तुकी प्राकृतिकता है, सही मार्ग है । आत्माके अभेद स्वभावका स्पर्श ही आनदका कारण है, अन्य सब धोखा है । यथार्थ निर्विकल्प आनद तो अनादि अनत अहेतुक अखड निर्विकल्प ध्रुव निज स्वभावको उपादान (ग्रहण) करके प्रकट होता है । जिस दृष्टिका विषय क्षणिक है, उस दृष्टिके परिवर्तन होते है, और उस परिवर्तनमे आत्माको अनाकुलता प्राप्त होती नही है । बल्कि शुभोपयोगवा जिनपर प्रसाद हो गया है, उनकी दशा यदि भगवती प्रज्ञाकी सुदृष्टि नही मिली तो बडी दयनीय है । देव पञ्चेन्द्रिय, चारो सज्ञा वाले असयमी होते है, उनमे सब लोकान्तिक व सब अनुदिश अनुत्तर विमान वाले तथा अन्य अहमिन्द्र आदि कुछ देव ऐसे हैं, जो भगवती प्रज्ञाकी भक्तिमे रहते है । अन्य तो सभी पचेन्द्रियात्मक शरीररूपी पिशाचकी पीडासे परवश होते हुए मनोज्ञविपयोमे गिर पडते है ।

इन्द्रियसुखके लोभीकी करुण कहानी—इन्द्रियसुखका लोभी यह ससारी प्राणी समार

विषवृक्षसे गिरते हुए मधुबिन्दुके लोभीकी तरह मूर्ख बन रहा है। एक चित्र आता है, जिसमे दिखाया गया है कि एक पुरुषके पीछे एक हाथी लग गया, वह हाथीके भयसे जोरसे भागा तो उसे बचनेका कोई उपाय न दिखा, केवल यह ही दीख पडा कि सामने एक बडका पेड है, जिससे कुछ झालें नीचे लटक रही है, उन झालोको पकडकर पेडपर चढ जाना चाहिये। उस पथिकने वे झालें पकडी, तो वह पासमे जो कुआ था उसके ऊपर लटक गया, ऊपर मधुका छत्ता था, उसमेसे कुछ बूदें मुसाफिरके मुहपर पडी तो मधुबिन्दुमे आसक्त होकर मुह ऊपर कर लटका रहा। वहाँ उसके नीचे कुआ था, उसमे पाच अजगर थे, वे मुह फाडकर ग्रसनेको तैयार हो गये। वह पथिक अब सब दुःख भूल गया। नीचे साप है, कुआ है। हाथी उस पेड को उखाडकर फेंक रहा है। जिस डालकी झालोपर झूम रहा है, उस डालको दो चूहे काट रहे है, मधुमक्खियाँ उस पथिकके अङ्गपर चिपट रही है। इतनी विपदावोका प्रसङ्ग होनेपर भी वह पथिक मधुबिन्दुस्वादके लोभमे ही फस गया। वहाँ कोई विद्याधर आता है, तो उसे बडी विपदामे देखकर समझाता है कि यहाँसे चलो, हमारे विमानमे बैठकर अच्छे स्थानपर विश्राम करो। परन्तु वह पथिक कहता है कि ऊपरसे यह बूद आ रही है, इसका स्वाद और ले लू।

व्यर्थ विकल्पसे चतुर्गतिभ्रमण—देखो भैया! कितना गजब है, अपने आपपर कितना अन्याय है? मोही जीव भी अनेक आपदावोसे घिरा हुआ है, आयुक्षयरूप यम इसके पीछे लग रहा है, चारो गतिके चार सर्प और निगोदवासका महा अजगर मुह फाडे तैयार रहते है, रात दिवसके दोनो चूहे आयुका छेदन कर रहे हैं। परिवार, बन्धु, मित्र इसके चारो ओर चिपट रहे है। इतना तो विपदाका प्रसङ्ग है, परन्तु यह मोही सब विपदावोको भूलकर विषयसुखमे ही लीन हो गया। सुयोगवश ज्ञानी गुरु भी समझानेको मिल जाय, तो वहाँ भी यह कहता है, सोचता है कि अभी यह सुख और भोग लू, पुत्रकी शादी कर लूँ, पोतेको पढा-लिखा लूँ आदि विकल्पोमे जीवन बरबाद कर देता है। अहो! बडा कष्ट है, अत्यन्ताभाव वाले पदार्थों मे कितनी ममता लगा ली है? निज स्वतत्र स्वरूपको नही पहिचानता और दुःखी होता है।

अशुद्ध उपयोगमें दाहकी भेंट—भैया! देख लिया शुभोपयोगका प्रसाद। परमतत्त्वका लक्ष्य करने वाले ज्ञानियोके जब तक राग है, शुभोपयोग होता है। परन्तु अज्ञानी तो इसमे ही अपना हित समझकर शुभोपयोग करनेका यत्न करता है। सो होता क्या है, जैसा अतरङ्ग है वैसा उपयोग हो जाता है अर्थात् अशुभोपयोग हो जाता है। रागमात्र सब हेय है। आत्मा का स्वभाव अविकारी है, उसके लक्ष्यसे अविकारी पर्यायका प्रवाह आता है। किसी भी परके लक्ष्यसे और निजके पर्याय अथवा भेदके लक्ष्यसे अविकारी पर्याय प्रकट नही होती। अत समस्त भेदोसे परे निर्विकल्प त्रैकालिक अखड निज ध्रुव स्वभावको पहिचानो, फिर अशुभोप-

योगका निशान न रहेगा, और जो शुभोपयोग होता हो, सो होवो, परन्तु श्रद्धा अविचलित रहनी चाहिये कि रागमात्र अहित है, अध्रुवसे क्या प्रीति करना ? मैं तो ध्रुव चैतन्यस्वभावी हू । इस ही अखड चैतन्यस्वभावका लक्ष्य हितकारी है । यहा भी जो लक्ष्य करना है, वह शुभोपयोग है, सो लक्ष्य हितकारी नही है, किन्तु उसके लक्ष्यमे लक्ष्यसे तो नही, परतु योग्यता से सहज धर्मभाव प्रकट होता है । राग तो आग है । जैसे आग कडेमे लगी हो तो दाह पहुचाता है, और शीतल चदनमे लगी हो तो वह भी दाह पहुचाता है । इसी तरह अशुभोपयोग सम्बधी राग तो नरकादि दु खरूप दाह तो पहुचाता ही है, किन्तु शुभोपयोग सम्बधी राग भी स्वर्गीय विषयविषवृक्षका फल चखा देता है । वहाँ लोभी बनकर सम्यक्त्वको गाठसे खोकर एकेन्द्रिय तकका जन्म पा सकता है । अज्ञानियोको तो गुरू व अत सभी एकसा ही है, किन्तु ज्ञानियोको भी सम्पदा भोग विचलित करनेमे निमित्त हो जाते हैं । अत एक शुद्धोपयोगका आदर करो, अन्य व्यग्रता छोडो ।

शुभोपयोग और अशुभोपयोगकी अविशेषताका घोषण—अब तक इन्द्रियसुख दुःख-रूप है, ऐसा अनेक युक्तियोसे सिद्ध किया । अब इन्द्रियसुखके साधन है पुण्य और पुण्यको रचने वाला है शुभोपयोग, और दु खका साधन है पाप व पापदशाका रचने वाला है अशुभो-पयोग । यो शुभोपयोग और अशुभोपयोगमे भी विशेषता नही है, याने दोनो ही अशुद्ध उप-योग है, ऐसा कथन करते है । जैसे सुख और दुःख ये एक समान हैं, याने ससारके सुख भी क्षोभसे भरे हुए है और दु ख भी क्षोभसे भरे हुए है । अतएव जो शुद्ध ज्ञाता है, वस्तुतत्त्वके मर्मको पहिचानने वाला है, उसको यह भली प्रकार विदित है कि सुख और दु ख एक समान चीज है । जैसे सर्प सब एकसे ही विषैले है, चाहे सापनाथ नाम रक्खो और चाहे नागनाथ नाम रक्खो । नामसे कही उनकी मूल प्रवृत्तिमे अन्तर नही आता । इसी प्रकार सुखके भोगने मे भी क्षोभ होता है याने क्षोभ लेकर ही सुखकी रचना होती है, और दु खके भोगनेमे तो क्षोभ है ही याने क्षोभको लेकर ही दु'खकी रचना होती है ।

पुण्य पापके साधनभूत शुभोपयोग और अशुभोपयोगकी अविशेषताका अवतारण—जैसे इन्द्रियसुख और दु'खमे कोई अन्तर नहीं है, इसी प्रकार सुख और दु खके साधन है पुण्य और पाप । ज्ञानी सतकी विशुद्ध दृष्टिमे पुण्य और पाप भी समान हैं । जैसे पापसे हमारा कोई हित नही होता, इसी प्रकार पुण्यसे भी हमारा हित नही है । भला पापके उदयमे जैसे यहाँ कोई गरीब मनुष्य बना, और पुण्यके उदयमे कोई करोडपति मनुष्य बना । तो उतनेसे उनकी मानसिक अशान्ति मिट गई हो, ऐसा तो नही है । पुण्यके उदयसे इन्द्र मनुष्य बन गया, पापके उदयसे कीट मकोडा बना है कोई जीव, पर इतने मात्रसे उसका विधान बन चुका हो कि अब यह मनुष्य कीट मकोडा न होगा पुण्यसे, ऐसा तो नही है । आज ऊँची

दशाओपर है, कल वहो मरकर कुछ और बन जाये। यो सुख दुख समान है, और उसके कारण पाप पुण्य भी समान है। तब पापका कारण है अशुभोपयोग और पुण्यका कारण है शुभोपयोग। इन दोनोमे कोई विशेषता नही है, याने शुभोपयोगमे और अशुभोपयोगमे कोई अन्तर नही है। यह किस दृष्टिसे बताते है, वह सब इस गाथामे आ रहा है।

णरणारयतिरियसुरा भजति जदिदेहसभव दुक्ख।
किह सो सुहो व असुहो उवओगो हवदि जीवाण ॥७२॥

सुख दुःख दोनोका क्षोभमे निर्माण—मनुष्य, तिर्यञ्च, नारको, देव आदि ये शरीरसे उत्पन्न होने वाले दुःखको ही तो भोग रहे है। फिर जीवोका शुभोपयोग अथवा अशुभोपयोगसे क्या उत्कृष्ट नतीजा निकला ? नारकी जीब तो दुःख भोगते ही है यह स्पष्ट बात है। तिर्यंचो मे जो कुछ पुण्यवान तिर्यंच है, वे इन्द्रियजन्य सुख भोगते है। मनुष्य और देव इन्द्रियजन्य सुख भोगते है। लेकिन यह तो बताओ कि इन्द्रियजन्य सुखमे शान्तिका अनुभव होता है या क्षोभ का अनुभव होता है। यह बात तो हम आप सब अपने-अपने अनुभवसे भी समझ सकते है। हम इन्द्रिय विषयोका सुख भोगते है, तो वहाँ शातिका उदय रहता है या क्षोभ उत्पन्न होता है। खानेमे, अन्य विषयोके सेवनमे, किसी रूपके निरखनेमे, रागके सुनने आदिमे जो प्रवृत्ति होती है उस प्रवृत्तिमे शाति रहती है या क्षोभ ? हापडधूपड, आसक्ति, आकर्पण रहता है, क्षोभ रहता है तो पञ्चेन्द्रियात्मक शरीरके कारण इन मनुष्य और देवादिकने भी दुख ही भोगा, सुख नही भोगा।

पुण्य और पापके फलमें स्वाभाविक सुखकी अविशेषता—यदि शुभोपयोगसे उत्पन्न हुई पुण्य सम्पदा त्रिदशोको याने देवोको प्राप्त हुई है तो उनके भी स्वाभाविक सुख नही है, और अशुभोपयोगसे नारकी आदिकोके कोई पाप आ पडा है, सो उनके भी स्वाभाविक सुख नही है। आपदाये आ पडी है तब दोनोके ही दोनो अर्थात् पुण्योदय वाले और पापोदय वाले ऐसे इन्द्रियविषयजन्य सुख दुःख ही भोगते है। इस कारण परमार्थ दृष्टिमे, शुभोपयोगमे और अशुभोपयोगमे पृथक् व्यवस्था नही है कि अच्छा है या बुरा है। और भी देखिये--शुभोपयोगसे उत्पन्न हुआ जो फलवान पुण्य है, उसमे कितने दूषण पडे हुए है ?

कुलिसादउहचक्कहरा सुहोवओगप्पगेहि भोगेहि।
देहादीण विद्धि करेंति सुहिदा इवाभिरदा ॥७३॥

इन्द्र चक्रियोके भी भोगोमें भ्रमसे सुखितपना—इन्द्र है, चक्रवर्ती है, ये अपनी इच्छा से जो कुछ भी भोग पाते है, उन भोगादिकसे शरीरको पुष्ट कर रहे है, सो वे जैसे जोक खराब खूनमे अत्यन्त आसक्त होकर अपनेको सुखी अनुभव करती है इसी प्रकार इन पञ्चेन्द्रियके विषयभोगोमे आसक्त होकर ये इन्द्र और चक्रवर्ती भी अपनेको सुखी मालूम करते

होंगे अथवा दूसरे लोग सुखी देखते है। वस्तुत वहा पर भी उनके सुख नही है। जोककी ऐसी प्रकृति होती है कि गाय भैसके थनमे भी लग जाय तो वह दूधको नही ग्रहण करती है, जो खराब खून है, गदा खून है, उसीको वह ग्रहण करती है। बहुतसे डाक्टर लोग जोक रखते है, उस कामके लिए कि मनुष्यके शरीरमे जहाँसे खराब खून निकालना है, वहा उसे लगाकर निकाल लें। तो जैसे खराब खूनको पीकर वह जोक अपनेको सुखी अनुभव करती है उसी प्रकार ये बडे-बडे इन्द्र चक्री बडे-बडे महापुरुष भी जिनके पुण्यका विशेष उदय है, तो वे भी पञ्चेन्द्रियके विषयोमे इस तरह आसक्त हुए सुखी नजर आते है। तब यह निर्णय रखना कि शुभोपयोगमे उत्पन्न होने वाला पुण्य भी एक सासारिक फलको देता है, उसमे शातिका उदय नही है।

शान्तिका अभ्युपाय—शातिका कारण मात्र एक आत्मस्वभावका अवलम्बन है। जहाँ यह निरखा कि समस्त परभावोसे परपदार्थोसे विविक्त केवल ज्ञानमात्र यह मैं आत्मा हू, ऐसा ही ज्ञानस्वरूप अपनेको अनुभवमे लिया, बस वहाँ ही शाति है, आनन्द है। अन्य परकी ओर आकर्षण हो तो उस आकर्षणकी प्रकृति ही ऐसी है कि वहाँ क्षोभ करता हुआ उपयोग होगा। यह ज्ञान अपने प्रभुकी समीचीनताको छोडकर केवल वृत्ति द्वारा कही ज्ञानगुण आत्म-प्रदेशोसे बाहर नही जाता, केवल एक वृत्ति द्वारा अपने प्रभुको त्यागकर बाहरकी ओर जाय तो इस प्रकार बहिर्गमनमे प्रकृति ही ऐसी पडी हुई है कि वहाँ क्षोभ होगा। तो पञ्चेन्द्रियके विषयोमे जिनका चित्त लगता है उनको क्षोभ ही है, शान्ति उत्पन्न नही होती। तब एक शुद्धोपयोग ही इस जीवका परमार्थ शरण है। अपने आपके सहजस्वभावका, शुद्धस्वभावका ही सही रूपमे निरन्तर उपयोग बनाये रहना, इसमे यह सामर्थ्य है कि ससारके ये सब सकट समाप्त हो सकते है।

सुख, दु ख, पुण्य, पाप, शुभोपयोग व अशुभोपयोगमें अनात्मरूपता—यहा ये ६ बातें हुई, सुख दु ख पुण्य, पाप, शुभोपयोग और अशुभोपयोग। ये छहोके छहो आत्मस्वरूपसे भिन्न तत्त्व है। न सुख आत्माका स्वरूप है, न दु:ख आत्माका स्वरूप है। आत्माका स्वरूप तो आनन्द है। न पुण्य आत्माका स्वरूप है, न पाप आत्माका स्वरूप है। आत्माका स्वरूप तो ज्ञायकस्वभाव है। न शुभोपयोग आत्माका रूप है, न अशुभोपयोग आत्माका रूप है। आत्मा का रूप तो एक ज्ञानस्वभाव है। इस ज्ञानस्वभावके अवलम्बनमे ये छहोके छहो परतत्त्व, परभाव वियुक्त हो जाते है।

आनन्दानुभवसे धर्मलाभ—एक ज्ञानतत्त्वके आलम्बनमे जो आनन्द उत्पन्न होता है उस आनन्दसे फिर ये सब अनादिकालसे परम्परासे चले आये हुए कर्म झड जाते हैं और एक आनन्द आनन्दका ही उनके अनुभव होता है। वह अनुभव मोक्षका मार्ग है। मुक्ति कष्ट सह

कर नही मिला करती, किन्तु शुद्ध आनन्दका अनुभव करके मिला करती है। धर्म भी कष्टसे नही मिलता किन्तु आनन्दसे मिलता है। धर्मका स्वरूप क्या है—इसका जब परिचय होता नही है और लोकरूढिवश धर्मपालनकी बात मनमे है, क्योकि यहाँ श्रद्धामे बनाया है कि धर्म पालन करे तो सब सुख समृद्धि होती है। परभवमे भी देव होगे, यहाँ भी बडी सुख साता रहेगी, तो धर्मको जी चाहता है, किन्तु धर्मके स्वरूपका पता नही है तो ये सब संकट सहने पडते है—नहाओ, घटो पूजामे खडे रहो, अनशन करो आदि। तब खुदको भी और दूसरेको भी यह दिखने लगता है कि धर्म करना कोई सरल काम नही है, बडा कठिन है और बडे कष्ट सहने पडते हैं।

धर्मपालनमें कष्टका अनवसर—जो धर्मस्वरूपका परिचयी है वह इन व्यवहारिक बातोमे इतनी हठ भी नही करता है साधारणतया निभ जाय जो बात सो करता है। उसमे इतनी हठ भी नही करता कि चलो इसका संकल्प किया है, सो निमोनिया है तो उसमे भी नहावो, काम करो, इतनी हठ भी नही होती। उसका आन्तरिक नियम तो प्रभुदर्शनका है। तो जब धर्मके स्वरूपका यथार्थ परिचय नही होता है तो धर्मकी बातें कष्टरूप मालूम होती है। धर्मपालन तो अत्यन्त सुगम है, जब जरा गर्दन झुकावो देख लो, अपना प्रभु अपनेमे ही है। तो चूकि धर्मके स्वरूपका पहिलेसे परिचय नही, इसलिए एकदम पहिलेसे आनदकी दिशा नही मिलती। पहिले तो अनादिकालसे अधकारमे था, तो उसके चक्करका असर तो रहता ही है, इसलिए धर्ममे पहिले कष्ट सहना पडता है, और फिर बादमे आनन्द प्राप्त होता है। तो सुखमे, दु खमे, पुण्य-पापमे और शुभोपयोग अशुभोपयोग—इनमे किसी भी प्रकारकी विशेषता नही है, इस प्रकरणमे यहाँ तक सिद्ध किया है।

पुण्यकी दुःखबीजहेतुताका उद्भावन—पुण्यके फलमे ससारी प्राणी विषयोमे रमकर आसक्ति होनेके कारण सुखीकी तरह मालूम होते है, किन्तु वहाँ भी प्रारम्भसे अन्त तक क्षोभ ही भरा हुआ है। इसके अतिरिक्त पुण्यमे और क्या खासियत है? इसे अब और सुनिये—यह पुण्य दु खके बीजका हेतु है। जो दु खका कारणभूत परिणाम है, उस परिणाम का कारण किस दृष्टिसे यह पुण्य है? यो पुण्यके दु खबीजकी हेतुताका उद्भावन करते है। उद्भावनका अर्थ है कि कोई चीज जो सबको प्रकट न हो, उसे उघारकर सबको प्रकट कर दे। इसमे एक यह भी एक पोल पडी हुई है कि यह पुण्य दु खके बीजका हेतु है, यह बात साधारण जनोको प्रकट नही है तो इस पोलको ही मानो खोल रहे है।

जदि सन्ति हि पुण्णाणि य परिणाम समुब्भवाणि विविहाणि।
जणयंति विसयतण्हं जीवाणं देवदन्ताणं ॥७४॥

पुण्यकी तृष्णोत्पादकता—शुभोपयोग परिणामसे है उत्पत्ति जिनकी, ऐसे यदि ये

अनेक प्रकारके पुण्य मौजूद है ऐसा आप मानते है, अर्थात् किसी पुण्यवान जीवको देखकर यदि कुछ भी उनका स्तवन करते है कि इनका बडा पुण्य है तो सुनिये—यह पुण्य देव तक को भी याने बडे देवेन्द्रोसे लेकर और समस्त ससारियोको भी यह विषयतृष्णाको उत्पन्न करता है। जिस पुण्यकी लोग बडी तारीफ किया करते है—वाह क्या कहना, इनके तो बडे पुण्य आ रहे है। यदि वैभव बडा आ रहा है, यदि परिजन भले है, मित्रजन आज्ञाकारी है, राज्यके बडे ऊचे ऊचे ओहदे प्राप्त होते जा रहे हैं तो कहते है—वाह इनका बडा पुण्य है। तो उस पुण्यकी यह कहानी है कि यह पुण्य बडे-बडे देवो तकके भी, समस्त ससारियो तकके भी और की तो बात क्या कहे देवेन्द्रो तकके भी यह पुण्य विषयकी तृष्णाको ही उत्पन्न करता है।

तृष्णासे विषयप्रवृत्ति—अच्छा, होने दो तृष्णा, उससे कुछ हानि है क्या ? हाँ हानि है। तृष्णा होनेसे विषयोमे प्रवृत्ति देखी जाती है। जैसे कि जोक खोटे खूनको पीकर सुख मानती है, तो वह तृष्णाके बिना तो नही पीती, उसे तृष्णा है, आसक्ति है। तो जैसे तृष्णा के कारण जोकको गदा खून पीनेकी प्रवृत्ति है इसी तरह समस्त ससारी जीवोकी, इन मोही प्राणियोकी जो विषयोमे प्रवृत्ति है वह प्रवृत्ति तृष्णाके बिना नही है। तो विषयतृष्णा होनेके कारण विषयोमे प्रवृत्ति देखी जा रही है। अब ध्यानमे आया कि पुण्यका क्या फल है ? पुण्य का यह फल होता कि विषयोमे प्रवृत्ति होने लगी।

विषयप्रवृत्तिसे संकट—कोई कहे कि होने दो विषयोमे प्रवृत्ति, विषयोके लिए ही तो सारा ससार उद्यम कर रहा हैं। इसीकी तो तारीफ की जा रही है कि बडा पुण्य है। कैसे-कैसे साधन मिले है, कैसे विषयभोग प्राप्त हैं, तो उन विषयोकी प्रवृत्तिमे कुछ हानि है क्या ? ज्ञानी सत कहते हैं, हाँ हानि है। उन विषयोकी प्रवृत्तिसे ही तो सारे सकट और दु ख आते है। तब भिन्न-भिन्न प्रकार एक-एक इन्द्रियकी मुख्यतासे विषयप्रवृत्तियोमे प्राणघात हो जाता है जीवोका। हाथीका स्पर्शनइन्द्रियके विषयमे, मछलीका रसनाइन्द्रियके विषयमे अधिक आसक्ति है, भवरेका घ्राणइन्द्रियके विषयमे, पतिगोका चक्षुइन्द्रियके विषयमे और हिरण, साप आदिकका कर्णइन्द्रियके विषयमे विशेष आसक्ति है, अतएव बधनको प्राप्त होते है और मार डाले जाते हैं। अब देखो ना कि पुण्यका क्या फल है ? पुण्यका फल है क्लेश।

पुण्यवंतोकी शानमें लाखो मनुष्योका विनाश—इस पुण्यके फलमे इन जीवोको क्लेश होना सो ठीक है, पर उन पुण्यवानोके कारण हजारो और लाखो आदमियोका भी ध्वस हो जाता है, यह और खास अलग बात है। फलाने चक्री बडे पुण्यवान, फलाने राजा महाराजा बहुत पुण्य वाले है या आजकलके राष्ट्रपति, मिनिस्टर आदि राज्याधिकारोको लोग कहते है कि ये बडे पुण्य वाले हैं, पर उनकी हालत देखो—तृष्णा लगी है, ससारमे अपना नाम कमाने

की धुनमे लगे है, और उस धुनमे लडाई भी करते है और हजारो, लाखो, करोडो आदमियो को पीडा पहुचाते है । तब देखो ना, पुण्यमे क्या-क्या करामाते हुई ? खुदको भी क्लेश होता और उसके उस क्लेशके कारण लाखो मनुष्योको भी क्लेश होता है । यह पुण्यकी तारीफ की जा रही है । मोही लोग तो पुण्यकी तारीफ अज्ञानवश उपादेयके रूपमे करते है, और यह पुण्य हेय है । इस बातको दिखाते हुए आचार्य महाराज तारीफ कर रहे हैं ।

पुण्यफलका क्षणिक स्वप्न—भैया ! और भी सोचते जाइये, पुण्य है, मान लो जिंदगी बडी अच्छी कटी, किसी बातका कष्ट नही होता । होता नही है ऐसा । कष्टमय ही सबका जीवन है । कोई कष्टको ही सुख मान ले, यह तो उसके मोहकी बात है । मान लो उसकी दृष्टिमे जीवनमे कोई कष्ट नही रहा, सब विषयोके साधन अच्छे है, सब प्रकारका मौज है, लेकिन उसके साथ मूढता भी लगी हुई है, अपने आपके स्वरूपका होश भी नही है, अज्ञानका अधेरा छाया है, और ये दिन थोडेसे व्यतीत हो गए, उस मौजकी दृष्टिके माफिक तो यह मौज क्या कीमत रखता है ? अथाह जो स्वयभूरमण समुद्र है, जो करीब-करीब आधे राजू प्रमाण है, इतने बडे समुद्रमे से एक बूंद निकले तो समुद्रके आगे उस एक बूंदकी भी कुछ गणना हो सकती है, किन्तु इस अनतकालके सामने हम आपके ये ५० वर्ष, १०० वर्ष अथवा हजार वर्ष, लाख वर्ष, करोड वर्ष भी अथवा देवोकी सागरो पर्यन्त आयु कुछ भी गणना नही रखता, मिल भी गया मौज पुण्यके उदयमे तो यह रमनेके योग्य नही है ।

शुभोपयोगके हेयपनकी दृष्टि—पुण्यकी दु खबीजहेतुताकी बात सुनते हुए साथ-साथ यह भी अतरमे निहारते रहना चाहिए, जहाँ दु खको हेय कहा, इन्द्रियसुखको हेय कहा, वहाँ यह भी समझना चाहिए कि इन सबका जो मूल है शुभोपयोग उस शुभोपयोगमे ये ये बाते बनी है, सो वह शुभोपयोग भी हेय है, यह चर्चा चल रही है । जिन्हे शुद्धोपयोगकी रुचि हुई है, और शुद्धोपयोगके मर्मको जिन्होने पहिचाना है, शुद्धोपयोगका फल जो कैवल्य है, वह कैवल्य ही आनदकी अवस्था है, ऐसा जिनका दृढ निर्णय है और जिन्होने इस कैवल्य अवस्था के लिए ही अपना कदम उठाया है, उनकी दृष्टिकी बात कही जा रही है कि उनकी दृष्टिमे शुभोपयोग और अशुभोपयोग दोनो बराबर नजर आ रहे है । अशुभोपयोगसे तो हित किसीका भी नही है, किसीकी ही दृष्टिमे नही है, पर जिन्हे आत्माकी कैवल्य अवस्था प्रिय है, उनकी दृष्टिमे शुभोपयोग भी हितरूप नही है ।

शुभोपयोगको करके भी शुभोपयोगके अग्रहणकी दृष्टि—देखिये भैया ! साधु सतोकी वृत्ति कि शुभोपयोगको करते जा रहे है, और शुभोपयोगको हेय मानते जा रहे है, और है भी उन्हीकी बात सच । जो शुभोपयोगसे दूर रहे और शुभोपयोगको हेय माने, उनकी बात सच नही मानी जा सकती है, और अभी तो धर्मचर्चाके नामपर उनकी विडम्बना बनती है कि जो

घमडसे समझिये या किसी तृष्णासे समझिये—व्यावहारिक क्रियाएँ अथवा शुभोपयोगकी बाते नही करते है और शुभोपयोगको मना करते है, तथा शुद्धोपयोगकी अवस्था है ही नही तो विडम्बना बन जाती है। ये सन जन क्या करें ? जिन्हें शुद्ध मार्गके तो दर्शन हो गए है, किन्तु उदयवश, परिस्थितिवश उस शुद्धोपयोगके मार्गपर यथेष्ट चल नही पाते, तो ऐसी परिस्थिति जिन ज्ञानियोकी है, उनकी वृत्ति अशुभोपयोग और शुभोपयोग—इन दोनोमे से क्या हो सकती है, अदाज कीजिए ? शुभोपयोगकी वृत्ति होती है, और शुभोपयोगकी वृत्ति रखते हुए चित्तमे कभी भी यह भ्रम नही हो सकता कि यह शुभोपयोग मेरे लिए उपादेय है।

दृष्टान्तपूर्वक शुभोपयोगके प्रवर्तन और अग्रहणका समर्थन—जैसे किसी रोगीको ज्वर है, उस ज्वरमे कडवी मीठी सभी प्रकारकी दवाये पीनी पडती हैं। चाहे मीठी ही औषधि क्यो न पीता हो, पर क्या उस रोगीके चित्तमे यह बात आ सकती है कि ऐसी औषधि हमे जिन्दगी भर मिलती रहे ? यद्यपि औषधिमे उसे राग है, समयपर औषधि न मिलनेपर वह परिजनोपर झुझलाता है, बडा प्रेम रखता है उस दवासे, लेकिन उसके दिलसे पूछो कि क्या तुम ऐसी दवा जीवनभर पीना पसद करते हो, तो वह तो यही कहेगा कि हम नही चाहते है। इसी तरह यह ससार निवासका रोगी ज्ञानी पुरुष इस रोगनिवारणके प्रयासमे चाहता तो है कि मै स्वस्थ रहू, जिसमे कुछ नटखट भी नही करने पडते, लेकिन परिस्थिति ऐसी है कि वह दशा प्राप्त नही है। जब शुभोपयोगकी औषधि पी रहा है और प्रेमसे पी रहा है, कही ऐसा नही है कि घृणा करके, न चाह करके जबरदस्ती जैसे बच्चेको पिलाया जाता हो, इस तरह पीता हो, पी रहा प्रेमसे, शुभोपयोग कर रहा है, समयका भी बडा ख्याल रखता है। सामायिकका समय हो गया, अब हमे सामायिक करना है। पूजनका समय हो गया, हमें पूजन को जाना है, समयपर सब काम भी करता और प्रेमपूर्वक करता, इतनेपर भी जो ज्ञानी हो, उससे कोई पूछे—क्या तुम ऐसी सामायिक, ऐसा पूजन अनतकालके लिए चाहते हो ? तो उसका उत्तर होगा—नही। हम तो समस्त कर्मोंसे रहित, केवल स्वरूपस्थ रहना चाहते है।

पुण्यवंतोको तृष्णाका उपहार—जिस ज्ञानी पुरुषको शुभोपयोगके फलमे प्राप्त हुआ पुण्यबध, पुण्यके फलमे प्राप्त हुई तृष्णा और तृष्णाके फलमे प्राप्त हुआ क्लेश, इन सबका विधिविधान मालूम है, उस ज्ञानी सतकी दृष्टिमे यह बात स्पष्ट है कि पुण्य दु खके बीजका हेतु है। दु.खका बीज है तृष्णा, और तृष्णाका कारण है यह पुण्य। जैसे-जैसे सामग्री आती है, पुण्य आडे आता है, तृष्णा पसरती जाती है। कोई जगलमे देहातमे रहने वाले पुण्यहीन किसानकी तृष्णा देखो तो वह यह न चाहेगा कि हमे सयुक्त राष्ट्रसघकी अध्यक्षता मिले, और शहरके निवासी पढे-लिखे अच्छे ओहदोपर रहने वाले लोगोमे यह तृष्णा मिलेगी। तो तृष्णा का प्रसार पुण्यवतोके होता है, तृष्णाकी गिफ्ट पुण्यवतोको ‘ात है, और यह तृष्णा आगामी

दु खका कारण है । तो इस तरह जो पुण्य है वह तृष्णाका घर है, यह बात अबाधित सिद्ध हुई है । अब पुण्य दु खका बीज है, इस बातकी घोषणा करते हैं ।

जे पुण उदिण्हतिण्हा दुहिदा तण्हाहिं विसयसोक्खाणि ।
इच्छति अणुहवति य आमरण दुक्खसतत्ता ॥७५॥

तृष्णासे विषयाभिलाषा और दुःखानुभव—साधारण ससारी जीवोंसे लेकर देवो तक के समस्त ससारी जीव इन पुण्यकर्मोंसे रची हुई तृष्णावोके द्वारा विषयोसे सुखकी अभिलाषा करके दु खी होते है । जैसे मृग जलकी प्राप्तिके लिए मृगमरीचिकाको जल समझकर दौड लगाता है, जलकी इच्छा करता है ऐसे ही ये समस्त संसारी जीव विषयोसे सुखकी अभिलाषा करते है । पुण्यके फलमे प्राप्त हुई तृष्णा और तृष्णाके फलमे विषयोसे सुखकी अभिलाषा करने लगते है ।

प्रभुके निकटमे भी कैसी विडम्बना—एक कहावत है कि कॉखमे लडका गाँवमे शोर । कोई महिला अपनी गोदमे लडकेको लिए है और न जाने कैसी बुद्धि हो गई, कहाँ चित्त चला गया, कहाँ भ्रान्ति बन गयी कि वह गांव भरमे पूछती फिरती है—हाय मेरा लडका कहाँ गुम गया ? ऐसा कोई करे तो उसे आप कितना मूढ समझेंगे ? ऐसे ही समझ लो कि अपना प्रभु स्वय है, एक निकटताकी दृष्टि करे तो अत्यन्त स्पष्ट है । तो अत्यन्त निकट विराजमान क्या स्वय स्वस्वरूप प्रभुके साथ ही तो हम रह रहे है, जो प्रभु परिपूर्ण आनन्दमय है, ज्ञानस्वरूप है, ऐसे ज्ञानानन्द प्रभुके निकट ही तो हम है । वही तो हम है और बाहरमे हम विषयोसे सुख ढूढ रहे है, अपने ज्ञानवृद्धिकी कोशिश कर रहे है, इस पुस्तकसे ज्ञान मिलेगा, इस मास्टरसे ज्ञान मिलेगा, इन विषयोसे सुख मिलेगा, यो बाहर बाहर ही दृष्टि गडाये रहते है, ऐसी प्रवृत्ति वालोपर हँसे कौन, इन्हे मूढ कहे कौन ? जब सब ही इस पार्टी मे शामिल हो गए तो फिर इन्हे मूढ कौन कहने वाला है ? ये सब बातें अपने आपमे अपना चिन्तन करनेकी हैं ।

स्वाध्यायके लाभकी पात्रता—जब स्वाध्याय करते है लोग तो स्वाध्यायके समयमे स्वाध्याय करने वाले दो प्रकारकी प्रवृत्ति वाले होते है—एक तो ऐसे लोग जो अपना उपयोग बाहर रखकर किताबके अक्षरोमे क्या कहा गया है, ठीक है, यह हम सभी लोगोको बतावेगे ऐसा ही सबको समझावेगे, जिनकी इन बातोपर दृष्टि है वे स्वाध्यायके लाभको प्राप्त नही कर पाते और जो उस वाक्यसे, उस मतव्यसे अपने आपमे ही कुछ खोजनेकी उत्सुकता रखते है, जो कहा गया है, उसे अपने आपमे खोजते है । इस प्रकार अपने अत अन्वेषणकी विधि बनायें, वे स्वाध्यायसे लाभ ले लेते है । आत्मानुशासनमे जहाँ श्रोताके गुण बताना शुरू किये है तो सबसे पहिले यह बताया है कि जो भव्य हो, वही तो वास्तविक श्रोता है । तो यह

बात तो कुछ करने धरनेकी नहीं हुई। बता दिया कि भव्य ही यथार्थ श्रोता हो सकता है, पर जहाँसे करने धरने और परीक्षणकी बात कही गई है तो एकदम कह दिया गया है कि मेरा क्या हित है, मेरी किसमे कुशलता है ? ऐसा जो विचार रखता हो, वही वास्तविक श्रोता है। यो ही वक्ताको समझिये। यो ही स्वाध्याय करने वालोको समझिये।

श्रोतृत्व——भैया ! यहां तो सब श्रोता है। श्रोता और श्रावकमे क्या अन्तर है ? श्रोताका अर्थ है जो सुने। यह श्रावक भी हर एक क्रियामें कुछ न कुछ सुनता ही रहता है, इसलिए सीधा उसका नाम श्रावक है। पूजन कर रहा है, वहा भी कुछ सुन रहा है। सुनना कौन चाहता है, जो स्वय कुछ अभीष्ट प्रयोजनमे परिपूर्ण सिद्ध न हुआ हो, और जिसके समस्त प्रयोजन पूरे हो गए, वह तो कहेगा कि अब हमे नही सुनना है। जैसे कोई दो पुरुष है, उनका आपसमे व्यवहार है, लेन-देन है, सम्बध है। तो जब तक एक पुरुष फसा हुआ है किसी बातमे और दूसरा पुरुष परिपूर्ण हो गया है, उसके हाथ सब आ गया है तो एक कहता है–अरे सुनो तो, दूसरा कहता है–अरे हमे नही सुनना है। तो सुननेकी इच्छा किसको होती है, जो अपने प्रयोजनमे पूर्ण सिद्ध न हुआ हो।

श्रावकका श्रोतृत्व गुण——श्रावक तो सदैव सुनने वाला कहा जाता है। चाहे वह दान कर रहा हो, भक्ति कर रहा हो, प्रवचन कर रहा हो, सेवा कर रहा हो, हर समय उसे सुनना ही सुनना रहता है। चुपचाप भी सुनना होता है, और कोई बोले उसका भी सुनना कहलाता है, साधुवोकी सेवा कर रहा है तो बहुतसी बातें वह सुन रहा है। साधु चाहे मौनमे हो, पथ तो यह ठीक है, परिग्रह और आनदमे बडा क्लेश है, यह साधुसे सुना रहा है और श्रावक सुन रहा है। तो श्रावक सदैव सुनने वाला है, क्योकि उसका प्रयोजन परिपूर्ण सिद्ध नही हुआ। साधुवोको आहार दे रहा है, वहाँ भी सुन रहा है। धन्य है इनकी वृत्ति, कितना त्याग किया, अपने आपकी ओरका अनुराग कितना वैराग्य, यो जाननहारकी वृत्ति ही शान्तिका मार्ग है। ये सब बातें वह सुन रहा है। भगवानके दर्शन करते हुएमे भगवान कुछ बोलते यद्यपि नही है, फिर भी यह श्रावक बहुतसी बाते सुन रहा है, सुनाने वाला कौन ? तो थोडा यो कह लीजिए कि प्रभुकी तरह हममे बसा हुआ ही प्रभु हमे सुना रहा है, और यह प्रभुका भक्त उपयोग यह यहाँ सुन रहा है।

वास्तविक शान्तिके अर्थ कर्तव्य——भैया ! धर्ममार्गमे कोई चले तो उसको अपने निकट बसे हुए प्रभुके दर्शन होगे। उसके निकट आये, उसकी बाते सुने और उस प्रसगमे जो ज्ञान-प्रताप हो उसका अनुभव करें, तभी शातिका पथ मिल सकता है। इन पुण्योकी तारीफमे और इनकी उत्सुकतामे जीवका कभी भी हित नही हो सकता। विभावजालमे बसनेसे क्या हित है, चाहे वह विभावजाल सुहावना हो या असुहावना हो। सभी विभाव आकुलताके

साधक होते है। जिन्हे निराकुल रहनेकी अभिलाषा हो, उन्हे पुण्यपापसे रहित शुद्ध चैतन्य-स्वभावकी उपासनामे वर्तना चाहिये।

सुखकी चाहमे क्लेशसंतापका वेग—ससारी जन पुण्यसे रची हुई तृष्णावोसे अत्यन्त दु खी होकर विषयसुखोकी चाह करते है। सो सुखकी चाहमे तो दु खके सतापका वेग होता है। इसी सुखकी चाहको निदान कहा करते है, और निदान नामक आर्तध्यान बताया गया है। निदानमे भी बहुत तीव्र पीडा होती है—अपने मसूबे बाँधना, शेखचिल्ली जैसी बाते विचारना, भोगोकी इच्छा करना, वैभव सम्पदाकी अभिलाषा रखना, इन सबसे निदान नामका आर्तध्यान होता है। आर्तध्यान उसे कहते है जो दु:खपूर्ण ध्यान हो, जिसमे दु ख ही दु ख हो, ऐसा ध्यान भी पुण्यवान जीवोके होता है। सुखकी इच्छा करनेमे दु:खके सतापका एक वेग होता है, एक सताप होना और एक उसका वेग चलना। सतापसे भी भयकर सतापका वेग होता है। जैसे एक गर्मी होना और एक लू चलना, तो गर्मीसे भी अधिक पीडा लू मे होती है। लू गर्मीका वेग है। इसी तरह सुखकी अभिलाषा दु खसतापका वेग है। उस वेगको न सह सकते हुए ये पुण्यवान जीव विषयोका अनुभव करते है, और विषयोमे तब तक प्रवृत्ति करते रहते है जब तक कि ये बरबाद न हो जाये।

विषयाभिलाषियोके आमरण क्लेश—जैसे कि जोक गदे खूनको तब तक पीती रहती है जब तक कि वह प्रलयको न प्राप्त हो जाय। जोक प्राय: गदा खून भरपेट पीकर मरा करती है, जोक आसक्तिसे गदे खूनको पी जाती है और खूब पेट भर पीती है। वह छूटती तब ही है जब उसे पीनेकी और ताकत नही रहती, तब छूटकर उस पेट भरे गदे खूनके कारण वह प्रलयको प्राप्त हो जाती है। तभी तो डाक्टर लोग जो कि जोक रखते है कोई मनुष्यके किसी हिस्सेका गदा खून निकालनेके लिए। जब जोक खूब खून पी लेती है, अपने आप छूट जाती है तो उसे किसी प्रकार धीरेसे मसलकर खूनको उसके पेटसे निकाल देते है, नही तो वह जोक जल्दी मर जाती है। तो जैसे जोक गदे खूनको तब तक पीती रहती है जब तक कि वह प्रलयको प्राप्त न हो जाय, बरबाद न हो जाय, इसी प्रकार पुण्यवान जीव विषयोकी अभिलाषासे उत्पन्न हुए सतापके वेगको न सहकर तब तक विषयोमे प्रवृत्ति करते रहते है जब तक कि ये बरबाद न हो जायें, मर न जायें। अर्थात् सारी जिन्दगीभर विषयोमे प्रवृत्ति करते है और विषयोमे प्रवृत्ति करनेके कारण अकालमरणको भी प्राप्त होते है।

तृष्णासे विषयोमें आकर्षण और अभिपात—जैसे कि जोक तृष्णाके कारण गदे खून की ओर क्रम-क्रमसे आकर्षित होकर खूनके सुखका अनुभवन करती हुई जब तक उसका प्रलय न हो जाय तब तक क्लेश पाती है इसी प्रकार यह पुण्यवान जीव भी पापियोकी तरह तृष्णाके कारण इन दु खोके वेगसे उन विषयोमे क्रमसे झुकता रहता है। जैसे कोई तृष्णावी

पुरुष शरीरमे कमजोर है, फिर भी वह धीरे-धीरे विषयोके लिए अपनी क्रियायें करता रहता है, इसी प्रकार यह पुण्यवान जीव भी क्रमसे उन विषयोकी ओर 'आकर्षित' होता है, उन विषयोकी अभिलाषा करता है, और विषयोके निकट पहुचकर जब तक उसका मरण नही होता तब तक क्लेश पाता ही रहता है। एक ऐसी धारणा बनायें कि इस मनुष्यमे मात्र इच्छा भर न रहे, फिर इसकी क्या स्थिति होगी ? सुखी हो जायगा।

निदानका विकट क्लेश—जितने भी दु ख होते है, वे अभिलाषासे होते है। जैसे कष्ट इष्टके वियोगमे होते है, अनिष्ट पदार्थोके सयोगमे होते है, शरीरमे रागादिक उत्पन्न होते है वैसे ही कष्ट सुखोकी, विषयोकी अभिलाषा रखनेसे होते है। चित्त चचल रहता है, किसी अन्य जगह मन नही लगता, बुद्धि भी काम नही करती। अन्तरङ्गमे आकुलता और क्षोभ बना रहता है। आशा प्रतीक्षामे उस इच्छाकी ही तरह दुःख होता है। इच्छा, आशा और प्रतीक्षा ये तीनो यद्यपि तृष्णासे ही सम्बधित है, किन्तु इच्छासे अधिक आशामे क्लेश है, और आशासे अधिक प्रतीक्षामे क्लेश है। यो इच्छा, आशा और प्रतीक्षा कर करके ये जीव जब तक क्षयको प्राप्त न हो जाये, बरबाद न हो जायें तब तक क्लेश पाते रहते है।

इन्द्रियसुख और दुःखमें समानताका निर्णय—इससे यह निर्णय करना कि पुण्य भी दु खोका ही साधन है। यह दु ख सुखाभास है। है तो दु ख और सुख-सा लगता है। ऐसे सुखाभासके कारणभूत पुण्यकर्म होते है। जिन्होंने परम आनन्दस्वरूप निज ब्रह्मके दर्शन किये है और सत्य आनन्दका अनुभव किया है, वे पुरुष भली प्रकार जानते है कि पापके फलमे जो क्लेश होता है और पुण्यके फलमे जो सुखाभासके अनुभवका क्लेश होता है वे सब क्लेश एक समान ही है, अर्थात् इस शुद्ध आनदके समक्ष इन्द्रियजन्य सुख और दु ख दोनो ही हेय है। इस प्रकार पुण्यकृत इन्द्रियसुखको दु खरूप बताया गया है।

इन्द्रियसुखका दु खरूपमें उद्योतन—अब फिर भी बहुत-बहुत प्रकारसे इन्द्रियजन्य सुखोकी दु खरूपताका उद्योतन करते है। इन्द्रियसुख दु खरूप है। इस प्रकारके वर्णनमे यह अन्तिम गाथा है, और जैसे किसी वस्तुको दिखाकर अनेक बार अनेक तरहसे बताकर या जो कोई कला चमत्कार हो उसे दिखानेके बाद जो अतिम दिखावट होती है, वह एक अतिम झाँकीका रूप देकर होती है। जैसे कवि लोग कविता बनाते हैं तो जितने भी उसमे छद रखे है, अन्तिम छन्द न आने तक सब बोल जाते है और अतमे एक बार आगाह करते है कि अब यह अतिम है, और उस अन्तिममे ऐसा उस कविताका निचोड होता है कि दो ही तुकोमे कविताका सब भाव आ जाय और बडे अलङ्कारके ढगसे आ जाय, तो उसे एक झाँकीकी तरह बोलते है, और उस अन्तिम बोलसे लोगोके चित्तमे उसका भाव भर जाता है। ऐसे ही इन्द्रियसुखको दु ख बतानेके इस प्रकरणमे यह अन्तिम गाथा है, और इसमे सारी प्रकारका

भाव आ जाय, ऐसी एक अन्तिम झांकी देते है अर्थात् इन्द्रियसुखका दुःखरूपसे उद्योतन करते है।

सपर बाधासहिय विच्छिण्ण बधकारण विसम।
ज इदियेहि लद्धं त सोक्ख दुक्खमेव तहा ॥७६॥

पराधीन सुखकी दुःखरूपता—इन्द्रियसुख पराधीन है। जो पराधीनतामे सुख मिले उस सुखको तो लोग सुख नही कहते, दुःख कहते है। जैसे किसी देशपर किसी विदेशीका राज्य हो, और वह विदेशी राज्य बडी सुख सुविधाये भी प्रदान करता हो, लेकिन प्रजाके लोग अपनेको दुःखी अनुभव करते है। हम आजाद तो नही है, दूसरोका राज्य है, अपनेको गुलाम मानकर चित्तमे पीडित बने रहते है, और आजादीकी प्राप्तिके लिए असहयोग आन्दोलन आदिकके अनेक कष्ट भी भोगते है, आजादी मिलनेपर कष्टोको भोगते हुए भी अपने आपको आनन्दमग्न पाते है। तो पराधीनतामे लोकमे भी सुख नही मानते। लेकिन यहाँ तो बहुत अधिक पराधीनता है। व्यवहारमे आजाद और स्वतत्र कहलाने वाले व्यक्ति भी आजाद नही हैं, वस्तुत. वे भी परतत्र है। प्रथम तो अनुकूल कर्मोका उदय होना चाहिए, यही एक पराधीनता है। फिर उसके साथ अनेक विषयसामग्री मिलनी चाहिए, फिर ये द्रव्येन्द्रिय—आँख, कान वगैरा भी हमारे समर्थ होना चाहिए। पुण्यका उदय भी निकल रहा है, विषयसामग्री भी मौजूद है, लेकिन बहिरे हो गए, अन्धे हो गए अथवा जिह्वामे रोग हो गया। तो अब क्या भोगेगे ? तो ये हमारी इन्द्रियाँ भी समर्थ चाहिएँ आदिक अनेक पराधीनताएँ इस इन्द्रियसुख मे है। जिस सुखमे पराधीनता हो वह सुख नही है, सुखाभास है, दु खरूप ही उसे समझना चाहिए।

बाधासहित सुखकी दुःखरूपता—इन्द्रियजन्य सुख अनेक बाधावोसे सहित है। जब क्षुधा उत्पन्न होती है, पिपासा उत्पन्न होती है, अनेक तृष्णायें उत्पन्न होती है तब यह जीव अत्यन्त आकुल रहता है, और इसकी यह आकुलता ही सुखमे बाधारूप है। यह तो भी[illegible] बाधा बतायी जा रही है कि इन्द्रियसुखमे भीतरी बाधाये क्या क्या निरन्तर चल[illegible] है ? बाहरी बाधाये भी अनेक है। किसीने किसीकी आयमे विघ्न डाल दि[illegible] विघ्न डाल दिया या किसी विषयभोगमे विघ्न डाल दिया तो ये व्यवहार [illegible] इच्छा लगी रहना और तृष्णाका वेग बना रहना यह आन्तरिक बाधा [illegible] पायी जाती है। जिस इन्द्रियसुखमे ऐसी बाधाये हो, वह सुख सुख न[illegible] चाहिए। तो दूसरा ऐब है इन्द्रियसुखमे कि वह बाधा सहित है।

विषयोमे सुखका अनवसर—जैसे लोग कहा करते है [illegible] जुडे, और जब चने जुडे तो दाँत नही रहे, तो चने व भी [illegible]

[illegible] ग [illegible] है धूल [illegible] के उदयमे [illegible] जो रागादिक [illegible] कोई स्पष्ट विपदा [illegible] तब अत्यत विपदा [illegible]। जैसे इन्द्रियसुखके उप- [illegible] कठिन दु ख भोगना पडेगा,

वह इन्द्रियसुख क्या सुख है ?

विषम सुखकी दुःखरूपता—इस इन्द्रियसुखमे ५वा ऐब यह बतला रहे है कि इन्द्रियसुख विपम है, कभी बढता है, कभी घटता है, ऐसे इन इन्द्रियसुखोमे नाना परिणमन चलते है। तो यह अत्यन्त एक विपम मार्ग है। कभी कोई मार्ग ऐसा मिल जाय कि कुछ चढना पडे, ऊपरसे कुछ उठा हुआ मार्ग हो, मान लो मील भर तक थोडा ऊचा उठा हुआ है तो ऐसे मार्गमे चलनेपर उतनी विपदा नही आती, जितनी विपदा है तो सडक बराबर, सम, किन्तु उस ही मे ऊँचे नीचे चढाव हो, वहाँपर चलनेमे बहुत कष्टका अनुभव होता है। यो हो किसी कर्मका स्पष्ट दु ख आ गया, अब उस दु खकी परिस्थितिमे वह अपने मनको मजबूत बना सकता है, उस दुःखके सहनेकी शक्ति वह अपनेमे बना सकता है, पर यह सुख कभी घटे, कभी बढे, बीचमे दु ख आये, सुख आये। ऐसी जिन्दगीमे अपने चित्तकी ओरसे कोई व्यवस्था नही बन पाती। तो इन्द्रियसुख विपम है, वृद्धि हानिमे परिणत है, इसलिए अत्यत विसष्ठुल हो गए। तो ऐसे इन्द्रियसुख क्या सुख है, वे तो सब दु.ख ही हैं।

पापवत् पुण्यकी दु.खसाधनताका निर्णय—तो जिस पुण्यके फलमे ऐसे दु खरूप इन्द्रियसुख मिलते है, इसमे यह ही निर्णय करना कि पुण्य भी पापकी तरह दु खका ही साधन है। जैसे पापके उदयमे स्पष्ट दु ख आता है, ऐसे ही पुण्यके उदयमे भी तृष्णा हुई, विषयप्रवृत्ति हुई, सतापका वेग हुआ, और उससे यह सक्लिष्ट होता है। तब तक सक्लेश होता है जब तक यह उपभोग करने वाला बरबाद न हो जाय। तो पुण्य भी पापकी तरह दु खका साधन है, यह बात यहाँ सिद्ध हुई है। यह प्रकरण इसलिए कहा जा रहा है कि पुण्य पापका ख्याल छोडकर आत्माके शुद्ध स्वरूपकी रुचि जगे।

अब तक शुभोपयोग, अशुभोपयोग, पुण्य, पाप तथा सुख, दु खका जो वर्णन किया, उन परस्पर युगलमे कोई विशेषता नही है। ऐसा निश्चय करते हुए उपसहार करते है।

> ण हि मण्णदि जो एव णत्थि विसेसोत्ति पुण्णपावाण।
> हिंडदि घोरमपार ससार मोहसछण्णा ॥७७॥

शुभोपयोग, अशुभोपयोग, सुख, दु.ख, पुण्य व पापमें आत्मधर्मका अभाव—शुभोपयोग, अशुभोपयोगमे, सुख, दु खमे, पुण्य, पापमे परस्पर वाञ्छनीय फर्क नही है। इस प्रकार जो प्राणी नही मानता है, वह मोहसे दबकर घोर ससारमे डोलता रहता है। कषायके मद उदयके निमित्तसे होने वाले विकारका नाम शुभोपयोग है, वह आत्माका धर्म नही है, क्योकि शुभोपयोग नैमित्तिक है। कषायके तीव्र उदयके निमित्तसे होने वाले विकारका नाम अशुभोपयोग है, वह आत्माका धर्म नही है, क्योकि अशुभोपयोग नैमितिक है। स्त्री, पुत्र, मित्र, शत्रु, प्रतिष्ठा आदिका आश्रय (विपय) करके होने वाले विकारका नाम अशुभोपयोग है, वह आत्मा

का धर्म नही है, क्योकि अशुभोपयोग पराश्रयज है। देवता, यति, गुरु, धर्मात्मा, दुःखी आदि का आश्रय (विषय) करके होने वाले विकारका नाम शुभोपयोग है, वह आत्माका धर्म नही है, क्योकि शुभोपयोग पराश्रयज है। सदा एकसा न रहने वाला, अनुरागकी अनेक डिग्रियोमे डोलने वाला विकार शुभोपयोग भी है और अशुभोपयोग भी, अतः दोनो आत्माका धर्म नही है, क्योकि वे विषम है। अन्तर्मुहूर्त अन्तर्मुहूर्तमे परिवर्तनकर सहित होने वाले विकारका नाम शुभोपयोग और अशुभोपयोग है, वे दोनो आत्माका धर्म नही है, क्योकि वे दोनो अनियत हैं। आत्माके सहज स्वभावके स्वाभाविक विकासके प्रतिकूल होने वाले विकार शुभोपयोग और अशुभोपयोग है, वे दोनो आत्माका धर्म नही है, क्योकि स्वभावके प्रतिकूल होनेसे ये दोनो उपयोग अपवादिक विशिष्ट परिणाम है। प्रकृतिके उदयके बिना नही हो सकने वाले ये विकार शुभोपयोग व अशुभोपयोग है, यह आत्माका धर्म नही है, क्योकि इनका केवल आत्मा स्वामी नही है अत सयोगी भाव है। ज्ञाताद्रष्टा रहनेके अभावके प्रतिफलस्वरूप कलुषताकी रचनासे होने वाला विकार शुभोपयोग और अशुभोपयोग है, वह आत्माका धर्म नही है, क्योकि ये कलुपतासे रचे गये होनेके कारण अशुचि है। स्वभावसे न होकर पूर्वमलिनताके उपादान एव प्रकृतिके निमित्तको पाकर उत्पन्न होने वाला विकार शुभोपयोग व अशुभोपयोग है, वह आत्माका धर्म नही है, क्योकि यह आत्माका आत्मा नही है, किन्तु जीव निबद्ध है और आत्माके स्वभावको घात करनेकी इनकी प्रकृति है। आकुलताके कारण आकुलित प्रवृत्ति रूप होने वाला विकार शुभोपयोग व अशुभोपयोग है, वह आत्माका धर्म नही है, क्योकि ये उपयोग स्वय दु खस्वरूप है, दु खके क्षणिक प्रतीकार मात्र है। कर्मके उदयकालमे होकर उदय टलनेपर नष्ट हो जाने वाला विकार शुभोपयोग व अशुभोपयोग है, वह आत्माका धर्म नही है, क्योकि अपने क्षणके बाद नष्ट होने वाले ये खुदको ही बचा सकने वाले नही है और न आत्माको बचा सकने वाले है, अत अशरण है। आगामीकालके लिये दु खका आकुलताका बीज बो देने वाला विकार ही तो शुभोपयोग व अशुभोपयोग है, वह आत्माका धर्म नही है क्योकि इनका फल भी दु ख है।

शुद्धोपयोगकी धर्मरूपता—शुभोपयोग व अशुभोपयोगमे अन्य भी अनेक कारणोसे, युक्तियोसे यह नि सदेह सिद्ध है कि ये दोनो समान है अर्थात् अशुद्ध है, विकार है। किन्तु शुद्धोपयोग कार्यधर्म है क्योकि शुद्धोपयोग किसी निमित्तको पाकर उत्पन्न नही होता है इस लिये अनैमित्तिक है, स्वत सिद्ध होनेसे स्वाभाविक है, समस्त परिणमन समान होनेसे सम है, स्वके ही आश्रयसे स्वरूप रखनेसे स्वाश्रित है, समान परिणमनके विरुद्ध अन्य परिणमनकी सभावना न होनेसे नियत है, सामान्यस्वभावके अनुरूप परिणमन होनेसे अविशिष्ट है, किसी परद्रव्यके सपर्कमे न होनेसे असयोगी भाव है, स्वभावसे ही उत्पन्न होनेसे आनन्दस्वरूप है,

कलुषता रहित होनेसे अत्यन्त पवित्र है, शाश्वत आनन्दका कारण होनेसे व धाराका परिवर्तन न होनेसे शरणरूप है, इत्यादि स्वलक्षणोसे देखलो भैया। शुद्धोपयोग ही उपादेय है। यहाँ भी उपादेयका जो विकल्प है वह शुभोपयोग है यह विकल्प हितरूप नही है। शुद्धोपयोग हितरूप है व आत्मधर्म है। देखिये—शुद्धोपयोग तो आत्माका कार्यधर्म है। कारणधर्म तो अनादि, अनन्त, अखण्ड, एकरूप, नियत, सामान्यरूप, स्वतःशुचि, सहजज्ञान आनन्द आदि के अभेदस्वरूप चैतन्यस्वभाव है, इसकी दृष्टि होनेपर कार्यधर्मका प्रवाह चल उठता है।

शुभोपयोग व अशुभोपयोगमें अशुद्धता—जिनकी शुभोपयोगमे रुचि है अथवा शुभोपयोग करते हुए परलक्ष्यमे ही वृत्ति है, उनकी विकारमे रुचि है और जिनकी विकारमे रुचि है, उनकी ससारमे रुचि है। जिनकी ससारमे रुचि है, उनका ससारगर्तमे ही भ्रमण रहेगा, क्योकि यह आत्मा प्रभु है। उसके लिये यह कठिन बात नही, किन्तु सरल अथवा प्राकृतिक है कि जैसी रुचि करें, तैसा बन जाय।

देखो भैया! खूब निश्चय कर लो शुभोपयोग और अशुभोपयोगकी अशुद्धताका। यदि कुछ कसर हो तो और विचार करे। नही रही कसर! तो अच्छा अब उसी किस्मकी आगेकी बात सुनो—शुभोपयोग जब हुआ तब उसी समय पुण्यकर्मका बध हो गया। यदि अशुभोपयोग करे तब बतावो हाँ सीधी सी बात है—पापकर्मका बध हो गया। यहाँ यह भाव न लाना कि अशुभोपयोगने पुण्यकर्मका बध कर दिया और अशुभोपयोगने पापकर्मका बध कर दिया। शुभोपयोग आदि चारो पर्यायें है। शुभोपयोग व अशुभोपयोग तो जीवद्रव्यकी पर्याय है और पुण्य पापकर्म पुद्गलद्रव्यकी पर्याय है। एक द्रव्य दूसरे द्रव्यकी पर्याय नही कर सकता, और कोई एक पर्याय दूसरी पर्यायको उत्पन्न नही कर सकता। परन्तु यह निमित्तनैमित्तिक सम्बध है, जब शुभोपयोग रूप पर्याय आत्मामे होती है तब कर्मवर्गणावोमे पुण्यप्रकृतिरूप पर्याय हो जाती है, और जब जीवमे अशुभोपयोग पर्याय होती है तब कर्मवर्गणावोमे पाप प्रकृतिरूप पर्याय हो जाता है। अस्तु! अब प्रकृत बातपर आइये।

शुभकर्म व अशुभकर्मकी समानता—देखिये भैया! चाहे पुण्यकर्म हो या पापकर्म, दोनो समान है, उनमे यह छटनी मत करो कि पुण्यकर्म आत्माका भला कर देगा। क्या करें ? ज्ञानीके सातिशय पुण्यकर्म आया करते हैं, और यह बात तभी है, जब कि वह पुण्य चाहता नही है। यदि पुण्य चाहने लगे तो तभीसे सारा पटला बदल जाय, क्या-क्या हो जाय, मिथ्यात्व आ जाय, अशुभोपयोग हो जाय, पापकर्म बध जाय, महासक्लेश हो जाय। पुण्यकर्म और पापकर्म निश्चयत दोनो समान हैं। द्रव्यकर्मकी अपेक्षा देखो तो दोनो अचेतन प्रकृति है। भावकर्मकी अपेक्षा देखो तो शुभपरिणाम और अशुभपरिणाम दोनो अज्ञानरूप है। फल की अपेक्षा देखो तो दोनोका फल अध्यवसान है। और देखो भैया! पुण्यकर्म बध गया तो

अब क्या मिलेगा ? बतावो दो-एक हजार देवाङ्गनाये, सो क्या होगा ? यहाँ तो एक स्त्रीके कारण चैथीमे बाल रहना कठिन हो रहा है, वहाँ क्या होगा ? मनाते फिरो और करते रहो विकल्प। पुण्यके उदयसे मनुष्य हुए तो वह पुण्य क्या करेगा ? उसके विपाककालमे मानो २–४ करोडकी सम्पदा मिल गई तो क्या होगा ? उसमे रम गये तो नर्कवास।

पुण्य और पापकी बेड़ी—पुण्यकर्म हो अथवा पापकर्म हो दोनो बधन है, बेडियाँ है। सोनेकी बेडी हो तो वह भी कष्टके लिये है, यदि लोहेकी बेडी हो तो वह भी कष्टके लिये है। यह मुग्धप्राणियोकी कल्पना है कि पुण्यकर्म भला है। पुण्यका कैसा ही उदय हो अथवा पुण्य भावकर्म किये जा रहे हो वहाँ पुण्यसे तो आत्माका घात समझना। हा यदि लाभ भी हो रहा है तो वह कारणसमयसारकी दृष्टिका फल जानना। व्रत नियम तपोको भी धारण करें यदि पारिणामिक भावका परिचय नही है तो वह दु खसे मुक्त होनेका पात्र नही है। उन क्रियावोके आश्रयसे परिणामोमे कुछ विशुद्धि हुई तो उसके निमित्तसे पुण्यकर्म बध जाता। उस पुण्यके उदयमे क्या मिलेगा ? इन्द्रियमुख–बेवकूफीकी चाल। उस इन्द्रियसुखकी कहानी पहिले हो चुकी, पुनरपि सक्षेपसे विचार लो–वह इन्द्रियसुख पराधीन, अनेक बाधावोसे सहित, नष्ट हो जाने वाला, बन्धका कारण और विषम है। ऐसा सुख क्या मुख है, वह तो दु ख ही है। तो अब बतलावो भैया ! पुण्यसे क्या मिला ? दुःख। अब पुण्य दु खका साधन रहा या आनन्दका ? दु खका रहा। तब जैसे पाप दु खका कारण है, वैसे पुण्य भी दुःखका कारण है। इस तरह पापसे पुण्यमे क्या महत्त्वसाधक विशेपता आई ? नही आई ना। बस इसी कारण तो पुण्य और पाप समान हो गये। पुण्य पापसे रहित निर्विकार शुद्धोपयोग ही आत्मा को वास्तवमे शरण है।

सुख दु खकी समानता—इसी प्रकार सुख दुःख भी समान ही है, क्योकि पराधीन इन्द्रियसुख दु.ख ही है। आत्मीय शाश्वत स्वाधीन आनन्द ही वास्तविक आनन्द है। इस तरह शुभोपयोग, अशुभोपयोग, पुण्य, पाप, सुख, दुःख ये सब बराबर है, इनसे आत्महित नही है। फिर भी जो प्राणी पुण्यको व शुभोपयोगको व इन्द्रियसुखको विशेप मानकर अहकार करे और इसी कारण अहमिन्द्र आदि बडी सपदावोके कारणभूत धर्मानुरागरूप शुभोपयोगकी हठ करे तो ससारपर्यन्त शारीरिक दुःखका ही अनुभव करेगा, क्योकि उसका उपयोग अशुद्ध है। इसी कारण शुद्धोपयोगका तिरस्कार कर दिया है।

शान्तिका यत्न—भैया ! शाति धर्मसे आती है, धर्म आत्मस्वभावके लक्ष्य होनेपर सहज प्रकट होगा, अतः मनुष्यजीवनको सफल करें, निर्ममत्व बढाकर व अपने स्वभावकी ओर रहकर। ऐसा जिन्होने किया, वे सुखी हो गये, जो कर रहे है, वे सुखी हो रहे है, जो करेंगे वे सुखी होगे। कर्तव्य एक यही है—शुभोपयोग व अशुभोपयोग दोनोमे अविशेपता देखकर

इनसे मुडते हुए वस्तुस्वरूपको पहिचानो। मैं निज चैतन्यस्वरूपमात्र हूं, ऐसी प्रतीति करके समस्त द्रव्य पर्यायोमे रागद्वेषको छोडो, अपनेको एक यह शुद्धोपयोग ही शरण है। इसमे ही सहज शान्ति है।

शुभोपयोग और अशुभोपयोगकी अविशेषताके निर्णायककी परद्रव्यसे उपेक्षा—लौकिक पुरुषोकी दिमागी और दिली प्रवृत्ति जिस मायाजालमे है, जगतका यह सब मायाजाल इन ६ बातोमे मिलेगा। सुख, दुःख, पुण्य, पाप, शुभोपयोग और अशुभोपयोग। दुःख तो जो आर्तध्यानसे होता है, इष्टका वियोग हो, अनिष्टका सयोग हो, शारीरिक वेदनाएँ हो और वैभव सुखके निदान बाँधे, इच्छाये करे, ये तो सब प्रकट ही दुःख है, किन्तु इन्द्रियजन्य सुख भी दुःख ही है, क्योकि वे पराधीन है। उसमे दुःख भरे हुए है, तो ज्ञानियोकी दृष्टिमे इन्द्रियजन्य सुख और दुःख दोनो बराबर रहते है। इन्द्रियजन्य सुखको महत्त्व नही दिया, इतना ही नही, किन्तु हेय भी कहते है। इतना तो पूर्ण निश्चित है, और सुगमतया विदित हो जाता है कि इन्द्रियजन्य सुख और दुःख दोनो एक समान है। शाति और आनद इनमे कही नही है। अब यह बतलावो कि इन्द्रियजन्य सुख मिलता है पुण्यके उदयमे और दुःख मिलता है पापके उदय से। जब सुख और दुःख दोनो बराबर हैं तो इनका कारण भी समान होना चाहिए, तो पुण्य और पाप ये दोनो एक समान हैं। जब पुण्य और पाप समान हैं तो पुण्य और पापके बधका जो कारण है, वह भी समान होना चाहिए। पुण्यका कारण है शुभोपयोग और पापका कारण है अशुभोपयोग। तो ज्ञानी संतोकी दृष्टिमे, जिन्हे कैवल्य ही रुच रहा है, उनकी दृष्टिमे शुभोपयोग और अशुभोपयोगमे कोई भी भला नही जचता है। जिन्होने शुभोपयोग और अशुभोपयोगकी समानताका निर्बाध किया है, ऐसे योगी सत सब प्रकारके रागद्वेषके द्वैतोको दूर करते है, हटाते है, ग्रहण नही करते है, उन्हे अपहस्तित करते है।

रागद्वेषका अपहस्तयन व शुद्धोपयोगमें अधिवसनके वर्णनका संकल्प—जैसे पहिले हस्तमे कोई चीज लिए हो और मालूम पड जाय कि यह तो न कुछ चीज है तो वह यो फेंक देता है जैसे कोई काँचका टुकडा गोलमटोल पडा हो, चमकदार लग रहा हो, और उसे हीरा समझकर कोई उठा ले, पर ज्यो ही देखा कि यह तो काँच है, तो जैसे झटककर देता है ऐसे ही अज्ञान अवस्थामे इन रागद्वेषोसे अपना भला मानकर यह पुरुष रागद्वेषोको ग्रहण किए हुए था। जब यह ज्ञात हुआ कि समस्त सकटोकी जड तो ये रागद्वेष ही है, तो उन रागद्वेषो को झटककर फैंक देता है। यो यह ज्ञानी पुरुष सर्व प्रकारके राग और द्वेषोको दूर करता हुआ अब समस्त दुःखोके क्षयके लिए अपना मन बना लेता है। बस मुझे ससारमे कुछ नही चाहिए, सब समझ लिया कि सभी पदार्थ भिन्न है, अहित हैं, इनमे मेरा कुछ करतब नही है, सब दुःखरूप है। ससारके जन्म मरण करानेके ही कारण हैं, इस कारण मेरा — किसी भी

परपदार्थमे मन नही रहा। यो समस्त दु खोके क्षयके लिए अपना मन जिसने बनाया है, ऐसा ज्ञानी पुरुष अब शुद्धोपयोगमे बसना चाह रहा है। आचार्यदेव अब ७८वी गाथा कहेगे, उसकी उत्थानिकामे यह कह रहे है कि यह ज्ञानी अपने मनके, ससारके सकटक्षयके लिए निश्चित करता हुआ शुद्धोपयोगमे ठहर रहा है अर्थात् शुद्धोपयोगसे लाभ है। ऐसी शुद्धोपयोगपर दृष्टि दिलानेके लिए अब यह गाथा कही जा रही है।

एव विदिदत्थो जो दव्वेसु ण रागमेदि दोस वा।
उवओगविसुद्धो सो खवेदि देहुब्भव दुक्ख ॥७८॥

तत्त्ववेत्ताकी रागद्वेषसे विविक्तता—जिन्होने सही तौरसे अर्थका परिज्ञान कर लिया है, पदार्थका क्या स्वरूप है और उन पदार्थोके आकर्षणमे इस जीवको क्या हुआ करता है? यह सब जिन्होने विदित कर लिया है, वे पुरुष सभी प्रकारके द्रव्योमे राग और द्वेषको प्राप्त नही होते है। वे किसी भी द्रव्यमे न राग करते है और न द्वेष करते है, जब यह जान लिया कि इस मेरे आत्माका केवल मेरा आत्मा ही शरण है, यह अकेला ही तो जन्म लेता है, अकेला मरण करता है, सुख दु ख भी अकेला ही भोगता है। सर्व प्रकारके परिणामोको यह अकेला ही करता है, इसका दूसरा कुछ नही है, दूसरे पदार्थके प्रसगसे इन्द्रियजन्य सुख, मानसिक सुख अथवा इन्द्रियज दु ख व मानसिक दु ख उत्पन्न होता है, ये पचेन्द्रियके सुख इस ससारमे ही भटकाने वाले है। मुझे इनसे प्रयोजन नही रहा, जिनको यह निर्णय हो गया कि मुझे अब विषयसेवनका प्रयोजन नही रहा, तो उसे विषयके साधनभूत पदार्थोंका भी प्रयोजन नही रहता। ये जगतके समस्त बाह्य पदार्थ विषयके साधनभूत ही तो है, जिन्हे सम्यग्ज्ञानका उदय हुआ है, उन्हे ससारके इन पदार्थोसे कोई प्रयोजन नही रहा। उनसे वे रागद्वेष भी नही करते। जिन्होने सुख दु खको बराबर समझकर, सुख दु.खके कारणोको समान जानकर, पुण्य पापके कारणोको समान जानकर, शुभोपयोग अशुभोपयोगको समान जानकर उन्हे छोडा है, वे पुरुष उनमे न राग करते है और न द्वेष करते है।

समस्त द्रव्योकी स्वपरविभागमे अवस्थितता—समस्त द्रव्य है कितने? तो प्रयोजन की दृष्टिसे इनके दो भेद कर ले—एक स्व और एक पर। स्वमे तो केवल एक अपना आत्मा आया और परमे अपने आत्माको छोडकर बाकी अनन्तानत आत्मा और सारे पुद्गल-द्रव्य, धर्म, अधर्म, आकाश और असख्यात कालद्रव्य—ये समस्त परपदार्थ है और एक अपने आपके चतुष्टयमे विराजमान निज तत्त्व स्व है। इस तरह स्व और परके रूपमे अवस्थित समस्त द्रव्य पर्यायोमे ज्ञानी पुरुष राग और द्वेषको छोड देते है।

जिन्होने सर्वपदार्थोमे राग और द्वेषको छोड दिया, वे नियमसे विशुद्ध उपयोग वाले

होते है। परपदार्थोंमें तो रागद्वेष होना ही है, यह स्पष्ट है, पर अपने आपको भी यदि सही रूपमे निर्णय न किया जाय तो अपने आपपर भी राग और द्वेष होता है। जैसे कभी अपनी करतूतसे अपनेको ही नुकसान पहुचे तो अपने आपपर क्रोध आता है। जैसे किसी पुरुषने १० हजार रुपयेका नुकसान कर दिया तो हम उस पुरुषपर क्रोध करते है, और खुद ही से १० हजार रुपये गिर गए तो खुदपर भी क्रोध करते है। तो जब अपने आपका सही निर्णय नही होता तो अपने आपपर भी राग और द्वेष करते है। अपने आपकी करतूत अपनेको चतुराई भरी लगे, यह अपने आपपर राग करना ही तो हुआ, और अपने आपके करतवसे विषयसाधनो को नुकसान पडे तो यह अपने आपपर द्वेष करता है। तो यो स्व और परके विभागरूपसे सारे द्रव्योकी गुणपर्यायोमे यह ज्ञानी पुरुष रागद्वेष नही करता, क्योकि यह वस्तुस्वरूपकी सही दृष्टिमे है।

रागद्वेषसे दूर होनेका चिन्तन—घरके कुटुम्बियोपर क्या राग करना, ये भी वैसे ही जीव है जैसे जगतके अनन्त जीव है। जितने भिन्न अनन्तानन्त जीव है उतने ही भिन्न वे कुटुम्बी जन है। राग करनेका क्या अवसर ? जितने भी सुख दुःख आनन्द ज्ञान जो कुछ भी परिणमन होते है वे मेरे ही परिणमनसे होते है, कोई दूसरा मेरे सुखरूप परिणमन कर मुझे सुखी करता हो, ऐसा तो है ही नही। फिर राग किसपर करना ? ज्ञानी संत यो विचारता है कि जगतमे किस पदार्थपर द्वेष करना ? किसीने गाली दिया, मेरे प्रतिकूल व्यवहार किया, तो उसने मेरा क्या किया ? मै तो सबसे न्यारा विशुद्ध चैतन्यस्वरूप मात्र हू, मुझे तो कोई दूसरा जीव पहिचानता भी नही है कि मैं क्या हू ? मैं एक विशुद्ध ज्ञानपुञ्ज हू, जिसमे न किसी अग्निका प्रवेश है, न जलका प्रवेश है, न कोई इसे पीट सकता है, न छेद सकता है, न भेद सकता है। आकाशवत् निर्लेप ज्ञानपुञ्ज मैं हू। इस ज्ञानपुञ्ज आत्माको कोई दूसरे लोग जानते ही नही है। फिर कोई मुझे गाली क्या देगा ?

अज्ञानीके वचनोका क्या बुरा मानना—किसीने बुरा कह दिया, तो उसने मेरा क्या किया ? उसके अतरङ्गमे अज्ञान बसा हुआ है; सो उसने अज्ञानसे प्रेरित होकर अज्ञानभरी चेष्टा की है। और क्या किया है ? अज्ञानीकी चेष्टापर क्या बुरा मानना ? जैसे रास्ता चलते हुएमे कोई पागल गाली दे दे तो उस पागलकी बातपर कोई बुरा मानता है क्या ? जिसे मालूम हो कि यह पागल है, वह तो उसकी बातपर हँसता है। इसी प्रकार अज्ञानी जीव यदि बुरा कहते है, निन्दा करते है, तो उनसे द्वेष करनेका क्या ? काम अरे वे तो खुद दुःखी हैं, दयाके पात्र है, उनकी बुद्धि बिगड गयी है, इस कारण वे खुद अपने प्रभुको बरबाद कर रहे है, उनपर क्या द्वेष करना ?

ज्ञानीकी उपयोगविशुद्धिका परिणाम—ज्ञानी पुरुष सही स्वरूपका जाननहार है, इस

कारण वह न किसीसे राग करता है और न द्वेष करता है। जब किसीपर रागद्वेष नही रहा तो इसका उपयोग विशुद्ध हो गया, अब परद्रव्यका आलम्बन लेनेका परित्याग कर दिया। उपयोग अब किसी परपदार्थमे नही टिकता। वह नियमसे उपयोग विशुद्ध होनेके कारण, सर्व परद्रव्योमे विविक्त रहनेके कारण अब यह सांसारिक दु खोको भी नही सहता। अग्नि कब तक पिटती है ? जब तक अग्नि लोहेके पिण्डमे प्रवेश किए रहती है। अर्थात् लोहेको गर्म करके लोहा पीटते है, तो उसमे अग्नि भी पिटती है। अग्नि तो निर्दोष है, क्यो वह पिटती है ? अरे निर्दोष तो जरूर है, मगर इसने इस दोषी लोहेमे तो प्रवेश किया है, इसलिए अग्नि भी पिटती है। यदि अग्नि लोहपिण्डको ग्रहण न करती, न्यारी बनी रहती तो अग्निपर घन न चलते। ऐसे ही यह आत्मा जब तक शरीरके रग रगमे एक क्षेत्रावगाही बन बनकर ममत्वमे रच पचकर रह रहा है तब तक यह आत्मा शारीरिक दु खोंके घनोसे पिटता है। यदि यह आत्मा अपने ज्ञानोपयोगसे शरीरको ग्रहण न करे अर्थात् शरीरसे न्यारे ज्ञानपुञ्ज मात्र अपने आपको निहारे, ऐसा ही श्रद्धान बनाए और ऐसा ही अपना उपयोग स्थिर करे तो इसके सासारिक दु ख छूटे, घनघात फिर इसपर न पडेंगे।

ज्ञानीका शुद्धोपयोगमे अधिवसन—भैया ! सच जानो कि जितने भी क्लेश है, वे अशुद्धोपयोगके कारण है। अशुद्धोपयोगमे अशुभोपयोग तो है ही, शुभोपयोग भी आ गया। उन अशुद्धोपयोगोसे मेरा कुछ हित नही है। मेरा तो केवल एक यह शुद्धोपयोग ही शरण है। ऐसा यह अध्यात्मयोगी सत निर्णय कर रहा है कि मेरा शरण केवल शुद्धोपयोग ही है और वह शुद्धोपयोगके ही बसानेका यत्न करता है। ससारके समस्त पदार्थ मेरे जाननमे आयें तो आये, किन्तु किसी भी पदार्थके सम्बन्धमे राग और द्वेपकी कल्पना मेरेमे न जगे। सभी पदार्थ मेरेसे न्यारे है। किसी पदार्थमे मेरा हित नही है, मेरा सम्बन्ध नही है। मै सब से न्यारा केवल अपने आपके स्वरूपमे परिणमता रहता बना रहता हूँ। यो सभी पदार्थोमे विविक्त अपने आपको देखकर यह ज्ञानी पुरुष शुद्धोपयोगमे ही बस रहा है।

ज्ञानीका शुद्धोपयोगमे अधिवासका दृढ निश्चय—इस ज्ञानी पुरुषने सर्व प्रकारके पापो का परित्याग कर दिया। वाह्यमे हिसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह ये तो पाप है ही, इनका तो त्याग किया ही है, किन्तु परद्रव्योमे अपना आकर्षण करना, उनमे हित मानना, उनकी ओर रहना, उनमे द्वेप करना ये भी पाप है। इन पापोको भी जिन्होने छोड दिया है और आत्माके शुद्ध चारित्रको ग्रहण किया है, ऐसा अब यह ज्ञानी है, फिर भी यह विचार कर रहा है कि मैने चारित्रको ग्रहण तो किया है, लेकिन यदि मै शुभोपयोगके वहकावेमे आ जाऊँ, शुभोपयोगमे ही अपना उपयोग फँसा लू और मोहादिकका उन्मूलन न करूँ तो मुझे फिर इस शुद्ध आत्माका लाभ कैसे हो सकता है ? इस ज्ञानी सतने शुद्ध आत्माका श्रद्धान किया

है। उस शुद्ध आत्माके अनुभवमे जो आनन्द पाया है, उन आनन्दके बाद कुछ थोडा बाहरमे देखते है शुद्ध अनुभवमे न टिकनेके कारण तो इस प्रकार देखते है कि अरे मैं कहाँ देखने लगा ? अपने आपके इस शुद्ध स्वरूपको छोड दूँ, तो फिर मुझे यह शुद्ध आनन्द कैसे मिल सकेगा ? मुझे शुद्ध आत्माकी प्राप्ति न हो सकेगी। इस कारण अब मैं सर्व प्रकारके पुरुषार्थो से अपने आपके शुद्धोपयोगमे ही ठहरनेकी तैयारी करके खडा हुआ हू। इस प्रकार भावना करते हुए ज्ञानी पुरुष शुद्धोपयोगके लिए उद्यत रहते है अर्थात् इस प्रकारके भावोको अब आचार्यदेव अगली गाथामे कह रहे है।

चत्ता पावारभ समुट्ठिदो वा सुहम्मि चरियम्मि।
ण जहदि जदि मोहादी ण लहदि सो अप्पग सुद्ध ॥७६॥

चारित्रके शैथिल्यका परिणाम—सर्व प्रकारके पाप आरम्भोको छोडकर वे यदि शुभोपयोगकी चर्यामे विहारकर मोहादिकका परित्याग नही करते है कोई तो वे पुरुष इस शुद्ध आत्माको कैसे प्राप्त कर सकते हैं ? जिन पुरुषोने समस्त पाप योगोका प्रत्याख्यान किया, ये समस्त विकल्प औपाधिक है, विनाशीक हैं, दु खरूप हैं, मेरेसे भिन्न है, ऐसा निर्णय करके जिन्होने परद्रव्योमे प्रवर्तन करनेरूप सर्व प्रकारके पापोका परित्याग कर दिया है और परम समता नामक चारित्रकी प्रतिज्ञा की है, मै राग द्वेषोको छोडकर एक शुद्ध ज्ञायकस्वभावके अनुभवनमे रहूगा, ऐसा जिन्होने दृढ सकल्प किया है, फिर भी जैसे अभिसारिका अनेक पुरुषो को अपने कटाक्षोसे राग भरी बातोसे अपनी ओर आकर्षण किया करती है, इस प्रकार शुभोपयोगकी वृत्तिके द्वारा यदि मैं आकर्षित हो गया और मोहसेनाको मै नष्ट न कर सका, तो समझ लेना चाहिए कि अब महान दु ख सकटोको प्राप्त होऊँगा। फिर मैं इस निर्बाध निष्कलङ्क शुद्ध आत्माको कैसे प्राप्त कर सकूँगा ?

स्वरूपसे च्युत न होनेकी भावना—एक विशुद्ध आनदका अनुभव प्राप्त करनेके बाद यह ज्ञानी पुरुष उस आनदस्वरूप अपने आत्मासे चिगनेमे महान खेद प्रदर्शित करता है। मुझे न चाहिए अन्य कुछ विषयसाधन, सासारिक सुख। मुझे तो यही आनद चाहिये, जो अपने आपमे बसनेका एक अलौकिक आनन्द प्राप्त हुआ है, जो ससारके बडे-बडे समस्त महापुरुषो और इन्द्रोंके सुखको भी जोड लिया जाय तो भी हमारे इस आनन्दका अनन्तवा भाग भी नही है। ऐसी अद्‌भुत परमनिराकुलताको प्राप्त कर लेने वाला सत अब अपने स्वरूपसे चिगना नही चाहता। जिस दृष्टिसे इसे अपने आपमे ज्ञानप्रकाश नजर आये, और उस ज्ञानप्रकाशका निर्विकल्प अनुभव करके जो आनन्द प्राप्त कर लिया जाय, बस वैसे ही आनन्दकी यह कोशिश करता है, सर्व आरम्भ पूर्वक इस ही आत्मानुभवके लिए उद्यत करता है।

मोहवाहिनीके विजयका उत्साह—स्वरूपाचरणमे यदि कुछ भी शिथिलता हो गयी

तो शिथिलताके बाद खोटे परिणाम होंगे। शिथिलतामे शिथिलता बढ-बढकर फिर ससारकी इन शिथिलतावो और विकल्पोमे भ्रमण करना पडेगा, इस कारण मै अपनेमे शिथिलता न करूँगा। इस मोहरूपी सेनापर विजयके लिए अब मैने अपनी कक्षा बाँधी है। जैसे कोई दो पुरुष परस्परमे लड जायें जो कि धोती पहिने हो। धोती तो नीचे तक रहती है, तो उसे उसकेरते है, एक लगोटकी तरह उस समस्त धोतीको समेटते है, तब लडते है। अगर धोती ढीली रहे तो लडना कैसे बन सकता है? लडते-लडते बीचमे कुछ शिथिलतासी आ गयी तो अपनी काखको बाँधकर फिर लडनेको तैयार होते है। तो ऐसे ही एक दृष्टान्तकी झाकी सहित आचार्यदेव कह रहे है कि यदि इस चारित्रको प्राप्त करके मै जरा भी शिथिल होऊँ तो बस शिथिल होनेके मायने यह है कि फिर गिर जाऊँगा। तो ऐसा मै न करूँगा। इस मोहरूपी सेनापर विजयके लिए मै अब तैयार हो गया हू। इस प्रकार सर्व पुरुषार्थ पूर्वक ज्ञानी पुरुप रागद्वेप मोहका क्षपण करता है।

जैनशासनके लाभसे आत्मलाभ उठानेका अनुरोध—आज हम आप लोगोने जैनशासन पाया है, पर शातिलाभके लिए जैसे लोग यह विचार किया करते है कि हमको वैभव इतना मिला, इतना और मिले, कैसे मिले? जैसे इन बातोमे चित्त डालते है, क्या कभी ऐसा भी विचार किया कि मेरे सारे दुखोकी जड तो मोह रागद्वेप है? मुझे शाति चाहिए, मैने मोह रागद्वेषको कितना कम किया, जिन्दगीके अनेक वर्ष गुजर गए, अब मरणके निकट ही पहुचने वाले है, क्या कभी इस बातपर ध्यान दिया कि मेरे मोह रागद्वेप कम हुए है? जैनशासन पाने का फल तो यही है कि यह चितना करें कि मेरे रागद्वेप मोह कम हो। मेरे ये साधन कम है, यह चीज नही है, इसको पूरा करना है, यह तो सोचते-सोचते जिन्दगी गुजर गयी, पर मेरेमे रागद्वेष मोह ये कम हुए या नही, इसपर कभी विचार नही किया। अगर रागद्वेष मोह कम न हुए तो समझो कि यह जीवन यो ही व्यर्थमे व्यतीत हो गया। पापकलङ्कोसे मलिन होता हुआ अगर मरण कर गया तो अगले भवमे भी ये सब पापकलक ढोते रहने पडेगे। तो मोह रागद्वेपके दूर करनेका कुछ न कुछ हिसाव देखते ही रहना चाहिए। सो भैया! विवेक तो यह है कि हम हर सम्भव उपायोसे मोह रागद्वेपका विनाश करें।

कल यह प्रकरण था कि जो जीव अहिसात्मक परमसामायिक चारित्रकी प्रतिज्ञा करके भी शुभोपयोगकी वृत्तिरूप अभिसारिकासे ठगाया हुआ मोह व अज्ञानको नही छोड़े तो वह बड़े दुखसकटोमे घिर जायगा। फिर कैसे वह आत्माकी उपलब्धि करेगा? यह बात अपने आपके सम्बधमे भी विचारो। सो अब भैया! मोहकी सेनाको जीतनेके लिये कमर कस ही लो।

अब कहते है कि मेरे द्वारा मोहसेना कैसे जीती जायगी? उस उपायकी आलोचना करते है अर्थात् मोहविजयके उपायभूत तत्वज्ञानको अपनेमे चारो ओर देखकर जिज्ञासूके प्रति

कहते है—

जो जाणदि अरहत दव्वत्तगुणत्तपज्जयत्तेहि ।
सो जाणदि अप्पाण मोहो खलु जादि तस्स लय ॥८०॥

प्रभुस्वरूपके परिचयमे आत्मस्वरूपका परिचय—जो अरहतदेवको द्रव्यत्व गुणत्व पर्यायित्व इन तत्त्वोसे जानता है, वह निज आत्माको जानता है, क्योकि निश्चयदृष्टिसे शुद्ध आत्मामे और निजमे अन्तर नही है । निरुपाधि स्वतत्र निज आत्मतत्त्वको पहिचानने वाले अन्तरात्माके मोह लयको प्राप्त होता है । शुद्ध आत्माके स्वरूपमे और निज आत्माके स्वभावमे अतर न होनेसे शुद्ध आत्माकी पहिचानसे जैसे निज आत्माकी पहिचान होती है, वैसे ही निज आत्मस्वभावकी पहिचानसे शुद्ध आत्माकी पहिचान होती है तथा स्पष्टतया निज आत्मस्वभाव की पहिचानके बलसे शुद्ध आत्माकी पहिचान स्पष्ट होती है । शुद्ध आत्माके परिज्ञानके समय भी निज आत्माके ज्ञानगुणकी परिणतिका ही अनुभव है । अत यद्यपि तत्त्वत निज आत्माके स्वभावकी परखसे शुद्धात्माकी परख हुई है तथापि उसका विषय प्रथम शुद्धात्मारूप परपदार्थ होनेसे सस्कारवश यही उपाय प्रथम आता है कि जो अरहतको द्रव्यत्व गुणत्व पर्यायत्वसे जानता है, वह आत्माको जानता है ।

द्रव्यत्व, गुणत्व व पर्यायसे प्रभुका स्वरूप—अब द्रव्यत्व, गुण व पर्यायसे अरहत का क्या स्वरूप है ? इसका वर्णन करते हैं । प्रथम यह जान लेना चाहिये कि द्रव्य, गुण, पदार्थ क्या है ? जो अन्वयस्वरूप है, तीनो कालोमे प्रत्येक परिणमनोमे जिसका प्रवाह है, ऐसा अखड एक वस्तु द्रव्य है और उस अन्वयीके विशेषण (शक्तियाँ) गुण है और द्रव्यकी प्रतिसमयकी दशामे पर्याय है । अब भगवान अरहतमे (जो कि द्रव्यसे, गुणसे और पर्यायसे सभी दृष्टियोंमे शुद्ध हैं) द्रव्यत्व, गुण व पर्यायको देखते है—यह चेतन है, यह अचेतन है—इस प्रकार जिस एकका अन्वय है, वह द्रव्य है, और जो अन्वयस्वरूप चेतन द्रव्य है, उसके आश्रित जो विशेषण है, चैतन्य है, वह गुण है । यह गुण सर्वगुणोमे प्रधान अर्थात् द्रव्यकी विशिष्ट स्वरूप सत्तावा मूल होनेसे प्रधानदृष्टिसे विवेचित है । विशेषतया तो चेतन द्रव्यमे अस्तित्व, वस्तुत्व आदि अनेक सामान्यगुण एव चेतनत्व अमूर्तत्व आदि अनेक विशेषगुण है तथा पर्याय एक-एक समय मात्र जिनका काल सुनिश्चित है, अतएव जो परस्पर एक दूसरेसे भिन्न हैं, चेतन वस्तुकी ही परिणतियाँ हैं, वे सब पर्याय है ।

द्रव्य और गुणकी दृष्टिसे आत्मा व परमात्मामे अन्तरका अभाव—यहाँ द्रव्य और गुणदृष्टिसे निज आत्मा व विशुद्ध आत्मामे कोई भी अन्तर नही है, मात्र पर्यायदृष्टिमे अन्तर है । भगवान अरहतका पर्याय सोलहवानसे तपाये गये सुवर्णके सदृश पूर्ण निर्मल है, किन्तु कर्मफलमे जुड जानेके उपयोगके कारण हम ससारियोका पर्याय समल है । यहाँ अरहत भग-

वानके द्रव्यत्व, गुणत्व, पर्यायत्वके जानने वाले आत्माको ज्ञाता होना कहा है, क्योकि अरहत भगवानका गुणपर्याय भी अत्यत निर्मल है। अत पर्यायका गुणोमें अभेदरूपसे समझमे आना सुकर है। वैसे तो यथार्थतया किसी भी आत्माको द्रव्यत्व, गुणत्व पर्यायसे जाननेसे पर्यायके अभेदगत गुण और गुणके अभेदगत आत्मतत्त्वका ज्ञान हो लेता है, परन्तु जहाँ द्रव्यस्वभावके प्रतिकूल पर्यायें होती है वहाँ पर्यायोका अभेदीकरण सुकर नही है। जिस प्रकार दर्पणमें निजी स्वच्छता भी होती हैं, उसमे परपदार्थ रक्तपट आदिको निमित्त करके जो छाया परिणति होती है, उस परिणतिका उपादान दर्पणकी निरुपाधि स्वच्छता है, किन्तु रक्तच्छायापरिणतिको उसकी स्रोतभूत स्वच्छतामे अभेद करना दुष्कर होता है तथा यदि रक्तपट आदि प्रतिकूल निमित्तके अभावसे दर्पणकी स्वच्छतापर स्वच्छ छाया भी रहती है। उस स्वच्छ छायाका उसकी स्रोतभूत निजी स्वच्छतामे अभेदीकरण सुकर होता है। उसी प्रकार आत्मामे दर्शन, ज्ञान, चारित्र गुण होते है। उसमे परपदार्थ कर्मको निमित्तमात्र करके जो विकृति होती है, उस विकृतिका उपादान तात्कालिक योग्यतासपन्न दर्शन, ज्ञान, चारित्र है, किन्तु विकृतिको उसकी स्रोतभूत दर्शनादिमे अभेद करना दुष्कर है तथा यदि मोहनीयादि प्रतिकूल निमित्तोंके अभावमे आत्माके दर्शनादि गुणोकी स्वभावपरिणति होती है, उस स्वाभावपरिणतिको उसके स्रोतभूत दर्शनादि गुणोमे अभेद करना सुकर होता है और समस्त गुणोका एक प्रधान भावमे अभेद एव स्वभावका स्वभाववानमे अभेद सुकर है। जो इस प्रकार भेदोको सक्षिप्त करके अभेदस्वभावमें पहुच जाता है, वह निरपेक्ष यथार्थ स्वतत्र आत्माको जानता है और उसका मोह लयको प्राप्त हो जाता है।

प्रभुमिलनसे मोहक्षय—यहाँ मोहके क्षयकी बात कही जा रही है। यद्यपि इस कालमें मोहका उपशम, क्षयोपशम तो हो लेता है, क्षय नही होता है तथापि चैतन्यस्वभावीकी प्रबल श्रद्धासे सम्यक्त्वका ऐसा प्रवाह हो लेता है कि जब तक मोह क्षयको प्राप्त न हो जाय, अतर नही पडता। यह बात तो यहाँ अब भी हो ही सकती हैं। जो अरहतको द्रव्य, गुण, पर्यायसे जानता है, वह आत्माको जानता है, क्योकि यथा द्रव्य, गुण, पर्यायशक्ति अरहत भगवानकी है तथैव द्रव्य, गुण, पर्यायशक्ति मेरी है—यह दृढतम विश्वास है, क्योकि उसने अपने आपका अपने स्वभावसे विश्वास किया है। वर्तमानमे जो क्षणिक विकार हो रहे है, जिनसे कि हममे और अरहतमे अतर हो गया है। वे मेरे स्वरूप नही हैं, होते है, परन्तु ज्ञानी अतरगसे तो उनका ज्ञातामात्र है। जो आत्मस्वरूपको जानते है व प्रभुस्वरूपसे मिलान करके आत्मस्वरूपका दृढ और विशद निर्णय रखते है, उनका मोह क्षयको प्राप्त हो जाता है।

आत्मोद्धारक स्वाधीन मार्ग—अहो! आत्मोद्धारका मार्ग कितना स्वाधीन है? आत्मोद्धारका उपाय सम्यग्ज्ञान है। इसमे किसी भी परवस्तुकी अपेक्षा प्रतीक्षा, आधीनताकी

बात कही गई है। निजस्वभावकी कारणता ही सर्वदशाओमे मोक्षका मार्ग है। निज स्वभाव अरहत भगवानसे हीन नही है। जैसा अरहत भगवानका स्वरूप है, वैसा ही मेरा स्वभाव है। परिणमनमे जैसे अरहत प्रभु है, वैसा मैं भी अवश्य हो सकता हू। स्वभावप्रतीति वालेके इस जोडमे कालके अतरकी खबर भी नही है। अतः वर्तमानमे ही वह प्रभुमे अद्वैत हो रहा है। जहाँ पर्यायोको गुणमे गुणको गुणीमे अभेद करके द्रव्यकी प्रतीति हुई तो उस प्रतीतिके फल-स्वरूप "कारणसदृश कार्यम्" इस न्यायके अनुसार लक्ष्यके विषयभूत अखड चैतन्यस्वभावको कारणरूपसे उपादान करके परिपूर्ण स्वभावका विकास हो जाता है। इसी दशाको जब तक शरीरका एक क्षेत्रावगाह रहता है अरहत कहते है। जैसे अरहतको द्रव्य, गुण, पर्यायमे परखने पर निज स्वभावकी प्रतीति होती है, वैसे सिद्ध प्रभुको द्रव्य, गुण, पर्यायसे परखनेपर भी आत्मज्ञान होता है तथापि यहाँ अरहत देवको दृष्टान्तमे रखनेका मात्र प्रयोजन इतना ही है कि पहिले साकार अर्थात् सकलपरमात्मामे द्रव्य, गुण, पर्यायको परखनेकी हम साकार सकल आत्मावोको विशेष सामञ्जसता प्राप्त होती है एव इस मनुष्यलोकमे विराजमान शुद्ध आत्मा अरहंतदेव ही है।

अरहत देवके द्रव्य, गुण, पर्यायकी जो पद्धति है, वही मेरी है। जैसे अरहत देवके द्रव्यस्वभावमे से पर्यायें प्रकट हुई हैं, होती है, वैसे ही हमारे द्रव्यस्वभावमे से ही पर्यायें प्रकट होती है। अरहत दशा भी मेरी मेरे द्रव्यस्वभावमे से ही प्रकट होगी। इस प्रतीति वालेको बाहर कुछ करना नही रह जाता (करना तो किसीको भी बाहरमे कुछ नही होता, मात्र करने का विकल्प ही मुग्धके होता है) मात्र निज चैतन्यस्वभावकी दृष्टि ही करनेको होती है। यह दृष्टि स्वयकी परिणति है, इसका विषय भी स्वय है, अत. यह कार्य अत्यत स्वाधीन है।

अन्तस्तत्त्वकी परिपूर्णता—मेरा आत्मा परिपूर्ण है, विकार भी है। वहाँ भी परिपूर्ण व अधूरा कभी नही, मात्र परिणतिका अन्तर ही तो है। वह विकार मेरा स्वभाव नही, ऐसे विकारका प्रतिषेध करके समस्त शक्तियोके अभेदस्वरूप निज आत्माको देखनेपर उपयोगमे भी अपूर्णता नही रहती, ऐसे परिपूर्ण निज आत्माका जिसे अनुभव है, उसे जगतमे कुछ वाछनीय नही है। यह चैतन्यस्वभाव ही मोहका नाशक है, उस स्वभावकी मुझे प्रतीति हो चुकी। अब मोहके क्षयमे शङ्का नही, ऐसे मोहक्षयके कार्यमे नि शकता आनेपर मोहक्षय चाहे दूसरे तीसरे भवमे हो तथापि इस नि शङ्कताके बलपर इस प्रणालीमे अन्तर नही आवेगा।

आत्मज्ञानमें अहिंसाकी प्रतिष्ठा—सर्वोत्कृष्ट कर्तव्य मात्र आत्मज्ञान है, आत्मज्ञानी ही अहिंसक हो सकता है। वस्तुत हिंसा स्वय स्वयकी करता है और अहिंसा भी स्वय स्वयकी करता है। मिथ्यात्व, क्रोध, मान, माया, लोभकी परिणति ही हिंसा है और इन परिणतियो का अभाव ही अहिंसा है। जो ऐसे परिस्पष्ट स्वरूपके उपयोगमे होता है, उसके मिथ्यात्वादि

का अभाव होनेसे अहिंसा स्वय है। यथार्थतया अर्हद्भक्त अहिंसक है। वही सच्चा दयालु है। अपनी दया ही सर्वोपरि है, अपनी दया करने वालेके निजहिंसाका महान् पातक स्वय दूर हो जाता है। इसी प्रकार आत्मज्ञानी ही सत्य, अचौर, सुशील और अपरिग्रही होता है। जैसे अरहतका आत्मा पवित्र शुद्ध है, उसमे और किसीका प्रवेश नही और न स्वयमे से किसीकी व्युच्छित्ति है। इस प्रतीतिसे अपने स्वरूपकी ओर झुकनेमे परिपूर्ण सत्य, बाह्यके सम्पर्कका अभावरूप अचौर्य, अपने परिपूर्ण शीलमे स्थिरता और सकल परपदार्थोके ग्रहणका अपरिग्रह स्वय ही हो जाता है।

स्वभावदृष्टिरूप दया— ससारी प्राणीने परभावकी दृष्टिरूप महान् खेद ही अब तक किया, स्वभावदृष्टिरूप अपनी दया नही की। इसीसे भवभ्रमणका महान् दंड भोगा। आत्मा स्वय विज्ञानघन और आनन्दमय है, इसमे कोई कमी नही है, जो बाहरसे कुछ जोडकर ज्ञानी व सुखी बनाया जाय। इसी तरह जो ज्ञान व सुखका बाधक है, वह बाह्यमे कही नही है, वह मोह रागद्वेषरूप विकार परिणमन ही है। वह विकार स्वभावदृष्टिके बिना दूर नही होता। स्वभावकी परखका उपाय जिनके स्वभावका विकास हो गया है, ऐसे अरहत भगवानके द्रव्यत्व, गुणत्व, पर्यायत्वका निरीक्षण है। यहाँ अरहतके स्वभावको अपने स्वभावके साथ एकरूप सादृश्य कर अनुभव करनेकी बात है। इसी परिणतिसे आत्मावगम होता है। अब किस प्रकार अरहतको द्रव्यत्वादिसे विचारनेपर अभेदस्वभावमे पहुच होती है? इस पद्धतिका वर्णन करते है।

मोहक्षयके उपायमें दृष्टान्तपूर्वक एकत्वोपयोगका निर्देशन—जो अन्तरात्मा त्रिकाल रहने वाले उस समस्त एक आत्मद्रव्यको (जिसे कि प्रकृतमे अरहतके उदाहरणसे प्रारम्भ किया है) एक ही कालमे ग्रहण करता है, उस अन्तरात्माके अन्तरमे ऐसी प्रबल महिमा उठती है कि उसके निजस्वभाव सामान्यमे स्थिति हो जानेसे निराश्रयताके कारण मोह नष्ट हो ही जाता है। ज्ञानमे ऐसी अद्भुत महान् सामर्थ्य है कि त्रिकालसम्बधी वह द्रव्य एक क्षणकी ज्ञानपर्यायोमे जान लिया जाता है। यह त्रैकालिक द्रव्य विकल्परूपसे एक कालमे पूर्ण नही जाना जा सकता है, किन्तु निर्विकल्प पद्धतिमे परिपूर्ण ज्ञात हो जाता है। जैसे मोतियोका एक लम्बा हार है, वह समस्त एक कालमे अनुभव होता है, परन्तु यदि एक-एक मोतीपर दृष्टि हो तब वह समस्त एक कालमे नही जाना जाता, अभेददृष्टिमे भी वह हार उतना ही जाना जाता है जितना कि वह पूरा है। इसी तरह अभेददृष्टिमे वह आत्मा परिपूर्ण ही जाना जाता है। यह अभेददृष्टि अथवा त्रिकालकी एक कालमे तुलना किस पद्धतिसे होती है? वह इस प्रकार है—जैसे एक हार के अनुभवको करने वाला समस्त मुक्ताफलोको हारमे ही सक्षिप्त गर्भित कर देता है वैसे ही यह अन्तरात्मा चेतनकी सर्वविवर्तोको उनके मूल स्रोतभूत चेतनमे ही सक्षिप्त कर देता है तब वहाँ

मात्र चेतन द्रव्यका— निर्विकल्प ब्रह्मका प्रतिभास होता है। विशेष्यत्वकी वासना दूर हो जाती है तब जैसे हारमे स्वभावसे जैसे स्वच्छताका प्रतिभास चलने लगा था वह भी हारमे भेदरूपसे नही रहता, वैसे ही पर्यायोके अतर्धानके पश्चात् प्रतिभासमे आया हुआ चैतन्यस्वभाव चेतनमे भेदरूपसे नही रहता। वहाँ जैसे केवल हारका अवगम रह जाता है, इसी प्रकार केवल आत्माका अवगम रह जाता है। जहाँ केवल आत्माका परिच्छेदन है—अमुक कर्ता है, अमुक कर्म है, अमुक क्रिया है, ऐसा विभाग नष्ट हो जाता है। यहाँ जैसे हार पहिनने वाला पुरुष हारकी शोभाके सुखका अनुभव करता है, किन्ही विकल्पोको नही, वैसे स्वसवेदक अतीन्द्रियज्ञान के साधनसे अभेदरूप आत्माके सुखको अनुभवता है। इस तरह जब क्रियारहित निश्चल चैतन्य-स्वभावोपयोगी होता है, वहाँ मोहका आश्रय ही नही रहता, सो वह मोह लयको-क्षयको प्राप्त हो जाता है।

अपूर्व धर्मसाधन—कितना अपूर्व किन्तु स्वाधीन सरल उपाय है सर्व विपदावोके भञ्जन कर लेनेका। इस निष्क्रियकी ओर उन्मुख करने वाले पुरुषार्थके अतिरिक्त जो भी परविषय करते हुए व भेदको विषय करते हुए विकल्प है, वे चाहे अनाकुल सुखसवेदनके पूर्व-वर्ती रहे आवें, किन्तु अनाकुल निर्विकल्प अवस्थाको प्राप्त नही करते।

यह धर्मके प्रारम्भकी बात है, जिसने अपने आत्माको नही जाना वह पर्यायको लक्ष्य करके कितने ही कठिन व्रत, उपवास, तप कर ले, परन्तु शातिको प्राप्त नही होता। वहा यदि आनद मानता है तो वह भी एक लौकिक सुख है। धर्म चैतन्यस्वभावके आश्रयसे होता है, परके लक्ष्यसे पुण्य पाप, लौकिक सुख दुख, शुभोपयोग अशुभोपयोग होते है, वह पर चाहे स्वयके विशेषरूप हो या परद्रव्यरूप हो, उस पर्यायके लक्ष्यमे अटक जाने वाला पर्यायदृष्टि अज्ञानी धर्मका प्रारम्भक भी नही है। यह बहिरात्मा आत्माका पर्यायसे ही पहिचान कर रहा है, कुछ ज्ञानमे बढा तो द्रव्य, गुण, पर्यायको भेदसे ग्रहण कर रहा है, इसलिये भेदोके आश्रयसे मोह बसाता है। परतु जिस अन्तरात्माने पर्यायोको गुणमे, गुणको गुणीमें अन्तर्धान करके अभेदस्वरूप निजका अनुभवन किया, वहा अखण्ड अभिन्नके लक्ष्यसे अभिन्न अविकारी पर्याय प्रकट होती है। अत बेचारे मोहको कोई आश्रय नही मिलता।

प्रभुस्वरूपके अवगममे आदेशोका विधान—यहाँ अरहतको द्रव्यत्व, गुणत्व, पर्यायत्वसे जाननेका विकल्प तब तकका है जब तक त्रैकालिक आत्मा सर्वस्वरूप परिपूर्ण एक कालमे अनुभूत नही होता। इन विकल्पोंके द्वारा अखण्ड आत्मा लक्ष्यरूप किया गया है, उस अखड अभेदरूप आत्माके लक्ष्यसे विकल्पोको तोडकर अभेद आत्माकी उपलब्धिका आदेश है। ज्ञानीके अखण्ड अभेद आत्माके अनुभवके समयकी पर्यायमे पहिले पीछे स्वभावरूपता का निषेध है व अनुभव कालमे भी इससे विपरीत श्रद्धा नही रखते।

अरहंतके स्वरूपको जाननेपर पूर्वापर दशाये, उपाय, उपेय सर्व कुछ जान लिया जाता है। अरहंत भी पहिले अज्ञानदशामें थे, उनकी आत्माने पूर्व हुए अरहतको द्रव्यत्व, गुणत्व, पर्यायत्वसे जानकर अपने स्वरूपको पहिचाना और उस आत्मज्ञानकी स्थिरतासे शुद्धताकी वृद्धि द्वारा परमपवित्र अवस्था प्रकट की है, वे द्रव्यसे और गुणसे तो शुद्ध थे ही अब पर्यायसे भी शुद्ध हो गये है, इस प्रकार वे सर्व ओरसे शुद्ध है और अनन्तकाल तक शुद्ध रहेगे। अरहतके स्वरूपको जानकर आत्मस्वरूपकी भी उपलब्धि होती है—जैसा अरहतका स्वरूप है सो मेरा है। पर्यायमे जो विकार है सो यद्यपि निजशक्तिका विकार परिणमन है तथापि मेरा स्वभाव-स्वरूप नही है।

प्रभुका परिस्पष्ट आत्मरूप—यहाँ अरहतका स्वरूप अतिम पाकपर उतरे हुए सुवर्ण की तरह अत्यन्त निर्मल जानना चाहिये। जैसे कोई भी शुद्ध सुवर्ण पहिलेसे ही शुद्ध न था प्रत्येक सुवर्ण पृथ्वीकाय है वह पृथ्वीकायिक बिना नही हो सकता है अर्थात् सुवर्ण पहिले खान मे सुवर्णपाषाण था। उसे आँच पाकपर उतारा गया तब परद्रव्यका मेल समाप्त होकर शुद्ध हुआ, इसी तरह प्रत्येक अरहत पहिलेसे ही शुद्ध न थे, सर्व जीवोका आदि आवास निगोद है। व्यवहारसे क्षयोपशम लब्धिविशेष आदिका सुयोग पाकर निश्चयत अपनी मलीनताका यथायोग्य अभाव करके उत्तम भव धारण कर मनुष्यभव पाकर आत्मपुरुषार्थ द्वारा आत्मज्ञान पाकर निज चैतन्यमे प्रतपनरूप तपके द्वारा घातिया कर्ममल दूर होकर आत्मासे मोह राग द्वेषादि विभावका क्षय करके निर्मल दशा प्रकट की है। यहाँ स्वभावदृष्टिसे देखो तो जैसे ७५—८० टची सोना हो, चाहे सौ टची सोना हो, दोनो स्वभावतया समान है, हा वर्तमान दशामे अवश्य अन्तर है। स्वभावकी समानताकी श्रद्धा होनेपर ही ७५ टची सोनाको अत्यन्त निर्मल बनानेके वास्ते सौ टची सोने (जो कि पर्यायसे भी शुद्ध है) से मेल किया जाता है और फिर जो अशुद्ध सुवर्णमे अशुद्धता ज्ञात हुई, उसे सुवर्णमात्रके विकासके लक्ष्यसे अन्य पाकपर उतारा जाता है। इसी प्रकार मै स्वभावसे अरहतदेवकी आत्माके स्वभावके समान हू, मात्र वर्तमान अवस्थामे अतर है। अतर करने वाला जो विकार है, वह मेरा स्वभाव नही है, क्षणिक पर्यायरूप है। इसे जिस उपायसे अरहतदेवकी आत्माने क्षय कर दिया है। मेरे भी उस अविकारी स्थायी स्वभावदृष्टि द्वारा क्षय हो जायगा। ज्ञानी अशुद्ध अवस्थामे भी वर्तमान निज आत्माको निर्मल आत्माके साथ मेल करता है, फिर उसे जो निर्मल आत्माको लक्ष्य कर अपनी ज्ञानपरिणतिसे स्पष्ट स्वभाव दिखा है, उसके बलसे अशुद्धताको दूर कर देता है।

परिस्पष्ट आत्मस्वरूपके अवगमसे प्रभुतालाभके उपायका निर्णय—अरहतके परिस्पष्ट स्वरूप जाननेसे आत्माकी पद्धतिका स्पष्ट शीघ्र निर्णय हो जाता है। जैसे अरहंतका आत्मा सर्व लोकालोकको जानकर भी लोकालोकसे अत्यत पृथक् है इसी तरह जगतके सभी आत्मा

परपदार्थोंको जानकर भी परपदार्थोंसे अत्यन्त पृथक् है। जैसे अरहत प्रभुका सुख आत्मस्वभाव से प्रकट होता है, वैसे जगतकी सभी आत्मावोका सुख निज सुख शक्तिकी परिणतिसे प्रकट होता है, अन्य किसी भी परपदार्थसे नही। जैसे अरहत प्रभुका आत्मा अपनी ही परिणतियो का ही कर्ता है अन्य किसीका नही वैसे ही सर्व प्राणी भी अपनी परिणतियोके कर्ता है किसी परद्रव्यकी परिणतिके कर्ता नही है। अरहतदेव जैसे परसे अकिञ्चन अपनेसे परिपूर्ण है ऐसा ही हमारा आत्मा है। अरहतदेव पुण्य पापरहित, परिग्रहरहित और अपने ज्ञानदर्शन आदि सर्वशक्तियोसे परिपूर्ण है, इसी प्रकार मैं आत्मद्रव्य भी पुण्य-पापरहित अपने ज्ञान, दर्शन आदि सर्व शक्तियोंसे परिपूर्ण हू। इस प्रकार अरहत देवकी तुलनासे निज स्वभावोन्मुखताके विकल्प करके उन विकल्पोको भी तोडकर स्वभावमे एकाग्र हुआ यही पुरुषार्थ मोहका क्षय कर देता है। अरहतके स्वरूपको देखकर अपनी प्रतीति करने वालोको परद्रव्यको करने या परद्रव्यसे अपना कुछ करानेकी प्रतीक्षा नही रहती है। इसलिये विकल्पोके महान् क्लेशसे दूर हो जाता है।

अभेद ब्रह्मके अनुभवसे मोहसेनाकी विजय—कर्ता कर्म क्रियाके विभागके विकल्प अस्थिरता आकुलता उत्पन्न करते हैं। जहा मैं ही कर्ता हू, कर्म हू, क्रिया हू—इस प्रकारके अभिन्न कर्ता, कर्म, क्रियाका अनुभव किया वहा तदनतर पर्यायको गुणमे, गुणको द्रव्यमे अन्त-र्लीन कर देनेके कारण यह अभिन्न कर्तृ कर्म क्रियाका भी भेद क्षीण हो जाता है और ज्ञान-स्वभाव वृहणशील होता है, इसी शक्तिके कारण इस आत्माका नाम ब्रह्म भी है। इस ब्रह्मके अनुभवकी प्राप्त—निष्क्रिय चैतन्यमात्र असीमित भावकी प्राप्त अन्तरात्माके निष्कप निर्मल प्रकाश वाले रत्नकी तरह (जैसे वहाँ अधकारको अवकाश नही) निराश्रयता होनेसे वहा मोहा-धकार प्रलीन हो जाता है।

यदि ऐसा ही हुआ तो मैंने मोहकी सेनाके जीतनेका उपाय पा लिया। यहाँ शकारूप बात नही है, यह तो जाननेके बाद नि शङ्क, शिष्य धर्मकी सरलता, स्वाधीनता व सुकरता समझकर कि बस इतना ही काम है—खुदका खुदमे जाननमात्रकी ही बात है तो मोहसेनाके जीतनेका उपाय तो यही हाथमे ही है, प्राप्त हुआ। अब यह अलौकिक धनी जिसने सम्यग्ज्ञान रूपी चिन्तामणि प्राप्त कर लिया है, वह इस ओर जागता ही रहना है, क्योंकि अपूर्व रत्नको हस्तगत कर लेनेपर उसकी स्थिर व्यवस्था व्यवस्थित जब तक नही कर पाता है तब तक वह समझता है कि इस प्रकार अलौकिक स्वभावदृष्टिसे यह सम्यक्त्वरूपी चिन्तामणि प्राप्त भी कर लिया तब भी मेरा प्रमाद इस रत्नका चोर है। इसलिये यह ज्ञानी जागता ही रहता है, अपने स्वभावके उन्मुख होनेको यत्नशील रहता है।

सम्यक्त्वचिन्तामणिकी रक्षाके लिये ज्ञानजागरण—यह सम्यक्त्व चिन्तामणि है।

चिन्तामणिके सम्बन्धमे यह किम्बदन्ती है कि इस रत्नके हस्तगत होनेपर जो जो विचारो, उसकी पूर्ति हो जाती है, परन्तु किसी भी पाषाणमे रत्नमे ऐसी शक्ति नही है कि उसके पाने पर जो जो विचारो, वह प्राप्त हो ही जावे। किन्तु सम्यक्त्व ही चिन्तामणि है, इसके पानेपर सर्व अर्थकी सिद्धि हो जाती है। जहाँ समस्त परपदार्थोंसे परभावोसे पृथक् निज चैतन्यभावमे स्थिरता हो जाती है, निर्विकल्प स्वानुभव होता है वहाँ समस्त अनन्त पदार्थोंमे मोह, राग, द्वेषका अभाव होनेसे अनन्त आकुलताका अभाव हो जाता है, वहाँ सर्व अर्थकी सिद्धि ही हुई। उस सम्यक्त्वरूपी चिन्तामणिके पानेपर भी यदि प्रमाद रहा अर्थात् विषयकषाय भाव रहा तो सम्यक्त्वरूपी रत्न रुल जायगा। यह चोर कही बाह्य अर्थमे नही है वह मेरी ही असावधानीका परिणमन है, इसीलिये उसका बडा धोखा है। यह इतना बडा धोखा है कि यदि इस के चक्रमे आये तो फिर ऐसा भी सभव है कि कुछ कम अर्द्धपुद्गलपरिवर्तन काल तक ससार-चक्रमे रुलना पडेगा। अत यहाँ अन्तरात्मा बार-बार जागता है—यहाँ जागनेका तात्पर्य अपने आपको रागद्वेषमे बचाकर शुद्धस्वरूपमय अपने आपको प्राप्त करनेका यत्न है। वह किस प्रकार जागता है, इसका विवरण श्री भगवान कुदकुद आचार्य करते है—

जीवो ववगदमोहो उवलद्धो तच्चमप्पणो सम्म।
जहदि जदि रागदोसे सो अप्पाण लहदि सुद्ध ॥८१॥

निजस्वरूपाचरणसे शुद्धात्मत्वका लाभ—जिसका मोहभाव दूर हो गया है, ऐसा ज्ञानी जीव आत्माके सम्यक् शिवमूल यथार्थ स्वरूपको प्राप्त करता हुआ भी यदि रागद्वेषरूप प्रमाद भावको त्याग देवे तब वह जीव शुद्ध निर्मल आत्माको प्राप्त होता है। मोहको दूर करनेका उपाय ऊपर कहा गया उपाय है। अर्थात् अरहतको द्रव्य, गुण, पर्यायसे जानना और अपने स्वभावसे एकमेक करना और पर्यायको गुणमे गुणको द्रव्यमे अन्तर्लीन करके निष्क्रिय चैतन्यमात्रका अनुभव करना मोह दूर करनेका उपाय है। यह उपाय सरल स्वाधीन होनेपर भी अबसे पहिले कठिन ही रहा है, इसमे निमित्त कारण मोहनीय कर्मका विपाक है। प्रत्येक द्रव्य स्वतत्र है, मात्र अपनी ही परिणतिसे सब परिणमते है, क्निन्तु जो स्वभावविरुद्ध परिणमन है, उसमे निमित्तका आश्रयमात्र होना आवश्यक है। जैसा यहा आप दरीपर बैठे तो दरीने जबरदस्ती आपको नही बिठाया है कि आप स्वय दरीको आश्रयमात्र करके अपनी क्रियासे बैठ गये। यहाँ मै तख्तपर हू, तो तख्तने जबरदस्ती तो हमे बिठाया नही। हमे ही स्वय अपनी कषायचेष्टासे प्रेरित होकर निमित्तके निमित्तकी परम्परापूर्वक यह शरीर शरीरक्रियासे परिणत होता हुआ तख्तको आश्रयमात्र करके बैठ गये। ऐसी प्रक्रिया सर्वनिमित्तोकी जानना, फर्क इतना है कि जहाँ परस्पर निमित्तनैमित्तिक सम्बध है, वहाँ कुछ विशिष्टता नजर आती, फिर भी सर्वत्र सर्वद्रव्य परस्पर अत्यताभावको लिये हुए है। प्रकृतमे विभावपरिणामोको

निमित्तमात्र पाकर बद्ध हुए मोहनीय कर्म स्पर्द्धकोंके विपाकको निमित्त मात्र पाकर जीवको निज स्वरूपाचरणमे कुछ भी सावधानी न रही तो वह अशुद्ध आत्माको अर्थात् संसरणको प्राप्त होता रहेगा।

क्षयोपशमलब्धिका लाभ—सम्यक्त्वप्राप्तिके अर्थ ५ लब्धियाँ होती है। जिसमे सर्व प्रथम लब्धिका नाम क्षयोपशमलब्धि है, जिसका अर्थ सर्व कर्मोंके अनुभाग आदिमे शिथिलता होना है। सो सर्वप्रथम कर्मोंकी शिथिलता होना आत्मोन्नतिमे आवश्यक है। यदि ऐसा न हो तो क्या कारण है जो विशिष्ट विशुद्धिका पात्र जीव नही होता है। यदि अकारण ही कहो तो व्यतिकर सकर हो जायगा। यदि यह कारण कहो कि खुदने खुदपर दृष्टि नही की तो यह तो प्रश्नसम उत्तर हुआ। यही तो पूछा जा रहा है कि क्यो खुद खुदपर दृष्टि न कर सका ? कर्मोंके फलोमे क्यो जुडता रहा ? इसका समाधान मोहनीयकर्मके विपाकको निमित्त माननेके अतिरिक्त अन्य कुछ नही है। ऐसा माननेपर पुरुषार्थको ऐकान्तिक पराधीनता नही आती है, क्योकि हम लोग जिस अवस्थामे बैठे है, वहा उतने क्षयोपशमकी तो निश्चितता है ही। अब पुरुषार्थके लिये बहाना करना ठीक नही है, यह तो प्रथम अवस्थाकी बात कही है। वहाँ भी वह विभाव कर्मके आधीन नही, स्वके चतुष्टयके ही आधीन है, पर तो मात्र निमित्त है। आत्मभाव और कर्मविपाक—इन दोनोमे मुकाबलेतन आत्मभावकी विशिष्टता है, क्योकि यह ईश्वर है, फिर भी अत्यत तीव्रमोहकी निम्न अवस्थामे जीवके उन्नतिका प्रारम्भ क्षयोपशम-लब्धिसे होता है। ऐसा होनेपर भी कर्मसे परिणति नही होती, सर्व द्रव्योका अपने अतरमे ही परिणमन होता है।

मोहप्रक्षयके होनेपर रागद्वेषका शीघ्र क्षय—द्रव्य है और उसकी पर्याय है। पर्याय द्रव्यस्वभावकी ही प्रतिसमयकी अवस्था है, वह जिसका परिणमन है, उसपर दृष्टि जाय तो पर्याय गौण होकर मात्र द्रव्य अनुभवमे रहे—इस तत्त्वको जिसने जाना, उसने आत्माको जाना और उसके मोहका अपसरण हुआ। इस प्रकार उपवर्णित स्वरूपके उपायसे मोहको दूर करके भी व भले प्रकार आत्मतत्त्वको प्राप्त करके भी यदि रागद्वेषको कोई निर्मूलन करता है तो ही शुद्ध आत्माको अनुभवता है। रागद्वेपको पुष्ट करने वाला मोह है, जैसे वृक्षकी हरियालीका पोषक वृक्षकी जड है। वृक्षकी जड मिट जानेपर हरियाली कब तक रहेगी ? इसी प्रकार मोह के दूर होनेपर रागद्वेष कब तक रहेगा ? फिर भी यदि रहे हुए रागद्वेपका अनुवर्तन करेगा। तो प्रमाद विषयकषायके तत्र होनेसे लुट गया है, शुद्ध आत्मतत्त्वकी प्राप्तिरूप चिन्तामणि जिसका ऐसा निर्धन होता हुआ अतरगमे सतप्त ही होवेगा। इम रागद्वेपकी आपदाका कारण देवस्वरूपकी मूढता है अथवा जहाँ मोहादि भावोका उदय हुआ, वहाँ देवस्वरूपमे मुग्ध हो जाता है। तो देवस्वरूपका भूल जाना व मूढता हो जाना पुन. पतनका साधन हो जाता है।

अरहंत प्रभुके स्वरूप को द्रव्य गुण पर्यायोमे जानकर पश्चात् तद्रूप जो निज शुद्धात्मस्वभाव है, उसमे स्थिर होकर मोक्षमार्गका अतिम स्थान पावेगा। उदयमे आते हुए रागद्वेषका अनुवर्तन न करना अन्तरात्माका पुरुषार्थ है। आये हुए को पूछना उससे निवृत्त होनेका उपाय है।

अन्तस्तत्त्व चिन्तारत्नके लुट जानेका कारण प्रमादाधीनता—इस आत्माका शुद्ध आत्मतत्त्वरूपी चिन्तारत्न लुट गया, इसका अतरग कारण उस ही आत्माका प्रमादके आधीन हो जाना है। जैसे लोकमे कहते है कि अपनी सावधानी नही करते, दूसरोको लुटेरा कहकर कोसते हो, इसी तरह आत्मा अपनी सावधानी नही करता और बाह्य पदार्थको अपने शुद्ध विकासका लुटेरा कहते है। बाह्य द्रव्य अपनी ही परिणतिका कर्ता है। एक द्रव्य दूसरे द्रव्यकी परिणतिको त्रिकालमे भी नही कर सकते। यदि कोई किसीकी परिणति कर दे अर्थात् उस पर्यायमे उस काल तन्मय हो जावे तो द्रव्यका ही अखड स्वरूप न रहनेके कारण नाश हो जावेगा। तब यहाँ जो आत्माकी विकृत अवस्था हो रही है, वह उस ही की भूलका परिणाम है। आत्मस्वभावको भूल जानेसे जो विपदा आती है, उससे वह अन्तरगमे महान् सतप्त होता रहता है। जो भूल करता है वही सतप्त होता है, यह द्रव्यदृष्टिसे कथन है। भूल करने वाली पहिली पर्याय है और सतप्त करने वाली पर्याय अगली पर्याय है। यह भेद पर्यायदृष्टिसे कथन है। यथार्थतया तो भूल करते समय ही वही पर्याय भूलके फल आकुलताको भोगती है और उस समयकी अवस्थाको निमित्तमात्र पाकर कर्मरूप हुए कार्माणवर्गणावोके उदयकालमे उपचार से पूर्व क्रियाके फलको भोगते समय प्रमाद (भूल) को वही पर्याय करती है। मेरे चोर मेरे ही अदर है, परन्तु स्वभावमे नही, क्योकि वह चोर विभाव पर्याय है, और सभी पर्यायोका प्रवेश स्वभावके ऊपर है अर्थात् स्वभावकी निरुपाधि अथवा सोपाधि क्षणिक परिणतिया है। सो ये जो लुटेरे मेरे अन्दर है, वे रागद्वेष ही है। अत मुझे इन रागद्वेष विभावोके निषेधके लिये अत्यत जागृत रहना चाहिये।

रागद्वेषके निर्मूलनमे परिस्पष्ट शुद्धात्माका लाभ—इस गाथामे मोहके अपसरणकी बात कही गई है और बताया है कि मोह दूर करके भी आत्मतत्त्वको प्राप्त करके भी यदि रागद्वेषका निर्मूलन करें तो शुद्धात्माका अनुभव होता है। यहाँ सम्यग्दर्शन व सम्यग्ज्ञानका एक साथ होना सूचित किया है। जिस कालमे मोह (अज्ञान) का विनाश है उसी कालमे आत्मतत्त्वका अवगम है, किन्तु अभी चारित्रकी प्राप्ति नही है। इसलिये कहते है कि यदि राग-द्वेषका निर्मूलन करें तो शुद्धात्माका अनुभव हो। यहाँ बताया गया है कि शुद्धात्माकी रुचि रूप सम्यग्दर्शन व आत्मतत्त्वके अवगमरूप सम्यग्ज्ञानकी प्राप्ति होनेपर भी रागद्वेषका निर्मूलन न हो तो शुद्धात्माका अनुभव नही होता। शुद्धात्माका अनुभव सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व स्व-रूपाचरण चारित्रकी विशेषता—इन तीनो करि साध्य है। रागद्वेषकी प्रवृत्तिमे शुद्धात्माका

अनुभव नही तथा यदि बार-बार रागद्वेषका अनुवर्तन किया तो वह आत्मतत्त्वोपलभक सम्यक्त्व व सम्यग्ज्ञानरूपी रत्न लुट जायगा, मिथ्यादृष्टि हो जावेगा। साधारणतया रागद्वेषके रहते हुए भी सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान रह लेता है, किन्तु मोह आसक्ति पुन-पुन रागद्वेषमे लगनेसे सम्यक्त्व भी नष्ट होता है। सम्यग्दृष्टिके जो रागभाव रह जाता है, उसमे उसकी रुचि नही है, उसे विकार समझकर हटानेका ही भाव करता है। रागद्वेष विकार उपाधिज भाव है, मेरा स्वभाव नही है, मै तो ज्ञाता हू, ऐसी अन्त.स्वीकृति उसके है। इस गाथासे पहिले मोहके अपसरणका उपाय बताया है कि अरहतके द्रव्य, गुण, पर्यायको जानने वाले आत्माको जानते है—अनुभवते है और वे मोहके क्षयको प्राप्त होते है।

ससरणके निवारणके लिये अत्यन्त जागरणकी आवश्यकता—इस गाथामे बताया जा रहा है कि उक्त उपायसे आत्माका परिज्ञान भी हो जावे, किन्तु जब तक भेदरूप विकल्प बना रहता है तब तक शुद्धात्माका अनुभव है। क्योकि पर्यायोको गुणमे, गुणको द्रव्यमे विलीन करके द्रव्य विकल्पको भी तोडकर शुद्ध आत्माका अनुभव होता हैं। वहाँ जो पहिले अरहत देवकी भक्तिरूप भाव है, वह शुद्धात्मासे विलक्षण होनेसे विकृत भाव है, विकारसे धर्म नही होता, उस विकाररूप विकल्पसे मुक्त होकर शुद्धात्माका अनुभव है। हाँ, यह बात अवश्य है कि जिसके विषयकषायरूप तीव्र राग है, अर्हद्भक्तिरूप मदरागकी योग्यता ही नही है, वह अविकारी आपके उन्मुख होनेका प्रथम पात्र भी नही है, परन्तु जो भक्तिरूप मदरागमय पर्याय मे ही अटक जावे तब वह भी अविकारी भावके उपयोगका पात्र नही है, और जो विषयकषाय के रागमे अटक जाय तो सम्यक्त्व पाया हो तो वह भी नष्ट हो जाता है। अत मुझे रागद्वेष के निवारणके अर्थ अत्यत जागृत रहना चाहिये।

संसारपारगामीका सत्रारपारका मार्गनिर्देशन—अब ग्रथकार श्रीमत्कुन्दकुन्दाचार्य इस तरहकी बुद्धिको व्यवस्थित कराते हैं कि मोक्षका वास्तविक पथ यही भगवतोने स्वय अनुभव करके प्रदर्शित किया है। यह ही मार्ग, अन्य नही जो कि ८० व ८१ गाथामे कहा गया है। यह एक ही है। लौकिक विनयवादी कहा करते है कि किसी मजहबका सहारा लो, सब एक ही जगह पहुचाते हैं, परन्तु बात ऐसी नही है, क्योकि किसीने स्वतत्रताको धर्म कहा है, तो किसीने परतत्रताको, किन्हीको अपनी ही सत्ता स्वीकार नही है, तो किसीको अपनी कूटस्थ सत्ता स्वीकार है आदि। ऐसी परस्पर विरुद्ध धारणावोका प्राप्ति स्थान एक नही होगा। आत्माको द्रव्य, गुण, पर्यायसे जानो। जब आत्मद्रव्य स्वतत्र है तब गुण भी स्वतत्र है और पर्याय भी स्वतत्र है, परको निमित्तमात्र करके परिणमने वाले विभाव अपनी परिणति क्रिया मे स्वतत्र हैं, पर्याय परिणमनेमे स्वतत्र है। इससे विपरीत द्रव्यको परतत्र मानना, गुणको परतत्र मानना, पर्यायको परतत्र मानना, दिखती हुई दुनियाका भी विनाश करना है, पारमा-

र्थिक नाश तो है ही। भगवत अरहत देवाधिदेवने स्वयं इस मार्गका अनुभव किया और सफल हुए। सफल होकर निरीह दिव्यध्वनि द्वारा लोगोको बतानेमे निमित्त कारण हुए। मोक्षमार्ग निज आत्मस्वभावकी रुचि प्रतीति स्थिति है, अन्य नही है। ऐसी परिपूर्ण श्रद्धा हुए बिना मोक्षमार्गका प्रारम्भ नही होता। जैसा तत्त्व है, वैसी ही बुद्धिकी व्यवस्था करनेमे लौकिक सुख तो सिद्ध होता ही है, पारमार्थिक सुखकी सिद्धि भी यही है, अन्यत्र भावोमे नही है। अतः ऐसी मतिकी व्यवस्था होना अत्यत आवश्यक है। उसीका विवरण करते है—

सव्वेवि य अरहता तेरा विधारोरा खविदकम्मसा।
किच्चा तवोवदेस रिणव्वादा ते णमो तेसिं ॥८२॥

विशुद्ध पंथको प्रणमन—अरहतको द्रव्य, गुण, पर्यायसे पहिचानकर निज आत्माको जानने वाले समस्त मोहभावको दूर करते है। निजात्मस्वभावकी रुचि प्रतीति मोक्षमार्गका उपाय है। इस ही उपायसे भव्य आत्मावोने कर्माशोका क्षय किया है और अरहत हुए हैं, तब उस ही प्रकारका निरीह उपदेश देकर पश्चात् निर्वाणको प्राप्त हुए है। अहो! कैसा शुद्ध ध्येय, शुद्ध आलम्बन, शुद्ध यत्न, शुद्ध ज्ञान व शुद्ध द्रव्य है। यह सब निज आत्मस्वभावकी उन्मुखताका फल है। अरहत देव स्वय शुद्ध होकर स्वयकी सिद्धि प्राप्त कर चुके है और अन्य भव्य जीवोको स्वय अनुभव किये हुए मार्गका उपदेश देकर उनके उपकारके विशुद्ध कारण होते है। अहा! जिनके निमित्तसे हमे मोक्षमार्गका निश्चय हुआ है, वे अरहत व यह मोक्ष-मार्ग हमारे परमोपकारी है उन मोक्षमार्गके उपदेशक अरहत देवोको और इस मोक्षमार्गको जो कि एक निज शुद्ध आत्माकी अनुभूतिस्वरूप है हमारा नमस्कार हो।

अरहंत प्रभुकी वर्तमानता—भगवान अरहत देव अनन्त हो गये है। ५ भरतक्षेत्र व ५ ऐरावतक्षेत्र, इन १० कर्मभूमियोमे अर्थात् इन क्षेत्रोके उत्सर्पिणी अथवा अवसर्पिणी कालके चतुर्थकालमे उत्पन्न हुए भव्यात्मा अरहतदेवके द्रव्य, गुण, पर्यायोको जानकर अपने आपको पहिचानकर निज शुद्धात्मानुभूति करनेके उपायसे अरहत हुए है। इनमे प्रत्येक चतुर्थकालमे हुए २४ तीर्थंकरोने विशेषरूपसे भव्य जीवोको दिव्यध्वनि दी है। इसमे कही रागभाव नही है, यह तीर्थंकर प्रकृतिके उदयका फल है। ऐसे चतुर्थकाल अनन्त हो चुके है तथा ५ महा-विदेहोमे सर्वदा मोक्षमार्ग चलता रहता है। वहाँके उत्पन्न निकट भव्य आत्मा सदा मोक्ष जाते रहते है। इस प्रकार अतीतकालमे अनन्त अरहत हो गये है, भगवन्त तीर्थंकर हो गये हैं। उन्होने अन्य कोई उपाय न होनेसे एकमात्र इस ही निज शुद्धात्मानुभूतिके उपायसे कर्माशोका क्षय किया है। यहाँ कर्मांश शब्द देनेका भाव यह है कि कर्मोका काण्डकोकी विधिसे क्षय होता जाता है। जिन्होने उस पारको पाया है, वे ही बीचका मार्ग जो तिरनेका उपायरूप है कहनेमे प्रामाणिक समझे जाते है। इस ही कारण ये अरहत प्रभु ही परम आप्त है, इन्होने

स्वय निज शुद्धात्माका अनुभव करके कर्मांशोका क्षय किया है और अन्य भव्यात्मावोको, मुमुक्षुवोको अतीतकालमे उस ही प्रकार उपदेश दिया है व वर्तमानमे भी महाविदेहादिमे इस ही यथार्थमार्गका उपदेश दे रहे है, और उपदेश देकर निरीह होने वाली उस क्रियासे भी विराम लेकर अयोगस्वरूपी द्रव्यकर्म भावकर्म नोकर्म इन तीनो प्रकारके मलोसे अत्यन्त रहित होकर निश्रेयस अर्थात् परमकल्याणको प्राप्त हुए है। इसलिये यह स्वातन्त्र्य और अभेदीकरण मोक्षमार्ग है अन्य नही, यह निश्चय किया जाता है।

प्रभुस्वरूपके अवगमसे स्वतंत्रताका अवलम्बन—जिसने अरहतके द्रव्य, गुण, पर्यायको जाना उसने स्वतत्र स्वरूप ही जाना। जैसे अरहतदेवका आत्मद्रव्य स्वतत्र स्वय रक्षित अखड सत् है, वैसे ही मैं भी स्वतत्र स्वयंरक्षित अखड सत् हू। इसी प्रकार गुण भी स्वतत्र स्वयरक्षित अखड सत् हैं, पर्याय भी गुणकी परिणतिमात्र है, वह भी अवश्यभावी है, वह भी अपने काल मे होती ही है। पर्याय गुणकी परिणतिमात्र है, अत पर्याय न अन्य द्रव्यसे आती है, न अन्य गुणोसे आती है, न अन्य पर्यायोसे आती है। सूक्ष्मतया तो वर्तमान पर्याय वर्तमान कारणक है। विकल्पोसे निर्विकल्प अवस्था नही होती है। निर्विकल्प अखण्ड द्रव्यके द्रव्यस्वभावके लक्ष्यपूर्वक समस्त विकल्प पक्षोसे अतीत होकर ही निर्विकल्प अनुभव पाया जाता है। अविकारी पर्यायका आलबन विकार नही है। विकारके आलबनसे विकार ही होता है। शुभ अशुभ भाव मेरे स्वभाव नही है और न इन विभावोके आलबनसे अविकारी निर्मल पर्याय प्रकट होती है। द्रव्यमे भी पर्याय पर्यायके आलबनसे नही होती है, किन्तु द्रव्यके आलबनसे होती है। ऐसा होते हुए भी जिनके उपयोगने अध्रुवका अर्थात् पर्यायका आलबन लिया है, उनके मलिन पर्यायका प्रवाह होता है और जिन्होने जैसा होता है, उस ही प्रकार प्रयोग द्वारा ध्रुव अर्थात् द्रव्यका आलम्बन लिया है, उनके निर्मल पर्यायका प्रवाह होने लगता है।

द्रव्यदृष्टिमे अविकार स्वभावकी उन्मुखता—यह द्रव्यदृष्टि ही निर्णयका प्रारभ है, द्रव्यस्वभावका कारण रूपसे उपादान होते जाना निर्वाणका मार्ग है, अन्य नही, ऐसा निश्चय किया जाता है अथवा बहुत प्रलापसे क्या लाभ है? जब वस्तु-तत्त्व हस्तगत हो गया है तब प्रलाप व्यर्थ है, इससे क्या लाभ है? मेरी मति व्यवस्थित हो गई है, श्रद्धामे निष्कप हो गई है। बस! बस!! भगवत अरहत देवोको नमस्कार हो। उनके द्रव्य, गुण, पर्यायोके स्वरूप ज्ञानसे पश्चात् उसही प्रकार अपने आत्माके अवस्थानरूपसे भाव्यभावकके विभागके अभावसे होने वाली स्वरूपतन्मयतासे अद्वैतनमस्कार हो। व्यवहारमे प्रवेश होनेपर अरहत प्रभुका ध्यान ही रहो, शुद्धात्माका ही ध्यान रहो। धन्य है महतोकी परमोपकारिता स्वय स्वरूपसे विचलित न होकर जिनके निष्काम योगको निमित्त पाकर भव्य जीव मिथ्यात्व महापापका निर्मूलन कर देते है और चारित्रका आश्रयकर वीतराग अवस्था प्राप्त कर लेते है उनके लिये

प्राप्त सर्व सामग्री जो विसर्जित हो सकती है निर्वपन करता हू । तन, मन, वचन तीनो विनाशीक है ।जो विनाशीक है, वही विसर्जित हो सकती है । अत उस शुद्धात्माके ध्यानमे ही यह तन लगो, मन लगो, वचन लगो । धन तो प्रकट क्षेत्रतः भी भिन्न है । धनके काल्पनिक अधिकारी अपने धनको वीतरागमार्गके प्रचारमे ही लगा देते है । मेरा सर्व कुछ भगवत अरहत की आराधनामे लगो । भगवत देवाधिदेव अरहंतोको भक्तिसे नमस्कार हो । अहो ! इस गुणगानके कालमे भी ज्ञानी अविकारी स्वभावके उन्मुख हो रहा । जिस रागका फल वह चेष्टा है, उस रागकी उन्मुखता नही है, उस रागके प्रति यह विकारभाव है । इससे परे अविकारी मेरा स्वभाव है, स्थान है, यह प्रतीति चल रही है । निर्वाणमार्ग और निर्वाणमार्गके उपदेशकोकी परमोपकारिता जानकर बहुमान होना मुमुक्षुका अनिवार्य कर्तव्य है, किन्तु प्रोग्राम उसका सिद्ध प्रभु ही होनेका है । इस प्रकार अन्तरात्मा निर्वाणमार्गका निश्चय करके, अपनी मतिकी निष्प्रकप व्यवस्था करके अन्तमे कुछ भी करने योग्य क्रिया-कलाप न रहनेसे भगवत अरहत को नमस्कार करके स्वमे विराम पाता है ।

हितपरिपंथी मोहप्रकृतिकी भूमिका—अब आचार्य श्री कुदकुद महाराज शुद्धात्मलाभ के परिपथी मोहके स्वभाव और भूमिकाओको कहते है—यह मोहपर्याय पर्यायदृष्टिसे शुद्धात्माका परिपथी है—अवरोधक है, किन्तु द्रव्यदृष्टिसे शुद्धात्माका परिपथी कोई भी पर्याय नही है, क्योकि सर्वद्रव्योसे पृथक् शुद्ध आत्मद्रव्य अनादिसे अनन्त सर्वत्र पर्यायोमे व्यापक है । हा मोहपर्याय शुद्धात्माके लाभका परिपथी है । शुद्ध निर्मल स्वतन्त्र आत्मद्रव्य सदा प्रकाशमान होते हुए भी मोहपर्यायके साथ एकमेक किया गया होनेसे उस पर्याय कालमे अनुपलब्ध है । ऐसे शुद्धात्मलाभका परिपथी जो मोह है, उसके स्वभावको बतलाते है ।

प्रश्न—पर्याय स्वयं किसी स्वभावकी परिणति होती है, अत पर्यायका स्वभाव कहना अनुपपन्न है । स्वभावका पर्याय तो होता है, परन्तु पर्यायका स्वभाव नही होता है, तब यहा पर्यायका स्वभाव कैसे घटित होगा ? उत्तर—पर्यायके कार्यको फलको यहा पर्यायका स्वभाव बताया गया अथवा जिस पर्यायके कालमे जिस फलका होना अवश्यंभावी होता है, वह फल अथवा उस फलकी प्रकृति पर्यायका स्वभाव कहलाता है । लोकमे भी कहते है कि बिच्छूका स्वभाव काटना है, कुत्तेका स्वभाव भौकना है आदि । यहा मोहविभाव आवे तो उसकी प्रकृति क्या है ? यह समझना है ।

अब मोहके स्वभावको व भूमिकाओको कहते है—भूमिका स्थानविशेषका नाम है, मोहके अवरुद्ध स्थानोको जानकर मोहके स्वभावसे परिचित कराया जाता है तथा मोहके अवरुद्ध स्थानोको जानकर मोहके स्वभावका परिचय प्राप्त होता है । इस तरह स्वभाव व भूमिकाओमे परस्पर सहकारिता है । अतः एक ही गाथामे मोहके स्वभाव और भूमिकाओका

त्रिभावन करते है—वर्णन करते है । मोह एक विभावपर्याय है, अतः यहा विभावयति शब्द का मेल किया है । अब मोहके स्वरूप और भेदोका प्रतिपादन करते है—

दव्वादिएसुमूढो भावो जीवस्स हवदि मोहोत्ति ।
खुब्भदि तेणोच्छण्णो पप्पा राग व दोस वा ॥८३॥

मोहकी प्रकृति व उसके विनाशकी जीवशक्ति—जीवका जो परिणाम द्रव्य, गुण, पर्यायमे मूढ है, विवेकरहित है, वही तो मोहभाव है । उस मोहभावसे आच्छादित हुआ यह वहिरात्मा रागभावको व द्वेषभावको प्राप्त होकर क्षुब्ध होता रहता है । यही जीवकी वेहोशी है । जैसे धतूरेका पान करके जीव असावधान-उन्मत्त रहता है, उसे किसी पदार्थमे विवेक नही रहता, सर्वव्यवहार अविवेकपूर्ण रहता है इसी प्रकार इस मिथ्यात्व रसपानसे जीव असावधान-उन्मत्त रहता है । यह सब मोहका नाच है, जीवका स्वभाव नही है । तभी तो ज्ञानी जीव मोहियोपर यथार्थ कृपा करते है ग्लानि नही, क्योकि ग्लानिके योग्य जीवद्रव्य नही, किन्तु मोहभाव ही है । मोहभाव स्वभाव नही है, वह प्रतिक्षण उत्पन्नध्वसी विभावपर्याय है । इसकी स्थिति उपयोगकी अपेक्षा प्रवाहरूपसे अन्तर्मुहूर्त है, मिथ्यात्वको लम्बी स्थितिमे निरन्तर अनेक उपयोग मिथ्यात्वको रखते रहते है, अनादि अविद्यासे उत्पन्न जो परमे आत्मसस्कार है, उससे अविवेकी बने रहते है । यह मोहपरिणाम मिथ्यात्वके उदयको निमित्तमात्र पाकर आत्माके श्रद्धा (दर्शन) गुणकी परिणतिमे होती है और वह मिथ्यात्व पूर्वमोहभावको निमित्तमात्र पाकर कार्माणवर्गणाकी प्रकृति परिणतिसे निर्वत्त हुआ था । यही ऐसी परम्परा अनादिसे चली आई है, ऐसे अनादि परम्पराप्रवाहगत मोहभावको नष्ट कर देनेकी जीवमे प्रति क्षण शक्ति है ।

स्वभावकी शाश्वत अविकारस्वभावता—यह जीवद्रव्य अनादि मोहकलङ्कको बसाकर भी स्वभावसे बिगडा नही है, मोहभावसे पृथक् निज शुद्धात्मस्वभाव परखनेकी बुद्धि जीवके ही होती है, जिसका मिथ्यात्व दूर होनेको होता है यह परिणाम भी उस पदवीमे उत्तम है किन्तु निर्विकल्प निज शुद्धात्मस्वभावका अनुभवन न होनेके कारण सम्यग्दर्शन नही है उत्तम होनेका प्रयत्न अनुत्तम अवस्थामे ही तो होता है, क्योकि उत्तम हो जाना तो उस प्रयत्न का फल है, ऐसा प्रयत्न करनेकी जिनके योग्यता होती है उनके ही कहा जाता है कि मिथ्यात्व मद हो गया है । जिनके मोहभावके सम्बन्धमे किञ्चित् भी ग्लानि नही होती, जो उसका पोषण करते रहते हैं, उनके तीव्र मिथ्यात्व कहा जाता है । मोहभावसे द्रव्य, गुण, पर्यायके विषयमे यथार्थताकी प्रतिपत्ति नही रहती । पहिले ८०वी गाथामे बताया था जो अरहतको द्रव्य, गुण, पर्यायसे जानता है वह आत्माको जानता है, उसका मोह क्षयको प्राप्त होता है अर्थात् वह सम्यग्दृष्टि होता है । अरहत शुद्ध अवस्था है, अत यह निष्कर्ष निकला कि शुद्ध

आत्मद्रव्यमे शुद्ध आत्मद्रव्यके अस्तित्वादि सामान्य गुण व ज्ञानादि विशेष गुणोमे व शुद्धात्म-परिणतिरूप पर्यायोमे जिसे विवेक है, वह आत्मज्ञ होता है ।

मोहमद्यपानमे विवेकका अभाव—अब इस गाथामे यह बताते है कि पूर्वोक्त द्रव्य, गुण पर्यायोमे जिसे तत्त्वकी प्रतिपत्ति नही है, वह मोहभाव है । जिससे यह निष्कर्ष निकला कि शुद्धात्मद्रव्यमे और उसके अस्तित्वादि सामान्यगुण व ज्ञानादि विशेष गुणोमे व शुद्धात्म-परिणतिरूप पर्यायोमे जिसे विवेक नही है वह मिथ्यादृष्टि है । जहाँ तत्त्वकी प्रतिपत्ति नही होती है वहाँ तीन प्रकारके अज्ञानोमे से कोई अज्ञान रहता ही है । १. सशय, २. विपरीत, ३ अनध्यवसाय । ऐसा अधकार जहाँ रहता है वह है दर्शनमोह । दर्शनमोहके विपाकमे जीव की परिणति मूढ होना पडती है तब वह शुद्ध द्रव्य गुण पर्यायोको क्या जाने अथवा शुद्ध अशुद्धका अन्तर क्या समझे अथवा प्रतीतिका पयत्न ही कहाँसे करे ? भैया ! दतियामे एक राजा था । वह मन्त्रीके साथ हाथीपर चढा जगलमे घूम रहा था । वहाँ मदिरा पिये हुए एक कोलीने राजासे कहा कि ओबे, रजुवा हाथी बेचेगा ? राजाको क्रोध आ गया । तब मन्त्री समझाता है कि हे राजन् ! आप इस गरीबपर क्रोध मत करो, यह कुछ नही कह रहा है, यह तो और ही कोई कहता है । राजाने कहा कि यह स्पष्ट ही तो है कि यही कह रहा है तो मन्त्रीने कहा—महाराज आप चले चलिये । राजदरबारमे इसका मर्म बतावेगे । ५–६ घन्टे बाद राजदरबार लगा । यहाँ मन्त्रीने उस कोलीको बुलाया । तब राजाने पूछा कि भाई मेरा हाथी खरीदोगे ? तब कोली भयसे काँपता हुआ कहता है कि महाराज आप क्या कह रहे है इस गरीबको ? आप होशमे बोल रहे है क्या ? मेरी क्या शक्ति । तब मन्त्रीने समझाया कि राजन् यह कोली वहाँ नही बोल रहा था, किन्तु मदिराका नशा बोल रहा था । सो भैया ! यह जीवद्रव्य स्वय नही नाच रहे है, किन्तु मोहपरिणाम ही सर्वत्र नाच रहा है । ऐसे इस मोहपरिणामसे दबे हुए बहिरात्मा परद्रव्यको तो मान रहे है कि यह मै हू अथवा यह मेरा है और परगुणको मान रहे हैं यह मेरा गुण है और परपर्यायको मान रहे है कि यह मेरी पर्याय है—ऐसा मानकर ही रह जाते हो, आगे कुछ प्रवृत्तियाँ न करते हो, ऐसा भी नही है, किन्तु इस मिथ्यात्व भावके दृढतर सस्कारसे परद्रव्यको ही कल्पनामे रोज-रोज ग्रहण कर रहे है ।

परमार्थ चोरीका कुपरिणाम—आत्माका आत्माके अतिरिक्त अन्य कुछ नही है । उसमे यह मेरा है यह जबर्दस्ती करना चोरी है । इस चोरीके परिणामसे ही कर्म न्यायाधीशके निमित्तसे ८४ लाख योनियोमे दड भोगना पड रहा है, शरीरकी कैदमे रहना पड रहा है । सर्वविपदावोंका मूल मोहभाव है, परको अपना बनानेकी बुद्धिरूप डकैती है तथा सर्वशान्ति का मूल मोहसे विपरीत यथार्थ आत्मतत्त्वकी प्रतीति है । इस आत्मतत्त्वकी उपलब्धिके बिना

यह जीव स्वय ज्ञानसुखका भण्डार होते हुए भी अज्ञानवश बाह्य अर्थोंसे ज्ञान व सुख चाहता फिरता है, इसो कारण महासक्लेश सहता है। बाह्य अर्थोंमे ज्ञान व सुख चाहना बाह्य अर्थों को अपना मानना है। सो यह वहिरात्मा इष्टविषयोमे राग और अनिष्ट अर्थोंमे द्वेपको करके क्षोभको प्राप्त होता रहता है। ये वस्तुये स्वय न इष्ट है, न अनिष्ट है, किन्तु हत्यारी इन्द्रियोके विपयके वशमें पदार्थोंमे दो तरहका भाव मोहीने बना लिया है। जो इन्द्रिय द्वारसे इष्ट है उसे इष्ट कल्पित किया गया और जो इन्द्रियद्वारसे अनिष्ट है उसे अनिष्ट कल्पित किया गया। जैसे पुलका बाँध एक है यदि वह बडे वेगमे बहते हुए जलके भारके वेगसे आहत हो जाय तो वह बाँध दो रूपसे विदीर्यमाण हो जाता है। इसी तरह पदार्थ अद्वैत है, जैसा है सो है, उसमे इष्ट अनिष्टपनका भावरूप द्वैत नही है किन्तु मोहके वेगका पदार्थोंमे जब घात होता है अर्थात् मोहका प्रहार होता है तब मोहके विपयभूत पदार्थ दो तरह अनुभूत होते है, कोई इष्ट कोई अनिष्ट, अथवा यह आत्मा दो प्रकारसे विदार दिया गया—१ रागभावरूप, २ द्वेपभावरूप। क्योकि पदार्थ तो विदारा नही जाता यह आत्मा ही दो भावरूप हो जाता है। इस तरह बहुत सक्लेश क्षोभको प्राप्त होता है। अत मोहके स्वभावको जानकर भूमिकावोकी पहिचान करना चाहिये कि मोह–मोह, राग, द्वेपके भेदसे तीन भूमिका वाला है। इनमे मोह तो मूल है उसमे राग, द्वेपकी पुष्टि है। यह मोह तो दर्शनमोहके विपाकको निमित्त पाकर प्रादुर्भूत होता है और द्वेष, क्रोध, मान, अरति, शोक, भय व जुगुप्साके विपाकको निमित्त पाकर प्रादुर्भूत होता है, तथा द्वेप, राग माया, लोभ, हास्य, रति व वेदके विपाकको निमित्तमात्र पाकर प्रादुर्भूत होता है। इन सबके विनाशका उपाय भेदविज्ञान है। भेदविज्ञान स्वभाव विभावकी परख से होता है। स्वभावकी परख अरहत को द्रव्य गुण पर्यायके जाननसे होती है।

यहाँ यह जानना कि जो त्रिभूमिक मोहमे पडे हैं, वे दान, पूजा, सत्कारके योग्य नही किन्तु दयाके पात्र है और जो त्रिभूमिक मोहसे उठ गये है, निज शुद्धात्मरुचिरूप सम्यग्दर्शन मे स्वसवेदनरूप सम्यग्ज्ञानसे निर्मल निश्चल निजात्मानुभूतिरूप सम्यक्चारित्रसे विभूषित है, और व्यवहार मोक्षमार्गके पथिक है, वे दान, पूजा, सत्कारके योग्य है तथा जो अत्यन्त निर्मल हो गये है वे स्वभावसे एकमेक किये जानेकी शैलीसे निरन्तर उपासनीय, आराधनीय है। इस तरह जिनके विनाशसे शुद्धावस्था होती है, उस त्रिभूमिक मोहका वर्जन हुआ।

मोहविनाशका आसूत्रण—अब मोहको अनिष्टका कारणपना बता करके मोहके विनाश को आसूत्रित करते है—अनिष्ट कार्य आकुलता है, क्योकि जीवकी और कितनी ही अवस्थायें हो, चाहे परिस्पद हो, ज्ञान कम हो, कितनी ही बातें हो वह सब अनिष्ट नही है, एक आकुलता ही अनिष्ट है। उसका कारण मोहभाव ही है। अपने कार्य अपनेमे भिन्न क्षेत्रमे नही है, अन्य द्रव्यमे नही है, परकीयपरिणतिमे नही है, परकीय गुणोमे नही है, क्योकि प्रत्येक द्रव्य

स्वत सिद्ध अखण्ड परिपूर्ण सत् है । अतः ऐसे कार्य मेरे गुणोकी ही परिणतियाँ है, उनमे जो आकुलतामय है, वे अनिष्ट है और जो अनाकुलताके उन्मुख है, वे अभीष्ट है। उनका कारणपना साधकतमत्व निश्चयतः उस कालके भावमे है । आकुलताका कारणपना मोहभावमे है, अत. मोहके विनाशका उपदेश करते हैं ।

मोहेणव रागेणव दोसेणव परिणदस्स जीवस्स ।
जायदि विविहो बधो तम्हा ते सखवइ दव्वा ॥८४॥

मोह रागद्वेषके क्षपणमे हित—मोह व राग व द्वेषसे परिणत हुए जीवके नाना प्रकारका बध होता है। इस कारण वे अर्थात् मोह रागद्वेप क्षपित कर दिये जाने चाहिये । आत्मा एकाकी है, उसका मुख दुःख उमके उत्तरदायित्व पर है । मोह रागद्वेषके समय जीव की परिणति परलक्ष्यपूर्वक होती है, परलक्ष्यमे कर्मबध होता ही रहता है । कर्मबध एकान्त अनिष्ट है । अहो ! जब मेरा कही कुछ नही, सुख दु खका भी कोई सहाई नही तब परलक्ष्य-कृत विकल्पोसे मेरा क्या भला है ? मैं तो निज स्वभावमे लीन रहूं । स्वभावका विकास स्वाधीन है, मधुर शातिप्रद है । इससे विपरीत विभाव (मोह रागद्वेष) का स्वभाव पराधीन है, निमित्ताधीन सयोगाधीन दृष्टिमे है, कटु और अशातिप्रद है, जो द्रव्य, गुण, पर्यायमे यथार्थ स्वरूपकी प्रतीति नही करता है, परस्पर किसीसे सम्पर्क मानता है । ऐसे उस विवेकज्ञानसे रहित बहिरात्माके नाना प्रकारका बधन होता है ।

बन्धनके कारणपर एक दृष्टान्त—जैसे बनमे हस्ती पकडनेका वह उपाय किया जाता है कि पकडने वाला एक छोटी खाई खोदता है, उसपर कागज बिछाकर कागजकी झूठी हस्तिनी बनाता है और एक ओर झूठा हस्ती बनाता है, जो हस्तिनीकी ओर दौडता हुआ चित्र वाला होता है । वहाँ बनके हस्तीको मोह, राग, द्वेषकी इस प्रकरणमे कैसी परिणति है इसका वर्णन करते है—प्रथम तो उसे यथार्थताका ज्ञान नही है तृणपटलकर आछन्न झूठी हथिनीको सत्य हथिनी समझता है और उसके शरीरमे आसक्त हो जाता है। यह हाथीके मोहभावकी परिणति है, क्योकि मोहमे दो बातें होती है—१. यथार्थताका अज्ञान, २ गृद्धता। हाथीको उस गड्ढेका यथार्थ बोध नही है और यथार्थज्ञानके अभावमे परमे आत्महितकी बुद्धि हो जानेसे गृद्धता हो गई है, वह मोह है । गृद्धता रागका रूप है, उसीमे राग है, उसकी तीव्रता का बल देने वाला मोह है । जो करेणु कुट्टिनीमे बनहस्तीका राग है, प्रेम है, वह रागपरिणति है तथा दौडते हुए दूसरे हस्तीको देखकर उससे द्वेष हुआ, कही यह पहिले न आ जाय, यह द्वेष हुआ । इन तीनो मोहकी भूमिकाओमे चलने वाले हस्तीके बधन हो जाता है अर्थात् हस्ती उस गड्ढेपर आकर प्रवृत्ति करता है और गिर जाता है, गिरनेके बाद वह निःशक्त होता हुआ बधनमे कर लिया जाता है । वस्तुतः बधन तो उसका तब ही से है, जब मोह रागका प्रवाह

हुआ। फिर गड्ढेके बंधनमें आया और पुन. पकडने वा के आधीन हो गया।

वन्धनका कारण मोह, राग, द्वेष—इसी प्रकार इस जीवकी भी व्यवस्था है। बहिरात्माको द्रव्य, गुण, पर्यायका यथार्थज्ञान नही है। निज द्रव्यको निज, अन्य सबको पर, निज शक्तिको निज, अन्य सर्व शक्ति पर, निज परिणति उस कालमे निज व्यक्ति, अन्य परिणति सब पर—इस प्रकार स्वतन्त्रताकी प्रतीतिके विरुद्ध पराधीन स्वरूप मानना मूढता है। इस ही मूढता के कारण बहिरात्माके रागमे तीव्रता रहती है, वह पर्यायको ही निजवस्तु मानता है, अनित्य क्षणिक परिणतियोको निज स्वभावरूप मानता है। यह बहिरात्माकी मोहपरिणति है। इन्द्रिय के विपयभूत पदार्थोंमे प्रेम होता है, और इसीके लिये अनवरत प्रयत्न करता रहता है, यह है बहिरात्माका राग। निजमे सुखका सम्बंध नही, ऐसे झूठे कल्पित मिथ्यारूप सुखाश्रय पदार्थोंके सम्बधमे जुडता है। यह उसका राग है, इसमे मोहका प्रबल वल है। उस माने हुए सुखविपयोमे कोई वाधा देवे तव उस वाधकको द्वेपी समझकर उससे द्वेप करता है। इस प्रकार तीन भूमिकावोमे स्थित मोहके वश होकर जीवके नाना प्रकारका बध होता है। वस्तुत. शुभोपयोग और अशुभोपयोग ही बन्धन है, शुद्धोपयोग मोक्ष है। शुद्धोपयोगके बलसे जीवप्रदेश और कर्मप्रदेशोका अत्यत वियोग हो जाता है। द्रव्य मोक्ष है। इन दोनो प्रकारसे मोक्षसे विपरीत लक्षण वाला वह बध है। बध तारक आदि दुःखोका कारण है। इस आत्माका स्वभाव स्वय सुख और ज्ञानसे परिपूर्ण है, फिर भी अपनी असावधानीसे अपनी महत्ताको भूलकर दु खका पात्र हो रहा है। यह बध ही सर्वदुःखोका मूल है।

विकारक्षपणका मूल उपाय चित्स्वभावावलम्बन—इसलिये मोक्ष चाहने वाले जीवो को अर्थात् ससारके दु खोसे छूटनेकी इच्छा करने वाले जीवोको इन मोह, राग, द्वेषोको भले प्रकार, जैसे निर्मूल हो जायें वैसे कसकर नष्ट कर देने चाहिये। मोहभाव तो अन्तर्मुहूर्तमे कस कसकर स्थिति अनुभाग घात सक्रमण आदि विधियोसे नष्ट किया-जाता है तथा रागद्वेष स्थूलतया सम्यक्त्वकाल तक छद्मस्थ अवस्थामे नष्ट किया जाता है, और सूक्ष्मतया अनिवृत्तिकरण परिणामो द्वारा अन्तर्मुहूर्तमे (कई अन्तर्मुहूर्त जिसमे गर्भित है) सक्रमण स्थिति घात अनुभाग गति आदि विधियोसे कस-कसकर नष्ट कर दिया जाता है। यह भाव रागभाव द्वेषके निमित्तभूत द्रव्यराग, द्रव्यद्वेषकी क्षयकी प्रक्रिया है, इसीके अनुरूप भावराग व भावद्वेष भी नष्ट कर दिया जाता है। इस प्रकार सत्याभिलाषियोको रागद्वेपका क्षय कर देना चाहिये। रागद्वेपके क्षयका प्रधान मूल उपाय यह है कि वर्तमानमे उदित विभावोसे भिन्न स्वरूप वाले निज चैतन्यस्वभावकी दृष्टि रखें। यही किया जा सकता है, यही करने योग्य है।

मोह रागद्वेषके लक्षणोके प्रदर्शनका संकल्प—अब इन मोह रागद्वेषको पहिचाननेके प्रधान चिह्न बतलाते है। जिनसे मोह रागद्वेपको पहिचानकर उत्पन्न होते ही नष्ट कर देना

चाहिये । सर्व प्रथम तो जो अहित है, जिससे मुक्त होता, उसकी पहिचान आवश्यक है । उसे पहिचानकर उत्पन्न होते ही नष्ट कर देना चाहिये । मोह रागद्वेष उत्पन्न होनेके बाद इनकी परम्परामे ये बने रहते है तब इनका स्थान बन जाता है तथा उत्पन्न होते ही यदि शीघ्र नष्ट कर दिये जायें तब सस्कारके अभावसे ये क्षयको प्राप्त हो जाते है । इस कारण आचार्य श्री कुन्दकुन्ददेव मोह रागद्वेपके क्षयके प्रयोजनके अर्थ इनके चिह्नोको बताते है—

अट्ठे अजधागहरणं करुणाभावो य तिरियमणुएसु ।
विसएसु अप्पसगो मोहस्सेदाणि लिगाणि ॥८५॥

मोह, राग, द्वेषके चिह्न—समस्त पदार्थ यद्यपि स्वतत्र अपने अखड सत्मे स्थित है तब भी विपरीत अभिप्रायवश परतन्त्र दृष्टिसे अयथार्थ ग्रहण करना तथा उपेक्षायोग्य होनेपर भी तिर्यंच मनुष्योमे दयापरिणाम, आत्मीयपरिणाम अथवा दयाका अभावरूप परिणाम—ये सब दर्शनमोहके चिह्न है तथा इष्टविषयोमे प्रीतिरूप परिणाम रागभावका चिह्न है और अनिष्टविषयोमे अप्रीतिरूप परिणाम द्वेषभावका चिह्न है ।

दर्शनमोहके चिह्नका विवरण—दर्शनमोहके उदयसे मिथ्यात्वभाव है, जिससे वस्तुके स्वरूपसे विरुद्ध स्वरूपका ग्रहण होता है । वस्तु अनादि अनत स्वतत्र अखड है, किन्तु मिथ्या-दृष्टि अनादि न समझकर पर्यायदृष्टि ही सर्वस्व रखनेसे सर्वथा सादि प्रतीत होता है, अनतकी प्रतीतिकी जगह सान्त प्रतीत होता है । स्वतत्रके स्थानमे सयोगाधीन दृष्टिसे परतत्र देखता है । अखडके स्थानमे खड पर्यायमात्र देखता है । यह अर्थके विषयमे अयथार्थ ग्रहण मिथ्यात्वके उदयमे होता है । अत ऐसी बुद्धि होना दर्शनमोहका चिह्न है । इसी तरह जिनमे ममत्व है, ऐसे तिर्यञ्च मनुष्योमे प्रीति करुणाका विशेष हो, यह भी दर्शनमोहका चिह्न है । जगतके समस्त जीव पर होनेसे उपेक्षाके योग्य है, किन्तु मोही जीवका जिनमे ममत्व रहता है उनमे विशेष प्रीति पैदा होती है तथा उनके कष्ट आदि आनेपर तीव्र अनुकम्पाका भाव उत्पन्न होता है, यह सब दर्शनमोहका चिह्न है । मिथ्यात्वके उदयमे अत्यन्ताभाव वाले पर चेतन अचेतन पदार्थोमे आत्मीयताकी कल्पना होनेपर उन पदार्थोकी क्षतिमे महान् सक्लेश-अनुकम्पन करता है, यह दर्शनमोहका चिह्न है । क्योकि इस वातावरणका मूल दृष्टिकी भूल है । इस मोहके सस्कारके वेगसे पदार्थोके सम्बधमे दो प्रकारकी धारणा हो जाती है । तो जो विषय रुच गये, उनमे प्रीति पैदा होती है, और दूसरे जो अरुचित हुए उनमे द्वेप पैदा हो जाता है । यहाँ करुणाभाव शब्द दिया है । जिसकी सधि तोडनेपर करुणा-अभाव अर्थात् तिर्यंच मनुष्योपर करुणाका अभाव होना, यह अर्थ निकलता है, यह दर्शनमोहका चिह्न है । इस मोही जीवके करुणा करनेपर या करुणाके विपरीत होनेपर उस परिणामरूप पर्यायसे भिन्न ध्रुव ज्ञानमात्र निज आत्मतत्त्वका श्रद्धान नही है, इसी कारण यह दर्शनमोहका चिह्न है ।

रागद्वेषके चिह्नोंका वर्णन—विषयोके स ़ अर्थात् प्रकर्परूपसे सङ्गमें भी यही बात है। इष्टविषयोको रुच जाना राग है, और अनिष्टविषयोकी अरुचि द्वेष है तथापि उस काल मे उस पर्यायस्वरूपसे पृथक् स्वभावमय निज आत्मशक्तिका श्रद्धान होनेसे पर्यायदृष्टि हो जाती है, वहा वह रागद्वेष चरित्र मोह है। पुनरपि दर्शनमोहका चिह्न हो जाता है। दर्शनमोहकी शल्य विकट शल्य है। इस शल्यमे व्रतके भाव नही ठहर सकते। व्रत आदि पालन करते हुए भी कोई अतिचार हो जावे तो उस साधारण अतिचार भावके अप्रकट बने रहनेकी शल्यमे अन्य प्रवृत्तिया लोकविरुद्ध कर देनी पडती है तथा चित्तमे सक्लेश रहता है। यहा यह दृष्टि मोह है कि हमारी इतनी बडी प्रतिष्ठा है। इसमे यह न जाने लोकोकी दृष्टिमे कितना बडा रूप धारण कर लेवे और प्रतिष्ठा समाप्त हो जावे।

राग, द्वेष, मोहके क्षपणका कर्तव्य—यहाँ पर्यायको ध्रुव आत्मा बना देनेकी दृष्टि मोह है। ससार दुःखोंका मूल केवल भ्रम है, दृष्टि मोह है। दृष्टि मोहके सस्कारवश दृष्टि मोहके रहते हुए या न रहते हुए जो वृत्तिया रह जाती है वे राग और द्वेष हैं। हाँ इतना अन्तर अवश्य है कि दृष्टिमोहके क्षय हो जानेपर राग, द्वेष जल्दी ही समूल नष्ट हो जाते है। यहा इन चिह्नोसे पहिचान कराने का प्रयोजन इन सबको दूर करना मात्र है। मोह राग द्वेषको मिटा देना इनकी पहिचानका प्रयोजन है। शरीर मैं हू, स्त्री पुत्रादिक मेरे है, धन वैभव मेरा है, मै अन्यको सुखी दुःखी कर सकता हूँ, शुभ रागसे वीतरागता हो जावेगी आदि दृष्टिया दृष्टिमोहके चिह्न है। आत्मसमाधानका चिन्तन रहते हुए भी कर्मोंके विपाककी प्रेरणासे इष्ट अनिष्ट परिणाम होना मिथ्यात्व रहित राग द्वेष है और आत्मभावके बिना उन्ही परिणामो रूप आत्मबुद्धिका बना रहना मिथ्यात्व सहित राग द्वेप है। इन्हे पहिचान पहिचान करके नष्ट करो। जैसे लोकमे कहते है कि शत्रुका एक व्यक्ति बना रहना भी खतरा है, अत शत्रुको पहिचान पहिचानकर मारो। इसी प्रकार यहा परमार्थ प्रकरणमे भी कहते है कि आत्माके शत्रुस्वरूप मोह, राग, द्वेप भावोको पहिचान पहिचान करके मारो। इस तरह पूर्व गाथामे कहे हुए त्रिभूमिक मोहको स्थूलव्यवहारकी प्रवृत्तियोंसे पहिचान कराकर आचार्य महाराज इस त्रिभूमिक मोहके विनाशका उपदेश देते हैं अर्थात् विनाशका विनाश अथवा अविनाश रहनेका उपदेश देते है। इन राग, द्वेष, मोहके परिज्ञानके अनतर ही इनके विनाशका उपाय बनता है। वह उपाय राग, द्वेप, मोहसे पृथक् ज्ञाताद्रष्टारूप निज आत्मा की भावना है उस उपयोगसे परिणत होता है।

इस प्रकार द्रव्य, गुण, पर्यायकी शैलीसे अरहंत प्रभुके ज्ञानको मोहक्षयका उपाय बताकर अब मोक्षक्षयका उपायान्तर बताते हैं—उपायान्तरको आलोचित करते हैं। यहाँ आलोचनासे प्रयोजन अपने उपयोगमें उतरी हुई बातको प्रकट करनेसे है। वह मोह क्षपणका उपाया-

न्तर यह है—

जिणसत्थादो अट्ठे पच्चक्खादीहि बुज्झदो णियमा।
खीयदि मोहोवचयो तम्हा सत्थं समधिदव्वं ॥८६॥

मोहक्षयके उपायमे जिनशास्त्राभ्यास—जिनेन्द्रदेव द्वारा प्ररूपित शास्त्रोसे पदार्थोको प्रत्यक्षादि प्रमाणोसे जानने वाले जीवके विपरीत अभिप्रायको करने वाले मोहका क्षय हो जाता है, अतः शास्त्रोका भले प्रकार अध्ययन करना चाहिये। इस अवसरमे पहिले मोहक्षयका उपाय द्रव्य गुण पर्यायसे अरहतको जानना बताया था। यहाँ अब यह दूसरा उपाय शास्त्र-अध्ययन बताया जा रहा है। अथवा यह समझना चाहिये कि पूर्व उपाय इस उपायकी अपेक्षा करता है क्योकि सबसे पहिले कुछ ज्ञान करना आवश्यक है, उसका साधन जिनशास्त्र है। जिनशास्त्रका अध्ययन करने वाला भव्य उसको वाच्यभूत अर्थोको जानकर उसमे भी आत्मतत्त्वको जानकर वह भी द्रव्य गुणसे जैसे शुद्ध है वैसे पर्यायसे भी शुद्ध हो, उसे जानकर अपने ज्ञानोपयोग की निर्मलता द्वारा मोहका विनाश कर लेता है। क्योकि जो जीव पहिले पहिले ही ज्ञानमार्गमे कदम रखनेको होता है, उसको जिनशास्त्रका आलम्बन ही आलम्बन बन जाता है। वे जिनशास्त्र सर्वज्ञके मूलसे प्रवाहित हुए है, अतः प्रमाणभूत है, यथार्थ है। इसका परीक्षण इस विज्ञानसे हो जाता है कि जिनसिद्धातमे कही भी बाधा नही आती हैं। जो वैज्ञानिक विषय है, वह विज्ञानसे सही उतरता है। जो स्वसवेदनका विषय है, स्वसवेदनसे यथार्थ उतरता है। ऐसे अबाधित प्रमाणभूत आगमको प्रमाण मानकर भव्यजीव निजक्रीडा करते है परलक्ष्य छोडकर निजदृष्टिसे विहार करते है। उनके उस जिनशास्त्राभ्यासके सस्कारसे स्वसवेदन शक्तिरूप सपदा प्रकट होती है जिसके बलसे शुद्धात्मसवेदनमे सफल होता है।

शान्तिसंपदामे शास्त्राध्ययनका प्रधान सहयोग—जोवकी सम्पदा स्वसवेदन शक्तिकी व्यक्ति ही है। जो प्रकट भिन्न है, अत्यन्ताभाव वाले है, वह सपदा तो क्या परलक्ष्यका विषयभूत होनेसे आकुलतारूप विपदाका निमित्त होनेसे विपदा ही है। मोहके वेगमे विपदा भी सपदा मान ली जाती है और यथार्थ सपदाकी खबर भी नही रहती। जिन जीवोके स्वसवेदन रूप सपदाका विकास होता है उनके प्रत्यक्ष व अनुभवादि द्वारा पदार्थके यथातथ्यका विज्ञान हो जाता है। यहाँ जिस परपदार्थका विज्ञान हुआ वह कही आनददायक नही, किन्तु जिस अभिन्न ज्ञानशक्तिके विकाससे ज्ञप्ति हुई वह विकास आनद देने वाला है। मोक्षमार्ग सहृदय विवेकी जनोको ही रुचता है। विद्वज्जनोके चित्तको आनद देने वाला ज्ञानमार्ग है, ऐसे इस प्रमाण समूहसे भव्यजीव समस्त पदार्थ समूहको जानते है और ऐसे ज्ञानीके ही अतस्तत्त्व विपरीत अभिप्रायके पोपक मोहभावका क्षय होता है। इससे यह प्रकट सिद्ध है कि मुमुक्षु को शान्त्यभिलाषीको सर्वप्रथम आगमकी उपासना करनी चाहिये। शास्त्राध्ययनके बिना एव-

दम द्रव्य गुण पर्यायको अथवा शुद्धद्रव्यको करे. जा. ा. श..त्राभ्यन करने वाले के कर्मोंकी विशेष निर्जरा होती है । शुद्धोपयोगकी पहुच मोहके विनाशका यथार्थ उपाय है । अरहतदेवकी भक्तिके समय भी जो वीतरागताकी पहुच है वह तो निर्जराका उपाय है, किन्तु जो परलक्ष्य अथवा भक्तिरूप शुभराग है वह पुण्यकर्म शुभ ही कर्म बधका निमित्त है ।

शास्त्राभ्यास और प्रभुपरिचयमें मोहक्षयहेतुताकी पूर्वापरता—यहाँ प्रश्न होता है कि पहिला उपाय तो शास्त्राध्ययन बताते, जो मात्र ज्ञप्तिकी विशेषता होनेसे निर्जराका कारण है । उसके पश्चात् दूसरा उपाय उत्पन्न होता है, जो अरहतको-द्रव्य, गुण, पर्यायिमे जानना ही सही परलक्ष्य अथवा भक्तिरूप होता है, ऐसा विषम नम्बर कैसा ? इसका समाधान यह है कि कर्मनिर्जराकी बात तो साधककी योग्यतापर निर्भर है—जहाँ शास्त्र स्वाध्याय करता हो व उद्देश्य विपरीत रखता हो वाद आदिक प्रयोजन हो तब निर्जरा क्या उलटा पापका कारण हो जाय और अर्हद्भक्तिमे गुणोपर ही दृष्टि होनेसे द्वेषदृष्टि, विषय, कषाय आदि अनेक अशुभोपयोग दूर हो जाते है, वहाँ कर्मनिर्जरा हो जाय । बहुधा शास्त्रस्वाध्याय इष्ट अनिष्ट बुद्धिसे रहित होकर हो तो वह कर्मनिर्जराका विशेष कारण है, परन्तु पहिले ही पहिले जो मोक्षमार्गमे कदम रखना चाहता है उसे शास्त्रज्ञान तो कुछ चाहिये ही । अत द्रव्य, गुण, पर्यायिसे अरहतको जाननेरूप मोह क्षपणके उपायसे प्रथम उपाय भले प्रकार शास्त्रका अध्ययन—शब्द ब्रह्मका उपासन है । भावज्ञान पूर्वक दृढ विश्वास अध्ययन अवश्य मोहक्षयको कर देता है ।

स्वसचेतन बलसे मोहक्षयकी अवश्यभाविता—जब यह भव्य जीव सर्वज्ञ वीतराग द्वारा प्रणीत शास्त्रोके अध्ययनसे यह जानता है कि मैं रूप, रस, गध, स्पर्शसे रहित चैतन्यमय एक अकेला अविनाशी आत्मा मानसप्रत्यक्षमुखसे हू, तदनन्तर इस ही भावनाके विशेष अभ्यास के बलसे निर्विकल्प प्रत्यक्ष बलसे इस ही आत्माका सवेदन करता है, पुनः जो शुद्ध निरञ्जन हो गये है ऐसे अरहत भगवानको द्रव्यत्व, गुणत्व, पर्यायित्वसे जानकर अपनी समानता पहिचानते है, वे भव्यजीव अवश्य मोहके क्षयको करते हैं । मोहक्षयसे आत्मविशुद्धि उत्तरोत्तर बढकर अतमे अन्तिम पाकपर उतरे हुए सुवर्णकी भाँति निर्मल हो जाते है । आत्मनिर्मलता ही सर्वोत्कृष्ट वैभव है । इस प्रकार सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्रमय मोक्षमार्गके प्रवेशके अर्थ मोक्षार्थीको आगमका अभ्यास करना चाहिये । आगमाभ्यास अध्यात्मविकासके अर्थ है । प्रत्येक ज्ञानके साथ आत्महितका विवेक बना रहे, ये तो आगमाभ्यासीको आगमाभ्यास प्रयोजनवान है ।

आगम प्रकरणोंसे हितशिक्षाका ग्रहण—तीन लोककी रचना सुनकर भव्यजीव सोचता है कि अहो ! आत्मोपलब्धिके बिना ऐसे विविध स्थानोमे जन्म मरणके क्लेश सहे । जीवोकी अवगाहनाका प्ररूपण सुनकर सोचता है कि स्वात्मस्थितिके बिना सर्व दुःखोंके कारणरूप

शरीरपिशाचको इस इस प्रकार लिये लिये रहना पडता। कर्मस्थिति अनुभाग प्रकृति आदि वर्णनोसे वह परकी ओर न भुककर आत्माकी ओर भुकता है कि अहो! स्वच्छ ज्ञातृत्वमात्र निजस्वभावमे स्थैर्य न होनेसे निमित्तनैमित्तिक भावके फलस्वरूप कार्माणवर्गणावोमे इस प्रकार स्थिति अनुभाग आदि हो जाते है, जो आत्माके एकक्षेत्रावगाहमे बद्ध रहते है। शुद्ध परमात्मा का वर्णन सुनकर भव्यजीव यह निश्चय करता है कि अहो! ऐसा ही मेरा स्वरूप है, विपरीत भावके समय भी स्वभाव तो ऐसा ही स्वच्छ ज्ञातामात्र है, वह कषाय परिणामोसे मात्र तिरस्कृत है। आगमज्ञान द्वारा समस्त पदार्थोको भव्य जैसी जिनकी सत्ता है, उसी प्रकार जानता रहता है। किसी अर्थकी किसी अर्थके साथ एकता नही समझता। उसे दृढ धारणा है कि समस्त जातीय पदार्थ एक क्षेत्रमे रहकर भी वे सब अपनी-अपनी व्यक्तियोमे सत्त्व रखते है, अन्य व्यक्तियोमे नही। इसी प्रकार वस्तुस्वातन्त्र्य, निजाभिमुखता, परोपेक्षा आदि सर्व भावोकी दृढता पोपने वाला यह आगमाभ्यास भव्यजीवोको नियमसे करना चाहिये।

यह मोहक्षयका उपायान्तर श्री कुन्दकुन्द आचार्य महाराजने प्रदर्शित किया। अब जिस आगमाभ्यासके लिये श्री कुन्दकुन्दाचार्य महाराजका आदेश हुआ है उस जिनेन्द्रप्रणीत शब्दब्रह्म अर्थात् आगममे पदार्थोकी कैसी व्यवस्था है? इस बातका वितर्कण करते है—

दव्वाणि गुणा तेसिं पज्जाया अट्ठसण्णया भणिया।
तेसु गुणपज्जयाणं अप्पा दव्वत्ति उवदेसो ॥८७॥

अर्थका अर्थ—इस गाथाकी उत्थानिकामे पूछा गया था कि भगवत आगममे अर्थोकी कैसी व्यवस्था है? इन अर्थोके विषयमे उत्तर देते हुए कहते है कि यहाँ अर्थ शब्दसे द्रव्य, गुण, पर्याय तीनोका ग्रहण हो जाता है, क्योकि इन तीनोकी "अर्थ" सज्ञा है। इन तीनोमे से द्रव्य क्या चीज है? सो कहते है कि गुण और पर्यायोका जो आत्मा है अर्थात् सर्वस्व है, या स्वभाव है, वह द्रव्य है। यद्यपि वहाँ द्रव्य, गुण, पर्याय ये अभिधेय अपना-अपना जुदा स्वलक्षण रखते है तथापि जैसे इनकी सत्ता पृथक्-पृथक् नही है, वैसे ही इनका अभिधान भी एक "अर्थ" है। जैसे उस सत्को भिन्न दृष्टियोसे देखनेपर द्रव्य, गुण, पर्यायके रूपमे प्रतीत होता है वैसे ही अर्थ शब्दका व्युत्पत्तिभेद करनेपर किसी अर्थसे द्रव्यका, किसी अर्थसे गुणका, किसी अर्थसे पर्यायका बोध होता है। अब इस ही बातको स्पष्ट करते है। अर्थ शब्द जुहोत्यादिगणीय ऋ धातुसे निष्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ प्राप्त करना व आश्रय करना है। इस धातुके कर्तृवाच्य मे लट् लकारके अन्य पुरुषमे ऐसे रूप होते है—इयर्ति, इयृत:, इयृति तथा कर्मवाच्यमे रूप होते है—अर्यते, अर्येते, अर्यन्ते। ऐसे रूपोको बताकर इनका उपयोग करते है—यानि गुणपर्यायान् इयृति अथवा यानि गुणपर्यायै अर्यन्ते तानि द्रव्याणीति अर्थ। जो गुण पर्यायोको प्राप्त हो, आश्रित करे सो अर्थ है, अथवा जो गुण पर्यायो द्वारा प्राप्त किये जाये, आश्रय किये जावें सो अर्थ है। इस अर्थमे द्रव्य लक्षित किये गये है। गुण पर्यायोको पहुचाने वाला द्रव्यो होती है।

अर्थ शब्दसे द्रव्यका ग्रहण—यहाँ इस प्रकरणमे यह बात जाननी चाहिये कि द्रव्य एक अखण्ड पूर्ण सत् होता है और वह प्रतिसमय वर्तना करता है। जो प्रतिसमयकी वर्तना है, वह पर्याय है चीज और चीजकी हालत। वे हालतें प्रतिनियत ही होती है, अनियत नही, एक दूसरे द्रव्यमे सकर दोप नही लाते। इसका कारण द्रव्यका स्वयका स्वभाव है, स्वभावको ही गुण कहते है। हालतें-पर्यायें जितने प्रकारसे होते है, उतनी ही शक्ति या स्वभाव होते है, इस तरह द्रव्य गुण, पर्यायोसे भिन्न नही है। तब गुण पर्यायोसे जुदा द्रव्य क्या होगा ? इसलिये जो एकात्मक ध्रुव गुण, पर्यायोका स्वभावान् है वह द्रव्य है। इसका फलितार्थ यह हुआ—जो गुण, पर्यायोको प्राप्त हो, वह द्रव्य है अथवा गुण अन्य क्या है ? एक अखण्ड सत् मे अखण्ड सत्को परखनेके लिये मानित शक्तियाँ तथा पर्याय क्या हैं ? उनकी वर्तमान अवस्था। वह अखण्ड एक सत् गुण पर्यायो द्वारा जाना जाता है—आश्रित है, प्राप्त है। अत उक्त व्युत्पत्तिके अनुसार अर्थ नाम द्रव्यका है।

अर्थ शब्दसे गुणका ग्रहण—अब आगे गुण कैसे अर्थ नाम सज्ञित है, इसे कहते है—ये द्रव्याणि आश्रयत्वेन इयृति अथवा ये आश्रयभूतैः द्रव्यै अर्यन्ते इति अर्था गुणा। जो द्रव्यो को आश्रयरूपसे प्राप्त करते है अथवा आश्रयभूत द्रव्योंके द्वारा जो आश्रयरूप होते है, प्राप्त होते है वे अर्थ है, इस अर्थमे अर्थ अभिधानसे गुण अभिधेय हुआ। गुण द्रव्यके आश्रय है, क्योंकि अखण्ड एक सत्मे स्वभाव परखा गया है।

अर्थ शब्दसे पर्यायका ग्रहण—अब पर्यायोंके सम्बधमें अर्थसज्ञापर विचार करते हैं। ये द्रव्याणि क्रमपरिणामेन इयृति अथवा ये द्रव्यै क्रमपरिणामेन अर्यते ते अर्था पर्याया इति यावत्। जो द्रव्योको क्रम परिणमनसे आश्रय करे वे अर्थ है अथवा जो द्रव्योंके द्वारा क्रम परिणमनसे प्राप्त किये जावे वे अर्थ है। इस व्युत्पत्तिसे अर्थ अभिधानसे पर्याय अभिधेय गृहीत किया। द्रव्योमे परिणमन निरन्तर होते है और प्रत्येक परिणमन एक समय रहते है। अन्य समयमे अन्य परिणमन होता है, पूर्ण परिणमन द्रव्यमे विलीन हो जाता है। इस तरह क्रम परिणमनोसे पर्यायोने द्रव्यका आश्रय किया। अतः पर्याय भी अर्थ है।

अर्थकी व्युत्पत्तिमे दृष्टान्तपूर्वक द्रव्य, गुण पर्यायका विवेचन—जैसे सुवर्ण पीतत्व आदि गुणोको और कुण्डल आदि पर्यायोको प्राप्त होता है अथवा पीतत्व आदि गुणोके द्वारा व कुण्डलादि पर्यायोके द्वारा द्रव्य आश्रयभूत किया जाता है इसी तरह द्रव्य गुणों व पर्यायो को प्राप्त होता है व गुण पर्यायोके द्वारा द्रव्य आश्रयभूत किया जाता है। इस दृष्टान्तमे सुवर्ण द्रव्यकी जगह समझना तथा जैसे पीतत्वादिक गुण सुवर्णको आश्रयरूपसे प्राप्त करते हैं अथवा सुवर्णके द्वारा गुण आश्रियमाण हैं, वैसे ही गुण द्रव्यको आश्रयरूपसे प्राप्त होते है अथवा द्रव्य के द्वारा गुण आश्रियमाण है। इस दृष्टान्तमे पीतत्वादिक गुणके स्थानपर है तथा जैसे कुण्ड-

लादिक पर्याय सुवर्णको क्रम परिणमनसे आश्रय करते है व सुवर्णके द्वारा कुण्डलादिक पर्याय क्रमसे आश्रियमाण है वैसे ही पर्यायें द्रव्यको क्रम परिणामनसे आश्रय करते है तथा द्रव्यके द्वारा पर्यायें क्रमसे आश्रियमाण है। यहाँ कुण्डलादिक पर्यायोको पर्यायके स्थानपर समझना। यहाँ यह विचारिये कि क्या पीतत्वादिक गुण व कुण्डलादिक पर्यायें सुवर्णसे भिन्न है ? नही, तो पीतत्वादिक गुण व कुण्डलादिक पर्यायोका आत्मा ही तो सुवर्ण हुआ, यहा आत्माका तात्पर्य सर्वस्वसे है। इसी तरह विचार करे कि गुण और पर्यायोसे पृथक् कोई द्रव्य है अथवा द्रव्यसे पृथक् कोई गुण व पर्याये है ? नही, तब गुण और पर्यायोका आत्मा ही द्रव्य कहलाया। द्रव्य गुण पर्यायोका निज अर्थ इस प्रकार है—१. अद्रुवन् द्रुवन्ति द्रोष्यन्ति पर्यायानिति द्रव्याणि। जिसके पर्यायोको प्राप्त किया व जो कर रहे है व करते रहेगे वे द्रव्य है। अभेदरूपसे वस्तु द्रव्य है, भेदरूपसे अनेक गुण है।

व्युत्पत्त्यनुसार व पर्यायका भाव—गुणयते द्रव्याणि एभिस्ते गुणाः, जिनके द्वारा द्रव्य भेद रूप बने वे गुण है। "द्रव्यमेकमनेकात्मकम्" का भी भाव यही है—द्रव्य अभेदरूपसे एक स्वरूप है व भेददृष्टिसे नानारूप है। इसी तरह पर्यायोको देखो—परि अयते इति पर्याया, जो स्वभावके ऊपर आते है वे पर्यायें है अर्थात् जो स्वभावके परिणमन है, वर्तमान अवस्थारूप है क्षणिक है वे पर्यायें है। ये पर्यायें भी द्रव्यकी हालतें है, अत द्रव्य, गुण, पर्याय ये भिन्न-भिन्न कोई सत् नही है, सो द्रव्यसे पृथक् इनकी सन्तान होने से गुण पर्यायोका स्वभावरूप द्रव्य है। अब इस ही द्रव्य, गुण, पर्यायके विवरणको शुद्ध निश्चयनयसे आत्मतत्त्वमे घटित करते है— जो अनन्तज्ञानसुख आदि गुणोको अमूर्तत्व अतीन्द्रियत्व सिद्धत्व आदि पर्यायोको परिणमता है प्राप्त होता है वह अर्थ है। यह तो द्रव्यको सकेत करने वाला अर्थ है। यहाँ यद्यपि अनंतज्ञान अनतसुख पर्याय है फिर भी शुद्ध निश्चयनयकी दृष्टिसे गुणोको भी शुद्धपर्यायके अभिमुख रख कर देखा है और इसी कारण व्यञ्जन पर्यायसे अधिक सम्बन्ध रखने वाले भावोको पर्यायके स्थानपर प्रयोग किया है। यहाँ शुद्ध आत्मद्रव्यको द्रव्यके स्थानपर कहा है। अब गुणोका वर्णन करते है—जो आधारभूत शुद्ध आत्मद्रव्यको प्राप्त करे, आश्रय करे वे गुण है, जैसे निर्मलज्ञान आदिक। इसी प्रकार पर्यायोका स्वरूप है। अन्तर मात्र इतना है कि यहाँ क्रम परिणमनकी मुख्यता रखकर सूक्ष्म दृष्टिसे क्षणिक परिणमनोको देखना है वह है सभी गुणोके सिद्धत्व पर्याय।

द्रव्य गुण पर्यायकी स्फुट परीक्षा—यहाँ द्रव्य गुण पर्यायकी परीक्षा करिये—द्रव्य अनादि अनत अहेतुक है, इसी कारण द्रव्य स्वतन्त्र है। द्रव्यको ही भेददृष्टिसे देखनेपर गुण सिद्ध होते है, वे गुण भी द्रव्यके स्वभावको रखते है, वे भी अनादि अनत अहेतुक है, अत. गुण भी स्वतन्त्र है। इसी तरह वर्तमान मात्र पर्यायको देखो तो वह सादि सान्त होकर भी

निश्चयसे अहेतुक है क्योंकि विशिष्ट पर्याय का कारण द्रव्य कहो तो द्रव्य तो अनादि अनन्त एक स्वरूप है तब "कारणसदृश कार्य" इस नियमसे पर्याय भी अनादि अनत एक स्वरूप हो जायगी। यदि पर्यायका कारण गुणको कहो तो गुण भी अनादि अनत अहेतुक है सो यहाँ भी यही आपत्ति आवेगी। यदि पूर्ण पर्यायको कारण कहो तो वह तो विलीन होती है तब उत्पाद कहलाता है। अभाव भावका कारण कैसे ? यह एक सूक्ष्म ऋजुसूत्रनयकी दृष्टि है। वस्तुव्यवस्थामे तो पूर्ण पर्याय सयुक्त द्रव्य वर्तमान पर्यायका कारण कहा है। इस तरह द्रव्य, गुण पर्यायोकी व्यवस्था जिनेन्द्र शब्द ब्रह्ममे है। यह जिनेन्द्र भागवत परमागम पूर्णापरविरोध रहित आप्तप्रणीत, प्रबलयुक्तिपूर्ण सर्व जगतका हितकारी है। इस परमागमका अभ्यास मोहक्षयका उपाय है। वस्तु स्वतत्र है परस्पर पृथक् है। प्रत्येक वस्तु अपनी परिणतिसे ही परिणमती है, परकी परिणतिसे नही आदि सिद्धान्तोका मनन जिस चित्तमे है उस चित्तमे मोह नही टहरता। अज्ञानभाव हटते ही मिथ्यात्व हट जाता है अथवा मिथ्यात्व हटते ही अज्ञान हट जाता है, दोनो बल एक साथ चल रहे है।

मोहक्षयके उपायके उद्यमका उपदेशन—इस प्रकार शिष्यके पहिले इस प्रश्नपर कि मोहके जीतनेका क्या उपाय है ? दो उपाय बताये। यहाँ शिष्य कमजोर या अज्ञानी नही है। ऐसे प्रश्न करनेकी प्रबल उत्कण्ठा ज्ञानीके ही होती है। वह इस ही उत्तरको मनमे दृढ बनानेके अर्थ आशङ्का रूपमे प्रकट करता है। उन उपायोका वर्णन करके अब आचार्य पुरषार्थका व्यापार करानेकी भावनासे कहते है कि इस प्रकार मोहक्षयके उपायभूत जिनेन्द्रदेव के उपदेशका लाभ होनेपर भी पुरुषार्थ करना अर्थक्रियाकारी है अर्थात् जिनेन्द्रदेवके उपदेशको निमित्त करके आत्माका ज्ञान पाकरके भी जैसा आत्मस्वभाव जाना है, वैसा ही स्थैर्य प्राप्त करनेका पुरुषार्थ करे तब ज्ञाताद्रष्टा रहने रूप प्रयोजनकी सिद्धि है। इसलिये आचार्य महाराज पुरुपार्थ करनेका व्यापार कराते है तथा उद्यम करनेका उपदेश, उपाय बताते है—

जो मोहरागदोसे णिहणदि उवलद्ध जोण्हमुवदेस।
सो सव्वदुक्खमोक्ख पावदि अचिरेण कालेण ॥८८॥

शीघ्र संकटमुक्तिके लिये उपाय करनेका संदेश—जो जिनेन्द्रप्रणीत उपदेशको पाकर भी अर्थात् जिनेन्द्रोपदेशको निमित्त करके निज ध्रुव ज्ञायकस्वभावके लक्ष्यसे स्वानुभवको प्राप्त करके भी यदि मोह, राग, द्वेषको नष्ट करता है, वह यथाशीघ्र कालसे सर्वदुःखोके मोक्षको प्राप्त करता है। यहाँ आचार्य महाराज अपनी भी बात दर्शाते जा रहे है और शिष्य भी अपनी बात सुनकर प्रमोदसे ध्यानी बन रहा है। जो स्वानुभवसे प्राप्त किया, उसके कहनेमे ऐसी दृढता होती है। रागद्वेष मोहके विनाश करनेपर फिर कुछ भी विलम्ब नही रहता। इसलिए अचिरेण कालेन शब्दको कहकर आचार्य महाराज मानो हस्तगत मोक्षके विषयमे बात कर रहे

है। मोक्ष छूटनेको कहते है। आत्मद्रव्यमे अन्य द्रव्यका न मेल है, न त्याग है। आत्मद्रव्यमे आत्मद्रव्यकी पर्यायका मेल है और उसका ही त्याग है। अन्य द्रव्य तो इस मेल व त्यागमे निमित्तमात्र है। मोह राग द्वेष पर्यायके मेलको ससार कहते हैं और मोह रागद्वेष पर्यायके विलीन होनेको मोक्ष कहते है। यद्यपि स्थूलपन मोहके विनाश होनेपर मोक्ष हो गया तथापि सर्व दुःखके कारण व रूप व फलोके सर्वथा अभाव होनेकी विवक्षा यहाँ है, जिससे अचिर काल फिर भी लग जाता है, चाहे वह अन्तर्मुहूर्त ही हो अर्थात् राग द्वेष मोहका मूलक्षय जहाँ अभिप्रेत है वहाँ अनंत सुखकी प्राप्तिमे अन्तर्मुहूर्तकाल लगता है और यदि साधारणतया लोक-प्रसिद्धिके अनुसार (उपशम मदोदय या क्षयोपशम) मोह, राग, द्वेषका हनन अभिप्रेत है वहाँ १५ भव तकका समय लग सकता है।

एकत्वविभक्तकी भावना बिना विकट संसरण—इस जीवने अनादिसे अपने इस एकत्व की कथा ही नही सुनी, भावना तो अनन्तरकी बात है। ऐसी अवस्थामे दुःखसे छूटनेका उपाय ही क्या होता ? अनादिसे यह जीव निगोदमे रहा, वहाँ एक स्पर्शनइन्द्रिय था, वह भी अव्यक्त-सा। एक सेकेन्डमे करीब २३ बार जन्म मरण किया, वहाँका दुःख बडा कठिन है। जैसे किसी सुकुमार श्रेष्ठ पुत्रको साकलोसे कस दिया जाय, मुह, नाक, कान, आँख बद कर दिये जायें, और दड अनादिके अनेक प्रकार हों तो जिस दुःखकी वहाँ सभावना की जाती है उससे अनत गुण दुःख निगोद जीवके से वहाँ जिनेन्द्रोपदेश श्रवण असम्भव ही है। कर्मोंकी मंदताको निमित्त पाकर जीव निगोदवाससे निकला, तब पृथ्वी, जल, आग, वायु प्रत्येकवनस्पति हुआ। वहाँ भी एकेन्द्रियकी ही दशा है। कुछ कर्मोंकी मदता और हुई, दोइन्द्रिय, तीनइन्द्रिय, चतुरि-न्द्रिय हुआ, ये सभी कर्णहीन है। कर्मोंका विशेष क्षयोपशम होनेपर पचेंन्द्रिय हुआ तब असज्ञी होनेपर लाभ ही क्या और सैनी हुए और क्रूर सिहादिक हुए तब घोर पाप करके नरकमे जा सकता है, वहाँ नरकोमे घोर दुःख। देवगति भी पाई तो वहाँ असयमका संताप व परका ऐश्वर्य देखकर ईर्ष्याका ताप नही मिटा। मनुष्यगतिमे भी नाना भावके मनुष्य है। एक कल्याणकी इच्छा रखने वाला ही मनुष्य प्रशस्तमार्गका अधिकारी है।

जिनेन्द्रोपदेशका प्रताप—कल्याणेच्छुको जिनेन्द्रोपदेशका निमित्त प्राप्त होता ही है। आत्मा परमेश्वर है, वह अनादि कर्मबद्ध होनेसे वर्तमानमे मलिन है तथापि वह जैसा भाव करता है वैसा योग प्राप्त कर ही लेता है। इस प्रकार दुर्लभसे दुर्लभ जिनेन्द्रोपदेशको प्राप्त करके भी यदि तलवारकी धारके समान अमोघ इस जिनेन्द्रोपदेशको मोह, रागद्वेषके ऊपर दृढता निपातन करता है तब समस्त दुःखके मोक्षको (छुटकारेको) जल्दी ही प्राप्त कर लेता हैं। यह जिनेन्द्रोपदेश तलवारकी धारके समान है। जैसे तलवारकी धारका पानी निष्कप है, इसी तरह जैनेन्द्रवचन विरोध व भंग, कपरहित है। जैसे तलवारकी धारको सावधान

अभ्यस्त ही स्पर्श कर सकता है इसी तरह जैनेन्द्रोपदेशको सावधान पुरुष ही स्पर्श कर सफल है। जैसे तलवारकी धारपर चलना कुशल व्यक्तियोका काम है, इसी तरह जैनेन्द्रोपदेशपर चलना कुशल निकट भव्यजीवोका काम है। जैसे तीक्ष्ण तलवारकी धारका जिस शत्रुपर निपात हो उसका विनाश हो जाता है इसी तरह जिनेन्द्रोपदेशका मोह, राग द्वेप शत्रुपर निपात हो तो मोहादिक टिक नही सकते, क्षय हो जाते है।

रागादि शत्रुओंपर ज्ञानधारका प्रहार—हे आत्मन्! तेरे शत्रु मोह रागद्वेष भाव है, और उनके विनाशकी उपायभूत ज्ञानधार भी तुझमे तन्मय है, ज्ञानधारको सभाल अब देखता है। अनादि परम्परासे चले आये हुए मोह, रागद्वेप शत्रुवोपर दृढतासे भावज्ञानका प्रहार कर, दृढतासे कर अपनी सारी शक्ति लगाकर। यहाँ ज्ञान करण भिन्न नही है, किन्तु आत्माको इस स्थितिमे आनेका उपदेश है कि आत्मन् पराश्रयदृष्टि छोडकर निजात्माकी सम्यक्श्रद्धान ज्ञान आचरणरूप ज्ञाताद्रष्टाकी स्थितिमे रह अवश्य मलिन पर्याय विलीन होगी और तुम स्वय अनत सुखमय देखोगे। कार्य तेरे करनेका मात्र एक यह ही है, जिनेन्द्रोपदेशको निमित्तमात्र करके जो भावज्ञान-आत्मज्ञान हुआ है उसका मोह रागद्वेपपर प्रहार कर। जैसे जिसके हाथमे तलवार है, पुरुप भी समर्थ है और तलवार भी तीक्ष्ण है यदि उससे सामने शत्रु आ जाय और वह अपना बल आजमाये तब तलवार वालेका कार्य क्या है? मात्र वही जो योद्धा करते है। उसी तरह जिनेन्द्रोपदेश पाया, उससे भावज्ञानकी भावनाके अवलम्बनसे भावक पुरुष भी समर्थ हुआ। तब मोह राग द्वेप शत्रु जो सामने है, उनके प्रति अब काम क्या है? केवल एक यह ही व्यापार जो आत्मज्ञानका निपात मोहादिपर करे। यहाँ निपात मात्र इतना है जो उपयोग मे ज्ञानस्वभावको स्थिरतासे रखे।

अवसरपर पुरुषार्थसे न चूकनेका अनुरोध—यह अवसर अमूल्य है, पुरुपकार विना गवा देनेमे यदि सुमति हो तब स्वयको पछतावा है अन्यथा ज्ञानी पुरुष तेरे प्रमादको तेरे लिये पछतावेंगे। आत्मन्! तू ज्ञानियोके दु:खका कारण तो मत बन। समयका लाभ ले, परदृष्टि हटाकर निजात्मदृष्टिका दृढ आलम्बन ले, यही तेरी विजयका उपाय है। अहो! इस ही समय इस ही के लिये मैं मोहके क्षपणके लिये पुरुषार्थमे बैठता हू, निज शुद्ध निरञ्जन आत्मतत्त्वके उपयोगरूप महान् पुरुषार्थमे बैठता हू, ठहरता हू। मुझे अन्य अब कोई बात सुनने देखनेकी नही है। यहाँ खड्ग रत्नत्रयका है, रत्नत्रय सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र इन तीनोके समुदायका नाम है अर्थात् आत्माकी उस परिस्थितिका नाम है, जहाँ निजशुद्धात्मा का निश्चल अनुभव है, और वीतरागता प्रवर्तमान है। इस एक ज्ञानमात्र अनुभवनरूप खड्ग के द्वारा मोह, रागद्वेपरूप बाह्यानुभव विभाव विलीन किया जा रहा है। यह कथन घातका है, किन्तु अलङ्कार मात्र है, परमदयाका यहाँ वर्णन है। इस प्रकार आचार्य महाराज निकट

भव्य जीवोको प्रतिबोधते है कि जिनेन्द्रोपदेशका लाभ होनेपर भी यदि शीघ्र मोह, रागद्वेषका क्षय कर दोगे तो सर्वदुःखोसे छुटकारा पा लोगे। जो समझनेको तैयार है, समझते है उनके प्रति ही प्रतिबोधनेका व्यवहार होता है। यहा शिष्य भी यथार्थ रहस्य जानकर प्रतिज्ञासकल्पबद्ध हो रहा है कि मैं सर्व आरम्भसे मोहके क्षयके लिये पुरुषार्थमे ठहरता हू।

मोहक्षयके लिये स्वपरविभागसिद्धिके प्रयत्नका उपदेशन—अब मोहक्षयका सिद्ध एव अमोघ उपाय बताकर उस उपायकी सिद्धिके लिये आचार्य प्रयत्न करते है—आचार्यको तो वह उपाय सिद्ध हुआ है। वहाँ तो शिष्योके समझानेके तात्पर्यमे प्रयत्नका व्यवहार हुआ है। मोहक्षपण स्वपरविभागकी सिद्धिसे ही होता है। यह अनादिसे परमे एकत्वका अध्यवसाय किये हुए प्रवर्त रहा है। इस ही अध्यवसायसे मोहभाव पुष्ट हो रहा है। इसके क्षयका उपाय स्वको स्व व परको पर समझना, मानना है। हे आत्मन्! परसे अत्यत पृथक् निज चैतन्य शक्तिमय अपने आपकी स्वीकृति तो कर। ससारमे परलक्ष्यमे इतना भटका, क्या पाया? क्या हित साधा? अहित ही तो हाथ लगा। यह सुख शातिका अमोघ उपाय है, पर विपदामे लीन प्राणीको अन्य कोई उपाय नही है शातिका। एकमात्र भेदविज्ञान ही शरण है। उस ही स्वपरविभागकी बात यहाँ करते है। हे आत्मन्! ध्यानपूर्वक सुन, मनन कर, अङ्गीकार कर और महोल्लाससे सबसे अपनेको न्यारा देखकर पश्चात् विकल्पावस्थामे आये तो हॉ कर "यह ज्ञानमात्र ही मैं हू।" श्रीमत्कुन्दकुन्द आचार्य इस ही विषयको लेकर स्वपरविभागकी सिद्धिके लिये प्रयत्न करते है—

णाणप्पगमप्पाण परच दव्वत्तणाहि सबद्धं।
जाणदि जदि णिच्छयदो जो सो मोहक्खय कुणदि ॥८९॥

स्वपरविभागसिद्धि—जो निश्चयनयसे भेदज्ञानका आश्रय कर स्वकीय ज्ञानभावमे तन्मय स्वयको और परकीय भावमे तन्मय पर चेतन व अचेतनको पृथक्-पृथक् रूपसे जानता है वह मोहके क्षयको अवश्य करता है। जो जैसा अवस्थित है उसे उस प्रकार ही समझना ज्ञानमार्ग है। मैं स्वकीय चैतन्यात्मक द्रव्यत्वमे तन्मय हू, और पर जो चेतन है, वे उन्ही परकीय चैतन्यात्मक द्रव्यत्वमे तन्मय है तथा जो पर अचेतन है, वे उन्ही अचेतन परकीय द्रव्यत्व मे तन्मय है। ऐसा अखड पूर्ण द्रव्यपर दृष्टि रखकर जो परिच्छेदन करता है—विभाग करता हुआ जानता है, वही भेदविज्ञानी है।

एकत्वविभक्त निज स्वरूपका समर्थन—मै रूप, रस, गध, स्पर्शरहित हू, किसी द्रव्य के चलने ठहरनेका निमित्तभूत नही हू, परिणमनका सहायक नही हू, अवगाहनका निमित्त नही हू तथा अन्य चेतनके गुण पर्यायोसे अत्यत पृथक् हूँ। अत मै निज सत्त्ववान द्रव्य हू, अनादिसे हू, मै किसीके द्वारा रचा गया नही हू, स्वत सिद्ध हू, पूर्ण हू, अखण्ड हू, मुझमे से

न कोई गुण या परिणतिका बाहर विहार है और न मुझमे अन्य किसी सजातीय अथवा विजातीय द्रव्यके गुण या परिणतियोका प्रवेश है। मै स्वत अनत शक्तियोका पुञ्ज हू, अनत शक्त्यात्मक हू, स्वतत्र हू, सर्वसे न्यारा हू। इसी प्रकार सर्व द्रव्य भी अन्य सर्वसे जुदे हैं।

निमित्तनैमित्तिक प्रसंगमे भी वस्तुस्वातन्त्र्य—जगतके सभी पदार्थ अपने आपमे स्वय की परिणतिमे परिणमते, एक पदार्थका दूसरे पदार्थपर असर नही होता। हाँ मात्र अन्य द्रव्य को निमित्तमात्र करके स्वयके असरको विकसित करके स्वय परिणमता है। जैसे दिखनेमे ऐसा लगता है कि सूर्य घट पट आदि अनेक पदार्थोको प्रकाशित करता है, किन्तु पहिले यह निर्णय तो कर लो कि सूर्य कितना बडा है? सूर्यका जितना विम्ब दिखता, उतना बडा सूर्य है या जितना जगत प्रकाशमान है, उतना बडा है? बिम्ब जितना सूर्य है, तो बिम्बसे बाहर सूर्यका असर नही, बाहर जो असर है वह सूर्यका नही, जहाँ जो पदार्थ है उस ही का है।

प्रश्न—प्रत्यक्ष तो दिखता है कि यह सब सूर्यका प्रकाश है? उत्तर—सूर्यको निमित्तमात्र पाकर ये घट, पट, काच वगैरा स्वयं अपनी अधकार अवस्थाको छोडकर प्रकाश-अवस्थाको प्राप्त हुए है। अन्यथा फिर इसका क्या कारण होगा कि घट तो सामान्यतया प्रकाशित है, और कांच जगमग रूपसे प्रकाशित है। यदि सब सूर्यका प्रकाश है तो वह सर्वत्र एकसा होना चाहिये।

प्रश्न—यह तो पदार्थकी योग्यनापर निर्भर है। कांच स्वय अति स्वच्छ है कि वहाँ सूर्यका प्रकाश महिमासे रह सकता है? उत्तर—बस यही तो हम कहते हैं कि पदार्थ योग्यता-पर पदार्थका प्रकाश अवलम्बित है, वहाँ सूर्य निमित्तमात्र है। दूसरी बात यह है कि जिस वस्तुका जो गुण है या पर्याय है वह उस वस्तुके प्रदेशोमे ही आधारित है, बाहर नही। सूर्य-विम्बमात्र है, उसका प्रकाश उस ही मे अवबद्ध है।

प्रश्न—तब सूर्यकी किरणें नजर आती है, तो क्या ये सूर्यकी किरणे नही है? आगम मे तो सूर्यकी सोलह हजार किरणें बताई है। उत्तर—जो ये दिखते है, वह सब प्रकाशमान स्कध है। आँखकी दृष्टिसे सूर्य तक ये पक्तियाँरूपमे नजर आती है। आगममे सूर्यकी किरणो का बताना सूर्यकी महिमासे तात्पर्य रखता है अर्थात् सूर्यमे १६ हजार पक्तियोके स्कधको प्रकाशमान करनेका निमित्तपना है। इस निमित्तदृष्टिसे यह बात सिद्ध है कि सूर्यकी सोलह हजार किरणें है। सूर्य सूर्यमे है, पटादि अपने स्वरूपमे हैं। यही बात मेरे विषयमे भी है। मैं जगतके पदार्थोको नही जानता हू, मात्र अपने स्वरूपको जानता हू, क्योकि ज्ञानगुण मेरा अभिन्न असाधारण गुण है, उसकी क्रिया व उस क्रियाका कर्म मैं ही हू। ज्ञानका कार्य जानना है, वह मेरे प्रदेशोसे बाहर नही हो सकता।

ज्ञान द्वारा निज ज्ञेयाकारका जानन—अब यहाँ यह विचारना है कि ज्ञान जानता है

है। तो जानता किसे है ? जो जाननेमे आवेगा वह कुछ न कुछ आकार रूप होगा, तो इसका यह समाधान है कि ज्ञान निज ज्ञेयाकारोको जानता है। ये ज्ञेयाकार ऊट-पटाग नही बन गये है, ज्ञेय द्रव्य जैसा है वैसे आकाररूप ज्ञानको ज्ञेयाकारोकी परिणति हुई। देखो ज्ञानकी कैसी महिमा है—इतना बडे विश्वका आकार देहमात्र असख्य प्रदेशोमे ऐसा समाया कि जाननेमे उतना ही बडा आ रहा है। यहाँ ये ज्ञेयाकार विश्वके किसी पदार्थसे नही आये, किन्तु पदार्थो को निमित्तमात्र पाकर ज्ञानसे ही निकले। ये ज्ञेयाकार ज्ञानमे पहलेसे भरे हुए नही थे, किन्तु ज्ञानमे वर्तमान मात्र पर्यायसे प्रकट हुए है। जैसे बाह्य समक्ष वस्तुवोको निमित्तमात्र पाकर दर्पणमे वैसा आकार होता है, यह आकार बाह्य वस्तुवोसे निकलकर नही आया, किन्तु बाह्य वस्तुवोको निमित्तमात्र पाकर दर्पणसे ही आकार निकला। यह आकार दर्पणमे पहिलेसे भरा नही था, किन्तु बाह्य समक्ष वस्तुवोको निमित्तमात्र पाकर दर्पणमे वर्तमान पर्याय मात्रसे प्रकट हुआ है। हाँ तो ज्ञानने जिनको निमित्तमात्र पाकर निज ज्ञेयाकारकी सृष्टि की, उन निमित्तभूत परद्रव्योको नही जाना। मात्र व्यवहारसे ऐसा कहा जाता है कि ज्ञानने घट पट आदिको जाना। इस व्यवहारका कारण यह है कि ज्ञानके विषयभूत ज्ञेयाकारोकी रचनामे निमित्तभूत या आश्रयभूत परद्रव्य है।

स्वकीय चैतन्यात्मकताका उपयोग—इस प्रकार इस जीवके ज्ञानके ज्ञेयाकारको जो चेतन अचेतन वस्तु आश्रयभूत होता है, उस पदार्थको अनादि मोहसे स्फारवश परिग्रह बना लेता है और सम्बध मानने लगता है। किन्तु मुझ स्वकीय चैतन्यात्मक द्रव्यसे सभी अन्य चैतन्यात्मक द्रव्य व अचेतन द्रव्य अत्यन्ताभाव वाले पदार्थ है। त्रिकालमे भी मेरा किसी पर-द्रव्यसे सम्बध नही है। इस प्रकार स्वकीय स्वकीय सत्ता की स्वतन्त्रताको देखकर जो निकट भव्य जीव वस्तुवोका स्वतत्र स्वतत्र रूप परिच्छेदन करता है वह ही भले प्रकार स्व और परके विवेकको प्राप्त करता है और समस्त मोहका क्षय करता है। स्वपरविवेक विना मोहका क्षय नही होता। मोहके क्षयके बिना आत्मशाति प्राप्त नही हो सकती। अत मै यह स्वपरविवेकके लिये पयत हू। यहाँ इस सकल्पका यह भाव है कि जिस स्वपरविवेकको प्राप्त किया है उसकी दृढताके लिये पूर्ण सावधान हू।

मोहक्षयके उपायोकी सिद्धिका उपसंहरण—अब मोहके क्षपण करनेके उपायोका वर्णन करके प्रधान उपाय जो स्वपरविवेक उसकी सिद्धि आगमसे होती है, अतः आगमके लिये प्रेरणा करते हुए आचार्यदेव उपसहार करते है—उपसहार तो वस्तुत उप कहिये समीप मे अपने आपसे, स कहिये भले प्रकारसे हरण करने, धारण करनेको कहते है। सो निश्चयत तो आचार्य इस स्वपरविवेक सिद्धिको अपने आपमे धारण कर रहे हैं, किन्तु परके निमित्त इस सिद्धिके उपायभूत आगमज्ञानके विधानको लक्ष्यमे रखकर पूर्वोक्त वर्णनका उपसहार करते है—

तम्हा जिणमग्गाहो गुणेहि आद परच दव्वेसु ।
अभिमच्छहु णिम्मोह इच्छदि जदि अप्पणो अप्पा ॥९०॥

स्वपरविभागसिद्धिसे निर्मोहता—स्वपर भेदविज्ञान ही मोहका क्षय होता है । इस कारणसे यदि निर्मोहभावको चाहते हो तो जिनमार्ग—जैनागमसे सर्व द्रव्योमे से गुणोके द्वारा अपनेको और परको यथावस्थित जानो । ये छहो द्रव्य एक ही स्थानपर अवस्थित है तथापि सत्त्व सर्वका पृथक्-पृथक् है । सहज शुद्ध चैतन्यस्वभाव वाले मुझका जगतके किसी भी चेतन अचेतन पदार्थसे नही है । प्रत्येक द्रव्यमे अनत गुण है, उनमे प्रधान गुण अन्ययोगव्यवच्छेदक है अर्थात् प्रधान गुणोके द्वारा अन्य द्रव्यसे प्रकृत द्रव्यका विभाग होता है । इस ही विभागसे यथार्थ ज्ञानी मोहको नष्ट करनेमे कुशल होते है । सर्व द्रव्योको परस्पर पृथक्-पृथक् जाननेका प्रयोजन यह है कि अपने आपके आत्माको सर्व द्रव्योसे पृथक् जानना और स्वयको ज्ञानमय अनुभव करना । यह मेरा अभिन्न चैतन्य स्वय सत् अहेतुक है, क्योकि है । जो वस्तु होती है, वह स्वत सिद्ध अहेतुक होती है । मैं वस्तुभूत हू, सो स्वत सिद्ध ही हू ।

पदार्थ और सृष्टिकी स्वत.सिद्धता—जिनके अभिप्रायमे आत्मा व अनात्मा या किसी की किसी सृष्टा द्वारा सृष्टि हुई है, वे पृष्टव्य है कि जो न था, ऐसे कोई अपूर्व पदार्थकी सृष्टि हुई है या पहिलेसे सद्भूत पदार्थकी अवस्थामात्र बदली जाती है । पहिले पक्षमे उपादान द्रव्य क्या है ? जगतमे उपादान बिना कुछ भी रचना नही देखी जाती है । यदि सूक्ष्म उपादानभूत वस्तुको स्वीकार करते हो तब सत्ता स्वय पहिले सिद्ध हो गई । यदि ईश्वरको उपादान स्वीकार करते हो तो सारी सृष्टिमे ईश्वरके चैतन्यादि गुण ही विकसित होने चाहिये और सब अनवच्छिन्न अखड होना चाहिये । यदि सद्भूत पदार्थकी अवस्थामात्रको सृष्टि कहते हो तब इष्ट ही है, फिर तो केवल निमित्तमे ही विवाद है । सो वैज्ञानिक शैलीसे इसका हल करना चाहिये ।

आत्मस्वरूप—हाँ तो मेरा चैतन्य ही मैं हू, जो चित्स्वरूप होनेके कारण अतरङ्ग व बहिरङ्गरूपसे प्रकाशक है अर्थात् स्वको और परको जानने वाला है, ऐसा अभिन्न चैतन्य मैं हू । सो मैं इस मेरे समान जाति वाले चित्स्वरूपी अन्य द्रव्योसे व असमानजातीय अन्य द्रव्यो को छोडकर मेरे आत्मामे ही यह वर्तमान है, उसके द्वारा मै अपने आपको ही जानता हू । मै समस्त कालमे रहने वाला ध्रुव हू, मैं उपादव्ययुक्त हू, मात्र ध्रुव कोई वस्तु नही है तथापि उत्पादव्यय वाले धर्म मुझमे सदा नही टिकते, और मैं केवल किसी पर्यायमात्र नही हू, अतः स्वभावकी दृष्टिसे देखनेपर मैं ध्रुव ही हूँ । इस ही प्रकार जैसे सर्व अन्य द्रव्योसे पृथक् मदीय चैतन्यगुणके द्वारा—जो कि सर्वद्रव्योसे पृथक् अपने स्वलक्षणसे मझमे कापकर रहता है— मैं

अपनेको आवान्तर सत्तावान निश्चित करता हू, उस ही प्रकार सब ही पदार्थ पृथक्-पृथक् वर्तमान अपने-अपने लक्षणो द्वारा जो अन्य-अन्य द्रव्योको छोडकर विवक्षित उस ही द्रव्यमे रहते है, त्रिकाल रहने वाले आकाश, धर्म, अधर्म, काल पुद्गल व जीवान्तर है, ऐसा मै निश्चय करता हू, पुद्गलका स्वलक्षण रूप, रस, गंध, स्पर्शवर्ती मूर्ति है । धर्मद्रव्यका स्वलक्षण जीव और पुद्गलकी गतिका निमित्तभूत अमूर्ति असाधारण द्रव्यत्व है । अधर्मद्रव्यका स्वलक्षण जीव और पुद्गलकी स्थितिका निमित्तभूत अमूर्तिक असाधारण द्रव्यत्व है । आकाशका अवगाहन-हेतुत्ववान असाधारण द्रव्यत्व, कालका परिणमन हेतुत्त्ववान असाधारण द्रव्यत्व है । इसलिये न तो मै पुद्गल हू, न धर्मद्रव्य हू, न अधर्मद्रव्य हू, न काल हू और न जीवान्तर हू । सर्व सत् परस्पर जुदे है । प्रत्येक द्रव्य अपने गुणोमे ही तन्मय हैं ।

द्रव्योमे परस्पर पार्थक्यव्यवस्था—जैसे अग्निका सयोग पाकर पात्रस्थ जल गर्म हो जाता है ऐसा निमित्तनैमित्तिक सम्बध है, तो भी अग्नि परिणतिसे जलने गर्म अवस्था धारण नही की, किन्तु जलनेकी शीत पर्यायका तिरोभाव करके उष्णपर्याय पकट की । गुरु शिष्यको पढाता है, वहाँ जो शिष्य ज्ञानवान बना वह गुरुके ज्ञानकी परिणतिसे नही बना, किन्तु शिष्य स्वयकी ज्ञानपरिणतिसे ज्ञानी हुआ । एक द्रव्यसे दूसरा द्रव्य पृथक् है, इसका मूल कारण या लक्षण-चिह्न यही है, जो एककी परिणतिसे दूसरा नही परिणमता । जैसे एक कमरे मे १०-१५ दीपकोका प्रकाश है, वहाँ प्रत्येक दीपकका प्रकाश अलग-अलग स्वरूप रख रहा है, वहाँसे यदि ७-८ दीपक उठा लिये जावें, तो उतने प्रकाशकी कमी हो जाती है । इससे यह प्रतीत हे कि वहाँ १५ दीपकोका प्रकाश भिन्न-भिन्न है । इसी तरह लोकाकाशके किसी भी एक स्थानपर छहो द्रव्य है, और जीव पुद्गल तो उनमे अनन्तानत है, फिर भी वे सब पृथक्-पृथक् ही है, अपने-अपने स्वरूपसे कोई च्युत नही है । यहाँ दीपक प्रकाशका दृष्टान्त लौकिक जनोकी अपेक्षा दिया गया है । वास्तवमे तो दीपकका प्रकाश दीपकसे बाहर नही है, दीपक जितना ही दीपकका प्रकाश है । दीपक उतना कहलाता है जितना कि लौ है । उस दीपकको निमित्त पाकर जो स्कध प्रकाशमान है, उसके निमित्तनैमित्तिक सम्बधके कारण दीपकके प्रकाशका उपचार किया जाता है । वहाँ यह अर्थ लगा लेना कि जैसे दीपककी परिणतिमे स्कध प्रकाशमान नही है दीपकको निमित्त पाकर स्कधकी परिणतिसे ही स्कंध प्रकाशमान है, उसी तरह एक द्रव्यकी परिणतिसे दूसरे द्रव्यकी कोई परिणति नही होती । स्कधोमे भी सभी स्कध कमरेमे एक स्थानपर होते हुए भी किसीकी परिणतिसे कोई नही परिणमते, सब अपनी अपनी परिणतिसे परिणमते है । एक स्कधमे भी और-और दीपकोका निमित्त पाकर प्रकाशकी श्रेणीमे अधिकता होती जाती है वहाँ उन श्रेणियोके निमित्त पृथक्-पृथक् है, उनको निमित्त

मात्र पाकर प्रकाशके अविभाग प्रतिच्छेद भी जुदे-जुदे है, किसीमे किसीका प्रवेश नही है। इन सब पृथक्त्वव्यवस्थानोके दृष्टान्तसे द्रव्यमे भी पृथक्त्वव्यवस्था सुघटित समझ लेनी चाहिये।

सर्व द्रव्योके स्थानमे मिलकर अवस्थित होनेपर भी मेरा चैतन्य मेरे स्वरूपसे अप्रच्युत ही है, यह स्वरूपसत्ता मुझे पृथक् ही बतलाती है। इस तरह सर्व द्रव्य पृथक्-पृथक् है, अपनी-अपनी स्वरूपसत्ता लिये हुए है। स्वपरविवेकको निश्चित कर लेने वाले आत्माके विकारकारी जो मोहाकुर उसकी उत्पत्ति नही होती है। अत हे आत्मन्! करने योग्य कार्य यह ही है कि दु खके कारणभूत मोहभावका अभाव करनेके अर्थ स्वपरविवेक करो और इस भेदविज्ञानको दृढ बनावो।

यथार्थ श्रद्धानके बिना धर्मके अलाभका कथन—अब जिनोदित अर्थके श्रद्धान् बिना धर्मलाभ नही होता, इस बातका प्रतर्क करते है प्रकृष्ट तर्क करके दृढ भाव बनाते हैं। जगतमे सर्व अर्थ जैसे अवस्थित है वैसे ही जिनेन्द्रदेव द्वारा प्रणीत हैं। अनत तीर्थकरोंने अर्थके स्वरूप की व्यवस्था ऐसी स्वतत्र सुनिश्चित बताई है। जैसे पदार्थोंका स्वरूप नही बदलता वैसे ही जिनेन्द्रोपदेश भी अनादि परम्परासे सत्य ही चला रहा है, वह भी नही बदलता। पदार्थ जैसे हे उस प्रकारके श्रद्धानके बिना धर्मलाभ नही होता है। धर्म नाम आत्मस्वभावका है उसकी प्राप्ति परपदार्थ व विभावमे आत्मीयता हटने से होती है, यह भेदविज्ञानसे ही शक्य है। भेदविज्ञानके लिये जो पदार्थ जैसे है वैसे ही श्रद्धानकी आवश्यकता है। सर्वपदार्थ अपनेमे अखड सत्ता लिये हुए हैं, द्रव्यकी पर्याय उस ही द्रव्यसे उठती है इस प्रकार सर्व द्रव्य स्वरूपमे ही अत्यन्त स्वतन्त्र है, इस श्रद्धामे परपदार्थकी उन्मुखता नही रहती है। वहाँ धर्म आत्मस्व-भावपर दृष्टि होती है, वही धर्मलाभ है। इस ही बातको आचार्यदेव कहते है—

सत्तासवद्धेदे सविसेसे जो हि रोव सामण्णे।
सद्दहदि ण सो सवणो तत्तो धम्मो ण सभवदि ॥९१॥

सत् श्रद्धा बिना धर्मकी असंभवता—सत्ताकरि सबद्ध विशेष स्वरूपकरि सहित इन द्रव्योकी जो नही श्रद्धान करता है वह द्रव्यसे मुनिपदमे हो तो भी वह श्रमण नही है उस श्रमणसे धर्म उत्पन्न नही होता। सन्मात्रकी अपेक्षा किसी पदार्थसे किसी पदार्थकी विसदशता नही है। सभी सत् हैं है मे क्या भेद? इसलिये सदृश अस्तित्व करिके सहित होनेसे सब द्रव्य सामान्यभावको प्राप्त हो रहे हैं, फिर भी स्वरूपास्तित्व सबका जुदा है, ऐसे ही भिन्न स्वरूप को स्वत लिये हुए पदार्थ अनादिसे है, अतः सर्वसविशेष है, परस्पर अत्यन्ताभावको लिये हैं, मैं सर्वसे न्यारा स्वरूपी हू, सर्व मुझसे अत्यन्त न्यारे स्वरूपी है—इस प्रकारसे जो भेद श्रद्धान नही करता ऐसा विवेक नही करता वह अपने श्रामण्य वेशसे अपने आपको धोखेमे रखता है,

ठगता है, वह श्रमण नही है । यहाँ श्रमणका प्रकरण है, प्रसंग है । वस्तुकी सत्य श्रद्धा बिना कुछ धर्मका बाह्य कार्य किया जावे, उससे तो वह आत्मा अपने आपको ठगता है, क्योकि मान्यतामे यह बैठा कि मैं धर्मात्मा हू और वहाँ धर्म सभव नही है । सो यह बडी असावधानी है । इससे तो अविरत सम्यग्दृष्टिकी सावधानी देखो, वह अव्रत अवस्थामे रहता हुआ अपनी स्थितिसे घृणा रखता है, अपनी किसी परिणतिको ध्रुव आत्मा नही समझता ।

धर्मोपलम्भका उपाय—मै आत्मा अनादि अनत अहेतुक ध्रुव एक ज्ञानस्वभावी हू इस प्रकार भावनापूर्वक आत्मस्वभावका अवलम्बन लेकर अपनी प्रतीति करे । क्षणिक परिणतियोको तो जब तक स्मरण है श्रमण अज्ञान श्रेणियोमे टालता रहता है और यही प्रधान कारण है कि उसकी स्वरूपदृष्टि बहुत बहुत बनी रहती है । इसलिये धर्मलाभ उपाय भेदविज्ञान है और भेदविज्ञानका उपाय जैसे जैसे द्रव्य अपने-अपने विशेप स्वरूपको लिये हुए है स्वचतुष्टयसे सत् परचतुष्टयसे असत् वैसा श्रद्धान् करना है । इसके बिना धर्मलाभ नही होता । जैसे जिस न्यारियेको सोनेके कण और रजके कणोका विशेषस्वरूपका विज्ञान नही है वह शोधक कैसे शोधक कहला सकता है—रेणुसे भिन्न सुवर्ण कणको कैसे ग्रहण कर सकता है ? नही कर सकता है । इसी प्रकार निजस्वभावको और पर व परभावको जो नही जानता है वह परके उपयोगको छोडकर आत्मस्वभावका उपयोग कैसे कर सकता है ? नही कर सकता । रागद्वेष विभावोसे रहित ज्ञायकस्वभावमय आत्मतत्त्वकी उपयोग द्वारा उपलब्धि होना धर्मोपलब्धि है, उसका वह पात्र नही है, जिसे वस्तुस्वरूपका यथार्थ श्रद्धान् नही है, धर्म जहाँसे प्रकट होता है उसे जाने बिना धर्म कैसे प्रकट होगा ?

सहज स्वभावके अवलम्बनमे धर्मलाभ—धर्म बाह्य पदार्थकी देन नही है, मेरा धर्म किसी बाह्य वस्तुमे है ही नही, तब वहाँसे कैसे प्रकट होगा ? प्रत्युत बाह्य किसी वस्तुसे धर्म होता है, इस दृष्टिमे बाह्य परपदार्थको विषय किया । जिससे निमित्तदृष्टिके कारण विभाव ही बढा, वहाँ धर्मकी उत्पत्ति नही हुई । निमित्तदृष्टिमे धर्मका विकास सभव ही नही है । अखड पूर्ण विशुद्ध ज्ञानस्वभावमय निज आत्माका अभेदस्वभावसे अनुभव किये बिना बाह्यका प्रसङ्ग कैसे छूटे ? बाह्यसङ्ग अनादिसे रहनेके कारण अभ्यस्त बन गया है । उसकी मुक्ति स्वभावदृष्टि बिना नही होगी । इसलिये जो पदार्थ जैसे अपने-अपने विशेष स्वभाव वाला है, उसे वैसा ही श्रद्धान करो, इससे भेदविज्ञान होगा । भेदविज्ञानके अनतर अहितका परिहार हितका उपाय होगा, उससे धर्मका विकास होगा । जीवको धर्म ही शरण है, विकल्पोकी बहुलतासे आत्माके किसी हितकी सिद्धि नही, जगतके समागमसे किसी हितकी सिद्धि नही । हित स्वभावदृष्टिमे है, क्योकि इससे ही निराकुल परिणतिका विकास होता है । आत्माका स्वभाव ज्ञान और

आनदमय है। जगतके जीवोकी इन दो की ही वाछा है— ज्ञान और आनद। सो ये तो आत्मा के स्वभाव ही हैं, परन्तु ऐसा न समझ पाया। इसलिये परदृष्टि कर मलीन बनते हुए ससारमे रुलना पडा है। एकसौ साढे सित्यानवे करोड कुल वाले शरीरोमे भ्रमा है। इन सब भवोमे एक मनुष्यभव आर्य कुल सर्वयोग्यता कठिन है, सो भी कभी पाया तो आहारादि सज्ञावोकी आसक्तिमे काल खो दिया।

अधिकारके सम्हालकी उपयुक्तता—हे आत्मन्! इस समय तुम जिस स्थितिमे हो, वह आगे कल्याणके लिये मार्ग बना लेनेके लिये वडा उपयुक्त है। अत सव ममत्व अज्ञानको छोडकर अपने आपको एक अभेदस्वभावसे अनुभव करो, यहाँ धर्म अपनी उत्पत्तिको अनुभवने लगेगा। यही भाव परमसुखमय होगा। यहाँ यह प्रथम अधिकार पूर्ण होने वाला है एव द्वितीय ज्ञेयाधिकार लगने वाला है, इन दोनो अधिकारोका सम्बध यह प्रसग बना रहा है। ज्ञानके लिये ज्ञेयज्ञानकी आवश्यकता है। सो ज्ञानका निरूपण करनेके बाद ज्ञेयतत्त्वका निरूपण आवश्यक हो गया है। यह गाथा ज्ञानाधिकारकी उपान्त्य गाथा है इस गाथाके बाद अभेदस्वभावी धर्मकी भावना करनेके लिये एक गाथा कही जायगी। जिस गाथाके बिना ज्ञानाधिकारकी समाप्ति उद्देश्यप्रदर्शनके कमी बता देने वाली होती है।

आदिमंगलभावनाका स्मरण—अब अतिम मगलभावनासे पहिले इस ज्ञानाधिकारमे किस क्रमसे क्या वर्णन किया गया, यह अतिसक्षेपसे बताते है। सर्वसे पहिले नमस्कार विधि को करके प्रतिज्ञा बतलाई है, जो प्रतिज्ञा की गई है—"उपसयामि सम्म जत्तो णिव्वाण सपत्तो" मै समताभावको प्राप्त होता हू, जिससे निर्वाणकी प्राप्ति होती है। यहा दृढसकल्प ही प्रतिज्ञा है। समताभाव बिना निर्वाणका मार्ग नही है। रागद्वेष विभावसे दूर रहनेके लिये जितने धर्मकार्य किये जाते है, वे समताभावके लिये है। यहाँ समतासे परिपूर्ण अरहत सिद्ध भगवानको नमस्कार किया गया है, इससे समताका उद्देश्य करने वालेका है, यही स्पष्ट रहना चाहिये। इसी समताभावको पूर्ण पानेका यत्न आचार्य, उपाध्याय, साधु करते हैं। उनका स्मरण भी समताभावके उद्देश्यका द्योतक है।

धर्मपरिणत आत्माकी धर्मरूपता—एक द्रव्य दूसरे द्रव्यका कुछ भी नही करता, इस श्रद्धा वाले रागवश किसी ध्यानमे आते है तो वीतराग आत्माके ध्यानमे, और इसी कारण उनका समतासे अतिरिक्त अन्य उद्देश्य नहीं होता। इस प्रकार प्रथम समताका सकल्प किया, फिर वह समता क्या वस्तु है? इसका निर्णय किया, क्योकि जिसे पाता है, और जिसकी दृष्टि बिना पाना होता नही, उसे जाने बिना कोई सिद्धि नही है। अत समतापरिणामको धर्म रूपमे निश्चय किया "चारित्त खलु धम्मो धम्मो जो सो समोत्ति णिद्दिट्ठो" चारित्र धर्म समता

ये एकार्थक है । अपने ज्ञानस्वरूपसे अवस्थित रहना चारित्र है, धर्म है, समता है । इस प्रकार समतापरिणामको धर्म निश्चित करके फिर यह निश्चय करो कि धर्म अर्थात् आत्मस्वभाव आत्मासे जुदा नही है, और धर्मभावपर किया उपयोग भी उस कालमे जुदा नही है । अतः "परिणमदि जेण दव्व तत्काल तम्मयत्ति पिण्णत्त । तम्हा धम्मपरिणदो आदा धम्मो मुणे-यव्वो" इस विधिके अनुसार आत्माके ही धर्मपना निश्चित किया है ।

शुद्धोपयोगसे परमधर्मलाभका वर्णन——परन्तु धर्मभावकी दृष्टि आ जानेपर भी कभी ऐसा होता है कि शुभोपयोगकी परिणति भी हो जाती है तब यह शुभोपयोग वस्तुत शिवमार्ग का घातक ही है । क्योकि शुभोपयोग भी अशुद्धोपयोग है तब अशुद्धोपयोग जैसे आत्मसिद्धिका विरोधी है वैसे ही शुभोपयोग भी आत्मसिद्धिका विरोधी है । अत धर्मभावसे परिणत आत्मा यदि शुद्धोपयोगकरि युक्त है तो निर्वाणसुखको प्राप्त करता है । इस प्रसगको लेकर शुद्धोप-योग व शुद्धोपयोगसे परिणत आत्माके स्वरूपका वर्णन किया और समस्त अशुद्धोपयोग व उसके फल पुण्य पाप व सुख दु खको सबको समान निश्चित कर दूर कराया तथा इन्द्रियज ज्ञान सुखको हेय विस्तृत किया । पुन शुद्धोपयोगके विशेप स्वरूपको बताकर उसके फलस्वरूप सहज ज्ञान और आनदका उद्योतन करके अर्थात् अपने आपमे प्रकट हुए सहज ज्ञान आनदकी तरगोका स्पर्श करके आचार्य श्री कु दकु द देवने ज्ञान और आनदके स्वरूपका विस्तारसे वर्णन किया । इस तरह ज्ञानाधिकारमे आचार्यदेवने अपने अविनाभावी सहज सुखको साथ लेकर ज्ञानके स्वरूपका स्पष्ट वर्णन किया । इस ही ज्ञानस्वभावकी दृष्टिमे सर्वहित निहित है, अत. यह परमार्थ ज्ञानाधिकार हम सबको शिवस्वरूप होओ ।

धर्मस्वरूपताका अवधारण——अब यह पूर्ण धारणा करते है कि मै ही साक्षात् धर्म-स्वरूप हू, धर्ममूर्ति हू । इसीको प्रक्रियापूर्वक वर्णन करेंगे । ससारी जीवने जो अब तक दुःख उठाया उसका मूलभाव केवल परस्पृहा है——परकी आशा वाञ्छा·तृष्णा है । धन आहारादि भिन्न सत्ता वाले अचेतन पदार्थ, पुत्र मित्रादि बधनबद्ध चेतन पदार्थ और शरीर अचेतन पदार्थ–ये तो प्रकट पर है, इनमे व्यर्थ वाञ्छाका फल ससारपरिभ्रमण है । इनसे हटकर अब निज आत्मप्रदेशोमे देखो क्या-क्या पर नाच रहा है ? मै एक ध्रुव ज्ञानस्वाभावी द्रव्य हू, जो अध्रुव है वह मै नही, रागादि परिणाम औपाधिक है और अध्रुव है, अतः परक्षायोपशमिक ज्ञानादि कर्म क्षयोपशमाधीन है, अतः अध्रुव है वह भी पर है । केवलज्ञान भी क्षणिक परिणति है, अत. इन सबसे उपयोग हटाकर एक निज ध्रुव ज्ञानस्वभावी शुद्ध द्रव्यमे उपयोग करना चाहिये । इस ही शुद्धोपयोगके प्रसादसे परपदार्थकी निःस्पृहता प्रकट होती है । इस प्रकार अब किस किस ही प्रकारसे अर्थात् बडे पुरुपार्थसे जिस प्रकार बने उस ही उपलम्भके यत्नसे

शुद्धोपयोगका अवलोकन किया, जिसके प्रसादसे परनिःस्पृहताकी साधना हुई, सो परनिःस्पृहता पाकर आत्मामे ही वृद्धिगत व स्थित जो पारमेश्वरी प्रवृत्ति है ज्ञाताद्रष्टारूप स्थिति है उसे प्राप्त करता हुआ, कृतकृत्यताको प्राप्त करके बिल्कुल अनाकुल होता हुआ अपनेमे ही अभिन्न होने पर भी विकल्पजालवश उठते हुए भेदने उनकी वासनाको नष्ट किया, मेरे अब यही व्यवस्थित है। जो धर्मस्वरूप है वह ही साक्षात् मैं हू। क्योकि मैं धर्म अर्थात् स्वभावसे अतिरिक्त कुछ भी नही हू, इस ही बातको ध्वनित करते है--

जो णिहुदमोह दिट्ठी आगमकुसलो विराग चरियम्मि।
अब्भुट्ठिदो महप्पा धम्मोत्ति विसेसिदो समणो ॥९२॥

निर्मोह ज्ञानीकी धर्मरूपता—जिसने प्रथम शुद्ध आत्मदेवकी प्रतीति गुणकी भक्ति करके उनसे प्राप्त किये वचनो द्वारा वस्तुस्वरूपका निर्णय किया और सात तत्त्वोके श्रद्धानरूप व्यवहार सम्यक्त्वके अभेदग्राही उपयोगसे निजशुद्धात्माकी रुचिरूप निश्चयोन्मुखतया सम्यक्त्व परिणामसे परिणति पाई, वह नियमसे दर्शन मोहको विनष्ट करता है, सो नष्ट कर दिया है, दर्शनमोहको जिसने ऐसा अतरात्मा आगमकुशल होता है। वीतराग सर्वज्ञ द्वारा प्रणीत आगम का जिसे अभ्यास है और निज शुद्धात्माकी रुचि है, वह उपाधिरहित सहज ज्ञानके स्वसवेदन मे कुशल ही है, अत वस्तुत सम्यग्दृष्टि ही आगमकुशल हो पाता है। ऐसा सम्यग्दृष्टि, सम्यग्ज्ञानी व्रत समिति आदि बहिरङ्ग चारित्रमे रहकर निज शुद्ध आत्मामे निश्चित परिणति करता है। सो इस प्रकार वीतराग चारित्रमे भले प्रकार उद्यमी हुआ महात्मा स्वय धर्म है, ऐसा अधर्मरूप ससारको पार करने वालोने दिखाया है।

स्वभावदृष्टिमे धर्मविकास—अहो! यह आत्मा स्वय धर्मरूप है। आहा!! यह तो मेरा मनोरथ ही अतरङ्ग भाव ही है। यह धर्म नया कहीसे पैदा नही करना है, क्योकि मेरा धर्म कही बाहर नही है। वह यही अन्तरमे है, किन्तु उसका घात करने वाली यदि कुछ है तो वह बाह्य पदार्थमे मोह करनेकी दृष्टि मात्र ही है। सो वह कुदृष्टि आत्मज्ञान द्वारा दूर हुई, नष्ट हुई। यह आत्मज्ञान पूर्ण आस्तिक्यसे भरा हुआ है, क्योकि जिनेन्द्रदेव द्वारा प्रणीत आगम के विधिपूर्वक अभ्याससे इस आत्मज्ञानकी पुष्टि भी हुई है। इस तरह आत्मज्ञान द्वारा यह मोहदृष्टि नष्ट हुई और अब आगे यह कुदृष्टि कभी भी नही हो सकेगी। कोईसा भी बाह्य अर्थ मुझमे त्रिकाल भी प्रवेश नही पा सकता। वस्तुकी स्वतः ही ऐसी व्यवस्था है तब मोह एक कल्पनामात्र ही है। परवस्तु कोई भी अपनी नही हो सकती। तब व्यर्थके ही कुभावसे स्वभाव रूप महाधन दबा हुआ है, और आत्मन् पवित्र ज्ञानानदमय होकर भी मूढता कर रहा है, नरजन्म खो रहा है। अपने धर्मभावको पहिचान। यह धर्म—ज्ञानस्वभाव अनादिसे तुझमे ही

प्रकाशमान है, इसपर दृष्टि देते ही सारा मोह अज्ञान भाग जाता है। अहो ! यह मै आत्मा स्वय धर्मरूप हू, सो अब मै इसके उपयोग द्वारा जीवन पाता हुआ स्वय धर्मरूप होकर समस्त विघ्नबाधावोसे रहित सदा ही ऐसे धर्मभावमय ज्ञाताद्रष्टारूप निष्कंप ठहरा रहू। ज्यादा विस्तारसे क्या ? करनेसे ही काम सरेगा, अत दृढतासे ज्ञाताद्रष्टाकी स्थितिस्वरूप धर्ममय रहू।

आत्मलाभका स्वस्तिवाद—यह धर्मका पुण्य दर्शन जैनेन्द्र परमागमकी सेवासे हुआ है। सो इस जैनेन्द्र-भागवत-परमागम शब्दब्रह्मको मेरा नमस्कार हो, भक्तिभाव सहित मेरा सर्व समर्पण हो और आगमसेवामूलक हुए आत्मतत्त्वोपलम्भके लिये स्वस्ति हो, जिसके प्रसाद से अनादिकालसे बद्ध मोहभाव जो मेरे सर्वसकटोका मूल था, वह शीघ्र नष्ट हो गया। मोह-भावके विनाश होनेपर सहज ज्ञान निरुपाधि शुद्धात्म सवेदनसे अतिरिक्त कोई वैभव नही है, अन्य सब क्लेश ही क्लेश है। वह द्रव्य धन्य है, वह प्रदेश धन्य है, वह परिणति धन्य है, वह भाव धन्य है जहाँ मोहका अभाव हुआ। परपदार्थोमे सम्बन्ध मानने, कुछ परिणति करनेकी वृद्धिसे ही बडे सकट हुए, मेरे ही मात्र भ्रमसे मैने विपदावोका पहाड ढोया।

आत्माका स्वतंत्र और सत्य स्वरूप—सुखका यह उपाय तो बडा सरल है, स्वतत्र है, सत्य है, इसके पता बिना ही सारी भ्रमणा हुई। अब पता पाया कि सर्व पदार्थ भिन्न है, कोई किसीकी परिणति नही करता, मै मिथ्यात्ववश पहिले परका करने वाला हू, इस मान्यता मात्रको ही करता रहा, परका तो मै कुछ कर भी न सकता था। मैं परमे कुछ कर ही नही रहा, न कर सकूगा और न मेरे परमे करनेको ही कुछ है। मैने धर्मभावके दर्शन किये। इसकी हठभावनाके प्रसादसे शुद्धोपयोग उदय हुआ। अहो ! अहा ! यह तो शुद्धोपयोग स्वय वीतराग चारित्रात्मक है। मैं तो बडा ही सुलझा हुआ निकला। अन्य कोई खटपट ही मेरे करनेको नही है। मेरा ज्ञानस्वभाव स्वय रागादिके परिहार स्वभावको लिये हुए है, इस ज्ञान-स्वभावको दृढतासे उपयोगमे स्थिर करे रहना ही काम रह गया है, यही स्थिति वीतराग चारित्रकी है। इस वीतरागचारित्रात्मक शुद्धोपयोगके लिये स्वस्ति हो, जिसके प्रसादसे यह मैं आत्मा स्वय धर्मस्वरूप हो गया।

स्वात्मोपलब्धिका कार्यक्रम—इस प्रकार प्रथम साधारण परिचय द्वारा ही देव शास्त्र गुरुका परिचय पाकर इनकी आराधनासे वस्तुके स्वरूपको समझें, उसको विशेष जाननेके लिये आगमका अभ्यास करें। आगमाभ्यासके फलमे निरुपाधि अनादि अनत ज्ञायकस्वभावकी आरा-धना करें, जिसके फलस्वरूप स्वत रागादिके उपयोगकी परिणति दूर होकर विशुद्ध चैतन्य-स्वभावका उपयोग होगा, उससे विशुद्ध चैतन्यका अनुभवन होगा। चैतन्यानुभवके द्वारा सम्य-ग्दर्शनके परिणामको पाता हुआ अतरात्मा दर्शनमोहका अभाव कर देता है, जिससे धर्मभाव का साक्षात् मिलन होता रहता है। इस तरह शुद्धोपयोगको प्राप्त करके यह आत्मा स्वय धर्म

रूप होता है। सो इस उपयोगको ज्ञेयस्वरूप ज्ञानतत्त्वमे विलीन करके आत्मा सहज शोभायमान सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्रकी एकता स्वरूप महालक्ष्मीको प्राप्त करेगा ही। मुक्त अवस्थामे निरुपराग शुद्धात्माके अनुभवरूप धर्मकी यह पूर्ण स्थिति सदृश परिणममान होते हुए भी सतत बनी रहेगी। सर्वोच्च आनन्द व ज्ञान तथा साथ ही परद्रव्यसे अत्यन्त निर्लेप अवस्थान यहाँ ही है। मुमुक्षुवोके मोक्षमार्गका अत यहाँ ही है अर्थात् उस स्वमार्गसे चलते-चलते अतमे जिस मजिलपर पहुचता है, जिसके बाद पूर्ण कृतकृत्यता है, कुछ भी करनेको नही रहा, वह परिणमन यहा ही है। हे शुद्ध चैतन्य देव! जयवत होओ। हे निज शुद्ध चैतन्य देव! इस ही शुद्ध परिणमनसे परिणमकर स्वभाव व पर्यायमे अनुरूपता करो।

अध्यात्मयोगी सिद्धान्तन्यायसाहित्य शास्त्री, न्यायतीर्थ
पूज्य श्री गुरुवर्य्य मनोहर जी वर्णी
"श्रीमत्सहजानन्द महाराज" द्वारा
जयपुर नगरमे सन् १९५३ ई० के वर्षायोगमे किये हुये प्रवचनो द्वारा
"प्रवचनसार प्रवचन तृतीय भाग" का सन् १९७४ ई० मे यह द्वितीय सशोधित सस्करण
सम्पन्न हुआ।

॥ प्रवचनसार प्रवचन तृतीय भाग समाप्त ॥
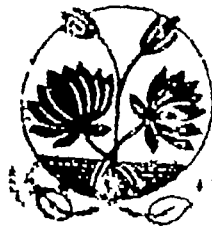
प्रवचनसार प्रवचन चतुर्थ भाग

प्रवक्ता—अध्यात्मयोगी सिद्धान्तन्यायसाहित्य शास्त्री, न्यायतीर्थ
पूज्य श्री गुरुवर्य्य मनोहर जी वर्णी

धर्ममार्गकी प्रमुख विशेषता—धर्ममार्गकी यदि कोई विशेषता है तो वह वस्तुस्वरूप की है। एक वस्तु ले लो और उसका वर्णन करते चले जाओ। एक वस्तु कितनी है? इतनी कि जिसका दूसरा हिस्सा न हो सके। जिसके हिस्से हो जाये, समझो वह वस्तु एक नही थी, वह अनेक थी एक पिण्डमे। पुद्गलमे मूर्तत्व कारण है जिससे स्कध बन जाता। साधारणतया जिसमे स्पर्श, रूप, रस, गध हो, वह पुद्गल है तथा वही मूर्तत्व है, इससे रहित मूर्तत्व नही है। मूर्तत्वकी यह व्याख्या है जो सम्बधित होकर इकट्ठे होवें। मूर्तत्व—जिसके कारण वस्तु मिल जाय, एक स्कध हो जाय याने मूर्तरूप धारण कर ले उसे कहते है। परमाणु अन्य स्वरूपमे न कभी मिलेगा और न बिछुडेगा, यह वास्तविकता तो स्कधमे रहते हुए भी चल रही है। परमाणु एक द्रव्य है, उसमे शक्तियाँ है, वह खत्म नही होती। द्रव्य, गुण, पर्याय उसमे तीनो तत्त्व पाये जाते है। वह द्रव्य क्या नष्ट हो जाता है, क्या नया उत्पन्न होता है? यह दोनो विशेषताये नही होती, फिर भी पर्याय बदलती रहती है अर्थात् पुद्गलमे बनना, बिगडना और बना रहना पाये जाते है। ऐसी कोई वस्तु नही है जो बनती और बिगडती तो नही हो, पर बनी रहती हो। ऐसा भी कुछ नही है, जो बिगडती तो हो नही और बनती व बनी रहती हो। ऐसा भी कुछ नही है कि जो बनी रहती तो हो नही और बनती बिगडती हो। बनना, बिगडना बना रहना—ये तीनोकी त्रितयात्मकता वस्तुका स्वरूप है। जैसी शक्ति वाला है वह वैसा बनेगा। आत्मामे दर्शन, ज्ञान, चारित्र गुण है, उनमे भी नये भाव पैदा होना पुराने भाव विलीन होना पाये जाते है।

भारतीय राष्ट्रध्वजका संकेत—साहित्यमे बनने वाले पदार्थका वर्णन हरे रगसे होता है और बिगडने वालेका लाल रगसे किया जाता है। स्थिरताका वर्णन सफेद रगसे होता है।

इसी तरह राष्ट्रीय तिरंगे झंडेमें भी यही बात ध्वनित होती है। वनतिका सूचक हरा रङ्ग प्रतीत होता है और अवनति या व्ययका सूचक लाल केसरिया रङ्ग। मध्यावस्थाका प्रतीक सफेद रङ्ग है। जिसपर हरा एवं केसरिया रङ्ग समय-समयपर अपना प्रभाव डालता रहता है। सफेद रंग बना रहना, लाल रङ्ग बिगड़ना तथा हरा रङ्ग बनना हुआ। अवस्थायें प्रत्येक पदार्थमें घटती है, इसके बिना गति नहीं है। स्वयके बारेमें अच्छापन बन सकता है, बुरापन बिगड़ सकता है तथा मध्यकी अवस्था तो चल ही रही है। इस प्रतीतिमें ही तो उठना होगा। इस तरह जैनदर्शनमें बड़ा ही हृदयग्राही ठोस स्याद्वादका रोचक और सत्य वर्णन है। राष्ट्रीय झंडेमें चौबीस आरे भी सफेद रङ्गके मध्यमें होते है। जो चौबीस तीर्थङ्कर इस युगमें मोक्ष गये इसके संकेतका सूचक है। श्रद्धा ज्ञान चारित्र मिलकर मोक्षके मार्ग प्रदाता है। उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य यह प्रत्येक पदार्थमें है। इनसे रहित होना अग्निको शीतल कहनेके समान है तथा उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यको छोड़कर कोई भी जायेंगे कहाँ, किन्तु किन्हींने सिद्धान्त इसका नहीं माना। वस्तुस्वरूपका यथार्थ वर्णन करना जैनदर्शनकी सबसे बड़ी विशेषता है। आत्माका वर्णन भी जैनदर्शनमें द्रव्य, गुण, पर्यायको लेकर है। दर्शन, ज्ञान, चारित्रकी भी इसीसे विशेषता है। वस्तुस्वरूपको निकालनेपर जैनधर्ममें विशेष रहेगा भी क्या? इसीसे जैनधर्मका विशद महत्त्व है। उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यका मनन सही-सही हो तो तत्त्वज्ञान विकसित होता है। कहा है 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' गम् धातु सकर्मक मानी गई। मुझे अंधकारसे निकालकर ज्योतिमें ले जाओ। अंधकारका बिगड़ना हुआ और प्रकाशका (ज्योति) बनना हुआ तथा मेरी जो उस समय सत्ता है वह अनादिसे ही है, वह मध्य अवस्था हुई। जीवनकी शिक्षा किस स्थानपर नहीं लिखी है, पत्थरोंमें हमें वह मिल जायगी, खाइयोंमें वह हमें उपलब्ध हो जावेगी, वृक्षोंसे हम सीख सकते है। किस तत्त्वसे किस वस्तुसे शिक्षा लेकर जीवनको सुवासित नहीं कर सकते? करने वालोंकी कमी है। राष्ट्रीय झंडा हमें शान्ति पथका प्रदर्शन कर रहा है। जीवनके सारभूत तत्त्वको देखो, विप्लव एवं कलहमें सुख नहीं मिलनेका। भोगसामग्री पग-पगपर चलकर कर्तव्य सूचित कर सकती है, किन्तु सोचें कि आज तक हमारा इसने स्थायी एवं लौकिक व पारलौकिक हित नहीं किया, तब हम क्या हाथ मलकर इसके ही पीछे पड़े रहे? शांतिका प्रतीक स्वयका जीवन है, उसको खोजनेके लिये अन्य पदार्थ नहीं चाहियें, केवल विवेकरूपी लगामको सम्हालना है।

ज्ञेयतत्त्वप्रज्ञापन—इस ही वस्तुस्वरूपका मुख्यरूपसे वर्णन प्रवचनसारके द्वितीय महाधिकारमें किया गया है। पहिले महाधिकारमें ज्ञान व आनन्दके स्वरूपका विस्तृत वर्णन है। ज्ञान व आनन्दकी प्राप्तिके उपायभूत ज्ञेयज्ञानको स्पष्ट करनेके लिये श्री कुन्दकुन्द प्रभु करुणा कर रहे है—अर्थ शब्द किसी वर्णनके बाद आता है। इससे ज्ञात होता है कि इसके

पहले सम्बधित एव भिन्न किसी अन्य तत्त्वका वर्णन था, वैसे तो किसी भी एक तत्त्वका विस्तृत वर्णन कर दो, उसमे अन्य तत्त्वोके वर्णन भी कुछ आ जाते है। जहाँ मुख्य एक तत्त्वका वर्णन प्रतिभासित होता हो, उसमे भी ज्ञानतत्त्व आदिका वर्णन साथमे चलता है। ज्ञानकी महिमा बताते हुए कहा है कि जितने द्रव्य गुण पर्याय है, उनको एक साथ जानना है। यह सब बताने के लिये वह कैसे समझमे आवे ? अतएव साथमे अब ज्ञेयतत्त्वका वर्णन चलता है। जैसे ज्ञेय-तत्त्व आत्मा है तब और भी अनेक पदार्थ है, वे कैसे समझमे आवे ? कोई कहे धर्ममे ऐसी क्या विशेषता है जिसका आराधन किया जाय ? तब उसका उत्तर है—धर्ममे वस्तुस्वरूपकी विशेषता है। अन्य भी अहिसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, धृति, क्षमा आदि मानी है। अन्य साधु भी परिग्रहरहित एव नग्न मिल सकते है, तब जैनधर्म ही क्यो महत्त्वपूर्ण है ? जैनधर्ममे विशिष्ट वर्णन केवल वस्तुस्वरूपका है। जिसके आधारपर अन्य विशिष्ट वर्णन भी हो जाते है। यह विभाव कैसे मिटे ? वस्तुके स्वरूपको यथार्थ जानकर परपदार्थका भी सही सही ज्ञान होना चाहिये अर्थात् विधिरूपसे निषेधरूपसे भिन्न-भिन्न जानना बने, तब विभाव मिटे। यह ज्ञान ज्ञेयतत्त्वकी समस्या हल किये बिना हो नही सकता।

आत्मकल्याणके लिये आवश्यक ज्ञेयतत्त्वकी विज्ञप्तिका यत्न—आत्मकल्याणके लिये ज्ञेयतत्त्वको समझना आवश्यक है। ज्ञेयतत्त्वकी सूक्ष्मता जाने बिना अपने भावका वर्णन कर देना, ज्ञानतत्त्वकी चर्चा कर लेना, धर्ममार्गमे रुचि हो जाना असभव है। इसके पूर्व भी ज्ञान-तत्त्वके वर्णनमे साधारणरूपसे ज्ञेयतत्त्वका वर्णन कर दिया था, फिर भी विशेष वर्णनके लिये, सूक्ष्मतासे जाननेके लिये ज्ञेयतत्त्वका वर्णन किया जाता है—"पदार्थस्य सम्यग्द्रव्यगुणपर्याय-स्वरूपं उपवर्णयति।" पदार्थके द्रव्य गुण पर्यायका वर्णन करते है अथवा सम्यक् जो द्रव्य गुण पर्याय स्वरूप पदार्थ है उनका वर्णन करते हैं। उपवर्णयति शब्दसे द्योतित होता है कि अपने आपको समीपमे लगाते हुये, रखते हुये वर्णन करते है।

अत्थो खलु दव्वमओ दव्वाणि गुणप्पगाणि भणिदाणि।
तेहि पुणो पज्जाया पज्जयमूढा हि परसमया ॥९३॥

अर्थका परिभाषण—अर्थ तो द्रव्यमय है, द्रव्य गुणात्मक है, द्रव्यसे अथवा गुणसे पर्यायें होती है। जो पर्यायमे ही मूढ है, उन्हे परसमय कहते है। अर्थ द्रव्य, गुण व पर्यायमे व्यवस्थित है। यद्यपि द्रव्य और अर्थ बराबरीके है तब भी अर्थ विशेष्य और द्रव्य विशेषण है। इस दृष्टिसे अर्थ द्रव्यमय बन जाते है। द्रव्य गुण वाला है, और द्रव्य व गुण दोनोसे पर्याये होती है। पर्यायदृष्टिसे जो समझमे आया वह पर्याय है। जो निश्चयपरक दृष्टिसे समझ मे आया वह हुआ द्रव्य। जैसे तना, शाखा, डालिया, टहनियो एव पत्तोसे युक्त वृक्ष है, उसे यो कहना चाहिये—शाखा, पत्ता आदि बराबर वृक्ष। जैसे गणितमे २ सही ३ बटा ४ =

१३ बटा ४ या ५ + ५ = १० होता है, इसी तरह वृक्षका उत्तर है—जिसमे डालियाँ, शाखाये आदि पाई जावे वह वृक्ष। इसे गुण पर्यायात्मक लक्षण कहते हैं। इसी प्रकार अर्थका लक्षण किया जायगा। द्रव्य, गुण व पर्याय = अर्थ। अर्थमे ये सब भिन्न-भिन्न नही है। द्रव्यके ढगसे, गुणके ढगसे जो एक ढगमे जो एक जाना जायगा, उस द्रव्यका व गुणका अर्थ बतला रहे है। इसका जानना अत्यन्त आवश्यक है। इसमे मोह कटता है एव जो हमे दृष्टिगोचर होता है, यही सार हैं, उस अज्ञानताका नाश होता है एव अनादि अनन्त पदार्थ है और सब अत्यत स्वतत्र है, यह बोध भी उसका सार है। सारभूत दृश्यमान यह नहीं है, जो अज्ञानदृष्टिसे अज्ञ प्राणियोंने समझ लिया है, अनित्यको नित्य अनादि कालकी भूलसे मानते आ रहे है, लेकिन वह आँखोमे सामने ही देखते-देखते ओझल हो जाता है।

जानकारीका फल स्वयपर प्रयोग करना—आत्मतत्त्वका स्वरूप जानकर अपना परिचय न पाया तो क्या वह तत्त्वज्ञान कहलावेगा ? जो अनुभूति दूसरेके शरीरको जलते देखकर होती है, क्या वह दृश्य देखना अपने शरीरके भी बारेमे किया है ? अथवा 'राम नाम सत्य है' की ध्वनि झकृत होते ससारकी असारताका दृश्य नेत्रोमे झलक जाता है, उस तरहका उदाहरण स्वशरीरके बारेमे लक्ष्य रखा जाय, तो क्या यह भोला प्राणी असयत जीवनमे भी सुखकी झलक पावेगा ? जो समागम मिला है, वह सुखदाई है, पतिको पत्नी, पत्नीको पति तथा दोनोको पुत्र-पुत्रियाँ आदि जो है, वे सुख देते हैं, यह भूल तत्त्वज्ञानसे मिट जाती है। इस तरहसे जानकर आत्महितके कार्योंकी चिन्ता विरलोके ही उत्पन्न होती है। यद्यपि यह पद्धति याने हितचिन्ता सब जीवोकी समान तौरसे किसीके हीनाधिक रूपसे चल रही है, किन्तु उपाय समझमे नही बैठा है। जो कुछ जाननेमे आने वाला पदार्थ है वह द्रव्यमय है। गुणको कोई नही जानता, पर्यायको कोई नही जानता। यदि इनको जाने भी तो वहाँ वस्तुतः अर्थको जानता है। अर्थको ही गुणरूपसे या पर्यायरूपसे जानता है। ज्ञानी अज्ञानी दोनो द्रव्योको किसी न किसी रूपमे जान रहे है। आमको रसमुखेन जानता है, केवल रसको कोई नही जानता। रूपमुखेन आमको कोई जानता है, केवल रूपको कोई नही जानता, रूप एव गुण कोई सत् नही है। सत् तो अर्थ ही है, ये अर्थकी विशेषतायें है। द्रव्यको भेदमुखेन सतमुखेन जाना जाता है या विवेक करके जो जाना जाता है याने जो परिच्छेदमान पदार्थ है वह सत् कहलाता है। सत् उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक है। पदार्थका सब ओरसे निर्णय करना चाहिये। निश्चयनयसे समझानेका प्रयोजन यह है कि तुम्हे शाति मिलेगी। पदार्थको चतुर्मुख तो देखा जाय, पुन सत्यका सिद्धान्त दृढ किया जाय तब निरपेक्षता लाई जावे तो कुछ निर्विकल्पता आयगी। व्यवहारनयसे जो है, वह असत्य है, यह बात नही है, सब है, किन्तु केवल जाननेमे जो पदार्थ आवेगा उसपर दृष्टि एकाग्र करके सोचना होगा, तब द्रवका निरपेक्ष तत्त्व ज्ञात

होगा। निश्चयदृष्टि एवं पर्यायदृष्टिसे दोनोको भिन्न-भिन्न करके कैसा यथार्थ समझा जावे ? जो भी परिच्छिद्यमान पदार्थ है वह द्रव्यमय है। वह पदार्थ द्रव्यमय क्यो है, द्रव्य करके कैसे जाना जाता है ? यह सब विशेषण है।

पदार्थके शुद्ध नामकरणकी अशक्यता—जितने नाम है वे सब द्रव्यके विशेषण है याने चीजके विशेषण है। जैसे वस्तु—जो अर्थ क्रिया करे या जिसमे गुण बसें सो वस्तु। द्रव्य—जो द्रवणशील हो याने परिणमनशील हो सो द्रव्य। अर्थ अर्यते निश्चीयते यः स अर्थः, जो निश्चित किया जाये वह अर्थ है इत्यादि। जो उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक सत्तासे अनुस्यूत हो, वह सत् है। सद्भूत हम है तो किन्तु हमारा वास्तवमे नाम नही है। जो नाम रखें, हम हमारा विशेषण है। जैसे आत्मा कहा तो आत्माका अर्थ है—अतति सतत गच्छति जानाति इति आत्मा। जो निरन्तर जानता रहे सो आत्मा। ब्रह्म—स्वगुणैर्वृंहति इति ब्रह्म। जो अपने गुणोसे वर्द्धनशील हो वह ब्रह्म है। जीव—जो प्राण धारण करे सो जीव है। ज्ञायक भी शुद्ध नाम नही है, वह भी तो विशेषण है। अब ऐसी स्थितिमे नाम तो लिया नही, पर शुद्ध क्या है ? परिच्छिद्यमान अर्थात् जाननेमे आया हुआ। छिद्यमान अर्थात् टुकडे-टुकडे करके याने स्वतन्त्र स्वतन्त्र सत् रूपसे जाना हुआ। परिच्छिद्यमान अर्थात् एक करके अनेकको जानने वाला तथा एक वह जो एकको जाने। यह मेरी स्त्री, पुत्र है, तो इस दृष्टिसे सब कुछ ज्ञान नही हुआ।

अब इसीको इस तरह जानना, जो-जो स्कध पदार्थ है या यह जो शरीर है वह अनेक परमाणुओका पिण्ड है, उनका भी वास्तवमे सही नाम कुछ नही है। किताबको पुस्तक, बुक, पजिका आदि नामोसे बाह्य अर्थोको पुकारते है। व्यवहारके लिए चेतन, आत्मा, जीव, ब्रह्म आदि नाम रख लिए। निश्चयसे नाम कुछ नही है। जैसा-जैसा एक-एक सत् है, परमाणु एक वस्तु है। बालूका एक घर बना दिया, वह कुछ समयमे ही नष्ट होने वाला है। उसी तरह स्वशरीरमे वर्गणायें है। परमाणुओका जो समूह है, उसमे जितना एक-एक स्वतन्त्र है, वह सत् है। विषयकषायके परिणामकी पीडा हमको भी होती है, अन्यको भी होती है, किन्तु कोई इन्हे छीन नही सकता है। सबकी उनकी केवल वृत्तिमात्र है। इसी दृष्टिसे पर्यायके समागमको जानो, किन्तु सोचो, इसमे क्या स्थायी रहनेका है एव उससे क्या लाभ मिलनेका है ? साररभूत तत्त्व द्रव्य है, सो द्रव्यका द्रव्यके साथ वर्ताव नही है। मनुष्य दूसरोकी प्रशसा करते समय कहता है—बडे दानी हो, आपके बडे भाग्य हैं, यह सब व्यवहारसे कहता है। इसी तरह व्यवहार एव निमित्तमात्रको अन्य पदार्थ मिले हैं, ऐसा सोचे तो यह नीरस मालूम पड़ने लगेंगे। परपदार्थोकी रुचि अंतरमे निकल जानेपर कौन आसक्त होकर सेवन करेगा ? विस्तार, आयत, सामान्य समुदायरूप द्रव्यसे रचा गया अर्थ है। यहाँ द्रव्य बन गया विशेषण व अर्थ

बन गया विशेष्य । अर्थ शब्द भी विशेषण है । विशेष्य जो है प्रकृतमे वह मैं हू, अनत-अनत शक्तियोका पिण्ड हू, ऐसे ही अन्य सब हैं । हम बाह्यकी आशा करके अन्यसे रागद्वेष करते है। यह क्यो होता है, क्योकि अपने आपकी शक्तिपर विश्वास नही है ।

कार्य अकेलेमे ही होगा अन्य कोई कुछ नही करेगा—सीताके जीवन रामचन्द्र जी को तपस्या करते समय प्रयत्न भर फुसलाया कि यह पहले मोक्ष नही चले जावें, साथ ही साथ मोक्ष जावेंगे, किन्तु सीताका जीव प्रतीन्द्र अपने कार्यमे विफल रहा। भैया ! यदि कोई सग न हो भी सके तो नरकमे साथ जानेमे हो सकता है या निगोदमे । वस्तुत वहाँ भी नही, किन्तु लोकप्रवृत्ति देखकर कह दिया । धर्मपर किसीकी बपौती नही है वह स्वात्माकी वस्तु है उसे ज्ञानी क्यो खोवेगा ? हाँ, पापवृत्तियोमे भले ही सहयोग कर लेवे मोही । स्वार्थता तो वस्तुके स्वरूपको जाननेमे है, इससे अपना ही प्रयोजन सिद्ध होगा । अपनी विषय कषायकी पुष्टि की तो ससार ही बनेगा, और कुछ नही । स्वका हितार्थ प्रयोजन सर्वत्र है । रामचन्द्र जी के परिणामोमे निर्मलता हुई, उन्होने मोक्षरमणीको पा लिया । सुख, दुःख, पाप, पुण्य, धर्मके साथ-साथ भले करें, साथ-साथ भोजन करना, साथ-साथ चलना, साथ-साथ मरना, शृङ्गार युक्त मिल-जुलकर रहना आदि दुर्गतिका ही कारण हो रहा है । पाप करके एक साथ शरीक रहना मानो निगोदमे भी सयोग बना रहे, इसलिये यह कोशिश की जाती है । क्योकि वहाँ भी कुछ फर्क न पड जावे, साथ-साथ जीने, मरने, दुःख उठानेका कार्य करेगे ना, सो अभ्यास यहाँ मोहवश हो रहा है ।

सब द्रव्योकी स्वतंत्रता—यह जीव अनादिकालीन भूलसे दूसरेके परिणमनको अपना आश्रय बना रहा है । अपनी योग्यताके अनुसार बाह्य पदार्थोको निमित्त बनाकर सुखी दुःखी मान रहा है । जो जैसे सस्कार वाला होता है तैसी उसकी वृत्ति होती है । एक कथा है तीन चोरोके साथ एक व्यक्ति, चोरी करनेमे अनभिज्ञ साथमे लग जाता है । वह सब चोरी करते है, इतनेमे मालिककी नीद खुल गई । तीनो पूर्ण चोर भाग गये, चौथा नेचा (मचान) के ऊपर चढकर छिप जाता है । इतनेमे पडौसी मनुष्य आकर कहते—चोर कौन थे, कहाँसे आये थे, क्या ले गये ? मालिक कहता है मैं क्या जानूँ, ऊपर वाला जाने । तब चौथा चोर अपनी महिमा समझा । वह क्या कहता है—मै ही क्यो जानूँ वह तीनो भी जानते हैं । इतने पर वह पकडा जाता है । यह सब अपनी बुद्धि अनुसार होता ही जाता है । प्राणियोने अपने को परपदार्थमे आसक्त एव मोही समझ लिया है कि यह मुझे नही छोडते स्वय फसकर । कोई भजनमे या भाषणमे कहे कि कोई पुत्रोको बेचकर विवाह करते हैं तो जो यह कार्य करने वाला होगा वह ऊपरको देखकर फीका मुह बना लेगा और सोचेगा कि हम ही को कहा है, अगर कोई सदैया, भरैया, लरैया और भरैयाकी निन्दा कर रहा होगा तो जो उस

तरहका होगा वह अपनेको उस तरहका महसूस करके लडने तकको तैयार हो जायेगा।

देखो सभी पदार्थ अपनी-अपनी क्रिया करते है, किन्तु जिसका जैसा भाव है अपनी कल्पनाके अनुसार अपना विकल्प बनाते। जिसमे जो अपराध होता है वह अपने अपराधवश शङ्कित रहता है। वह किसी भी घटनाको अपने अभिप्रायमे ढालता है। हालाकि यथार्थमे उस चोरका जिक्र नही किया जा रहा था जो कि स्वय चोर होनेसे पकडा जाता है। उसी तरह न पुत्र बेचने वालेको व्यक्तिगत नाम लेकर पुकारा जा रहा है और न भदैया, तरैयाका भी नाम लेकर दोषारोपण किया जा रहा है, किन्तु उन्होने स्वयकी कल्पनासे अपने सच्चे दोषोको जाहिर कर दिया। इसी प्रकार प्रत्येक प्राणीकी दशा हो रही है। इससे यह भी सिद्ध होता है कि प्रत्येक प्राणी अपने कर्मानुसार कर्मोके फलको भोगता है, ईश्वर कुछ नही करता है, भ्रम बुद्धिसे वैसा मान रहा है। यही मोही जीव अनादि कालसे परको निमित्त पाकर अपना परिणमन अनुकूल या प्रतिकूल कर लेता आ रहा है।

इस समस्तका परिचय—जो कुछ भी जाननेमे आने वाला पदार्थ है वह द्रव्यमय है, द्रव्यसे रचा हुआ है। द्रव्य क्या है ? जिसका सामान्य विस्तार, सामान्य आयत इस समुदायात्मक रूपसे जो जाननेमे आवे वह द्रव्य है। उसमे कुछ मिश्रित नही है तथा वह किसी विशेषतासे युक्त होकर भी अनेक नही होता। द्रव्य अनन्त शक्ति वाला है। वह शक्ति द्रव्यके एक-एक समयमे भी साथ-साथ रहती है। वस्तुतः गुण स्वतन्त्र सत् नही है, किन्तु इस तरह पदार्थका विश्लेषण करके जाना जाता है। प्रति समय जो रहने वाले है, अनन्त है, उन्हे विस्तार कहते है। समयभेदसे होने वाले भावको आयत या लम्बाई कहते है।

आयत विस्तारके परिचयमे अगुलिसंकेतकी सहायता—विस्तारका सकेत समान अगुली उठानेसे होता है। आयतका सकेत नीचेसे ऊपर अगुली उठानेसे होता है। पर्यायोका सकेत ऊपर अगुली उठानेसे होता है, अत उसे लम्बाईके रूपकमे बताया है। एक ही समयमे रहने वाले पदार्थोके सकेतमे अगुली समान चलती है, अत उसे विस्तार कहते है। आयत कालभेदकी अपेक्षाका ही वर्णन करता है। जैसे चीन, जापान आदि विदेशका वर्णन करनेपर देश, शहर, ग्राम, मुहल्लाके वर्णन करनेपर वह सब विस्तारका वर्णन कहलाता है, वह सब प्रतिसमय है। द्रव्यमे एक साथ एक ही समयमे रहने वालेको आचार्य विस्तार कहते है। आत्मामे दर्शन, ज्ञान, सुख और वीर्य एक साथ विद्यमान रहते है। यह द्रव्यका विस्तार है। और जब कालभेदसे वर्णन करेंगे तो तिर्यंच, मनुष्य या देवगति या नर्कगति जीवके बताने वाले होते हैं। विभिन्न समयोकी सभी परिणतियाँ आयत है। जो जीव प्रतिसमय अपने सुख या दुःखको भोगा करता है, वे आतरिक परिणतियाँ भी आयत है। देखो विस्तार व आयत की दृष्टिसे स्वय उठाने वाला सकेत स्वत चलता है। तिरछी उगली, सीधी उगली द्रव्यके गुण

के लिए उठती है और ऊपर नीची पर्यायके लिये । द्रव्य गुणपर्यायात्मक है, उसीको द्रव्य कहा है ।

पर्यायकी गौणतामें गुणका सुपरिचय तथा गुण एवं पर्यायकी गौणतामें द्रव्यका सुपरिचय—द्रव्यको जाननेके लिए अभेददृष्टिसे जाननेका यत्न किया जाता है । गुणोंमें भी जब तक भेददृष्टि है तब तक एक-एक गुणोंके जाननेमें यत्न रहता है । द्रव्यका जैसा स्वरूप है, द्रव्यके उस अनुरूप दृष्टि नहीं हुई तब तक उसे जाननेमें समर्थ नहीं होता है । कोई गुणोंको अभेद कर या जो सामान्य कर पहिचानमें आने वाला है, वह द्रव्य है । विस्तार सामान्य, आयत सामान्यरूप समुदायात्मक जो है, वह द्रव्य है । एक अभेदके तरीकेको अपनाये बिना अनुभवादिकी बातको नहीं जाना जा सकता । यह तो विस्तारआयतसमुदायात्मक, आयत-विस्तारसमुदायात्मक इसकी व्याख्या हुई । विस्तारविशेषमें आयतविशेषको ही गौण किया और द्रव्यमें दोनों विशेषोंको गौण किया । इस दृष्टिसे अनेक जानकर उनके समुदायको एक और अनेकरूपसे जाने । द्रव्य गुणसे रचा हुआ होनेसे उसमें रहने वाली अनन्त शक्तियाँ हैं । वह सब है द्रव्यके आधारमें । द्रव्य विधिनिषेधात्मक है । पर्यायत स्थायी न रह करके भी द्रव्य उन्हीं उपायोंसे जाना जाता है तथा उन उपायोंसे स्थिर जाना जाकर टिकता भी नहीं । आत्मामें ज्ञान, दर्शन न माननेपर आत्मामें क्या रह जाता है ? स्वरूपभेदके कारण इन सबको भिन्न-समझ लिया किसीने व थोडी देर बाद तीनों कालोंमें ज्ञान, दर्शनकी दशा रहे । इस अभिप्राय में कोई ख्याल बना लेते हैं कि ज्ञानके समवायसे आत्मा युक्त है । भेददृष्टिसे आत्माको व ज्ञान को पृथक्-पृथक् कहा जाता है । विशिष्ट ज्ञान साथमें चलने वाले न होनेसे ही यह कहते हैं । वस्तुतः आत्मा ज्ञानात्मक है ।

वस्तुकी भेदाभेदात्मकता—जितने दर्शन धर्म प्रचलित हैं, उनमें प्रधान है वैशेषिक, जितने ग्रंथ पढाये जाते, प्रायः वे भी वैशेषिक हैं -याने वैशेषिक मिलेगा । सांख्यका सिद्धान्त थोडेमें पूर्ण हो जाता है । धर्म और शैव, राधावल्लभ, ईसाई, इस्लाम एवं पारसी आदि हैं दार्शनिक । यथायोग्य प्राचीनतापर रहने वाला वैशेषिक है । वह क्या है ? एक नयमें जैनधर्म है । केवल नय भरकी भूल है । वैशेषिकोंने ७ पदार्थ माने हैं—द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय और अभाव । जैन सिद्धान्तमें सबका मूल द्रव्य है । आत्मद्रव्य स्वभावत सहज अनन्त गुणात्मक है, क्रियाशील है । एक दृष्टिसे द्रव्य सामान्य रूप है, एक दृष्टिसे विशेष रूप है । इन सबका एकमें अभेद रहना वह समवाय तादात्म्य स्वरूप है । एक दूसरेका अभाव रूप है, यह अभाव है । उनमें विवक्षित एकके अतिरिक्त अन्य सबका अभाव है । द्रव्य अनन्त-गुणात्मक है । जो द्रव्यका स्वरूप है वह गुणका नहीं, और जो गुणका स्वरूप है वह द्रव्यका नहीं । इस दृष्टिसे ही भेद माना जाता, अत्यत पृथक् रूप नहीं । जो विशेष-विशेष भेदको माने

उसे वैशेषिक कहते है। द्रव्य इसकी मुख्य वस्तु है, परिणति जुदा है। मगर द्रव्यको सामान्यसे देखनेपर कुछ और ही चमत्कार होता है और विशेषसे देखनेपर कुछ और ही चमत्कार होता है। यह सब क्या बिखरे है? यदि हाँ, तब बहुतसे गुणोका विभिन्न पदार्थोमे जिस किसीसे समवाय क्यो नही हो जाता? वैशेषिक भेदका ऐकान्तिक है। भेददृष्टि करके जो जो दिखे वह उनकी प्रधान समस्या है। गणेश बननेकी इच्छा होनेपर भी नही बन सके। गणेशके नीचे चूहा, ऊपर हाथीकी सूँड है। उनके मतसे तत्त्व भेदात्मक और अभेदात्मक होना चाहिये। चूहे के समान जो कतर-कतरकर कहे तथा हाथी जैसा मस्ताना जानवरकी सूड समान फिट बैठकर रहे। कोई जिसे हटा नही सके, उसकी याने अभेदकी प्रतीक सूँड है। यदि चूहेका कार्य देखना है तो किराने वालोकी दुकानपर या कपडे वालोंके यहाँकी कुतरन भी देखी जा सकती है। चूहा भेदका प्रतीक है, सूड अभेदकी प्रतीक है।

जैनसिद्धान्त भी द्रव्यके प्रदेश भेद बतला देते है। किस दृष्टिसे भेद है? उसे जानना चाहिए। आत्मा असख्यात प्रदेश वाला है, असख्यात प्रदेश वाला नही भी है। एकप्रदेशात्मक है। जैनसिद्धान्त वैशेषिकोसे अधिक भेदसहित जानता और अभेदयुक्त भी जानता है। वैशेषिक भेद करके जानता है, प्रेम करना नही जानना। जैनसिद्धान्त भेद करके अभेद करना जानता है। गुण एकके आश्रय रहने वाले है, वे विस्तारविशेष कहलाते है। आत्मामे दर्शन, ज्ञानगुण भिन्न-भिन्न है, वह अपने-अपने स्वरूपसे युक्त है। आत्मामे बाहरसे कोई पदार्थ नही आता है, सो सब निज स्वरूपात्मक पूर्ण है। जैनसिद्धान्तमे सबका रहस्य जानकर, स्वतत्र अर्थ स्वरूप जानकर उपेक्षावृत्तिसे रहो, अन्य कुछ न चाहो, देखो। सब कुछ चाहिए या कुछ? अन्य कुछ मे पड़ गये तो सब कुछसे वचित रहना पडेगा।

कुछकी हठमे कोयला हाथ—एक सेठ नाईसे हजामत बनवा रहा था। सेठको नाई पर सन्देह था। वह सोचता इस समय हमारे प्राण नाईके हाथमे है। अगर कही इसने उस्तरा नीचे लाकर छातीमे घोस दिया तो जान निकल जायेगी। अतएव सेठजी ने कहा—हजामत बना चुकनेपर सेठजी ने चवन्नी, अठन्नी, रुपया सब कुछ देनेको कहा। पर वह "कुछ" ही मांगे, इसके अतिरिक्त वह और बात न कहे। सेठजी परेशान हो गये, तब दूध दूर रखा था, उसे नाईसे लानेको कहा। वह आते समय बोला-सेठजी! इसमे तो कुछ पडा है। तब सेठ जी ने कहा-वह कुछ तू ही ले ले। वहाँ उसने अशर्फी नही ली थी, और कहाँ दूधमे पडा कोयला हाथ पडा। अपने आपको सर्वाङ्ग श्रद्धापूर्ण करो, अपनी जाच करके देखो हममे कहाँ अधूरापन है? पूर्णताकी श्रद्धा करके पर्यायके गुणविकासके अधूरेपनको समाप्त करो। बाह्यमे यदि कुछ चाहा तो पापका कोयला ही हाथ लगेगा।

पदार्थकी आयतविस्तारात्मकता—जो कुछ भी परिच्छिद्यमान पदार्थ है वह क्या है?

विस्तारसामान्य (गुणसामान्य) व आयतसामान्य (पर्यायसामान्य)—इनका समुदायरूप द्रव्यसे रचा गया है, अत द्रव्यमय है। पदार्थमे गुण तो सामान्यरूप इस तरह है कि वहाँ परमार्थसे कोई भेद नही है, वे सब गुण अर्थस्वभाव हैं। पदार्थमे पर्यायसामान्य इस तरह है कि पदार्थ मे पर्याय प्रतिक्षण रहना ही चाहिये तो परिणमन सामान्यकी विवक्षा है। इस तरह द्रव्यगुणपर्यायसामान्य समुदायात्मक होता है अथवा पदार्थमे विस्तार आयतरूप स्वक्षेत्र होना है, उस दृष्टिसे भी द्रव्यमय है। अब भेददृष्टिसे देखो—एक वस्तुके आश्रय विस्तारविशेष अनेक है, उन्हे गुण कहते है। जैसे आत्मामे श्रद्धान, ज्ञान, चारित्र आदि; पुद्गलमे रूप, रस, गध आदि। इन गुणोसे अभिनिर्वृत्त है याने सदा सर्वत्र रचा हुआ है अर्थात् तन्मय है, अतः द्रव्य गुणात्मक है। अब पर्यायोको देखो—जो पर्यायें विस्तारायतात्मक क्षेत्र प्रधान द्रव्यसे रचित हैं, वे तो द्रव्यात्मक पर्यायें है अर्थात् द्रव्यपर्याये या व्यञ्जनपर्यायें है, और जो गुणोंसे रचित हैं, वे गुणात्मक पर्यायें है अर्थात् गुणपर्याये है। ये पर्यायें है, अध्रुव हैं, इनमे जो स्वत्वका व्यामोह करते हैं वे पर्यायमूढ है, परसमय है।

पर्यायोका विवरण—पर्याये दो प्रकारकी होती है—(१) द्रव्यपर्याय, (२) गुणपर्याय। द्रव्यपर्याय दो प्रकारको है—(१) एकद्रव्यपर्याय (शुद्ध व्यञ्जनपर्याय), (२) अनेकद्रव्यपिण्डपर्याय। अनेकद्रव्यपिण्डपर्याय दो प्रकारकी है—(१) समानजातीय द्रव्यपर्याय, (२) असमानजातीय द्रव्यपर्याय। गुणपर्याय दो प्रकारकी है—(१) गुणात्मकस्वभावपर्याय (स्वभावगुणपर्याय), (२) गुणात्मकविभावपर्याय। इनका अनुक्रमसे वर्णन किया जाता है—

द्रव्यपर्यायोका परिचय—(१) एकद्रव्यपर्याय—असयुक्त एक ही पदार्थका निजक्षेत्र जिस विस्तार आयतरूप है, वह एकद्रव्यपर्याय है। जैसे एक पुद्गल (परमाणु) का एक प्रदेश रूप क्षेत्र, धर्मद्रव्यका लोकाकाशप्रमित (असख्यात प्रदेशरूप) क्षेत्र, अधर्मद्रव्यका भी इतना ही, आकाशद्रव्यका अनन्त प्रदेशरूप क्षेत्र, कालद्रव्यका एक प्रदेशरूप क्षेत्र। जीवद्रव्यका क्षेत्र जिस चरम शरीरसे मुक्त हुए है, उस प्रमाण व (शक्तिसे लोकाकाश प्रदेशपरिमाण असख्यात प्रदेश रूप) इस एक द्रव्यपर्यायमे व्यामोह उत्पन्न नही होता। (२) समानजातीय द्रव्यपर्याय—दो तीन आदि सख्यात, असख्यात या अनन्त अणुवोका पिण्डरूप स्कध समानजातीय द्रव्यपर्याय है। समानजातीय द्रव्यपर्यायोमे मिथ्यादृष्टि व्यामोह करते हैं, जैसे मकान, धन आदिका व्यामोह। (३) असमानजातीय द्रव्यपर्याय—जीव व पुद्गलका विशिष्ट एकक्षेत्रभावगाहरूप पिण्ड असमानजातीय द्रव्यपर्याय है। जैसे मनुष्य, पशु, पक्षी, कीडे, मकोडे, वृक्ष आदि भव।

गुणपर्यायोंका परिचय—स्वभावगुणपर्याय—उपाधि, ससर्ग आदि दोषोसे रहित पदार्थके गुणोका जो स्वभावसे ही परिणमन है, वह स्वभावगुणपर्याय है। जैसे धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य व कालद्रव्य—इनका तो स्वभावगुणपर्याय ही होता, विभाव गुणपर्याय होता

ही नही, जीवका **स्वभावगुणपर्याय केवलज्ञान** आदि है व पुद्गलका स्वभावगुणपर्याय शुद्ध परमाणुका गुणपरिणमन है। इनमे भी जीव व्यामोहको प्राप्त नही होते। विभावगुणपर्याय— उपाधि, ससर्ग आदि दोषोके निमित्तसे निज साम्यसे प्रतिकूल परिणमन होता, सो विभावगुणपर्याय है। जैसे जीवमे होने वाले कषाय आदि परिणमन व पुद्गलमे काला, पीला, खट्टा मीठा आदि विचित्र परिणमन। मिथ्यादृष्टि जीव इनमे व्यामोहको प्राप्त हो जाता अर्थात् इनमे स्वत्व, हित आदिकी कल्पनासे मूढ हो जाता है।

अपनेको जब अमर अनुभव कर लो तभी अमर हो—प्रत्येक गुण परिपूर्ण है स्वभावसे भी परिपूर्ण है। भूख, प्यास २४ घन्टे नही महसूस होती। स्त्री, पुत्र भी २४ घन्टे साथ नही रहते। दुकानपर भी २४ घन्टे नही रहना पडता, फिर हमेशा साथ नही रहते तो उसीका विकल्प क्यो किया जाय? परपदार्थ जिसके अनुभवमे नही है उसे तत्त्वज्ञान जल्दी आ सकता है। तत्त्वज्ञान आनेपर उपेक्षा करनेका महासाहस स्वय आ जाता है। जैसे जब तक बुखार नही आता तब तक बुखारसे डर लगता और जब आ ही पडता है तब उस बुखारके सहनेका साहस हो जाता है ना। जब आपत्ति सिरपर आ पडती है तो साहस बढ जाता है। बुखार आनेपर उसे झेलनेकी शक्ति आ जाती है तथैव मरणावस्था भी निकट आ जाय तो साहसी हो जाता है और जीने वाले मृत्युसे भयभीत रहते है। फोड़ा या कॉटा दूसरेके हाथोसे फोडने या निकलनेमे डरेगा, किन्तु स्वय फोड देगा या काटा निकाल लेगा उसे डर नही होता। जो अपनेको अमर अनुभव करते है वे अमर है। भैया! अमर तो सभी है किन्तु अनुभव नही करते, सो देह छोडते समय क्लेश होता है। मरनेपर केवल छूटने वाले पदार्थोंका दु ख रहता है। वह न रहे तो क्लेश नही होवे। मरते समयकी साधना अभीसे की जाय। मरनेके समय समाधिमरण करनेकी अपेक्षा जीवित रहनेपर ही उसकी साधना, ५ घन्टे पहलेसे करनेकी अपेक्षा, ५ माह या ५ वर्ष पूर्व अथवा एक युग पूर्व अर्थात् १२ वर्ष पूर्व करनेकी अपेक्षा बिना समयके विकल्पके अभीसे अन्त:साधना क्यो न की जाय? समाधि नाम तो समताका है वह सदैव अमृतरूप है। जीवमे जैसे समाधि हो वह कार्य किया जाय। जो यह समझ गये कि मरते समय मोह छोड देना, उसका मोहरूपी जहर से पिण्ड शुरूसे ही क्यो नही छुडाया जाय?

अप्रायोजनिक विकल्पोका निवारण—भैया! इतना ही कोई ठान ले कि जो जीवन के लिये व धर्मके लिये आवश्यकीय हो इस पदमे उन विकल्पोको तो कर लिया जाय और बाकी तो सब छोड देवे, तो इसमे भी भलाई कुछ निकल आवेगी। गृहस्थोको धर्म, अर्थ, काम ये त्रिवर्ग तो बताये, सो धर्म तो षडावश्यक है। अर्थ है अर्थोपार्जन। काम हुआ बाकी सब कार्य। कामका अर्थ विषयभोग ही नही होता, किन्तु धन उपार्जन एव धर्मको छोडकर

बावी भरणपोषण सम्बन्धी कार्य करना, देशसेवा, परोपकार करना आदि सब सद्गुण गर्भित होते है। तन्दुल मत्स्यका विकल्प भी केवल उसके सप्रयोजनताकी दृष्टिसे ठीक है उसे केवल खानेका विकल्प है। किन्तु हमारे विकल्प तो निष्प्रयोजन ही चलते रहते है। इनसे क्या धर्मसाधन होता है, धनमें काम आते नही, केवल यह विकल्प कलहमात्र है, इससे विश्राम लो, क्योकि बुद्धि तो उतनी ही है, उसे किसी भी कार्यमे लगा दो। जैसे चक्कीमे अच्छा अनाज पीसनेपर भी पिस जाता तथा घुना बीभा भी। इसी तरह जीवमे अच्छे विचारोको स्थान दिया जाय तो वह घुल मिल जाते हैं या खोटे विचारोको स्थान दिया जाय तो वे भी द्वन्द्व मचाते रहते है। क्षयोपशम तो उतना ही है, उसे तत्त्वज्ञानमे लगाओगे तो श्रेष्ठ है, संसार के कलहरूपी विकल्पजाल्से बचोगे।

स्वरूपनिर्णयसे अन्तः निर्भयता—द्रव्यका स्वरूप है, वह गुणात्मक है, वह गुणो कर अभिनिवृत्त है, सर्व प्रत्ययोकर सहित है और वह गुणोसे रचा गया है, सो नही है, किन्तु अनन्त गुणोका समुदाय द्रव्य है। अपने आधीन किसीको न मानो। व्यवहारमार्गकी बात व्यवहारमे है। विनय तो व्यवहारमे भी है। निश्चयमे श्रद्धा होनी चाहिये। मुझमे कुछ भी अधूरा नही है, अन्यत्रसे पूर्ति नही होना है। आत्मा गुणोसे परिपूर्ण है तभी यह सम्भव है कि उसका विकास हो जायगा। बाहरी वस्तुसे कुछ नही आनेका अपना खजाना अपने पास ही सुरक्षित है।

गुण सामान्यरूप है, अभेददृष्टिसे देखो और निर्विकल्पताका आनन्द लो—द्रव्य वह है जो सदा रहता है। द्रव्य शक्ति, गुणसे सहित पाया जाता है। भेददृष्टिसे द्रव्यको देखो कि गुणभेद हो जाते हैं। सरलतामे यो समझे कि पर्याय वह है जो बदलती है, जो नष्ट हो जाय उसे पर्याय कहते हैं। जो दिखनेमे आता है वह पर्याय है, नष्ट होती रहती है। रागद्वेष भी नष्ट हो जाते है। जिस तरहका राग या द्वेष पहले होता है वह समय पाकर बदल जाता है, अन्य तरहका होने लगता है। पूर्ण वस्तुको देखकर कहे वह द्रव्य है तथा वस्तुके धर्मोको कहे वह गुण है। आत्मा नष्ट नही होता वह द्रव्य है। दर्शन, ज्ञान, सुख और वीर्य ये गुण हैं, क्योकि ये नष्ट नही होने वाले है। गुण वह है जो द्रव्यमे सदैव रहे। ज्ञान, दर्शन, शक्ति भी है, उसके परिणमनमे भेद है। शक्तिके विकासको पर्याय कहते है। परिणमनको पर्यायको ही बतला रहे है कि वह आयतविशेष है। आत्माकी जितनी पर्यायें है वे इसी तरहसे जानी जा सकती हैं अथवा एक समयमे एक पर्याय देखी जा सकती है तथा एक ही समयमे अनत पर्याये देखना, क्योकि गुण तो अनन्ते है। अनत गुण परिणमन कर रहे है। अनते गुण भिन्न-भिन्न समयमे न होकर एक ही समयमे पाये जाते। ज्ञान आनद आदिकी पर्याय एक ही समयमे है।

एक समयमे एक पर्याय है। जैसा-जैसा उसका योग आवेगा, उसी-उसी तरहकी

पर्यायें आती रहेगी। अनन्ते गुण जब लम्बाईको लिये होते है वही पर्याये हो जाती है। जो नष्ट न हो वह द्रव्य है। पर्यायें द्रव्योसे रची हुई होती है तथा वह गुणोसे सहित होती है। पर्याये द्रव्यात्मक और गुणात्मक दोनो है। द्रव्यात्मक पर्याये लेनेपर प्रदेशमुख्यताकी बात आ जायगी। जैसे स्कन्ध मै द्रव्यपर्याय तो आकार है तथा गुणपर्याय रूप, रस, गध, वर्ण, स्पर्श के परिणमन है। द्रव्यपर्यायका दूसरा नाम व्यञ्जनपर्याय भी है और गुणपर्यायका दूसरा नाम अर्थपर्याय भी है। द्रव्योसे जो रचा गया है वह द्रव्यपर्याय है, और जो गुणोसे रचा गया है वह गुणपर्याय है। ज्ञानद्वैतवादियोने धर्मको माना है, किन्तु धर्मी नही माना है। प्रदेश और गुण दोनोका अविनाभाव है, किन्तु पदेश व प्रदेशवानका यहा अभाव माना। सब सिद्धान्तोमे भेदाभेदका अन्तर है। ज्ञानाद्वैतवादमे जो भी पदार्थ दिखता है वह ज्ञान है। मिट्टी है वह भी ज्ञान है, क्योकि वह उनके ज्ञानमे दिख रही है। पदार्थको जाननेके लिये ज्ञान ही इस शक्लमे है। ज्ञेयाकारको भी वह नही मानते अन्यथा उनकी बात उनके ही मुहसे असिद्ध हो जायगी। कपिल, बौद्ध, नैयायिक, वैशेषिक आदि मूर्ख तो थे नही, वह भी यथार्थ तत्त्व चाहते थे। उन्होने भी हितके भावसे कल्याणभावसे न्यायशास्त्रोकी रचना की है। उन्होने अपनी मतिसे खोटे या मिथ्या सिद्धान्त नही बनाये है, उन्होने ईमानदारीसे ही उनकी रचना की है। उनमे भी वही तत्त्व निकलता है जो जैनदर्शनमे निकलता है, सिर्फ उनमें स्याद्वाद नही रहा, जिससे जैनदर्शनसे मिलान नही खाता तथा उनका अनेकान्तवादसे निरसन हो जाता है।

पर्यायकी बातको अपना स्वभाव मत मानो—द्रव्यमे गुण व प्रदेश दोनो है। आपको दिखने वाली रूपकी बात गुण पर्यायमे है तथा आकारकी बात द्रव्यपर्यायमे है। द्रव्य जो है वह प्रदेशात्मक और गुणात्मक होता ही है। गुण अनन्त है, हे भगवन्! आपके गुण गिननेमे नही आवेगे, पर उन्हे देख सबको लेगे। प्रचण्ड वायुसे जिसका जल अन्यत्र चला जाय, ऐसे समुद्रमे के रत्न देख तो सब लेते, किन्तु उन्हे गिन नही सकते। द्रव्यपर्याय दो तरहका होता है—(१) स्वभावद्रव्यपर्याय और (२) विभावद्रव्यपर्याय। एकद्रव्यकी प्रदेशरचना तो स्वभाव द्रव्यपर्याय है व अनेक द्रव्योमे ऐक्यकी व्युत्पत्तिका जो कारण है वह विभावद्रव्यपर्याय है। वहा अनेक द्रव्योमे एकताकी व्युपपत्ति होती है। वह सब अनेकमूलक है। जैसे देह, चौकी आदि ये स्कध पूरण करने वाले व गलने वाले और व्यक्त पूरण नही करने वाले तथा न गलने वाले भी उन्ही-उन्ही परमाणुओके पिण्ड है। अनेक परमाणुओका मिलकर देह बना है। पुद्-गल क्या है, जो पूरे और गले। स्पर्श, रूप, रस, गध और वर्णसे जो सहित हो वह या मिल-कर जो एक पिण्ड बन सके वह मूर्तिक। धर्म, अधर्म, आकाश और कालद्रव्यके पिण्ड नही बनते। इसी प्रकार आत्मा आत्मा मिलकर एक पिण्ड नही होते। मूर्तिकता वह शक्ति है, जिस शक्तिके कारण द्रव्य स्कध बन सके। जिन्हे अरूपी कहते है, उसका अर्थ रूपी नही, यह

नही, किन्तु मूर्तिक नही, यह अर्थ आत्मामे है। दो कभी मिलकर एक पिण्डरूप नही होते है, अतः वे मूर्तिक नही। जिस शक्तिके प्रतापसे एक अनेक पिण्ड बन सके, उसे मूर्तिकता कहते है। वह अनेकमे एकताकी प्राप्तिका कारण है। यह तो समानजातीय द्रव्यपर्याय है। असमानजातीय द्रव्यपर्याय मनुष्य, तिर्यञ्च आदि पिण्ड है।

असमानजातिक पर्याय—मनुष्य व्यवहारमे कहते है शरीर जुदा-जुदा है, किन्तु आत्मा एक है। यह कहने वाला कितनी विकट भूल करता है ? कारण यह है कि वह सदैवसे यह सुनता आ रहा है, इसलिये ऐसा कहनेमे नही चूकता, परन्तु कहना यह चाहिये कि कभी शरीर दोनोका एक हो सकता है, किन्तु आत्मा एक नही हो सकती। कारण शरीर पुद्गलका पिण्ड होनेसे किसी समय दोनो शरीर बिखरकर भले पुनः उनका इकट्ठा पिण्डाकार हो जाय, किन्तु दो आत्माओका इकट्ठा मिलना असम्भव है। शरीरमे मूर्त धर्म है, आत्मामे नही है। पर्यायें दो प्रकारकी हैं—(१) समानजातिक, (२) असमानजातिक। प्रत्येक परमाणु अपने स्पर्श, रूप, रस आदि गुणसे परिणम रहा है। अनेक द्रव्य जो समानजातिक है, उनका एक पर्याय होता है। पर्याय क्षणिक है। जो नष्ट होता है वह पर्याय है। यह सब दृश्यमान ठाठ समानजाति पुद्गलात्मक है, २ अणु, ३ अणु, ४ अणु, सख्यात अणु, असख्यात अणु अनन्त परमाणुओंका पिण्ड स्कध पर्याय है। जो पुद्गल स्कधका पिण्ड बधनरूपसे बना, वह समानजातिक है, किन्तु निमित्तनैमित्तिक सम्बन्धवश हुआ यह जीवच्छशरीर असमानजातिका है। चलते, बैठते आदि सब समयोमे असमानजातिका मेला हमेशा लग रहा है। द्रव्यको अज्ञानी कहाँ जानता ? इन्ही पर्यायोमे पर्यायबुद्धि करना पर्यायमे आत्मबुद्धि, द्रव्यबुद्धि करना जब तक है तब तक उद्धारका मार्ग सुगम नही है, असम्भव है। कीडा, पतगा, वृक्ष, चीटी, लट आदि असमानजातिकी पर्याय है।

आयत, विस्तार व स्रोत समझनेकी महिमा—ज्ञानाद्वैतीने अपनी समझमे भूल नही की। उनका लक्षण है—'यत् यत् प्रतिभासते तत् तत् प्रतिभासान्त प्रविष्टम्' जो जो प्रतिभास मे आता है वह वह प्रतिभास है। ज्ञान किया तो खम्भा आ गया, दीवार ज्ञानमे आ गई। यह तो केवल धर्म मानने वालोकी बात ज्ञानाद्वैतरूपमे है। अब जरा धर्मी मात्रका एकान्त जो करें, उनकी चर्चा सुनो। मूल मानने वाले मिले तो कहते केवल एक ब्रह्म है। चेतन, ज्ञान, आत्मा, जीव, द्रव्य आदि यह सब एक ब्रह्मके बिना भी कुछ हुआ है ? यह नही हो सकता। जो भी दृष्टिगोचर होता है वह ब्रह्मका विकार है। जितना विकार दृष्टिगोचर होता है, वह जीवके सम्बधको छोडकर निर्माणित नही हुआ। मेज, कागज, पेंसिल, दवात आदि जीवको छोडकर बना नही है। सख्यातो या असख्यातो वर्ष पहले जीव कार्यके रूपमे था, इस दृष्टिको लेकर कहा सब ब्रह्मके विकार हैं। जैनधर्मानुयायी कहते है द्रव्यके विकार है। अमुक वस्तु

इस पदार्थका परिणमा है, अमुक इसका। दो बाते समझनी जरूरी होगी।

गुणके द्वारसे जो आयत जाना जाय, वह समझमे जैसी होने वाली अनेक पर्याये है। अनेकोमे एकताकी बुद्धिका कारण पुद्गलका विकार है। स्कधोका जो समूह है, वह महास्वन्ध है। गुणपर्याय दो तरहकी है—(१) स्वभावपर्याय, (२) विभावपर्याय। परनिमित्तके बिना जो सदैव एकसा रहता है वह स्वभावपर्याय है। केवलज्ञान आदि शुद्ध परिणमन स्वभावपर्याये है। जो परउपाधिका ससर्ग पाकर स्वभावप्रतिकूल विविध भाव हो वह विभावपर्याय है। रागद्वेष आदि विभावपर्यायें है। पर्यायमे मूढ न हो जावे। यद्यपि पर्यायको द्रव्य बिना नही कह सकते, गुणको पर्याय बिना नही कह सकते तथापि ध्रुवकी दृष्टि हितकर है। गुणपर्याय क्या हुई ? जो समयभेदसे पर्यायें चलती है। सब पर्यायोमे रहने वाला द्रव्य अनन्तशक्ति वाला है। भेददृष्टिसे गुण समझमे आता है, अभेददृष्टिसे द्रव्य समझमे आता है।

अभेददृष्टि व भेददृष्टिसे देखनेका प्रभाव—स्थूल परिणमन तो कोई समझमे आता है, किन्तु सूक्ष्म परिणमन मालूम नही पडता। समस्त द्रव्योमे अगुरुलघुगुण है, उनमे हानि वृद्धि होना वह स्वभावपर्याय है। ज्ञानकी बढती घटती इस समय अपने लिये मालुम पडती है। स्वभावपर्यायमे हानि वृद्धि होनेपर भी मालूम नही पडती। जीव और पुद्गलमे स्वभाव व विभावपर्याय दोनो है। स्वभावपरिणमन सूक्ष्म होनेके कारण इष्ट नही होगा। भेददृष्टिसे देखनेपर यह विभाव विशद दिखता है कि अमुक विभाव अमुक गुणकी पर्याय है, और अमुक विभाव अमुक गुणकी पर्याय है, किन्तु अभेदरूपसे द्रव्यको देखनेपर विभावपर्याय नही मालूम देगी। चमत्कार ही विलक्षण है। वृद्धि हानिरूप परिणमन तो सर्वत्र चलता रहता है। श्रद्धा गुणको घातने वाली सात प्रकृतियाँ है। भिन्न-भिन्न गुणोमे ऐसी बातें कही जा सकती है, किन्तु द्रव्यमे यह बात घटित नही होती। द्रव्य एक है और वह परिणमता है। अविभागी बूदें जितनी समुद्रमे है वह सब जल है। अनेक जल होनेपर विभिन्न बाते न देखी जाये तो एक जलके स्वभावमे विभिन्नता नही होगी। स्वभाव विभाव होते हुए भी एक समयमे एक स्वभाव या एक विभाव पर्याय होगी। अविरत क्षायिक ,सम्यग्दृष्टिके सम्यक्त्व तो पूर्ण प्रकट है, किन्तु चारित्र अप्रकट है। इसको अभेददृष्टिसे न देखकर भेददृष्टिसे कहेगे। पुद्गलमे रूप, रस, गध, स्पर्शकी विभावपर्याये हैं। जीवमे स्वभावादिकी अपेक्षा चेतनपर्याय और भेदमे ज्ञान दर्शनादि पर्याय है।

विभावपरिणामकी कहानी—विभावरूपसे जो परिणमा है वह अपनी शक्तिसे परिणमा है। वह प्रभाव किसका है, असर व चमत्कार भी किसका है ? परिणमने वालेका। चौकीको निमित्त पाकर बैठ गए तो हमने असर किया। असर जहा है वहाँकी वह पर्याय है। हम उपादान बैठे है तथा चौकी निमित्त है। अगर चौकी हमारी कर्त्री है तो सदैव हमारी

कर्त्री रहनी चाहिए। कोई पदार्थ ऐसा भी नहीं है कि निमित्त पाये बिना विभावरूप परिणाम जावे, यद्यपि निमित्तकी शक्तिमे नही परिणमा, परिणमने वाला स्वयकी कलामे परिणमा है, यह सर्वत्र उसकी विशेषता है। पहली अवस्था और अन्तिम अवस्थामे रहने वाला तारतम्य जिससे ध्वनित हो वही तो पर्याय है। द्रव्य जितने परिणमन है वे सब विभाव ही हैं। विवेक यह कहता है, उन सबकी दृष्टि गौण करके स्वभाववृत्ति अपनाई जावे। पराधीनताके परिणमन मे भी वस्तुतः स्वतन्त्रतासे निमित्त पाकर पदार्थ परिणमे है, किन्तु निमित्त उसरूपनही होगा।

द्रव्यमे ताना बाना—ताना बाना बुनने वाला पहले ताना पूर्ण कर लेता है, यह स्थायी अवस्था है। बाना क्रम-क्रमसे पूरा जा रहा है। इन्ही दोनोका समुदाय कपडा है। इसी प्रकार जितने भी पदार्थ हैं वे ताना बाना रूप है। गुण ताना है, पर्याय बानाकी तरह है। गुण विस्तार हुए तथा पर्याय आयत। गुण स्थायी है, किन्तु पर्याय अस्थायी। वे बानाके समान दौडते रहते है। द्रव्य तो अस्थायी है, किन्तु समय-समयमे पर्याय दौडती रहती है। एक बालक ७ वर्षका है, एक वर्ष बाद ८ वर्षका हो जाता है। १ वर्षमे ८ अगुल बढा तो क्या वह ३५९ दिन, २३ घटा, ५९ मिनटके बाद १ मिनटमे ८ अंगुल बढ गया? नही, वह प्रत्येक समय परिणमन करता रहा, इसलिए पर्यायें दौडती रही तब वह पूरे एक वर्षके समय मे जाकर उतना कदमे बढ गया। द्रव्य शक्तिपुञ्ज है। ऐसा गुणसामान्य, आयतसामान्य समुदायात्मक रचा हुआ है, इसीलिए द्रव्यमय है। हम हैं सो वही रहेंगे, वह द्रव्य नष्ट कभी होता नही। परिणतिया बदल जावेंगी, किन्तु सत् द्रव्य मूलत नष्ट नही होता।

हमे अपनी निजी घटनाओमे से एक घटना पूर्ण याद है। हमारी ७ वर्षकी उम्र थी। उस समय सब लडकोके साथ मदरसामे पाडेजी के पास पढने जाया करते थे। उस समय कक्षाये नही होती थी, पहली दूसरी आदि किताब क्रमसे पढाते रहते। पाडेजी को १) रु० महीना और १५ दिनमे एक सीदा दिया करते थे। एक दिन एक लडकेने लिखनेमे कुछ गलती कर दी, जिससे पटवारी मास्टरजी ने रूलसे उसे खूब पीटा, वह चीखकर रोने लगा। मुझे बहुत डर मनमे बैठ चुका था, इसलिये दूसरे दिन पढने नही गया। घरपर मा ने ठडा पराठा छाछ बिलोनेका समय होनेसे साथमे मक्खन दिया। मै चैनसे खा रहा था, उसी समय माँ ने कहा—आज पढने क्यो नही गये? तब मैं डरसे उस पिटाईका भी उत्तर न दे सका, चुपचाप रहा। इसपर मां ने मुझे पीटा। मैं उस समय रोते-रोते सोच रहा था कि अगर मैं इस मट्ठा बिलोनेका काठका खम्भा होता तो पिटता नही और न दुःखसे रोना पडता। इसी तरह यदि ऐसा हो कि मैं नही हू तब तो भला है, दुःख ही नहीं होगा, किन्तु ऐसा है तो नही, मैं तो हू ही और यह तो रहेगा ही। इस समय जिसे अन्याय, अभक्ष्य भक्षण करना सो कर लेवे, फिर देखा जायगा, तो यह हो नही सकता कि उसका फल नही मिले। कुकृत्योका फल नियमसे

भोगना होता है। पर्याय बदल जावेगी तो भी हम किसी अन्यरूपमे मौजूद रहेगे। मैं समूल नष्ट नही हो सकता।

खुदकी करनी खुदकी भरनी—सोचना चाहिये तब किसके लिये इतना आडम्बर करू, यह सब यही छोडकर अकेला जाऊगा। ऐसा मै अकेला हू, जिसका न कोई साथी है और न बन्धु ही। एक राजा जंगलमे पहुचा। वहाँ एक मुनि गौरवर्ण, हृष्टपुष्ट छोटी अवस्थाके बैठे थे। उसने सोचा महाराजजी को बडा क्लेश है। राजाने पूछा--आप बडे दुःखी हो रहे हैं, आपका नाम क्या है? मुनिने कहा—मेरा नाम अनाथ है। राजाने कहा—आप दुखी न होवें तथा मेरे यहाँ चलिये, वहाँ सुखी हो जावेगे, मैं आपका नाथ हू। मुनिने कहा--तुम्हारे पास क्या है? हमारे पास राज्य, महल, खजाना, नौकर, हाथी, घोडे एव भोगोपभोगकी सामग्री है। मुनिने कहा—यह सब मेरे पास भी थे। राजा बोला--फिर अनाथ क्यो कहते? मुनि बोले--बात यह है कि मेरे सिरमे जोरसे दर्द हुआ, उस समय वैद्य, डाक्टर, कुटुम्बी जनो एव माता-पिता सभीने उपचार किये और सान्त्वना दी। लेकिन उससे नाममात्र भी लाभ नही हुआ और न कोई दर्द जरा भी बाँट सका। तब सोचा ससारमे कोई किसीका नही है, मै तो अनाथ हू। मेरा चित्त तब कही न जमकर यहाँ जमा। राजन्! आपका नाथ आपके पास है, अपना स्वभाव अपनी दृष्टिमे रहे तो उसे कुछ नही चाहिये।

सर्वोत्कृष्ट प्रोग्राम आत्मरसविभोरता—यदि आत्मरसविभोर हो जाये, फिर अन्य प्रोग्रामकी क्या जरूरत? भाई जिनेश्वरदास स्वाध्याय कर रहे थे, साढे छ बजनेपर इशारा किया तो उनकी स्वाध्यायवृत्तिकी तन्मयता हट गई। मुझे पता चला तो दुःख हुआ कि क्यो टोका इन्हे। लेकिन उस समय दूसरे कार्योंका समय हो चुका था। कही इनको ही पीछे कुछ ख्याल न आवे, इस दृष्टिसे टोका। किन्तु यदि ध्यान जमे तो वहाँ उसकी तन्मयता कार्य देती। हितार्थीको चाहिये क्या? दो आँखें। पूजाका समय निकल जानेपर भी एकाग्रताका आत्मध्यान मिले तो यह पूजा ही है, किन्तु पूजन करते समय चिन्ता सता रही होवे, मुझे घरका कार्य पडा है, पूजनमे क्या रखा है तो पूजा करते समय भी स्वभाव अमृतका पान नही कर पाता। यदि मैं अपना कार्य एकाग्रतासे करता हू कही भी, तो वही अमृतका पान होता है। समयमे चाहे अन्तर पड जावे, पर स्वभावदृष्टिका ध्यान रहे। भगवान आपका क्या स्वरूप है? आपका पर्याय ऐसा नही है, जो द्रव्य गुणके प्रतिकूल हो। द्रव्य, गुण, पर्याय जहाँ सब एक सम हो जायें, ऐसा मेरा भी स्वभाव है। हम वहाँ स्वभावके कितने विरुद्ध जा रहे है? यह अन्तर मुझमे और भगवानमे है। जो भीतर बाहर समान है, यह भगवान है। बाहर भीतर समान न रहने वाले ससारी जीव है।

स्वभावदृष्टि अमृत है, जिसके पानसे अमर हो लिया जाता—जिसकी मान्यतामे आ

गया—मैं नही मरता, वह अमर है। जिसके पास करोडोकी संपत्ति पडी है और उसे ज्ञात नही कि मेरे ही घरमे इतना धन है, वह दरिद्र है तथा जो दरिद्र है, फिर भी उसे ज्ञात हो गया, मेरे घरमे इतनी सपत्ति गडी है और उसे निकालनेकी चेष्टा शुरू कर देता है। यद्यपि उसे अभी वह मिली भी नही, फिर भी वह धनाढ्य है। मै अमर हू, पर उसका अनुभव नही करता। अमर होनेकी प्रतीति होनेपर मरते समय भी मरता नही। लोग दूसरोको चोला बदलते समय समझाते रहते हैं—नये महलमे जा रहे है, स्वर्गमे गये तो वहाँ शतगुणे भोग, परिकर, स्थान, समागम, महल (विमान) तथा कोई गुणी आयु मिलेगी। किसी व्यापारीको थोडा नुक्सान उठानेके वाद लाभ अधिक हो तो वह पहले नुक्सानकी परवाह नही करता, उसी तरह इस नश्वर शरीरसे थोडा कष्ट उठाकर अतुल मोक्षरूपी लक्ष्मी या स्वर्गशोभा पाई जा सके तो पूर्वके कष्टको साम्यभावसे सहन कर लेना चाहिये। ऐसी समझावट अपने लिये मरण समयमे रहे तब बुद्धिमानी है। जीवनका लक्ष्य सयम होना चाहिए। ज्ञानीको अपने सयमका भी मालूम नही। अज्ञानीके व्रत भी अव्रत रहते है। ज्ञानीके व्रत रहते है; किन्तु इसका उसे विकल्प नही। अज्ञाननिवृत्ति ही ज्ञानीके मुख्य फल रह जाता है। उसे हेय उपादेयका विवेक करना श्रेयस्कर है। वहाँ भी वह ज्ञाताद्रष्टा रहता है। समागम छोडनेमे दुख नही मिलते और न सुख। वस्तुस्वरूपको समझते हुए स्वयके ज्ञाताद्रष्टा रहो तो निश्चयसे भगवानके भक्त हो। व्यवहारसे अरहत सिद्धके भक्त हो, आनन्दके तो अधिकारी हो ही।

आत्महितोद्देश्यके निर्णयीको असारसंगमे बेअटकी—जैन कहलाना सरल है, असली जैनत्व कठिन है। जैनत्व वहाँ सफल है जहाँ स्वका ज्ञान हो गया। अन्यथा अन्य जन जैसे रहते है उसी तरह मैं भी रहता हू तो क्या लाभ हुआ, जीवन बिताना मात्र रहा। मैं चैतन्यमात्र हू—इस तत्त्वका अनुभव तो यह जीव कर नही सका तथा परपदार्थोंमे भूल गया। तपस्या भी कर रहे है, फिर भी अपनेको व्रती मानकर उसका पर्यायबुद्धिका कार्य चालू है। वहाँ व्रतोकी अहबुद्धि स्वस्वरूपका भाव नही होने देती है। व्रत निर्दोष पालना चाहिए, किन्तु उन्हीमे सर्वस्वबुद्धि आ गई तो वहिरात्मत्व आ गया। ये व्रत तो परिणमन हैं वे नही रहेगे। यह मुनिपर्याय भी नही रहेगा, वह या तो मुक्त हुए पर समाप्त हो जाय या निगोदिया आदि जीव हो जावे तब समाप्त हो जाय। आत्मा चैतन्यस्वरूप है उसकी साधनामे चलते हुए समय व्यतीत होना चाहिए। ध्येय कभी न भूलो। किसी व्यक्तिको बम्बई जाना है, वह बम्बईका टिकट लेकर रेलमे बैठ गया। रास्तेमे दिल्ली, आगरा, भोपाल, झाँसी आदि भी मिलेंगे। बम्बई जाना है, जाने वाला व्यक्ति बीचमे ही साफ सुथरे, कगूरो वाले स्टेशनको देखकर उतर जावे तो वह बम्बई नही पहुच सकता। उसी तरह जिसे मोक्षमहलमे जानेका लक्ष्य है, किन्तु इन्ही मनुष्य, मुनि, राजा, महाराजा जैसी पर्यायोमे भूल गये तो उसका मूल

लक्ष्य यहीपर समाप्त हो गया, जिस तरह बम्बई जाने वालेका उद्देश्य खत्म हो गया। आत्मस्वरूप, निजतत्त्वको जाननेके बादमे स्थिरता बना लेवे, यहा वहाके सकल्प छोड देवे। इस तरह जानता रहे तथा परमे अपनेको नही लगावे तो उद्देश्यपथपर स्थित समझे, और और कार्य करते हुए भी उनमे श्रेष्ठ कार्य चुन लो जिनके द्वारा यथार्थ हित साधन हो सके। जो मूल उद्देश्यको ही जडसे खत्म करने वाले हो, उन्हे हेय समझकर छोड दिया जावे। तथा जो उद्देश्यको न भूल सकें वह व्रती है। व्रतपालनमे भी कषाय है, अव्रतमे तो कषाय है ही। व्रतमे मन्दकषाय, अव्रतमे तीव्रकषाय। मान लो टैक्समे १०००) लग रहे होवें, और १००) खर्च करनेपर वह कार्य निकले तो १००) खर्च करके ६००) बचा लेता है। यह लौकिक उदाहरण मात्र है। इसी तरह मन्दकषायोके काम करके तीव्रकषायोसे बच जाते है तो वह हमारा लाभ ही है। जैसे रुपया देने वाला चाहता तो यह ही है कि १००) भी न देना पडे, फिर भी अपनी स्थिति व वातावरण देखकर १००) देता ही है। इसी तरह संस्कारोको देखकर ज्ञानी जीव भी मन्दकषायमे लग जाता है, परन्तु लाभ समझता है विषय कषायमे छूटनेमे।

वस्तुत किसी भी पर्यायमे अहंबुद्धि न हो वही लाभ है—शास्त्रोमे कही लिखा रहता है कि द्रव्यलिगी मुनि कोल्हूमे पिल जाने जैसे भी उपसर्ग समतासे सह लेता है, फिर भी द्रव्यलिगी रह जाता है। उसमे अन्तर क्या पडता है? यह सूक्ष्म विचारसे जाना जा सकता है। इतना विकट उपसर्ग बहुत विशुद्ध भावोके बिना नही सहा जा सकता। उस सम्बन्धमे द्रव्यलिगी साधु यही सोचा करता होगा कि मैं मुनि हू, मैने महाव्रत धारण किये है, किसीपर द्वेष करना मेरा कर्तव्य नही है। समतासे सह लेनेपर मोक्षमार्ग मिलेगा, मुझे साधु व्रत निर्दोष निभाना चाहिए। अब आप सोचो कि इन भावोमे गलतियाँ क्या है? मोटे रूप से कुछ भी गलतीसी नजर नही आती, किन्तु सूक्ष्मतासे देखो तो समझमे आवेगी कि उसे पर्यायमे अब भी अहबुद्धि है। उसे साधुपर्यायमे इतनी दृष्टि न गडाकर कहाँ दृष्टि लगाना चाहिए, इस बातको सक्षेपमे कहते है—मै शुद्ध चैतन्यमात्र हू, चैतन्यवृत्ति ही मेरा कार्य है, मैं अपने स्वभावमात्र हू। इस तरह आत्मस्वभावपर ही दृष्टि रखना साधु परमेष्ठीका मुख्य कार्य है। आत्मस्वभावका अनुभव न होनेसे किन्तु साथ ही आत्महितकी वाञ्छा होनेसे शुभ भाव आते है। आत्मस्वभावका परिचय होनेपर उन शुभ भावोकी रुचि भी ज्ञानीके नही होती। यह उद्धारका उपाय कैसे बने? इसके लिए द्रव्य गुणपर्यायका सम्यक्परिचय करना आवश्यक है। द्रव्य गुण पर्यायके परिचय बिना शास्त्र लेखोके अनुसार तीन लोककी रचना व विविध जीवस्थान आदि भी जान जाय तब भी निर्विकल्प स्थिति तक पहुचनेका पात्र नही होता, द्रव्य गुण पर्यायके यथार्थ परिचय होनेपर अन्य विविध ज्ञान न हो तो भी उद्धारका

पात्र बन सकता है ।

पर्यायोका सुगम लाञ्छन—पर्यायें क्या हैं ? जो विनाशकी है वे सब पर्याय है, और जो विनाशकी नही वे या तो गुण है या पर्याय है । तत्त्वको भेददृष्टिसे देखो तो वह गुण है और अभेददृष्टिसे देखो तो वह द्रव्य है । पर्यायें दो प्रकारकी कही थी—(१) द्रव्यपर्याय, (२) गुणपर्याय । द्रव्यपर्याय दो प्रकारकी है—(१) स्वभावद्रव्यपर्याय, (२) विभावद्रव्यपर्याय । स्वभावद्रव्यपर्याय तो उपाधिके बिना स्वय जो प्रदेशोकी अवस्थिति है वह है और विभावद्रव्यपर्याय उपाधि सयोग होनेपर जो प्रदेशोकी अवस्थिति है वह है । विभावद्रव्यपर्याय दो प्रकार की है—(१) समानजाति द्रव्यपर्याय, (२) असमानजाति द्रव्यपर्याय । समानजाति द्रव्यपर्याय तो इस तरह है । जैसे कि अनेक सूती कपडोको सीमकर एक चादर या चदोवा बनाया जाय, इसमे समानजातिके याने सूती कपडोका समुदाय है । यह दृष्टान्तमात्र है । प्रकरणमे तो जितने भी स्कन्ध हैं, चाहे वह दो अणुओका हो, सख्यात, असख्यात, अनन्त अणुओका हो वह सब समानजाति द्रव्यपर्याय है अर्थात् इन स्कन्धोमे पुद्गल परमाणुओका ही पिण्ड है, किन्तु असमानजाति द्रव्यपर्यायमे दृष्टान्त यह बैठेगा । जैसे सूती रेशमी आदि असमानजातीय कपडोको सीमकर चदोवा बनाया जाता है अथवा कोई कपडेका थान ऐसा बुना हो, जिसमे ताना तो रेशमका किया हो व बाना सूती तन्तुओका किया हो या ताना सूतीका व बाना रेशमका तो वह कपडा दृष्टान्तमे असमानजातीय द्रव्यपर्याय है । प्रकरणमे असमानजाति द्रव्यपर्याय मनुष्य तिर्यञ्च आदिक है, क्योकि वे जीव पुद्गलके सयोग होनेपर ही बने हुए है । अनेक आकारोसे सम्बन्ध रखते है, इनका नाम द्रव्यपर्याय है ।

अब गुणपर्याय कही जाती है । गुणपर्यायें दो तरहकी है—(१) स्वभावगुणपर्याय, (२) विभावगुणपर्याय । जिसमे कर्म नोकर्मका सम्बध न हो, ऐसा जो परिणमन है वह स्वभावगुणपर्याय हुई । दूसरेका निमित्त पाकर द्रव्य परिणमता है, यह विभावगुणपर्याय हुई । रागादिक न जीवका कार्य है, न पुद्गलका कार्य और न दोनोका कार्य है । वह कार्य हो ही नही, ऐसा भी नही । बच्चेको ऊधम करता देखकर मा कहती है, शोर मत करो, नही तो हौवा आ जायगा । बच्चा हौवाका नाम सुनकर चुप हो जाता है । हौवा बच्चे और मां दोनो ने मान लिया है अन्यथा उसकी कोई शक्ल नही है । जीवमे राग आवे तो परमात्माके राग आना चाहिए और कर्ममे राग आवे तो पुद्गलके राग आना चाहिये । राग निमित्तनैमित्तिक सम्बध पाकर हुआ है । दर्पणके सामने घडी रख देनेसे दर्पण घडी आकारके पतिबिम्बरूप हो गया । निमित्तकी अपेक्षा छोडकर देखो—घडी दर्पणमे से आई या दर्पणको छोडकर आई । बाहरी कारण तो निमित्त है । घडीके प्रतिबिम्बका रक्षक कौन है ? उस रागका रक्षक भी कोई नही है । यह राग तो मरनेको ही फिर रहा है । हम राग करते, वह वर्तमान झलक

दिखाकर चला जाता है, फिर भी जो होता भलेके लिए यदि तत्त्वज्ञान हो तो।

ज्ञानीकी सर्वत्र भलाईकी ओर अभिमुखता—दो भाइयोमे लडाई हो रही होवे और वे समझानेपर भी न मानें तेजीसे पेश हो तो वह देते है—तुम अपने मनकी भरी बुझा लो, कषाय निकल जायेगी। राग भी भलेके लिए है, किन्तु उसमे अहबुद्धि न करे। एक समय राजा और वजीर जगलमे जा रहे थे, वह रास्ता भूल गये। वजीर कहता जो होता भलेके लिये। राजाने वजीरसे पूछा—हमारी-ये छः अगुली कैसी है? वजीर बोला—बहुत अच्छी है। राजाने सोचा, मै छिंगा हू अर्थात् अधिकाग हू, उसपर कहता बहुत अच्छी हैं। यह सुनकर राजाने गुस्सेमे आकर वजीरको कुवेंमे ढकेल दिया। राजा आगे चला तो किसी देशमे नरमेध यज्ञ हो रहा था, जिसमे मनुष्योको पकड-पकडकर यज्ञमे होमा दिये जाते थे, वहाँके पडा लोग चारो ओर दूर-दूर तक मनुष्योको पकडनेके लिए तैनात थे। राजाको आता देखकर पडा पकड़ ले गया और खूँटेसे बाँध दिया। राजाको होमने ही वाले थे कि इतनेमे एक पडाकी दृष्टि उसकी ६ अगुलियोपर पड गई तो कहा—ठहरो, ठहरो, यह यज्ञमे होमने लायक नही है छिंगा होनेसे, अन्यथा सारा यज्ञ खराब हो जायगा। राजाने सोचा, आज मेरी जान बच गई और भाग चला। कुवेके पास आकर वजीरको निकाला तथा कहा—तुमने अच्छा कहा था ६ अगुलियोको जिससे मेरे प्राणोकी रक्षा हुई, किन्तु वजीर यह तो बताओ—तुम्हे कुवेंमे पटका सो कैसा रहा? वजीर बोला—यह मेरी भलाईके लिये कार्य हुआ। अगर दोनो साथमे जाते, तो आप तो बच जाते और मै पकडकर यज्ञ आहुतिमे होम दिया जाता।

उद्धारमार्गमे सरलताकी प्राथमिकता—भैया! एक ही बात आ जावे कि मायाचार न हो तो भी उद्धारका मार्ग मिलेगा। आपसी व्यवहारमें भी मायाचार नही रखना चाहिए। यदि किसीसे कुछ कहना हुआ तो स्पष्ट कह दिया। भैया! हमारे परिणाम ऐसे हुए, इसलिए आपसे ऐसी बात कह ली। इतने प्रेमपूर्ण बर्तावमे झगडा निपट गया। व्यवहारमे भी जब तक यह श्रद्धा है, मायाचार बिना रोजगार नहीं चलता तभी तक ऐसा करेगा। लेकिन विश्वासपूर्ण उचित मुनाफा लेकर व्यापार करे तो कार्य चलेगा ही। जैसे कोई वस्तु ६) रु० मे खरीदी है और उसपर २ आने रु० लाभ लेकर ६।।।) रु० हुए तो ग्राहकसे एक दामका व्यवहार करे या देहाती मनुष्य बिना भाव-ताव किये नही लेते तो १०) रु० मे भी ६।।।) रु० की वस्तु बतावे, और ग्राहक यहाँ ५) रु० से शुरू करे तथा ७।।) रु० तक भी आ जावे तो ७।।) रु० लेकर ।।।) रु० वापिस कर देवे व कहे—तुम एक दाममे विश्वास नही करते, इसलिए इतना दाम बताया था। सही कीमत ६।।।) रु० है। चलो यह भी आन्तरिक सत्यता है। उत्तम तो एक ही सत्य बात है। किसीसे लडाई हो जानेपर या खोटे वचन निकल जाने से बैठे-बैठे सोचा करते है—क्या करना, क्या नही करना है? इस सोचनेकी अपेक्षा अन्तरङ्ग

का भाव सरलतासे प्रकट कर दिया—आपके प्रति हमारा ऐसा भाव है। सरलता कपटसे बचा देती है और सुख शान्तिसे रहने देती है। दूसरेको मूर्ख बनानेसे क्या प्रयोजन सिद्ध होता है? बादमे कलई खुल जानेसे कोई इस तरहके मनुष्यका विश्वास भी नही करता। कपट करके किसे प्रसन्न करना? अपनी प्रसन्नतासे ही शान्ति मिलेगी।

दिखावट व बनावट मत करो—बुन्देलखण्डके एक गांवमे सुनार और उसकी पत्नी थी। पत्नी सुनारसे बोली—मुझे अमुक-अमुक हाथ, गले, नाक, कान आदिके गहने चाहिए। बहुत दिन तकादा किया। सुनार ईमानदार था, वह सर्राफके यहाँ गया और २०) रु० किराये पर १०० तोला सोना लाया। पत्नीके पास सोना लाया तथा ऊँचे तरीकेसे गहने बनाने वाले सुनारको बुलवाया और कहा—अमुक-अमुक गहने इस सोनेके तैयार कर दो। सब तय हो गया। बादमे सुनार अपनी पत्नीसे बोला—गहने तो तुम्हे बनेंगे ही, किन्तु यह तो बताओ कि यह गहने हमको खुश करनेको बनवा रही हो या दुनियाको खुश करनेको। यदि दूसरोको खुश करनेके लिए बनवाती हो तो बनवा लो और यदि मुझे खुश करनेको बनवाती हो तो सुनो—मेरी ३-४ हजार रुपयेकी कुल स्थिति है, उसमेसे अपना व बच्चोका पेट काटा जावेगा तब कही कर्ज चुक पावेगा। वर्तमान समयमे बढिया-बढिया साडियाँ चप्पल, बेग, आभूषण तथा अनेक प्रकारकी भडकीली वेशभूषा रखना क्यो ग्राह्य हो रहे है? इससे हम पेट काटकर ऋण चुकावेंगे तो हम खुश होगे तुम्हारे प्रति या अप्रसन्न? तब स्त्रीने कहा—हमे अब गहने नही बनवाने हैं। यह दिखावट क्यो करूँ, जो स्वाभाविक रूप है, उसपर ही क्यो न मैं सन्तोष करूँ? किसके लिये बनावट करना? जिसकी यह दृष्टि हो जाय तब क्या वह भडकीले गहनो एव कपडो आदिसे अपनेको सजावेगा? कदापि नही। वह सादी वेशभूषामे ही प्रसन्न रहेगा। वेश तो प्राकृतिक ही सुन्दर है।

आपत्तिमूलक बनावटीपनका विनाशक सहज स्वतत्त्वका अनुराग—जो बनावटी भेष रखता है, उसके कान पकडे जाते है तथा उसे चाटे खाना पडते हैं। गुरुजी और चेला थे, दोनो राजाके बागमे जाकर ठहर गये। गुरुने वहाँ कह दिया तुम यहां बनावटीपन मत दिखाना। वे दोनो कोठरियोमे जा बैठे। इतनेमे पहरेदारने आकर देखा तो उसने राजासे जाकर कहा—कोठरियोमे दो मनुष्य बैठे है। राजाने सिपाहीसे कहा—उन्हे निकाल दो। तो सिपाहीने जाकर चेलेसे पूछा—तुम कौन हो? चेलेने कहा—मैं साधु हूँ। सिपाहीने कहा—बडा कहीका आया यहाँ साधु, उसे तो चाटे मारकर तथा कान पकडकर निकाल दिया। अब गुरुके पास सिपाही पहुचा तथा पूछा—तुम कौन हो? गुरुने कुछ उत्तर नही दिया। तब यही वृत्तान्त राजाके पास ले गया। राजाने कहा—कोई तपस्वी होगा, बैठा रहने दो। बादमे गुरु और चेला मिले तो चेलेने कहा—हमे तो कान पकडकर निकाल दिया। गुरुने कहा—तुमने

हमारा कहना नही माना है गा कि यहाँ बनना नही। चेला बोला—मै तो कुछ नही बना। सिपाहीने पूछा कौन हो ? मैने कहा साधु हू। तुम साधु अपने मुहसे बन गए, इसलिए निकाल दिये गये—ऐसा गुरुने समझाया। द्रव्यलिगी मुनिकी चर्चा चल रही थी। बनावटीपन व निरुद्देश्यपन सभीको क्लेशदायक हो जाता है। द्रोणाचार्यने सब शिष्योको कागजकी चिडिया की आख बेधनेकी परीक्षा की तो कोई शिष्य बोला—मुझे पेड दिखता है, मुझे चिडिया दिखती है, मुझे पत्ते दिखते है, किन्तु अर्जुनसे पूछा गया तो बोला—गुरुजी ! मुझे केवल आँख दिखती है। अर्जुन परीक्षामे पास हो गया, यह तो दृष्टान्तकी बात है। तात्पर्य यह है कि बिना यथार्थ लक्ष्यको समझे व बिना जीवनमे यथार्थता उतारे कोई लाभ नही होता। इसी तरह ज्ञानीको केवल आत्मस्वभाव दिखता है। उसे द्रव्य, गुण, पर्यायके विकासोकी भी जरूरत नही रहती, किन्तु उसकी व्यवस्था जाने बिना सभी तत्त्व समझमे नही आते है। प० दौलतरामजी ने भी छहढालामे इस विषयपर एक पक्तिमे क्या ही मार्मिक बात कही है—'चित् पिड अखंड सुगुण करड' परिणामोमे निर्मलता आई तब चैतन्यद्रव्यका पिंड अभेद मालूम होता है तथा आत्म-ध्यानरूपी ज्योति स्वयमे प्रदीप्त हो जाती है।

सृष्टि तो सृष्टिके आधारकी है—ज्ञानगुणका जो विकास है वह ज्ञानगुणकी पर्याय है। दर्शनगुणका जो विकास है वह दर्शनगुणकी पर्याय है। चारित्रगुणका जो विकास है वह चारित्रगुणकी पर्याय है। द्रव्यपर्यायके दो भेद हैं—(१) स्वभावद्रव्यपर्याय, (२) विभावद्रव्य-पर्याय। (१) परद्रव्यको निमित्त पाये बिना अपने आपका जो प्रदेश परिणमन है वह स्वभाव-द्रव्यपर्याय है। (२) जो परद्रव्यको निमित्त पाकर प्रदेशपरिणमन होता है वह विभावद्रव्यपर्याय है। इसी प्रकार गुणपर्यायके भी दो भेद है—(१) स्वभावगुणपर्याय, (२) विभावगुणपर्याय। विपरीत परिणमन तो जल्दी समझमे आ जाता है, किन्तु स्वभावको समझनेमे देर लगती है। सूक्ष्म अगुरुलघुगुणोमे जो हानि वृद्धि होती है, उसे स्वभावगुणपर्याय कहते है तथा जो स्थूल रूपसे गुणोका परिणमन होता है उसे विभावगुणपर्याय कहते है।

भागवतीचर्चामें वस्तुत्वका निर्णय—यह भागवतीचर्चा परमेश्वरके द्वारा कही गई है। यह व्यवस्था अनादिकालसे ही है। यह चर्चा द्रव्यस्वभावका प्रकाश करने वाली है। यह पारमेश्वरी व्यवस्था ही नही है। अन्यत्र भी ब्रह्माने विष्णुको ज्ञान दिया। सूर्य, चद्रमा आदिसे महादेवको, उनसे बाल्मीकिको ज्ञान मिला। इस प्रकार किसी तरहसे चर्चा पाई जाती है। आपके यहा जैनधर्ममे सर्वज्ञदेवकी दिव्यध्वनि खिरी, उसे गणधरने प्राप्त किया, गणधरने प्राणी मात्रको उपदेश दिया। गणधरसे अन्य आचार्योको ज्ञान मिला, उनसे परम्परापूर्वक आचार्य लिखते आये, परम्परासे कहनेकी बात दोनोमे है। पूजनमे जैनियोके यहाँ बोलते—'अपवित्र पवित्रो वा सुस्थितो दुःस्थितोऽपि वा। ध्यायेत् पचनमस्कार, सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥' औरके यहाँ

इसी तरह होते हुए 'ध्यायेत् पचनमस्कार' के स्थानपर 'ध्यायेत् पुण्डरीकाक्ष' दिया है। आपके यहाँ भी तो विशेषणोसे युक्त वर्णन करते है। इनके यहा भी विशेषणो सहित वर्णन करते है, किन्तु वर्णन तो कर जायेंगे, परद्रव्यको नहीं छुयेंगे। द्रव्य व्यवस्था कैसी है ? वैज्ञानिक ढग से समझी जावे। लेकिन ब्रह्मा, विष्णु या जिनके उपदेशोको या विशेषताओको कहेगे। द्रव्य क्या है, कितना है, कैसा है ? इसका परिणमन क्यो होता है आदि बाते द्रव्योमे देखें, सो वहाँ कुछ बुद्धिका जोर लगाना पडता है। इसलिये ही द्रव्य, गुण, पर्याय व्यवस्थाकी समझकी आपत्ति से बचनेके लिये कुछ लोगोने सरल तरीका निकाल लिया। वह क्या ? प्रथम ईश्वर ही था। उसने ऐसी इच्छा की। अकेलेसे बहुत बन जाऊ और सारा जगत बन गया। भैया! आपका भी तो कोई साथी नही है, अकेले ही तो हैं। आपको यह इच्छा हुई, बहुत बन जाऊ सो वही हो गये अर्थात् बडा भारी कुटुम्ब बसा लिया। नर, पशु आदिरूप धारण कर लिये। मनुष्य होनेका विकल्प छोडकर चिद्रूप हू, चैतन्यमात्र हू, ऐसा अनुभव करें तो फिर वह मनुष्य नही है, वह आत्मदेव है। आपको तो मनुष्य नही प्रतीत होगा। दुनिया ही देखकर कहेगी–यह मनुष्य बैठा है। जो जीव परद्रव्यमे लगने वाले व्यवहारका विरोध न करे, केवल शुद्ध द्रव्य अर्थात् एक ही का निरूपण करे तो उसे स्वसत्ताका ज्ञान हो जायगा। सब मेरे हैं, यह विकल्प समाप्त कर देवे, शुद्ध आत्मामात्रका अनुभव करे तो शुद्ध आत्माकी प्रतीति होवे।

भगवानकी उपासनामे तुम वस्तुतः क्या करते हो—भगवान तीन प्रकारके है—(१) शब्दभगवान, (२) अर्थभगवान और (३) ज्ञानभगवान। इन तीनोसे कार्य पडता है। (१) शब्दभगवान अर्थात् 'भगवान' शब्द जो पढने या लिखनेमे आता वह शब्द-भगवान हुआ। लिखकर या बोलकर देख सकते हो। अर्थभगवान–जिन्होंने कर्मोंको नष्ट कर दिया है। जहाँ कर्म नोकर्म रहे नही, केवल शुद्ध ही है वह एक अर्थभगवान है। शब्दो द्वारा जिस अनन्तचतुष्टय परमात्माको निश्चय किया, यह अर्थभगवान है। ज्ञानभगवान—अनन्तचतुष्टयसे सयुक्त है, कर्म नोकर्मोसे रहित है। ऐसे निश्चय करनेको याने इस ज्ञानको ज्ञानभगवान कहते है। ज्ञानभगवान तो यहाँ है। अर्थभगवान सिद्धशिलापर विराजमान है और ज्ञानभगवान आत्मामे है। आत्मभगवानका पूजन नित्य करते हैं। पूजा करना हमारी क्रिया है, वह हममे व्याप्त है। अन्यमे व्याप्त तो नही हो सकती। इसका मतलब हमने अपनी पूजा की। खोटे विकल्प करें तो खोटी पूजा कर ली। निर्विकल्प समाधि हो तो असली पूजा हो गई। विषय कषायमे भी हम अपने को करते हैं वह कुपूजा हुई, दूसरेका न कुछ किया और न कर सकते हैं।

प्रत्येक द्रव्य स्वयं सत् रूप है—माँ कब चाहती मेरा बच्चा गुजर जाय। गोदमे लिये है, खिलाती चूमती है, फिर भी जीव निकल जाता है। मनुष्य कहते है, हम पर बडी जिम्मे-

वारी है। दस या पन्द्रह छोटे बडे गृहस्थीमे है, उनका पालन-पोषण करना है। यह दूसरी की जिम्मेवारी क्या ले सकता है, अपनी आत्माकी क्रियाकी जिम्मेवारी है। छोटा बच्चा है, उसकी पुण्यवर्गणायें आपसे प्रबल है तो उसीके पुण्योदयसे आप कमा रहे है। तभी जुडता भी है। एककी भी जिम्मेवारी आपपर नही है। केवल हमपर हमारी जिम्मेवारी है। बच्चे जिन्दा होनेपर भी तो सेवा नही करते, मरनेपर तो करेंगे क्या ? जीते समय अनुकुल नही चलते। बापको जिन्दगीमे तो सुख नही देना चाहा, मरनेपर कोई कोई तो कनागत (तेरहवी) श्राद्ध करते है। जीतेमे बाप कहे तुम जो कुछ हमारे मरनेपर करना चाहो उसके बदले जिन्दामे ही कर लो, मरनेपर श्राद्ध वगैरा नही देना। दुःख तो भैया! अपने आप बना लिया। बाप कहता है, पाँच वर्ष, १० वर्ष लडकेको मैने पढ़ाया, बी० ए०, एम० ए० करा दिया। इसको इतना रुपया महीना प्रति माह देता था। कुल इतना रुपया खर्च कर दिया, किन्तु यह हमारी बात भी नही पूछता। यह सब कल्पनाजाल है, उसका निमित्त ऐसा ही था इसलिए आपने ऐसा किया। कदाचित् यह लडका प्रतिकूल भी निकल जाय तो भी ज्ञानीके ऐसा भाव नही आयेगा। सोचो मैने इसका क्या किया ? बी० ए०, एम० ए० आपने थोडे बना दिया। उसका ज्ञान उसमे था, निमित्त पाकर प्रकाशित हो गया। बच्चा पढकर जो करता ठीक करता है। उसकी समालोचना करनेसे क्या भगवान्‌की भक्ति आ जावेगी ? मिथ्यात्वके उदयमे विपरीत ही कार्य किये जाते है। मिथ्यात्वके उदयमे बलि देता है। खोटे अभिप्रायमे उसके लिए ऐसा ही ठीक प्रतीत है, इसलिए उसे ऐसा ही चाहिये। अन्य आत्मायें सब स्वतन्त्र है। मुझे क्या चाहिये ? उनके विकल्पोमे क्यो पड रहा है ? यह विकल्प क्यो रहे, गुजारा कैसे हो ? इसकी चिन्तामे ही क्यो दिन रात पडे रहते ? जितना धन हो उसे या उसमेका माफिक हिस्सा रख लीजिये, फिर धर्मसाधनमे रत हो जाइये। तब क्या सक्लेश होता है ? बच्चे या अन्य स्त्री भाई आदि प्रतिकूल चलते हो तो अपने कार्यमे लग जाओ। हमे तत्त्वज्ञानपूर्वक वैराग्य आता है तो कोई सकट नही आवेगा, भले ही चाहे यह बोल कर नही जाने। सन्तान हमारे प्रतिकूल चले, मुक्का, घूसा मारे, अपमान करे, तब भी हम उन्हीके बारेमे सोचते है। जब उन्हे सभाल सकते तो उपेक्षा कर देना चाहिये। दुःख तो उसी मोहमे है। हम ही कहते शास्त्र पढना भी मोह है। जब न कोई सुनने सुनाने वाला है, फिर भी चेष्टा। रागी है दशो जगह गालियाँ मिलती है—क्या बेवकूफी करके परपदार्थोमे रत रहे, नालायकी करके आत्मतत्त्व विस्मरण कर रहे आदि। द्रव्य, गुण, पर्यायको समझनेके कारण हम मूर्ख बन रहे है। जब तक परिणति मलिन रहेगी तब तक ऐसा ही होगा। जब तक परपदार्थो की ओर आकर्षण होगा तब तक विपत्ति ही मिलेगी। ऐसा देखा जाता है घरमे सम्पन्न होते हुए, करोडपति होकर भी दीक्षा लेते है। कई लोग छोटेसे

साधु हो जाते है। अनेकोके कोमल आचरण है, क्योकि उन्हे इसकी शिक्षा मिली है। तब जो द्रव्य, गुण, पर्यायकी चर्चामे आनन्द मिलता है वह क्या अन्य कथाओमे है ?

द्रव्य, गुण, पर्यायको किस पद्धतिसे समझना चाहिये—भगवता प्रोक्तम्। भगवानके द्वारा जो कहा गया हो वह भागवत है। यह पारमेश्वरी व्यवस्था ऐसी ही है। हमे देखना क्या है, द्रव्य, गुण और पर्यायको किस तरह देखना ? पर्याय किससे प्रगट हुई ? गुणोसे। कोई पूछता है—लडका किसका है ? वहाँ लडकेपर गौण दृष्टि है, लडकेके सरक्षकपर मुख्य है। सुनने वालेने कहा—फलाने चन्दका। यहाँ फलानेको ही मुख्य जानना हुआ। यह पर्याय किस गुणकी है ? इसमे गुण मुख्य है, पर्याय गौण है। यह गुण किस द्रव्यका है तो गुण गौण हो गया, द्रव्य मुख्य हो गया। पर्यायको गुणमे लीन कर दिया, गुणको द्रव्यमे लीन कर दिया। यह पारमेश्वरी व्यवस्था ठीक है, दूसरी नही। अगर आप अन्य व्यवस्था बनाओगे तो पर्यायमात्रको आलम्बन कर लोगे। परमे समय याने आत्मबुद्धि करनेका नाम परबुद्धि है, परसमय है। मैं लडके वाला हू, घरका पालन करता हू, यह विकल्प क्या हितरूप है ? न विकल्प रहेगे, न विकल्पके पदार्थ रहेगे, किन्तु विकल्पोकी उलझनकी परम्परा रही आवेगी जिससे ससारका बखेडा बना ही रहेगा।

ज्ञानकी माया भी बड़ी धनाढ्य हो रही है—एक था श्मश्रुनवनीत अर्थात् मूँछमे मक्खनवाला एक आदमी था। वह जैनोके यहाँ छाछ पीने गया। भैया ! शुद्ध भोजनका स्वाद विलक्षण है। टीकमगढमे राजाके यहाँ यह बात चल पडी। शुद्ध बढिया भोजन जैनके यहाँ बन सकता है, अन्यके नही। राजाने कहा—अच्छा, तो हम जीमेगे। राजघरानेमे तो मिलका नौकरके द्वारा आटा तथा बाजारका घी आवेगा आदि, किन्तु जैनोके यहाँ मर्यादाका, हाथका पिसा आटा होगा, घी हाथका निकला, अन्य सामग्री भी शुद्ध लाई होगी। राजा साहबको भोजन कराया गया, वह बडा प्रसन्न हुआ। जैनो जैसा उत्तम भोजन अन्यत्र नही मिल सकता ऐसी प्रशसा की गई। हा, वह श्मश्रुनवनीत नामका आदमी जैनके यहाँ छाछ (मट्ठा) पीने गया तो मूछपर मक्खनके कण लग गये। उनको घर आकर इकट्ठे करके रख दिया तथा सोचा—इस तरह दिनमे ७-८ बार मट्ठा पिया करूगा, ऐसा किया। कुछ समय बाद उसके आधा सेर घी हो गया, उसने सोचा—इसे बेचकर एक बकरी लूंगा, फिर गाय और भैस खरीदूंगा, फिर आमदनी होनेपर मकान बनवाऊगा, शादी करूगा, तब बच्चे होगे, वह मुझे भोजन करनेको बुलाने आवेंगे। बच्चा आकर कहेगा—पिताजी ! भोजन करने चलो, तो कहूगा—अभी नही चलता। दूसरी बार बुलावेगा तो कह दूगा—अभी नही चलता। तीसरी बार बुलाने आवेगा और बोलेगा—पिताजी ! माँ ने भोजन करनेको बुलाया तो कहा—अबे हट, कहकर लात मार दी। घी का डबला खटियाके पास रखा था, वह गिर गया। नीचे आग थी, जिसमे घी फैल

गया आगमे और झोपडीमे आग लग गई। आग लगनेपर चिल्लाता है—दौडो, मेरे सभी बच्चे, मकान, धन सब जला जा रहा है। वहाँ मनुष्य कहे—यह कैसा मूर्ख है ? अभी इसके कुछ था नही और कहता है—मेरा सब धन, कुटुम्ब जला जा रहा है। लोगोने कहा कि यह बडा मूर्ख है। एक तो समझाने लगे कि कुछ तो था नही, झूठ क्यो चिल्लाता है ? तब श्मश्रुनवनीतने अपनी सारी कहानी सुनानी शुरू कर दी। वही अन्य मनुष्य एक सेठजी से कहने लगे—यह तो नही होनेपर कल्पनासे मानकर चिल्लाता है कि मेरा सब कुछ जल गया, किन्तु आपके जो सयोग है, वहाँ भी कल्पनासे मान रहे हो कि मेरा है। यथार्थमे किसीका कुछ नही, कल्पनापिशाचिनीके द्वारा अपना परको मान लिया है। तेरा क्या था, विषयकषायोके योगसे परमे बुद्धि भ्रमा रहा है, ससारमे अनन्त जीवतत्त्वके यथार्थ स्वरूपको न जानकर, पर्यायमात्र को ही आत्मसर्वस्व समझकर मोहको प्राप्त हो रहे है और परसमय बन रहे है। अब इसी प्रसङ्गमे इसी बातका स्वसमय व परसमयका स्वरूप व्यवस्थित करके उपसहार करते है—

जे पज्जयेसु णिरदा जीवा परसमय गित्तिणिद्दिट्ठा।
आदसहावम्मि टिदा ते सगसमया मुणेदव्वा ॥९४॥

पर्यायनिरतताम अहित——जो जीव पर्यायोमे लीन है वे परसमय है और जो आत्मस्वभावमे स्थित है वे स्वसमय है। ये पर्यायें जीवपुद्गलात्मक है, अत. असमानजातीय द्रव्य पर्यायें है। ये पर्यायें समस्त अविद्याकी जड है। जब जीव इन अविद्यामूलोके ही परिचयमे रहते है तो ये वास्तविक आत्मस्वभावको कैसे स्वीकार कर सकते है ? यही कारण है कि वे पर्यायमे ही आसक्तिको प्राप्त होते है। उनकी ऐसी एकान्त दृढ प्रतीति होती है कि मै यह मनुष्य ही हू, यह ही हू, मेरा ही यह ठाट-बाट है। इस विपरीत पतीतिमे यह बिल्कुल विस्मृत हो जाता है कि मैं चैतन्यस्वरूप ध्रुव आत्मतत्त्व हू। उन्हे तो पर्याय व समागममे अहङ्कार व ममकार हो जाता है। ऐसी परिस्थितिमे आत्मव्यवहार तो छूट जाता है और सारी प्रवृत्तियाँ मनुष्यत्व के अहङ्कारवश स्वभावविपरीत होने लगती है। इससे रागद्वेषकी पुष्टि होती चली जाती है, कर्मोकी सगति बराबर बनी रहती है। आकुलता तो उनके दृढ़ बस जाती है। ऐसे जीव परसमय कहलाते है।

भैया ! किसका अन्य क्या है ? साफ दीखता है, समझमे आता है। फिर भी प्यारे ! क्या हो गया, सुखकी बात जो सुगम है वह कठिन लगती। समस्त परद्रव्योसे उपयोगको बिल्कुल निवृत्त करो। परकी ओर लगे रहनेमे हित कुछ नही, अहित ही है। प्रियतम नाथ ! असारका स्वाद छोड, निज सारतत्व सहज स्वरूप चैतन्यभावका उपयोग कर। तू सत् है, एक है, अभेद है और परिणमता रहता है। परिणमनोके ये प्रकार भिन्न-भिन्न अनुभवमे आने वाले भेद नाना शक्तियोका अनुमान कराते है। तू अनन्तशक्तिमान है। प्रत्येक शक्तियोका

निरन्तर परिणमन होता रहता है। वे सभी परिणमन अध्रुव हैं। तू शाश्वत त्रिकालान्वयी है। सबसे विविक्त केवल चेतनामात्र अपने आपका प्रत्यय कर और इस यथार्थ प्रत्ययरूप अमृतके पानसे तृप्त होकर निराकुल होओ। वस्तुत, परपदार्थसे अपना कोई सम्बन्ध नही। कुछ भी परिणमन हो, वहां अपना ही अनुभव किया जाता है। धन भी ३ तरहका है—शब्द-धन, अर्थधन, ज्ञानधन। शब्दधन शब्दमे 'सोना' है। अर्थधन—सोना और ज्ञानधन, धन-विषयक अभिप्राय है। भगवानकी त्रिविधता तो पहिले कही ही है यथार्थ व्यवस्था जाननेसे ज्ञान भगवान जाना जा सकता है जो सही काम देगा। यहापर बुद्धि वाला जीव यह नही समझता कि मैं तो ज्ञानधनसे ममता कर रहा हू या ज्ञान भगवानकी पूजा कर रहा हूँ या ज्ञान चौकी आदिको जान रहा हू। उसकी परिणति ज्ञेयज्ञायक सकरकी हो रही है।

पर्यायबुद्धिमें विडम्बना—पर्यायोंमे निरत होनेसे पर्यायबुद्धि आत्माको परसमय कहते है। कषाय करने वालेको कितना ही समझाओ कि न करो यह कषाय, किन्तु वह कहेगा कषाय छूटते तो है नही। ऐसी व्यवस्था जो अनुभव की जाती है वह पर्यायनिरत परबुद्धिका सकेत है। जब हम महाराज जी (गणेशप्रसाद जी वर्णी) के साथ सागरमे रहते थे तो आपस मे तात्विक बातचीत करनेमे भय नही करते थे। सुबह बागसे मन्दिरजी को चले। रास्तेमे एक स्त्री बच्चेको लिए खिला रही थी। वह बच्चा अत्यन्त रोगी तथा निर्बल था। शरीरकी हड्डियाँ तक दीखने लगी थी। फिर भी वह स्त्री कहती 'बन्दरिया मोरी बन्दरिया' कहकर खिला रही थी। मैंने कहा देखो महाराजजी मोहमे यथार्थ बन्दरिया दूसरेको कहकर स्वय बन्दरिया जैसी नाच रही है। महाराजजी को भी खूब हसी आई तथा मुझे भी तथा बीच मे और भी हसी आई, पर बात कह गया। अब तो महाराजजी को इतनी हसी आई कि पेट दर्द करने लगा। इसपर उन्होने मुझे एक रापट (धक्का) मार दी। यह मर्म स्पर्शक थप्पड ससारके पदार्थोंसे मोह हटानेका सकेत तथा दूसरेपर हसनेका पश्चात्तापका था। मोह तो देखो कि शरीरकी हड्डियाँ भी दिखने लगी तब भी बन्दरिया बन्दरिया कहकर ससारकी मायामे मन बहला रही है। कुछ सोचते हैं मोहके बिना जीवन नही। किसीकी स्त्री मर जायं तो कहता है अकेला होनेसे बेकार जिन्दगी हो गई। उसकी दृष्टिमे द्रव्य ही बेकार हो गया। दृष्टि इस ओर नही जाती कि विकारके साधन हट गये। फिरसे दूसरी शादी कर लेता है अगर वृद्धावस्था नही हुई तो वह। वर्तमान स्थितिमे सन्तोष न कर सके तो सतोषकी क्या आशा की जाय ?

मूर्च्छाका क्लेश—एक बुढिया थी। जिसके छः लडके थे। उनमे एक मर गया तो रो रोकर चिल्लाने लगी हाय मेरे पुत्र! वह पाँचो लडके समझाते, एक मर गया तो हम पाँच तो है। बुढ़िया कहती, पाचपर दृष्टि नही जाती, दृष्टि तो उस एकपर जाती है, फिर एक

और मर गया तो ४ बच्चोके समझानेपर भी रहती दृष्टि उन ही पर जाती है । होते होते पाच लडके मर गये । अब वह अकेला समझावे कि मै तो हू । तब भी वह वहे दृष्टि उन्ही पाचपर जाती है । यह मोहकी पराकाष्ठा है, जो है उसपर सन्तोष नही है । किसीके पास एक लाख रुपया होवे और उसमे से एक हजारका घाटा पड जावे तो उन्ही एक हजारका पश्चाताप करेगा । ६६ हजारपर सन्तोष नही है । मोही जीव कहता है औरोके तो इतना है, हमारे पास तो है ही नही । यही सोचते सोचते गुजर जाते है, किन्तु तृष्णा मरनेपर भी साथ जाती है । यहासे मर गये, दूसरे भवका परिग्रह ले लिया । जब तक पर्यायबुद्धि न छूटे तब तक निजपर दृष्टि ही नही जाती है । जिसके बच्चे पिताके प्रतिकूल चलते हैं वह स्वय गलती करते है । उन्हे चाहिये कि पिताजी के हाथ जोड लिये, प्रेम भरे वचन बोल दिये तथा ज्यादासे ज्यादा चरण छू लिये तब तो पिता और खुश होकर खूब कमावेगा या कमानेके पीछे अपनी दशा कैसी ही करेगा । मतलबसे जोडो, तुम तो आगे सुखी हो जाओगे । पिताको अब अपना कल्याण करना है तो सोचे ये पुत्र तो मतलबके लिये बोलते है, सेवा करते है । मुझे तो अपना कल्याण करना है । अतएव सावधान ! शोधक मानव सोचे परपदार्थ भिन्न हैं । समस्त परिग्रह क्लेशके ही निमित्त है ।

पुत्र परिग्रहका असर—अनगारधर्मामृतमे पुत्र परिग्रहका वर्णन किया है । पुत्र गर्भमे आया तो स्त्रीका रूप बिगाड दिया, गर्भसे स्त्रीको अनेक प्रकारके कष्ट सहन करने पडते है । जब गर्भ पूर्ण माहोका हो चुका तथा बच्चा पैदा होनेको हुआ तो पिताको चिन्ता बढ गई कि कही स्त्रीकी मृत्यु न हो जावे, स्त्रीको अपने प्राणोकी पडती है । पुत्र पैदा यदि निश्चित तौरसे हो गया तो उसकी अनेक आशाओमे पिताको धन कमानेकी फिक्र बढ जाती है । मा को पुत्र की प्रतिसमय सेवा करनी पडती है । मल-मूत्र साफ करना, बीमारियोसे बचाना, बडा होनेपर उसके पढानेका प्रबध करना, विवाहकी तैयारी करना आदि अनेक कष्ट उठाये जाते है । विवाह होनेपर पुत्र धनपर कब्जा कर लेता है, माता-पितासे मुख मोड लेता है । पिता निराश्रित हो जाता है । इस तरह बडे-बडे सकट सहना पडते है । परिग्रह जितने भी है, सब विष-वमन करते है ।

भगवानकी आज्ञाका पालन ही भगवानकी सच्ची पूजा है—भगवान जिनेन्द्रकी क्या पूजा करते हो, उसकी कुछ आज्ञा भी तो मानो । उन्होने सर्वपरिग्रह छोड दिया । यह आदर्श था, इस पथपर कुछ भी चलो । कितने ही मनुष्य परिग्रहमे सुखी रहते है । जो दुःख है वह परिग्रहमे है, जितना अज्ञान है वह पदार्थोमे आत्मबुद्धि करनेसे है तथा वह भीतरसे ही दुःख का कारण रहता है । मेरा है और मेरा था मेरा होगा, मिथ्याशयका यह प्रयत्न कैसे मिटे ? किसीने पूछा । उत्तर—द्रव्य, गुण और पर्यायको यथास्वरूप जाने और वैसा ही उनका चितन

करे तो ममता मिटे। आत्मज्ञान बढाने वाले ग्रथोका अध्ययन करे व हृदयमे उतारें तो मोह मिटेगा ही। सब द्रव्य स्वतन्त्र है, अपने परिणमनमे परिणम रहे है, हमारे कैसे होगे ? इतना ज्ञान हो जाय तो मोहका नाश होगा। परद्रव्यमे आत्मबुद्धि कोई नही करता। एक-एक परमाणु द्रव्य है, उसे कौन देखता है ? जो कुछ देखता है पर्याय देखता है, उसीमे आत्मबुद्धि कर ली है, परन्तु गुणोमे या स्वरूपमे आत्मबुद्धि होती नही। पर्याय ही समझमे आ रही है।

जिसकी निज स्वभावमे बुद्धि वह निज समय—जिनेन्द्रके शासनका शरण मिलना कोई सरल बात नही। इसके मिल जानेपर इन्द्रपना तथा राजा महाराजापना भी कुछ महत्त्व नही रखता। अपने स्वभावकी दृष्टि जिसकी आ गई वह छोटे भगवान हैं। उन्हे जिनेश्वरका लघुनन्दन कहा भी है। ज्यादासे ज्यादा परिश्रम करके यह बात प्रतीतिमे आनी चाहिए कि कोई मेरा नहीं है। जब स्वार्थ नही सधता है तो चमडेसे प्रेम करने वाले थोडे है कोई ? ऐसा कोई नही मिलेगा जो ऐकान्तिक प्रेम करता हो। स्वार्थमे भूल चुके। वैसे तो स्वरूप ही ऐसा है कि सभी अपने-अपने खुदगर्ज हैं। प्रत्येक द्रव्य अपना ही तो कार्य करता है। बडे-बडे महापुरुष श्री राम, सीता, लक्ष्मण, लव, कुश, तीर्थङ्कर व उनके परिवार भक्त, मित्र जन सब अपने आपमे प्रेम करते थे। श्री रामके बन जाते समय सीताजी से नही रहा गया, सीता साथमे चल दी। रामके प्रेमसे सीता नही गई। सीताजी की ही वह प्रेमपर्याय थी। सीताके प्रेमसे राम भी रावणसे नही लडे, क्योकि कोई वस्तु किसी अन्य वस्तुरूप नही परिणमती। रामको अपनी बात रखनी थी। प्रेम तो पर्याय है—जो उसीमे व्यापार करता रहेगा जिसकी पर्याय है। मेरे बारेमे कुछ सोचोगे तो तुम अपना निर्माण कर रहे हो। आपके बारेमे कुछ सोचूँगा तो वह मै अपना निर्माण करता हू। बडे-बडे मिलोमे सब अपना-अपना कार्य करते है और व्यवस्था पूरी चलती है। वे दूसरोंके कार्यको नही देखते। धागा जोडने वाला अपना धागा जोडेगा, बुनने वाला बुनेगा, सफाई वाला सफाई करेगा आदि। इसी तरह जगतके जीव अपना-अपना ही कार्य कर रहे हैं। अपने-अपने परिणामोके अतिरिक्त और कुछ नही कर सकते। पारमेश्वरीय व्यवस्था भागवत शासन ही ऐसा है।

जो भागवतके हुक्मको नहीं मानते वे परद्रव्यको अपनानेके कारण चोर है—चोर तभी तक चोरी कर रहे है जब तक कोई चेतता नही। तत्त्वज्ञान तो करें, यथार्थस्वरूपको जानें। बैठे-बैठे ही तो करना है। विचार ही से ससार बनाया था, विचार ही से छूटना है। विचारका परिवर्तन मात्र करना है। कहते है—अपवित्र. पवित्रो वा, सुस्थितो दु स्थितोऽपि वा। ध्यायेत् पचनमस्कार, सर्वपापै प्रमुच्यते ॥ अपवित्र. पवित्रो वा, सर्वावस्थागतोऽपि वा। यः स्मरेत् परमात्मान, स बाह्याभ्यन्तरे शुचि. ॥ इसका अर्थ यह नही कि अपवित्र पवित्र (नहाये या बिना नहाये) कैसे ही हो और भगवानको जाकर छू लो। जो भगवान परमात्माका स्मरण करे वह बाहर भी पवित्र और भीतरसे भी पवित्र है, चाहे वह शरीरसे अपवित्र हो या,

लौकिक शुद्धि किये हुए हो। इतना ही नही, कही भी किसी जगह हो, वहा भी स्मरण करे तो बाहर भी पवित्र और भीतर भी पवित्र है।

जो पर्यायमे निरत है उसे कहते है परसमय—किसीके यहाँ इष्टवियोग हो गया तो उसे पर समझकर मान लो तुम्हारे सौभाग्य हुआ ही नही था, लोग समझाते भी इसी तरह है—जो हम कहते उसे मान भर लो सुखी होता कि नही, जो नही मानते वह जान दे देकर परको अपना समझ रहे है। इसीको तो मिथ्यात्व कहा है। धर्म होता है तो इस पर्यायमे भी आत्मकल्याण करके स्वभावदृष्टिसे होगा। व्यवहारधर्म यहाँ है, निश्चयधर्म चैतन्यस्वरूप है, वह धर्म मूर्ति है। पूजा करके सन्तुष्ट हो गये, आगे कुछ विचार नही, यह स्वकी भूल है। धर्म करे किन्तु पर्यायमे ही न उलझ जावे, प्राय. धर्मपद्धतिमे भी लोग व्यवहारमे उलझते। इन्द्र, जिसे पच कल्याणकमें बनाते है, उसे धर्मात्मा देखकर थोडे ही बनाते है। अ आ लिखकर भी नही जाने वह भी बन जाता है। जिनकी ऊची बोली होती है वे बन जाते है। इसमे यह प्रतीति रहती कि मै इतना बडा इन्द्र हू, लो पर्यायबुद्धि हो गई। प्रतिष्ठाओमे पडित जन तो उपदेश देते है, वह निमित्त पढते है, सत्मार्गपर लगने वाले आप है। मै चैतन्यमात्र हू, इस प्रतीतिमे देहका मान भी नही रहता। जिस तरह प्रतिदिन नये-नये व्यञ्जनोके लिये जीभ लालायित रहती है उसी तरह जिनेन्द्रशासनमे जो स्वाद है, उसे भी चखना चाहिए। इसी भाव से तो धर्मात्मा जन मन्दिरोमे रोज आते है। वास्तविक धर्मविकास यदि होने लगे तो इसमे वह स्वाद है कि सुकुमाल मुनिको गीदडी भी खा रही तो उन्हे दु ख नही है। उस समय यह तो नही सोचते कि मै मुनि हू, खाने दो। वहा तो स्वात्मरस चख रहे है। मच्छर काटे तो काटने दो, यह सोचनेके बदले विचारे मच्छरका काटना स्वभाव है, मै तो उससे भिन्न हू, वह शरीरको ही तो काट रहा है, मेरी आत्मापर तो हमला नही कर रहा है। यह विकल्प करे भी तो ठीक है, किन्तु इसमे भी सामायिक तो बिगड ही गई, जबरदस्ती बैठे रहे सो बात दूसरी। जब तक पर्यायबुद्धि नही छूटती तब तक परसमयता है। यही दु खका कारण है।

पर्यायको आतमा मानना ही क्लेश है—जो जीव इस असमानजातीय पर्यायको प्राप्त हुए अर्थात् नारकी, तिर्यञ्च, मनुष्य, देव इनमे आत्मबुद्धि हुई जिनकी, इन्हीको सर्वस्व समझा जो अज्ञानका मूल है। जो शरीरमे आत्मबुद्धि, उसकी ही सेवा करना, चर्चा करना यह सब वृत्तिया, प्रवृत्तिया करते है वह सब अज्ञान है। मनुष्य पर्याय जीव और पुद्गलके सयोगमे हुई है। वह दोनो नही ऐसा भी नही, फिर भी दो के सम्बधसे होने वाली है। दो को छोड तीसरीको भी नही है। ऐसी विचित्र देहकी खोजमे बडे-बडे वैज्ञानिक परेशान हो गये है। इस परेशानीमे जिन्होने माना कि इसमे और किसीकी सामर्थ्य नही, ईश्वर ही बनाता है। वैज्ञानिक अन्य पदार्थोको खोज लेते, किन्तु इस देहका भी हल है क्या ? हाँ जैनदर्शनने निमित्त-नैमित्तिक सम्बंधको इसके हल करनेका मार्ग बताया है, जो ठीक है। अग्निपर बटलोई रख

प नी होनेपर गर्भ हो जाता है, इसी तरह सैकडो, हजारो सम्बध हुए देखते है। जीव पुद्गल का सम्बध होनेसे यह देहादि परिणमन हो गया है। यह जलरूप, मलरूप आदि परिणमता देखते हैं। सो योग्य सन्निधान पाया, सो परिणम जाते हैं। परिणमाने वाला और हो तो सब बडी बाधायें पावे, अन्धेर मच जाय, अव्यवस्था हो जाय। जो जिसके सन्निधानमे जैसे परिणम सकता है वैसे परिणमता है। सयोग जीवके भी नही, पुद्गलके भी नही। यह पर्याय ही निमित्तरूपमे समस्त अज्ञानोदयका मूल है। मोह, रागद्वेष यह समस्त अज्ञानका परिणाम है। जिसकी पर्यायमे आत्मबुद्धि है वह आत्मस्वभावके समझनेमे कायर हो जाता है। जिनकी पर्यायमे आत्मबुद्धि होवे और आत्मस्वभावका अनुभव आ जावे, यह तो बात नही हो सकती।

आत्मस्वभावमे पहुचे हुए की सुस्थिति—जो जीव भगवान आत्मस्वभावके पास पहुच लेते है वे आत्मस्वभावकी भावनामे समर्थ हो जाते है। यह भगवान आत्मस्वभाव समस्त विद्यावोका एक मूल है। इस विभक्त एकत्वस्वरूप आत्मस्वभावकी भावनामे समर्थ पुरष (आत्मा) पर्यायमात्रकी आसक्तिका परिहार करके आत्मस्वभावमे ही स्थितिको सूतते है अर्थात् स्वभावमे ठहरते है या लक्ष्य रखते हैं। इन अतरात्मावोने जो आत्मतत्त्व देखा वह परमार्थत तो अनिर्वचनीय है, परतु जब उसका विवरण करनेकी करुणा की तो सहज ही बढी हुई समर्थ अनेकान्तदृष्टिसे अनेकान्तस्वरूप पाये हुए आत्मतत्त्वका स्याद्वाद पद्धतिसे प्रकाशित किया। इस ही कारण ज्ञानी अतरात्माके समस्त एकात परिग्रहरूप पिशाच दूर हो जाते हैं। ऐसे विशुद्ध द्रष्टा पुरुषोका मनुष्यादिविग्रहोमे अहकार व ममकार नही रहता। वे अपने आत्माको वहाँ ऐसा पाते है जैसे कि अनेक कमरोमे ले जाया गया रत्नप्रदीप एक है, वह भिन्न-भिन्न कमरोमे रहनेसे भिन्न नही हुआ, इसी तरह अनेक भावोंमे रहकर भी भगवान आत्मा एक है, एक स्वभाव है। अब ये तत्त्वज्ञ आचरण, व्यवहार भी अविचलित चेतनामात्रके विकासरूप करते है अर्थात् आत्मव्यवहार करते है, पर्यायव्यवहार नही करते है। इन प्रभुके रागद्वेष विश्रान्त हो जाते है, परम उदासीनता प्राप्त होती है, समस्त परद्रव्यकी सगति छूट जाती है। अब ये केवल स्वद्रव्यसे ही सगत होते है। अतः ये अन्तरात्मा स्वसमय कहलाते हैं। उपयोग व श्रद्धान जहाँ विशुद्ध हो गया, वहाँ दुरभिप्राय ठहर नही सकता।

एक उपयोगमे मुक्तिपथ व संसारपथका विरोध—किसी एक मतमे उन्हीकी बात है। रात्रिको भी श्रीकृष्ण आते थे व भोजन करते थे। श्रीकृष्णजी जैसे विवेकी महापुरुष नारायण रात्रिको भोजन नही करते थे, यही ठीक जचता है, किन्तु कथाका सार ही यहाँ बताना है। हाँ तो जब एक दिन श्रीकृष्णजी को देर हो गई आनेमे तब कुछ नीदसी आनेपर राधा कहती है कि—'अरी नीद आवन चहत, यहाँ बसत हैं श्याम। कहू धरी देखी, सुनी, दो असि एक म्यान ॥' क्या दो तलवारे एक म्यानमे समा सकती है? इसी तरह एक उपयोगमे दो

चीजें बस सकती है क्या, कि श्याम भी रहे और नींद भी आ जाय ? क्या एक उपयोगमे ऐसी दो बुद्धि हो सकती है जो परमे भी अपनेको बसा ले और आत्मस्वभावको भी परख ले ? जो पर्यायमे आत्मबुद्धि करते है वे आत्मस्वभावको तो जान नही सकते, बस उसीमे आसक्त हो जाते है। सपूर्ण पदार्थोसे भिन्न अपनेमे ही परिणमने वाला आत्मा मोहमे स्वत उसके समीप उपगत होता है। जो पर्यायके पास ही उपयोग बनाकर जानते रहते है, वे पर्यायमे ही आसक्त रहते है, इससे निरर्गल दृष्टि हो जाती है। इसके अतिरिक्त कुछ समझना ही नही आ सकता। एकान्तदृष्टि हो जाती है। 'मनुष्यः एव अहं'—मनुष्य ही मै हू। मनुष्य कुछ और चीज, मैं कुछ और चीज, सो नही समझना। मेरा यह शरीर है, इस तरह अहङ्कार और ममकार दोनो हो जाते है। अहं रूपसे तो मै हू आ गया तथा ममरूपसे दूस पदार्थ मेरे है यह आ गया। इस तरह अहङ्कार ममकार इन्हीमे ठगाये जाते है, पर्यायके निकट ही बने रहते है। उन्हे क्या विपत्ति आ गई, जो उन्हीमे आसक्त हो जाते है ? मनुष्य ही मै हू उससे जो ठगाये तथा आत्माको विस्मरण कर गये वे अच्छा काम जो था उसे कर न सके और बुरे कार्योमे लग गये।

अपनेको जैसा माने तैसा काम होता—मैं अविचलित चेतनामात्र हू। आत्माका विकास करना, उसकी दृष्टि करना, उसके आनदका अनुभव करना, यही तो आत्माके व्यवहार है, सो आत्मव्यवहारसे तो गिर गये और परमे उपयोगरत हो गये। जो विषय किया है वह अपनेसे भिन्न है तथा जिसे अपना बनाया है वह अपना हो नही सकता, फिर भी परमे मोह करे तो वह अपनी परिणतियोसे आकुलित रहता है। यही बाहरमे परिणमना है। इस अवस्था मे आनन्दकी आशा करे सो व्यर्थ है। परिवार बनाकर, धन कमाकर, ऊँची नौकरी करके आनन्दकी आशा करे सो व्यर्थ है। जिससे जैसा उपयोग बनता है वैसा करता है। एक आधा शीशी काच आता है, उसे इस ढगसे रुईके ऊपर करता है कि उस काचमे सूर्यकी किरणे इकट्ठी हो जायें। सूरजकी किरणें काचपर सकुचित होनेसे रुईमें आग लग जाती है। काचका मुख्य स्थान सामने होनेसे रुई जलने लगती है। यह सब कार्य कांचका निमित्त पाकर व सूर्यका निमित्त पाकर हुआ है। आत्मउपयोग बने, आत्मस्वभावकी भावना जागृत होवे (आत्माको आलम्बन बनाना यह उपयोगको सकुचित करना है) तब ध्यानरूपी आग सुलग उठेगी, जिसमे कर्मरूपी ईंधन जलने लगेगा तथा बाहरमे जो बुद्धि, उपयोग दे रहे थे, वह जानकारीमे रहे ही नही। बाहरी उपयोगका सकोच करे, उसे मेटे तो आत्मस्वभाव जाननेकी कला आती है। जब जब बाहरमे उपयोग किया तब तब खेद ही हुआ। इससे ऐसी निरर्गलता आ जाती कि ससार-रोग ही बढ जाय। गृहस्थ जनोमे जो विकल्प आवश्यक है, आवश्यक आपको कहे है—धर्म, अर्थ, काम इनके अतिरिक्त अन्य विकल्पोसे क्या लाभ ? धनके और कामके भी विकल्प कम

करे तब आत्मव्यवहार क्या करेगा ? किन्तु जो आत्माके स्वभावको नही समझा वह आत्म-व्यवहार क्या करेगा ? किन्तु जो आत्माके स्वभावको नही समझा वह आत्मव्यवहार क्या करेगा ? सारे कुटुम्बको ऐसा फसा लिया कि मै इनका दादा हू तथा अपनी सुध ही भूल चुका। करना यह चाहिये—यह मनुष्यव्यवहार ही तो दुःखोकी जड है। दूसरोपर दया करते, दान देते, भरण-पोषण करते, तीर्थयात्रा करते, ये लौकिक प्रशसाके कार्य है, किन्तु ये भी आत्माके व्यवहार नही, मनुष्यबुद्धिके व्यवहार है।

ममताके फंसावका जाल विकट है—ममता और मोह अच्छे और बुरे सब मनुष्योको फसाये है। उनका जिसने आश्रय कर लिया, वह राग करेगा और मोह करेगा। मिथ्यादृष्टियो से लेकर प्रमत्त मुनियो तक यह अपना अड्डा जमाये है। किसीको किसीरूप और किसीको किसीरूपसे धनीसे लेकर गरीब तक तथा नेतासे लेकर साधारण प्रजाके सदस्यको देख लो। रागद्वेष उनमे आवेगा ही। गोष्ठी, पार्टी वालोको देख लो, जहाँ मनुष्यव्यवहारका आश्रय हुआ वहाँ रागद्वेष हो गया। परद्रव्य क्या हुआ ? अन्य सग है। परके उपयोगमें परसमय हो जाते है, उसमे बुद्धि लगाते है और उन्हीके बनकर रह जाते है। उसका फल जन्म और मरण है। इसी भूलभुलैयामे पडे रहते है। हमारे व्यवहारमे आत्माका तत्त्व भी कुछ उपयोगमे आना चाहिये। कोई ऐसा क्षण आ जावे कि शरीरका मुझमे कोई सम्बध नही, मैं तो केवल आत्मा का ज्ञाताद्रष्टा हू। जब तक शरीरमे रोग न बुढापा नही आता तब तक आत्महित कर लेवें।

क्या दो-चार धर्मके उत्सव, प्रतिष्ठा करा दी, सो आत्मस्वभावका भान हो जायगा ? यदि यह जरूरी होता तो साधु लोग क्यो नही करते ? जैसे अन्य अनेक साधु चिमटा लेकर फिरते हैं और कहते हमको यज्ञ करना है। अतः ५०) रुपये, ५० अठन्नी, ५० चवन्नी, दो मन आटा, १ मन साकल्य, दो टीन घी, १ मन शक्कर आदि चाहिए। इसी तरह ज्ञानी साधु भी घूमते। उत्सवका लाभ क्या है ? भाई बात यह है पचकल्याणको आदिमे विद्वान् आते हैं, उनके उपदेश सुनते है, इससे लाभकी बात बनती है। वहाँ भी बाह्य बातसे हमारी बात नही बनी। वहाँ उपदेशादि निमित्त मिल जानेके पश्चात् आत्माके ज्ञानसे शुद्ध ज्ञाताद्रष्टा हो जाते हैं ? दूसरेके शरीरको देखकर ज्ञाताद्रष्टा होते रहते हैं। अपने शरीरसे और भी तो गोरे है, अपना तो श्याम वर्ण है, दूसरोंके चमकते हुये भरे चेहरे है, फिर उनसे मोह क्यो नही करते। इसी शरीरसे क्यो मोह किया जाता है ? दूसरे मोही जीवको किसीके मरनेपर समझाते है। यह तो शरीर है, इसमे आत्मा नही है, इसमे मोह करनेसे क्या रखा ? यह जान भी रहे है, फिर भी अमूर्त आत्मापर दृष्टि नही जाती। तुम परमात्मा, ज्ञानस्वरूप हो, यह दूसरेको क्यो समझाते हो कि दूसरेको देखकर भेदविज्ञान हो जावे। हम मे ऐसी विशेषता नही कि जो दूसरोपर गुजर रही है वह हमपर नही गुजरेगी। कल्याणके लिये तो स्वभाव ही का चमत्कार

है, उसपर दृष्टि करनेसे जैसे परिणाम दूसरी जगह है, वैसे निर्मल परिणाम अपने भी बन जायेंगे ।

विश्वव्यवस्था विश्वके लिये समान है—दूसरा पाप करे तो दुर्गति जल्दी होवे । मेरे लिये कुछ सहूलियत है यह बात नही है । निमित्तनैमित्तिककी बात होनेपर जहाँ जो होता है वह सर्वत्र होता है, फिर क्यो इस शरीरका मोह करे ? यही पर्यायके उपगत होनेसे हम परसमय हो गये । जब मनुष्य शरीरको माना, मै यह हू । जो मनुष्य देहमे आसक्त है, वह क्या देहमे उत्पन्न होने वाले सुख है, उनमे आसक्त न होगा ? होगा । उनमे भी जो आसक्ति है वह भी तो बाधक होगी । उनमे रागद्वेष न करे, क्या ऐसा बन सकता है ? अज्ञानमे सबकी जड है तो असमानजातिक पर्याय । यह जो मलम्मा लग गया है वह ससारमे फसानेका सुगन्ध-मय मनमोहक पलस्टर है । आत्माका तथ्य जानना मात्र ही उद्धारका कारण है । अपने स्वरूपमे कोई अपराध नही घुसा । अपराध बनाते है—कितनी परेशानियाँ आनेपर भी विषयसुखसे विरत नही होते । धनीपना, गरीबपना, मान करना, अपमान सहना, नेता समझना यह सब पर्यायबुद्धिके कारण है । यह सब बेचैनी बढानेके ही कारण है । एक साधु था । उसकी लगोटीको चूहा खा जावे । चूहेसे रक्षा करनेके लिये बिल्ली पाली । बिल्ली एव उसके बच्चोको पालनेके लिये गाय ले ली । गायके बछडा हुआ, उसकी सेवा करनेको एक दासी कर ली । बाल बच्चे पैदा हो गये । प्राय कर देखा होगा—गाय, भैस, बिल्ली आदि जानवर अपने मालिकपर प्रेम करते तथा सिर ऊपर रख देते है, ऐसे खूब खेलते रहे । साधुको एक दिन दूसरी तरह जाना था । रास्तेमे नदी पडी, उसमे जाते ही बाढ़ आ गई तो बिल्ली, गाय, बछडा, स्त्री, बच्चे सबके सब आकर चिपट गये । तब कहे ये बबाल कहाँसे आया ? सोचनेके बाद तय किया कि बबालकी जड एक लगोटी है । तब साधुने कहा—बबालकी (रोग की) जड हटे, तो सब बबाल हट जावे, बबाल हटा दिया, सबको हटा दिया । खुद भी बच गये साधु, और सब भी बच गये । यह सब शरीरके समीप उपयोग बसानेका ही कारण है । न काम तो सदा आत्मासे ही पडता है, जिससे काम पडता है, उसका कर्तव्य जानकर शुद्ध स्व-भावसे अपनेको स्थिर करे, पर्यायसे बुद्धि हटे, आत्मतत्त्व बढे । ऐसा किया जाय तो सच्चे सुख की किरणें इस अज्ञान अन्धकारको हटाकर फैल जावेंगी तथा उनसे प्रदीप्त होकर दूसरोको प्रकाशित करनेमे भी निमित्त हो सकेंगी ।

यथार्थ ही जानो, अवश्य कल्याण होगा—इस लोकमें समस्त पदार्थ कितने है ? जीव अनतानत है, उनसे अनन्ते पुद्गल है । यह अनादिसे इतने ही है और इतने ही रहेगे । पदार्थ का समूल नाश नही होता है । वह अपनी ही शक्तियोंमे तन्मयतासे रहता है, अपने ही गुणोमे परिणमता है, परमे नही जाता है । जीव पहलेसे न ज्यादा थे, न रहे और न रहेगे । प्रत्येक

जीव अपना स्वामी है। जो भला बुरा करे वह अपना जिम्मेवार है। जीव अपने उपयोगमें परको बसाकर विषयकषायको खिलाता है। इसके अतिरिक्त परका कुछ करता नही है, जो स्नेही दिखते है वह स्वयका परिणमन करने वाले है, वह स्वयके कर्ता है। इसी तरह द्वेषी अपना परिणाम बिगाडकर अपना खोटा परिणमन करता है। अपने यथार्थ परिणाम बनाओ। जब परसे अपना कुछ नही बनता तो उसे अपना माननेसे क्या लाभ है? स्वका आलम्बन रखो तो लाभ ही लाभ है। परसे उन्मुख होकर जो स्वयकी दृष्टिमे परिणमन करता है वह जगजालसे छूटता है और मोह करने वाला जगमे फसता है। ममत्वरहित जीव छूटता है और ममत्व करने वाला बधता है, छूटना दोनोको है। कोई जगतमे ऐसा पदार्थ नही, जिसका समागम नही हुआ। कषाय तक समागम लगा रहेगा, वे कर्मोंका समागम हमेशासे हमेशा तक कर लेंगे—ऐसा कैसे कहते हो? दूसरे कर्म आवेंगे, पहलेके नही रहेगे, छूटना दोनोको है, किन्तु अज्ञान बसाया तो कर्मोंकी संतति बनी रहेगी।

भैया! छूटना तो सब है ही, अब यह आप सोच लो कि किस तरहसे छूटना चाहिये? एक बार राजा मत्रीसे बोला—मत्री जी! यह तो बताओ हमारी हथेलीमें रोम क्यो नही हैं? मत्री बोला—राजा साहब! आपने इतना अधिक दान दिया है कि दान देते-देते हथेलीके रोम झड गये है। फिरसे राजाने कहा—और तुम्हारी हथेलीमे भी रोम क्यो नही है? मत्रीने कहा—महाराज! मैंने आपसे इन हाथो द्वारा इतना दान लिया है कि दान लेते लेते रोम झड गये हैं। इन दूसरे आदमियोकी हथेलीमे भी रोम क्यो नही है?—राजाने पूछा। मत्रीने कहा—आपने दिया, हमने लिया। उनकी हथेलीके मलते-मलते रोम झड गये है। अब किसी तरह भी कर्म झडाओ, झडेगे। पदार्थ सरासर मानो कह रहे है कि हम तुम्हारे नही हैं। मोह छोडो और फिर उन्ही पदार्थोंकी ओर आकर्षित हो गये तो आकुलताके सिवाय और कुछ नही मिलेगा। यह बात मनमें बैठ जाये मैं मैं ही हू, मैं स्वय परिणमता रहता हू, इसके अतिरिक्त कुछ नही है। जगतको असार समझें।

आत्मदृष्टिमे क्लेश प्रलीन हो जाते है—सामायिक करते समय एक विचार हुआ। शरीरपर मच्छर बैठ जाते हैं। पहले बैठ रहे है, फिर उन्हे हटानेका विचार हुआ तो सोचता है, सामायिकमे तो बैठा ही हू, किन्तु जिस ओर तू जा रहा है वह लक्ष्यसे गिरनेका कारण है। देहका क्या बिगडता है? यहांके उपयोगमे हानि ही हानि है। स्वभावके समीप उपयोग बना जिसके सामने मच्छर आदि हटानेकी बात ही मनमे न आवे। और देखो मच्छर अनेक पदार्थोंका पिण्ड है। प्रत्येक पदार्थका उन्ही प्रत्येक पदार्थमे परिणमन हो रहा है, उसका निमित्त पाकर देहमे परिणमन हो रहा है। तू तो इन सबसे भिन्न है? आत्मध्यानके लाभको खोकर बाहर दृष्टि देकर क्यो हानि कर रहे हो? जिस वस्त्रपर नीला रंग चढ चुका है,

उस पर कुमकुमका रग नही चढ सकता। इसी तरह जब कषायोके द्वारा चित्त रजित हो चुका है तब शुद्ध चिद्रूपका अनुभव तो दूर रहा, उसका स्पर्श होना भी दुर्लभ है। अन्य पदार्थोपर दृष्टि जाना ही स्वभावसे गिर जाना है। उपेक्षाभाव स्वभावमे आनेका हेतु है। स्वभावका आश्रय लेनेसे ध्याता ध्येय और ध्यान तीनोकी एकता हो जाती है। जैसे पानीमे नमक सर्वाग रहता है। जैन धर्म मिला, ज्ञानकी, इन्द्रियोकी पूर्णता मिली, ज्ञान भी उत्तम है। करीब करीब सब बाते ठीक है। हममे आपमे कोई बातकी कमी नही है। यहा प्रयोजन रहा कमानेका, इसमे विकल्प है, किन्तु जिसके यह हिम्मत है कि मेरा स्वरूप ही कार्यकारी है उसके तो जीविका योग्य पुण्य प्राय रहता ही है और वह अन्य कार्यको करता हुआ भी न करनेके बराबर है। वह अप्रायोजनिक विकल्पोको छोडता है तथा जिसकी बुद्धि निष्प्रयोजन कार्यमे दौड रही है उसे कार्य न भी करनेको हो तब भी वह करनेके समान है।

अपने उत्तरदायित्वकी संभाल—चेतन सोचता है, इसके पहलेसे चेत होता तो मै आचार विचारसे रहता, तत्वोका मनन करता, इतने वर्ष यो ही निकल गये। अब वह कल्याणमे जुट जाता है। अब चेत आया तो चैतन्यकी सावधानी युक्त कार्योमे लग गये। इसके पूर्व गफलतमे समय बीता है। उसकी पूर्ति निर्मल परिणामो द्वारा करता है। अपनी सभाल बिना कदाचित् यह जीव निगोदमे जावे और ढाई पुद्गल परावर्तन बाद वहाँसे छूटे तो वहाँ त्रस पर्यायमे व वहाँ भी कभी मनुष्य होगा। कितने जीव तो ऐसे है जिन्होने आज तक निगोदसे निकलकर त्रस पर्याय नही पाई। इसे जाने भी दो तो निगोदियासे स्थावर तक नहीं हुए। हमे बुद्धि, बल, उत्तम कुल, धन वैभव, कुटुम्बी आदि सभी उत्तम वस्तुए मिली किन्तु उत्तम सगतिके न मिलनेसे यो ही जीवन बरबाद हो जाता है। जिन्हे बचपनसे अच्छी सगति मिली है वे धर्मात्मा पुरुषोका ससर्ग मुहल्लाके मनुष्योके सद्गुणोकी आदते, विद्वानो, त्यागियो, साधुओको ससर्ग प्राप्त होनेसे आत्म-कल्याणके पथमे जुटकर प्रगति कर जाते है तथा अपना जीवन सफल कर लेते है। जिस तरह आफिसरकी बडी जिम्मेवारी होती है, उसे अपना कार्य पूर्ण सभलकर करना होता है उसी तरह जिस जातिके हम है, उसी तरहका हमे जिम्मेदारीसे कार्य करना चाहिये। यहाँसे नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य, देव, विदेहक्षेत्र एव भोग भूमि जानेका रास्ता खुला हुआ है। टिकट भी जुदा जुदा है। टिकट कार्यालय खुला हुआ है। प्रत्येक टिकट इतना सस्ता है कि पैसे भी नही लगते। विचारो मात्रसे अपने-अपने अनुकूल स्थानो पर पहुच जाओगे। भले ही तुम्हारे विचार एव तृष्णाये कार्य रूपमे परिणत न हो सके। थोडा आरम्भ परिग्रहसे मनुष्यगतिकी टिकट मिल जायेगी, इसके विपरीत आरम्भ परिग्रहसे नरकगति तथा छल कपटसे तिर्यंचगति व्रत नियम पाल कर सरलपरिणामी होने से देवगति प्राप्त हो जायगी। जिसने पुण्य पाप कुछ नही किया, बोधि समाधि पाई तो उस

मनुष्यको केवलपना याने मुक्ति मिल जायेगी। इतना दुर्लभ मनुष्यजन्म और इतने अमूल्य क्षण व्यर्थमे ही गवा दिये तो उससे क्या कहा जाय ?

झूठे सुखको सुख मत मानो—किसीने अन्धेसे कहा—अमुक नगरमे चले जाओ, सुखसे रहना। वहाँ जानेका रास्ता एक ही था, चारो तरफ कोट था। अन्धा कोटको टटोलता हुआ चला। जहाँसे रास्ता मिलाने वाला था, वहाँपर ही वह सिरकी खाज खुजाने लगा तथा पैरोसे चलता गया। इस तरह कई चक्कर लगा लिए तथा रास्ता आनेपर सिर खुजानेमे लग जावे। इसी तरहसे इसे ससारसे छूटनेका मौका आया तो विषयरूपी खाज खुजाने लगा। मनुष्य सोचते है हमे परेशानिया बहुत है, वह हैं भी और नही भी है। मनुष्य दूसरोके जीवन से उदाहरण ले सकता है। बडे-बडे महाराजा, सेठ, वकील, बैरिस्टर आदि हुए और हैं भी, किन्तु उन्हे भी क्या इन पदार्थोसे सुख मिला है या मिलेगा ? यह सब जानकर जितनेमे अपना गुजारा चल सके, उतने सीमित साधन रखकर जिन साधनकी शरणमे आ गये तो कोई परे-शानिया नही आयेंगी। यह जो वर्तमानमे सामग्री उपलब्ध हुई है वह शारीरिक या बौद्धिक व्यायामका फल नही है, किन्तु सब धर्मका माहात्म्य है या यह कह लो कि धर्मभावके होते हुए जो रागादि होते थे उनका फल है। देखो राग भी धर्मका साथ पाकर कितना प्रभावक हो जाता है ?

एक ग्राममे छोटी उम्रके मुनिमहाराज भोजन करने एक श्रावकके यहा आये। आहार लेनेके बाद १० मिनट उपदेश देनेको बैठे तो बहू बोली कि आप इतने सवेरे याने जल्दी क्यो आ गये ? मुनिराजने उत्तर दिया—समयकी खबर नही थी। मुनिराजने पूछा—तेरी उम्र क्या है ? उत्तर मिला—४ वर्षकी, और तेरे पतिकी उम्र ? बहू बोली ४ माहकी, और ससुरकी उम्र ? ससुर अभी पैदा नही हुए, और सब भोजन कैसा करते हैं ? सभी बासी ही खाते हैं। ससुर यह सब सुनकर बडे ही क्षोभित थे। जब बहूने कहा कि ससुर पैदा ही नही हुए तब तो उनको बडा क्रोध आया और फिर जब कहा कि सब बासी ही खाते है तब तो पूछना ही क्या है ? ससुर आग बबूला हो गये और कहने लगे देखो यह प्रतिदिन गर्म-गर्म भोजन करती है, सब सामग्री ताजी-ताजी आती है। इतनेपर भी बदनामी कर रही है। मुनि महाराज जब वहाँसे चले गये तो ससुर बहूसे लडने लगे। तब बहू बोली, चलो मुनिराजके पास ही इसका निर्णय कर लेवें। ससुर तैयार होकर वहाँ पहुच गये तो बहूने जो पूछा था कि इतने जल्दी क्यों आ गये अर्थात् इतनी छोटी अवस्थामे मुनि क्यो बन गए ? तो मुनिने उसके उत्तरमे कहा—खबर नही थी अर्थात् मालूम नही कब मर जावें ? बहूने उम्र चार वर्षकी बताई अर्थात् चार वर्षसे धर्म पाला है। पतिकी चार माहकी अर्थात् इन्होंने चार महीनेसे ही धार्मिक सस्कार पाले हैं। ससुर पैदा ही नही हुए अर्थात् वह धर्म जानते ही नही और सब बासी खा रहे है

अर्थात् पूर्वभवके पुण्यप्रतापसे सुख-सामग्रीका भोग कर रहे है। वर्तमान तो कोई नया पुण्य कार्य नही हो रहा। इससे यह सब भोग बासी ही है। सो भैया! जिन्दगी तो तबसे अपनी माननी चाहिये जबसे कि धर्मवृत्ति होने लगे अन्यथा तो अनन्तकालकी उम्र बतानी चाहिये।

हितकी बात कौन करता है—कभी कोई यह भी सोचता है कि हमारे पुत्रकी आत्मा धर्ममे लगे, आजीवन ब्रह्मचर्यसे रहे? ऐसा विचार कोई अपने प्रति भी तो नही करता है, किन्तु यह विचार करना चाहिये। कुटुम्बी सब स्वार्थके साथी है, इनमे क्या मोह करना? केलेके खम्भेमे सार भले निकल आवे, किन्तु इस जीवनमे कोई सार नही है। कल्याणकी इच्छा वाला कल्याण खोज लेता है। जिसे विषयोकी इच्छा है वह उन्हे खोजता है। कोई भी पराधीन नही है, इस निमित्तनैमित्तिक सम्बधको कोई नही तोड सकता। विषयसामग्री तो अनेक बार मिली, किन्तु वस्तुस्वरूपका ज्ञान नही मिला। जीवनमे जो भी धर्म बने, कर लेना चाहिये। अगर मन व शरीर कमानेमे लगे तो लगाओ, क्योकि वह भी बाल-बच्चोके काम आयगा, परन्तु २४ घण्टा कमाते तो हो नही। अधिकतर मनुष्य कहते रहते है कि समय नही मिलता। सम्पूर्ण २४ घटेमे चौथाई समय धर्मके लिये न्याय प्राप्त है, क्योकि इस समय मोक्ष होता नही। तो आजके चार पुरुषार्थ यो बन सकते—धर्म, अर्थ, काम और नीद। सबको ६-६ घटे समान वितरण कर लो। धर्मकी ओर विशेष रुचि बढाओ, समय मिलेगा। भगवद्भक्तिमे, ध्यान करनेमे समय लगाओ, आगेका जीवन अच्छा रहेगा, परलोक भी ठीक बनेगा। आयुकर्म जो निकल गया वह अब नही लौटेगा, समय भी नही लौटेगा, बचपन भी पुनः नही आवेगा। हाँ दूसरा बचपन दूसरे भवमे मिलेगा।

आत्मयोग्यताका प्रभावन—शास्त्रज्ञान, धार्मिक तत्त्वोका श्रद्धान, ज्ञान तथा चारित्रका सस्कार अगले भवमे भी साथ जावेगा। क्षयोपशम जितना हो जावेगा वह विद्यासाधनमे बैठ नही जावेगा। आगेके भवमे साथ रहकर उसका फल मिलेगा। देखा जाता है कि किसीको पीटनेसे उसे विद्या नही आती है, और किसीको पूर्वभवके सस्कारोसे जरासे यत्नमे आ जाती है। छ वर्षकी लडकी अग्रेजीमे भाषण दे लेती, गाथाये पढ लेती, सस्कृत बोल लेती, तो इसे पूर्वभवके सस्कार नही कहेगे, और क्या कहेगे? जिसके ज्ञानके परिणाम ठीक हो गये तो उसके धर्मविकास बढते जाते है तथा जिसके मलिन हो गये तो वह उसी ओर झुकते जाते है। जैसे एक बर्तन सीधा रखो तो उसपर सीधे-सीधे बर्तन जमाते जाओ, और औंधा (उल्टा) रखो तो उल्टे-उल्टे ही रखते जाओ। भगवानस्वरूप यह आत्मा द्रव्यरूपी बीजको पर्यायोकी रतिमे खो रहा है। अगर एक मिनट भी अच्छा बीता तो २४ घटे अच्छे बीतेंगे, मगर करे क्या, जैसी योग्यता है वैसी ही तो गध निकलेगी।

एक सेठके दो लडके तोतले थे। देखनेमे बडे ही खूबसूरत थे। नाई उन दोनोकी

गगाईको आया। पिताने कह दिया था कि देखो तुम दोनो मुह नही खोलना। नाई जब देखने लगा तो बोला—ये तो दोनो राजपुत्र जैसे बडे सुन्दर लगते है। बडे ही भाग्यशाली है दोनो। तो लडका कहता है—अभी चन्डन गन्डन तो लगाओ नही है। तब दूसरा क्या कहता है—अबे डडाने का काई ती। बनावट छुपाये छुपती नही, वह अवसर पाकर प्रकट हो जाती है। सहजस्वरूप वैसा ही रहता है। बनावट नही बनाना चाहिए। भगवानके आगे लोगोको दिखाओ अपनी बात, तो क्या तत्त्व निकलेगा ? तत्त्व तो आत्मामे आत्माके द्वारा ही मनन करने योग्य है। उसी प्रकारसे ध्यानकी अवस्था प्रकट होगी। उत्साह करके ज्ञान और सयम मे आगे बढना चाहिए।

स्वसमय ही आत्माका हित है—हित वह है जहाँ अनाकुलता है। अनाकुलता स्वस्थितिमे ही है जो कि मोक्षमार्गका कारण है। प्रत्येक बातमे आन्तरिक और बाह्यदृष्टि चलती है। पूछा, आत्माका हित किसमे है ? अनाकुलतामे है। अनाकुलता कहाँ है ? वह मोक्षमे है। यह तो सही है, किन्तु यह बाह्यदृष्टि है। इस बुद्धिमे आत्मदृष्टिको छोडकर अन्य स्थानपर स्थिति पहुची, अनाकुल स्वभाव आत्मतत्त्व समझनेमे आया, तब वही सही मार्गपर आ गया। जब स्वस्थितिमे आ गया उसे आन्तरिक दृष्टि कहते। इसमे आनेपर शीघ्र ही कभी तो आठ कर्मोसे छूटकर लोकके अन्तिम भागमे ऊपर सिद्धक्षेत्रमे पहुच जाता है। वहा पहुचे तो निराकुलता है ऐसा नही, आत्मस्थितिके कारण वहाँ निराकुलता है। अब कर्मोसे रहित है, यह बाह्यदृष्टि है। स्वसमयपना आत्माका हित है, यह आन्तरिक दृष्टि है। इसमे केवल एक स्वाभाविक स्थिति है। आत्माका ज्ञाताद्रष्टा रहना स्वयका हित है। उद्देश्य, व्यवहार व निश्चयमे साक्षात् यही है, किन्तु अन्तर हो जाता है दृष्टिका। बाहरी दृष्टिका प्रभाव रागद्वेपसे है, वहाँ अन्तरदृष्टि नही रहती तथा आन्तरिक दृष्टिमे स्वस्थिति हो जाती है तथा रागद्वेपका निरसन हो जाता है। मै जुदा हू, शरीर जुदा है। निमित्तनैमित्तिककी जाल अलग है। पिता-पुत्रका सम्बध होनेसे दोनो पराधीनताका अनुभव करते है। जो स्थिति गुजर रही है वहाँ दोनो स्वतत्र है। देहके प्रत्येक अणुओमे भी कुछ करनेमे मै समर्थ नही हू। ऐसे ज्ञाताको कोई शारीरिक रोग हो जाय तो वह उसे दूर करनेमे भी लग जावे तब भी उसकी प्रतीति स्वानुभव मे जैसी की थी वैसी रहती है, यहाँ स्वानुभवके भग होनेपर भी वह प्रतीति नही हटती है। अन्तर पड जाता है प्रयोगका। अनुभूति उपयोगके लगनेको कहते है। देहसे भिन्न अपनी आत्माका उपयोग लगे उसे स्वानुभव कहते हैं। ज्ञानीके स्वानुभव हो तब भी कर्मकी निर्जरा है और स्वानुभव नही हो तो ज्ञानी सम्यग्दृष्टिके कर्मकी निर्जरा है। हा स्वानुभव हो तो भी उसमे विशेपता आ जाती है। वह ज्ञान मोक्षमार्गमे है। उससे कर्मोका सवर और निर्जरा चलती रहती है।

जैसे जिसको बडी खुशी हो, हर तरहसे इन्द्रियभोगोसे सतुष्ट है तो ऐसे ज्ञानी मनुष्य को भोजन कब किया, कितना किया, कहाँ किया ? यह कुछ भी मालूम नही रहता, खाते हुए भी नही खायेके समान है। यहाँ ज्ञानीकी दृष्टिमे स्वानुभवके सिवाय सब निस्सार है, सब निष्प्रयोजन है। केवल आत्मसग अच्छा प्रतीत होता है, जिसको यह बुद्धि आई वह अपनी ओर ही रहता है। यहाँ मुनीमका दृष्टान्त बडा उत्तम जचता है। मुनीम सेठकी सम्पूर्ण दुकान सम्हालता है, कहता है हमारे पास आपके इतने जमा है, इतने नाम है, हजारोका सौदा क्रय विक्रय करता है। उसकी स्थिति १० हजारकी ही मुश्किलसे हो, किन्तु इतना बडा व्यापारी बना बैठा है। तो भी वह यह कभी नही निश्चय करता कि यह सब सपत्ति मेरी ही है। लडकियोकी शादी हो जानेपर लडकियाँ ससुराल जाते समय जब भी जावे तब रोती है, वृद्धावस्था तक ये रोना नही छोडती, किन्तु उनके मनमे यही रहता है कि घरके कार्य पडे है वे बिगडे जा रहे है, उन्हे जाकर सम्हालना है। पर लिवाने कोई नही आया तो लडकेको पत्र दे दिया लिवा ले जाने का। लेकिन रोना जरूर है जाते समय व प्रतीति कुछ और ही रहती है। लोकमे ऐसे अनेक कार्य हो जाते है, जिनको हृदयसे किया ही नही जाता, केवल ऊपरी तौरसे करना मात्र रहता है।

अब अपने प्रभुका सहारा लो—हमने जब ऐसे प्रभुका सहारा लिया है, जिसके स्मरण मात्रसे विपदाये चकनाचूर हो जाती है। बाहरी विपदायें तथा दुख भी उपयोगके द्वारा भाग जाते है। तब, अब अन्धेर कहाँ रहा, भला ही होगा। रामायणमे एक कथा आती है—परशुराम और लक्ष्मणका झगडा होता है। परशुराम लक्ष्मणसे कहते हैं—'अरे बच्चे लक्ष्मण सामने से हट जा।' तो लक्ष्मण उसका उत्तर देते है—

यहाँ कुम्हड बतिया कछु नाही, तर्जनि देख अङ्ग कुमुलाही।
कर विचार देखो मन माही, मूंदो आँख कहू कछु नाही॥

यह बात प्रचलित है कि कुम्हडेको अगुली बतानेसे सड जाता है। हजार पाँच सौ कुहेम्डोमे २५ या ५० ही बचते है या बढ पाते है। बाकी शुरूमे ही नष्ट हो जाते है, किन्तु बच्चे सोचते है बाकी कुम्हडे अगुली दिखानेसे सड गये है, तो यह भ्रम बुद्धि ही करना है। हाँ तो लक्ष्मण यह कह रहा है कि यहाँ कुम्हडबतिया मैं नही हू जो तुम्हारी तर्जनी देखकर डर जाऊ। अरे तू मुझे क्या हटाता है, अपनी ही आख बद कर ले, फिर तेरे लिये कही कुछ नही है। इसी तरह अपने उपयोगकी आख मीच लो। तब कही कुछ भी आपत्ति नही है। आत्मस्वभाव एक तरहका गढ़ है। इस गढमे अगर बैठ जाये तो वह इतना मजबूत गढ है कि कर्मबंधके सम्बध कर्मसतति आदि सबको मेटनेमें समर्थ है। स्वभावके गढमे बैठ जाऊ तो सब शत्रुओकी चिन्तासे मुक्त हो जाऊ। इससे शत्रुके सब आक्रमण विफल हो जाते है। जब

जब दु ख है तब तब प्रभुको भी विचारो। अरहंत सिद्धके स्मरणमे एक वह सुख है कि भव बन्धन तोडनेमे सहायक होता है। प्रभुके उपयोगसे आत्मस्वभाव तक पहुच जाना सुगम है; प्रभुका और आत्माका स्मरण करते समय बाहरी पदार्थोंमे रुचि न लेवे। प्रभुकी शुद्ध पर्याय चेतनद्रव्यस्वभावके अनुरूप है। अतः प्रभुताके ध्यानसे प्रभु द्रव्यमे अभेद उपयोगी हो जाता है, और प्रभुद्रव्यस्वभाव व आत्मद्रव्यस्वभाव समान है, अत पश्चात् निज आत्मा ही आधार हो जाता है। देखो अन्तमे कषायकी बात निजमे आई। परवस्तुओके आश्रयसे होने वाली शान्ति स्थायी नही रह सकती। उसे रखनेमे स्वभावदृष्टि ही समर्थ है, परवस्तु नहीं।

भैया! कोई क्लेश ही नही, कोई क्लेश हो तो सोचो, क्लेश क्या है? यह अमुक राग ही क्लेश है। मुझे रागादिक मिटाना है, यह भाव लाओ। सुख और दु ख अलग कार्य नही हैं। उन दोनोका अविनाभाव सम्बध है। यह राग अहित है, दु ख है, इसे मेटना चाहिये। जिस-जिस पदार्थके रागसे दु ख हुआ हो वह हमे छोडना चाहिये, ऐसा विचार करते ही उसमे कमी आ जाती है तथा राग करते हुए ठीक कर रहा हू, इसमे जुटना चाहिये, तो करते हुए उसमे वृद्धि आ जाती है। सुख तो एक स्वभावमे ही है। सुख और दु:ख दोनो मोहरूपी मदिरा है। सुख वह है जो इन्द्रियोको अच्छा लगे। इन्द्रियोको अच्छा लगना भी अच्छा नही है और बुरा लगना भी अच्छा नही, आकुलता सहित यह इन्द्रियसुख भोगा जाता है। गम्भीर मुद्रा वालोको भी यदि वे आत्मतत्त्वमे अपरिचित हैं तो अन्दरसे आकुलता रहती है। आकुलता बिना लौकिक सुख नही हो रहा है। दु खका भी कारण आकुलता है और सुख और दु:ख दोनो पराश्रित हैं, कर्मोके आधीन हैं। सुख और दु:ख दोनो अन्त सहित भी हैं।

ससारके मूल हेतु हम स्वय है। इसी प्रकार मोक्षके भी कारण हम ही है। इसके अतिरिक्त कल्पना मोहजभावोकी महिमा है। मोहज नष्ट करना ससारके बंधनसे मुक्त होना है।

किसका सुख सदा साथ रहा—जितनी देर भी सुख रहे उसके मध्यमें दु:ख न हो ऐसी बात नही है। लोग विवाहमे ऐसा मानते हैं, ३ दिन तक सुखी रहते है, किन्तु वहाँ भी एक-एक मिनटके पश्चात् दु खकी अवस्थायें चल रही हैं, कारण आकुलतायें और भयकर रूप धारण कर लेती हैं। बचपनकी अवस्थाका वर्णन सुखमय किया जाता है। किन्तु उसमे अनेक दु ख हैं। माँ बापने पीट दिया सो दु ख है। बाजार साथमे नही ले गये सो दु ख है। वाछित खिलौना या अन्य पदार्थ नही मिले, दूध, भोजन समयपर नही मिला, बच्चे आपसमे लड पडे, किसीने डाँट दिया, गोदमे से नीचे उतार दिया आदि अनेक दु:ख है। सयोगमे सुख माननें वालोंको लगता है हमे कोई दु:ख नही है। किन्तु उसे यह मालूम नही कि हमे अपना कितना कार्य करनेको पडा है? अगर वह नही किया, यही भटक गये तो अचेत होकर पड़ा रहना होगा।

भूलकी बात दुहराओ मत—कोई मुसाफिर कही जा रहा था। जगलमे आकर रास्ता भूल गया और रात्रि भी हो गई। यहाँ वहाँ भटकता है किन्तु रास्ता नही मिलता है। इतनेमे विवेकसे सोचता है अगर मै और चला गया तो कहाँका कहा पहुच जाऊगा और फिर दिन भर भी रास्ता मिलनेमे समाप्त हो जाय। इस लिए अब कही न जाकर यही बैठना चाहिये। इतनेमे बिजली चमकती है तो सडक दूर चमकती हुई दीख जाती है। बिजली का कितना प्रकाश, लेकिन दिख गया सब। फिर भी सडक तक जाना दुर्गम है। चल सकते नही, फिर भी हिम्मत आ गई कि अब मै सवेरा होते ही अपने गन्तव्य स्थानको चल दूँगा। रात्रि है तब तक वहाँ पडा है। सवेरा होते ही ऐसी पगडडीसे चला जो सडक तक जुड सकती है। रास्तेमे झाडियाँ, काँटे, गड्ढे, टीले आदि अनेक थे, उन सबसे बचता हुआ चला, सडक जैसे-जैसे पास आती जाती है उसे प्रसन्नता बढ़ती जाती है। सडकपर पहुच गया तो वहाँ बडे आरामसे विहार कर रहा है। पहले जैसे विकल्प अब न रहे। चलते चलते अपने लक्ष्य स्थानके समीप पहुच गया है, वहाँ आरामसे बैठता है। इसी प्रकार जीव मिथ्यात्वरूपी भूली हुई झाडीमे पडा है। वहाँ कदाचित भेदबुद्धिरूपी बिजलीका उजाला चमका, तब रास्तेकी सही प्रतीति हुई। ससारमे कुछ नही मिला, बिजली चमकनेसे आत्म-स्पर्श हो गया, पथ ज्ञात हो गया। जब तक वह असयत है तब तक साधन नही बनता। यहाँ असयम रात्रि व्यतीत हो रही है। रात्रि बीतनेपर सयमासयमरूपी पगडडीसे चला, सयमासयमका पालना भी कठिन है। यहाँ सारे बखेडे साथ लगे हुए हैं। अब सयमके राज-मार्गपर आ चुका है। वहाँ एक रस है, कोई दु ख नही है। जैसे बच्चे माँ से टिनककर माँगके खा लेते हैं उसी तरह यहाँ मुद्रा बनाकर भिक्षा भोजन कर लेते है। यह भी है गौरव सहित, किन्तु भिक्षा ही तो है। वहाँ माँगना था यहाँ अयाचना वृत्ति है। इस भेषमे अयाचक वृत्तिसे भोजन किया और फिर स्वस्वरूपमे लग गये। विहार करते करते जैसे-जैसे स्थान समीप आ रहा है वहाँ गति मद पड गई है। फिर विश्राम स्थलपर पहुच गये है और अब आनन्दमे मग्न हो गये।

सच्ची श्रद्धा ही आकुलता दूर करती—समतभद्राचार्यने सम्यक्त्वको श्रेय और मिथ्यात्वको अश्रेय बताया है। न सम्यक्त्वसम किञ्चित्त्रैकाल्ये त्रिजगत्यपि। श्रेयोऽश्रेयश्च मिथ्यात्वसम नान्यत्तनूभृताम्॥ आचार्यश्री को अपनी घटनासे सम्यक्त्वका माहात्म्य खूब बस गया। वे तो यह भी लिखते है—सम्यग्दर्शनसम्पन्नमपि मातङ्गदेहजम्। देवा देव विदुर्भ-स्मगूढाङ्गारान्तरौजसम्॥

यह बात समंतभद्राचार्यने तब लिख पाई थी जब उनपर बीत गई थी। माना वह मातग नही थे, किन्तु मुनि दीक्षा छेद करके गेरुआ वस्त्र पहनकर पैर पसारकर गाडी भर अन्न

खाया, वहाँ भी सम्यग्दर्शन चमक रहा था, कुछ समयको उसपर राख पड गई थी। अब निश्चय क्रिया मातगदेहज है। उसमे भी सम्यक्त्वका अधिक माहात्म्य है, वह देव है। उसे विकासकी साधनरूपी पगडडी नही मिल पा रही है। अतः बीहड अन्धकाररूपी झाडीमे भले ही पडा हो, किन्तु वह ज्योतिष्मान है। इसलिए तत्वज्ञान बढे, सयमकी ओर रुचि जागृत होवे, ऐसी पद्धतिकी बुद्धिसे धर्ममे प्रवेश कर जाना चाहिए।

द्रव्यका स्वरूप क्या है—अब द्रव्यका लक्षण कहते है—'द्रव्य लक्षण उपलक्षयति।' यहाँ देखा 'कहते' की जगह 'उपलक्षयति' कहा है। इससे सिद्ध है यह देव अपने ही समीपमे लक्ष्य करके अपने लिए ही कुछ कह रहा है। द्रव्यका लक्षण इस गाथामे कहते हैं—

अपरिच्चत्तसहावेणुप्पादव्वयधुवत्तसवद्धम ।
गुणव च सपज्जाय ज त दव्वति वुच्चति ॥९५॥

नही छोडा है स्वभाव जिसने ऐसा स्वभाव होनेके कारण जो उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य करिके सवद्ध है, गुणवान है, सपर्याय है, वह द्रव्य है। ऐसा तत्त्वज्ञ पुरुष कहते हैं। अपना स्वभाव नही छोडता, ऐसा द्रव्य है। द्रव्यका स्वभाव क्या है ? सत्त्व और उसका विशेष क्या है ? जीवका चेतना और अजीवका अचेतना, धर्मद्रव्यका गतिहेतुत्व, अधर्मद्रव्यका स्थितिहेतुत्व, आकाशद्रव्यका अवगाहहेतुत्व और कालद्रव्यका परिणमनहेतुत्व, अस्तित्वसे अभिन्न हो, वह द्रव्य है। द्रव्य 'है' ही इस वर्णनमे यह ज्ञेयाधिकार चल रहा है। पचाध्यायीमे द्रव्यका लक्षण कहनेमे पहला पूराका पूरा अध्याय रख दिया है। द्रव्यका यथार्थ पूरा लक्षण समझ ले तो वह इतना ही कार्यकारी है जितना कि आत्मस्वरूप समझना, क्योकि इसके स्वरूप समझनेमे भी वीतरागता रहती है। द्रव्यका यथार्थस्वरूप तव समझे जब सामान्यरूपसे कहा जाता है, विशेषरूपसे नही। सामान्यस्वरूप किसी विशेष द्रव्यमे टिकता नही। सामान्य द्रव्यको समझते हुए कौनसी ज्योति अपने आप जग जाती है ? द्रव्यका सामान्यस्वरूप किसी विशेषता से सम्बध रखता नही। सामान्यस्वरूप समझते हुए चाहे वह पुद्गलके ख्यालसे सोचा हो, किन्तु द्रव्यका सामान्यस्वरूप समझनेके कालमे जातिगत या व्यक्तिगत द्रव्य नही छुवा जाता। अत सामान्यस्वरूपका आधार कोई बाह्य द्रव्य न होकर आत्मद्रव्य ही रहता है। जहाँ ध्यान, ध्याता, ध्येय एक हो जाते हैं। जिस जाननवृत्तिका विषय परद्रव्य नही है उसका विषय स्वात्मद्रव्य ही पड जाता है, यही बात दर्शनके लक्षणोसे बताई गई है। दर्शनके दो लक्षण हैं—(१) महासत्ताका प्रतिभास होना, (२) अन्तर्मुख चित्प्रकाशदर्शन। ये दो लक्षण विरोधी नही है, इनका समन्वय किया जाय तो विदित हो कि महासत्ताका प्रतिभास अन्तर्मुख चित्प्रकाशरूप पडता है। यहाँ सत्ता वह कहलाती है जिसका सम्बध किसी एक पदार्थसे हो याने अस्तित्व सामान्य महासत्ता कहलाती है। अस्तित्व सामान्यके प्रतिभासमे बाह्य पदार्थ तो

आधार रहा नही तब जो उस प्रतिभासका उपादान है वही उसका विषय हो जाता है । जैन दर्शनमे महासत्ताके प्रतिभासको दर्शन कहते है । अन्तर्मुख चित्प्रकाश यह भी सही है । महासत्ताका प्रतिभास किया, वही अन्तर्मुख चित्प्रकाश हैं । सब द्रव्योमें सदृश जातिको अस्तित्व सामान्य या (महासत्ता) कहते हैं । कहो किसी द्रव्यके साथ सत्ता नही है, तो ऐसा नही कहना । वह सामान्यस्वरूप है, वह प्रत्येक द्रव्य है । यद्यपि उस वृत्तिका आधार कोई द्रव्य याने सब व्यक्तिद्रव्य रह सकता है तो भी सादृश्य अस्तित्व करि महासत्ता (अस्तित्व सामान्य) देखा जा रहा है । परकी सत्ता सोचो या नही, तो भी वह सामान्य है । जिसका विषय अन्य नही पडता, उसका आधार आत्मा है, वह अस्तित्व बन जाता है । आत्मा उपादान तो था ही अब आधार व विषय भी आत्मा ही है । जब महासत्ताका प्रतिभास हो, विषय और उपादान तो था ही, वह महासत्ता बन जाता है । इस प्रकार वह चित्प्रकाश सत्त्व प्रतिभासरूप होता । अस्तित्व-प्रतिभास ऐसा ही प्रकाश रखता है जो जाननरूप बन जाता है । वह अपने आप उपलक्षित हो जाता है । अस्तित्व सामान्य सोचा जा रहा । सोचने वालेको, अस्तित्व वालेको ज्ञान होता है । यह कौन रहा ? सामान्य । उस समय ध्यान, ध्याता और ध्येय भिन्न नही बन सकता । अस्तित्व प्रतिभास वाला तो यह आत्मा है तो पर क्या रहा ? जहाँ कोई परविषय नही रह सकता, वहां विषयस्वरूप रहेगा या स्व ही रहेगा । वह द्रव्य अपने स्वभावको कभी नही छोडता । इसका स्वभाव उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य करके सम्बद्ध है याने वह बनता, बिगडता और बना रहता है, यही स्वभाव है । ये तीनो बाते साथ-साथ चलती है । अनुभवमे जचनेपर ही बात मानो—जैनधर्ममे जो द्रव्यका स्वरूप बताया है उसे विज्ञान वाले बहुत पसद करते है । जैनधर्ममे बाबा वाक्य है सो बात नही है, इसको जबरदस्ती नही कहा कि मान ही लो ।

अनुभवमे बैठे सो मान लो—जिसको अपनी श्रद्धा नही उसे सम्यग्दर्शन नही होगा । यह पहले भगवानने कहा कि उसे तो जानो खुद जिसकी श्रद्धा ज्ञान बिना सम्यग्दर्शन नही रह सकता । इसे भगवानने बताया है सो सात तत्त्व मान ही लो । इसका यह कोई हेतु नही है । वहाँ आप अपना अनुभव जुटाये तभी कार्यकारी है । स्वर्ग, नरक, द्वीप, समुद्र, वनोको मानना रूढिवश नही है । जिन शास्त्रोमे प्रयोजनभूत तत्त्वोका वर्णन है वह पूरा गले उतर चुका तथा मेल खा गया तो अब सर्वज्ञके अन्य वाक्य गले नही उतरें यह हो नही सकता । परोक्षका चीजोके बारेमें भगवान साक्षी नही है, यह कैसे कहेगा ? मान लो विमानोपर किसी मनुष्यकी भुजा पसराया जाय और वह वहा स्पर्श कर ले तब क्या विश्वास करोगे ? अगर आपका किसी व्यक्तिके उत्कर्षसे मेल खा जाए तो आप कहेंगे जो वह करे वह हमे मान्य है । इसके लिए हम कोरे कागजपर दस्तखत कर देते है, यहा तक तय कर लेते हैं । यह श्रद्धा किस बलपर रखी है ? उसकी बात प्रकृति व गुण पूर्ण फिट हो गये है । जब कि मनुष्यमे

एक न एक दोष है ही वहा श्रद्धा पा लेते है। तब सर्वज्ञके कहे हुए वचनोमे जहाँ कोई दोष नही और सर्वज्ञप्रणीत सात तत्त्वोका दृढ मन्थन आत्मबलसे किया है वहा सन्देह रहे यह कितनी अपूर्णताकी बात है ? जहा श्रद्धा नही है वहा शराबी मनुष्यके समान कभी माँ को माँ और बहनको बहन भी कहे तो भी उसे कुछ भान नही कि यथार्थ बात यही है। भैया ! वर्तमानमे अल्पज्ञोको किसीको एक रोग लग गया है। थोड़ेसे ज्ञान वाले अपनी ओरसे कहते हैं, आचार्यने जो यह कहा है वह गलत कहा है इस रोगपर हमारा तो यह ख्याल है कि सात तत्त्वोका अनुभव इस तरह गले नही उतरा कि जो वर्णन किया है वह यह सत्य भाव बन जाय। ऐसोंके भक्त भी मिल ही जाते है। उनका साहित्य छपाने वाले, आपत्ति आनेपर ढाढस देने वाले, घबडाहट मिटा देने वाले मिल ही जाते हैं। श्री कुन्दकुन्दाचार्य वीरसेन, समन्तभद्र यहाँ होते तो ज्ञात होता कि वह कैसी प्रवृत्तिके भरे थे ? अगर यहाँ साक्षात् होते तो हितार्थी चरण ही चूमता रहता। यद्यपि वे आज नही है तो भी उनके वचनोमे श्रद्धा सुदृष्टिसे कम नही होती। मोक्षमार्गके सात तत्त्वोपर जिसे दृढ अनुभव हो गया उसे अश्रद्धा नही है। यह हौआ जैसी बात नही है। सर्वज्ञने जो कहा उसमे प्राय. किसीका तो निर्णय नही है, किन्तु कह रहा—भगवानने जो कहा है, वह सत्य है। द्रव्यका स्वरूप वैज्ञानिक वादियोसे भी खोज करा लो, गलत निकल आवे तो कहो। बनना, बिगडना, बने रहना सदैव मिलेगा। स्वर्गमे देव थे, मनुष्य हो गये, यहाँ देव बिगड गये, मनुष्य बन गये और आत्मा बनी रही। इसी तरह घडा बना तो मृत्पिण्ड बिगड गया, घडा बन गया और मिट्टी बनी रही, यह बात प्रत्येक द्रव्यके प्रति घट जायगी। जो भी है उसीमे यह स्वभाव पडा है। प्रत्येक वस्तु नियमसे परिणमती रहती है। उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य सयुक्त है, वह द्रव्य है।

भारतीय झडा भी द्रव्यका स्वरूप बता रहा है। हरा रग उत्पादका सूचक है, लाल रग व्ययका सूचक है और सफेद रग बने रहनेका प्रतीक है। श्रद्धाके बिना कुछ भी नही चल सकता। भगवानको सोचते निर्विकल्पता आ जाएगी या उत्सव करते-करते आवेगी, इस भरोसे मत बैठो। ध्यानको निर्विकल्पताका आलम्बन लेना चाहिए, वह अखड अव्याबाध होता है। भगवानपर दृष्टि है तो चूँकि वह अनन्त चतुष्टयके धनी हैं, वह एक पर्याय है, अतः वह काल-कृत खड है। निर्विकल्पताके लिए ध्यानमे चाहिए अखड स्वभाव। किस गुणकी वह पर्याय है, किस द्रव्यकी पर्याय है ? इस तरह पर्यायपर भी भूतार्थपद्धतिसे यथार्थ दृष्टि जावे तो द्रव्यके स्वरूपपर ध्यान पहुच सकता है।

पूजा करते समय जब भावोकी हिलोर नही समाती तथा चित्त गद्गद् होकर विचार बन्द हो जाते हैं, वहाँ निर्विकल्प क्षणोको पा लेता है। शुरूमे तो भगवानके ध्यानमे रहते, आखिरीमे या मध्यमे नही रहते। स्वरूप सोचते-सोचते भगवानको भी भूल जाय तो वहा

निर्विकल्प ध्यान आ जाता है। यहा निगोद आदिके बारेमे सोचकर द्रव्यका ध्यानमें सोचना सुगम नही है, क्योकि उसके दु:खोको सोचा जाएगा तो अनेक तरहसे तर्क-वितर्क प्रणाली अपनानी होगी, किन्तु यहा बिना काट-छाटके भगवानका सहजस्वरूप चितारा जाता है, जो कि चिदानन्दमय है। तत्त्वज्ञान बिना सर्वज्ञके सहज गुणोपर शीघ्र पहुच जायेगे सो बात नही है। जैसे कि साधारण लोग बता देते है कि इसका यह चमत्कार है। ध्यानकी उत्कृष्ट अवस्था होना परिणामोकी निर्मलतापर निर्भर है।

स्याद्वादकी सर्वज्ञ व्यापकता—यहा भी खोटे विकल्प छोडने होगे, अच्छे परिणाम अपनाने होगे। देखो सर्वपर्यायोमे आत्मद्रव्य वही रहता है। यहा भी उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य रहता है। ये सब चीज नयी माननेपर भी पुरानी है और पुरानी पुरानी होकर भी नयी है। यह तत्त्वको बताने वाली बात है, यह सबका निज निजका प्रभाव है। ये तत्त्वके स्वरूप छोडे भी नही छोडे-जा सकते थे। इसलिये इसका उपयोग सभीने किया है। रोटी खाते समय, रिश्तेदारोमे, नेतागिरीमें, बात करतेमे सभीमें स्याद्वादका स्वरूप मिलता है। स्याद्वाद बिना कही भी टिक नही सकते। यदि जीव सर्वथा अनित्य हो तो रोटी बनाने वाला गुजर गया, अब खायेगा दूसरा अथवा काम करने वाला गुजर गया, अब फल पावेगा दूसरा आदि तथ्य हो तो कौन काम करेगा ? तथा यदि जीव नित्य ही है सर्वथा याने कुछ बदलना होता ही नही है तो काम करना, फल पाना कुछ भी नही हो सकता। ऐसी मान्यता वालोका यदि मान्यताके अनुरूप तथ्य हो जावे (जो कि असभव है) तो काम कैसे चलेगा ? स्याद्वादके बिना उनका चका नही चला। सो उनके देवता इस रूपको धारण कर गये। ब्रह्मा, विष्णु, महेश इन तीनोको क्रमश. उत्पाद, व्यय और ध्रौव्यका रूपक माना है। तत्त्वसूत्रमे ओमके १३ अर्थ लिखे है। उसमे १ अर्थ उत्पाद व्यय और ध्रौव्य भी माना है। अव्यय अर्थात् व्ययका अ उत्पादका उ और मध्यका म इस तरह अ+उ+म मिलकर ओ अर्थ निकलता है। इससे यह शिक्षा मिली कि प्रत्येक पदार्थ बनता है, बिगडता है, फिर भी बना रहता है। मोह कहा किया जाय ? तत्त्वज्ञान बिना शल्य हो जाती है, इन्होने मेरी बात नही रखी है। मैं उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य करि युक्त हू, वर्तमान पर्याय अनित्य है। यदि विषयकषायकी परिणति मेटकर उत्तम स्वभाव बनाया जाय, इसमे खोटी परिणति मेटना व्यय हुआ और अच्छा स्वभाव होना उत्पाद तथा मनुष्यपना ध्रौव्य है ही या आत्माका रहना। कई मनुष्य कहा करते है कि क्यो झझटमे पड रहे हो—पठितव्य सो मर्तव्य, न पठितव्य सो मर्तव्य। दात कटाकट किं कर्तव्य ? अरे मर ही जाय बिल्कुल सो भी ठीक था, झगड़ा निपटा, किन्तु ऐसा है कहाँ ? सब रहेगे।

तुम सदा रहोगे, हे आत्मा भगवान ! तुम्हारे उपलक्षमे यह द्रव्य स्वरूप समर्पित करता हू।

प्रत्येक पदार्थ शक्तिव्यक्तिमय है—आगे गुण पर्याय वाला द्रव्य है, यह कहेगे। गुण शक्तिको कहते है, पर्याय व्यक्तिको कहते है। द्रव्यके लक्षणको बताया था। द्रव्य किसे कहते हैं ? जो सत्त्व स्वभावको न छोडे उसे द्रव्य कहते है। द्रव्यका स्वभाव चैतन्य या मूर्तिकता नही है। द्रव्यस्वभाव वह है जो सर्वद्रव्योमे व्यापक हो। जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये ६ जातिके द्रव्य है। उन सबमे सत्त्व है जो सत्त्व स्वभावको कभी न छोडे वह द्रव्य है। वह सत्त्व कहीसे आया नही है। अगर कहीसे आया है तो पहले द्रव्य था या नही ? कहोगे था तो। द्रव्य तो था ही, अब सत्त्वका प्रयोजन क्या कर रहा ? द्रव्यका स्वभाव सत्त्व सहित है। पदार्थका प्रयोजन सत्त्व है, वह था ही सत्त्व तत्त्व ही नही। यदि कहो पहिले द्रव्य नही था तो निराधार सत्त्वका स्वरूप ही क्या ? द्रव्यने सत्त्वपना कभी नही छोडा। द्रव्य ही उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यस्वरूप चल रहा है। प्रतिक्षण द्रव्य बदलता है और बना रहता है। जो बदलता हुआ बना रहे, यह द्रव्यका लक्षण है। हम बदलते हुए भी बने रहते हैं और बने रहते हुए भी बदलते रहते है। सिद्ध भगवानमे बदलना पाया जाता है, किन्तु जो सदैव एक समान परिणमता हुआ बना रहे, उसे बदलना कहते नही। सिद्धकी पर्याय भी प्रतिक्षण बदलती रहती है।

आत्मा सभी पदार्थोंकी भाँति अन्य द्रव्य व उनके गुण एव पर्यायोमे असकीर्ण है, पृथक् है, असंकर है। ऐसे आत्माके अभेद चैतन्यस्वभावमय भगवानकी उपासना करके पर्यायमात्रमे ही आसक्तिका परिहार जो भव्य करते हैं, उनसे पर्यायव्यवहारकी क्रियायें छूट जाती है, ज्ञाताद्रष्टा रहने रूप आत्मव्यवहार होने लगता है। पर्यायव्यवहारका आश्रय न लेनेसे इस अन्तरात्माके रागद्वेष विश्रान्त होते हैं, परम उदासीनता प्रगट होती है, समस्त परद्रव्यकी सगति दूर होती है, केवल स्वद्रव्यसे ही सगति होती है। यही उपास्य व परमतत्त्व है।

सर्व शास्त्रोकी देशनाका लक्ष्य अखंड चित्पिण्ड भगवान आत्माको जान लेनेपर है। नाना अन्य ज्ञान पाये तो वे स्वचेतक न होनेसे अज्ञानवत् हैं। इस अन्तर्गत भगवत्तत्त्वकी उपासना करके आनन्द लेने वाले अन्तरात्माको यह सारा जड समागम न कुछसा निःसार लगता है। अहो, प्रिय आत्मन्! आनन्दसागर! अपने वैभवको भूलकर अपने उपयोगमे परका विषय लाना तो बन्धकथा है। अपने स्वरूपको देख, उसमे ही रम। तुझमे कोई कमी है ही नही, तू स्वय ज्ञान आनन्दका पिण्ड है। देखो—आत्मद्रव्यकी साधारणता ही दृढ करने वाले आचार्यदेव द्रव्यके लक्षणको उपलक्षित करते हैं अर्थात् अपने समीप ही उसे उपभोगमे लाते हैं जिस प्रकार, उसी प्रकार अपन भी लक्ष्यमे लावे।

जिसने अपना स्वभाव कभी नही छोडा, वह उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यकरि समवेत सम्बद्ध है, गुणवान है, पर्यायवान है, वह द्रव्य कहलाता है। द्रव्यका स्वभाव न तो किसी क्षण

आरब्ध हुआ और न कभी परित्यक्त हुआ तथा न कभी परित्यक्त हो सकेगा। स्वभाव स्वभाववान अलग-अलग वस्तु नही है, केवल परिचयके लिये वस्तुको भाव व भाववानके रूपमे व्यवहार किया जाता है। गुण शक्तिको कहते है, उसीको अभेदरूपमे स्वभाव कहते है।

भेददृष्टि व अभेददृष्टिका असर—द्रव्य गुणसहित पाया जाता है। भेददृष्टिसे गुण नजर आयेगा। अभेददृष्टिसे गुण दृष्टिगत नही होते। मैं चेतनामात्र वस्तु हू। अगर उस सम्बधमे कुछ बोले तो व्यवहार है, लेकिन समझानेके लिये और समझनेके लिये भेददृष्टिसे इसका वर्णन करना पडेगा। अनादिकालसे सयोगबुद्धिके वश आत्मा स्वरूपको भूलकर दुःख लगा रहे है। जिसके भूलनेसे दुःख बने थे, वह भूल मिट जावे। एक निज आधारको छोडकर तरगें बाहर न जावे, यह हमारा स्वभाव है, बडप्पन है। बडप्पन तो उसमे है जो सिद्ध भगवानकी पर्याय है, वैसी अपनेमे पानेका प्रयत्न करें या उस पर्यायके करने व आत्मसात् करनेके लिये कटिबद्ध रहे। कितना ही चतुर, होशियार होवे घरमें, लेकिन पूरा बडप्पन उसमे है कि जो अरहत, सिद्धकी पर्याय है, उस अनुरूप परिणति हो, वही बडप्पन है। अन्यथा त्यागमे बडे भी क्या कामके, बाह्य धर्ममे बडे भी क्या कामके ? अरहत सिद्धपनेकी पर्याय पाना बडप्पन नही है तो क्या हलकापन है ? स्वभावपन भी बडप्पन है। स्वानुभव ही हमारी असली दुकान है, इसे खूब बढा-चढाकर चलाना चाहिए। इस दुकानका विज्ञापन प्रकाशित करानेकी जरूरत नही, उसका विज्ञापन स्वतः हो जायगा। स्वय और बाह्यमे झूमते चले जायेंगे शातिका सौदा खरीदनेके लिये भव्यजीव। इसकी कीमत सबके लिये एक रहेगी और सच्चा सौदा वहाँसे खरीदना है तो क्रेता (खरीददार) भी स्वात्मानुभव वाला बन जावे। मन्दिरमे, स्वाध्यायमे, अध्ययनमे, एकान्तमे, सभा-सोसाइटियोमे, आहारमे, विहारमे जहाँ जो करे वहाँ स्वका स्पर्श होता रहे। अभेद और भेदके चमत्कार अनुपम है। वस्तु भेदरूप या अभेदरूप है क्या ? दोनों नही हैं। वस्तुको समझनेके लिये जब तक वस्तुभेद नही बताया जाय तब तक समझमे नही उतरती। अनन्तदर्शन, अनन्तज्ञान, अनन्तसुख और अनन्तवीर्य ये भेदरूपसे आत्माके गुण हैं, और अभेद रूपसे शुद्ध चैतन्यमय, एकाकार अखड, आनदरूप है। वस्तुस्वरूप कहनेमे नही आता, वह अभेद रूप भी नही है, अभेद समझने समझानेमे भी भेद पहिले ही घुस जाता है। किसीसे कहा जाये कि २ बजे रात्रिको स्टेशनपर जाना। रास्तेमे एक बडका वृक्ष मिलता है, उसके बारेमे लोग कहते है कि उसपर भूत रहते हैं, किन्तु भूत नही है, तुम डरना नही। यहाँ डर पैदा तो पहिले ही करा दिया, भूत नाम सुनते ही मनमे वह सस्कार आ गया। उसी तरह वस्तुका स्वरूप सुनते ही भेद आ गया। व्यवहारसे यहाँ विशेष जाना। निश्चय एव व्यवहारसे भी पदार्थ नही जान सके। निश्चयका साधन व्यवहार बनेगा। जो अभेदको अतिक्रान्त करके पहुचे वह पूर्ण है।

पूर्णकी पहुंचका साधन अभेद :—कोई देहाती मनुष्य किसीके साथ बम्बई देख आया। उससे वहाँकी जानकारी पूछी गई तो वर्णन करने लगा—वहाँ जहाजोके ठहरनेका बन्दरगाह है, बढिया बढिया बाजार है, मकान है, बगीचे और बताते बताते-२ कहता है वह देखते ही बनता है। उसी तरह आत्मा ज्ञान दर्शन, सुख वीर्यसे सहित है, इतनेमे दूसरा कहता है वह जानते (अनुभव करते) ही बनता है। अनन्त शक्तियोका पुञ्ज है जैसे कि शक्ति मात्र बिजली है वैसे ही आत्मा परसे छुआ नही जा सकता वह चैतन्यशक्तिमात्र है। प्रत्येक द्रव्य शक्तिमात्र हैं। इन्हे तो लेकर भी देखा जाना है या समझमे आ जाता है किन्तु आत्म-द्रव्य लेकर नही जाना जाता। आत्माको विज्ञानवृद्धिके ढगसे भी नही देखे तो भी उपासना करे तो वहाँ तक पहुच जाते है, किसी एक शक्तिको विषय बनाकर ध्यान करें तो भी उसका स्वरूप जाना जा सकता है। कोई कोई कहते हैं द्रव्य या सत् एक ही है, जरा उनकी ओरसे भी देखो, चूकि हर एक वस्तु ६ प्रकारसे देखी जाती है द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, द्रव्य व स्थापना, अतः द्रव्य या उसके सत्के बारेमे भी देखो तो ६ द्रव्य बन जायेंगे। यद्यपि ऐसा नही है कि एक अखण्ड सत् ही ६ प्रकारमे देखा जाता किन्तु प्रत्येक सत् अपने-अपने अस्तित्व-मय है जो भी इस निगाहसे देखेगा वह ६ रूपताके रहस्यका अन्दाज कर लेगा।

द्रव्यके ६ भेद हैं—(१) नाम द्रव्य, (२) स्थापना द्रव्य, (३) द्रव्य द्रव्य, (४) क्षेत्रद्रव्य, काल द्रव्य और (६) भाव द्रव्य। ये ६ प्रकार प्रत्येक पदार्थपर घटित हो सकते है, जैसे पूजा, घडी, चौकी, जीव, पुद्गल आदि पर। अरहन्त, सिद्ध, महावीर आदि की पूजा नामपूजा हुई पार्श्वनाथ भगवानकी प्रतिमामे स्थापना करके पूजा करना स्थापनापूजा है। अष्टद्रव्यसे द्रव्यपूजा हुई। जिस स्थानसे निर्वाण हुआ वहाकी पूजा करना वह क्षेत्रपूजा हुई। जिस समय निर्वाण हुआ उसी तिथिकी पूजा की जाय वह कालपूजा हुई और परिणामोकी विशेषता जैसी रहे या प्रभुभावकी पूजा हो वह भावपूजा हुई। उसी तरह नाम विशेष कहना नाम घडी। एक समय बताने वाली (बच्चो जैसी घडी) स्थापना घडी। जहा वह रहे वह क्षेत्र घडी। पुद्गल परमाणुओसे युक्त द्रव्य घडी। समय देने वाली काल घडी और मूल्य बताया जावे तब भाव घडी। यहाँ केवली स्वरूपकी विशेषता बतलानेको कहा है। द्रव्य भी ६ तरह का कह सकते हैं—(१) नाम वस्तु, (२) स्थापना वस्तु, (३) द्रव्य वस्तु, (४) क्षेत्र वस्तु, (५) काल वस्तु, (६) भाव वस्तु। कल्पना ऐसी कर ली। यो तो प्रत्येक द्रव्य ६ तरहका है। अब सत्के ६ रूप देखें, चलानेका कार्य जो करे वह नाम सत् है। नाम ही तो चलाता है सब कुछ, जैसे स्त्रिया गाना गाते समय कहती है आपसमे, कोई गीत तो गाओ। तब कोई कहती है तुम पहले लय (चाल कडी) तो उठाओ तब बादमे कहती कोई नाम तो रखो उसका। बिना नाम रखे भजन नही होता है। कुछ बन्धुओंने माना :—१ शब्द सत् है। उसके ही

६ रूप यहां कल्पनासे माने है। बच्चोंके पैदा होते ही नाम रखा जाता है, आपको जल्दीमे ज्योतिषी नही मिला तो कहने लगते अमुकका लडका हुआ चलो वही नाम हुआ। चलानेका काम करे कोई यह धर्मद्रव्य हुआ, प्रतिबिम्बमे स्थापना कर दो तो क्या किया कुछ ठहराना किया, ठहरानेका काम करे जो कोई वह अधर्मद्रव्य हुआ। चलाने वाला होनेसे धर्मद्रव्य नाम वस्तु हुआ, ठहराने वाला होनेसे अधर्मद्रव्य स्थापना वस्तु हुआ, द्रव्य सत् पुद्गल द्रव्य हुआ, क्षेत्र सत् आकाश द्रव्य हुआ, काल सत् समय हुआ और भाव सत् हुआ चेतना।

किसी भी पद्धतिसे आत्माकी यथार्थतामें पहुंचो—आत्माकी विशेषता बतला रहे है। द्रव्य षडात्मक (६ प्रकारका) है, वहा आत्मा भावमात्र, चेतनमात्र, शक्तिभाव, ज्ञानमात्र एतावन्मात्र है। वह आत्मा दिख जावेगा जब शुद्ध चेतना मात्र अनुभवमे आवे। शुद्ध एतावन्मात्र है। विकल्प भी हो जाये तो आत्माका ग्रहण कैसे होता है? यदि क्षेत्ररूपसे आत्मा कहेगे, शरीरमात्र आत्मा कहनेपर कहेगे इतना बडा है, इतना बड़ा है, नाम बताकर कहेगे या आकार बताकर कहेगे, किन्तु इतना ही चबाते जाओ तो अनुभवका मार्ग समझमे नही आवेगा। यद्यपि सभी द्रव्य नामस्थापना द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावात्मक है, किन्तु किस द्रव्यको किसकी मुख्यतासे जानना सुगम है? ऐसा मद्देनजर रखते हुये उस अलंकारसे इस प्रकरणको कहा जा रहा है कि मानो समस्त विश्व एक है और वह नामस्थापना द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावात्मक है, उसमे भावात्मक तत्त्व जीव है। प्रयोजन इसका यह लेना कि चैतन्यभावकी पहिचानसे जीवका परिचय प्राप्त होता है। समस्त विश्वको एक सत् मानकर कहा, उसकी कल्पना इसी रूपमे न करना, किन्तु सोचना ही है ऐसा तो सादृश्यास्तित्व (महासत्ता) अथवा मात्र अस्तित्व स्वरूपकी दृष्टिमे एक देखना। स्वरूपास्तित्व तो सबका खुदका खुदमे है। स्वरूपास्तित्वमे ही अर्थक्रिया है। स्वरूपास्तित्व होनेपर ही सादृश्यास्तित्वकी दृष्टि बन सकती है। यहा भावकी मुख्यतासे आत्माको देखो। अनुभवसे सोचो आकारादिकी दृष्टिसे सोचनेसे निर्विकल्पताकी ओर नही जा पा रहे है, आत्माके बारेमे तरह तरहकी बाते विचारो तो तरगे चलेंगी। तरंगे समाप्त हुई तो चेतन मात्र है। समझानेमे भेद मात्र है।

आत्माको शक्तिपुञ्ज तो कहा ही है—आत्माका कौनसा गुण निरर्थक है, जिसे निकाल दिया जावे। ज्ञान भी जाननमात्र आत्माका है, उसे निकालो तो रहेगा क्या? किसी भी गुणको निकालो द्रव्य नही रहेगा। द्रव्य अनन्तगुणात्मक है, उसमेसे कुछ निकाल दो तो वह नही रहेगा। द्रव्य गुणात्मक है, यदि गुण ही रहने दो, द्रव्य कुछ नही तो द्रव्य निकाल देनेसे ज्ञान ही निकल जाये। आत्मा पर्यायमय (सहित) भी है। पर्याय वाला है, जो ऐसा है वह द्रव्य है, ऐसा कहते है। इस लोकमे जो कुछ अनारब्ध स्वभावभेद देखा जाता है वह अनादिसे चला आ रहा है। हम भी अनादिसे चले आ रहे है, किन्तु पर्यायमे दृष्टि रोककर कहता

है कि मैं ४० वर्ष या ५० वर्ष का हूं। पर्यायदृष्टि लगानेसे छोटे बडे नजर आते है। अन्यथा सब अनादिकालीन हैं, अभेददृष्टिसे अनारब्ध स्वभाव है। किसी दिनसे आरम्भ नही हुआ तभी तो लिखा है—"ववहारेणुवदिस्सइ णाणिस्स चरित्त दसणं णाणं। णवि णाणं ण चरित्त ण दंसणं जाणगो सुद्धो।" आत्माके ज्ञान है, दर्शन है आदि सब व्यवहारसे कहलाये गये है। निश्चयसे तो आत्माके न ज्ञान है, न चारित्र है, न दर्शन है। आत्मा एक शुद्ध है, ज्ञायकमात्र है। भैया! वैसे तो किसी शब्दसे बोला तो अशुद्ध हो गया। दुनियामे किसीका नाम नही है। नाम नही जानते तो कहते हैं कि ये कोट वाले, कमीज वाले, तागा वाले, गाड़ी वाले आदि। लो ये विशेषण भी नाम बन गये। पर आत्मा कहकर पुकारो तो खुलासा अर्थ बतावे। आत्मा = निरन्तर जानने वाला। ब्रह्म = जो अपने गुणोसे बढता रहे। हे चेतन! अर्थात् हे प्रतिभास करने वाले। देखो भैया! चौकीका भी नाम नही। चौकी चतुष्कोणा अर्थात् चार कोनो वाली।

यहां नाम किसीका नही है— सब कुछ दृश्य बिना पतेका लिफाफा है। कोई विशेषता घट गई, उसीसे पुकारने लगे। चटाई, चट + आई = शीघ्र आ जाती है। सदूक, स + दूव = अच्छी तरहसे जिसमे वस्तुए ढुकाई जावें। जो नाम हैं, सब विशेषण हैं। निरपेक्ष चेतन इसके नाम नही हैं। एक अखड द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावरूप आत्मा है। खडरूप आत्मा है। घटा-बढा नही, उसमे अनन्त कलाये है। खण्डभावात्मक है, मेचकामेचक है।

हलुवा जब तक मुखमे नही आया तब तक ये दशायें हो रही हैं। हलुवामे अभी सूजी इस दर्जेकी चाहिए, घी कम है, शक्कर और होना चाहिए आदि विकल्प उठ रहे है। बादमे तैयार होनेपर हलुवा खाते समय कोई बात भी न करे, बोलनेमे स्वाद घट जायेगा। अतएव आँख मीचकर खानेमे मस्त हैं। कोई सामने है या नही, इसकी भी खबर नही रहती। ऐसा ही आत्मा स्वभाव स्वादमे अभेद बन जाता है। पहले भेदपर चले, फिर अभेदपर चले। आत्मा ज्ञातामात्र है, स्वभाव भेद भी नही भेद अभेद। स्वभावका समन्वय करके अभेदपर ले गये। भेद अभेद दोनो विकल्पोसे छूटकर आत्मा समझमे आता है। ज्ञात होगा, खुदके वृक्ष जगलमे या अन्यत्र खडे हुए है, लेकिन उनके लिए बिना सरकारी आज्ञाके नही काट सकते, काटनेपर जुर्मके पात्र होवेंगे तो वहाँ अनुभव करते है कि लो खुदकी चीज खुदको अलभ्य हो गई। उसी तरह खुदकी वस्तु है आत्मानन्दका भोग करना, लेकिन जब स्वात्मा देव चैतन्यमे रत नही हुए तब तक उसे नही पा सकते।

महासत्ता सादृश्यास्तित्वरूप—वास्तविक ढगसे उत्पाद, व्यय एव ध्रौव्यको जानना चाहिए। स्वरूपअस्तित्वमें या सादृश्यअस्तित्वमे दोनोका लक्षण भिन्न-भिन्न है। सही सत्त्व प्रत्येकका आपका है। वह सब सादृश्यसम्बधमे एक ही प्रकारका है। क्या उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य

सादृश्यअस्तित्वमे नही है ? वस्तुतः नही है । स्वरूपअस्तित्वमें होगे, फिर भी सबकी जाति मानी सो सहायतामे भी उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य सम्भव लो । उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य मनुष्य जातिमे होगे या एक एक मनुष्यमें होगे । मनुष्यमे होगे, जातिमे सबको वह लेनेसे व्यक्तिमे परिवर्तन करो तब जाति-जातिमे होना चाहिये । उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य होगा तो वह स्वरूपअस्तित्वमे होगा । दूसरे शब्दोमे कहते है प्रादुर्भाव (मोटीफिकेशन) वह प्रायः विभावमात्रमे लगता है । (मेनीफिस्टेशन) भी वहो यह स्वभावमे प्रायः फिट बैठता है । च्युत हो जाना अर्थात् द्रव्यमे न दिखना, विलीन हो जाना व्यय है । ध्रौव्यमें अडिग बना रहना है । द्रव्यत्वसे देखो—वह अपना रूप नही बदल सकता । जो उत्पाद, व्यय एव ध्रौव्य—इन तीनोसे लक्षित है वह द्रव्य हुआ । कोईकिसीसे कहे जावो ।

दूध लाओ तो वह दूध गौ जातिसे लायेगा या गौ से ? अगर कहे गौ जातिसे लायेगा । तो सब गायोका दूध उसमे होना चाहिए, सो होना असम्भव है । वह गौ से ही लायेगा, और यह परिणामन स्वरूपास्तित्वमे होगा, अवान्तरमे होगा । द्रव्य छः नही है । जीव, पुद्गल क्या एक-एक है ? वह तो अनन्तानन्त है, काल असख्यात है । इनकी जाति भी क्या परिणमेगी ? उन्हे ऐसी एक जातिमे बाँध देना भी कल्पनासे होगा । द्रव्यकी जातियाँ कैसे बाँधो ? जैसे कुछ भेद स्वरूप नही और सबका सग्रह हो ।

जाति व व्यक्तिकी दृष्टिका असर—द्रव्य दो तरहका है—(१) मूर्तिक और (२) अमूर्तिक । मूर्तिक तो एक ओर रखो और अमूर्तिककी अपनी जातिको एक ओर रखो । यह एकमेक है या भिन्न-भिन्न है । अमूर्तिकमे फर्क है या नही ? फर्क पाया जाता है । कोई द्रव्य जानता देखता है—जैसे जीव । कोई गतिमे कारण बनता है धर्मद्रव्य । कोई स्थितिमे कारण बनता है अधर्मद्रव्य । कोई स्थान देता है यह आकाशका कार्य है और कालद्रव्य परिणमनमे कारण पडता है । इस तरह अमूर्तिक ५ जातिमें बाँट दिये गये । अब तो स्वभाव भेद नजर नही आता । कोई कहे आता है, भव्यका जुदा स्वभाव है, अभव्यका जुदा स्वभाव है । आचार्य कहते है—नही, तुम पर्यायस्वभावमे पहुचकर प्रश्न कर रहे हो, नही तो आचार्य पहले ही द्रव्य कह देते । भव्य और अभव्यमे रच मात्र भी अन्तर नही है । भव्य और अभव्यका जीव तो बराबर है । इसलिए ६ जातियाँ है, यह सिद्ध हुआ । जीव जाति और पुद्गलजाति तो परिणमन नही करती । अलग-अलग जीव परिणामन करता है और पुद्गलका पिण्ड परिणामन न करके पुद्गलका अणुपरिणामन करता, इस विभावपद्धतिमे सबका परिणामन विलक्षण है । सादृश्य अस्तित्वमे परिणमन नही है, किन्तु स्वरूपअस्तित्वमे परिणामन होता है । जलमे तरगें उठ रही है । उसमे एक पर्यायकी उत्पत्ति और एकका व्यय पाया जाता है । निस्तरग अवस्था होनेपर भी तरगके व्ययको देखो वह सर्वथा नष्ट हो गई क्या ? सर्वथा नष्ट नहीं हुई और रही

भी नही। व्ययके विषयभूत जो पर्यायें है, उनमे पर्यायमुखेन वस्तु लक्ष्यमे आवे, इसका अर्थ हुआ व्ययमुखेन द्रव्यका ज्ञान हुआ।

मात्र पर्याय तो लक्ष्यमें आता नहीं है—अगर पूछा जाय कि आप घडी देख रहे या रूप, तो कहना होगा कि रूपमुखेन घडी देख रहे हैं। जो रूप वस्तुतः पृथक् सत् नही है, उसे जानेगा कौन ? आम चूसते समय रस जान रहे या आमको ? रसमुखेन आमको जान रहे सो सत् है। जो सत् है वह चीज है। रस तो विशेषता है, किन्तु आदमी भूलसे कहते है कि रस को चूस रहे है। रस आमसे जुडा नही। नीला, लाल, सफेद कमल है, यह कमलकी विशेषता की दृष्टिसे लाल आदि प्रतीत हुआ, न कि कमलको छोडकर। अगुलीकी सीधी पर्याय टेढी अगुली करनेसे उसमे व्यय हो गई तो यह टेढी रूपके उत्पादमे ही जान पावोगे। टेढी पर्यायि का व्यय सीधी अगुलीका सम्हाल रूप है। टेढी पर्यायकी निमग्नता सीधी पर्यायकी उन्मग्नता रूप है। सर्वथा नष्ट होकर अगुली सीधी या टेढी ही हो गई, सो ऐसा भी नही है तथा इतना है, वह परिणमता रहता है। वह उत्पाद, व्ययरूप तथा अस्तित्व सामान्य है अर्थात् ध्रौव्य कर युक्त है। अस्तित्व कभी नही खोता है। कोई कहते है कि अभाव सद्भावरूप है और कोई सद्भावसे अभाव मानते है। अन्योन्याभाव, अत्यन्ता प्रागभाव, प्रध्वसभाव—ये सब अभाव अन्यके सद्भावरूप है। इसी तरह व्यय है जो वह उत्पादरूप है, उत्पाद, व्ययरूप है और दोनो सद्भावरूप है अर्थात् द्रव्यका स्वरूप अस्तित्वरूप है।

यथार्थस्वरूपका भाव ही प्रथम धर्म है—अहिसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, भक्ति, व्रत, उपवास, मूर्तिअर्चना, तप, ध्यान, धृति सभी मानते हैं, किन्तु जैनशासनमे मुख्य बात क्या है कि उसमे द्रव्यका स्वरूप पदार्थ है। जैनधर्मकी तात्त्विक पढाई भी द्रव्यके स्वरूप से प्रारम्भ होनी चाहिए और वही पढाई सही है। द्रव्यके तत्त्व तक पहुचनेके लिए उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य कर सहित यह वर्णन चल रहा है। द्रव्य गुणवान है। गुण विस्तार विशेष हैं, एक साथ अनादिकालसे अनन्तकाल तक रहते हैं। गुण कही इस बुराईसे न समझें, जैसे लड्डुओका घडा। तो घडा लड्डुओका तो नही है, किन्तु घडेमे होनेसे इस तरह कह दिया जाता है व घडा अलग है, लड्डू अलग हैं। उसी तरह आत्मामे गुण रहते हैं, यह बात नही है। वह स्वय सत् रूप है। वस्तुमे जो एक साथ रहे, उन्हे विस्तार कहते है और जो अमुक-अमुक कालमे रहे उसे आयत कहते है। जैसे चौडाई एक पकडमे आती है वैसे लम्बाई नही आती है। कहते हैं कि उसका ससार लम्बा होता चला जा रहा है। ससार लम्बा कर रहा है अर्थात् कालभेदमे कह रहे है। ससारमे रुलता रहेगा।

वस्तुके सामान्य गुणोका परिचय करें—सामान्य गुण जो सबमे पाये जावें वे ये है—अस्तित्व, नास्तिक, द्रव्यत्व, पर्यायत्व, असर्वव्यापकत्व, एकत्व, अन्यत्व, सप्रदेशत्व, अनन्तदेशत्व,

मूर्तत्व, अमूर्तत्व, सक्रियत्व, अक्रियत्व, चेतनत्व, अचेतनत्व, कर्तृत्व, अकर्तृत्व, भोक्तृत्व, अभोक्तृत्व, अगुरुलघुत्व इत्यादि सभी द्रव्योमे पाये जावे, ऐसे सब सामान्य नही है, सबमे भी पाये जावे या एकसे अधिकमे पाये जावें। अस्तित्व यह सामान्य गुण है, क्योंकि सब द्रव्योमे पाया जाता है। कुछ गुण सबमे पाये जाते है, कुछ सबमे नहीं पाये जाते हैं। नास्तित्वगुण भी साधारण है। जो एक-एक हो रहे वह एकत्व। जो सबसे विभक्त रहे वह अन्यत्व, यह भी सामान्य गुण है, क्योकि सब अन्यरूपसे जुदा रहते हैं। द्रव्यत्व जिस गुणके कारण पदार्थ परिणमता रहे, यह सबमें है। पर्यायत्व भी सबमे है। व्यापकत्व जो सब जगह रहे, जैसे आकाश। धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य ये सर्वाकाशमे व्यापी है, सो सर्वगत है। असर्वगत जीव पुद्गल व कालद्रव्य है। जीव पुद्गल और कालद्रव्य सर्वगत है क्या ? नही है। असर्वगत तो सबमे व्यापक नही। जीवमे भी असर्वगतपना है, कालमे असर्वगतपना है। एकत्व भी साधारण गुण है, क्योकि सभी पदार्थ मात्र अपने आपके एक स्वरूपमे है। अन्यत्व भी साधारण गुण है, क्योकि सभी पदार्थ एक अपने आपके अतिरिक्त शेष सभी पदार्थोंसे अत्यत विभक्त हैं। जिसमे बहुत प्रदेश हो यह बात एक हो जातिके द्रव्यमे है या अन्यमे भी है ? जीव, धर्म, अधर्म या आकाश इन चारोमे सफेद तत्त्व है। पुद्गल व कालद्रव्य बहुप्रदेशी नही है। पुद्गलका पिण्ड बहुप्रदेशीपन है, वह उपचारसे है। वस्तुत पुद्गल एकप्रदेशी है। जिसका एक ही प्रदेश हो दूसरा विभाग न हो सके, वह सामान्य गुण अप्रदेशपना बताया गया। पुद्गल एक ही प्रदेशी है। जीव, धर्म, अधर्म और आकाश द्रव्य बहुप्रदेशी हैं। काल और पुद्गल द्रव्य अप्रदेशी हैं। मूर्तित्व पुद्गल तत्त्वको छोडकर सबमे है क्या ? सबमे तो नहीं है। कभी जीव भी मूर्ति होता है व्यवहारदृष्टिसे। बन्ध दृष्टिसे सभी मूर्तिक माने है। धर्म, अधर्म, आकाश और काल सभी अमूर्तिक माने है। अत. अमूर्तत्व भी सबमे सामान्य हो गया। पुद्गल और जीव द्रव्यमे सक्रियत्व है। धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य और कालद्रव्यमे अक्रियत्व है। अत. सक्रियत्व, अक्रियत्व भी द्रव्यके साधारण गुण हो गये।

अचेतनतत्त्व तो सामान्य गुण है, वह जीवद्रव्यको छोडकर प्रत्येक द्रव्यमे पाया जाता है। चेतनत्वको भी सामान्य गुणमे लिया है, यह अचेतनकी अपेक्षा औपचारिक मात्र समझना चाहिए अथवा जीवच्छरीरके उपचारसे अचेतनत्व, कर्तृत्व, अकर्तृत्व। कर्तापन भी सामान्य गुण है और अकर्तापन भी सामान्य गुण है। प्रत्येक द्रव्य अपने आपका करने वाला है सो कर्ता हो गया, क्योंकि अपना-अपना परिणमन करने वाला है। एक अणु भी दूसरे अणुका कुछ नही करता, इसी प्रकार कोई भी द्रव्य अन्य किसीको नही करता, इस-लिए अकर्तृत्व सबमे है। भोक्तृत्व और अभोक्तृत्व—सर्वद्रव्य अपनी अपनी पर्यायपनको [illegible]ले है इसलिए भोक्तृत्व साधारण गुण है, जीव पुद्गल धर्म अधर्म आकाश और काल

अपने-अपने गुणोको परिणतियोसे भोगते है। अभोक्तृत्व अपनेको छोडकर दूसरी पर्यायको कोई भी नही भोगता है। कोई एक द्रव्य किसी अन्यको नही भोगता है, अतः अभोक्तृत्व सामान्य गुण हो गया। अगुरुलघुत्व एक दूसरेके गुण दूसरे रूप न हो जायें, पर्यायें दूसरे रूप न हो जाय। यह भी सब द्रव्योमे पाया जाता है। अत अगुरुलघुत्व भी सामान्य गुण हो गया। जितने ही यह गुण है वह सब भेदविज्ञानको जाहिर करते हैं। कोई भी पदार्थ अपने को कर्ता है वह अन्य रूप नही बनता। मित्रोमे कितना ही अभिप्राय रूप प्रेम मिल जाय, लेकिन वह दोनो जुदे ही रहेगे। शरीरके पिण्डका एक परमाणु भी अन्य रूप नही बनता। जब अणु अणुका स्कन्ध बनता है और वहाँ बन्धेद्रधिकौ पारिणामिकोकी बात होती है, वहाँ भी एक अणु दूसरेको अपना परिणमन नही देता है, किन्तु द्वयधिक याने योग्यावस्था सम्पन्न परमाणुको निमित्त पाकर दूसरा परमाणु जो है वह अपने ही परिणमनसे परिणम रहा है।

विशेष गुणोको भी देख लो—अब विशेष गुण बतलाते है। विशेष गुण वह है जो अपनी जातिमे ही पाये जावें, अन्यमे नही पाये जावें। अवगाहनहेतुत्व आकाशद्रव्यका विशेष गुण है। सब द्रव्योके अवगाहनमे अर्थात् अवकाश देनेमे निमित्त होनेको अवगाहनहेतुत्व कहते है। यह गुण आकाशद्रव्यमे ही पाया जाता है। इसी प्रकार आगे भी जो जो विशेष गुण कहे जावेंगे वे भी उस लक्ष्यभूत द्रव्यमे ही पाये जावेंगे। विशेष गुण कहो या असाधारण गुण कहो एक ही बात है। असाधारणका अर्थ है जो सबमे-साधारण न हो याने अलक्ष्यमे जो नही हो सकता, उसे असाधारण कहते हैं।

जीव पुद्गल जो चले, उनमे निमित्त होना धर्मद्रव्यका कार्य है, यह अन्य द्रव्यमे नही है। अत गतिहेतुत्व धर्मद्रव्यका विशेष गुण है। अधर्मद्रव्यका जीव पुद्गलोको ठहरनेमे निमित्त होना कार्य है, सो अधर्मद्रव्यका विशेष गुण स्थितिहेतुत्व द्रव्य ही नवीन अवस्थायें धारण करे जिसको आयन (लम्बाई) कहते है, यह कालद्रव्यका कार्य है, वे वर्तमानत्व तत्त्व कालद्रव्यका विशेष गुण हुआ। रूपादिपना यह पुद्गलमे ही पाया जाता है। देखो तो भैया! आत्मा चेतन और शरीर अचेतन इन दोनोका कैसा सम्बध मिला है कि शरीरपर सुखसे मक्खीको भी नही बैठने देते। आत्माका स्वरूपमे शरीरका स्वरूप व्यापक नही है तो भी मोहकी लीला विचित्र है, मोहमे तो अन्यके देहमे रति होती। अगर बच्चेको भी दुःख होवे तो माँ व दूसरे प्रेमी अपना दुःख मानते है तथा सदैव रक्षामे आत्मीय बुद्धिसे तत्पर रहते हैं। अगर बच्चेको रास्तेमे या अन्यत्र कोई वेदना हो तब क्रोध सीमा तोडकर उबल पडता है, देखें कौन है मारने वाला। कुछ लोग परिवारके दुःखको अपना महसूस करते हैं और कुछ लोग परिवारके दुःख को महसूस करके अपने दुःखको ही महसूस करते हैं। इस समय परिवार वालोको उस व्यक्ति

की यथेष्ट सेवा-शुश्रूपा करनी चाहिए, नही तो उन परकी प्रधानता हो जायगी, व्यवस्था बिगड जायगी, किन्तु तत्त्वज्ञान भी तो रखे। कुछ लोग दोनोको अर्थात् स्वयको एव परिवार वालो को भी दुःखी नही देखना चाहते, पर उनका वश चले तब है न। अपनी देहमे भी औरके शरीरकी रुचि है। किसीको किसीमे, किसीको किसीमे। विचित्रता है मोह प्रवलताकी, बाह्यमे अन्तर भले पड जाओ, किन्तु अपनी परिणतिमे अन्तर नही आने देना चाहते। पर्यायमे याने परिणतिमे व आत्मस्वभावमे महान अन्तर है, लेकिन भ्रमवश उसे अपना समझ रखा है। जडमे निजत्वकी बुद्धिसे यह प्राणी भी जडवादकी ओर अग्रसर होने लगा।

पुद्गलका विशेष गुण रूपादिमत्ता है अर्थात् जिसमे रूप, रस, गध व स्पर्श पाये जावें उसे पुद्गल कहते है। रूपादिमत्ताका पर्यायवाची मूर्तिकता भी हो सकता, परन्तु यहाँ मूर्तिकता शब्दसे नही कहनेका प्रयोजन यह जाना है कि कर्मबन्धके कारण ससारी जीवकी भी उपचारसे मूर्त कहा गया है, सो मूर्तत्व साधारण गुणोमे कहा है। जीवमे रूप, रस, गध, स्पर्श तो कभी भी पाये ऐसा नही हो सकता। इस प्रकरणको मद्देनजर रखकर रूपादिमत्ता व मूर्तिकतामे भेद भी है, यह समझा जा सकता है। रूपादिमत्ताका अर्थ तो स्पष्ट ही है, मूर्तिकता यह अर्थ भी सम्भव है कि जहाँ दो या अनेक पदार्थ सयुक्त होकर एक पिण्डरूपमे आ सकते है, उस शक्तिको मूर्तिकता कहते है।

जीवमे चेतनत्व पाया जाता है। द्रव्यका स्वरूप है, जिसको पहिचाने विना धर्मका स्वरूप नही पहिचाना जा सकता।

गुण जाने जाते है, लाये नही जाते—देखना यह है कि वह गुण कौनसे है जो सभीमे पाये जाते है, और वह गुण कौनसे है ? जो प्रतिनियत द्रव्यमे पाये जाते है। ये गुण कहीसे रखे नही गये, वह सव द्रव्योमे व प्रतिनियत द्रव्योमे जुडे-जुडे है। एक मनुष्यमे किसीकी अपेक्षासे पिताका नाता है, किसीकी अपेक्षासे पुत्रका, किसीकी अपेक्षासे मामा, भानजा, काका, वावा, भाई, वहनोई, साला, भतीजा एव फूफाके अनेक नाते है। लेकिन उसके लिये पितृत्व धर्म लग गया हो सो वात नही, इस तरह पुत्रत्व आदि धर्म भी नही है। नही पितापनका जुदा हिस्सा होना चाहिये, पुत्रपनेका भिन्न हाथ आदि तथा चाचा, ताऊ, भानजे आदिके जुडे-जुडे हाथ पैर, धड आदि होना चाहिए, यह वात तो पाई नही जाती। यह सव भिन्न दृष्टिसे माननेका ही अन्तर है, उदाहरण मात्र है। जव हम द्रव्यपर दृष्टि डालते है तो विशेपतायें ज्ञात होती है। पर्यायें सहित जो हो वह आयत अर्थात् लम्वाईपनका वोध कराती हैं। काल-भेदसे होने वाली चीज आयत विशेपसे देखी जाती है। द्रव्यकी पर्याय दो तरहकी होती है—(१) समानजातीय. (२) असमानजातीय। गुणपर्यायके भी दो भेद होते है—(१) स्वभाव, (२) विभाव। जो सब गुण है उन्हीका नाम पर्याय है। कोई कहे द्रव्य यह है, गुण यह है,

पर्याय यह मै तो भैया इस तरह भिन्न-भिन्न नही समझना चाहिए। लक्ष्य, लक्षणका भेद है, किन्तु प्रदेशका भेद नही है। उत्पादादि यद्यपि प्रदेश भेदको प्राप्त नही है तथापि उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य लक्षण जुडा-जुडा है। एक-एक करके द्रव्य देखते जाओ, सब द्रव्यकी विशेषतायें हैं ? जैनदर्शनकी बात कितनी परिलक्षित होती है। सर्वप्रथम सर्वज्ञदेवके शासनमे द्रव्योंके स्वरूपका वर्णन है व उत्कृष्टरूपमे इसकी जैनधर्ममे विशेपता है, उसे गणधरने स्पष्ट बताया कि उस वस्तुस्वरूप तत्त्वको पूर्वाचार्यों श्रुतकेवलियोने उसे ग्रहण किया, तत्पश्चात् उसी परम्पराकी धाराको अन्य आचार्योंने प्रवाहित किया। पाप पाच, तत्त्व सात आदि तत्त्व भी इस स्वरूपाधारमे अत्यत समीचीन हेयोपादेयादि कर्तव्यमे उतरते हैं। कुछ अन्य पुरुषोने छल तत्त्व, निग्रहत्व आदि माने हैं कि इन-इन तत्त्वोकी श्रद्धा करें तो मोक्ष जावे, बैकुण्ठ जावे। उनकी सैद्धान्तिक चर्चा बडी व्यस्त है कि कोई तत्त्व किसीमे गर्भित है तो कोई किसीमे है।

इन्द्रियज ज्ञान तक ही न रहो—किसीके यहा पृथ्व्यादि चार या पाच तत्त्व तो माने हैं, किन्तु चेतना तत्त्व ही नहीं माना है। इससे पता चलता है, उसका दिमाग इस सम्बधमे ज्यादा नहीं लगा। उन्हे जलमे रस ही रस मिला और कुछ नही नथा पृथ्वीमे केवल गध ही गध मिली। आगमे रूप ही रूप मिला, हवामे स्पर्श ही स्पर्श मिला अर्थात् बुद्धिगत विषमता जिसमे हो वह नाना द्रव्य लगा। गध पृथ्वी तत्त्वमे आ रहा है यह व्यवहाररूपसे यह ठीक कह रहे है, किन्तु अविचारित मरिणय। यदि पदार्थोंकी भिन्न-भिन्न विशेषतायें मुख्य अनुभूत हैं तो वह अलग-अलग द्रव्य है, किन्तु जातिमे ऐसा नही। देखो भैया! पृथ्वी आदि चार एक जातिके हैं, मूर्तकी दृष्टिसे उन्हे तो जुदे-जुदे मानें और चेतन जिसकी जाति बिल्कुल इनसे विलक्षण है उसे माना ही नही, किन्तु जैनदर्शनकी वर्णनकी विशेपता सबसे उत्तम है। अजीव द्रव्यमे पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल यह सभी आ जाते हैं। उनमे स्पर्श, रस, रूप समझमे आता है उसी तरह अग्निमे और पृथ्वीमे भी आता है। जलमे भी स्पर्श, रस, गंध तो समझमे आता है, किन्तु रूपमे दिक्कत आ जाती होगी। जो खानेसे अक्सर वायु पैदा होती है तो 'कारण सदृश कार्य' के अनुसार अब कारणमे रूप है तो वायु भी रूपी पैदा होगी या जब भाषामे लाल नीला आदि पानीके अश उडकर एक स्थानपर जमा हो जावे तो पुनः वह एकत्रित पानी उसीका मिलेगा, अत. वायुसे रूप है। इसमे चेतना उसमे चेतना है—यह भी दृष्टिभेद है। एक अद्वैतवादी हैं, उन्होने अद्वैतको लिया है तो उनके विरोधमे वैशेषिक खडे हो गये, वह कहते है पदार्थके टुकडे-टुकडे करके दिखा देंगे चूहेके समान और अद्वैतवादी कहते हैं—हाथीकी सूंड समान इन सबको एकमे ही फिट कर देंगे।

अभेदमे भेद कल्पना—आगे विशेषमे आये तो उन्होने ४ वस्तुयें मानी हैं—(१) जागृति, (२) सुषुप्ति, (३) अन्त.प्रज्ञ और (४) तुरीयपाद। (१) मोह ममतामे खूब जागृत

रहे, यह जागृति है। (२) बाहरी जगतके कार्योंमे सोया रहे, यह सुषुप्ति है। (३) कुछ भी दृश्य नही हो रही, किन्तु अन्तःचेतना विरनास है, वह है अन्तःप्रज्ञ और (४) इन तीनोसे परे तुरीयपाद है। तो (१) जागृति बहिरात्मा, (२) सुषुप्ति हुआ अन्तरात्मा, (३) अन्तःप्रज्ञ परमात्मा और (४) तुरीयपाद हुआ चैतन्यस्वरूप। जागना, सोना एव बाह्य चेष्टाये तो कुछ नही है, किन्तु अंतरमे कुछ चल रहा है, वह था अन्तःप्रज्ञ, तुरीयपाद तीनोसे भिन्न है, चेतनास्वरूप है, अतएव तीनोके लक्षणोसे भिन्न है। किसी भी तरह कुछ सत्यकी ओर सभीको आना पडता है।

कोई किसीका कुछ नही करता, ग्रथ बना तो वह शब्दोसे बन गया है। 'शद्वै रचित मया न रचित' यह आचार्यका कहना है। जितना आत्मा है, उसका लक्ष्य लेकर देख लो। घडी हाथने नही फैंकी, वह तो फिक गई। उस हाथके प्रसगमे वह है सो हो गया। प्रत्येकके यह आत्मा नजर आता है। सब उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यसे सहित है। द्रव्यके स्वरूपमे भेद नही है। जाननेके लिए नाम विशेष रख लिए गये। जैसे कहना बड़ी आँख वाला, लम्बे कान वाला साँवला, गोरा आदि। यथार्थमे तुम्ही अपने पिता, पुत्र हो।

द्रव्य सन्मात्र है, अतः सब एक है—द्रव्यका स्वरूप सत्तामात्र है, यहाँ भी भेददृष्टि कर दी। द्रव्यका सामान्य लक्षण है, इसलिए सत्तामात्रकी बात कही है। जिस कारणसे सत्ता मात्र बात कही, वह किसीके द्वारा बनाई नही गई। अव्वल तो अन्य कोई न किसीके पर्याय को बना सकता तथा न द्रव्यकी उत्पत्ति कर सकता। अगर पर्यायको बनी हुई कहो तो मान भी सकते है, किन्तु स्वयकी पर्याय स्वयके द्वारा यह भी मानना या कहना मात्र है। प्रत्येक द्रव्य अनादिसे चले आ रहे है और अनत तक रहेगे। एक निगोदिया जीवके शरीरमे इतने जीव रहते हैं कि जितने अनन्त सिद्ध हो चुके तथा फिर भी उन सिद्ध जीवोमे अनन्तगुण ही निगोदियासे रहते है तथा आगे भी जितने सिद्ध जीव होते रहेगे तब भी एक निगोदिया शरीर मे अनन्तगुणे ही बने रहेगे। मान लो अक्षय राशि ५ करोड है और अनन्त राशि ५ है तो अनन्त काल बार ५-५ करके हजार सिद्ध हो जावे तब भी वह राशि अक्षय राशि ही रहेगी। इतनेपर भी वह एक निगोदिया जीवके आश्रित रहने वाले जीव है, वे अतीतकालके सिद्धसे अनन्तगुणे कहलावेगे। निगोदिया जीवका शरीर अगुलके असख्यातवे भाग मात्र है। जितना चौडा एक प्रदेश रहता है, एकसे एक प्रदेश चौडे तथा एक अगुल ऊँचे क्षेत्रको उत्सेधागुल कहते है। अवगाहना उसके असंख्यातवे भाग है, इतने छोटे शरीरमें अक्षय राशि जीव हैं।

यथार्थज्ञानसे भक्ष्य, अभक्ष्य विवेक हो जाना सरल है—जमीकन्द, आलू, गाजर, सकला, मूली, अरबी आदिमे अनन्तानन्त निगोदिया जीव रहते हैं। मनुष्य उन्हे स्थावर जीव समझते हुये भक्षण कर जाते है, किन्तु सख्याको देखो, इसी हेतु वे अभक्ष्य है। किसी-किसीको

तो यह विशेपता ही मालूम नही गढन्तकी । त्यागकी अनकूलतापर विचार करो तो बागनो आलू सकला आदि खानेसे भी अनन्तगुणी हिंसा जलेबी, चाट खानेमे होती है । सिलसिलेसे क्रमवार त्याग करनेके लिये पहले बाजारकी बनी मिठाई (जलेबी, बाबर, इमर्ती, गुलाबजामुन आदि) छोडना चाहिये । बाजारकी पूडी एव दूध तक खाने-पीने योग्य नही । दूध बडी-बडी डेरियोसे दुकानपर आनेमे २ से लेकर ८ घटे और ज्यादा घटे तक भी लग जाते हैं, फिर उसे हलवाई लोग गर्म करते हैं । जिसमे मच्छर आदि भी गिर पडे तो सावधानी नही रखी जाती । वह तब जिसका मावा मीठा आदि बनाते, वह जिसका नाम अगर 'मच्छरपाग' रखें तो श्रेष्ठ है, सब अभक्ष्य है । पूडीमे भी आटा, पानी, घी बनाने वाले एव खाने वालोकी छुवाछूतकी दृष्टिगोचर है ही, किन्तु हिंसा तो देखो उसमे भी मासका दोष आता है । इनका त्याग तो पहले ही करो, उसके बाद आलू आदि गढन्तका त्याग होना चाहिए । रात्रिभोजन त्याग तो सिरमोर ही होना चाहिए । स्थावर हिंसासे उसकी हिंसा करना अधिक दोष व दुःखोंसे भरी हुई है । अनन्तकालसे यह निगोदिया जीव घूम रहा है तथा अनन्तकाल तक घूमता रहेगा । अनन्त निगोदिया जीव तो अनादिसे आज तक त्रस नही हुए ।

सौभाग्यका सदुपयोग करो—हमारा आपका कैसा सौभाग्य है कि पूर्णतया इन्द्रियोकी सहजता, उत्तम कुलमे जन्म, उत्तम सगति, जिनवाणीका पठन-पाठन, जिनेन्द्र भगवानका शरण, साधु विद्वानोका समय-समयपर सुयोग मिलता है । यह सब कुछ होते हुए भी हम विषयान्धतामें फसे रहे, सुयोगका कुछ लाभ नही पाया तो बुरी तरहसे पछाड खाकर गिरना होगा । जैसे नीचेसे या थोडे ऊचेसे गिरने वालेको कम चोट लगती है और ज्यादा ऊचेसे गिरने वालेको बेहोशी आती या प्राणान्त तक हो जाता है । इसलिए सोचो कि यदि इस जन्ममे सावधानी न की और बुरे भावोसे रह-रह मरे तो अधोगति मिलेगी । सो भैया ! अधः पतनके कारणोंसे बचा जाय । इस मोह योद्धाकी जोराबरी देखो कि गृहस्थीमे लडका, स्त्री या पति, भाई कोई भी विपरीत भी चले तो कहेगे हमारा अमुक पुत्र है, स्त्री है आदि अनन्ते जीवोंके दुःख देखकर स्वय ससारके पदार्थोमे आसक्त न होकर धर्मपूर्वक जीवन व्यतीत किया जाय । इस व्यवस्थित जीवनको देखकर कपूत भी सुमार्गपर आ जावे तो कोई बडी बात नही । अगर दैवयोगसे निर्धनता भी आ जाय तथा वहाँ भी तत्त्वज्ञान जागृत रहे, धर्ममे मति विधिवत बनी रहे तो वहा भी भोजन देने वाले भाई मिल जावेंगे । लेकिन स्वाभिमानके साथ धर्म नही खोया जाय । मन्दिरमे भी जिनेन्द्रदेवकी सेवामे तत्पर रहे तो आपको भी आवभगत करने वाले स्थित हो जावेंगे । वह धर्मके मार्गमे धर्मकी निन्दा नही होने देंगे । विपत्ति पूर्वभवका वरदान है । दुःख बाह्यसमागमका भी नहीं; न भी मिले तो दुःख नहीं, किन्तु उद्दडताका दुःख है जो परपदार्थोंमे रम रहे हैं, अपने आप दुःख बढा रहे हैं ।

अपने उद्धारके सात उपाय—हमारे उद्धारके ७ उपाय है, जिन्हे पूजा करनेमे भावना रूपमे भाते हैं—शास्त्राभ्यासो जिनपतिनुति: सगतिः सर्वदार्यै, सद्वृत्ताना गुण गाण कथा दोषवादे च मौनम् ।। सर्वस्यापि प्रियहित वचो, भावना चात्मतत्वे, सम्पद्यन्ता मम भव भवे यावदेतेऽपवर्ग. ।। मुझे सातकी सख्यासे बडा प्रेम है । इस पूजनमे भी सात बातें है । सात ही तत्त्व होते है । सप्तभगी न्याय तो जैनधर्मके प्राण है । मुझे ये सात बातें भव भवमे मिली कब तक जब तक अपवर्ग न हो जाय । अन्तमे अपवर्ग शब्द आया है । वर्ग अर्थात् धर्म अर्थ, काम जब तक इन त्रिवर्गोसे न छूट जाऊ तब तक सात बातें बनी रहो । कोई सोचे एकेन्द्रिय होनेसे धर्म अर्थ काम नही करना पडेगा, किन्तु वहा भी तो इन्द्रिय विषयोका चाहना है, किन्तु वह शक्ति ही नही मिली जो प्रकट बता सके । वह अपने अपने कार्य—पानी खीचना, वायु लेना आदि कार्यमे सलग्न रहते है । वे कमाते भी हैं और भोगते भी है ।

भावित सात विधेयमे प्रथम शास्त्राभ्यास—जिसके निमित्तसे आत्मा शासित हो जाती है याने सीख मिल जाती है उसे शास्त्र कहते है । मेरे शास्त्रका अभ्यास बना रहे । स्वाध्यायके चार भेद बताये है—बाचना, पृच्छना, अनुप्रेक्षा और आम्नाय । बाचना श्रद्धासे बाँचते जा रहे है, गुण भी ग्रहण करते जा रहे है, तत्त्वकी बात समझमे आ रही है । पृच्छना—पूछना भी स्वाध्याय है । उसकी इतनी निर्मल दृष्टि होती है कि मोक्षमार्गमे कोई रोडा लग रहा है उसे हटानेके लिए वह शका करके समाधान पाता है । अनुप्रेक्षा—बार बार प्रकृष्ट दक्षिण करना, चिन्तवन करना जो पढकर सोचा समझा है । तत्त्वोकी बार बार भावना करना । आम्नाय—प्रतिदिन स्तोत्र सहस्र नाम आदिका पाठ करना, घोकना, मनन करना आम्नाय है । यह भगवानका उपदेश है जिसपर चलनेसे आत्मशक्ति प्रकाशमे आ सकती है । जैसे बन्दर पहले चना मुहमे खूब भर लेता है, फिर निकाल निकालकर स्वादसे चबा चबाकर खाता है । उसी तरह पाठको कण्ठस्थ करके फिर जब चाहे उसीका अप्रतिहत स्वाद लो । इस आम्नायसे भी बडा लाभ है । धर्मोपदेशमे अवसर कहा जाता है, इसमे घमड आ जाता है, किन्तु यह नही, दूसरोको कहनेसे क्या होता है ? अगर उपदेशमे यह मान वाली दृष्टि रहे तो जरूर बेकार है, किन्तु वहाँ तो भगवानकी वाणी व्यवस्थित कहनी पडती है । साथमे कहनेके माफिक चर्चा स्वयकी रखता है । उपदेश देनेमे बोलता जाता है, सोचता जाता है, यह योग्यता उसमे कार्य कर रही है तो धर्मोपदेश भी स्वयके हितका साधन है । सुनना व उपदेश देना भी स्वाध्याय है ।

जिनपतिनुति—जिनेन्द्र भगवानकी उत्तम-उत्तम काव्यो द्वारा स्तुति करना । लेकिन जिनेन्द्र भगवानकी स्तुतिमे तो मनो चावल, बादाम, गिरी चढा देंगे, किन्तु भगवानके लघुनदन

मुनि, त्यागी, ब्रह्मचारी एव व्रती साधर्मी श्रावक भाईकी खबर तक नही पूछेगे। लोकव्यवहार मे अगर हमे आपसे प्रेम होगा तो आपके बच्चेको भी खिला दिया तो खुश हो जाते हो। उसी तरह जिनेन्द्र भगवानकी स्तुतिमे भी तो जिन वदनोका ध्यान रखना कारण समझो। भैया! जिनदर्शन करके आत्मतत्त्वकी भावना दृढ करो व सयममे वढो। शिखरजी गये तो आलू छोड दिये, किन्तु इसके साथ ही मुख्य क्या छोडना चाहिए सो नही छोडते। शास्त्राभ्यास रहे, जिनेन्द्र भगवानके चरणोमे नमस्कार रहे, वडे अभक्ष्यका तो सर्वथा त्याग रहे, जिसके द्वारा हम विषय कषाय घटावे, यह शिखरजी की वन्दनाका प्रभाव होना चाहिए। विकल्पके दुःख मेटनेको कौन समर्थ है? खुदकी स्वभावदृष्टि रहे या उपयोगमे अरहत सिद्धका ध्यान रहे तो भैया! शरण मिलेगा। भगवान आपके चरणोका ध्यान, स्मरण करते हुए मृत्यु हो तो मरण भी सफल है। उस समयमे जो वात वनी वह अगले जन्ममे भी चलेगी। जैसे वचपनके सस्कार जीवनभर अटल छाप डाले रहते हैं। भक्त पूजा करके कहता है—आवाल्याज्जिनदेव देव भवतः श्रीपादयोः सेवया, सेवासक्त विनयकल्पलतया कालोद्य यावद्गत। त्वा तस्या॰ फलमर्थये तदधुना प्राणप्रमाणहावोत्वन्नाम प्रतिवद्धवर्णपठने कण्ठोऽस्त्वकुण्ठो मम।

हे भगवन! बचपनसे लेकर अब तक आपके चरणोकी सेवा की, वह सेवा कल्पलता के समान है। आज तक हे भगवन! आपकी सेवामे समय बिताया। अब आ जायें वरदान माँगता हू कि जब मेरा मृत्युका अन्तिम समय आवे तो मेरा कण्ठ तुम्हारे नामके वर्णोंके पढने मे कण्ठ अकुण्ठ रहे व चित्त भावसे भर जावे। जिन और सिद्ध—ये दो अक्षर जो हैं वे मरते समय कण्ठमे कहनेसे रुक न जावें। यह कहा जाता है कि शुभ क्रियावोमे आसक्ति मानी, इसलिए भवबन्धन वढ रहा है, किन्तु यह एक वार भी नही कहता कि मैं अब तक अशुभ क्रियाओमे सना रहा, इससे अनादिसे भ्रमण कर रहा हू व भवबन्धन दृढ होते जा रहे है। जैसे योद्धा युद्धमे (लडाईमे) चारो ओरसे सावधान रहता है कि आगे पीछे अगल-बगलसे कोई वार न कर देवे, बचाव रखता है उसी तरह दोनो क्रियायें (अशुभ और शुभ) छोडे।

हे जिनेन्द्रदेव! तेरी भक्तिमे कमाल है। जो तेरी भक्ति करता है, वहाँ विषयकषाय तो ठहरता नही है, फिर भी आपके स्वरूपका स्मरण करनेसे आपके ही अनुरूप बन जाते हैं। आपका स्वरूप उपयोगमे आते ही द्रव्य स्वभावको अभेददृष्टिसे जानने लगता हू। अभेददृष्टिसे जहाँ सबको जान पाया तो वहाँ द्रव्यदृष्टि स्वय आत्मा पड जायगी। अगर पुण्य कर्मसे इन्द्र धरणेन्द्र भी हो गये तो वहाँ कोई कमाल नही है। लेकिन जिनेन्द्र भगवानकी भक्तिमे महान कमाल है जो कि अनेक जन्म सन्ततिको छेदनेमे समर्थ है। वह यह तत्त्वज्ञान ही तो है।

संगतिः सर्वदार्यैः—अर्थात् सर्दव आर्योके साथ सगति रहे। श्रेष्ठ पुरुषोको आर्य कहते है, जिनके धार्मिक सस्कार बढे-चढे होवे, जो रत्नत्रयके धारी हो। दुःख विकल्पका है, विकल्पो

का जिनमे सरकार भरा है उनके पल्ले दुःख ही पडेगा। जो यथायोग्य धर्म करते है उनकी सगतिमे निर्विकल्पता ही आती है। बडे महाराजजी (श्री क्षु० गणेशप्रसादजी वर्णी) कहा करते है—अधिक दुखियोका सहवास निरन्तर नही करना चाहिए। कभी-कभी रहनेसे तो वह औपधिका काम करता है। हमेशा रहनेसे दु.ख संतति ही बढेगी। सम्यग्दृष्टि पुरुप हो, उसकी सगतिसे शान्ति एव कुछ शिक्षा मिल सकती है। धर्मात्मा पुरुप प्रत्येक ग्राममे या प्राय. मिल ही जाते, न तो दूसरी जगह खोजना चाहिए तथा शहरोमे १०-५ मिल ही जावेंगे। उनसे अपना धार्मिक चर्चाविषयक मेल बढाकर कल्याणके मार्गमे चला जाय। नीतिकार कहते है—'कीटोऽपि सुमनः सगादारोहति सता शिरः' कीडा भी फूलकी सगतिसे मनुष्योके सिरपर शोभा पाता है। रामायणमे कहा है कि रावणकी होनहार अच्छी थी जो रामचन्द्रजी के बाणसे उसकी मृत्यु हुई। जैनोके यहाँ लक्ष्मणके द्वारा मरा बताया है। बडे पुरुपोका गुस्सा भी भलेके लिए बताया गया है। हमने तो अन्दाज भी किया है, बडे महाराजजी जिसपर भी जितने अधिक गुस्सा होते है उसका उतना भला ही हुआ है, क्योकि बादमे वह पश्चाताप करते है और गुस्सेके साथ व्यक्तिको अच्छे-अच्छे साधन भी जुटा देते है। आर्योकी सगतिमे धक्के भी अच्छे है, वहाँ सभलनेका सुअवसर हाथ लगता है। मूर्खोकी सगतिमे वह आसन लिए भी सिर पर बैठावें तो दु.ख ही दुख है। जब तक ऐसे पुरुषोका सुयोग मिले लाभ लिया जावे।

सद्वृत्तानां गुणगणकथा—जिनके गुण एव चारित्र अच्छा हो, उनकी कथा जीभपर बनी रहे। दोष गानेमे क्या फायदा मिलेगा? अगर किसीके दोपोका वर्णन किया तो पहले तो अपने ही उन दोपोसे भिड गये तभी तो अनुभव कर पाया। दोपोसे जहाँ रुचि हट जावेगी वह क्यो उनको देखेगा? उसके लिए दोप भी गुण बनकर आवेंगे, जिनसे पग-पगपर शिक्षा ग्रहण करेगा। सोचेगा यह दोष मुझमे भी कमी थे तभी तो मै इनसे अधिक हेय माना जाता था। अब मेरे दोष कुछ अशोमे भी निकल सके हो तो अब मैं इनमे क्यो पडू ? अब तो मेरे कर्णोमे सत्पुरुषोकी कथाकी आवाज आती रहे तथा मैं भी उन्हीके सद्गुणो एव सद्कार्योका बखान इस विनश्वर जिह्वा इन्द्रियसे करता रहू, यही मेरा बडा सौभाग्य है। जिसकी गुणोमे प्रीति होती है वह नियमसे अपनेमे उतारकर आदर्श जीवन स्थापित करता है। गृहस्थावस्था मे भी श्री रामचन्द्रजी के गुणगान करनेमे बडे-बडे राजा लोग अपनेको कृतार्थ मानते थे।

दोषवादे च मौनम्ः—गुणगान करनेके बाद फिर आता है कि दोषोको कहनेमे मौन धारण करू, क्योकि दोष वर्णन करनेमे समय बरबाद किया जाना और दोपोको बखाननेमे उसकी आदत खोटी बहिम्यत की तथा स्वय सक्लेशित हुए। बादमे हमारे द्वारा दोषोको सुनने वाले अथवा देखने वालेको हम निमित्त हो गये, जिससे दोनोमे दु.खकी बढोतरी हुई। अगर तुम्हे विश्वास हो कि दोपोको बतानेमे कोई सुधार हो सकता है तो एकान्तमे जाकर कह देना

चाहिए। दस आदमियोके दोष कहनेकी जरूरत क्या है ? ८-१० बार समझा लिया, इसपर भी न माने उसीके भरोसे छोड दो या समाजके सामने प्रगट कर दो, जिससे सम्भव होगा तो लज्जित होकर छोड देगा। हमेशा दोष ही दोषका वर्णन करनेसे आखिर लाभ ही क्या मिलता है ? प्रेमरूपी अमृत सिंचित अमोघ वचन महौषधिका कार्य कर सकते है। तो हम गुणवर्णनमे सूर और दोष कहनेमे निर्बल हो जावे।

सर्वस्यापि प्रियहित वचः—सभीके प्रति चाहे वह मूर्ख हो, सज्जन हो, बाल, युवा, वृद्ध कैसा ही हो, कल्याण करने वाले प्रेमभरे वचन बोले जावें। हितकारी वचन वे हैं जो विषयकषायसे बचाकर सुपथमे लगावें। राष्ट्रकथा, आहारकथा, स्त्रीकथा और देशकथायें तो जीवनभर खूब की, अब उनको तिलाञ्जलि देकर धर्मकथा की जावे तथा वह नम्रता युक्त सरल परिणामोंसे व्यक्त की जावे। अग्निमे घी डालनेसे वह प्रदीप्त (भडकती) ही होती है। उसी तरह अप्रिय, कठोर, निन्दक, कलहकारी वचन कहनेसे एव विषयोको पोषने वाली कथाओंसे राग और द्वेष ही बढता है।

भावना चात्मतत्त्वे—आत्मतत्त्वमे भावना रहे। आत्माका त्रैकालिक स्वभावका मान होना अपना-अपना रास्ता सुगम बना लेना है। शास्त्रका अभ्याससे शुरूवात होकर आत्मतत्त्व बढानेकी भावनामे समाप्ति हो रही है। होना तो यह चाहिये कि आत्मतत्त्व जागृत हो जाये तो उसीमे तन्मय होना चाहिए, किन्तु कोई त्रुटि फिरसे प्रवेश करती है तो वही शास्त्र अभ्याससे शुरूवात करना चाहिये, जैसे कि २४ घटे बाद पुनः भोजन करनेकी जरूरत होती है। इस भोजनका स्वाद अनुपमेय रहेगा। जन्म-जन्ममे ये बातें मिलती रहे जब तक मोक्ष नही मिलता है। देव हो गये तो वहाँ भी शास्त्रसभा होती है, वहाँका प्रबन्ध विलक्षण रहता है। इन्द्रको द्वादशाङ्गका ज्ञान होता है, वह वक्ता होता है तथा वृहस्पति जैसे वक्तृत्वसहायक एव अन्य देव तो सभामे सम्मिलित होते है। लेकिन वहाँ चार गुणस्थान होनेसे व्रत नही पाल सकते। अकलंकदेव, विधानन्दि, समतभद्राचार्य आदि अगर देव हुए होगे तो उन्हे भी तो राग-रगके ठाठ-बाटमे सम्मिलित होकर हाँ मे हाँ भरनी पडती होगी। जो ब्रह्मर्षि हुए होगे, उन्हे जरूर इन सबसे छुट्टी मिल चुकी। तो आत्मतत्त्वकी भावना भव-भवमे मिले, यही शरण चाहते है। मोह जगतमे पदार्थोकी होडसी मची हुई है। अगर इस भवमे उन्हे पापकी होड है तो अगले भवमे हो सकता है कि शून्य ही मिले और इस भवमे उनके प्रति मुख मोड दिया जावे तो सभवतः अगले भवमे महान वैभवके अधिकारी हो जावो। जैसे बच्चा ठिनकता हुआ आया और उसे एक नया पैसा देने लगे। अगर वह उसे नही लेवे तो इकन्नी भी मिल सकती है, किन्तु उसीमे सतुष्ट हो गया तो उसने इकन्नी पानेका अधिकार खो दिया और कह दिया 'जावो बेटा खेलो' इसी तरह आप इन्हीमे रम गये तो फिर हम मोक्षमार्गकी माग एव स्वर्गके

वैभवको ठुकरा चुके समझ लो। इसके विपरीत इससे आगे पाना है तो इन पदार्थोंके प्रति मुख मोडकर आत्महितके कार्योंमे लग जावे। जैसे किसानका लक्ष्य गेहू पैदा करना होता है, और भूसा तो स्वतः ही पैदा हो जाता है उसी तरह ज्ञानीके लक्ष्यमे है, मोक्ष मिलना चाहिए, किन्तु अन्य वैभव तो स्वतः ही मिल सकते है। परमेश्वर जो सबका पिता है, उसके सरक्षणमे पादानुसरणमे अन्य ही विभूति मिलेगी। परिणामोमे निर्मलता आ गई, परपदार्थोंसे सहज उपेक्षा आ गई तो इससे ज्यादा हमे चाहिए क्या? वही तो आनन्दकी वर्षा होगी जो सच्चे सुखकी प्रदाता है। निमित्तनैमित्तिक सम्बध चलता ही रहता। अनन्ते विस्रसोपचय पडे है, कहाँ छुपकर जावोगे? कषायोका तो तत्क्षण कर्मबध हो ही जावेगा। यहाँ किसीको सहूलियत नही। आत्मभावमे योग दिया तो कर्मोका सवर और निर्जरा होगी, कर्म अपना स्थान छोडकर भाग खडे होगे। कर्म कैसे झरते है? यही तो शास्त्रमे लिखा है। परिणाम विशुद्ध बनने लगता है तो कर्म निमित्तनैमित्तिक सम्बधको पाकर कम होने लगते है। फिर भी सबमे आत्मतत्त्वकी मुख्यता है। अपनी बात अपनेपर ही तो जचती है, दूसरेके प्रति दृष्टि रखो या सोचो कि यह हमारा कुछ कर देंगे, यह पराधीन वृत्ति उलझनमे ही डालती जावेगी।

द्रव्यका सब कुछ उसी द्रव्यमे दिखता—प्रत्येक द्रव्य स्वरसतः परिपूर्ण है, क्योकि वह है। जो है वह स्वतःसिद्ध व स्वतः परिपूर्ण है। कोई अधूरा है, वह वाक्य ही गलत है। है वह अधूरा जिनका परस्पर विरोध है। यहाँ द्रव्यका प्रकरण चल रहा है तो यह नही समझ लेना कि द्रव्य उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य जैसा होनेसे द्रव्यमे ही सब कुछ आ जाता है। वस्त्रमे अनेक रूप दिखते है। मैल जमा होनेसे मैला था, मसाला लगानेसे वह साफ हो गया, वह वस्त्र उत्पादसे लक्ष्यमे आ गया है, सफेदी आनेके रूपसे लक्षित हो रहा, साथ ही मैलके व्ययरूपसे भी लक्षित हो रहा है, साथ ही वस्त्रमात्रसे भी लक्षित हो सकता है, वह एक ओर लक्षित होता है उत्पाद, व्यय व ध्रौव्य इन तीनरूपसे। उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य इन तीनोका स्वरूप परस्पर विरुद्ध है तो भी तीनो एक साथ द्रव्यमे रहते है। यह कर्म स्याद्वादविद्याके अधिकारी पहिचानते हैं।

उत्पाद, व्यय व ध्रौव्यका सौहार्द—द्रव्य उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य कर सहित है। यह शुरूसे ही उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यका आश्रय करता है। उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यका आश्रय करता हुआ द्रव्य है। जहाँ भी भेददृष्टि लगावो उत्पाद व्ययका आश्रय करता है, व्यय उत्पादका आश्रय करता है, उत्पाद, व्यय दोनो द्रव्यका आश्रय करते हैं। सबका निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध है। जैसे वस्त्रकी मलिन अवस्था व्यय हो गई तो उत्पादका आलम्बन हो गया। अर्थात् निर्मलताने स्वच्छताका आलम्बन किया है, स्वच्छताने निर्मलताका आलबन किया है। स्वच्छताका उत्पाद है, निर्मलताका व्यय है। पूर्वकी अवस्थाका त्याग कर दिया है तथा

अन्तरीय अवस्था धारण की है। बहिरङ्ग साधनमे कर्ता व कर्ममे अन्तर है। अन्तरङ्ग साधनमे कर्ता और कर्ममे अतर नही है। आत्मा ही कर्ता है, आत्मा ही कर्म है। द्रव्यको प्राप्त करके पर्याय प्राप्त हुई है और पर्यायके आश्रय द्रव्य रहता है। जैनसिद्धान्तका यह नियम अटल है कि कर्ता कर्म बनता नही है तथा निमित्तनैमित्तिक मिटता नही। द्रव्यमे इतनी विभावादि पर्याय होना ही है, अत होती है निरपेक्षतया या विना निमित्तनैमित्तिक सम्बन्धके सो भी नही, उत्पाद निमित्तने किया याने कुछ कर दिया सो भी नही है। वैज्ञानिक भी इस सिद्धान्तको मानते होंगे, या वे विज्ञानके द्वारा सिद्ध करके देख सकते है। प्रत्येक कार्य अपने अपनेमे चल रहा है। विभावरूपसे परिणमने वालेकी ऐसी परिणति है वह अपना कार्य करनेमे तत्पर रहता है। वह अन्यको निमित्त पाकर अन्यरूप परिणाम जाता है, वाह्य पदार्थका निमित्त पाकर विभाव होता है। जैसे मुझे सबके सामने बैठना था सो चौकीपर आकर बैठ गया, किन्तु चौकीने आकर मुझे यहा नही बुलाया या चौकीने अपने गुण नही दिये। करणानुयोगके शास्त्रोमे देखो, कर्मोके उदयको पाकर राग होता है। ऐसा भी नही है कि ऐसा होना ही था। उचित सन्निधानके होनेपर नाना अवस्थाये हैं। जिसको ऐसा भ्रम हे कि स्वभावसे मात्र ऐसा होता है या हो रहा है उसका ऊपर कहे अनुसार भ्रम दूर हो जाना चाहिए। उत्पन्न होनेमे दूसरेके आलम्बनकी कोई बात नही है। निमित्तभूत पदार्थ अपने ढगका है, उसमे किसीकी करतूत या चतुराई नही है या यो कह लो—परिणमन सामान्य तो निरपेक्षतया होता है, किन्तु परिणामकी जो कुछ विशिष्टता है, जिसमे विविधता आ जाती है वह औपाधिक है। इतनेपर वह उपाधिका परिणमन नही है।

निमित्त और आश्रय दो वस्तुयें हैं—जगतमे हम जिनको सहसा निमित्त कह देते है वह आश्रय है। निमित्त पडने वाले तो कर्म हैं। आश्रयमे तो मर्जी एव गैर मर्जी दोनो चलती है, किन्तु निमित्तमे नही चलती हैं। चौकी पडी रहे उसका आश्रय न लें तो वह थोडी हमे सहारा देनेको आ जायगी। कर्मका उदय आया, हमे वैसा करना पडता है। फर्क यह है उदय के समयके पहले जघन्यसे जघन्य या अन्तर्मुहूर्त आदि पहिले गुण सक्रमण, विध्यातसक्रमण या स्तिवुकसक्रमण कर देता है, सो स्थूलरूपसे यह कह दिया जा सकता है कि कर्मोदयको भी ज्ञानी टाल देता है, स्तिवुकसक्रमण एक एक ही समयका होता है। यद्यपि निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध अटल है तो भी कर्ता कर्म सम्बन्ध भिन्न-भिन्न द्रव्योमे कभी भी नही हो सकता, यह बात भी अटल है। जैनदर्शनके ये दो सिद्धान्त अटल है। निमित्तनैमित्तिक सम्बन्धका खण्डन नही व कर्ता कर्म सम्बन्धका मण्डन नही। यही यहाँ सूचित किया गया कि समुचित बहिरङ्ग साधनका सन्निधान हो व स्वरूपके कर्तव्य व करणत्वकी सामर्थ्य वाला उपादान है तो वहाँ वैसा परिणमन उत्पन्न होता है। सो द्रव्य ही उत्पाद द्वारा लक्ष्यमे लिया है। कही

द्रव्य तो भिन्न हो व उत्पाद आदि भिन्न हो, ऐसा नही है और न होगा। जिस समय यह ज्ञानी जीव स्वमे परिणमन करेगा उस समय रागादिक नही होगे। अविरत सम्यग्दृष्टि जीव ध्यानमे है तो उसके अप्रत्याख्यानावरणका उदय है तथा तज्जनित चारित्रगुणका विकार भी चल रहा है, परतु उपयोग स्वकी ओर है, अतः कषाय उपयोगमे नही आ पाती। फिर भी निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध तो चल ही रहा है। वहाँ भी देखो कि कर्म आत्माको नही परिणमा रहा और न आत्मा कर्मको परिणमा रहा है। अत राग यहाँ भी नही है। यह बात भी वहाँ नही चल सकती है कि हमारी मर्जी होगी तो राग करेंगे और मर्जी नही होगी तो नही करेगे। यह बात निमित्तनैमित्तिकके सम्बन्धमे नही चलती है। हमारी मर्जी होगी तो अमुक मुहल्लेमे जावेगे, नही तो न भी जावेंगे तथा मर्जी अनुसार चित्र खिचावेगे अथवा नही खिचावेंगे। आश्रयोमे तो हो जाता है। अचेतनका भी सम्बन्ध देखो जहा द्रव्यके साथ योग्य का सम्बन्ध है वहाँ कार्य उत्पाद, व्ययरूप चलता ही रहेगा। जैसे अग्निपर बटलोईमे पानी गर्म होनेको रखा और प्रतिबन्धक कारणका भी अभाव है। तो वहा पानी कहे कि हमे गर्म नही होना है तो क्या यह संभव है तथा वहाँ अग्निका गुण पानीमे प्रवेश कर गया हो सो भी बात नही है। जलने ही स्वरसतः बिना निमित्त पाये अपनी उष्ण अवस्था बना ली हो सो भी बात नही है।

स्वरूपका घात मत करो—उचित बहिरङ्ग साधन मौजूद हो तो द्रव्य अपना समय पाकर प्रति समय पर्याय बदलता रहता है, वह अपने कर्ता कर्मकी सामर्थ्यसे पैदा होता है। वह द्रव्य उत्पादके द्वारा लक्ष्यमें आ रहा है। अगुलीकी सीधी पर्याय अगुलीसे भिन्न नही है। शुद्ध अगुली वह जो हमेशा एकसी रहे सो यह बात पाई जाती नही है। जो अनेक तरहकी हो गई यह अशुद्ध है या उसे अशुद्ध पर्याय कहते है। भगवानको हम शुद्ध और अशुद्ध दृष्टि दोनो से देख सकते है। भगवान आप केवलज्ञानके धनी हो। आपमे अनन्तदर्शन, अनन्तज्ञान है इत्यादि प्रकारसे कहना अशुद्ध दृष्टिसे देखना है यह अशुद्ध विभाव वाली नही है। पर्यायपर दृष्टि भर देना अशुद्ध दृष्टि है। हाँ पर्यायदृष्टिमे स्वस्वरूपमे स्थिर होना या उनकी शुद्ध चेतन आत्माका अपनेमें अनुभव करना शुद्ध दृष्टि है। द्रव्यदृष्टिसे चेतनामात्रकी दृष्टि शुद्ध है। मान लो विवाह हो रहा है और वहाँ औरतें गाने लगे—'राजा राणा छत्रपति हाथिनके असवार। मरना सबको एक दिन अपनी अपनी बार॥' और मन्दिरमे विवाहके गीत कहने लगे तो ये बातें अवसरके अनुपयुक्त है। इसी तरह शुद्ध दृष्टि द्रव्यदृष्टिको देखना है और पर्यायदृष्टिसे शुद्ध देखने की बात करें तो द्रव्यका मर्म अज्ञात रहेगा। पर्यायका शुद्ध या अशुद्ध उसके वर्णन होनेसे यथार्थ ज्ञान नही हो सकेगा। द्रव्यत्वको यहाँ पर्यायकी दृष्टिको अशुद्ध दृष्टि कहा है। वर्णन करना केवलज्ञान है, यह पर्यायदृष्टि है, यहाँपर सूक्ष्मदृष्टिसे निरपेक्ष नित्य स्वको देखना मात्र

है। अपने लिए शुद्धदृष्टिसे देखना पर्यायसे भी शुद्ध हू ऐसा मानकर अभक्ष भक्षण करेंगे, चाय पी लेंगे बाजारकी, जब जहां जो मिला सो खा लेंगे, सो कुपथ है। फिर भी कहेंगे आत्मा तो शुद्ध है आत्मा तो नही खाती है, शरीर खाता है और कहेंगे हम भी पूर्ण शुद्ध हैं, आत्मामे विकार नही है। यह कहने वाले वही लटोरे घसीटे हैं, जो विषयोमे पुन -पुनः लोटकर ससार-सागरमे घसीटते रहते है। भैया! द्रव्यदृष्टिकी शुद्धता बताई गई है, वहाँ आपका शुद्ध द्रव्य तो प्रकट नही हुआ है, उसपर तो कभी मनो मल लदा हुआ है, जिसको धोनेके लिए काफी समय लगेगा और काफी मसाला खर्च करना होगा याने विशेष उपयोग लगाना होगा। वर्तमानमे हम जिसे भोग रहे है, उसका भोग करते हुए कहे, 'हम तो शुद्ध है, हम तो शुद्ध हैं' तो यह समयसारका उपदेश नही है।

द्रव्य शुद्धिका अर्थ निरपेक्ष स्वभाव है—उस शुद्धके मायने है अन्य सबसे विविक्त। जैसा बाजारमे शुद्ध दूध बिकता है, उसका लक्ष्य यह नही कि यह त्यागियोंके योग्य शुद्ध है, किन्तु मतलब यह है कि इस दूधमे पानी मिलाया नही और उसका सार (मक्खन) निकाला नही है। उसी तरह आत्मामे बाहरी वस्तु कुछ मिलाई नही है और उसका शक्ति सर्वस्व कही गया नही है। इसको सुनकर ही कोई ससारी जीव पर्यायमे ही अपनेको शुद्ध मान लेवे तो अपने सत्पथका निरोध करता है। द्रव्यपर शुद्ध दृष्टि रखनेका मतलब यह है कि द्रव्य स्वरूपतः अपनी शक्तियोसे तन्मय है व सबसे विविक्त है एव स्वरसत स्वच्छ है। इसका दर्शन, आश्रय करनेसे मलिनता दूर हो सकती है। उत्पाद जो हुआ है वह द्रव्यसे भिन्न नही है। स्वभावसे ही उस रूप बन रहा है। द्रव्य पर्यायका आश्रय लेता है, पर्याय द्रव्यका आश्रय लेती है। पर्याय द्रव्य और गुणोका आश्रय लेती है, गुण द्रव्यका और पर्यायका आश्रय लेते हैं। पर्याय गुणोका आश्रय लेती है। गुण पर्यायका आलम्बन लेते हैं। इतनेपर कहे कि गुण पर्याय न हो, हम तो अकेले ही हैं और अकेले ही रह जावेंगे तथा द्रव्य कहे हम तो अकेले ही पैदा हुए हैं, पर्यायका आश्रय नही है तो यह कहना ठीक नही बनता और न ऐसा है। निर्मल कपडा और स्वच्छ कपडामे अन्तर है या नही? वस्त्र निर्मल है यह तो व्ययके द्वारा लक्ष्यमे आया और स्वच्छ वस्त्र यह उत्पादमे आया है। लेकिन स्कूलोंमे पढाया जाता है कि निर्मल याने स्वच्छ। इसलिये बुद्धि इसमे भेद माननेको तैयार नही होती है। पर्याय दोनोकी एक है निर्मल या स्वच्छ कह सकते है, किन्तु तात्त्विक मूल अर्थपर ध्यान देना चाहिए। कभी उत्पादसे, कभी व्ययसे पदार्थ लक्ष्यमे आते हैं, किन्तु दोनो पृथक्-पृथक् नही हैं। उनके द्वारा स्वरूप भेदको प्राप्त नही होता है। द्रव्यकी मुख्यता करके देखें तो ध्रौव्यसे देखें और पर्यायसे देखे तो उत्पादसे लक्ष्यमे आ रहे है व कभी व्ययसे लक्ष्यमे आ रहे है।

यथार्थ बोधके बिना सब अन्धेरा है—द्रव्यका लक्षण चल रहा है। द्रव्यका लक्षण जानना इसलिए आवश्यक है कि उसके बिना सब अधेरा है। जो तत्त्वोको पदार्थ रूपसे देखे तथा उनका ज्ञान करे इसके लिए द्रव्यका सही सही अर्थ जानना आवश्यक है। उत्पाद व्यय ध्रौव्य भिन्न-भिन्न चीजें नही है, उत्पादसे व्यय लक्ष्यमे आता है, व्ययसे उत्पाद लक्ष्यमे आता है और उत्पाद एव व्ययसे ध्रौव्य लक्ष्यमे आता है और गुण इन सबकी विशेषताये है। जैसे वस्त्रका निर्मल और स्वच्छ होना तथा उसका मुख्य मेटर स्थिर रहना एक साथ है और लक्ष्यमे भी इनसे वस्त्र आता है। निर्मलके द्वारा स्वच्छ जाननेमे आया, स्वच्छतासे निर्मलता जाननेमे आई। उसी तरह द्रव्य भी तीनो द्वारा जाननेमे आता। मलिन अवस्थाका व्यय किया तथा स्वच्छ अवस्थाका उत्पाद किया, यहा उत्पाद व्यय करते हुए भी एक ही समयमे दोनोमें रहनेमे वाली उत्तरीयत्व अवस्था है। जो एक वस्त्र बना है वह ध्रौव्य है। एकको प्राप्त करता है एकको व्यय करता है, फिर भी द्रव्य मिटता नही। नाना रूप परिणम जाता है। यह स्वत: सिद्ध है, वह एक चीज है, जो नाना रूपसे होकर एक रूप चलती है। पूर्व मुखेन जाना यह व्यय हुआ। नाना अवस्थाओको गौण करता हुआ एक कुछ है तो उसी एकतापर दृष्टि ही जाय तो द्रव्य है। देव गतिका व्यय, मनुष्यगतिका उत्पाद होना यह उत्पाद व्यय दोनोका चलना जिसमे पाया जावे वह हुआ ध्रौव्य। सदा रहने वाले ध्रौव्यसे द्रव्य ही तो लक्ष्य हुआ। पर्यायदृष्टिमे ये तीनो ही अश हैं तब द्रव्य इन सबसे भिन्न है, उसका नाश कभी नही होता है। शुरूमे उत्पाद व्यय ध्रौव्यका आलम्बन करते जाओ। जो आलम्बन करे वह लक्ष्य हुआ, जिसका आलम्बन किया वह लक्षण बन गया, जिस मुखसे जाननेमे आया वह लक्ष्य रहा तथा बाकीके सब लक्षण हुए। यह तो हुई आयत विशेषकी बात, जो नवीन-नवीन पर्याय द्रव्यमे होती है वह हुई बनना, बिगडना और बने रहना की बात। सत् अनन्त गुणात्मक है उनमेसे व इस त्रिकमे एककी भी कमी आ जावे वह सत् नही है। लोकमे भी देखनेमे आता है कि तीनो बातें ये प्रत्येक पदार्थमे पाई जाती हैं और प्रत्येक पदार्थपर ये घटित हो सकती है।

त्रिकाल व्यापी गुण है, क्षणस्थायी पर्याय है—द्रव्य कभी विस्तार विशेष अवस्थासे लक्ष्यमे आता। जैसे आत्मामे ज्ञान दर्शन आदि है वह गुण हुए, आत्माकी दशायें तथा सुख दुःख आनन्द यह हुए उनके आयत विशेष। ज्ञानकी शुद्ध गति चारित्रके साथ है। जो अध्रुव है वह नष्ट हो जाती है एवं होती रहती है, वह गुण हुए आयत विस्तार। द्रव्य गुण पर्यायका स्वरूप जानते निर्णय होना चाहिए कि बना रहना, बिगडना बनना कहाँ पाया जाता है या ठीक बैठता है। बना रहना द्रव्यमे पाया जाता है और नष्ट होने वाली पर्याय है उसमें विवक्षावश उत्पाद व्यय चलता है। शब्द गुण, दुःख, स्वप्न, नारक, मनुष्य देव जिसकी ये

अवस्थायें हैं वह द्रव्य है तथा काला पीला सुख दुःख आनन्द आदि ये पर्याय हैं। जो इन्द्रियोको सुहावना लगे उसे सुख कहते है। सु अर्थात् सुहावना तथा जो इन्द्रियोको असुहावना लगे उसे दुःख कहते है। दुःख अर्थात् दुःभाने असुहावना स्व = इन्द्रियोको जो लगे। आ समन्तात नन्दन आनन्दः। टुनदि समृद्धौ धातुसे यह बना + याने सर्वाङ्गमे सर्व आत्मप्रदेशमे समृद्धिशाली बन जाना आनन्द है। सुख तो मात्र कल्पित इन्द्रियसम्बधी है। मोही इष्टवियोग अनिष्टसयोग को अपना अहित मानकर दुखी होते हैं और आनन्द हुआ आत्माका मुख्य गुण। आनन्दको देखना ही है तो क्रोध, मान, माया, लोभ जैसे हैं वैसे समझमे आवें कि इनसे कितना स्वय मे सक्लेश परिणाम होता है तथा उनसे उपेक्षित होकर चारो तरफसे चित्त खीचकर स्वमे स्थित होनेका यत्न करें, फिर अनुभव करें तो शान्ति आती है यह सत्य सुख है। मतिज्ञान जैसे ज्ञानगुणकी दशा है वैसे सहज आनन्द आनन्दगुणकी दशा है।

जैसा समझें वैसा ही उपयोग करें—तत्त्व जान लिया, देख लिया, पुन सोचे यह सर्व अलग-अलग सत् हैं, स्वतन्त्र है, परिपूर्ण है। उसकी क्या ? ऐसा नही, यह तो सब एक-एक द्रव्यरूप है। उसकी ये सब शक्तियाँ है, सदात्मक द्रव्य है। भेददृष्टिसे देखना गुणकी सिद्धि का साधन है तथा यह अभेदपुञ्ज द्रव्य हुआ। पर्याय देखकर या जानकर यह दृष्टि लगाना, यह कौन द्रव्यकी पर्याय है ? क्रमशः अभेदरूपसे चलकर या द्रव्यके सामान्यतत्त्व तक पहुंचना। जैसे विस्तार वस्त्रका शुक्लत्व हुआ और भी कोमलता आदि गुण पाये जाना बहुतसे गुणको देखनेपर केवल वस्त्रपर केवल वस्त्र ही तो पहिचाना है। लेकिन कोमलता सफेदपना वस्त्रसे जो नही हो जावेंगे। यह आत्मा ज्ञानपुञ्ज एव आनन्दघन है। हर एक द्रव्यकी शक्तिया होती है, उससे गुण अलग नही होते है। द्रव्य वह है जो सदा रहे। द्रव्यभेदसे देखा गया, जैसे स्पर्श, रस, गंध, वर्णकी विशेषतायें लिए जाना गया तो गुणकी सिद्धि हुई। गुणोकी दशायें जानी गईं तो पर्याय सिद्ध हो गई। अमुक-अमुक गुणकी अमुक-अमुक पर्यायें हैं, अन्य द्रव्यके नही। कोई द्रव्य अपना परिणमन अन्य द्रव्यको नही देता, और न अपनेमे द्रव्य अन्य द्रव्यको परिणमन लेता है। स्वरूपास्तित्वकी बात समझमे आई तो द्रव्य समझ आवे और मोह हट जावे। स्वर्ग नरककी सत्ताकी बात तो हम करें और हम स्वय क्या हैं—यह न जान पायें तो भैया क्या गाँठमे रहा ? यदि आत्माकी बात यथार्थ समझमे आ जावे तो सब यथार्थ समझमे आ जावे।

अपने आपको तो पहिले समझो—एक स्कूलके हैड मास्टर साहबको इन्सपेक्टरने लिखा कि अमुक तारीखको निरीक्षण करनेके लिये आवेंगे। सूचना पाते ही मास्टरोंने गणित, भूगोल, इतिहास, हिन्दी, नागरिक शास्त्र आदि विषय खूब रटा दिये। छात्रोंने अपने-अपने विषय अच्छी तरह याद कर लिये। नियत तारीखको इन्सपेक्टर आ गया। उसने छात्रोसे

सवाल पूछा कि तुम्हारे गाँवका नाला कहाँसे निकला है ? तो छात्र उत्तर देते है कि यह हमे नही पढाया गया, इसलिये यह मालूम नही है। छात्रोने अमेरिका, इग्लैण्डका हाल, समुद्र व बडी-बडी नदिया तो याद कर ली थी, किन्तु घरकी बात याद नही थी। इसी तरह खूब पढ लेवे, लेकिन पासकी ही बात न समझ पावे कि आत्मामें ही सच्चा सुख विद्यमान है। मै क्यो मूर्ख बना यहाँ-वहाँ पराधीन हुआ घूमता हू। अपने-अपने परिणमनसे प्रत्येक पदार्थ परिणमन रहा है, मैं इनमे क्या कर सकता हू ? व्यर्थ सम्बध बुद्धि लगाकर मोहसे ग्रस्त हो रहा हू। किसीको कुछ कर देता है, यह भ्रम ही मिथ्या बुद्धि है। जहाँ अनाकुलता आई वही समता रस सुख झलकेगा।

यह आत्मा स्वयं महान है—यह भगवान आत्मा स्वय ज्ञानस्वभाव वाला है। इसका जो भी स्वभाव वैभव है उसका मोहके द्वारा घात हो रहा है। मोहबुद्धि छूटनेसे पदार्थ समझ मे आता है। पदार्थको समझनेसे निमित्तनैमित्तिक सम्बध आवश्यक रहता है, इसके बिना तिलभर भी आगे नही बढ सकते, इसीसे वस्तुके स्वभावको पदार्थ जाना जा सकता है। जैन-दर्शनमे यह दो बातें प्रधान है। कृतकर्म भावका मण्डन बनता नही और निमित्तनैमित्तिक भाव खण्डन बनता नही। बच्चोको पढानेके लिए जैसे कहते है—जीव वह है जो खाता-पीता, चलता, उठता, बैठता हो। लेकिन क्या जो खावे-पीवे, चले बैठे नही तो क्या वह जीव नही है ? केवल लक्ष्यमे लानेके लिए यह बताया जाता है। जहाँ गुणोका वर्णन किया वहाँ द्रव्यका वर्णन भी आ गया। गुणोके आख्यान बिना द्रव्यको नही जान सकते। जहाँ भगवानकी अवस्थाका वर्णन करते है वहां अनन्तदर्शन, अनन्तसुख आ ही जाते है। जो भी वर्णन करेंगे वह एकतासे वर्णन करेंगे। लेकिन जो जिस अवस्थामे रहता है उसी तरह बतावेंगे। आत्मा की बात जानकर उसके ही गुणगान होना तो प्रशसा है। लोकमे जो अन्य-अन्य प्रकार प्रश-सायें होती है वे क्या प्रशसाये है ? निन्दा है। जैसे कहे कि यह हवेली सेठजी की है, इसमे बढ़िया नक्कासीका काम हुआ है। सेठजी के ४ लडके है, उनमे एक इन्जीनियर, एक डायरे-क्टर एवं एक इन्सपेक्टर या दुकानका मालिक है। यहाँ प्रशसा हुई या निन्दा ? यह सब निन्दा की बाते हैं, क्योकि लडके एव मकानो आदिकी अच्छाई ही कही जा रही है। सेठजी मे कुछ गुण नही है। लडके तो अच्छे है, सेठजी बुद्धू है, यह अर्थ हुआ। मोहमें अच्छाई मानी जाती है। वास्तवमे इससे हमारी कोई विशेषता नही है। इन सेठजी मे कोई कला नही है। अचेतन मकानपर तो है, यह बात जाहिर नही होती सेठकी बातें न कहकर मकानकी बात कहनेसे। अगर किसीसे प्रेम हुआ तो उसके गोदके लडकेके सिरपर हाथ फेर दिया। अगर कोई मुनि, त्यागी आये है तो बच्चोसे हाथ जुडा दिये, वह भले हाथ नही जोडें, यह उनकी ही वन्दना हो गई मानो। इसके बडप्पनसे हम अच्छे है, यही तो मुख्य रहस्य है मोहका। हमारी हवेली,

बगीचे, लडको आदिकी प्रशसा कर दी, जिससे हम खुश हो गये। यह अपनी मोहबुद्धिकी ही बात है। कोई कहे आप राममूर्ति जैसे हट्टे कट्टे हो या सिंह जैसे पहलवान हो तथा अमुक व्यक्तिके सदृश स्वभाव वाले हो तो इसमे स्पष्ट निन्दा की जा रही है और समझ रहे प्रशसा जिसपर फूले नही समाते। निन्दा इसलिए है कि उसे बताया जा रहा है कि तुम बाह्य तत्त्वो मे आसक्त हो, तुम पशु या अन्य व्यक्तिके समान हो, किन्तु उतनी महत्ता ही नही है। परद्रव्य मे हम इतने लीन रहते हैं कि समझते हैं हमारी प्रशसा हो रही है। अगर सोचो हमारी निन्दा कर रहे है, तो कोई नुकसान नही, फायदा ही है। आत्माके गुणोकी प्रशसा की जायगी तो कहेगे हम और आप जीव समान-समान हैं, परद्रव्यसे पूर्णतया भिन्न हैं, चैतन्यमात्र इसका स्वभाव है, आपकी इसपर दृष्टि रहती है। यह सुनकर क्षोभ नही होगा, किन्तु प्रसन्नता ही होनी चाहिए। प्रशसा इसकी बाह्य नही की जानेपर भी आनन्द लूट रहा है कि यह बात हममे नही है और प्रकट होना ही चाहिये। जैसी बात अरहन्त सिद्धमे है वैसी हममे नही है यह भान हो तो प्रभु स्वरूप ही पहिचाना, भगवानका स्वरूप यथार्थमें जान लिया तो आत्मीय आत्मापर आना होगा ही। जैनशासनमें यथार्थ बात द्रव्यके स्वरूपकी ही बताई है, इसे जानने से सिद्ध परमात्मा परम्परासे हो सकता है। यह विशेपतायें अन्यत्र नही मिलेंगी।

उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यके परिणामका सोदाहरण वर्णन—इस प्रकरणमें द्रव्यका लक्षण उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य तथा गुण, पर्याय कहा। सो इसका तात्पर्य यह है कि यह द्रव्य उत्पादके द्वारा लक्षित होता है, व्ययके द्वारा लक्षित होता है, ध्रौव्यके द्वारा लक्षित होता है, गुणके द्वारा लक्षित होता है, पर्यायके द्वारा लक्षित होता है। लक्षित होनेके इन पकारोके कारण द्रव्य कही स्वरूपभेदको प्राप्त नही हो जाना अर्थात् उत्पाद व्यय आदि कुछ और है और द्रव्य कुछ और सत् है, ऐसा नही हो जाता। जैसे एक कपडा मलिन था उसे धोया तो अमल (स्वच्छ) हो गया, यहा कपडा अमलादि अवस्थासे भिन्न कुछ अन्य सत् नही हो जाता। कपडा अमल अवस्थासे लक्षित हो रहा है, मलिनता नही रही, इस प्रकार अर्थात् मलिनावस्थाके व्ययसे लक्षित हो रहा है, उस एक कालमें ही स्वच्छताके उत्पाद मलिनताके व्यय वाले कपडेमें पटत्वावस्थासे देखो तो ध्रौव्यसे लक्षित हो रहा है। उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यके साथ पटका स्वरूपभेद नही, किन्तु कपडा स्वरूपसे ही अमलताके उत्पादको, मलिनताके व्ययको, पटत्वके ध्रौव्यको आलम्ब रहा है तथा कपडेमे चिकनाई, स्वच्छता, मोटाई आदि है। इससे भी कही स्वरूपभेद नही हो जाता, किन्तु कपडा ही उन-उन विशेपोसे उस प्रकारताको आलम्ब रहा है तथा कपडेमे कम स्वच्छता, अधिक स्वच्छता आदि अवस्थायें होती हैं, इसके साथ भी स्वरूपभेद नही हो जाता, किन्तु कपडा ही उन-उन पर्यायोसे उस-उस अवस्थाको आलम्ब रहा है। इसी प्रकार द्रव्य उत्तरावस्थासे उत्पद्यमान हुआ व पूर्वावस्थासे व्ययमान हुआ। यहाँ द्रव्य उस अवस्थासे भिन्न

अन्य सत् नहीं हो जाता। द्रव्य ही वहां उत्तरावस्थाके उत्पादसे लक्षित हो रहा है, पूर्वावस्था के व्ययसे लक्षित हो रहा है। उस एक कालमे ही उत्तरावस्थाके उत्पाद व पूर्वावस्थाके व्यय वाले द्रव्यमे द्रव्यत्वावस्थासे परखो तो ध्रौव्यसे लक्षित हो रहा है। उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यके साथ द्रव्यका स्वरूपभेद नही, किन्तु द्रव्य स्वरूपसे ही उत्तरावस्थाके उत्पादको, पूर्वावस्थाके व्ययको, द्रव्यत्वके ध्रौव्यको आलम्ब रहा है तथा द्रव्यमे अनेक गुण हैं, इससे भी वही उनके साथ स्वरूपभेद नही हो जाता है, किन्तु द्रव्य ही उन-उन विशेषोसे उस-उस प्रकारताको आलम्ब रहा है तथा द्रव्यमे भिन्न-भिन्न कालमे अनेक पर्यायें है, उनके साथ भी द्रव्यका स्वरूपभेद नही हो जाता है, किन्तु द्रव्य ही भिन्न-भिन्न कालमे उन-उन पर्यायोसे उन-उन अवस्थाओको आलम्ब रहा है। यहाँ स्वरूपभेद नही है, इसका तात्पर्य यह है कि उनके साथ सत्ता भेद नही है, गुणादिका सत्त्व अलग हो व द्रव्यका सत्त्व अलग हो ऐसा नही है, किन्तु उनमे मात्र लक्ष्य लक्षणभेद है।

द्रव्यकी जाति व व्यक्तियां—गुण व पर्याये भिन्न नही है, किन्तु द्रव्य गुणमे पर्यायो का आलम्बन है। द्रव्यका लक्षण अस्तित्व सामान्य हुआ। लक्षण वह होता है जो लक्ष्यमे तो घटे किन्तु अलक्ष्यमे न जावे। उनमे भी प्रत्येक पदार्थ भिन्न है। परसे विविक्त स्वगुणपर्यायमे समवेत जो हो उसे शुद्ध द्रव्य कहते है। किन्तु है सब सत्। यह हुआ अस्तित्व सामान्य। दो प्रकारका अस्तित्व कह रहे है स्वरूपास्तित्व और सादृश्य अस्तित्व। ये दोनो अपनी जुदी-जुदी विशेषतायें रखते है, जैसे व्यक्तिगत मनुष्य और जातिगत मनुष्य। व्यक्तिगत मनुष्य वह है, जिसमे अर्थ क्रिया हो रही है वह मनुष्य है तथा जातिगत मनुष्य वह है जो अनेक व्यक्तिगत मनुष्योका समूह सोचकर सामान्य बुद्धि हो। द्रव्य जुदे-जुदे है, प्रत्येक द्रव्यका स्वरूपास्तित्व भी जुदा-जुदा रहता है। उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यमे भी स्वरूपास्तित्व है, किन्तु द्रव्यस्वरूप ही है। एक निगोद शरीरमे अनन्त निगोद जीव रहते हैं, फिर भी उनका अस्तित्व अलग-अलग है। उसी तरह एक जगह अनन्ते सिद्ध रहते है, किन्तु उन सबका अस्तित्व जुदा-जुदा रहता है। जुदे-जुदे अस्तित्व सबमे है, किन्तु जो उत्पाद, व्ययादि कार्य सत्त्वमे है वही द्रव्यमे है, यह आदिसे है और अनन्त तक रहेगा। सो ही प्रवचनसारमे आगे स्वरूपास्तित्वको कहते है—

सब्भावो हि सहावो गुणेहि सगपज्जएहि चित्तेहिं।
दव्वस्स सव्वकालं उप्पादव्वय धुवत्तेहिं ॥९६॥

यह ज्ञेयाधिकारकी चौथी गाथा है, इसमे द्रव्यके स्वरूपास्तित्वका विवेचन किया गया है। आचार्य महाराज कहते है कि सर्वकाल गुणोंके द्वारा, विविध विचित्र अपनी पर्यायोके द्वारा, उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यके द्वारा अथवा इन-इन रूपोसे सद्भाव होना सो द्रव्यका स्वभाव है। सद्भाव अर्थात् अस्तित्व द्रव्यका स्वभाव है। वह अस्तित्व अन्य साधनोकी अपेक्षा नही

रखता है अर्थात् अस्तित्व किसी भी कारणसे उत्पन्न नही होता है वह तो स्वत सिद्ध है। इसी कारण वह अनादि है और अनन्त है तथा अहेतुक है। वह अस्तित्व, गुण, पर्याय, उत्पाद, व्यय व ध्रौव्यके रूपोसे है। तो यह सिद्ध हुआ कि जैसे अस्तित्व अन्य साधन निरपेक्ष हैं इसी तरह गुण, पर्याय, उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य ये सब अन्य साधन निरपेक्ष हैं अर्थात् यह सब द्रव्यका स्वभाव है। अस्तित्व नास्तित्वधर्मसे विलक्षण है अर्थात् द्रव्यका अस्तित्व उस-उस द्रव्यके गुण, पर्याय, उत्पाद, व्यय, ध्रौव्योके रूपसे तो है, किन्तु परद्रव्यके गुण, पर्याय, उत्पाद, व्यय, ध्रौव्योके रूपसे अस्तित्व नही है। अस्तित्वमे और द्रव्यमे (सत्‌मे) भाव और भाववानका तो भेद है सो यह भाव भाववान भी समझनेके लिये भेदकल्पना है, परन्तु प्रदेशभेद तो है ही नही सत्‌मे और सत्तामे अर्थात् अस्तित्वसे और द्रव्यमे। अस्तित्व तो द्रव्यके साथ ही एकताको आलम्बता हुआ है, अत अस्तित्व द्रव्यका स्वभाव ही है। सर्वकाल गुणोके द्वारा और उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यके द्वारा व सम्पूर्ण पर्यायोके द्वारा जो अस्तित्वमे आ रहा है वह स्वभाव है। वह अस्तित्वसे भिन्न नही है। उनका अस्तित्व हम लोगोके लिए इस रूपमे फूटता है। द्रव्य अस्तित्व कर युक्त है और साधनोकी अपेक्षासे रहित है, अनादि अनन्त है, अहेतुक है, और उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यसे इनका सद्भाव चलता है।

किसी भी पदार्थका अस्तित्व परापेक्ष नहीं—अस्तित्व द्रव्यका स्वभाव है, वह स्वभाव अन्य साधन निरपेक्ष है। कोई भी सत्ता अपने अस्तित्वको लिए हुए है और वह अन्य साधन की उपेक्षा नही करता, वह अनादिकालसे चला आ रहा है और अनन्तकाल तक चला जायेगा। पहले नही था और बादमे आ गया, ऐसा भी नही है। अगर सत्ता कहीसे आयी है तो वह पहले थी या नही। अगर कहो सत्ताका प्रवध पहलेसे नही है, बादमे कहीसे आया है तो बताओ उसका आनेका आधार क्या है? अगर आधार माने अमुकके सहारे भाई तो पहलेसे सचका होना सिद्ध हो गया, जिसे कोई मेट नही सकता। सत्ताका अस्तित्व तो है। सत्तामे कुछ है नही तो निराधार सत्ता कैसे बनेगी? इन्सान दुनियामे कुछ न हो, किन्तु इन्सानियतका स्वरूप बखानते फिरो, तो यह वचनोसे ही बाधा पावेगा। सद्भूत चीज है, उसके आश्रय बिना सत्ता कैसी? स्वरूप बना करते हैं बुद्धि द्वारा द्रव्य, गुण, पर्यायों व उत्पाद, व्यय, ध्रौव्योका परस्पर आश्रय करके। ये सर्व द्रव्य अनादिसे अनत तक रहेगे। यह जगत कैसे हो गया? इस सम्बधमे अन्योकी कुछ बुद्धिने काम नही दिया तो कह दिया ईश्वर की मर्जी (इच्छा) से बना है। जैसे सबसे पहले रेल चली तो देहाती आदमी उसे देखने आये, तो उनकी समझमे चलनेकी शक्तिका कारण समझमे नही आया। तब काला इंजन देखकर कह दिया कि इसमे काली देवी बैठी है, उसके द्वारा यह रेल चल रही है। आदतें तो ऐसी पडी है ना सबको कि कोई बात समझमे आवे या नही, किन्तु उसका हल अवश्य करना है।

मनुष्योपर भी कभी-कभी किसी प्रश्नका सही उत्तर नही आता तब भी कुछ न कुछ कह ही देते है, उनका ख्याल ही यह रहता है 'तीर नही तो तुक्का ही सही।' यह हठ बुद्धिमे भरा हुआ है। जिस ईश्वरने यह जगत बनाया वह कहाँ था? सभी जगह व्यापक था या एक जगह? अगर एक जगह था तो उसे बडी घुडदौड करनी पडी होगी। इसलिए कह दिया कि सब जगह है, फिर पूछो कि उत्पाद वस्तु क्या थी तब इसके वास्ते सूरज आदिमे अनेक कल्पनायें कर ली। अगर स्वरूपास्तित्वको छोडकर बाहर-बाहर देखें तो यह सन्तति नजर नही आती। यह चीज है पहले नही थी ऐसा नही बनता। प्रत्येक पदार्थकी अनादिसे अनन्त तक सत्ता है, इस वृत्तिसे अहेतुक है। सत्तामे हेतु क्या? सत्ता नवीन नही बनी। अन्य द्रव्यमे हेतु होता है। कार्य द्रव्यकी पर्याय है, उसमे हेतु होता है। एक जीवका अस्तित्व सामान्य क्या है? जो विशेष विशेष जीवकी पर्यायें है उनमे विशेष अपेक्षा न करके एक जो रहे उसीको सुगम मानना, यह अस्तित्व सामान्य है। वह अनादि अनन्त और अहेतुक है।

कल्पनामें ही पदार्थका समर्थन या विरोध है—अस्तित्व जो द्रव्य स्वभाव है वह विभाव लक्षण याने अन्यके नास्तित्वसे सयुक्त है। भाव भाववानका नानापन हो गया। एक सत्तासे सत्तावान है। इस दृष्टिमे नाना भाव हो गया। कोई एक प्रदेश अन्य प्रदेशमे होवे सो बात नही है। अस्तित्व द्रव्यका स्वभाव है, जो भी है वह द्रव्यका स्वभाव है। जितने भी विकल्प किया करते है वह है मैं नही हू, यह सब नष्ट होकर वस्तुके स्वरूपको बताते है। अगर ईश्वरको सृष्टिकर्ता माना जावे और मानने वालोसे पूछा जावे कि वह वास्तवमे है या नही? अगर नही है तब तो खण्डन ही किसका किया जावे? ईश्वरके बारेमे जो तुम्हारा विकल्प चल रहा है उसका खण्डन करते है, जो अभिप्राय है वह सत्के अनुरूप है या नही? बात बातमे ही कहे अभी समझे नही तो कार्य कैसे बनेगा? वस्तु तो वस्तु ही है। जो जानकारी चलती है वह वस्तुमे ही चलती है, यह सोचना अनुरूप है। लेकिन क्या यह अनुरूप नही जो द्रव्यमें एकता बनाये रहती है।

गुण, पर्यायकी कल्पनासे कही गुण, पर्याय जुदे-जुदे सत् नही हो जाते—भाव भगवानकी दृष्टिसे नाना हो गया। जो अस्तित्व है वह द्रव्यान्तरोकी तरह गुण व पर्यायोमे परिसमाप्त नही हो जाता है। जैसे द्रव्यान्तरोमे द्रव्य बहुत है, इस द्रव्यका अस्तित्व इस द्रव्य में परिपूर्ण हो गया अन्यमें नही, ऐसा यहाँ नही कि द्रव्यकी सत्ता द्रव्यमे है, गुणकी यथार्थ की सत्ता कोई अलग है। जैसे दस मनुष्य बैठे उनका अस्तित्व अन्यमे समाप्त हो जाएगा ना। आपका अस्तित्व आपमें रहेगा, अन्यमे नही चला जाएगा। एक द्रव्यकी गुण पर्यायें उसी द्रव्यमें रहेगी, अन्यमें नही चली जावेगी। गुणका गुणमे, पर्यायका पर्यायमे अस्तित्व समाप्त हुआ, ऐसा नही है। जब स्वरूपपर दृष्टि देते हैं तो गुणोका भी समावेश हो जाता है। जैसे

जीवमें अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत सुख और अनंत वीर्य कहनेपर सोचना यह एक जीवमें स्वतन्त्र-स्वतन्त्र है, यह बात नही बन सकती। वह तो एक ही जीव एक है और अलक्ष्य है, केवल स्वरूपभेद है। स्वरूपभेद समझमें आवे इसलिए उनको अलग-अलग बताया है। द्रव्य, गुण, पर्यायमे प्रत्येकमे यह अस्तित्व समाप्त नही होता। द्रव्य सत्, गुण सत् पर्याय भी सत् है, और प्रत्येक स्वतंत्र भी है ऐसा नही है। द्रव्य एक ही सत्रूप है, वह गुण पर्यायरूपसे लक्ष्यमे लाया जाता है। वह स्वर्णकी तरह पीलापनसे युक्त है, भारीपना भी उसमे है, और कुण्डल, करदोनी पर्यायें (हालतें) आकार भी उसमें पाये जाते हैं। आगे चलकर अन्य पर्यायमे आ जावेगा। यह सब होते हुए स्वर्णसे पृथक् कुछ दिखाई नही देता। वह स्वर्ण ही इन विशेपताओंको धारण किये हुए है, यह साधन बन गया। पीलापन एक स्वर्ण तथा उससे बना कुण्डल आदि भिन्न हो, यह तो है नही। यथा रात्रि विकासी कमल, दिन विकासी कमल, लाल कमल, नीला कमल एवं सफेद कमल यह सब कहनेपर केवल कमलकी विशेषता समझमे आयी। इससे यह तो न हो जायगा कि कमल और कही है, नील और कही स्वतन्त्र है। द्रव्य मे भी यही बात है, वह उन विशेषताओंसे अलग नही है तथा सब अलग-अलग माननेसे उनमे फिर क्या रहा ? कोई यह कहते सात पदार्थ है द्रव्य गुण सामान्य विशेष समवाय व अभाव। देखो गुण पर्यायको भी भिन्न मान लिया तो उनमे और जैनसिद्धान्तमे अन्तर क्या रहा ? वैशेपिक और जैनोंका यद्यपि सिद्धान्तमे काफी मेल खाता है, किन्तु एकात कर लेनेसे सारा मेल खतरा हो जाता है। अतद्भावकी दृष्टिसे द्रव्य गुण अलग-अलग हैं, किन्तु स्वतन्त्र सत् तो नही। वैशेषिकके अभिप्रायसे द्रव्य, गुण, पर्याय ये स्वतन्त्र सत् माने हैं वह एकताको कैसे प्राप्त हो सकते हैं। इसके अर्थ वह सामान्य कहते है, उनमे विशेषतायें हैं, उन्हे विशेष कहते। जुदे जुदे सत् हैं। वे एक दूसरेमे नही है, इसके लिए अभाव माना है। परस्पर सम्बधके लिए समवाद माना है। देखो भैया ! है ये सब एक, किन्तु उनके गुण पर्यायोको भेद-भेद कर डाला।

बचपनमे दादी एक कथा सुनाया करती थी। समझमे वह कहानी आवे या नही, हाँ तो कहना ही चाहिए, सो मैं भी हा कहता था। वह कहती—स्त्रिया पहले जमानेमे सिरमे से कीलें निकालकर अलग रख देती थी और सिरको निकालकर श्रृङ्गार लिया करती थी, फिर अपने सिरमे जोडकर कीले लगा लेती थी, यह बात समझमे तो नही आती, किन्तु शास्त्रोमे कीलक सहननका वर्णन आता है, उसके अनुसार कथा गढ ली गई हो। कीलक सहननमें शरीर कीलोसे जुडा रहता है। द्रव्य, गुण, पर्याय भी इसी तरह जुदे-जुदे सत् होवें और उन्हे साफ कर-करके बादमें द्रव्यमे बैठा लिया जावे, इस प्रकार यह द्रव्य, गुण, पर्याय (क्रिया) की स्वतन्त्र पदार्थताकी कथा वैशेषिको अर्थात् सर्वथा भेदवादियोकी है।

गुण व पर्याय द्रव्यकी विशेषमात्र हैं—द्रव्यके गुण और पर्याय द्रव्यसे भिन्न नही

है। यहाँ द्रव्य, गुण, पर्यायका वर्णन है। इन्हे ऐसा स्वतन्त्र नही समझना कि एक-एकमें उनका अस्तित्व समाप्त हो जाय। यह द्रव्य गुण पर्यायमे नहीं जानना। उस ही तरहका द्रव्य पर्यायकी दृष्टिसे देखा जाता है। द्रव्यसे गुणोकी और गुणोसे पर्यायोकी सिद्धि है। द्रव्यकी सिद्धि न हो तो द्रव्य गुण पर्यायकी सिद्धि भी कैसे हो सकती है? द्रव्यके दृष्टातमे यहाँ सुवर्ण को ही रखना। सुवर्णमे पीतत्व गुण है तथा कुण्डल पर्याय है, किन्तु यहाँ कुण्डल उस द्रव्यसे द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावदृष्टिसे भिन्न नही है अर्थात् उनकी पृथक् सत्ता दिखाई नही देती। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावात्मक सत् द्रव्यमे होता है। वह सुवर्णमे नही है। चौकीको समझके लिए द्रव्यपिण्ड कहा है और आकार प्रकारसे क्षेत्र होता है। वर्तमान पर्याय कालसे जानी जाती है और स्थायी धर्म भाव हुआ। प्रत्येक वस्तु द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव चतुष्टयसे समझमे आती है। यह द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव स्वतन्त्र स्वतन्त्र सत्तात्मक नही है। वह सब स्वतन्त्र सत् नहीं है। सुवर्णसे पृथक् पीतत्व नही है, तथा कुण्डलका सुवर्ण भी उस पीतत्व आदि गुणसे भिन्न नही है। सुवर्णमे ही कर्ता, कर्म, करण समाये हुए है या तीनो रूपसे धारण कर रखा है। इनका कर्ता है तो वह सुवर्ण, कर्म भी सुवर्ण है तथा करण भी सुवर्ण ही है। कर्ता कर्मको धारण कर रखा है। इनकी उत्पत्ति सुवर्णमे होती है। सुवर्णके पीतत्वादि गुण कहाँसे पैदा हुए? किन्तु हमारे उपयोगमे ही भेदरूपसे आते हैं। यह पीलापन इसीमे समाया है। द्रव्यकी तो हर बात पर्यायसे स्पष्ट ही देखते है। यह सिद्धि सुवर्णसे होती है। सुवर्णका अस्तित्व कुण्डल और पीतत्व गुणोसे भिन्न नही है, जुदा जुदा कहलाता है, किन्तु वास्तवमे वह स्वतन्त्र सत् नही है। प्रत्येक पदार्थ अपने ही द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावात्मक है, यही बात द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव लगाना चाहिए। द्रव्य, क्षेत्रके स्वरूपको धारण किसने किया? द्रव्यने। द्रव्यका ही कारण आधार है। गुण पर्यायोंके द्वारा जिसकी सिद्ध हुई है उन्हीका अस्तित्व गुण पर्यायोसे सिद्ध होता है। इनकी सत्ता इन प्रत्येकमे समाप्त नही हो जाती है। द्रव्यका ही साधारण लक्षण है गुणपर्ययवत् द्रव्य। वह सब द्रव्योमे पाया जाता है। इनके तत्त्व घटानेपर ऐसी दृष्टि होना होती है जो केवल एकको देखे। इससे मैं क्या लाभ लू? मैं एक अनुपम शान्तिका पुञ्ज हू, इसका आधारभूत मै हूँ। यह किसके आधार होती है? उसका आधार मैं हू अर्थात् द्रव्य, गुण, पर्यायात्मक आत्मा है। यह आत्मा अगले समयमे इसी दशामे नही रहती। प्रति समय नवीन-नवीन पर्याय चलती रहती है, किसपर गर्व पुष्ट किया जाय, इसके लिए यह सब स्वरूपवर्णन है। जीवका जो राग-क्लेश है उसी को सब कुछ समझकर मैं इसके अतिरिक्त और कुछ नही हू, इस बुद्धिने परेशान कर डाला। क्रोध, मान, माया, लोभ, मोह यह सब कुछ मेरे नही है। गर्व करनेका विषय वर्तमान पर्याय ही तो है उसे जो भिन्न समझे कोई तब यह पदार्थ उसके उपयोगमे कैसे हो जावेंगे? जितने

भी परिणमन दिखते है वह सब अनित्य हैं। चम्पतराय (एक जैन व्यक्ति जो कि ८ बजे शामको लडकेको भुला रहे थे, रात्रिमे समाप्त हो गये) का कल किसको मालूम था कि वह रात्रिमे खत्म हो जायेंगे। उन्हे क्या हो गया था? इसी तरहसे पत्येक रात्रि दिन, घन्टा, मिनटका भी इस जीवनका भरोसा नही। सभव हो सकता है उनका मरण विशुद्धिसे हुआ हो। देखनेको खूब उदाहरण दृष्टि पसारकर देख लो, इसमे सार क्या है?

हम किसीसे विशिष्ट नही हैं—शहरमे अपने बडेपनसे अन्योपर दवाव भी चल सकता है, अपनी सेवा भी दूसरोसे करा सकते हैं, किन्तु निमित्तनैमित्तिक सम्वधमे सब एक घाट है। कोई सोचे हम शरीरसे बडे स्वस्थ है, हट्टे कट्टे हैं। हार्ट फेलकी तो घटना ही क्या होगी? धनी सोचते हैं कि अगर वीमार हुए तो २-४ माहमे वैद्य डाक्टरोंके वलसे अच्छे हो जायेंगे। कोई विचारते होंगे कि खूब धनाढ्य तो है ही, अवसर आनेपर मनमाना धन खर्च करके तदरुस्त हो जावेंगे? पडित सोचे कि मूर्खोंपर आपत्तियाँ आती हैं, हमपर नही आवेंगी। कोई सोचे मैं तो त्यागी हूं, मृत्यु मुझसे बिना आज्ञा लिये कैसे आवेगी? यह सबका सोचना निरर्थक है। यहा सब एक घाट उतरेंगे। पैदा सभी एक तरहसे होते है और मरते भी सभी एक तरहसे है। कर्म बन्धनका ढग भी एक है, इन कर्मोके वन्धनमे सहूलियत किसीको नही होगी, अशुभ एव शुभ कर्मबन्ध भी समान होते हैं। चाहे वह ईसाई, मुसलमान, हिन्दू, पारसी, सिक्ख, हरिजन कोई भी क्यो न हो। जो पाप बुद्धि करेगा वह पापबन्ध करेगा और जो पुण्य बुद्धि करेगा वह पुण्यबन्ध पावेगा। मनुष्य एव पशुओंमे सम्यक्त्व होता है, उसमे क्षयोपशमकी दृष्टिसे भले अन्तर रहे, किन्तु पद्धतिमे अन्तर नही है। पशु भी तो अपने को परपदार्थोसे भिन्न अनुभव करता है। जो भी बीतती है वह सब एक ढगसे। हम यहाँ भले ऊचे पदाधिकारीको अपने पक्षमे लेकर टैक्स आदि न देवें या जगह मिलने आदिकी सहूलियत मिल जावे, किन्तु अन्तरङ्गमे तब भी सहूलियत नही मिल रही। वही परिणाम एक धनीके हो सकते है व दरिद्रके भी। जैसे भाव एक त्यागीके हो सकते है वैसे ही एक साधारण पुरुषके भी तो हो सकते हैं। लौकिक सहूलियत पूर्वकृत पुण्यका फल है।

नष्ट होने वाली वातपर क्या हर्ष विषाद—यह पर्याय पैदा होकर नष्ट हो जाती है। इसमे हर्ष करना और क्या बिलखना? यहाँ कर्ता, कर्म, करण और अधिकरण एक ही वस्तु है। कर्ता कर्मरूपसे द्रव्यको समझाया है, जिससे अस्तित्व जाना जाय। द्रव्य पर्यायोसे भिन्न कहाँ है? केवल साधन सिद्धि है। जैसा परिणाम करते है वैसा फल भोगते चले जाते है। जैसी प्रक्रिया होती है वैसा करते जाते हैं। किसीके सुख, दुःखको अन्य भोगने वाला नही है।

कोई गृहस्थ पुरुष अकेला था, सन्तान नही थी। किसीने कहा कि अमुकके सामने अमुक जीवकी बलि कर दोगे तो तुम्हारे सन्तान हो जायगी। यह क्रिया कोई न करे और

उसके सतान न होवे ऐसा तो है नही, क्योकि जिन्होने इस प्रकारके कार्य नही किये उनके भी ८-१० सताने पायी जाती हैं। छत्र आदि चढाना शुभ क्रिया है, छत्र न चढाने वाले भी सुखी है, तो सब पुण्यके फल हैं। इनमे क्या ललचाना ? बलिकी सलाह पाने वालेने हिंसाका कार्य कर ही दिया। उसके यहाँ पूर्वकृत कर्मसे सतान हो गई और धन भी खूब आया। बादमें ऐसा पूर्व व नवीन दुष्कर्म आया कि धन एव पुत्रादि सब नष्ट हो गये, कगाल हो गया। तब यहाँ वहाँ घूमता फिरे और कहे—'देर है अन्धेर नही' अर्थात् पापका फल देरसे मिल सकता है, किन्तु मिलेगा नियमसे। एक दिन कंगालको घूमते हुए सूबेदारने देख लिया। उसने सोचा कि यह प्रतिदिन इसी तरहसे चिल्लाता फिरता है। तब सूबेदारने उसे बुलाकर ८-१० दिन आरामसे रखा, तब उससे पूछा—क्या बात है जो तुम इस तरह चिल्लाते फिरते हो ? तो उस व्यक्तिने अपना सब हाल सुनाया कि मैंने अमुक जीवकी बलि की, जिससे यह फल कुछ बादमे तो जरूर मिला, किन्तु मेरे घरमे दाने भी चाबनेको नही रहे। इसलिए न्यायमे 'देर है अन्धेर नही है।' पापकर्मका फल मिलनेमे देर होना हो तो ये जाने, लेकिन फल तो भोगना ही होगा, किसी न किसी समयमे। इस परिपाटीका कभी लोप नही हो सकता। हाँ कहीं अति विशुद्धता हो और सक्रमण हो जाय, यह अन्य बात है।

कितना दुर्लभ नरजन्म है—कितने भवोके बाद यह हाथ आया है, इसका किसे अनुमान है ? निगोदसे जैसे तैसे निकल पाया। अब भी बेसुध पड़ा रहे तो कौन सहायक हो जावेगा ? अतः सब बाते पाकर यह विचार मनमे समाया रहे, जीवन सफल कैसे हो ? इसके लिए लगन होनी चाहिए। जीवनमें कभी न कभी अवनति तो होती है। बड़े-बडे धनाढ्य व्यक्ति एव राज्यके मंत्री आदि भी मशीनीयुगके जीवनसे ऊबकर वह भी अपनेको जड़मशीन जैसे कार्योंसे जुदा करके आत्महितको व्याकुल हो जाते है। प्रवृत्ति चलती ही रहती है। शास्त्राभ्यास और आत्मतत्त्वकी भावना पतवारका कार्य करेंगे। यह भी न बने तो जिनेन्द्रदेव की भक्ति, सज्जनोकी सगति, महापुरुषोके चरित्रका गुणगान करना, किसीके दोष कहने एव सुननेमे मौन रहना तथा हितमित प्रिय वचन बोलना, इन पाँच बातोको जीवनमे उतारें। उपयोगी सातो बातें हैं। इन सातो बातोसे जीवन सफल हो सकता है।

मरणसे पहले सद्धर्मार्जनकी प्रेरणा—मरणका कोई भी मुहूर्त नही रखा जाता। 'जब तेरी डोली निकाली जायगी, बिन मुहूर्त भी उठा ली जायगी।' जितना जीवन शेष रहा उसे सफल कैसे करा जावे ? कोई सोचे कि मैं औरोका उद्धार कर दूँ तो जैनधर्मका उद्धार हो जायगा, यह कल्पना निरर्थक है। जो अपना उद्धार कर ले तो जैनधर्मका उद्धार है, अन्यथा नही। अपना लोटा तो छाना भी जा सकता है, क्या पूरे कुवेको छानना भी सम्भव है ? यह समझमे आ जावे, तत्त्वोके यथार्थ आचरणसे उद्धार है अन्य और मार्ग नही है। भक्ति, पूजन

आदि करते-करते केवल कभी रूढिपर ही चलते जाते है, अन्य भावना जागृत नही होती। इसके लिए उत्सव विद्वानोका उपदेश, रथयात्रा आदि हैं जो जीवनमे आत्मकल्याणके प्रति उधेड-बुन मचा देवे। मैं उद्धार कर दूँ, यह कहनेसे किसीका भी काम नही चलेगा, किन्तु अपना-अपना सोचो तो वहाँ धर्म है। बुद्धिको व्यवस्थित करनेके लिए जैनधर्मके तत्त्व माननीय है। घरसे विलायत पहुचनेके लिए मध्यके स्थानोका भी परिचय होगा, वह उपयोगमे न आकर लक्ष्य पुनः निज उपयोगमे आनेका रहना चाहिए।

वस्तुकी असलियत पहचानो—यह द्रव्य, गुण, पर्याय अलग-अलग थे या एक ही वस्तुकी विशेषतायें हैं? वस्तुकी विशेषताये ही हैं। इनसे लक्ष्यमे लिया जाता है द्रव्य, वह द्रव्यसे कैसे भिन्न है? उनका परिणमन क्षेत्र, काल, भावसे अलग है या अलग-अलग नही है? द्रव्यमे ही उनका स्वरूप है या द्रव्यने हो उनका स्वरूप धारण किया है। चूंकि वही द्रव्य कर्ता, करण, अधिकरण है, इसलिए द्रव्यने गुण पर्यायके स्वरूपको धारण किया है। इसी तरह बताते है कि द्रव्यका अस्तित्व गुण पर्यायोसे सिद्ध होता है उसी तरह गुण पर्यायोंके द्वारा द्रव्य सिद्ध होता है। द्रव्य भी तो गुण पर्यायोसे कुछ अलग नही है। गुणको मुख्यमे रख लिया और सिद्ध करना है द्रव्यको, सुवर्ण पीतत्व आदिसे भिन्न नही है। पीतत्व गुणसे पाया जाने वाला सोना द्रव्यसे अलग रहता है क्या? ऐसा कोई द्रव्य नही है। कर्ता, करण, अधिकरण पर्यायोंने उस कातर स्वरका रूप बनाया, वहाँ द्रव्यका गुण पर्यायोंने स्वरूप बनाया है और यहाँ गुण पर्यायोने द्रव्यका स्वरूप बनाया है। कोई कहे यह सब चीज है। तो एक कहाँसे और कैसे बनना है? एक तो तब कहे जब वह द्रव्य, गुण, पर्यायसे या द्रव्यसे गुणादि निष्पन्न हो। परस्पर गुण, पर्याय पहले हो बादमे द्रव्यको निष्पन्न किया हो, यह बात तो है नही। उन्होने इसे सिद्ध किया और इसने उनको सिद्ध किया। कर्ता, करण, अधिकरणके रूपसे सुवर्णके स्वरूपको धारण करते है। पीतत्वने सुवर्णको धारण किया और सुवर्णने पीतत्व को अपनाया। पर्याय न हो तो द्रव्यत्व कैसे रहे? अतः कर्ता, करण, अधिकरणके स्वरूपको लेकर जो रहा करता है, चला करता है और होता है, ऐसा जो पीतत्व, कुण्डलादि पर्यायोसे सुवर्णकी सिद्धि है। वह सदा प्रवर्तमान रहता है, उसमे लक्ष्य लक्षणकी बात सिद्ध की जाती है। तब किसी भी तरहसे सिद्ध किया जा सकता है। पीतत्वादि गुण कहाँ रहेगा और सुवर्ण कहाँ रहेगा? वह प्रत्येक है और प्रति समय परिणमन रहता है। वह एक वस्तु है। परिणामी परिणमनसे भिन्न नही है। जीवमे नाना पर्यायें चल रही हैं। वह सदैव अपने-अपने अनुसार पर्यायोको पाते रहते है। पर्यायोमे कभी कुछ न हो तो द्रव्यकी क्या सिद्धि हो? परिणमनोसे द्रव्यकी सिद्धि है। 'तन्तु द्रव्यान्तराणामिव गुण-पर्यायाणा न प्रत्येक परिसमाप्यते।' वह जो अस्तित्व है वह भिन्न-भिन्न रूपसे द्रव्य गुण पर्यायोकी अपेक्षा समाप्त हो जावे

ऐसी बात नही है। कहते है कि द्रव्य भेजो तो भेजोगे तो यहाँ गुण भी है, पर्याय भी है। वहाँ जितने गुण है उनमेसे कोई भी गुण दूसरे रूप नही होता। फिर भी—

विशेषता विशेष्यसे जुदा सत् नहीं है—द्रव्य गुण, पर्यायोसे सत् जुदा नही है उनकी विशेषता भिन्न कैसे हो जायगी ? जैसे अमुक पुरुष रूपवान, लम्बे कद वाला, शक्तिवान तगडा है तो यह अमुक नामधारी व्यक्तिकी विशेषता हुई। सभीमे यह गुण हो सो बात तो नही है। यह गोरेपनकी विशेषता ऊँचे कद वाला ही तो नही कर सकता है। अगर ऐसा कहे कि उसका गोरापन मनुष्यपनासे पृथक् है, यह सिद्ध नही हो सकता। इसी तरह इसकी विशेषतायें है, वह भिन्न नही है। मूल साधनरूपसे निष्पन्न हुआ अस्तित्व। 'अस्तित्वं हि किस द्रव्यस्य स्वभाव' अर्थात् अस्तित्व ही द्रव्यका स्वभाव है और वह प्रत्येकमे समाप्त नही होता, एक ही है। पीतत्वादि गुणोके बिना सुवर्णका अस्तित्व नही है, उसी तरह द्रव्यका अस्तित्व सिद्ध होता है। गुण पर्यायोके द्वारा द्रव्यका अस्तित्व सिद्ध है। वह द्रव्यका स्वभाव है, यह सिद्ध हुआ।

शक्ति व व्यक्तिसे जुदी कुछ चीज ही नही—गुण और पर्यायोसे पृथक् पाया जाने वाला कोई द्रव्य ही नही है और न कभी था और न कभी होगा तथा यदि द्रव्य द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावसे पृथक् माना जावे तो द्रव्यकी सिद्धि नही होती है। द्रव्य-द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावात्मक है। गुण भी द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावात्मक है, पर्याय भी द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावात्मक है, ऐसा नही है। पृथक् पाया जाने वाला द्रव्य कैसा है ? कर्ता, करण, अधिकरण के स्वरूपका है। कर्ता, करण, अधिकरण रूपमे जिसकी सिद्धि है, वह द्रव्यका स्वभाव है। द्रव्य, क्षेत्रादिसे कोई भिन्न-भिन्न नही हैं। द्रव्यके दो लक्षण है—(१) उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य युक्त सत्। (२) गुण, पर्याय व द्रव्य उत्पाद, व्यय और ध्रौव्यसे जो युक्त है वह सत् है तथा गुण और पर्यायो वाला द्रव्य है। जो अस्तित्व है वह द्रव्यान्तरोकी तरह गुण, पर्यायमे या उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यमे तत्र अस्तित्व नही बन जायगा। उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य क्या है ? प्रत्येक द्रव्यमे यह तीनो पाये जाते हैं। जो स्थायी वस्तु है वह ध्रौव्य है तथा जैसे सुवर्णका कडा था, उसका मिटकर कुण्डल बन गया। तो यहाँ कुण्डल पर्यायका उत्पाद हुआ है, और कडा पर्यायका व्यय हुआ है और सुवर्ण धातु वहीकी वही है, यह ध्रौव्य हुआ सुवर्णसे सुवर्णात्मक गुण, पर्याय कही अलग नही है और न कुछ उत्पाद व्ययसे ध्रौव्य भिन्न है। सभीका परस्पर सम्बध है। सुवर्णमे कुछ न कुछ उत्पाद तो रहेगा। जिस समय उत्पाद हो रहा है वह उत्पाद सामान्य है और जब व्यय हो रहा है उस समय व्यय व सामान्य कहा जाएगा। किसीने कहा कि आप तो अनेकान्तके द्वारा भिन्न-भिन्न वस्तुओंकी उनकी अपेक्षासे जल्दी घटा देते हो। यह नही सुनना हमे तो एक ही बातमे घटा दो, एक ही पदार्थभरमे दृष्टि हटावे तथा

अनेकान्त अस्ति नास्ति का घट जावे व उसमे भी कालका कालमे। क्षेत्रमे पर्यायका पर्यायमे, द्रव्यका द्रव्यमे आदि।

एक ही द्रव्यमे कालकी अपेक्षा अस्ति नास्ति—चूकि यहा पर्यायका प्रकरण चल रहा है। अत एक ही द्रव्यमे कालापेक्षया अस्ति नास्ति देखिये—द्रव्यकी कालदृष्टिसे पर्याय इसमे ही समभाई, (१) सामान्य पर्याय और विशेष पर्याय और (२) भेद पर्याय और अनुभेद पर्याय। जैसे एक आत्मा है वह एक द्रव्य है, उसमे गुण अनन्त हैं। उसमें एक ही समय मे दर्शनगुण, ज्ञानगुण, वीर्यगुण और सुखगुण विद्यमान है, वह सब एक समय परिणम रहे है। इसी एक वातको इस तरह वताते हैं। एक ज्ञानगुणकी पर्याय है, दूसरी दर्शनगुणकी पर्याय है, तीसरी चारित्रगुणकी पर्याय है आदि अनन्त पर्याये होती हैं। वह सब पर्यायें द्रव्य मे एक ही समय होती है, ये सब भेदपर्याय हैं। यह क्रम भेददृष्टिसे पर्यायोमे हुआ नाना स्वभावोको अभेद कर पर्यायोका अभेद कर एक पर्याय भी होती है, भेद और अभेदकी अपेक्षा दो पर्यायें आ गईं। अभेद पर्यायकी दृष्टिसे अस्ति तो भेदकी दृष्टिसे नास्ति सिद्ध होता है और अभेद पर्यायसे अस्ति तो अभेद पर्यायसे नास्ति विभिन्न कालकी पर्यायोकी अपेक्षासे वे विशेष पर्याये हैं व परिणमन सामान्यसे सामान्य पर्याय है। यह सामान्य हुआ। सामान्यकी अपेक्षा अस्ति और विशेष पर्यायकी अपेक्षा नास्ति। इसी तरह विशेष पर्यायसे अस्ति तो सामान्यसे नास्ति। उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यसे द्रव्य अलग तो नही है। जैसे सुवर्णके उत्पाद पाया जाता है, सुवर्णके व्यय पाया जाता है और सुवर्ण ही ध्रौव्यरूपसे भी रहता है। उत्पाद द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावात्मक है तथा व्यय भी द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावात्मक है।

उत्पाद, व्यय स्वतंत्र सत् नहीं है—सुवर्णमे पाया जाने वाला जो द्रव्य है वही सुवर्ण का स्वभाव है। कोई नवीन पर्याय सुनारके निमित्तसे वनी तो भी उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य हमेशा चल रहा है। उत्पाद व्यय होनेसे सुवर्णका अस्तित्व हुआ। कर्ता, करण, अधिकरण रूपसे जो सुवर्णमे पीतत्वादि व कुण्डल है उसने कर्ता, करण, अधिकरण रूपसे ग्रहण किए हैं, कुण्डल, कटक और पीतत्वके स्वभावको ग्रहण किया है, इन प्रवृत्तियोसे युक्त जो सुवर्ण है उसके उत्पाद से युक्त जो अस्तित्व है वह सुवर्णका स्वभाव है। मैं परिणमता चला जा रहा हू और मेरे द्रव्य, गुण, पर्याय स्वतत्र सत् है सो नही है। त्रयात्मकतासे अस्तित्व है जो सिद्ध हुआ वह द्रव्यका ही स्वभाव है। लक्ष्यमे लानेके लिए उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यकी सिद्धि है। यह सव जीव द्रव्य आदि उनसे अलग नही है।

कुछ भी करो द्रव्य सब अलग-अलग है—सुल्तानपुर चिलकाना (सहारनपुरके पास का कस्बा) मे दो भाई है। वे एक साथ ही खाते, सोते, उठते, खेलते, व्यापार आदि करते हैं। यह सब होते हुए भी वे अलग-अलग हो, ऐसे द्रव्यान्तर अलग-अलग हैं। गुण, पर्यायसे

उनकी सिद्धि है। जैसे कदाचित् दूसरेका रहना एक भाईसे और दूसरेकी भी सिद्धि एक भाई से हो सकती है, फिर भी अस्तित्व जुदा-जुदा है। कोई द्रव्य, गुण, पर्यायोके बिना रह जाय सो बात नही है। मृत्युमे तो व्यवहारका भी अन्तर पद हो जायगा। साधर्मी जनो व कुटुम्बी जनो सभीमे अन्तर होता है। किसीके यहा गये तो वहीपर कहेगे हमारा अमुक भाई, पुत्र आदि है। जहाँ देखो वहाँ कल्पना अपना माननेकी कर ली है। कोई किसीसे चाचा, दादा, फूफा आदि कहता है, लेकिन यह असत्व कल्पनायें है। ममत्वकी पाठशालायें नहीं है, किन्तु ममत्व सस्कारवश पैदा होता है वह अनादिकालसे चल रहा है। समताका उद्यम भी किया जाता है, फिर भी उसमे पीछे रहा तो मुझ जैसा मूर्ख कौन होगा ? जहाँ जाता है वहाँ कल्पना कर लेता है। एक गावमे एक मनुष्य था जो कही भी जावे वहाँ अनाप-सनाप बक देता, किसीको कुछ महत्त्व नही देता। तो उसको सभी मूर्खराज कहने लगे। जो कहे सो मूर्खराज ! कहाँ जा रहे, कहांसे आये ? मूर्खराज ! फला कार्य हो गया आदि। यह सुनते-सुनते वह परेशान हो गया, तो गाव छोडकर अन्यत्र चल दिया। दो मील आगे जानेपर रास्तेमे एक कुआ मिला। वहाँ वह कुयेंमे पैर लटकाकर पारके ऊपर बैठ गया। इतनेमें एक अपरिचित आ रहा था, वह बोला—मूर्खराज ! कैसे बैठे हो ? तो मूर्खने उसे गले लगाया और प्रेमसे बोला—तुमने हमे कैसे पहिचान लिया ? तब वह बोला कि तुम्हारा कार्य देखा सो बता दिया। मरनेके साथ भी तो मूढताका यह सस्कार जावेगा। मूर्खताके काम करनेपर वह साथ ही जावेंगे। यह कार्य कौन सिखाता है ? यह विना सिखाई विद्या अगले भवमे भी साथ जायगी। जब तक तत्त्वज्ञान नही करते तब तक बेचैनी सूझती ही रहेगी। लेकिन सच्चा उपाय जो है उसका आचरण नही करता। यह जो समागम है वह तो बिछुडने वाले है। प्रत्येकमे अस्तित्व समाप्त हो जाते हैं। यह तो सदैव बने रहते हैं। जीवनके खेलमें जो आत्मलीनताकी वाजी जीत जावे उसीका जय घोस होगा। अन्य घोस कोई कार्य नहीं देंगे।

उत्पाद, व्यय बिना ध्रुव कोई चीज नहीं—पहले बताया था कि द्रव्य, गुण, पर्यायो से युक्त द्रव्यकी सिद्धि है और द्रव्यसे गुण, पर्यायोकी सिद्धि है। इसके लिए तीनका वर्णन किया। अब बताते हैं कि उत्पाद, व्ययसे ध्रौव्यकी सिद्धि है, सुवर्णका उत्पाद, व्यय ध्रौव्यपन से भिन्न नही है। सुवर्णका उत्पाद जैसा कडा बना था तथा कुण्डलका व्यय तथा सुवर्ण अगली पर्यायमे भी है तथा वही पूर्वकी पर्यायमे भी था। देखा जाय तो वह सुवर्ण कटकके अतिरिक्त और कुछ नहीं है, पीतत्वसे भिन्न नही है। द्रव्यान्तरो और गुण पर्यायोमे इतना ही अतर है। जैसे सुवर्णके उत्पादमे ध्रौव्य सुवर्णसे न्यारा नही है। सुवर्ण ही उन सबको ग्रहण कर रहा है कर्ता, करण, अधिकरणके रूपसे। कर्ता आत्माके रूपसे उन स्वरूपोको ग्रहण करके रह रहा है। उस सुवर्णके अस्तित्वसे उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य सिद्ध है और उत्पाद,

व्यय, ध्रौव्यसे सुवर्ण सिद्ध हुआ, वह वार्तर स्वभाव है, द्रव्यका स्वभाव है। इसी तरह द्रव्य के उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य द्रव्यसे जुदे नही है। इन उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यके स्वरूपोको यह ग्रहण कर रहा है। उनका कर्ता, करण, अधिकरण द्रव्य ही है। उस द्रव्यके अस्तित्वसे उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यकी सिद्धि है और वह अस्तित्व द्रव्य ही है। एक सत् है और प्रतिसमय परिणमता रहता है। जो लक्षण रूपसे कहे है, वही वह सब आत्मभूत है अथवा उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यरूप जो द्रव्यका अस्तित्व जाना वह द्रव्य है। उनसे जो अस्तित्व समझा गया वह द्रव्य का स्वभाव है, निश्चयनय है।

शब्द सभी विशेषक होते है, अतः शब्दोसे तत्त्व अभिधेय नही होता—शब्द जो बोलोगे वह विशेपता बताता है, वस्तु सामान्यको नही कह सकता। जैसे कमडलु, कमण्डलका अर्थ है—क मण्डते यत्र अर्थात् जिसमे जल शोभित हो। बोलो यह विशेषताकी ही तो सूचना है। और भी शब्द बोल लो और धातु, व्युत्पत्ति आदि अर्थ निकाल लो विशेपता ही प्रकट होगी। एक दृष्टि वह है जो जानते रहो और कुछ नही कह सकते। जैसे आत्माको बोलो तो उसका कोई शब्द नही है, लेकिन जिन्होंने समझ रखा है उन्हे किसी विशेपतासे बोलो जानेंगे विशेष्यको। आचार्योंने उनमेसे जो छाटा है उनके शब्दोमे आत्माका ज्ञायकस्वरूप ही मिलेगा। ज्ञायकस्वरूप कहकर भी द्रव्यको जाना। उसमे भी द्रव्यके एक जाननरूपको लिया है अथवा कोई शब्द ही ऐसा नही कि जिससे शुद्ध आत्माको जो परसे विभक्त है उसे कह सकें। प्रत्येक परसे भिन्न है। कोई किसीमे मिलना नही इसलिए तो द्रव्यका स्वरूप अब तक कायम है और तभी यह बताया है। प्रत्येक पुद्गल परमाणु भी कोई किसीमे नही मिलता, उनकी जुदी-जुदी सत्ता है। मैं मैं हू, आप आप है, लेकिन विपरीत धारणा मान रखी है। उन्हे समझना चाहिए। सब पृथक्-पृथक् हैं, यह जाननेपर भी राग रहता है। कुछ समय को वह गलती है। अन्य कार्य करते हुए भी शुभोपयोगमे लगे हैं। इतनी जो वृत्ति हो रही है वह गलती है। यह हिसाब तो लगता ही जायगा। एक आनाकी भी गलती है वह सही न कहलाकर गलती ही कहलावेगी। पुण्यके प्रभावसे इन्हे धन मिला तो यही प्रतीत होता है कि यह ज्ञानका फल है। नेतागिरी, धनाढ्य घरमे जन्मना, सर्व वैभव सुख सम्पन्नता आदि जो भी सामग्री उपलब्ध हुई है वह सब ज्ञानका फल प्रतीत होता है, किन्तु वह ज्ञानका महत्त्व क्यो है? जिसके होनेपर राग भी इतना महत्त्व पा गया। उससे ज्ञानकी महिमा जानी गई। जिस पदको सम्यग्दृष्टि ही पा सकते है अन्य नही, वह भी ज्ञानकी महिमाको प्रकट करता है। इतना वडा महत्त्व शुभ राग भी दिखा देता है, फिर भी ऐसा है जो वह सासारिक वात है रागके फल हैं। यह विशेष जान लेवे भीतरसे बोध हो जावे तो इनमे आसक्तिसे नही लगेगा तथा उत्कृष्ट पदकी अभिलाषा, धनसम्पन्नता आदिमे भी नही रमेगा, यह सव तत्त्वज्ञानपर

अवलंबित है । ऐसा ज्ञानी कोई नही मिलेगा जो विषयोमे आसक्ति रखता हो । ऐसा भी ज्ञानी नही मिलेगा जो अपराधीको क्षमा नही करेगा, जरूर कर देगा । रामको युद्ध करना पडा । रावण उस समय बहुरूपिणी विद्या सिद्ध कर रहा था । कुछ मनुष्योने आकर रामचद्र जी से कहा, अगर रावणको बहुरूपिणी विद्या सिद्ध हो गई तो काफी अनिष्टकी सभावना है । अतएव उसमे विघ्न कर दिया तो वह नही हो सकेगी । रामचद्रजी ने यह बात सुनकर सबको मना किया, फिर भी बावले मनुष्य नही माने, और रामके सेवक होनेसे भक्ति दिखानेके लिए रावणकी विद्यामे बाधा करने पहुच गये । तब जो विद्या देरसे सिद्ध होने वाली थी वह बहुरूपिणी विद्या रावणको और जल्दी सिद्ध हो गई । कोई किसीका अपराध क्षमा नही कर सका और जिन्दगीमे बदला लेनेके ही विचार बनाये रखे तो जैनधर्म पाकर सीखा क्या है ? अगर इतनी क्षमता नही आ पाई । प्रत्येक जीव अपने परिणाममे है, अतएव सोचना यह चाहिए कि प्रत्येक दु.खमे हमारा अपराध है, निमित्त पाकर वह जो कुछ करता है तो करो । मैं जो कुछ करता हू उससे अन्यको लाभ हानि क्या ? पूर्वकृत कर्म भी कोई नही टाल सकता, तब पुन यह थोडा अपराध करनेपर अन्य जन मुझपर अधिक क्षोभित भी होवें तो हमारी निर्जरा ही है शान्तभावसे सहन करनेमे ।

विवादका कारण प्रायः बातकी हठ—ससारमे जितने भी युद्ध एव आपसी लडाई होती है वह सब एक बातके ऊपर होती है । उसने हमसे यह वचन कह दिया, अच्छा इतना बडा भारी मेरा अपमान कर लिया, यही भावना युद्धकी सृष्टि करती है । अनुचित वचन कहना उसका अज्ञान था, लेकिन यहाँ क्षोभ क्यो करना, इससे कुछ बनता नही है । राजा राणा छत्रपति हाथिनके असवार । मरना सबको एक दिन, अपनी अपनी बार ।। यह निरर्थक का मद मोह कब तक काम आवेगा ? तुम्हारा अगर कोई कुछ अनिष्ट या इष्ट करता है तो वह चित्त यहाँ जुटाया जावे । सर्व पदार्थ विनाशीक है । मेरा शरीर भी यहाँ नही रहेगा, फिर किसके लिए विनाशीक है ? मेरा शरीर भी यहाँ नही रहेगा, फिर किसके लिये युद्ध या राडा किया जाय । छोटे बच्चोका दिल कितना विशाल होता है, वें आपसमे लड-झगड लेंगे, यहाँ तक कि एक दूसरेको दाँतोसे काट लेवें, मार-पीट कर देवे तथा घर चले जावेंगे और फिर आकर मिलकर एक हो जावेंगे एव साथ-साथ फिर खेलना शुरू कर देंगे । क्या हुआ था, क्या किसीने मेरे प्रति किया ? यह ज्ञात नही । जैनधर्ममे सबसे बडी विशेषता क्षमा की भी है । जब छोटेसे छोटे जीवपर भी दया परिणाम रखना चाहिए तब क्या मानवमात्र जो अपने भाई है उनसे क्या प्रेमपूर्वक व्यवहार नही करना चाहिए ? पहली बातोका राग तथा आगे मिलने वाले रागका विलास ही तो मनमे चल रहा है, भूत भविष्यत तथा वर्तमानका मोह सुमार्गपर नही चलने देता । भैया ! प्रायः सभी चाहते है कि विकल्प हटे । किसीने कहा कि तुम

ब्रह्मके अंश हो, उसकी भक्ति करो तो क्रोध, राग, द्वेष, मोह, माया, ममता सभी दोष भाग जाते है। मानो ब्रह्मपर दृष्टि डाली तो सर्व कार्य सिद्ध हो गये, किन्तु वहाँ भी ज्ञाता ज्ञेयका विकल्प ही बनाया। तुम भी तो ब्रह्म हो। अद्वैत वालोका एक ब्रह्म है। आप सब जुदे-जुदे ब्रह्म हो, स्वतंत्र हो, कालकृत परिणमन कर रहे हो। यह सब गुजर रही है, क्रोध, मान, माया आदि ब्रह्मके अशुद्ध अंश है। उपयोग भी ब्रह्मका अंश है। आत्मामे क्या सत्त्व है, वह भी तो ब्रह्म है। अपना उपयोगका साधन जो मूलभूत आत्मा उस तत्त्वकी उपासना करो तो सब क्रोधादि विकल्प भी हट जावेंगे। यह गौण सफलता तो मिलेगी ही, किन्तु यहाँ ज्ञाता ज्ञेय उसी अस्तित्वका है। वह स्थिति यहाँ ठीक बैठ जावेगी। कविवर प० दौलतरामजी ने छहढालामे क्या ही उत्तम कहा है—'चित् पिंड चंड अखंड सुगुण करण्ड च्युत पुनि कलनितैं।'

मै सबसे निराला अखण्ड चिन्मात्र हूँ—यह बात द्रव्य गुणपर्यायके स्वरूपको जानने से ही तो आती है। मैं क्या हू ? मैं केवल शुद्ध चैतन्यका पिटारा हू, उसमे किसीका समावेश नही है। बस, एक उसके ही स्वरूपको देखो, देखते हुए सब बातें कह रहे हैं। फिर भी परमे उपयोग न चला जाय इसकी सावधानी रखना कठिन है व बाह्य अर्थके रागमे असभव है, अतएव अनेक बाह्य आडम्बरोको हटाकर नग्न दिगम्बर मुद्रा धार करके उस केवल ज्योतिको पाया जाता है, जो सिद्ध भगवानका गुण है। यह द्रव्य गुण प्रत्येकमे समाप्त नही होते। यथा द्रव्येण वा क्षेत्रेण वा कालेन वा भावेन वा उत्पाद व्यय ध्रौव्यसे पृथक् न पाया जाने वाला सुवर्ण अकेला है। इसी सुवर्णने कर्ता, करण, अधिकरणके स्वरूपको ग्रहण किया है। इन उपायोसे जिसकी सिद्धि है वह उत्पाद, व्यय ध्रौव्यसे निष्कासित इसका ही स्वभाव है। उत्पाद व्यय ध्रौव्यसे पृथक् न पाया जानेसे कर्ता, करण, अधिकरणका जो ग्रहण हुआ वह द्रव्यका स्वभाव ही है। इस गाथासे यह सिद्ध हुआ—द्रव्यका अस्तित्व है, सद्भाव है और वह स्वभाव उत्पाद व्यय ध्रौव्य वाला है। वह उसी रूप है अन्य तरहका नही है। यह जगत जो प्रवर्तमान हो रहा है वह कर्ता कर्मरूप प्रवर्तमान है। उनपर द्रव्यके एक-एक स्वतंत्र स्वरूपको दिखलाया है। उसपर दृष्टि लगाना चाहे तो उसीपर दृष्टि लगावे, उसपर दृष्टि लगती है। एक दर्पण है, उसके सामने १० बच्चे खडे है। देखने वाला दर्पणमे व बच्चोमे उपयोग देकर भी बच्चोको ही ग्रहण कर सकता है या वह बच्चोके विकल्पको छोडकर केवल ऐनकको ही ग्रहण कर सकता है, वहाँ भी बच्चोको बता सकना ऐनकका यह स्वभाव नही है वह तो बाह्य साधन का निमित्त पाकर इस रूप परिणाम रहा है। देखने वाला चाहे तो लडकोपर दृष्टि न करके ऐनकको ही देख सकता है। उसकी छायाको भिन्न देखकर शुद्ध दर्पणको भी देखता है, सब तरह से निर्णय कर लेवे कैसी दृष्टिसे कैसा प्रभाव पडता है ? ऐसे अनुभवसे उसने ऐनकके सद्भावको जाना है, केवल उसे सबसे विभक्त शुद्ध दर्पणके ग्रहण करनेका प्रयोजन है। द्रव्य गुण पर्यायोका

स्वरूप जानना क्यो बतलाया, क्योकि यह तत्त्वोका मुख्य स्वरूप है। इसके बिना एक कदम भी नही चल सकते, इसको जाननेसे ही आत्मतत्त्वका ग्रहण होता है।

आत्मज्ञान ही प्रथम धर्म है—मान लो हम रात्रिको नही खाते है तो अन्यत्र रात्रिमे खाने वाले भी मिल सकते है। पानी छानकर पीते हैं, यह तो जीवनमे प्राकृतिक तौरसे ही आना चाहिए। अन्य भी रात्रिमे रात्रिभोजनका त्याग एव पानी छानकर पीना कर सकते है जिस उदारताको अपन बर्तते है, उसे अन्य भी कर सकते है। इसी तरह दया, सयम पालना, ब्रह्मचर्यसे रहना, त्यागावस्था अपनाना, धैर्य धारण, कूटनीतिसे कार्य नही लेना, असत्यको जीवनमे स्थान नही देना, सत्यको कहनेकी बजाय स्वय जीवनमे उतारकर बताना उसी रूप बन जाना इत्यादि बातें जैन एव अन्य मतावलम्बी भी कर सकते है। लेकिन इस निर्बाधित कॉट छॉंटके कहे बिना जैनशासनके तत्त्वज्ञानको नही जान सकते तथा दूसरे भी इसके बिना द्रव्यका सच्चा स्वरूप बतानेमे सर्वथा असमर्थ है। इस सबको करते हुए भी हमे आगे जाना चाहिए, जहाँ स्वतत्त्वको प्राप्त कर सकें। द्रव्यका स्वरूप अस्तित्व है। उस अस्तित्वको दो तरहसे देखा जा रहा है—(१) अस्तित्व सामान्य, (२) पदार्थगत अस्तित्व। अभी व्यक्तिगत अस्तित्वका वर्णन था। वह गुण वाला, पर्याय वाला है—उत्पाद व्यय ध्रौव्यसे सहित है। वह अवान्तर सत्तासे युक्त था, अब महासत्ताका वर्णन करते है।

इह विविहलक्खणाण लक्खणमेगं सदित्ति सव्वगय।
उवदिसदा खलु धम्म जिणवरवसहेण पण्णत्त ॥९७॥

द्रव्य लक्षणोका प्रतिनिधि—धर्मका उपदेश करने वाले श्री जिनवरवृषभदेवने प्रज्ञापन किया है कि इन सब नाना लक्षणोमे "सत्" यह एक लक्षण सर्वगत है अर्थात् सर्व लक्षणोका लक्षण है व सब पदार्थोका लक्षण है। यह लक्षण सर्वव्यापक है। स्वरूपास्तित्वकी विवेचना साधारण लक्षणोसे भी की गई तो भी भिन्न-भिन्न स्वरूप या सत्ता सब द्रव्योकी है ऐसी सीमा प्रत्येक द्रव्यकी लक्ष्यमे आ जाती है, परन्तु अस्तित्वसामान्य अर्थात् सादृश्यास्तित्वकी अपेक्षासे देखो तो सादृश्यास्तित्व सारी सीमाओको तोड देता है। वह सर्वगत व सामान्य लक्षणभूत अवबोधमे आता है, किन्तु निरपेक्ष स्वरूपास्तित्व और निरपेक्ष सादृश्यास्तित्व वस्तुके स्वभाव नही है। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य इस प्रकरणसे शुरू करते है कि अभी कितने प्रकारके लक्षण कह आये है? गुणवान, पर्यायवान एव उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य वाला जो स्वभावको न छोडे वह द्रव्य है। जितनी तरहसे द्रव्यके लक्षण कहे गये है उनमे सर्वगत कौन-कौनसा हैं याने जो सबमे चला जाय तथा सबकी ओरसे एक ही प्रतिनिधित्व कर सके।

द्रव्यके लक्षणोंका प्रतिनिधि "सत्" लक्षण है—जिनेन्द्रदेवने उन सबमे एक लक्षण प्रधान सत् कहा है। 'सत् इति।' जितनी भी विशेषतायें हैं वह सब "सत्" के ऊपर चलेंगी।

सादृश्य अस्तित्व जानना होता है तो पहले स्वरूपास्तित्व जानना पड़ता है। जैसे गौओंको जानना है तो पहले एक-एक गौ को जानना पड़ेगा, वह चार पैरकी होती है, पशु विशेष होता है आदि। पहले गायको तो जाना नही और गौ जातिको जाना जाय, यह कैसे हो सकता है? इसी तरह मनुष्योंको जानने के लिए मनुष्य विशेषको जानना पड़ेगा तब मनुष्य जाति समझमे आवेगी। व्यक्तियोंकी सादृश्य व्यक्तिता जाति कहलाती है। उस अस्तित्व जातिको समझनेके लिए महासत्ताको समझ लेना आवश्यक है। इस समस्त विश्वमे सारे द्रव्य स्वरूप अस्तित्वसे ही लक्ष्यमे आते है। आत्माका अस्तित्व आप ही समझमे आता है। जितना भी विस्तार है अवान्तर सत्ताका एक आप, एक आप आदि है वह नाना है यह तो हुआ पदार्थगत व्यक्तित्व और महासत्ता सादृश्य सत्ताका नाम है। जैसे गौ और एक गौ जाति अर्थक्रिया व्यक्तिमे होती जातिमे नही, मानो हरिजन सफाईका काम करते हैं। तो वह हरिजन व्यक्ति करते हैं, कोई जाति तो नही करती है। वह कहे कि हमे सफाई नही करना तो हरिजन जाति सफाई कर देगी। हाँ उस सादृश्य जातिका नाम हरिजन है। वह व्यक्ति विशेष मिलकर हरिजन हुए, वह एक-एक होकर नाना है व जातिमे एक है। इस अपेक्षासे कह लो जातिने बद कर दिया। हमारा स्वरूपास्तित्व हममे है, आपका स्वरूपास्तित्व आपमे है। आपका और हमारा स्वरूपास्तित्व जुदा-जुदा है। स्वरूपास्तित्वकी जानकारीके विना मोह छूटना कठिन है। समस्त द्रव्यान्तरोंसे जुदा रह करके स्वरूपास्तित्व रहता है। आप हममे मिलकर रहते हैं या जुदे-जुदे होकर रहते है? पिताकी आत्मा पुत्रसे जुदी रहती है या इकट्ठी होकर रहती है। प्रत्येक समस्त द्रव्यका स्वरूप द्रव्यान्तरोंसे जुदा रहता है।

सब द्रव्य अपनी अपनी सीमाको बनाये रहते हैं—जैसे इसका अस्तित्व इतना ही है, वह अपनी सीमाको बनाता है। अगर हमारा अस्तित्व और आगे पहुच जावे तो हमारी सीमा क्या रही? खेतोपर मेढ डालकर सीमा बनाई जाती है कि यह एक खेत इतना है और एक यह इतना है, लम्बाई चौडाईमे इतने गज है। यह सीमा तो मनुष्यकृत या कल्पित हुई तो हमारी सीमाको कौन बनावेगा? प्रत्येकमे स्वतः सीमा बनी हुई है। यह इतना है, यह इतना है आदि। प्रत्येकमे स्वरूपास्तित्व है। मेरा अस्तित्व मुझमे है, आपका अस्तित्व आपमे है। अपना-अपना परिणमन आप ही हो रहा है। जो परिणमन है वह आत्मीय स्वरूपास्तित्वमे है। केवली भगवान बाहर भी समुद्घात करते हैं, किन्तु ऐसा नही है कि वह अपने अस्तित्व की सीमाके बाहर फैल जावे। यह अवान्तर सत्ता है, लेकिन सीमा बनाई गई कि यह द्रव्य इतना ही है। एक क्षेत्रावगाही शरीर और कर्मका सम्बध है। यह सम्बध पहले भी था, अब भी परम्परया वैसा ही रहता है। आत्माका अस्तित्व कर्म नोकर्मके आ जानेसे नही बनता है और न बिगडता है।

प्रत्येक जीव सर्वत्र जुदे-जुदे है—एक निगोदके शरीरमे जो अगुलके असख्यातवे भाग मात्र है, उसमे असख्याते जीव एक साथ जन्मते और मरते है, फिर भी उन सबका स्वरूप अस्तित्व जुदा-जुदा है। यह सादृश्य अस्तित्वका वर्णन है। सब द्रव्योके विस्तारको ओभल करके जैसे सब मनुष्योमे मनुष्यता मानते है, तो सब मनुष्योकी व्यक्तिगतता ओभल कर दी। कोई कहे कि 'एक मनुष्यको लाओ' तो लाने वाला बच्चा, युवा, वृद्ध किसीको भी ला सकता है। मगाने वाला यह नही कह सकता कि इसे क्यो लाये ? जिसको लानेको कहा था उसकी पूर्ति इसके लानेसे हो गई। जिस बातको कहा था, उसमे मनुष्य जाति तो प्रकट हुई और व्यक्तिगतता ओभल हो गई। सब द्रव्योमे इस तरहका ओभलपना पाया जाता है। प्रत्येक द्रव्य जुदे-जुदे है। एक दृष्टिसे उनकी विविधता ओभल होकर समभमे आ जावे एकत्व जो कि उनकी साधारण दृष्टिको लक्ष्य करती है। जब तक असाधारण खोजते है तब तक तो विकल्पता रहती है, किन्तु युवा, वृद्ध तथा बच्चेको समान करके देखें तो वह समानता ही नजर आवेगी। अगर यह विचित्रताको खत्म कर दें और अस्तित्वको पकडे रहे तो प्रत्येक द्रव्यमे पहुंचा हुआ वह अस्तित्व सामान्य सबमे प्रतिफलित होवेगा। जैसे मालाकी डोरी सब दानोमे पहुची हुई है। जैसे हममे आपमे सबमे अस्तित्व है। जब एक महासत्तापर दृष्टि डाली तो सब सीमायें समाप्त हो जाती है। इसलिए वह लक्षण सादृश्य अस्तित्व हो गया। वह एक है, उसमे नानापन नही देख सकते महासत्तामे। इस प्रकार सत् ऐसा कहनेपर वह लक्षण सब द्रव्यको छू लेता है। सत् रूपसे जाना अर्थात् सबका स्पर्श कर लिया, ऐसा परिच्छेद कर लेनेपर सबको जान लिया।

ॐ तत् सत् परमात्मने नमः—'ओम् तत्सत्' अत्यधिक प्रचलित है। ये तीन शब्द है। इसके कितने ही अर्थ निकलते है। ओ मे चौबीस तीर्थंकर भी आ जाते है। मुख्य पंच-परमेष्ठीको लेना है उसका स्मरण करके तत् सत् यदि वह पचपरमेष्ठी सत् हैं, सार है, श्रेष्ठ है, सर्वदर्शी है, यह अर्थ हुआ। ओ सब शब्दोका प्रतिनिधि शब्द है। तत् यह स्मरणात्मक है, ज्ञानपर बल करता है और सत् समस्त द्रव्योका प्रतिनिधि है। कुल तीन बाते है—शब्द, ज्ञान और पदार्थ। शब्दका प्रतिनिधि ओं हुआ, ज्ञानका प्रतिनिधि तत् और पदार्थका प्रति-निधि सत् हुआ। जैसे चौकी अक्षरोमे लिख लेने पर या बोलने पर शब्द चौकी हुआ, जिसे समभा वह ज्ञान चौकी हुई तथा आकार विशेषसे अर्थ चौकी हुई या चौकीकी अर्थ क्रिया जहाँ हो वह अर्थ चौकी है। शब्दभगवान, अर्थभगवान और ज्ञानभगवान्। भगवान्को विषय करके जो बना वह ज्ञानभगवान तथा अनन्त चतुष्टय युक्त जो है वह अर्थभगवान हुआ और 'भगवान' नाम विशेषसे ऊच्चारण करना यह शब्दभगवान हुए। हम प्रकटमे निश्चयसे अर्थभगवानको जानते है या शब्दभगवानको जानते है या ज्ञानभगवानको ? यहा जो विषय लेकर ज्ञेयाकार बना अर्थात् मैं जिसके तादात्म्यको ग्रहण करता हू उसकी

निश्चयसे क्रिया बताई जाती है तथा अपने अस्तित्वको छोडकर क्रिया बताई जाती है वह व्यवहार है। निश्चयसे ज्ञानभगवान आत्मा है। जो चार घातिया कर्मोसे रहित है वह अर्थ-भगवान है तथा जिस श्रेष्ठ उच्चारणसे पुकारा जाय वह शब्दभगवान है, जैसे परमात्मा, ईश्वर, भगवान चैतन्यप्रभु आदि शब्द हर तरहके आत्माको यह पर्याय सयुक्त ज्ञान है। सत् सर्वार्थ परामर्शी है। जैसे कहे जैन बालक, जैन युवक, तो बालक ही या युवक ही आये तथा जैन ही कहे तो सब जैनोको स्पर्श कर लिया।

सर्व तात्पर्य निजस्वरूप विज्ञान है—यहाँ सादृश्य अस्तित्वकी बात चल रही है। वैसे तो सर्व कथनका तात्पर्य भेदविज्ञानको लक्ष्यमे देनेकी बात है। जब स्वरूपास्तित्व समझमे आवे तब भेदविज्ञान नही बैठेगा। जो कुछ परिणमन बनेगा वह आपमे ही बनेगा। मैं कितनी वेदनामे हू, लेकिन वह वेदना मुझे ही सहन करनी होगी, भले ही सन्तोष दिलाने वाले ५० बैठे रहे। मन्त्रसे भी अच्छे हो जावें तो भी उसका अस्तित्व वही तक रहेगा। यह सब एक स्वरूपास्तित्वको लिए हुए है। इन कल्पनाओंने जिस चाहको स्वामी मान लिया, वस्तुतः कोई स्वामी है नही, प्रत्येक एक दूसरेसे बिछुडते रहते हैं, रुलते रहते हैं, फिर भी चैनका भ्रमसे अनुभव करते है। जो भी आया वह बिछुडा, पर्यायमे आये वहाँसे बिछुडे, कालसे बिछुडे, भाई बधुवोके सम्पर्कमे आये वहाँसे बिछुडे, त्यागियो, विद्वानोका सम्पर्क बिछुडा, शरीरका पुद्गल परमाणु-परमाणु बिछुड जाता है, किन्तु स्वरूपास्तित्व अब तक बिछुडा ही नही। वह सदैव अपने स्थानपर रहेगा। अपने-अपने अकेले कर्मफलको भोगते हुए ससारी जीव चले आ रहे है। पदार्थस्वरूपके विपरीत ज्ञानसे मुख मोडना ही समाधितत्त्वमे आना है। जिससे समतापरिणाम रूपी स्वच्छतामे आना होता है। कही दो का विकल्प एक परिणमन कहलाता हो सो नही कहला सकता। प्रत्येक द्रव्य अपनी-अपनी सत्ता लिए हुए है। उन सबमे अस्तित्व सामान्य है जो अपना-अपना लिए है। साधारण गुण सबमे समाया है। एक जैन, सादृश्य जैन, सादृश्य अस्तित्व एक है, किन्तु वास्तवमे याने अर्थक्रियाकी दृष्टिसे सब जुदे-जुदे हैं, कोई किसीका स्वामी नही है। शरीरके परमाणुका भी कोई अन्य स्वामी नही है।

ज्ञानी जीवका चित्त भोगोमे कैसे रमे—कोई भी कैदी बढ़ियासे बढिया कमरेमे रहने पर, अच्छा भोजन मिलनेपर भी स्वतन्त्र सुखी अनुभव नही कर सकता, न यह सोचता है कि यह मेरा घर है, उससे छुटकारा पाना चाहता है। लेकिन हम इस ससाररूपी कैदखानेमे ठहर कर सुख मान रहे है। जमादारके हुक्ममे चल रहे है। अनादिकालसे रहते हुए झूठी आदत पड गई कि यह तो मेरा ही घर है। कोडे खाता जाता, चक्की पीसता जाता, पराधीन भोजन पाता जाता, समय कुसमय कुछ भी कैसा ही मिले उसे छोडना नही चाहता। ओह! कितनी बडी मूर्खता है? यह मेरा है, यह मेरा है, यही जानकर रमण कर रहा ससार कैदखानेमे,

निकलनेकी भावना ही रफूचक्कर हो गई, किन्तु भैया स्वरूपास्तित्वको तो देखो। अगर कोई भी स्वामी बन जाता होता तो ससारकी व्यवस्था ही नही बनती। किसी भी स्वरूपास्तित्वने क्या अपनी सीमा छोडी है? वह तो सोचता है कि यह भी हो जाय तो अच्छा है। हमारे शरीरको जलानेपर छेदनेपर भी कोई सीमा भग नही कर सकता। इसी तरह स्वरूपास्तित्वमे मैं वर्तमानमे हू और आगे भी रहूगा।

सत् ब्रह्मका यथार्थ परिचय करो—यहाँ सादृश्य अस्तित्वका वर्णन है। जैसे प्रत्येक पदार्थमे अपना-अपना अस्तित्व रहता है, उसका क्या स्वरूप है? यह अस्तित्वका स्वरूप देखा तो वह सब जगह दिखा, यह देखनेसे एक जाति समझमे आई तथा जातिमे जो नानापना है उसमे एकको ग्रहण करनेसे व्यक्ति भी समझमे आया और यह अस्तित्व सर्व पदार्थोमे मिला। अन्य मतावलम्बी भी मानते है, पदार्थ सर्वगत है तथा जैन भी मानते है कि पदार्थ सर्वगत है, अन्तर क्या रहा? अन्य लोग तो अखण्ड व्यक्ति स्वरूप सत्को सर्वगत मानते हैं जब कि जैनोंमे व्यक्ति स्वरूप सत्मे सत् सत् इस प्रत्ययके कारण सर्वगत मानते है। यह अन्तर रहा, वहाँ अखण्ड व्यक्तिरूप सर्वगत है, यहाँ जातिरूप अस्तित्व लेना। अखण्ड व्यक्तिरूप सत् तो है और सर्वगत भी है, तो इसमे अन्तर नही होना चाहिए। जैसे चौकी यहाँपर है और हम यहाँपर है तो उसमे अन्तर नही होना चाहिए। जैनी भले कह देवे कि पुद्गल सब जगह हैं तो अन्तर नही है, किन्तु सूक्ष्म स्कधोका अन्यको पता नही है। जैनोमे तो उनका अखण्ड सत् सर्वगत हो सकता है, किन्तु स्कध पूर्ण लोकके होनेपर भी एक सत्, सर्वगत नही है। कुछ जैनका सहारा ले, सर्वगत सिद्ध तो हो ही जायगा। लोकाकाश कही भी खाली नही है। चौकीके अन्तरके बाद हम बैठे है, यहाँ अस्तित्व सर्व सत् है बीचके स्कधोमे होकर। परन्तु सर्वगत ऐसा नही मानना, वह जातिकी अपेक्षा सर्वसत्मे है। यहाँ कुछ नही है तो वहाँ कुछ नही है जातिरूप सत् होनेसे गौ जाति ली। १०० गाये थी, किसीने पूछा कि गौ जाति सर्वगत है या नही तथा यह सर्वगत कितनोमे नही है या सबमे सर्वगत है? वह अखण्ड व्यक्ति रूप नही है। जितनी गाये है उनकी सदृशता पाई जाती है सो गौमे रहने वाला धर्म सब गायो मे है। यही गौ जातिकी सर्वगतता है। जो अस्तित्व है वह सर्वगत है, सर्वको छूने वाला है। अगर यह सादृश्य अस्तित्व न हो तो क्या अव्यवस्था हो जावेगी? उस समय कोई सत् हो जायगा और कोई असत् हो जायगा। कोई किसी तरह, कोई किसी तरहसे प्रसिद्ध हो लेगा। अगर यह सादृश्य अस्तित्व न हो तो कोई किसी ढगसे प्रवृत्त होगा, कोई किसी ढगसे प्रवृत्त होने लगेगा। जैसे मनुष्योमे सादृश्य मनुष्यत्व न हो तो कोई किसी तरहका मनुष्य कहलायेगा तथा कोई मनुष्यपनेसे रहित भी हो सकता है। कोई नही है, किन्तु ऐसा दिखता तो नही है। अगर सर्वपदार्थोमे सादृश्य अस्तित्व है तो वह सत् है, कौनसा असत् है?

साद्दश्यास्तित्वमें नानापन नहीं दिखता—अगर किसीने स्व भाइयोको जीमनेके लिए बुलाया और वह किसी का अधिक आदर करे और किसी का कुछ कम करे तो पगत करने वालेको नाम रखेंगे कि भाई तुमने सब बिरादरी वालोको बुलाया है, उनमे भेदभाव न करके सब समान हैं। यहाँ गरीब भी उतना आदर करने योग्य है जितना कि धनवान। यहाँ बिरादरीपन तो सबमे सदृश है। सादृश्य अस्तित्व सर्वगत है वह सब पदार्थोंमे पाया जाता है। अगर यह न हो तो असत्, सत् आदि यथा तथा बन जायगा, यह नही है। यह वृक्षके दृष्टान्तसे सिद्ध करते है। जब हम सादृश्य अस्तित्व पर दृष्टि डालते हैं तो नानापन दिमागमे नही ठहरता और जब स्वरूपास्तित्वपर दृष्टि डालते हैं तो एकता नही ठहरती है तथा एक एक पर दृष्टि डालनेसे विविधता रहती। तो बहुत प्रकारके वृक्ष है उनमे निजी निजी अस्तित्व है। अगर उनका विषयका अवष्टम्भ है तो नानापन उठ खडा होता है। नाना, बहुत प्रकारके हैं, इस दृष्टिसे वहा एकता दब जाती है। एकपना समझमे आता था वह एकत्व उत्थापित होता था वह दब गया। जैसे एक एक व्यक्तिपर दृष्टि करें तो बहुत प्रकारके द्रव्य हैं। उनमे अन्य अन्य विशेष लक्ष्य हैं। उसकी दृष्टि बनावें, यह अमुकका अस्तित्व है, यह पुद्गलका अस्तित्व है। अगर उनके स्वरूपपर दृष्टि देते है तो नानापन आता है तथा एकपन दब जाता है। सामान्य लक्षणभूत जो सदृश अस्तित्व है वह सत् सत् है ऐसा भाव आता है, उसके द्वारा एकत्व उठता था। उसमे अब एकपना नही रहता। सादृश्य अस्तित्वपर दृष्टि है तो नानापन नही रहता, एकपन रहता है। जिसमे विविधता है उसमे एकता नही और जिसमे एकता है उसमे विविधता नही है। जब एकतापर दृष्टि दो तो विविधता खतम हो जाती है। स्वरूपास्तित्वपर दृष्टि देनेसे ही भिन्न स्वरूप दीखेगा। स्वामीपन जो है वह कल्पनासे ही तो मानते हैं।

ज्ञान चर्याका मुड़ाव कर देता है—एक १५-२० वर्षका लडका है तो वह यह तो नही जान पाता कि मेरे अन्य कुटुम्बीजन या अन्यका मकान, धन वगैरा मेरा है, किन्तु वही लडका किसीके द्वारा गोद ले लिया जाता है तो कहता है कि यह मेरा है। १ घटेमे ही क्या से क्या अतर हो जाता है ? एक सेठजी थे। जब उनकी लडकी शादी योग्य हो गई, तब सेठ जी वर ढूढनेके लिए बाहर गये। काफी देर तक कोई वर समझमे नही आया। बादमे योग्य वर मिल गया। जिसके घर वालोसे सेठजी ने अपनी लडकीकी शादी करनेका मन्तव्य प्रकट कर दिया। लडके वालोने भी स्वीकृतिसूचक उत्तर दे दिया। अब सेठजी घर आते हैं, तो अपनी धर्मपत्नीसे लडकीकी शादी बाबत सब बात कहते हैं। यथा—उस घरमे इतने मनुष्य तथा धन, मकान, दुकानें आदि हैं। यह वार्ता लडकी छिपी-छिपी सुन रही थी। तो वह सुनते ही लडके वालेके वैभवको अपना मानने लगती है तथा जिस घरमे पैदा होकर इतनी बडी हुई

उसके प्रति सब ममत्व हट जाता है। यह सब कल्पनासे ही तो ऐसा भाव हुआ है। लड़का, स्त्री, पति, पिता कोई भी हो, यह सब ममतासे अन्यको अपना-अपना मान रहे हैं।

ममता ही क्लेशकी जननी है—अगर हम ममत्व न करे दु ख तथा पीडा होनेपर भी तो दु:ख तक अनुभवमे नही आता। युद्धमे हाथ पैर तक भी घायल हो जाते, किन्तु उसे वहा युद्धके अतिरिक्त और कुछ नही दिखता, बादमे देखनेपर प्रतीत होगा, शरीरका इतना हिस्सा खराब हो चुका। यह मेरा है, मैं दु खी हू, ऐसा ममत्व न आवे तो दु:खका कोई कारण नही, यह सब कल्पनाका स्वामित्व सम्बन्ध लगाया है। जिसमे मेरा मेरा चिल्लाता फिरता है यह कुछ भी काम न आवेगा, सब यही पडा रहेगा। दूसरेको प्रसन्न करनेके लिए भाव बनाता रहता है, यह भाव मोह छूटनेपर जायगा। मै मालिक कैसे बन गया, सत पदार्थ अकेले-अकेले पडे है, कोई किसीका स्वामी नही है। कितनी ही तृष्णा क्यो न बढा ली जाय, मरते समय सब छोड देना पडते है। जो सयोग हुआ है वह सब छोड देना पडेगा। जब भी भला होगा तब समतामें होगा। जीते समयमे समाधि (समता) धारण की तो मरते समय भी होगी। अगर जीते समय समाधि न सीखी और यह सोचा—जब मरणके दिन नजदीक आवेंगे तब पडितको बुला लेंगे या त्यागियोके सम्पर्कमे पहुच जावेगे, यह अन्तिम समयकी सब बातें प्रायः असभव है। समाधि जीवन चलता रहा तो अन्तिम समय अच्छा ही होगा। इसी कारण इस प्रवचनसारमे चारित्र अधिकारकी भी गाथायें हैं, किन्तु वैराग्य उत्पन्न करनेके लिए चारित्र अधिकारकी गाथाओंसे ज्ञेयतत्त्वाधिकारकी गाथायें कम नही है।

ज्ञानीका वैराग्य अटल रहता है—ऊपरी वैराग्यसे लौट सकता है, किन्तु वस्तुस्वरूप का यथार्थ ज्ञान होनेके बाद नही लौट सकता, क्योकि वह सच्चा है। यथा—स्वप्नमे सर्प देखा और जागृतावस्थामे सर्पाकार रस्सी दिख गई तब तो दिलमे यकायक घबडाहट पैदा हुए बिना नही रहेगी। लेकिन जब रस्सीका सही ज्ञान हो जावेगा तो उससे कोई पुनः पहले जैसा घबडानेके लिए कहे तो क्या वह कर सकता है? उसी तरह द्रव्यका यथार्थ स्वरूप जान लेने पर यह फल होता है। स्वरूपास्तित्वपर दृष्टि है एव उसमे उपयोग जम चुका है तो मानसिक घबडाहट पैदा नही होती। जो परको स्वामी मान रहा था वह विश्वास छूट जाता है तथा कौन पदार्थ कितना है, कैसा है, किसलिए है? वह विषय ही लक्ष्यमे रह जाता है वैराग्य आनेके लिए। इसकी प्रतीति बिना करीब इसी तरह वैराग्य होता है। कोई कहे कि हमें तिथि सोच लेने दो तब वैराग्य आवेगा। तिथि आवेगी तब वह सस्कार किया जायगा। तिथि वैराग्यकी कारण नही है, वह तो अचानक कोनसा निमित्त पाकर परिणामोमे उधेड-बुन मचा देवे तथा जीवनमें कल्याणके प्रति उत्कृष्ट लहर उठ खडी होवे। तीर्थङ्कर या चक्रवर्ती एव अन्य महापुरुष विरक्ति तिथि देखकर हुए थे या अचानक हुए थे? वह तिथि देखने नही बैठे थे।

उस समयके नक्षत्र दिये होंगे, उनमे अशुभ नक्षत्र भी मिल जावेगे। तो जो वहाँ बनावटी लौकिक वैराग्य है, वह जरूर नक्षत्रके बिना नही होना चाहिए और ऐसा ही होता होगा। क्योकि ऊपरी सतोपके कारण उसमे आकुलता मद हो जाती है वह लौकिक वैराग्य है। वहाँ तिथियाँ भले हो जावे, किन्तु वास्तविक वैराग्यके लिए तिथि क्या होगी ? वास्तविक वैराग्य तो तब होता है जब अपने स्वरूपास्तित्वपर श्रद्धा हो जाती है। इसके लिए बाह्य कारण भी निमित्त मिल सकता या अन्तरङ्गकी प्रेरणा सर्वसे मोह तोड देती है। वह सोचता है कि मैं कहाँ अज्ञान अन्धकारमे पैर बढाता हुआ चला जा रहा हू। धिक्कार है इन विषयभोगोको जो बार-बार इन्हीमे रम रहा हू तथा ये मुझे बार-बार छोड देते हैं, किन्तु मैं फिर भी उन्हे इकट्ठा करनेके प्रयत्नमे रहता हू। यह विचार आये और कषायोको तिलाञ्जलि दी तथा आत्म-कल्याणके पथमे बढ गये।

एकताकी दृष्टिमे व्याकुलता नहीं होती—अनेक वृक्ष हैं उनमे सादृश्य वृक्षत्व है तो वह एक नजरमे आते है। उसमे नानापन तिरोहित है। आम, इमली, मौआ, खैर, जामुन सभी एक दृष्टिमे आते है, उनमे भिन्नत्वकी कल्पना नही होती तथा जब एक-एकपर अर्थात् स्वरूपास्तित्वपर दृष्टि है तो नानापन प्रकट होता है, और सादृश्यास्तित्व याने एकपन तिरो-हित हो जाता है। इसी प्रकार सर्वद्रव्योमे सामान्य लक्षणभूत व सादृश्यको प्रकट करने वाले "सत्" इस लक्षणके भावसे दृष्टि की जाती है तो एकत्व प्रकट होता है और नानात्व तिरोहित हो जाता है, परन्तु विशेष लक्षणभूत स्वरूपास्तित्वकी दृष्टि करनेपर एकत्व तिरोहित हो जाता है और नानात्व प्रकट हो जाता है। इसी तरह स्वरूपास्तित्वपर दृष्टि जाते ही गुण पर्याय भेद की अनेक कल्पनायें सब विलीन हो जाती है। गुण पर्याय आदि अगर भिन्न-भिन्न सत् माना जायगा, तो सत् सत्का बवण्डरका उठ खडा होगा। सब द्रव्योंके बीच स्वरूपास्तित्वपर दृष्टि देनेसे नानापन आता है और उससे एकपन तिरोहित हो जाता है। महासत्तासे एकपन होता है तथा नानापन तिरोहित हो जाता है। स्वरूपास्तित्वपर दृष्टि देनेसे भेदविज्ञान होता है और उससे अपनी उपादेयता होती है, परसे विरक्ति तथा अपनेमे स्थिति होती है। इसी तत्त्वज्ञान के बलपर निर्मल पर्यायें प्रगट होंगी और सर्व दु खसे मुक्ति होगी। सादृश्यास्तित्वकी दृष्टिमे भी एक लाभ है कि वहाँ भेदरूप बुद्धि न होनेसे परआश्रय नही होता है। अत निर्विकल्पता मे सहायता मिलती है।

जीवके मुख्य तीन गुणोमे ज्ञानकी प्रभुता—जीवमे मुख्य ३ गुण होते हैं—श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र। सम्यग्दर्शनका कार्य श्रद्धा करना है। सम्यग्ज्ञान ज्ञानको स्थान देता है और सम्यक्चारित्र चारित्रके पाये जानेको कहते हैं। तीनोका कार्य भिन्न-भिन्न होते हुए भी, तीनोके मिलनेपर निज पुरुषार्थकी पूर्णतया सिद्धि होती है। इन तीनोंके विपरीत रहनेसे

निजका लक्ष्य मोक्षपुरुषार्थ प्राप्तिमें पूर्णतया बाधा रहती है। अनादिकालसे विषयकषायोंने कितना जबरदस्त अड्डा जमा रखा है कि जीव निज स्वरूपको समझनेका प्रयत्न भी नही करता। यदि अवसर आया भी तो कुछ कालको सचेत हुए, फिर उन्ही विषयकषायोकी चक्कीमे अपनेको फसा देते है। नरकगतिमे शरीरके तिल-तिल बराबर टुकडे कर दिये गये। इस तरह नरकगतिके दुःख कमसे कम १० हजार वर्ष और अधिकसे अधिक ३३ सागर तक के दुःख सहे। तिर्यंचगतिमे छेदन-भेदन, भूख प्यासके अनेक दुःख सहे। मनुष्यगतिमे गर्भ, बालपन तथा दरिद्रता आदिके दुःख सहे, देवगतिमे भी दूसरोके वैभवको देखकर दुखित हुआ। यह सब आत्मज्ञानके अभावका परिणाम है। आत्मामे जो ३ गुण मुख्य हैं, श्रद्धा, ज्ञान व चारित्र, इनमे से श्रद्धा व चारित्र तो विपरीत भी परिणम जाते, किन्तु ज्ञानका काम तो प्रतिभास कर देना मात्र है। वह विपरीत नही होता। ज्ञानकी विपरीतता मिथ्या विकल्पके सम्बन्धसे है। चाहे ज्ञान कुछ भी जाने, उसमे जो विकल्पकी अलग प्रतिभास मात्र दशा है उससे ज्ञानका कार्य अनुमेय होता है। सर्वत्र ज्ञानका प्रतिभास फिर भी तारतम्य रहित बराबर आ रहा है। "इद रजत अस्ति" यह चाँदी है, इस तरहका ज्ञान सीपको देखकर भी हो जाता है। वहाँ भी ज्ञानका काम "यह है" ऐसा जानना है। केवली पदार्थके पूर्ण अशको जानते है। निश्चयनयके एक अशको जानता है। दोनोमे सयोग विकल्प नही।

जैसे यह सदूक १ फुट लम्बा पौन फुट चौडा है, क्या यह निश्चयनयका विषय है? यह सब व्यवहारनयका विषय है। इन सब विकल्पोके बिना परमात्मा जानता है। शैली जुदी-जुदी होती है। अन्तरङ्गकी प्रतीतिमे जो शैली परमात्माके जाननेकी है वही शैली ज्ञानी के जाननेकी है। अतएव श्रद्धा और चारित्र तो विपरीत हो सकते है, ज्ञान विपरीत नही हो सकता। यह लडका है, अमुकका है। किसका है? यह पता नही। कौन है, क्या है, कैसा है? यह शुद्ध ज्ञानका विषय नही। यदि ज्ञान विकृत होता तो हम विजय नही पाते। परमात्माका ज्ञान, द्रव्य, गुण, पर्यायको जान लेना है सो जानते है। इसलिए परमात्मा पदार्थ को पूर्णतया जानते है। त्रिकालवर्ती पदार्थकी पर्यायें उनके ज्ञानमे झलक रही है व त्रिकालवर्ती पदार्थ भी।

कैवल्यकी दृष्टिसे आत्मसंरक्षण—जीवमे रूप, रस, गध, वर्णादि नही, किन्तु व्यर्थका मोह है। यह मेरा पुत्र, स्त्री, माँ, मामा, भाई, भाभी आदि बनाकर तथा कहकर अपनेको रुलाते है तथा रागसे ससारके बन्धन दृढ करते जाते है। द्वेषरूपी जहर भी यही कार्य करता है। परपदार्थ तो पर है, उनमे इष्टानिष्टकी कल्पना मनके भ्रमको करती है। यह नर-जन्म मुश्किलसे मिला, फिर भी मोह नही जाता। जीवके स्वरूपमे अन्य कोई पदार्थ नही। जीव व शरीर एक जगह इकट्ठा होनेसे शरीरको ही जीव मान बैठे है। अतएव स्वात्मानुभूतिकी किसे

चिन्ता पडी ? दूधका स्वाद पानीसे भिन्न है, लेकिन यदि एक पाव दूध और एक पाव पानी मिश्रित कर दिये जावें तो दोनोंका स्वाद भिन्न-भिन्न नही मालूम पडेगा। यदि दोनोको जुदा करनेकी शक्ति हो तो भले जुदा-जुदा करके आस्वादन भिन्न-भिन्न ले सकते हैं, फिर भी पानी का स्वाद भिन्न और दूधका स्वाद भिन्न ही रहेगा। दूधमे दूध रहेगा तथा पानीमे पानी।

एक ग्वालिन थी। वह प्रति दिन पाँच किलो दूधमे पाँच किलो पानी मिलाकर बेचने लाया करती थी। दूध बेचते-बेचते एक माह पूर्ण हो गया, अतः महीनेभरके कुल दाम उगाह कर लाई। रास्तेमे एक नदी मिली, मनमे आया कि नदीमे नहा लूँ। तब रुपयोकी पोटली आदि सामान किनारेपर रख दिया। इतनेमे कूदता-फादता एक बन्दर वहाँ आया और रुपयो की पोटली उठा ले गया। तब तो ग्वालिन काफी गिडगिडायी रुपया मागनेके लिए। बन्दरने एक भी नही सुनी और पेडपर पोटलीमे से रुपया निकाल-निकालकर एक पानीमे गिराने लगा तथा एक जमीनपर। इस तरह उसने सब रुपया गिरा दिया। दूधका जितना रुपया था वह जमीनपरसे ग्वालिनको मिल गया तथा पानीका रुपया पानीमे चला गया, जिसका मिलना अगम्य था। इससे यह भी सिद्ध होता है। "जैसी करनी वैसी भरनी।" आकुलता होनेपर भी ज्ञानीको सावधान रहना चाहिए। आकुलता आत्माका गुण नही। आत्माकी प्रतीति बिना स्वात्मानुभव दूरकी वस्तु रह जाती है। परपदार्थ सब आत्मासे भिन्न हैं, उनको अपना मानने से क्या लाभ होता है ? रागरूपी अग्नि ही प्रदीप्त होती है। आत्मा और परपदार्थोका ज्ञान भिन्न-भिन्न होता रहे तो कुछ लाभ होवे।

अज्ञानकी विपत्ति—मोही जीवपर आपत्ति तो सबसे बडी यह है कि वह चलता तो उल्टा है, उल्टेको ही ठीक, सीधा मानता है। एक गाव था। उसके अन्तमे एक लुहार रहता था। उसका घर अन्तमे होनेसे जो बाहरसे राहगीर आते वे सब निश्चित जगह पर पहुचनेके लिये अमुक अमुक गावका रास्ता पूछा करते। तो लुहार बडा मसखरा था। यदि घर पूर्वमे होता तो वह पश्चिममे बताता। साथमे यह भी कह देता कि इस गाँवके लोग चालाक हैं जो उनसे रास्ता पूछता है, वे सब उल्टा रास्ता बताते हैं। अत उनकी बात न माना करें। इस तरह वह लुहार नाच नचाया करता था। यही परिपाटी ससारकी है कि आत्मद्रव्यको छोडकर परपदार्थोंसे रुचि करी तो अनेक भव भ्रमण ही बढे। अज्ञानमे वह गलती ही महसूस नही होती। ज्ञानीके ज्ञानमे श्रद्धा उल्टी नही चलती। जैसे यदि किसीसे कोई कसूर बन गया और उसने अपना कसूर पचोमे आकर कह दिया तो वह निर्दोष कर दिया जाता है। वैसे ज्ञानी भी अपना कसूर समझता रहता है। एक वह होता है जिसे पच लोग हजार बार भी समझावें तो वह अपने दोषको मुखसे प्रकट नही करता, जिससे वह दोषी ही बना रहता है। धन भी जोड लिया तो क्या हुआ ? ममता नही छूटती, जिससे दुःखकी वृद्धि होती जाती है।

जिसके पास जितनी स्थिति हो चुकी उससे कार्य चल सकता है, फिर धन भी कर्मके अधीन रहता है। यह सोचना कि हमारा इतनेसे कार्य नही चल सकता, ठीक नही। क्योकि धन कमानेपर भी क्या तृष्णायें शात हो जाती है? जीवका जो निरपेक्ष ज्ञान है उसकी आराधना करो। शरीर भी अपना नही रहनेका, तब क्यो व्यर्थमे परपदार्थोमे रम रहे? तन अनित्य है, मन अनित्य है। सेवा भावमे यदि धन लगानेकी सामर्थ्य नही तो तन एव मन लगाने वाला भी उतना उदार है जितना धन लगाने वाला।

उपासना--उपासना दो प्रकारकी होती है—(१) आत्मतत्त्वकी उपासना, (२) परमात्मतत्त्वकी उपासना। आत्मतत्त्व स्वभावरूप है, परमात्मत्त्व पररूप है। परमात्माकी उपासनाका फल आत्मज्ञान रूप है और आत्मतत्त्वकी उपासनाका फल तो आत्मरमण करना है ही। जब परमात्माकी उपासना की जावे तब परमात्माका गुणानुवाद करे, तथा जब परमात्माकी पर्यायका गुणानुवाद करे तो सोचे इस पर्यायरूप मैं भी हो सकता हू। कही ये गुण अलग-अलग नही हैं। केवल वस्तुके समझनेके लिये यह भेद हो रहा है। उनके गुणोको समझनेके लिये शक्ति भेद किये गये है। हे परमात्मा! आपने पूर्ण अपने कर्मोको जीतकर यह पद पाया है। मै भी परमात्मा होनेकी शक्ति रखता हू, किन्तु उसपर मोहने पर्दा डाल रखा है। उस मोहका व्यय कर परमात्माकी भक्ति कर सकता हू, इस तरहकी पद्धतिसे कोई भक्त भक्ति करने लगे तो परतत्त्वसे छूटकर आत्मतत्त्वपर लगेगा। परमात्मतत्त्वसे हटकर निजात्मत्व तक आता है। यह कार्य सिद्ध होनेका एक मार्ग है। अपना कार्य बन जाय, फिर कुछ भी किया जाय सो हानि नही। कहा भी है—"स्व कार्यं प्रसाध्य नृत्यतोपि न काचित् हानि।"

इस तरहसे अभ्यास द्वारा अपने स्वभाव तक पहुच जावे तो कुछ किया, अन्यथा कुछ नही। परमात्मासे अनन्तदर्शन, अनन्तज्ञान, अनन्तसुख और अनन्तवीर्य है। यह उनकी विशेपता है, किन्तु द्रव्यदृष्टिसे, गुणदृष्टिसे परमात्मामे और हममे भेद नही है। "मम स्वरूप है सिद्ध समान, अमित शक्ति सुख ज्ञान निधान। किन्तु आशवश खोया ज्ञान, बना भिखारी निपट अजान ॥" मैने परपदार्थोको अपना मानकर सम्यग्ज्ञान गुणको खो दिया। इसलिए बना भिखारी निपट अजान दूसरेसे ज्ञानकी व आनंदकी भीख माँगता फिरता हू।

सुख दुःख दाता कोई न आन, मोह राग रूप दुःखकी खान—परपदार्थ आत्माको न सुख दे सकते है और न दुःख। केवल मोह और रागसे दुःखकी उत्पत्ति होती है। नेति नेति कहकर जहाँ पहुचते है वह निषेधरूप निश्चय है। अपने गुण पर्यायरूपसे विश्वास जहाँ हुआ वह विधिरूप निश्चय है। द्रव्यस्वरूपका पूर्ण निश्चय कर लो। वास्तविक कार्य सिद्ध तब होता है जब ममताकी बलि और सासारिक पदार्थोकी बलि दे दी जाती है। राग छोडनेपर दुःख नही रहता है। राग ही द्वेषका कारण है, क्योकि जहाँ राग करनेमे बाधा उपस्थित हुई

वही द्वेषका कारण बन जाता है ।

मेरी सत्ता मुझमे है, मेरी कोई क्रिया बाहर नही जाती । घडीका कार्य घडीमे बनेगा। कोई कहे यह कार्य, मेज, कुर्सी, दीवारमय हो जावे तो नही मानोगे । मेरा कार्य मुझमे बनेगा न कि अन्यमे । पुत्र जब पिताकी विनय करता है तब वह अपना मान बना लेता है, न कि बन जाता है । जिसको सभी अच्छा-अच्छा कहते है वह उसके गुणोका विकास उसकी योग्यता से हुआ । किसीको पूरबको जाना है और रास्ता पश्चिमका रखा जाय तो क्या पूरबमे पहुच जायगा ? स्पष्ट है कि नही पहुचेगा । तब हम चाहते तो सुख हैं और क्लेश, दु ख पैदा करने वाली सामग्री जुटाते रहे तो कैसे सुख मिल जायेगा ? जब तुम स्वस्थ हो, हिताहितका विवेक है, तब तो सम्हले नही, सोचो आगे सम्हल जावेगे । तो अग्निमे प्रवेश करके शीतलताको प्राप्त करना चाहता है । हम परमे कुछ नही करते, निजमे कुछ करें । किसीने हाथ हिलाया, यह क्रिया हाथकी अपनी शक्तिवती क्रियासे हुई, अन्यकी क्रिया या शक्तिसे नही । फोटोको देख-कर क्रोध आया, यह सब आश्रयभूत है । फोटोमे से तो क्रोध नही आया, वह तो जड है ।

शुद्ध सहज अन्तस्तत्त्वकी सेवाकी महिमा—शुद्ध आत्मतत्त्व अपनेमे नही समझते है तो परमात्मतत्त्वको भी नही समझ सकते । अपने स्वात्मस्वभावको जाने बिना परमात्माको जानना अगम्य है । आत्मामे परमात्मा होनेकी शक्ति है जरूर । जब उसे विकासके अभिमुख किया जावे, परको अपना नही माने तथा निजात्मानन्दके रसमे निमग्न हो जावें तो परमात्मत्व व्यक्त हो जायगा । जितना भी कुछ हम अखण्डपनेको छोडकर जान रहे हैं वह सब व्यवहारनय है और अखण्डपनेको जानकर उसका अनुभव कर रहे है वह निश्चयनय है । मोह कम करके ज्ञानकी ओर बढे तो मनुष्य-जीवन सफल है । मोहको घटाया नही और ज्ञान की ओर बढे तो वह ज्ञान भी कथचित् ससारमे रुलाने वाला हो गया । पुरुष-स्त्री कोई भी होवे, अगर उसमे अपनेको बडा माननेकी धुनि लगी है तो उसे चाहिये कि शान्ति उत्पन्न करे । शरीरसे सफेद होते हुए भी जीव चेहरेपर झलक रहा हो, कठोर वचनोका व्यवहार करता हो, उसे कौन सुन्दर कहेगा ? लेकिन शरीरका वर्ण भले ही श्यामल हो, किन्तु आत्म-ध्यानकी धुन जिसे सवार हो गई हो, हितमित प्रिय वचन बोलता हो, सदैव दूसरोंके उपकार मे रत हो, ऐसेको देखकर कौन गद्गद चित्त नही होवेगा या सुन्दर नही कहेगा ? शरीरको सुन्दर बनाने वाली भी आत्माकी निर्मलता है । परिणामोकी निर्मलताका अनायास ही लौकिक कार्योको सिद्ध करा देती है तथा लक्ष्य उसका स्वात्मद्रव्य है सो अपनेको शक्तिवान बनाता रहता है ।

योगी—जो स्वय आत्माको जानता देखता रहता है कि इसकी सत्ता कैसी है, किस रूप आत्मा है, वैसे यह अपनेको अपनेमे आधीन रखती है एव परपदार्थोसे जो निरपेक्ष रहता

है वह योगी है । ऐसा घरमें रहता हुआ योगी है, बनमे रहता हुआ योगी है । अपना ज्ञान जो अपनेमे लग जावे वह अध्यात्मयोग है । वह आत्मस्वरूप इन्द्रियोसे अतीत है । जो इन्द्रियो से जाननेमे नही आता वह योग है । इन्द्रियाँ तो दूरकी चीजको जाननेमे ही काम करती है । अपना बुखार भी स्वयको ज्ञात नही होता जब तक कि शरीरका हिस्सा स्वयके हाथसे छूकर नही देखा जाता । नाककी गधको नाक नही जानती । आँखमे लगे काजलको या किरकिरीको आँख नही देख सकती । कानके शब्दको कान नही जानता । आत्माको जानना यह सबसे बडी कला है । इसको जाने बिना बाह्य साधन कितने ही किये जावें कोई सार नही निकलता । पुराने ग्रन्थोमे जिन व्यक्तियोकी शोभा है वह सब उनकी विशेषता बतानेपर हुई । जैसे अमुक राजाके इतनी रानियां थी, इतने पुत्र थे । राजा एव रानिया मिलकर जिनेन्द्रदेवकी पूजन करती, मुनियोको दान देती, राजा प्रजाका पालन करता आदि । यह सब उनकी अच्छाइया यदि आगे धर्मकी ओर इगित करती है तभी हम उन्हे भुला नही पाते । अमुक ग्राम अच्छा है यह कहनेसे ज्ञात होता है कि वहाके मनुष्य सत्यभाषी है, धर्ममे रुचि रखते है, दूसरोके उपकार करनेका ध्यान रखते हे । इसलिये मनुष्यके सद्गुणोने ग्रामकी प्रसिद्धि कराई । दूर क्यो भटका जाय, विवाह कार्यमे भी धार्मिक वातावरण रहता है, तो उसकी शोभा बन जाती है । पूजन करना, दान देना, अतिथियोका यथायोग्य आदर सत्कार करना तथा विवाह होनेसे कुशील वर्जित हो जाता है या सीमित हो जाता है, यह आन्तरिक लक्ष्य होता है ।

परं ज्योतिः—यह जो आत्मतत्त्व है वह इन्द्रियोके द्वारा नही जाना जा सकता और न मोहियोको इसका भान होता है । गोस्वामी तुलसीदास जी और बनारसीदास जी मित्र थे । जब तुलसीदास जी ने रामायण पूर्ण बना ली, तब वह उसपर सम्मति लेने बनारसीदास जी के पास लाये और बोले—इस ग्रथकी समालोचना चाहता हूँ । तब बनारसीदास जी ने एक छोटेसे पदमे बडा ही हृदयग्राही उत्तर दिया—"मर्मी होय मर्म सो जाने, मूर्ख माने नाही । बिराजे रामायण घट माही ।।" अर्थात् इस आत्मामे ही रामरूपी परमात्मा है, उसमे सिद्ध लोक पहुचने की शक्ति है, सीता भी आत्मामे है, कठिनसे कठिन परीक्षाओको पार करके भी अर्जिकाके व्रत लिए और आत्म-कल्याणमे जुट पडी, वहा रामकी फिर एक नही सुनो । यह विरक्ति भी आत्मामे है । कर्मरूपी राक्षस रावण भी आत्माके पास है, उसे हटाना चाहिए । जैसे क्रोध ने आत्माका कितना अहित नही कर डाला ? तेजपुञ्जमयी चैतन्य तत्त्व आत्मासे जुदा नही, वह अपने ही भीतर बैठा हुआ है, उसे केवल समझने मे भ्रम हो रहा है । कितने ही शास्त्र पढ लो, कितने ही उपदेश सुनो, लेकिन विना एक आत्मानुभवके समस्या नही सुलझ सकती । लडकियोको कितना ही पाक-शास्त्र क्यो न पढाया जावे, लेकिन उसका ज्ञान तब तक नही होता जब तक भोजनको वनाकर चख न लिया जावे । वैसे ही जब तक

आत्मानन्दका अनुभव नहीं किया तब तक उसका भान नहीं होनेका । आत्माकी शक्तिमें सन्देह न रक्खो जिसने एक बार निश्चय कर लिया कि यह मरता नहीं है, इस मार्गमें मैं भटक नहीं सकता, यह निश्चय जिसको हो गया वहीं सच्ची कला प्राप्त हो गई ।

ममकारके परिणामका उद्घोधन—एक मुनि जङ्गलमें रहते थे । वहाँसे एक राजा निकला । राजाने देखा ऊपर भी गर्मी है नीचे भी गर्मी है, चारो ओरसे गर्मी व्याप्त रही है । राजाके मनमें आया मुनिराजकी सहायता करनी चाहिए, वह बोला मुनि महाराजसे 'आप एक छतरी ले लेवें । मुनिराजने कहा 'ऊपरकी गर्मी तो बच जायगी, नीचेकी गर्मी कैसे बचेगी ।' राजाने कहा 'जूता पहन लीजिए ।' फिर मुनिराज बोले 'पूरे शरीरकी गर्मी कैसे बचेगी ।' राजाने कहा 'कपड़े बनवा दूंगा ।' फिर मुनिराजने कहा 'इस अवस्थामें तो रोटी मिल ही जाती है कपड़ा आदि पहिन लेनेपर भोजन कौन करावेगा ?' राजाने गांव लगाकर भोजन करानेकी व्यवस्थाका आश्वासन दे दिया, बैठनेके लिए मोटर दे देंगे । मुनिराजने कहा, रोटी बनावेगा कौन ? उत्तर था राजाका 'विवाह कर देंगे । तब मुनिराजका जवाब था 'यह सब तो हो जायगा लेकिन सन्तान पैदा होनेपर और आयुकर्म पूर्ण होनेपर जब स्त्री, पुत्र आदिकी मृत्यु होगी तब रोवेगा कौन ?' अन्तमें राजाने कह दिया 'जिसको ममता होगी वही रोवेगा, मैं नहीं रो सकता ।' इस लिए स्पष्ट है कि जो जिसके संयोग होनेपर सुख मानता है, वही उसके वियोग होनेपर दुखी होता है । ममताकी बलवत्ता है ।

आर्षवचनोंके तथ्यका परिचय अलौकिक समृद्धि—शास्त्रोंमें उपदेश भरा है, ग्रहण करने वाला यदि सचेत है तो उनके अनुकूल चलेगा अन्यथा उसका क्या भला होनेका ? दीपक तो प्रकाश करता है । प्रकाशमें चलने वाला मनुष्य होता है । यदि मनुष्य नहीं चलेगा तो दीपक थोड़े ही हाथ पकड़कर ले जावेगा ? प्रथम तो शास्त्रोंके गूढ अर्थको जानना कठिन है, फिर उनके अनुसार चलनेका साहस करना । एक मनुष्य मरते समय अपने पुत्रके लि लिखकर रख गया कि जब तुम्हे गरीबी आवे तो थम्भसिंहसे रुपया पैसा ले लेना, मैंने उस पास जमा कर दिया है । रुपयेकी जरूरत पड़नेपर वह लिखा हुआ सबको बतावे और कहे थभसिंह कौन है, उसके पास हमारा रुपया जमा है, वह निकालना है । कई मनुष्योने कहा थभसिंह यहाँ किसीका नाम नहीं है, किन्तु कुछ विद्वान मनुष्य थे, उन्होंने कहा कि चल घर । तब उन्होने उसके घर जाकर घरके मुख्य खम्भेको खोदा और रुपये निकालकर दे दिये इसी तरह शास्त्रोमें सकेत ही तो लिखे जा सकते हैं । उन्हे गुरुगमसे रूपमें उतारा जाय त आत्मतत्त्व प्राप्त हो सकता है । अन्यथावृत्तिसे तो साथमें कर्म बध जाता है या जो सस्का बनता है वह जाता है । कदाचित् किसीको शास्त्रज्ञान हो भी जावे तो टेक यह पड़ी है कि स्वयको ज्ञानवान मानता है, अन्यको अपनेसे हीन एव मूर्ख मानता है । अन्य

ज्यादा समझदार थोडा हो सकता है, ऐसी धारणा मोहमे बना ली जाती है। अरे भाई! कहो तुमसे भला बैल हो सकता है, सर्प हो सकता है या कुत्ता भी अधिक समझदार हो सकता है, परतु ज्ञानकी बात सीख जानेपर यह बात सताती है कि मैं जानता हू, यह सोचकर उसका अनुभव नही करता एव उससे भिन्न जो चैतन्य है, उसका अनुभव नही करता।

विपत्तियोका शृङ्गार संसार—विपदा आना पाप व पुण्यका कार्य है, पापीपर भी विपदा आती है एव पुण्यवानोपर विपदायें आती है। रामका राज्याभिषेक होने जा रहा था, अभिषेककी तैयारी हो चुकी, राज्याभिषेक प्रातःकाल होने वाला है, किन्तु आज्ञा मिलती है कि राज्य भरतको मिलेगा। राम वनको चले गये। वहाँ प्रजाकी प्रसन्नताका पारावार नही था, वह दुःखमे परिणत हो जाता है। सीताके हरणका दुःख मिला। सीता घरमे आ गई तो धोबियोंने हसी उडाई, जिससे सीताकी अग्निपरीक्षा ली गई। जगलमे लव और कुशका जन्म हुआ, इसका दु ख। सीता अर्जिका होने लगी, रामने काफी समझाया, किन्तु सीताने स्पष्ट कह दिया कि जिन विषयोने मुझे इतना दु.ख दिया अब उन्हीमे मैं कैसे फसूँ? रामचद्रजी योगी हो गये। सीताके जीव प्रतीन्द्रने सोचा कि कही ये पहले मोक्ष नही चले जावें, इसलिए प्रतीन्द्र ने सीता और रावणका भेष बना लिया। सीताको रावण खींच रहा है, जटायु पक्षी रामके पास चक्कर लगाने लगता है। यहाँ तक कि प्रतीन्द्र योगी रामचन्द्रजी को कि रावण सीताके बाल पकडकर खीच लेता है। इन परीक्षाओका सामना करते हुए भी राम अपने लक्ष्यसे च्युत न होकर मोक्ष जाते है। इसलिये पुण्यवानोपर विपत्ति आना प्रायः सिद्ध है। पापी भले ही हलुवा पूडी खावे उसे हाथ कोई नही जोडता। मैं शरीरसे अत्यत जुदा हू—यही कला समझमे नही आई तो क्या किया? शरीर तो जल जावेगा, मुझे तो केवल आत्मासे कार्य पडेगा। वहाँ गरीबी, अमीरी काम नही आवेगी, जिसे यह प्रतीति हो गई उसीका हित समझो।

सबकी अपनी-अपनी सीमा है—जब दो सीमायें है, तो हम कौन है और तुम कौन हो? वह कौनसी सीमा पडी है, जिससे हम सबसे जुदे पहिचानें जावें। हमारा सत् जुदा है और तुम्हारा सत् जुदा है। पुद्गलके स्कधोमे गलना, बिछुड़ना आदि अनेक पर्यायें पाई जाती है। स्कधोमे अनेक परमाणुओका सत् है, किन्तु वह सब जुदा-जुदा है। वह एक दूसरेमे मिल नही सकते। अनेक उदाहरण स्पष्ट करके देख लिए जावें एव देखे होंगे, किन्तु उन्हे अपने ऊपर घटाना चाहिए। जैसे मैं अकेला आत्मा हू। यद्यपि अभी मैं चाहू कि शरीरसे निकल भी जाऊं सो तो है नही। अन्यथा इस तरहसे तो मोक्ष मिलना ही अभी सरल हो जाता, औदारिक छोडकर आत्मा शरीर निकलता है तो उसके साथ तैजस एव कार्माण शरीर भी जाता है तो भी प्रत्येक अणु मुझसे जुदा है। सिद्ध परमात्मा होनेके समय कोईसा भी शरीर नही जाता, वह जाकर सीधे शिवालयमे विराजमान हो जाते है। किसी भी जगह इस आत्माका सत् अन्य

मे नही ठहरता। निगोदमें देखो एक शरीरके सहारे और भी अनेक शरीर व अनंत जीव रह रहे है, किन्तु किसीका सत् किसी दूसरेमे नही मिलता। शरीरमें कार्माणवर्गणायें हैं, वह भी जुदी-जुदी है। इस तरह देखें तो सब जीव स्वतन्त्र सत्ता वाले है।

अस्तित्व सामान्यमें सीमा नजर नही आती—सत्ता अस्तित्व जिसे कहते हैं वह स्वरूप जैसा एक अणुमे है वैसा ही आत्मामे है, वैसा ही पुद्गलमे है। उसी तरह वर्तना लक्षण पुद्गलमे पाया जाता है तथा वही वर्तना लक्षण आत्मामे भी मिलता है। यही सत्ताका स्वरूप है। यही अस्तित्व गुण आत्माका जैसा है वैसा आकाशमे है। सत्ता जातिकी अपेक्षा देखा तो सब एकसी सत्ता मालूम होती है। सादृश्य हो गया सो सादृश्य अस्तित्व हो गया। अगर सादृश्य अस्तित्व सबमे न हो तो वह किसीमे किसी ढगका मिलेगा तथा दूसरेमे और तरहका मिलेगा एव किसी अन्यमे अन्य ही तरहका मिलेगा। किसीमे सत्की डिग्री अधिक होगी और किसीमे सत्की डिग्री कम होगी तथा किसीमे असत्की डिग्री अधिक होगी और किसीमे असत् की डिग्री कम होगी। इस तरह बहुतसा बवण्डर खडा हो जायगा। अनेकान्त दर्शनके अमूल्य सिद्धान्तोको औरोंने भी अपनाया है, परन्तु किसी एकातमे अटक जानेसे वह उसमे पूर्ण सफल नही हो सके। उन्होंने ब्रह्मके रूपमे सादृश्य अस्तित्व एक ही यहाँ माना है तो एक ही वहाँ माना है, बीचमे भी माना है, जैसे गौ व्यापक है, तो जैनसिद्धातने यह नही बताया कि वह सब जगह व्यापक है, किन्तु जितनी गौ हैं, उन्ही सबमे व्यापक है। उसी तरह महासत्ता सब जगहमे एक व्यापक हो सो बात नही है। जितने सत् है उन सबमे अस्तित्व रहता है। यद्यपि लोकमे ऐसा प्रदेश नही है, जहाँ द्रव्यका अस्तित्व नही है तथापि देखनेकी कला समीचीन ही होना चाहिये। गौ का सम्बन्ध तो रहता है, किन्तु वह सब जगह भरी हुई हो सो बात नही है, इस तरह व्यापक नही है। जहाँ गौयें गईं वहाँ वह पहुच गई, किन्तु अन्यत्र स्थानपर तो नहीं रह गई। इसे ही सादृश्य अस्तित्व कहते है। किसी द्रव्यसे किसी अन्य द्रव्यकी उत्पत्ति नही होती और किसीकी सत्ता किसी नही है। इसको स्पष्ट करते है—

दव्व सहावसिद्ध सदिति जिणा तच्चदो समक्खादो।
सिद्ध तध आगमदो णेच्छदि जो सोहु परसमओ ॥९८॥

संयोग होनेपर भी एकसे दूसरेकी अनिष्पत्ति—प्रत्येक द्रव्य स्वभावसे सिद्ध है, अपने आप है। इसी प्रकार सत भी अपने आप है। यह जिनेन्द्रदेवने बताया है। आगममे यह बताया है और जो इसे न माने वह मिथ्यादृष्टि है, परसमय है। द्रव्यकी सत्ता द्रव्यसे जुदी नही है और द्रव्यसे द्रव्यान्तरोकी उत्पत्ति नही होती है। द्रव्य अनन्तानन्त है। एक जीवका स्वरूपास्तित्व दूसरे जीवका स्वरूपास्तित्व नही बनता है। इसलिए स्वत ही अनन्तानन्त जीव है। सुईकी नोकपर आलू, सकरकन्दी आदि अनन्तका जितना टुकडा बन सके उसमे

अनन्ते निगोद जीव रहते है। विवेकी लोग इसीलिए नही खाते है, तथा जो खाते है पापका बन्ध करते है। जब उतने स्थानपर अनन्ते निगोद जीव रहते है तब जो सर्वत्र भरे हुए है उन्हे अनन्तानन्त होना चाहिए। अनन्तानन्त है ही और होते है। लेकिन अतीतमे उनमेसे निकलकर अन्य पर्यायोके धारणके बाद सिद्ध हुए है उनकी भी सख्या अनन्त है, और सर्व सिद्धोसे अनन्तगुणे जीव एक निगोद शरीरमे होते है। एक जिसका टुकडा न हो सके ऐसा पुद्गल परमाणु है, वे लोकमे ठसाठस भरे हुए हैं। कभी-कभी उनका अन्तर नही देखनेमे आता, लेकिन जो स्थूल पुद्गलका स्कध है वह जुदा साक्षात् दिख सकता है। एक यह चौकी है, अगर इसके दो टुकडे कर दिये जावें तो उन्हे अलग-अलग देखा जा सकता है। परमाणुका दूसरा हिस्सा नही हो सकता है। एक-एक परमाणु करके द्रव्य है। पुद्गल परमाणु अनन्तानन्त है और जीव अनन्ते है। जीवसे वह ज्यादा है, सिद्धोसे अनन्तगुणे ससारी जीव है और ससारीसे अनन्तगुणे पुद्गल परमाणु है। एक ससारी जीवसे अनन्ते पुद्गल परमाणुओका स्थूल पिण्ड सम्वधित रहता है। उससे ज्यादा तैजस कार्माणवर्गणायें रहती है तथा अधिक कर्म रहते है। एक जीवके साथ अनन्ते पुद्गल परमाणु बनते है और बिगडते है तथा बने रहते है। अनन्तानत जीव है, अनन्तानत पुद्गल परमाणु है धर्म, अधर्म, आकाश और काल- एक-एक द्रव्य है। कालद्रव्य असख्यात है, किन्तु वह एक दूसरेमे मिलते नही है। वह रत्नोकी राशिके समान जुदे-जुदे ठहरे हुये है। किसी भी द्रव्यके द्वारा किसी द्रव्यकी उत्पत्ति नहीं होती है, फिर भी योग्यता अनुकूल परस्पर निमित्त है।

वस्तुस्वरूपकी अनभिज्ञतामे विचित्र कल्पनाओका कलन—आजकल वैज्ञानिकोकी नई नई खोजें चल रही है। वह खोजवर्ता वस्तुके स्वरूपको तो जानते नही, न उसे समझ रहे है, लेकिन बाह्यपदार्थकी खोज कर रहे हैं। उस खोजमे उन्होने नई-नई विचित्र कल्पनायें दिखाई हैं। उनका कहना है कि मनुष्य पहले बदर था, वह विकास करते-करते इस रूपमे पहुच गया है, और भी मछलीसे मेढक, मेढकसे बन्दर आदिकी उत्पत्ति बताते है। उन्नति करनेसे तो मनुष्य बन गये, किन्तु आगे क्या बनेंगे सो मालूम नही। यह तो वैज्ञानिकोकी दृष्टि है। अब शास्त्रकी दृष्टिसे भी सोचा जाय। तो अन्य मतावलम्बियोका कहना है। पहले कुछ नही था, एक आदिम था। उसने ईश्वरसे कहा—'कुन' अर्थात् पैदा करो। ईश्वरने कहा कि हा पैदा किया, इससे सब जगत बन गया। किन्ही शास्त्रोकी दृष्टि यहाँ तक पहुची, किन्हीके ईश्वर सर्व व्यापक था और किन्हीके ईश्वर कर्ता है। वह ईश्वर मौजमे रहता है। उसे इच्छा हुई तो अकेलेसे बहुत बन गया। ईश्वरकी तो अपनी मौज ओरी (हुई) लेकिन यहाँ प्राण बचानेके लाले हो रहे है। अगर प्रश्न करे कि वह मौज पहले भी हुई थी या अभी ही ताजी हुई है? उत्तरमे कहा कि वह मौज पहले भी हुई थी, वह अनादि अनत है। वह अपनी मायाको समेट

लेता है और अवसर पाकर फिरसे विराट रूप धारण कर लेता है। यह कपोलकल्पित अनेक धारणायें क्यो बनाई गई। इसलिए यह अनेक कल्पनायें की गई जब कि द्रव्यका सही स्वरूप नही समझ सके। उनकी पदार्थपर एव स्वभावपर दृष्टि ही नही गई देखो तो वैज्ञानिकोने चाहे कुछ समझा उपादान निमित्तकी ध्वनि फिर भी है। उत्पाद, व्यय एव ध्रौव्यका क्या महत्त्व है, इनके द्वारा कैसे व्यवस्था चलती रहती है ? इसके जाने बिना बहुतसे जिज्ञासु तो यहाँ वहाँ ही भटकते रहे। द्रव्यत्वकी जैसी व्यवस्था पूर्वकालमे थी वही उत्तरकालमे भी देख रहे है। ऐसा नही है कि पहले कुछ नही था और यकायक बन गया हो।

प्रत्येक द्रव्य स्वत.सिद्ध है—द्रव्य जो है वह स्वभावसे सिद्ध है। द्रव्य पहले नही था और बादमे किसीने बना दिया हो, ऐसा नही है। अतएव किसी द्रव्यके द्वारा अन्य द्रव्यकी उत्पत्ति नही होती। जो है वह परिणमते रहते हैं। इसी तरह आगे भी परिणमते जावेंगे। वह किसीकी अपेक्षा नही करते है। निरपेक्ष जो परिणमन है वह द्रव्यत्वके गुणके कारण है। जो परिणमनमे होने वाली विशिष्टता है वह औपाधिक है। अनन्तानत द्रव्योमे से किन्ही भी द्रव्योंके द्वारा अन्य द्रव्यकी उत्पत्ति नही होती है। जो हैं वही परिणमते रहते हैं। ईश्वरके द्वारा एकसे बहुत बन जावें, ऐसा कुछ नही है। मछलीसे मेढक, मेढकसे बन्दर और बन्दरसे मनुष्य बने हो, यह भी सिद्ध नही होता, यह तो पूर्णतया गलत सिद्धान्तसे भरा हुआ है, फिर भी इन्होने कुछ उपादान स्वीकार तो किया और शायद अन्य मछली आदिको परम्परया अनादि निधनपना मानते रहे हो। जितने भी द्रव्य है वह स्वभावसे सिद्ध हैं।

असत्की कभी उत्पत्ति नही होती—जो अनादिनिधन हैं, वह अन्य किसीसे नही बन सकते। अगर अनादिनिधन नही है तो किसी क्षणसे (समयसे) उनकी उत्पत्तिकी शुरुवात होना चाहिये, जिससे असत्की उत्पत्ति हो जायगी। तब फिर इस तरहका कैसे हो गया ? जब कि असत् नही है। बिच्छू, मेढक, चीटी, जुआ, शख, केचुआ आदि कोई भी असत् नही बने। वह परमाणु जीवके सम्बधको पाकर इस रूप परिणम गये हैं। प्रत्येक द्रव्य अनादि अनत है। वह जीव कर्मके सयोगसे सदैव अनेक पर्यायें धारण करता रहता है। कर्मफलोंके अनुसार इस रूप बन रहा है और पूर्वकी पर्यायोको छोड रहा है। मैं रहा और रहा आऊगा, यह किसी अन्यकी अपेक्षा नही रखता। किसीके पुण्यका उदय है तो सुखका कारण बनेगा और पापका उदय है तो दुःखका कारण बनेगा। सोचते हैं कि "मैं नही होता तो यह नष्ट हो जाते, इनका कार्य कैसे चलता ? यह परवाह छोडो। यहाँ तो तुम्हीसे कोई बनता नही और अगर नही होते तो कोई कार्य बिगडता नही था। यह व्यवस्था पूर्वसे ही इसी तरहकी चली आ रही है व चलती जायगी। द्रव्यके द्रव्यत्वको देखें तो वे ध्रुव है और रहेगे। किसीका अस्तित्व किसी की दयासे हो, यह बात नही है। किसीका कहींसे प्रारम्भ नही है। प्रत्येक पदार्थ किसी न

किसी रूपमे रहा होगा । पहलेकी परिणतियोका अतर वर्तमानकी परिणतियोसे मिला लेवे । यह बात पहले नही थी, इसके बिना यह कार्य नही हो सकता था, यही सोचनेमे समय व्यतीत करते रहे तो सर्व कार्य गडबड ही रहेगा । यह सोच-सोचकर हमने अनेक भेप बनाये, अनेक ससाररूपी नाटक खेले ।

वर्तमान स्थितिका सदुपयोग करो—अब भी यह रूप पाया है और इस रूपका उपयोग नही किया तो क्या ठिकाना, दयासे क्या होगा ? केवल इस आत्मस्वरूपपर ध्यान दें तो हम अपने आपमे आकर आत्मोन्नति कर सकते है । हम किसीसे बधे नही हैं । परको अपना मानकर ही स्वय फस रहे हैं । पदार्थका भले प्रकारसे निश्चय कर लेवें कि इससे भिन्न और कुछ नही है । फिर केवल द्रव्यके स्वरूपको निरपेक्ष दृष्टिसे देख लेवें । यह उपाय कर सकते है जिससे दूसरोके लिए मार्गदर्शक बन सकें । यह वस्तुस्वरूपका प्रकरण चल रहा है कि द्रव्यसे द्रव्यान्तरोकी उत्पत्ति होती नही । अतएव अपने शुद्ध स्वरूपका निश्चय कर एव ध्यान कर कर्मकालिमा हटा सकते है । प्रयत्न करनेपर सबमे सफलता मिल सकती है । थोडे विवेककी जरूरत है । आत्माको पहिचानना ही सार है, इसके अतिरिक्त सब ससारकी मजबूत बेडियाँ है, जो कि पैरोको ही जख्मी कर देगी तब अपना सब कल्याणका मार्ग अवरुद्ध हो जावेगा ।

सत्की स्वभावसिद्धता—एक द्रव्य अन्य द्रव्यका आरम्भक, उत्पादक, कर्ता, अधिकारी व स्वामी कुछ भी नही है, क्योकि सभी द्रव्य स्वभावसे सिद्ध होते है । सब स्वभावसिद्ध है, यह कैसे जाना ? सभी द्रव्य अनादिनिधन हैं, अत सुसिद्ध है कि सभी द्रव्य स्वभावसिद्ध है । जो अनादिनिधन होता है वह साधनान्तरकी अपेक्षा नही करता, गुणपर्यायात्मक अपने स्वभावको ही मूल कारण पाकर स्वय ही सिद्धि सिद्धिमान रूप होता है । हाँ, द्रव्योके द्वारा जो आरब्ध होता है उसे कादाचित्क अर्थात् अनित्य होनेसे पर्याय कहते, परंतु द्रव्यान्तर कभी नही कर सकते । द्रव्यसे द्रव्यान्तर पैदा नही होता, किन्तु उसकी पर्याय पैदा होती । द्रव्य तो अनादिनिधन है वह कदाचित्क नही है । सो इस प्रकार सुसिद्ध है कि द्रव्य स्वभावसे ही सिद्ध है, इसी प्रकार यह भी अवधारण कर लेता कि सत् भी स्वभावसे ही सिद्ध है । कही यह नही जानना कि सत्ताके समवायसे द्रव्य सत् है, क्योकि द्रव्यसे भिन्न कोई सत्ता नही है, द्रव्य ही अपने सत्तात्मक स्वभावसे निष्पन्न निष्पत्तिमद्भावयुक्त कहा जाता है । सत् और सत्ता कही पृथक्-पृथक् चीज नही है, अतः उनकी परस्पर अर्थान्तरता नही है । यदि कहो कि "सत्मे सत्ता है" ऐसी प्रतीति होनेसे अर्थान्तरता तो सिद्ध हो जाती है, जैसे कि घडेमे घी ऐसी प्रतीतिसे अर्थान्तरता है । सो यह बात ठीक नही, क्योकि आप बतावो कि यहाँ किस कारणक इहेद (इसमे यह है) यह प्रतीति होती है । यदि भेदके कारण यह प्रतीति होती है तो सोचो क्या प्रादेशिक भेद है या अतद्भाविक । प्रादेशिक भेद है तो है नही, क्योकि सत् और सत्ता युत-

सिद्ध (पृथक्-पृथक्) नही है। अतद्भावरूप भेद कहो तो यह ठीक ही है, क्योकि जो द्रव्य है वह गुण नही है, किन्तु इसका तात्पर्य यह नही है कि द्रव्य जुदी चीज है और गुण जुदी चीज है। है तो एक ही चीज, उसमे जब गुण गुणि भेदकी कल्पना की जाती है तब अतद्भाव (जो यह है सो यह नही) प्रकट होता है, किन्तु द्रव्यकी दृष्टिमे अतद्भाव विलीन हो जाता है। इस कारण अतद्भाव एकान्तसे इहेद इस प्रतीतिका कारण नही है।

प्रत्येक द्रव्य अपने-अपने कारणसे सत् है—कालद्रव्य तो एक साधारण निमित्त होकर द्रव्योके परिणामनमे सहायक होता रहता है। स्वयमे अन्य कोई निमित्त नही है। परिणमन विशेषतायें आई वह विशेपतायें ही द्रव्यका परिणामन स्वभाव है। कालद्रव्यका परिणामन बन्द नही हो सकता। षट् (छ) द्रव्य जो हैं वे अपने स्वभावको मूल कारण बना कर स्वय ही परिणामन करती रहती हैं। इसीसे वह द्रव्य सिद्धिको प्राप्त होती हैं, इसके द्वारा प्रश्न है किसके द्वारा द्रव्य अस्ति ? वह अपने द्वारा अस्ति अपने ही स्वभावको मूल कारण पाकर, अपने ही आप है, कोई अन्य विकल्पसे नही है। यह विकल्प करके कर्ता मानता है, तथा ऐहसान करता है और उनका ही कृतज्ञ भी बन जाता है। वह स्वयं द्रव्यत्व गुणके कारण परिणमता है। उसके लिए किसी अन्य साधनकी अपेक्षा नही करना पडती। द्रव्यसे द्रव्यान्तर उत्पन्न नहीं किया जा सकता। उनकी स्वयं पर्यायें ही बनती विगडती रहती हैं। इसमे जो पैदा हुआ होता है वह जानता है कि यह पर्यायें हैं, अन्य कुछ नही है। द्रव्यके द्वारा जो उत्पन्न किया गया वह पर्याय है, द्रव्यान्तर नही है। वैशेपिकोने द्रय गुण पर्यायको भिन्न भिन्न माना है। उनके यहाँ स्वय सत् किसीमे नही है। यह सत् सामान्यमे नही है और विशेषमे भी नही है। वह तो यह मानते हैं—सत्ताका समवाय पाकर द्रव्य सत् होता रहता है और उसीके आधारपर स्थित रहता है। किन्तु ऐसा नही है। सत् स्वय सत् है। तो द्रव्यके द्वारा जो आरम्भ हुआ वह पर्यायें हैं, और कुछ नही है अर्थात् क्रोध, मान, माया, लोभ आदि भी हमारे नही हैं वह हमारी एक पर्याय है, कादाचित् हैं अर्थात् अनित्य है। जैसे अणुक है। दो अणु, तीन अणु, चार अणु वाला स्कन्ध है। सदैव या अभी-अभी शरीरमे कितने परमाणु निकलते रहते हैं और कितने ही आते रहते हैं। यह द्रव्यपर्याय है जैसे कादाचित् है और पर्यायके ही द्वारा सब कार्य संचालित होता रहता है। रागद्वेप, क्रोध, मान, माया, लोभ आदिके किये तो गये है, किन्तु वह भिन्न-भिन्न नहीं है, द्रव्यका परिणमन है।

द्रव्य अभी बन गया हो यह बात नहीं है—द्रव्य इसी तरह तीनो कालमे रहेगा पर्यायें बदलता रहेगा। वह द्रव्यस्वरूपको छोडकर अन्यत्र नही जाता है। इसमे जो एक सत है वह अन्यके द्वारा उत्पन्न नही हुआ है। यहाँ भी अज्ञान चलता है। मैंने अमुक को पैदा किया, अमुक बनाया है, मकान बनाया है, पुन्यप्रवृत्तियोके सम्बन्ध किये हैं, धन कमाया

है आदि । यह देखो कितना अज्ञानान्धकार छाया है ? तुम या मैं कोई भी एक अणुको तो पैदा कर नही सकते, फिर भी व्यर्थमें झूठा व्यामोह लगा फिरता है । मेरे इतने पुत्र है, बगीचे है आदि । जब एक परमाणुको भी अपना नही बना सकते तो मकान बनाना तो कैसे सभव है ? कर्म भी हम नही बना सकते, वह तो कषायका निमित्त पाकर बन जाते है । हमने योग और उपयोगका आलम्बन किया, योगोके द्वारा परिस्पन्द (हलन चलन) आत्मामे हुआ तथा विशिष्ट उपयोगसे याने अशुभ या शुभ भाव होनेसे उसी तरहके कर्म आकर मिल जाते है । इसके अतिरिक्त यह कर ही क्या सकता है ? हमारा जो परिणमन बना है वह योग उपयोग रूप ही बन सकता है । अगर किसीसे कोई पूछे कि आपने क्या धधा किया है ? तो वह भले ही दुनिया भरके व्यापार बताने लगे, किन्तु वह योग उपयोगके अतिरिक्त कुछ नही कर सकता । घरमे है तो, दुकानमे है तो योग और उपयोगके सिवाय कुछ भी नही कर सकते । योग उपयोग हमेशा बनते रहते हैं । श्रद्धामे समझे कि मै दुकानमे भी दुकानविषयक उपयोग बनाता हू । प्रथम तो ऐसा उपयोग बनावे, ४ गज कपडा फाडना है तो वैसा योग भी चला । जैसे मशीनका हैंडल घुमाते ही सबके सब कल पुर्जे द्रुतगतिसे चलने लगते है । तो ४ गज कपड़ा देनेकी इच्छा हुई तो योगी प्रवृत्ति हुई तो वैसी ही शरीरकी वायु चलने लगी, मनमे इच्छा पैदा होते ही परम्परया हाथ चलने लगा, उस तरहकी क्रिया हुई, साथमे उपयोग भी उसी तरहका चल रहा है । यह कार्य सब कैसे निमित्तनैमित्तिक पूर्वक हो रहे है ? मैं तो योग और उपयोगको छोडकर कुछ नही करता ।

मोहकी विचित्रता देखो—मैंने अभी तक कितने जीवोसे मोह नही किया है । पूर्व भवमे घर, कुटुम्बी, धन, दौलत होगी ? पुण्योदय होता तो इससे अच्छा जीवन या देवगति पाई होती, किन्तु कोई गलती, अशुभ कर्म किया होगा जिससे कह दिया, चलो अमुक स्थान पर, वहाँ तुम अपने कियेके फल भोगो । इसीसे इस पचम कालमे आकर अनेक झझटोका सामना कर रहे है । अगर यही गलती फिरसे की तो क्या ठिकाना, कहाँ क्या होना पडेगा ? यह स्वप्न कैसे है ? एक इन्द्रिय तो भोग भोगेंगे ही, क्या दो इन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय मामूली विषय भोग पावेंगे, किन्तु पचेन्द्रिय तिर्यञ्च तथा मनुष्य है (देव नारकी तो हैं ही) । पशु भी प्रकृति अनुकूल विषय भोगता है । वह ४-६ माहका इकट्ठा घास इकट्ठा भी करके नहीं रख सकता । बहुतसे बहुत अगर उसके पास अन्य घास खाने आ जावेगा तो वे उसे सीग मारकर भगा देंगे, किन्तु सग्रह नही करते । वह आश्विन, कार्तिक, फाल्गुन या अन्य माहोमे ही प्रजनन करेंगे तथा मैथुन भी यथा समय करेंगे । लेकिन मनुष्यमे तो बल ज्यादा है, इसलिए बल साहित्यके द्वारा, कलाके द्वारा, भोगोमे बाजी मार सकता है । मनुष्यके १२ महीनो ही प्रजनन कार्य चलता रहता है । वैज्ञानिकोका मत है ससारभरके मनुष्योके एक मिनटमे

६० सन्तानें पैदा होती रहती है। प्रत्येक इन्द्रियके विषय दिन रात चालू ही रहते हैं। कमी आई तो पुनः विकल्प करके नई-नई सामग्री जुटाने लगता है। अगर मनुष्य इस बलका यथोचित उपयोग करे तो धर्मकार्यमे भी आगे बढ सकता है। जो कि इसकी स्वाभाविक वस्तु होनी चाहिए।

धर्म व अधर्ममे कितना अन्तर है—दोनोमे कितना अतर है? अधिक विषयकषायके करनेसे पापबध करता है, जिससे अनेक दुखोका पात्र होना पडता है और धर्मकार्य करनेसे मोक्षके सस्कार बन जाते हैं तथा पुण्यबध करके अनेकानेक सुख सामग्रियोको पा सकता है। सोचे कि क्या मैं परका परिणमन कर पाता हू? तादाम्य सम्बध होनेसे मैं किसका क्या कर सकता हू? केवल स्वयका परिणमन करता रहता हू। अनादिसे यही धधा किया, इसीकी गरमागरम दुकान चलाता रहा, और इसीको चलाता रहेगा। एक पर्यायरूपी दुकान छूटी, दूसरी फिर प्राप्त कर ली, पुन. भोगोके चक्कर चलने लगे। उपयोगका धधा छूट नही सकता। यहाँ योग उपयोगके सिवाय कुछ नही कर सकता। द्रव्यसे जो भी आरम्भ किया जाता है वह उसकी पर्याय बनती है। आत्मा द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावात्मक है तथा अन्य दूसरे पदार्थ भी द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावात्मक है। फिर भी आत्माकी निर्विकल्प समाधि होना, भावदृष्टिसे देखना योग्य है। द्रव्यदृष्टिसे शरीररूप पिण्डाकार है। क्षेत्रदृष्टिसे शरीरमात्र स्थानमे फैला हुआ है। कालदृष्टिसे वर्तमानमे यह परिणमन हो रहा है। भावदृष्टिसे देखा तो उसमे चैतन्यस्वभाव दृष्टिगत हुआ। चैतन्यकी दृष्टिसे देखा तो आत्मा प्रतीत हुई, अनुभव द्वारा जब हम विचार करते है कि आत्मा इतनेमे फैला है, इतना बडा है तब और उपयोग है, और एक चैतन्यस्वभावकी दृष्टिसे देखनेमे कुछ विचित्र चमत्कार है। ज्ञानी यह भावना करता है कि मैं ज्ञान दर्शनमात्र हू। यही क्यो सोचते? इसलिये कि इससे आगे सोचे कि मैं सूक्ष्म गुण वाला, अस्तित्व विशेष गुण वाला हू तो अनुभवमे चैतन्य नही रहता। अत सोचना चाहिए कि—

मैं चेतनामात्र शुद्ध हूं—ज्ञान तो सबका करना चाहिये, भावना चैतन्यभावकी करे। अनादिकालसे द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावको पाकर परमे परिणमन करता रहता हू। पापको जीवन मे प्रधान करके उसीमे लगा रहता हू, और वह उसे सुगम भी हो गया। वैसे एक द्रव्यात्मक दृष्टिसे पुद्गल प्रधान है, क्षेत्रदृष्टिसे आकाश, कालदृष्टिसे पर्याय और भावदृष्टिसे आत्मामे रमण करना। स्वानुभूतिके लिए सद्भावना विशेष कार्यकारी है। द्रव्यके द्वारा भावका ही परिणमन तो बनेगा। द्रव्य तो अमर्यादित है। जो अनादिसे है वह किया हुआ क्या हो सकता है? जो किया हुआ होता है वहाँ अन्य पदार्थकी परिणति नही की जाती, इसलिए द्रव्यके व उसके द्वारा कदाचित् पर्यायें तो हुईं, अन्य सत्ता नही। द्रव्य तीनो कालोमे रहने वाला है। इससे वह किसीके द्वारा बनाया नही जाता। द्रव्य भी स्वभावसे सिद्ध है। स्वभाव भी स्वभावमे

सिद्ध है। प्रत्येक द्रव्य अनादिसे है, वह परिणमता जा रहा है, परिणमता जावेगा। यह सन्तति चली ही जाती है या घधा कहिये। रही पर्यायकी बात, सो मैं अमुकको कर देता हू, उसको मैंने ही किया, मूलसे ही बना दिया है। यही दृष्टि सदैवसे रही आई है, जो कि क्लेश-हेतु है।

मोहके बुलावेका दस्तूर मिलेगा—किसी शुभ कार्यके लिए औरते बुलावा देती है अन्य औरतें बुलावेमे आकर गीत गाती है। बादमे उन्हे खुशीके या उनके परिश्रमके बताशे वितरण किये जाते हैं, किन्तु हमने अनादिसे अनन्त काल बिताया, किन्तु हमे क्या मिला ? इस शरीरको छोडा, फिर दूसरा पाया, यह क्रम लगा ही रहता है। लेकिन मिलते कैसे बताशे हैं सो सबको ज्ञात ही होगा। जैसा आया है वैसा चला जायगा। कुछ इस तरहके पशु होते है जो दूसरेके खेत आदिका उजाड करते है। तो उन्हे डडे मार-मारकर बाहर निकाल दिया जाता है। लेकिन उसके तो सस्कार बने होते है कि फिरसे उजाड करने चला जाता है। तब बादमे खेत मालिकके फदेमे फस जाता है उसे काजीहाउसमे ले जाकर बंद कर दिया जाता है। इसने पहले कोडोकी मार खाई, जिससे पीठ छिल गई। काजीहाउसमे समयपर या घास एव पानी नही मिला जिससे दुर्बल हो गया, अगर वहाकी मर्यादित अवधिमे निकाल लिया गया तो ठीक है अन्यथा वहाँकी अवधिपूर्ण होनेपर नीलाम कर दिये जावोगे। वहाँ भी दुःखोका ही साम्राज्य है। वैसे ही हम मलिन परिणामोसे जहाँ देखो वहाँ दुःख ही उठाते फिरते है। जहाँ जाते हैं, बही डडे खाते है। खोटे भावोसे इस जीवकी कही भी सुरक्षा नही। इसीसे द्रव्यके स्वरूपको परखनेको कहा है। मलिनता हटानेके लिए परिणामोमे निर्मलता आना जरूरी है। सकट कही बाहरसे आकर हमला नही करता, हम उसरूप परिणाम जाते है तो दुःख होता है।

द्रव्य त्रिकाल निजसत्त्वनिष्ठ है—जैसे द्रव्य स्वभावसे सिद्ध है उसी तरह सत्ता सिद्ध है। सत्तासे सत्‌की सिद्धि है। वह हमारे भावमे है। कुछ लोग मानते है कि जब सत्ताका सभवाय होता है तब सत् बनता है। वह अयुत सिद्ध सम्बधको बताते है। वह पृथक् नही, किन्तु सत्ताका और समवायका सम्बध चला आ रहा है। वैशेषिक ईश्वरको कर्ता नही मानते, किन्तु जैनियोके सदृश कुछ व्यवस्था मानते है, किन्तु कुछ भेद हो गया है। उनका कहना है कि सत्ता अलग चीज है और समवाय अलग चीज है, द्रव्य, गुण आदि अलग तथा हम जिस विधिसे देखते हैं, वह अलग चीज है, किन्तु प्रादेशिक भेदभाव नही आया। सत्ताके कहनेसे जो दिमाग वना वह सत्‌के कहनेसे लक्ष्यमे नही आया। लेकिन सत्ता और सत् कोई पृथक् वस्तु नहीं है तथा वह युत सिद्ध भी नही, क्योकि एक हैं। धर्म धर्मीकी दृष्टिसे देखना चाहिए। क्या धर्म धर्मीसे अलग है ? प्रत्येक द्रव्यका अपना जो सत्तात्मक स्वभाव है वह निष्पन्न है।

द्रव्यसे सत् सिद्ध हुआ, सत्से सत्ता सिद्ध हुई। द्रव्यसे न्यारी कोई वस्तु नही है। जिससे कि यह कह सके कि सत्से सत्ता होती है। हम यह सब कहते-कहते ऊब जाते है और आचार्य महाराज अमृतचन्दजी सूरि क्यो नही ऊबे ? यथार्थमे वह हितैषी चिकित्सक है। यह जो मोह आता है वह स्वरूपास्तित्वका भान नही होनेसे होता, वह आता भी तब तक है जब तक पर-पदार्थ प्रिय लग रहे है। इस सत्के बारेमे कहते है। मै जुदा हू, मुझसे सत्ता जुदी है। यह भी अलग सत्ता नही है कि कुछ मेरी भी सत्ता (अस्तित्व) है। मोही नही मानता, अगर अपनी सत्ताका पता होता तो क्यो यह आशय रखता कि मैं मुकदमा जीत जाऊ, सतानका मुह देख लूं, धन उपलब्ध हो जाय या अमुक कोईसा भी कार्य सिद्ध हो जाय। भगवानकी परमात्मा अवस्था है, वह क्या परसे उत्पन्न होती या मिलती है ? अन्तरङ्ग साधन देखो, बाह्यसे प्रवृत्ति जोडनेका नाता तोडो। अगर कुछ बाधा आवे तो दूसरेकी गल्ती नही, स्वयकी गल्तीसे ही अन्य विचारोको गढ लिया प्रतीत होता है।

प्रभुता किसी अन्य पदार्थसे नही आती—यह प्रभुविकास तो खदानसे निकले पत्थरमे गुप्त मूर्तिके समान है। जिसमे कि मूर्तिपना छिपा हुआ है, जो कि स्वत सिद्ध है, पत्थर निकाला खदानमे से। कारीगरको बुलाकर वहा गया कि इसमेसे इस तरहकी मूर्ति निकालना है, अगर उसकी प्रतिरूप मिलती-जुलती तस्वीर हुई तो वह दिखा दी। अभी मूर्तिका निर्माण नही हुआ है, किन्तु कारीगरको अन्त ज्ञानसे दिख गई है। यदि उसे मूर्ति दिखी नही होती तो कारीगर विपरीत हाथ भी चला सकता था। वह मूर्ति बनाता नही है, किन्तु मूर्तिपर जो मुलम्मा चढा था उसे टाकी और हथोडाकी टकोरसे हटा देता है। अगर मूर्तिमे कुछ करे तो बिगड जाय, अतएव मैलको हटाता है। जब सब मैल हट जाता है, तो जो मूर्ति उसे अन्तरसे दिखी थी, वही बाहरमे प्रकट हो जाती है। इसी तरह परमात्मस्वभाव अन्तरसे बाहरमे प्रकट हो जाता है। अगर स्वभाव बनता होता तो जो पहले नही है वह अब प्रकट नही हो सकता था। सम्यग्दृष्टि कारीगरको वह प्रभु दिख गया है जो प्रकट करना है। इस प्रभुके दर्शन होनेसे, उसपर जो मैलका मुलम्मा चढा है उसे एकाग्र होकर हटाता है, अन्य सुध कुछ नही रहती। यह निमित्तनैमित्तिक सम्बध है, किन्तु कर्मका मुलम्मा नही चढा है, यहाँ वह मुलम्मा तो स्वभावपर चिपका हुआ है, वह है विषयकषायका। अब सम्यग्दृष्टि ज्ञानी उसको व्यक्त करनेके लिए प्रभुको नही बनाता, किन्तु जो विषयकषाय विकल्प हैं उन्हे हटाता है। कारीगरको तो छैनी मिली है। लेकिन यहाँ तो ऐसी वस्तु है नही। यहाँ तो केवल भावोका खेल है। अब कौनसा छैनी हथोडा होवे जिससे कर्म मुलम्मा दूर किया जाय तत्त्वज्ञानरूपी छैनी और ध्यान रूपी प्रहारोसे उस मुलम्माको छेद दिया, विषयकषायोको हटा दिया। जब यह भाव आया तो वह ममत्व नही रहा। ज्ञानभावका उदय हुआ और अज्ञान अन्धकार विलीनताको प्राप्त

हुआ। वह प्रभु इस विधिसे प्रकट हो जाता है। वह स्वभावसे ही आता है। जो यह सोचते है कि मेरा कार्य सिद्ध हो जावे तथा मैं इसे प्राप्त करूंगा, मैं इस ज्ञानका स्वामी हू, वह उसी जातिके विकल्प है जिनसे प्रभुता दिखती है।

शुद्धात्मोपलब्धि ही सच्ची सिद्धि है—सिद्धिके लिए यह सब प्रकरण चले आ रहे है। सत और सत्ता पृथक्-पृथक् नही है। सत् और सत्तामे अतद्भाविक अन्तर है। जैसे चौकी चटाई आदि जुदे जुदे दिखते है, इस तरहका अन्तर नही है। इनकी पृथक् सिद्धता है इस तरहका अन्तर नही है। जैसे दड और दडी अलग-अलग है, इस तरह सत और सत्ता जुदे-जुदे दिखते हो सो बात नही है। कहते है कि अयुत सिद्ध होनेपर भी पृथक् सिद्धता हो जायगी। यह तो तुम स्ववचन बाधित ही बोल रहे हो। क्योकि वह अपृथक्-अपृथक् है। एक वस्तु है और उसमे तत्त्व है सो तो कह सकते हो। किन्तु एक है और अर्थान्तिर है, यह नही हो सकता। लक्षरण स्वरूपसे भिन्नता हो सकती है। जो आत्मा है वह ज्ञान है और जो ज्ञान है वह आत्मा है—यह एक है क्या ? एक तो नही है। ज्ञान जाननस्वरूप वाला है, आत्मा यह एक है। लक्ष्यसे यह भी कैसे एक हो जावेगा, किन्तु अर्थान्तिरता बिल्कुल नही। अर्थान्तिरने इसमे प्रादेशिक भेद ला दिया है। उसे स्वरूपमे पृथक् बोल सकते है। यह मेरा नही है, मैं इससे भिन्न हू।

सत् व सत्तामे मात्र अतद्भाव है—कहनेमे हमे मालूम पडता है कि सत् जुदी चीज है और सत्ता जुदी चीजें है। जैसे कोई कहे कि 'कुंडीमे बेर रखे हैं, मटकीमे लड्डू रखे है।' यह बात तभी कही जा सकती है जब सतसे सत्ता न्यारी हो। सभी यही जानते है सत्ता न्यारी नही है। जैनसिद्धान्त कहता है यह तो हमे भी कहना पडता है, जानना पड़ता है। सतमे सत्ता है, ऐसा जो प्रत्यय है या प्रतीति है वह किस कारणसे हुई है ? यह भेद निबन्धनक हुई है या अभेद निबन्धनक ? अभेद निबन्धनक कह नही सकते, भेद निबन्धनक कहेगे। 'घडेमे घी है, लोटामे दूध है।' यह तभी कहेगे जब दो जुदी वस्तु होवें। वह भेद क्या है, जिससे सतमे और सत्तामे एकपना मालूम पडता है ? यह अन्तर सिपरेशन जैसा नही, किन्तु डिफरेन्स जैसा कह सकते है। दो भाई भाई है, वह इकट्ठे रह रहे है। किन्तु न्यारे नही हुए है। भाई-भाई रह रहे है। यदि न्यारे हो गये तो यह प्रादेशिक भेद हो गया और विरुद्ध वुद्धि हो गये, यह दिलका भेद हो गया। प्रादेशिक भेद वहांपर है जहाँ अनेक द्रव्य हो, यह तो पर्याय अथवा अश है। इसमे कोई विशेपता नही है। जो सत्ताका स्वरूप है वह सत्का नही है। अगर धर्म धर्मी का भेद न रहे तो धर्म गया या धर्मी गया ? धर्म गया तो धर्मी किसपर ठहरेगा और धर्मी गया तो धर्म ही क्या रहा ? वस्तुमे धर्म धर्मीपना स्वतन्त्रतया कुछ नही है कि वहाँ भी झगडा हो सके। हमारे तुम्हारे झगडेसे उसपर असर नही पडता। पर विकल्पके तो हमारे तुम्हारे

झगडे है। वह भेद युक्त भी है और कथचित अभेद भी है। प्रादेशिक अतद्भाव ऐसे दो भेद किये है। प्रादेशिक या युत सम्बन्धको जैन सिद्धान्तानुयायी एक द्रव्यमे नही मानते हैं, किन्तु तुम (वैशेषिक) द्रव्य गुण आदिको पृथक् मानते हो, वे तो (वैशेषिक) अयुत सिद्ध सम्बन्ध मानते है। 'द्रव्य द्रव्यणो सयोग.धर्मि धर्मयो समवाय।' एक द्रव्यके साथ दूसरे द्रव्यका सम्बध संयोग है तथा धर्मीके साथ धर्मका सम्बन्ध समवाय है।

जो है वह स्पष्ट है—कल्पनायें बहुतसी की, किन्तु अन्तिम रह गया मुख्य एक सत्। तुम कही भी पहुच जाओ अन्तमे परिणाम निकला "सत है," यही दृष्टिगोचर हो रहा है। जैन न्यायमे यह विशेषता है कि उसमे बाह्य आडम्बर नही हैं। दूसरेने किसीकी सिद्धि की तो या तो अधिक चतुराई कर दी या मूढता की। यह स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है कि एक पदार्थ भिन्न नही है फिर भी उसको अलग अलग मान लिया है इसे चतुराई न कहे और क्या? प्रमाण क्या है? ज्ञान, किन्तु बाह्य कारकोको प्रमाण मान लेना यह वचन है? बताने वाला ज्ञान ही है। चाहे जितने भिन्न पदार्थ सहायक हो लो, जिसको द्रव्य सत्ता ही कबूल नही है वह तो चतुराई ही करेगा। आप लोगोको मालूम होगा, जब कोई बाजारमे साग सब्जी खरीदने जाता है तो वहाँ चतुराई या मूढता वाला टगाया जाता है। चतुर व्यक्ति बडी खोज बीनसे भाव करेगा तथा सस्ती ले लेगा, सोचेगा एक आनामे दो आने बराबर माल आ रहा है तो वह वहाँ ठगाया जायगा, क्योकि बेचने वाले भी तो चतुर होते हैं जो कि जिस वस्तुमे उनका कुछ भी प्राप्त होनेकी आशा नही थी। उसे जिस भाव बिका सो बचा दिया और लेने वालेके पल्ल स्वास्थ्य बिगाडने वाली सडी सब्जी मिल जाती है तथा मूढता यह कि जो भी जैसी सब्जी हो, उसे लेने वाला विवेक बिना विक्रेताके सहारे छोडकर उसीके कहे माल व भावपर खरीद लेता है तब वे बाबूजी बाबूजी कहकर अच्छी हजामत कर लेते है।

सत्त्व सत्का अनन्य धर्म है—यह कौन मान लेगा कि सत्से सत्ता जुदी है। जैसे हम है तो हमसे हमारी समस्त शक्तियाँ इससे अर्थान्तर नही हैं, किन्तु वह जिस रूप हम हैं उसी रूप व्यक्ति विशेषकी विशेषतायें है। मैं सबसे भिन्न किन्तु अविनाशी हू। शुद्ध चिद्रूप हू। मै किसीमे मिल नही सकता। मैं एक स्वतत्र ज्ञायकस्वरूप निराला ही हू। मैं किसी भी परपदार्थमे मिला नही हू। ज्ञाता दृष्टा मात्र हू, शान्तिसे लबालब भरा हुआ हू, जिसका पान कोई रसिक भी कर ले तो कमी नही आनेकी। भूलसे प्राणी अपनेको पर्यायरूप मान बैठे हैं। किन्ही बाबूजी साहबने कोट सिलवाया और उसमे कही थोडीसी सिकुडन (सलवट) रह गई तो कहेगे भाई तुमने तो नाश कर दिया। इस तरह कहाँ-कहाँ नाश कर दिया। नाश अर्थात् कुछ भी बाकी नही रहा, किन्तु वहाँ शरीरसे सहित पूर्ण सपन्न है, फिर भी उक्त वचन कहते है। दुकानमे घाटा हो गया तो नाश कर दिया। यहाँ न तुम्हे उसने नाश कर दिया, यहाँके

विकल्पोंकी अव्यवस्था है, इसीसे यद्वा तदवा बकते हैं। कर्मोंके कर्मत्वका अपने लिए नाश जड़से होवे तो मानो कर्मोंका नाश कर दिया, नही तो अपना नाश कर लिया अन्यथा एक पुद्गल परमाणुकी सत्ता भी तो विलीन नही हुई है। नाश तो किसी भी द्रव्यका नही होता है, किन्तु व्यवहारसे ऐसा कहते हैं। प्रयत्नपूर्वक अष्टकर्मोंको जडसे उन्मूलन करनेमे स्वाभिमान है, वही श्रेयोमार्गका दाता है।

सत्त्व व सत् एकरूप है—द्रव्य और सत्ता इस तरह समाये हुए है जैसे सफेद और सफेदी। क्या सफेद वस्तुसे सफेदी अलग है? यहाँ इस तरह नही समझना कि जब मनुष्यमे मनुष्यता (सभ्यता) हो तभी वह मनुष्य कहलावेगा। गतिकी अपेक्षा तो मनुष्य है ही सो मनुष्यत्व भी नियमसे है। लेकिन लोकव्यवहारमे जरूर जिस मनुष्यमे उदारता, इन्सानियत, नम्रता, प्रियवादिता, सौहार्द, मैत्री भाव रखना आदि गुण होंगे तो उत्तम प्रकृतिके मनुष्योकी परीक्षा करते समय उक्त गुणोसे समन्वितको ही मानव कहा जायगा। यहाँ प्रकरण सत् और सत्ताका है। तो मनुष्य कहनेसे कुछ और बोध हो तथा मनुष्यता कहनेसे कुछ और बोध हो, यह अतद्भाव है। जब सफेद, सफेदीसे कथचिदपि भिन्न नही है तो सफेद और सफेदी क्यो कहे जाते है? भिन्नपना और बात, पृथक्पना और बात है। सफेद सफेदीमे भेद क्या प्रादेशिक है है या अतद्भाविक? प्रादेशिक तो है ही नही, क्योकि यह प्रत्यक्ष विरुद्ध है, अतद्भाविक है। अतद्भाविकको जो सर्वथा मानते हैं, उनके प्रति कहना है कि यह अतद्भाव है वह भिन्न-भिन्नपना स्वरूपकी अपेक्षा सफेद और सफेदीमे ठहरा हुआ है। सफेद कहनेसे उक्त वस्तु विशेषकी प्रतीति होती है तथा सफेदीसे उसमे विद्यमान गुणका बोध होता है। इसी तरह सत् और सत्ता समझना चाहिए। सत् सत्तासे क्या जुदी है? अगर सत् ही न हो तो सत्ता कहाँ रहेगी? इसका हल खोजे तो दोनोको जुदा-जुदा माननेकी अपेक्षा नही रह जायगी। लेकिन जो कुछ अन्तर है वह इस तरह है। प्रदेश भेद तो है नही। अग्रेजीमे सपरेशन और डिफरेन्स वर्णित हुआ करता है। यही अन्तर यहाँपर है। सपरेशन तो है डिफरेन्स नही है, इस बातपर एक शक उठाई गई। हमे तो वह भिन्न-भिन्न ही मालूम पडते हैं। कैसे? यह क्यो बोध होता है है कि घड़ेमे घी है। एक बन गया अधिकरण और एक कर्ता। सत्मे सत्ता है, तो सत् अलग है और सत्ता अलग है। इसमे यह है, ऐसी प्रतीति है तो हम तो भेद ही जानते है। देखो ना भैया! लोकरीति भेदपर उतारू होंगे तो ऐसे कि सत्की सत्ता भी जुदी मान बैठेंगे और अभेदपर उतारू होंगे तो ऐसे कि शरीर मैं हू, परिवार भी मैं हू, मकान मेरे है, वैभव मेरा है, लो चेतन अचेतन एकमेक कर डालेंगे। प्रकरणमे मूलभाव समझे कि सत् तो अनादि है, एक है। व्यक्तिगततामें परमाणु द्रव्य आदि हैं। कोई पदार्थ अपनी सीमाको नही छोड़ते। जैसे कि लोकमे पिताकी आत्मा पुत्रमे नही जाती और पुत्रकी आत्मा पितामे नही जाती। पुत्र

की आत्मा क्या सीमा छोडकर पिताकी बन जावेगी ? उसी तरह जडमे चेतन नही मिलता और चेतनमे जड नही मिलता है। तब जड या चेतन अपने बन जावेंगे, क्योकि सर्व स्वय सत् है। अच्छा चलो "हममे यह है" यह प्रतीति किस कारणसे हुई है ? जुदे-जुदे है इससे या स्वरूप भिन्नतासे ? स्वरूप भिन्नता जैनसिद्धान्त वाले भी मानते और वैशेषिक भी मानते है। अब रह गया अतद्भाव। अतद्भाव, जो द्रव्य है वह गुण नही, और जो गुण है वह द्रव्य नही। जो सत् है वह सत्ता नही तथा जो सत्ता है वह सत्ता नही। धर्मसे धर्मी जाना गया, धर्मीसे धर्म जाना गया, किन्तु इतने मात्रसे जुदे-जुदे तो न ठहर जावेंगे।

इन्सान व इन्सानियत क्या भिन्न है ?—इन्सानमे और इन्सानियतमे जितना अन्तर है उसे हम भी तो मानते हैं, किन्तु भिन्न क्षेत्र तो नही है। सत्का स्वरूप सत्ता ही है और सत्ता सत् ही है। सत्मे सत्ता है, ऐसी सर्वथा भी तो यह प्रतीति नही होती। जो यह स्वरूप-भेद है कि यह यह है वह नही, सो ये सर्वथा भेद प्रतीतिका कारण नही बनता। इसमे यह है, इस तरह भी नही है। सत् और सत्ता स्वय ही उन्मग्न और निमग्न हुआ करते है। एक भेददृष्टि और एक अभेददृष्टि तथा एक पर्यायदृष्टि और एक द्रव्यदृष्टिसे थे। उन्मग्नता व निमग्नता होती है सो जानना। सत् और सत्तामे जब हम द्रव्यदृष्टिसे निश्चित करते हैं तो गुण भेद सब अस्त हो जाते है अभेददृष्टिमे। तब सत् या अभेदरूप यह उठा व सत्ताभिन्नता डूब गई। जब पर्यायकी दृष्टिसे देखते हैं तो भेद उठ गया, अभेद डूब गया। समुद्रमे लहरें है। जब समुद्रपर दृष्टि देते हैं तो लहर भेद सामने नही आता है। इस बुद्धिसे देखे तो कि एक विशाल जो समुद्र है, वही है और कुछ नही है। वहाँ समुद्र और लहरका भेद नही रहा, लहरका भेद समाप्त हो जाता है तथा जब लहरोपर दृष्टि दी तो कहेगे ५० फुट ऊची लहरें है, समुद्रमे लहर है तब ऐसा कह देते है, और जब केवल समुद्रपर ही दृष्टि देवे तो वह लहर भेद समाप्त हो जाता है। यहाँ दोनो अतद्भाव हैं। जिस तरह समुद्र और लहरोंके समझनेमे भिन्न भाव रह जाता है। लहरका वाच्य अलग है और समुद्रका वाच्य अलग है, फिर भी द्रव्य भेद नही है। इतनेपर भी कहते है कि समुद्रमे लहरें हैं, समुद्रमे लहरें हैं—यह भेद दूर नही होता, वह तो बना ही रहेगा। यह दिमागमे तब तक आता है जब तक एक समुद्रमात्र को नही देखा। केवल समुद्रपर दृष्टि देनेसे यह भेद खत्म हो जाता है। पर्याय हुई लहरें, उन्हे भिन्न समझनेपर यह प्रतीति होती है। समुद्रसे लहरोको जब तक लक्ष्यभेदसे भिन्न मान रहे एव देख रहे तभी तक यह अन्तर है। इसी तरह सत् और सत्तामे फर्क समझना चाहिए।

धर्म धर्मीमे मात्र दृष्टिभेद है—जब हम पर्यायदृष्टिसे देखते हैं तो भेद प्रतीत होता है। धर्म धर्मीके भेदसे देखनेपर वह प्रतीत है। जब द्रव्यकी विशेषता सोचते हैं तो यह गुण वाला है अथवा यह इस गुणसे युक्त द्रव्य है। सत्ता गुण है और सत् द्रव्य है। जब हम अभेदसे

देखते है तो उस समय अगर हमे केवल कपडा पहननेका लक्ष्य है तो कपडा उठाया और पहन लिया। लेकिन जब भेदपर दृष्टि है तो लाल, नीला, सफेद जो पसन्द होगा उसे पहनेंगे। कुछ मनुष्य ऐसे होते हैं कि जो सफेद है तो क्या और मैला है तो क्या ? उन्हे कपडा पहनने मात्र से मतलब रहता है, उनके अभेद हो गया। जब वस्त्रको भेदकी दृष्टिसे देखा तो यह सफेद है, यह पीला है, यह गुण इसका है आदि। यह अतद्भाव हुआ। अभेददृष्टिसे देखनेपर 'इसमे यह है' इस तरहका विकल्प कुछ नजर नही आता। समुद्र देखनेसे कुछ भिन्न मालूम नही पडता, किन्तु लहरोपर दृष्टि देनेसे ज्ञात होता है कि यह लहरें समुद्रमे उठ रही हैं। माँ को अपने बच्चेपर बडी ममता रहती है, तो वह उसमे गुण ही गुण देखती है। उसे दुर्गुणोसे कोई प्रयोजन नही। अतएव दुर्गुण भी उसके लिए गुण है वह मात्र पुत्रमे क्या है यह नही। दूसरे मनुष्य दुर्गुणोपर दृष्टि देते है तो उनको इसमें अमुक अन्नगुण है, यह भेद जच गया। जहाँ अभेदपर दृष्टि देते है तो एक स्वभाव दृष्टिगत होता है, किन्तु भेदपर दृष्टि देनेसे रागद्वेष आदि विभाव पर्यायोको या अन्य पर्यायो, भेदो या अशोको देखा जाता है। जब अभेदसे सामान्यको देखा तो चारित्र गुण आदि भी समाप्त हो जाते है। जब वस्तुको एक दृष्टिसे देखते है तो सत् और सत्ताका भेद नही रहता है। शकाकार जो सत् और सत्ता भिन्न मान रहे थे वह भेद खत्म हो जाता है और उनकी शङ्काका निरसन हो जाता है। अब इसलिए जब सत् कहते है तब सत्से सत्ता बनी है, यह भिन्न प्रतीत नही होता है।

मेरे सत्त्वविशेष भी मुझमे है—मैं भी सत् हू, मुझमे ज्ञान, दर्शन, शक्ति है, वह कहीसे मिली हो, यह बात नही है। आत्मामे आनन्द, ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य जो भी गुण है वह भिन्न नही है, किन्तु आत्माके ही उक्त गुण है। उन्हीको जब हम स्वभाव और ज्ञानकी दृष्टिसे देखते हैं तो भेद नजरमे आता है, और द्रव्यदृष्टिसे सब भेद समाप्त हो जावेंगे। यहा एक पूर्ण सत्यपर दृष्टि रहती है। जैसे हम एक पुस्तकको ही ग्रहण करते है। तो पुस्तकको चौकी नही कह सकते और चौकीको पुस्तक नही कह सकते। सर्वथा है ही और सर्वथा नही है, इस तरह नही कह सकते। सर्वथा कहना इसमे विधि नही है और सर्वथा निषेध नही है। भिन्न-भिन्न दृष्टियोसे जुदा-जुदा मालूम पडता है, किन्तु यह विधि निषेधोसे अनवस्थित है। ऐसे एक पदार्थकी खोज की जा रही है, वहाँ भेदको स्थान नही है। भेद तो भेददृष्टिसे देखने का है। अभेदमात्र देखनेसे वह सब बिला जाते हैं। मैं एक सत् हू, जितना हू उससे ज्यादा नही हू। कल्पना करके ही इसका अनुभव किया जा सकता है। लेकिन परकी जैसी कल्पना की वैसे ही पदार्थ बनते जावें, यह नियम असम्भव है। मेरा मकान, मेरी दुकान, मेरा पुत्र, मेरी स्त्री कहनेसे लाभ नही है। यह जाप (माला) तो २४ घटो ही दी जा रही है। बिना मालाके यह जाप चलती ही रहती है। इससे कोई सिद्धि नही होनेकी। यह तो उन्हीमें उल-

आने वाली है। इसे करोड एव अरब बार भी जप डालो तो कार्यकारी नही है। वह तो स्वत ही चल रही है, फिर भी अगर इसे सीमामे आबद्ध कर लिया जाय तो उपयोग धर्मकार्यमे लग सकेगा। सत्के स्वरूपको समझना, देखना, फिर भी कल्पना करे परपदार्थोकी चाह की तो दु:ख घटनेका नही।

अशुभ विचारोमे तो रक्षा ही नहीं—अशुभ विचारोमे कोई रक्षा नही है, किन्तु पाप का बन्ध ही है। शुभ भावोमे कुछ रक्षा होती है या बचाव है अर्थात् पुण्यबन्ध होनेसे कुछ अच्छी सामग्रियां पानेके अधिकारी होते है तथा शुद्ध भावमे पूर्ण बचाव है, आत्माका हित है। अतएव कुछ मेरा है, मैं ऐसा करूगा, मैं इनका स्वामी हू आदि विकल्प दु:खके ही कारण विचारकर इनसे हटनेकी कोशिशमे रहे। सुखके लिए राग करते है, कहते हैं ससार कठिन है, स्वय झूठे विषयभोगोको सुख मानकर उनमे रत होकर पुन: निम्न श्रेणीका दु:ख भोगना पडता है। इसीसे ससारसे उद्धार होना कठिन प्रतीत होता है। किसान लोग अपना गृह कार्य या अन्य विपत्तिके समय साहूकारसे रुपया ले लेता है। इसके पूर्व २००) रु० या ५००) रु० आदिकी साहूकारसे मजूरी लेता है, उससे स्वीकृति मिल जानेपर अन्य तरफसे निश्चित हो जाता है। समय आनेपर माँगने आया और साहूकार साहबने रुपया देनेकी मनाई कर दी तो वह खेदखिन्न होकर कहता है—'हाँ को मरे और नाईको जिये' अर्थात् तुम शुरूसे ही मना कर देते तो दूसरी जगहसे पहले प्रबन्ध कर लेते। अतएव नही वालेका जीवन दान है और हां करके बादमे छोडना पडा तो दु:ख ही है। इसी तरह इन विषयभोगोका काम है। इनमे जिसने हा हाँ का ही इरादा रखा उसकी तो अतिम समय इस लोकमे दशा बिगड जाती है तथा परलोकमे अनेक दु:ख भोगने पडते है। क्या रास्ता चलते या अन्यत्र धनहीन, अगोपाग हीन, परिवार हीन, दर-दरपर ठोकरें खाने वाले नजर नही आते ? यह किसी न किसी पापके ही तो कारण है। "ना" करते रहो तो दु:ख नही बढ़ेंगे। यह वस्तुयें तो वैराग्य लानेके लिए एक कारण होना चाहिए।

कोई किसीसे प्रेम नहीं करता—प्रत्येक स्वतन्त्र स्वतन्त्र है, कोई किसीका नही है। स्वार्थ सिद्ध नही हो पाया सो प्रेम गया और प्रेम गया सो स्वार्थ गया। बच्चेको ऊपर फेंकनेमे आप प्रसन्न होते हैं, किन्तु वह तो डरके मारे रो नही पाता, तो आप उसके दु:खको क्या समझेंगे ? वह मुंह बा देता है, आप समझते हैं कि हस रहा है तथा खिलाने वाला अपनी विषयकषायोको खिलाता है। एकका परिणमन दूसरेमे नही पहुचता। प्रत्येक अपना-अपना परिणमन परिणामोके अनुसार कर रहे हैं। सब कोई अपनी-अपनी बात बनाते है। सत् और सत्ता जुदे-जुदे नही हैं। पर्यायदृष्टिसे देखनेपर भेद नजर आता है तथा द्रव्यदृष्टिसे भेद नजर नही आता और अभेदका अस्तित्व स्थापित होता है। जो कि चिर स्थायी

है और रहेगा। यही देख लो ना, जैसे यह सफेद कपडा है। तो यहाँ बताओ कि श्वेत गुण और कपडा क्या भिन्न-भिन्न है ? देख लो प्रादेशिक भेद तो इनमे है नही कि कपडा अलग रखा हो व श्वेत गुण अलग रखा हो। हाँ अतद्भाव है अर्थात् जो कपडा है सो श्वेत गुण नही, क्योकि कपडा तो श्वेत, स्निग्ध, सुगन्ध आदि अनेक गुणोका अभिन्न अधिकरण है और श्वेत गुण अनेक गुणोमे से एक उसमे अभिन्न गुण है। जब पर्यायदृष्टिसे भाव भेदसे देखा जाता है तो यह कहा जायगा कि यह श्वेत कपडा है, इस कपडेका यह श्वेत गुण है सो इस दृष्टिमे तो अतद्भाव बन गया, किन्तु जब द्रव्यकी अर्पणा की तब यह देखा जायगा कि श्वेत कपडा, इस दृष्टिमे अतद्भाव मिट जायगा। इसी तरह जब पर्यायदृष्टिसे भाव भेदसे देखा जायगा तो कहा जायगा कि द्रव्य गुणवान है। यह द्रव्य है, इसका यह गुण है सो पर्यायार्थिकनयमे द्रव्य, गुण (सत्ता) का अतद्भाव बन जायगा, किन्तु जब द्रव्यकी अर्पणा की तब यह देखा जायगा कि द्रव्य ही वैसा है, इस दृष्टिमे अतद्भाव मिट जायगा। इस तरह द्रव्यदृष्टिमे भेद विलीन होनेसे अतद्भाव (भावभेद) प्रतीति विलीन हो जाती है। भेद प्रतीति विलीन होनेसे अर्थान्तरता खतम हो जाती है। इस कारण यही निर्णय रखना कि समस्त ही वह द्रव्य एक होकर ही रहता है। हाँ पर्यायदृष्टिमे अतद्भावरूप भेद प्रतीत होता है, सो उस समय भी यही श्रद्धा रखना कि जैसे जलसे लहर भिन्न नही है, इसी तरह द्रव्यसे गुण भिन्न नही है और सत्से सत्ता जुदी नही है।

वस्तुको भेद या अभेददृष्टिसे देखा जाता है—अभेददृष्टिसे देखनेपर सत् और सत्ताका भेद तो खत्म हो गया और अभेद खडा हो गया तथा अभेदकी दृष्टिसे देखनेपर भेद उठ खडा होता है। भेदके कारण प्रतीति भी खत्म हो जाती है। समुद्रमे लहरोपर दृष्टि गई कि यह लहरें कितनी चचल है, किस तरह सर्पकी चाल जैसी नीची-ऊँची उठती है। यह कल्पना करने पर भेद नजर आ जायगा। भेदकी निगाहसे देखनेपर भेद मिलेगा और अभेदकी नजरसे देखने पर अभेद मिलेगा। पर्यायदृष्टिसे देखनेपर जलकी गति जो समान न रहकर एकके बाद एक हवाका स्पर्श पाकर पानीकी दशा जो उत्पन्न होती रहती है, उन्हे लहरें कहते है तथा जब लहरोपर दृष्टि न देकर एकाग्र वस्तुको देखना है तो उसे समुद्र कहेगे। यहाँ अतद्भाव है। भेद की दृष्टिसे देखनेपर दिख जायगा, किन्तु उसे जुदा नही कर सकते, उसी तरह आत्मामे राग-द्वेष विभाव अतद्भाव हैं। राग अलग है और आत्मा अलग है। उसी तरह द्रष्टाको देखेंगे तो राग चल रहा है, किन्तु उपयोगमे राग नही है, द्रव्यदृष्टिसे अभेद दिखता है। जब हम भेद प्रतीतिसे देखें 'इसमे यह है' तो यह भेद उठ खडा होता है। समुद्रमे तैराक तैरने उतरता है तो उखडता और डूबता है, यह दो स्थितियाँ बराबर चालू रहती है। जब भेद भी उठ खडा हुआ तो यहाँ भी अयुत सिद्धमे ही भिन्नता है। अयुत अर्थात् अलग न रहकर भेद देखनेपर

भिन्नताकी जो उत्पत्ति है वह दिखने लगती है।

चोज एक है, किन्तु लक्ष्यसे भेद है—एक समय अकबर बादशाहने बीरबलसे कहा कि इस नगरमे सज्जन कितने है और दुर्जन कितने है? तो बीरबल उत्तर देता है कि उतने ही अर्थात् जितने सज्जन है उतने ही दुर्जन है। तब बादशाहने कहा कि यह कैसे सम्भव है? तब बीरबलने एक तरकीब सोची। एक तरहके दो समान चित्र बनाये और उसमेसे एक चित्र चौराहेके घटाघर पर टाग दिया, और उसके नीचे सूचना लिख दी कि इस चित्रमे जो जो खराबियाँ होवें, वहाँपर देखने वाले निशान लगा देवें। अब जो भी देखने आवे तो कोई इसकी आखें खराब बतानेके लिये निशान लगा दे, कोई नाक, कोई कान, कोई अगुलियोंपर, घुटनोपर आदि सर्वचित्रको खराब बता दिया। साथ वाले दूसरे चित्रको भी उसी चौराहेपर उसके बाद टागा गया तो उसके नीचे सूचना लिख दी गई कि इस चित्रमे जहाँ जो सबसे अच्छा हिस्सा जचे, उसपर निशान लगा दीजिए। उस चित्रपर भी मनुष्योंने निशान लगाये। तो कोई सोचे कि इसकी आँखें क्या बढिया हरिण जैसी हैं, नाक तोता जैसी है, अगुलियाँ क्या ही अच्छी बन्दरिया जैसी लगती हैं आदि। इस तरह घुटने, हाथो, सिर, कान, गाल सब जगह निशान लगा दिये, इस तरह पूरे चित्रको अच्छा बता दिया। बीरबल अकबर बादशाह के पास आया और कहने लगा कि महाराज! यहाँपर सभी दोषदृष्टा है, और सभी गुणदृष्टा हैं। देख लीजिए आप एक ही तरहके दो चित्रोको सभीने अच्छा और सभीने बुरा बता दिया। यहाँ केवल दृष्टि ही लगाई गई और कुछ नही परख सके।

कल्पनासे ही जीव बरबादी कर लेते—इसी तरह यह ससारके मनमोहक पदार्थ एक व्यक्तिके लिए अपने सर्वस्व जैसे मालूम पडते हैं, इनके बिना मानो वह रह नही सकता। यहाँ तक कि उनका बिछुडना हुआ तो वह अपने प्राणोकी भी आहुति दे देता है। एक रईस छात्रने आत्महत्या कर ली। बादमे पता चला कि वह इसलिए मरा कि उसकी जिस लडकीके साथ शादीकी इच्छा थी उस प्रेमिकाकी शादी अन्यत्र हो गई थी। एक व्यक्तिके लिए यही लुभावने पदार्थ जहरसे भी ज्यादा अप्रिय लगते हैं। वह सोचता है कि जहर तो एक ही भव मे दुःख देगा, किन्तु इन विषयभोगोका सम्बध भव-भवमे दुःख देकर नचायेगा। यह सोचकर अनेक रानियो या एक स्त्री तथा धन वैभव लाखोको छोडकर आत्मध्यानमे प्रीति करता है। यह पदार्थ उसे अप्रियका मतलब शत्रु नही हो जाते, किन्तु उनकी तरफसे मोहदृष्टि हट जाती है। निजका लडका पहले अति प्रिय लगता था, जिसके बिना भोजन करना भी कठिन प्रतीत होता था, वही खटपट हो जानेपर दृष्टि बदल जानेसे पराया पुत्र जैसा मालूम पडने लगता है। बज्रभानुको स्त्रीका कितना मोह था? शादीके १० दिन बाद जब वह पीहर जाने लगी तो बज्रभानुसे नही रहा गया, और साथ चल दिये। लेकिन देखिये १ घटा भी नही होता, घटा

तो दूर दो मिनट भी नही लगते, स्त्री और साला सामने खडा है। वहीपर उनके सामने नग्न दिगम्बर मुनि हो घोर तपस्यामे रत हो जाते हैं। इन भावोका प्रभाव विचित्र है। संसारसे उदास होकर कर्म खिपानेमे सलग्न हो जाते है। राग किसीसे लेश मात्र भी नही रह जाता है। सम्यग्दृष्टि पुरुषकी दृष्टिमे जो कीमत कागकी कीटिकाकी है वही कीमत तीन लोककी सपत्ति की है। यहाँ राग वस्तुसे नही, अपनी रुचिवश राग है। काश्मीरके भूतपूर्व प्रधानमत्री श्री शेख अब्दुल्ला भारत वालोको, काश्मीरके मनुष्योको कितने अच्छे लगते थे ? लेकिन जब उनकी कूट-नीतिका प्रकाश हुआ तो उनकी जानपर आ बनी, जिससे वे छिपते फिरे और उन्हे पकडनेकी सूचना निकाल दी गई। जो चाहते थे उन्हीकी विरुद्ध परिणति हो गई।

राग रहने तक ही विषय मोहक लगते—जब तक राग है तभी तक यह पदार्थ मोहक मालूम होते हैं। राग हटते ही जहरसे भरे सुवर्णके घडेके समान मालूम पडने लगते हैं। यह तो पर्याय है, इसीपर क्यो लुभा जावे, आज है, कल नही है। तुम इन्हे नही छोडोगे तो वह तो तुम्हे छोड ही देंगे। अतएव इनसे मोह करने वाला बुद्धिमान नही। वृद्धावस्था आनेपर इन्द्रियोकी भोग शक्ति क्षीण हो जाती है तब सब भावनायें ताकपर ही रखी रह जाती है। उत्तमसे उत्तम भोजन खाना चाहते है, किन्तु पचानेकी शक्ति नही है। पैर चलनेमे समर्थ नही रहते, आँख काम नही देती, कानोसे सुनते नही, नाकसे सुगन्ध, दुर्गन्धका ज्ञान नही होता, लाठीका सहारा लेना पडता है। भेददृष्टि एव अभेददृष्टिसे पदार्थोंका यथार्थस्वरूप जान लेनेपर उनकी निरर्थकता समझी जा सकती है। सत्का समझना अति आवश्यक है। सत् और सत्ता को समझनेके लिए विभिन्नता उत्पन्न हो गई। उस समय समझनेकी दृष्टिसे ही वह भेद उत्पन्न हो सकता है। समझा हुआ पदार्थ भी तो उसीका धर्म है। सत् और सत्ता दोनो द्रव्यसे भिन्न नही है। द्रव्यको ही अश रूपसे ग्रहण किया था। जैसे समुद्रमे कल्लोलें उखड रही है, किन्तु वह कल्लोलें समुद्रसे भिन्न नही हो गई। समुद्र पूरा है वह। सत्में भत्र दृष्टि की तो सत्ता देखी। वैसे तो सत् अभेद है। यह स्वीकार किया तो द्रव्य स्वय ही सत् सिद्ध हो गया।

किसीकी सत्ता अन्य साधनसे नहीं—सत् या सत्ता किसी साधनान्तरकी अपेक्षासे हुआ सो नही है। द्रव्यमे जो उत्पाद है वह भी किसी साधनान्तरकी अपेक्षासे नही है तथा जो द्रव्यमे व्यय है वह भी किसी साधनान्तरकी अपेक्षासे नही है और द्रव्यकी जो ध्रौव्य पर्याय है वह भी किसी अन्य साधनान्तरकी अपेक्षासे नही है। यह द्रव्य वस्तु ही इस तरहके स्वभाव वाला है। इसीको स्वतत्रता कहते है। इसमे जो साधारण और असाधारण गुण है वह परि-णमते चले जाते है। यह स्वतत्रता स्वयसिद्ध अधिकार है। जिस तरह आजादी हमारा जन्म-सिद्ध अधिकार है उसी तरह वस्तुकी सत्ता जन्मसिद्ध अधिकार है। उसमे विभावकी कोई विशेपता आवे वह स्वभावसिद्ध नही है। वह जरूर उपाधि है। विभावोपर दृष्टि क्यों हो

जाय ? वस्तुका अस्तित्व सिद्ध होनेपर द्रव्य स्वयसिद्ध है। यह पदार्थका सत् स्वरूप है जो ऐसा नही मानना चाहते वे पर समय हैं, भेदबुद्धि व पर्यायबुद्धि है। उनके तीन शब्दोका अर्थ बडा महत्त्वपूर्ण जचा है—जानना, मानना और चाहना। प्रथम कोई बात जानना चाहिए तथा जानकर उसे मानना चाहिए और मान लेनेपर उसके अनुरूप आचरण करना जरूरी हो जाता है सो उसरूप चाह होनी चाहिये। जो पदार्थका यह सत्य स्वरूप जानकर मानते नही और मानकर चाहते नही उसे परसमय ही कहना चाहिए। क्योकि यह अपनी आत्माका स्पर्श करना नही है तथा परपदार्थमे ही बुद्धि दौडाता रहता है। जिसे सत् या निज सत्की खबर नही, उसे यह भान भी नही रहता कि मैं कौन हू, कहासे आया हू, मुझे क्या करना है, मेरा क्या कर्तव्य हो जाता है ? अगर इन प्रश्नोका सही समाधान कर लेवे तो सुख, शातिकी धारा अपनेमे बहा सकता है। मैं शुद्ध चैतन्यस्वरूप आत्मा हू। नरक निगोद, तिर्यञ्चगतिमे किस-किस योनिमे भटका हू ? हमे अब आत्मकल्याण करना चाहिए वही श्रेयस्कर है। अतएव शास्त्र स्वाध्याय आदिके द्वारा तत्त्वज्ञान जानकर उसमे आनद लेता है।

किसीका काम कोई दूसरा नहीं कर सकता—कुछ लोग सोचते है कि इन्होने हमारा कार्य बना दिया। इनके बिना यह कार्य नही हो सकता था।' यह बडे धन्यवादके पात्र है आदि। जैसे कुछ लोग कहते हैं कि खुदकी मर्जी बिना पत्ता भी नही हिलता अर्थात् जाननेकी बात मर्जीमे ले गये। कोई इसे जानते हैं कि भगवानके ज्ञान बिना पत्ता नही हिलता, तभी तो बढकर मर्जी तक पहुचे और ऐसा कहते है। ऐसा ही है तभी इस तरह होता है। ज्ञानमे आया तब ज्ञेय हुआ, इससे ऐसा बन रहा है यह नही। ज्ञेय पदार्थकी जो सत्ता है वह इसमे दिखाया है। जैसे सत् है, वह एक है, अभेद है, अविनाशी है। इस तरह अभेददृष्टि देखनेसे वैसा नजर आता है। तत्त्वकी बात जानो। दृश्य समागम तो कीचड है, इससे सम्बध जुडा हुआ है। यहा केवल समझना ही है, नाममात्र ही करना है और कुछ नही। यह है, कुछ नही। बडे-बडे महापुरुषोने राग किया है। लक्ष्मणने रामचन्द्रजी की सेवाके लिए क्यासे क्या नही किया ? बलभद्रका श्रीकृष्णके प्रति कितना अतुल स्नेह नही था ? यहा तो उतना राग करके ही नही जानते, फिर भी उनका वर्णन शास्त्र करते हैं। ऐसे-ऐसे महापुरुष भी सिद्ध होगे, चक्रवर्ती, तीर्थ करके पद आदि श्रेष्ठ पद पावेंगे एव रामचन्द्र जैसे महापुरुष उसी भवसे मोक्ष गये है। यहाँ तो न पक्का राग ही है और न वैराग्य ही है। केवल ढचरामात्र चल रहा है। भैया ! जरा द्रव्यके स्वरूपको तो देखो—सब शुद्ध सत्ताक है, सब स्वतत्र-स्वतत्र सत् है। सब स्वय सत् हैं। जो ऐसा नही मानता है वह बहिरात्मा है, परसमय है।

वस्तुके पदार्थ बोधसे ज्ञानी जीव आत्मस्वरूप जानते है। पदार्थोंकी सत्ता अनादि अनत है। उसके नाश होनेका कोई जिक्र नही हो सकता। वह उत्पाद व्यय ध्रौव्य वाले

होनेपर भी द्रव्य सत् है, इस तरह प्रकट करते कि उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य युक्त होकर भी अपने आपमे देखते हुए विशेप तौरसे प्रकट होते है। इसीको आचार्य श्री कुन्दकुन्द महाराज स्पष्ट करते हैं।

सदवट्ठिय सहावे दव्व दव्वस्स जो हि परिणामो।
अत्थेसु सो सहावोठिदि सभवणास सबद्धो ॥९९॥

स्वभावमे अवस्थित जो सत् है वह द्रव्य है और द्रव्यकी जो स्थिति उत्पाद, व्ययसे ऐक्यात्मक परिणाम है सो अर्थमे स्वभाव है। स्वभावमे अवस्थित जो द्रव्य है वह सत् है। सत् होनेमे स्वभावमे स्थित है और स्वभावमे स्थित होनेसे सत् है। ऐसा वह सत् द्रव्य है। विशेपण कही-कही हेतु बन जाया करते है। स्वभावमे अवस्थित होनेसे सत् है। पदार्थोमे स्वभाव क्या है? जो द्रव्यका परिणाम है वह उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य सहित है, जो कि द्रव्यो मे पाया जाता है। वह सत्का लक्षण ही स्वभाव उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य है। कोई कहे द्रव्योका परिणमन एक घटा क्या एक भी समय रुक जावे, परिणमन नही करे, थक गये होगे। तो वह न अनादिकालसे परिणमन करनेमे रुके है और न रुकेंगे। वह विराम नही लेगा और हापड-धूपड शैतानियतका काम भी नही करेगा याने किसी दूसरे रूप भी न परिणमेगा। प्रत्येक द्रव्यमे उत्पाद होता है और व्यय होता है, फिर भी अवस्थिति रहती है। इस तरह वह ध्रौव्य रहते हुए भी अपने स्वभावमे परिणाम रहे है। यह त्रितय प्रत्येक द्रव्यका स्वभाव ही है।

वस्तुविभाग—वस्तुमे दो विभाग किये गये है—(१) विष्कम्भ और (२) आयत। जिसका तात्पर्य द्रव्यपर्याय व गुणपर्याय बताना है। जैसे कि प्रत्येक वस्तु समस्त रूपमे एक ही है, फिर भी अपना कोई न कोई आकार (क्षेत्र) लिये तो है ही, सो उसके विस्तारके क्रम की प्रवृत्तिमे रहने वाले सूक्ष्म अश है वे ही प्रदेश कहलाते हैं। उसी प्रकार प्रत्येक वस्तु सामस्त्येन एक है तो भी चूकि वस्तुका उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यात्मक परिणाम स्वभाव है। अतः पूर्वापरकालमे जो उस वस्तुका प्रवाह चलता है, उसके क्रमकी प्रवृत्तिमे रहने वाले सूक्ष्म अश है ही, उन्हे परिणाम कहते है। जहाँ क्रम है वहा परस्पर व्यतिरेक (भेद) होता ही है। अभिन्न एक वस्तुमे भी विवक्षावश जो क्रम स्थापित किया जाय, उसमे भी व्यतिरेक है। सो प्रदेशोमे परस्पर व्यतिरेक क्रम जाना, उससे तो विष्कम्भ क्रम बना और परिणामो (गुणपरिणमनो) मे परस्पर व्यतिरेक क्रम हुआ, इससे प्रवाह क्रम बना।

परिणाम अपेक्षासे नानारूप है—जो द्रव्यका परिणाम है वह क्या है? परिणाम वह है जो उत्पाद, व्यय ध्रौव्यात्मक स्वभावसे रहे। वह द्रव्यात्मक है। अब उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य इन तीनको सत्के दो विभागो द्वारा घटाकर दिखावेगे। सत् द्रव्य, पदार्थ प्रत्येक द्रव्य गुणात्मक है और प्रदेशात्मक है। प्रदेश भी नित्य है और गुण भी नित्य है। प्रदेशकी चर्चा

पहले करते है। वादमे गुण या परिणामकी चर्चा की जायगी। द्रव्य वस्तु अर्थात् द्रव्य जो एक पदार्थ है उसे उपमा क्षेत्रकी दी है। वस्तु मकानको भी कहते है। द्रव्य एक वस्तु है। वह समस्तरूपसे एक है। यहा क्षेत्रकी दृष्टिसे प्रधान करके देखा गया द्रव्य है। वह द्रव्यात्मक क्षेत्रात्मक, कालात्मक और भावात्मक—इन चारोकी मुख्यता कर देखनेसे चार भेद नजर आते है। द्रव्यकी अपेक्षासे देखनेपर पिण्डरूप नजर आता है। वह एक अभेदरूप नजर आता है। द्रव्यदृष्टिसे घटाकर दिखाया गया तो पिण्डरूप दिखा क्षेत्रदृष्टिसे देखनेपर जैसे एक यह चौकी है। २० इच लम्बी, १५ इच चौडी है, इस तरह चौकी नजर आयी। इसी प्रकार द्रव्य प्रदेशोके रूपमे जाना गया। जब हमने कालदृष्टिसे देखा, पुरानी अवस्था है जीर्ण-शीर्ण है और अथवा यदि नवीन है तो नवीन है, इसी प्रकार द्रव्य भी पर्यायमे जाना। भावदृष्टिसे देखा तो यह किताब सफेद है या चौकी लाल है अथवा अमुक-अमुक गुण वाली यह वस्तु है। इसी प्रकार द्रव्य गुणात्मक जाना। क्षेत्रदृष्टिसे प्रदेश नजर आये और प्रदेशपुञ्जको ही वस्तु कहते है। जैसे द्रव्य वस्तु है, वह पूर्ण रूपसे एक है। आत्माका क्षेत्र पिण्डरूपसे एक है। आत्माका प्रदेश समस्त रूपसे एक है। क्षेत्रमे सम्बन्धको जाननेके लिए चौडाई रूपसे देखनेमे विष्कम्भका क्रम बना।

प्रदेशोके रूपमे भेद व अभेद—उसमे रहने वाले प्रदेश हैं। जब उसका विषकम्भ क्रम देखा तो हमे एक-एक प्रदेश समझमे आये। प्रदेशकी निष्पत्तिमे रहने वाले क्रमसे है। जैसे एक प्रदेश यह उसके आगे यह प्रदेश है, इस तरह समझना चाहिए। एक कमरा है इसमे एक आकाश है। अगर उसके विस्तारमे क्रमसे गये और कहे कि यह इतना है, यह इतना है तो उसके हिस्से हो गये, यह १० हाथ है तो एक-एक हाथका क्रम भी तो बन गया। काल द्रव्य और परमाणुको छोडकर शेप सभी द्रव्य विस्तारात्मक हैं। आकाश निरवधि है। धर्म-द्रव्य, अधर्मद्रव्य ३४३ राजू प्रमाण हैं, ३४३ घनराजूमे जितना प्रदेश है, उतने ही आत्मामे प्रदेश देखे जाते है। वह एक अरूप है। अब उसीमे परिणामकी बात चलती है। द्रव्यकी जो वर्तना है वह भावदृष्टिसे समस्त एक है। समस्त गुणोका एक प्रतिनिधिस्वरूप द्रव्यका जो स्वभाव है वह एक है। फिर भी प्रवाहकी क्रमकी प्रवृत्तिमे रहने वाले सूक्ष्म अंश है वे परि-णाम कहलाये। द्रव्य वृत्तिसे गुण और पर्याय लिया। जब गुणदृष्टिसे देखा तो उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य गुणमे लगाये जावेंगे और जब पर्यायरूपसे देखा तो पर्याय सामान्य ध्रौव्य और पर्याय-विशेष उत्पाद व्यय युक्त हो जावेंगे। अब प्रथम प्रदेशोमे उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य घटावें। गुण जो होते है, उसमे उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य होता है, यह तो प्राय. प्रसिद्ध है।

प्रदेशो व पर्यायोमे उत्पाद, व्यय—अब प्रदेशोमे और पर्यायोमे उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य बतलावेंगे। जितने प्रदेश होगे, उसी तरह क्रम भी मान्य होगा। चौकी विस्तारमे ले तो यह

एक है, इसमें विस्तार क्रम भी है। एक प्रदेशको छोड दूसरेपर आये तो पूर्व पर्यायका व्यय हुआ और नवीनका उत्पाद हुआ। एक गज कपडेमे एक-एक सूत्र मिला तब वह बन पाया है। यह क्रम जो है परस्परमे व्यतिरेक सहित है। अगर उन सूत्रो द्वारा बनाये कपडेको गज नही मानोगे तो एक गज ही एक सूतसे बन जाना चाहिए। इससे यह भिन्न नही है और क्रम भी है। दूधमे जो चिकनाई है वह दूधके ही अश हैं। वह अश १ अश, २ अश, ३ अश आदि करके दिमागमे न्यारे-न्यारे है। अगर उन्हे बुद्धिमे जुदे-जुदे न करो तब वह क्या एक या दो अश इकट्ठे रूप ही रह जायेंगे। परस्परमे प्रदेश व्यतिरेक है। आत्मामे जो एक प्रदेश है वह दूसरा नही है तथा जो दूसरा है वह तीसरा नही है, इस तरह सब प्रदेशोके बारेमे समझना चाहिए। अगर यह क्रम न हो तो आत्मा कालद्रव्यके समान एकप्रदेशी ही रह जायगा। छात्रोके समूहको बैंच कहते है। अगर बैंचको ही एक लडका समझ लिया गया तो फिर अलग लडकोंको नही बुला सकोगे। इसलिए उनमे एक-एक मिल करके जो छात्र है वह बैंच है। इसी तरह पर्याय एकके बाद एक होती रहती हे तथा द्रव्य स्थायी बना रहता है तथा परिणामोके परस्परमे व्यतिरेक निबन्धन द्रव्य कर्म और नोकर्मकी जो सामान्य पर्याय हैं वह एक है। लेकिन पर्याय विशेषोमे भेद पडा हुआ है, इससे एक है व अनेक है।

संख्येयोंमे क्रम व अक्रम—प्रदेशोमे उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य पडा हुआ है। यह क्षेत्र इतना लम्बा चौडा विस्तार वाला है, वह अपने ही स्थान स्वरूपमे उत्तररूपके प्रदेशोसे उत्पन्न होता और पूर्वरूपसे व्यय होता है। यह क्रम उत्पाद व्यय बिना नही बन सकता है। क्षेत्रका काल क्रम प्रदेश बिना नही बन सकता। दस लडकोके समूहमे से एकके बाद एक बताया तो पूर्वका स्थान व्यय हो गया और स्वस्थानका एक उत्पाद हो गया। वही प्रदेशोमे पूर्व रूपसे उच्छिन्न तथा उत्तररूपसे उत्पन्न है। अगर छात्रोको बैंच (छात्रमण्डल) तरफसे देखें तो उत्पाद व्यय नही होगा। पदार्थोंमे जो प्रदेश देखा वह पूर्वरूपसे व्यय तथा उत्तररूपसे उत्पन्न है। उच्छिन्न और उत्पन्न दोनो एक साथ चलते है। लेकिन यह ढग सदैव एकसा चलता रहता है तथा बहुप्रदेशी प्रत्येक द्रव्यके प्रदेश एक दूसरेमे सटे हुए है, निरन्तर है। कल्पना करके रहनेपर उसमे क्रम है। दोनोमे उत्पाद व्यय है, किन्तु सूत्र सबमे स्पर्श करता हुआ सूचित होता है। जैसे एक मालामे बहुतसे दाने हैं, वहाँ एक छोडा और दूसरा लिया तो छोडने वालेका व्यय हुआ, और आगे आने वालेकी उत्पत्ति हुई तथा सम्पूर्ण दाने एक धागेमे पिरोये हुए हैं, इसलिए वे सब एक मालारूप भी है। इसी प्रकार पूर्वरूपसे उच्छिन्न और उत्तररूपसे उत्पन्न यह क्रम प्रत्येक पर्यायमे, प्रदेशोमे पाया जाता है। द्रव्यदृष्टिसे वह प्रदेश अनुत्पन्न है और अप्रलीन है। अनुत्पन्न और अप्रलीनका तात्पर्य न उत्पन्न है और न प्रलीन है। इस तरह ये प्रदेश उत्पाद, व्यय एव ध्रौव्यात्मकपनेको धारण कर रहे है।

सर्वत्र स्याद्वादका प्रसार है—यहा भी उत्पाद व्यय है। जैनधर्मके यह तत्त्व अटल है जो कि समन्तभद्राचार्य जैसे दिग्गज महारथीके पाससे निकलकर यह स्याद्वाद एक दूसरे आचार्योंके पास पहुचता रहा है, और वह स्याद्वाद जैसाका वैसा ही स्थिर है। यह स्याद्वाद अखण्डित है। कोई कहे कि यह लडका हमारा है। तो प्रश्न हे कि वह लडका भिन्न है या अभिन्न है। अगर भिन्न है तो वह सर्वथा तुम्हारा नही बन सकता और अगर अभिन्न कहते हो तो लडका या आप दोनोंमे ही वह एक होना चाहिए या जिसका है उसको ही अकेला होना चाहिए। एक नष्ट हो जायगा, एक ही बचना चाहिए। स्याद्वाद बिना न तो परमार्थ चल सकता है और न इहलोकका व्यवहार चल सकता है। अकलक नाटकमे यही तो दिखाया है। बौद्धोकी नगरीमे एक सेठजी रहते थे, जो कि क्षणिकको मानते थे। सेठजी की गाय ग्वाला चराने ले जाया करता था। महीना पूर्ण होनेपर ग्वालेने सेठजी से चराई मागी। सेठ जी ने कह दिया कि जो गाय तुम चराते थे वह अब कहाँ है ? वह तो दूसरी ही गाय है तथा तुम भी दूसरे ग्वाले हो। ग्वालेको जब चराई मिलती नही दिखी तो वह भी चालाक था। उसने उपाय खोज निकाला और गायको ग्वालेने अपने घर बाध लिया। अब सेठजी के घर गाय नही आयी तो वे ग्वालेके यहाँ पहुचे और कहा कि हमारी गाय लाओ। ग्वाला बोला कि जो गाय आपने मुझे सौंपी थी वह तो खत्म हो गई और यह तो दूसरी ही गाय है तथा जो ग्वाला था वह भी गुजर चुका, यह तो दूसरा ही ग्वाला है। यह सुनकर सेठजी ने सोचा कि २००) रु० की गाय जा रही है तो हाथ जोडने लगे और कहा कि वही मेरी गाय है और तुम भी वही ग्वाले हो। मेहरबानी करके हमारी गाय हमे दे दो। इसपर ग्वालेने कहा कि वही तुम्हारी गाय है तो तुम भी वही सेठजी हो, पहले हमारी चराई यहाँ रख दो तब गाय मिलेगी। सेठजी ने विवश होकर ग्वालेकी चराई चुकाई और अपनी गाय वापस ले ली। तब से उन्हे प्रत्येक पदार्थ क्षणिक न माननेकी शिक्षा मिल गई।

सर्वथा क्षणिकता हो तो आपत्ति—अगर इस तरहसे क्षणिक प्रत्येक पदार्थ मानने लगें तो द्रव्यका द्रव्यत्व, स्थायित्व ही समाप्त हो जायेगा। यह क्षणिक सिद्धान्त साक्षात् व्यवहारमे भी नही टिक सकता तब और आगेकी कल्पना करना तो असभव है। जहाँ कि उनका प्रवेश नही है। कोई हैरान होकर मानने लगते हैं कि जीव तो है, किन्तु भौतिक है। मरनेपर समान नष्ट हो जायगा, उनका यह मत भी खण्डित हो जाता है कि जब तक जियो तब तक मौजसे जियो और मौज उडाओ। अगर ऐसी बात होती तो वही क्यो बौद्धमे मठ बनाकर या अन्य प्रकार व्यावहारिक सभ्यतादि धर्म कार्योंको करते ? प्रत्येक द्रव्य सत् है और वह उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यात्मक सिद्ध है। अत: एक परलोकको सामने रखकर ही कोईसा कार्य करना हितकर है। अब यहा प्रदेशोंमे क्रम निबन्धनक उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य

देखिये और परिणामोमे भी क्रम निबन्धनक उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य देखिये—जैसे कि वस्तुके वे प्रदेश अपने स्थानमे प्रदेश स्वरूपसे तो दृष्टिमे उत्पन्न हुए और पूर्व प्रदेश रूपसे उच्छिन्न हुए तथा उस वस्तुमे सर्वत्र परस्पर अनुस्यूतिसे सूत्रित एक प्रवाहरूपसे तो वे प्रदेश न उत्पन्न है, न उच्छिन्न है, अतः ध्रौव्य है। इस तरह उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यात्मक अपने आत्मा को धारण करते है। इस तरह विष्कम्भक्रम हुआ। इसी तरह उस वस्तुके वे परिणाम (गुण-परिणमन) अपने समयमे स्वरूपसे तो उत्पन्न है और पूर्व परिणामके रूपसे विलीन है और द्रव्यदृष्टिमे चूंकि सर्वत्र परस्पर अनुस्यूति (निरन्तर प्राप्ति) से सूत्रित एक प्रवाहरूपसे तो वे अनुत्पन्न है और अविलीन हैं, न उत्पन्न है, न विलीन है, अतः ध्रौव्य है। इस तरह वे परिणाम भी उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यात्मक आत्माको धारते है तथा जैसे कि वस्तुमे पूर्व प्रदेशके उच्छेदरूप जो सीमाका अन्त है वही तो उत्तर प्रदेशका उत्पादात्मक है और वही परस्पर अनुस्यूतिसे सूत्रित एक होनेसे उभयात्मक है अथवा ध्रौव्यात्मक है।

विष्कंभक्रम व व्यञ्जनपर्याय—प्रदेशोंके उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यके प्रकारमे कालकी दृष्टि नही लगाना चाहिये, क्योकि यह विष्कम्भक्रम बताया जा रहा है। कालक्रमसे तो परिणाम (परिणमन) का विवेचन होता है। विष्कम्भक्रमकी भाँति परिणाम क्रममे भी देखें—वस्तुमे पूर्वपर्यायके उच्छेदनात्मक जो सीमाका अन्त है यही उत्तरपर्यायका उत्पादात्मक है और वह ही परस्पर परिणामोकी अनुस्यूतिसे सूत्रित एक प्रवाह होनेसे उभयात्मक है अथवा ध्रौव्य है। इस परिणमनमे दृष्टि गुणपर्यायोमे लगाना चाहिये। विष्कम्भक्रममे व व्यञ्जन-पर्यायमे कुछ अन्तर है। विष्कम्भक्रममे तो परिवर्तन नही और व्यञ्जनपर्यायमे परिवर्तन देखा जाता है। कल्पना करो कि इस जीवद्रव्यमे पूर्वमे मनुष्य थे और देव हो गये। तो वहा अनेक वैभव पाया, उसमे रमते रहे। बादमे देवसे मनुष्य होना था किन्तु कुछ करनी बिगड गई तो पचमकालमे ढकेल दिया कि चलो वहाके दुःखोको भोगो। लेकिन यह दुःख भी इसी मनुष्यगतिसे टलता है और स्वाभाविक सच्चे सुखको प्राप्त कर सकते है। पचमकालमे भी शरीरकी सहनन शक्ति कमजोर है तब भी इस पचमकालमे शक्तिको न छिपाकर भी व्रत, सयम, एकादश प्रतिमायें तथा महाव्रत धारण किये जाये और उनका विधिवत् पालन किया जाय तो उनका अच्छा फल मिलेगा।

उत्पाद व्ययकी मित्रता—जब देवगतिसे मनुष्यगतिमे आये तो उच्छिन्न और उत्पाद दोनो एक साथ होते है। पहले देवपर्याय थी, फिर मनुष्य हुआ, इसमे समयका भी अतर नही हुआ। क्योकि जिस समय देवपर्याय व्यय हुई उसी समय मनुष्यपर्यायका उत्पाद हो गया। इस तरह यह उत्पाद व्यय अनुस्यूति सूचित है। जैसे पानीका प्रवाह सतत एक गतिसे बहता रहता है उसे कही रुकनेकी जरूरत नही है, थोडा भी अन्तर नही पडता है उसी

तरह पर्यायोका एक प्रवाह है जो सदैव चलता रहता है, कही भी विराम लेनेका नाम नही लेता, बीचमे भङ्ग भी नही है। वह पर्याये विशेष-विशेष अनुस्यूति सूत्रसे सूत्रित है। पर्याय सामान्य व्यापक है और पर्याय विशेष व्याप्य है। अगर उन पर्यायोमे भेद नही किया जावे तो इस तरह देखना चाहिए कि वह कभी उत्पन्न ही नही हुई। इस तरह वस्तु अपने आपको उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य सहित बनाता है। पूर्व प्रदेशका जहाँ उच्छेद है, वहाँ एक प्रदेशकी जो समाप्ति है, वही सीमाका अन्त है। जो सीमाका अन्त कहो या उच्छेदक कहो वही उत्तरके उत्पादरूप है, और वही सीमा पूर्वापर प्रदेशकी अनुस्मृतिसे सूचित है सो वही ध्रौव्यरूप है।

वीतराग महर्षियोकी प्रतिभा—दिगम्बर जैन महर्षि कितने सम्पन्न थे, इसका हम अनुमान ही नही कर सकते। यहाँ क्षेत्र और पर्यायोकी तुलना करते हुए उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य घटाना है। यहाँ व्यय शब्द शोभा नही देता, इसलिए उच्छेद शब्दोको अधिक दर्शाया है। मान लो यह क्षेत्र है, इसमे विष्कम्भक क्रम लगाया। यह जिस प्रदेशपर पहुचा उसका उत्पाद हुआ, वह भवसे अनुस्यूति सूत्रित है। जिस तरह मालाका धागा टूट जानेसे एक-एक दाना करके वह बिखर जाती है, फिर वह पूर्ण माला नही कहला सकती उसी तरह कोई कहे कि हमे आत्मामे से एक ही प्रदेश दे दो, तुम्हारा इसमे कोई खर्च नही होगा और न कुछ बिगडेगा। केवल समुद्घात करते समय एक ही प्रदेशकी कमी तो पडेगी। यह असभव है, क्योकि जो पूर्व प्रदेशकी सीमाका आदि है वही अन्त है। जो अत है वही अन्यका ,आदि है या उत्तर का उत्पाद है। जो एक पूर्व प्रदेशका अन्त है वही एकका उत्पाद है, उत्तरपर्यायका शुरुआत है वही उत्पाद है। परस्पर अनुस्यूति सूत्रित होनेसे वही उत्पाद है और अत है। ऐसा अनुस्यूति सूत्रित होनेसे अत नही रहता। चनेका लड्डू बनाया, उसमे अतर रहेगा ही, उसमे पुद्गल पर्यायकी अपेक्षा उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य उनका है। ऐसे चनेके लड्डूकी भाति प्रदेश रचना नही।

वीतराग देवका शासन निर्दोष है—जिनेन्द्रदेवकी वाणीमे अनेक विशेषतायें स्पष्ट हो जाती है। क्षेत्रमे बतला दिया उत्पाद और उच्छेद एव अनुत्पाद व अनुच्छेद। प्रवाहित पर्याय सामान्य है, उसमे विवक्षित पर्याय विशेष है। उत्तरपर्यायसे उत्पाद है, पूर्वपर्याय विशेषसे व्यय है और द्रव्य सदा ध्रौव्य रहता है। जिस पर्यायपर दृष्टि दी उसका उत्पाद हुआ। जो भी पूर्वपर्यायका उच्छेदात्मक है, उस ही सीमाके अदर अत है, वही सीमाका उत्पाद है। व्यय उत्पादरूप पडता है और अत आदिरूप पडता है। जन्म मरणरूप पडता है और मरण जन्मरूप पडता है। जो पूर्वपर्यायका उच्छेदरूप है। उस प्रवाहके अदर उसीकी सीमाका अन्त है। उस प्रवाहके अन्तर्गत विशिष्ट सीमाका अत लेवें, जो सीमाका अत है वही उत्पाद है। उसी पर्यायको देख रहे हैं। प्रत्येक द्रव्य अनुस्यूति सूत्रित है। त्रैकालिक एक द्रव्य अनुभयात्मक है या अनुत्पादक अनुच्छेद है।

प्रत्येक वस्तु त्रिदेवतामय है—इस तरह इस द्रव्यका स्वभावसे ही त्रिलक्षण परिणमन पद्धति दिखी। द्रव्य, क्षेत्र, काल परिणामकी परिणति पर्याय नये पुराने ढगसे चलेगी। जो पद्धति त्रिलक्षण है वह चल रहा है, ऐसा जो हुआ स्वभाव है, उस स्वभावका अतिक्रमण नही हो सकता है। इस तरह द्रव्यको त्रिलक्षण ही मानना चाहिए। यह स्याद्वादकी एक और खूबी है, यहाँ स्याद्वादमे सभीको घटाना पडेगा। प्रश्न कर सकते है कि सिद्ध भगवान कर्मोसे मुक्त है या अमुक्त? अगर बहुतसे बहुत बुद्धि लगाई और कहा कि कर्मोसे अमुक्त है। वह ज्ञानावरणादि कर्मोसे छूटे या नही? भैया! वास्तवमे स्याद्वाद पदार्थमे होता है। यह बात लगाने की जुदी है। यह स्याद्वादका ब्याज है। जहाँ वस्तुमे स्याद्वाद आता है, उसको भिन्न-भिन्न तरहसे छिन्न-भिन्न करके सर्व तरहसे अपेक्षा लेकर पुष्ट करके दिखला दिया जाता है। वैसे स्याद्वादका लक्षण उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य वाला है। यहाँ अमृतचन्द जी सूरि कहते है कि इस स्याद्वाद (सप्तभगी नय) की खुले दिलसे अनुमोदना करना चाहिये, मुदित होना अर्थात् प्रसन्न रहना चाहिए। सब द्रव्योको काट-छाटकर अच्छी तरह जान लिया कि प्रत्येक द्रव्य स्वतत्र-स्वतत्र है, सत् है, उसमे किसीका मिश्रण नही है। तब हर्षित हो भूठी पुष्टई छोडकर स्याद्वाद पद्धतिकी रुचि करनी चाहिए। इसकी रुचिमे, अनुमोदनामे न सक्लेशको स्थान है और न हापड-धूपडका ही काम है। यह तुमसे कोई नया प्रस्ताव नही करा रहे है। लेकिन जो सिद्ध बात है, उसकी अनुमोदन मात्रका ही तो कथन है। अगर कोई व्यक्ति किसी प्रस्ताव को पास करता है तो उसके बाद समर्थन करने वालेको सोचना पडता है कि यह समर्थन सबके या कुछके विपरीत न पड जावे, वह सबकी ओर देखता है, सबके भाव परख लेता है तब समर्थन कर पाता है। इसके बाद अनुमोदना करने वालोका भय हट जाता है। वह निश्चिन्त हो उस बातका खुलासा कर सर्वमे हृदयसे अनुमोदन करता है, यहाँ तत्त्व सिद्ध हो चुका, अब अनुमोद लो। इसलिए यह स्याद्वाद सर्व तरफसे ग्राह्य है।

पदार्थमाला मालाकी तरह त्रिलक्षण है—यहाँ मोतीकी मालाका उदाहरण दिया जाता है। कोई यहाँ यह शका करे कि मोतियोकी मालाका ही उदाहरण क्यो दिया जाता है? सूतके गुरियो वाली या गाठो वाली मालाका उदाहरण भी तो दे सकते थे? उसके लिए सोचनेकी बात है, जो पुरुष बडा होता है, उसके मनमे बडी ही बात तो आती है। थोड़ा अतर हो तो भले ही लेवे। बडे-बडे जो उद्भट मुनि विद्वान् थे, वह भी अच्छे श्रेष्ठ धनवान घरानेके थे। अच्छी जगह पले-पुसे थे, शिक्षा-दीक्षा भी अच्छी मिली थी। वह इस तरह नही थे कि खाने-पीनेके लिए मुनि हो गये हो। इसलिए मुक्तादाम (मोतियो) का उदाहरण देना ही श्रेष्ठ था। न्यायशास्त्रमे काफी दृष्टान्त आते है जो कि लौकिक जीवनके आचरणको कितना १०० टची सोनेके समान शुद्ध रखनेको तैयार है।

दृष्टान्त भी प्रायः धर्मवृत्ति सम्बंधित है—अधिकतर स्याद्वादमे घट पट रज्जूका उदाहरण आता है। घट—घडेको कहते है, पट—कपडेको कहते है और रज्जू—रस्सीको कहते है। घड़ा याने लोटा मिट्टी, पीतल, ताँबा, गिलटका भी हो सकता है। छन्ना भी कपडेका होता है। जो भी सफरमे कही जावे, उसके साथ लोटा, डोर, छन्ना, ये तीनो वस्तुयें जरूर होनी चाहिए, जिससे शुद्ध पानीकी उपलब्धि हो सके। न्यायशास्त्रमे जहाँ भी देखो वहाँ यही तीनो उदाहरण सामने आ जाते है, यह बात नही कि उन्हें अन्य उदाहरण मिलते नही हो। जो जिस तरहका होता है, उसके संस्कार बडे दृढ होते है, वह चिरकाल तक नही छूटते, वह चाहे राजभवनमे या धर्मभवनमे या तपोवनमे, श्मशानमे या वेश्यागृहमे भी क्यो न ला दिया जावे, उसमे सदाचारके संस्कारकी बात सर्वत्र रहती। राजशाही खर्च वाला गरीबी आ जाने पर भी अपनी साज-सज्जामे कमी नही कर सकता तथा कजूस व्यक्तिको राजकोप भी पूर्ण दान देनेके लिए सौंप दिया जावे, पर वह अपनी लोभवृत्तिसे बाज नही आयेगा और वह कोष की सपत्तिको अपनी बनाना चाहेगा, लेकिन दान देते समय अति पश्चाताप ही होगा। अगर ब्रह्मचारी पुरुष वेश्यागृहमे धकेल दिया जावे तब भी वह अपनी रक्षा करेगा।

संस्कारके अनुसार भाव प्रगट होते—संस्कारकी बातके सम्बधमे एक मनोरजक कथानक है। एक नगरमे से बादशाह घूमनेके लिए निकला। नगरके बाहर जानेपर गडरियो के कुछ बच्चे बकरिया चराते हुए मिले। वहीपर एक गडरियेकी नवयुवती लडकी भी भेडें चरा रही थी। उसका सर्वांग लावण्यमयी (खूबसूरत) था। उसे देखकर बादशाह मोहित हो गया। तब बादशाहकी शादी उस लडकीसे कर दी गई। वह लडकी बादशाहकी रानी बनाकर महलोमे लायी गई। जहाँ बडे-बडे कमरे, स्नानगृह, भोजनगृह, अतिथिगृह, शृङ्गारगृह, शयन-कक्ष, विनोदस्थान आदि बने थे। शृङ्गारगृहमे उसे ठहराया गया। वहाँपर राजा-महाराजाओ, रानियो, नेताओ, साधु-महात्माओ, प्रकृति, झरना, पहाडके, सुन्दर-सुन्दर फल सहित वृक्षोंके अनेक चित्र लगे थे, उसे उनमेसे कोई भी पसद नही आया। एक तरह गाय, भैंस, शेर, हिरण, बारहसिघा, समुद्र, पेरिसके राग रग आदिके चित्र भी लगे थे। यह भी पसन्द नही आये। सबको छोडकर आगे बढती जावे नववधू। कुछ आगे जानेपर प्राकृतिक बकरियो एव भेडोका चित्र लगा था। वहाँ आकर रुक गई और बडे गौरसे देखा तथा टिक-टिक करने लगी। तब ज्ञात हुआ जो जैसे संस्कारोमे पलेगा वह उसके जीवनमे दृढ रहेगे। इसमे उत्पाद व्यय ध्रौव्यके लिये दृष्टान्त अपनी प्रवृत्तिके अनुसार बनाये जा सकते है। अपने गुण अवगुण समय पाकर महान स्थानपर भी पहुच जानेसे प्रकट हो जाते है। धार्मिक बच्चेके संस्कार बडी अवस्थामे भी प्रकट होकर लहलहाते फल सदृश नजर आवेंगे, जिसमे अनेकोका हित समाया रहता है। द्रव्यका असली तत्त्व (निचोड) समझमे आ जाय, वही वास्तविक वैराग्यका कारण

बनेगा ।

वास्तविक वैराग्यका साधक तत्त्वज्ञान—वास्तविक वैराग्य तत्त्वज्ञानके बिना नही होता । तत्त्वज्ञानके प्रसारके लिये ही यह आचार्यदेवका उपकार है । द्रव्यगत विशेषताओंका वर्णन करके अखण्ड द्रव्यस्वरूपपर पहुचाना यह तत्त्वज्ञ वीतराग महर्पियोकी ही कौशल है । अनेक प्रकारसे समझकर आचार्यदेव कहते है कि इस प्रकार स्वभावसे ही विलक्षण परिणाम-पद्धतिमे एकमेक हुए इस द्रव्यका सत्त्व भी त्रिलक्षणात्मक अनुमोदना चाहिये, क्योकि सत्त्व भी तो स्वभावका अतिक्रमण नही कर सकता । अहा ! इस द्रव्यस्वभावकी जो अनुमोदना करता है, उसका मोह नष्ट हो जाता है । मोह नष्ट हो जावे अर्थात् स्वरूपोपलब्धि हो जावे, इससे बढकर और कुछ सम्पदा ही नही है । देखो स्वरूपोपलब्धिमे भी उत्पाद स्वरूपोपलब्धि का है, व्यय मोहभावका है, दोनोमे अनुस्यूत एक तत्त्व है ही । त्रिलक्षण परिणाम पद्धतिकी कृपासे सब व्यवस्था है ।

मोतीमालाकी विशेषता—उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यमे मुक्ताफल दामका उदाहरण बडा अच्छा जचता है । परिस्थितिके अनुसार अन्य भी उदाहरण घटित हो सकते है । मोतियोकी माला कैसी जिसकी बहुत बडी लम्बाई है । यहाँ छोटी मालाका ग्रहण नही किया गया । सुगमतासे समझानेके लिये दृष्टान्त भी बिना कजूसीके दिया जा रहा है । वह प्रलम्बमान माला उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यसे सहित है, इसको विधिवत् घटावेंगे । उस मालाका जितना भी तेज है वह सबका सब तेज शोभायमान हो रहा है, इस तरहकी मालामे मोतियोका समूह है तथा कान्तिकी अवधारणा है । पहले बताया था प्रवाह सामान्य और प्रवाह विशेष—यह दो बाते होती है । प्रवाहविशेष मालामे मोतीके दाने है और प्रवाह सामान्य है वह समस्त मुक्तावोका कान्ति समूह माला तथा मालामे जो धागा (सूत्र) पडा हुआ है वह द्रव्य या ध्रौव्य है । धागे मे ही मोतियोंके दाने है, उन मुक्ताफलोमे उत्तरोत्तर तेज पाया जाता है । अगले-अगले तेजमे अन्य-अन्य मोतियोका उदय पाया जाता है तथा पिछले-पिछले मोतियोमे जिन्हे कि छोडते जा रहे है, उनका अनुदय पाया जाता है । सब ही तेज सहित मोतियोके दाने परस्परमे मिलकर माला (हार) के नामको प्राप्त होते है, जो कि सूत्रके आश्रय रहते है । अगले-अगले मोतीपर दृष्टि देते है तो उसका उदय तथा पीछे छूटे हुए पूर्व मोतीका अनुदय होता है । उन सबमे सूत्र पडा हुआ है, इसमे उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य मौजूद है । क्षेत्रकी अपेक्षा धागेमे लम्बे चौडे जो मोती पडे हुए है वह अन्य चीज नही है । जिस मोतीको पूर्वमे ग्रहण किया था, उसे अब ग्रहण नही कर रहे है, यह व्यय हो गया तथा जिसे आगे ग्रहण किया गया, उसका उत्पाद हो गया एव वह मोतीके परमाणु जो कि सूत्रमे पिरोये हुए है वह ध्रौव्य भी है ।

पदार्थ सब नित्यवृत्तिसे वर्तमान है—इसी प्रकार जिसने नित्यवृत्ति अगीकार कर

रखो है, किसीसे वह नही कहेगा कि हमारा परिणमन करो या न करो अथवा वे तो परिणम कर ही रहेगे, ऐसा ही उनका अधिकार है। नित्यवृत्तिसे रचा गया द्रव्य है। गुण द्रव्यसे जाना जाता है, पर्याय द्रव्यसे जानी है, द्रव्य पर्यायसे जाना जाता है तथा गुणसे द्रव्य एव पर्याय जानी जाती है या गुणसे पर्याय, पर्यायसे गुण आदि रचे गये हैं तथा वह सब एकमेक है। जिसके द्वारा देखा वह लक्षण हो गया एव जिसे देखा वह लक्ष्य हो गया। द्रव्य गुण पर्याय तो उसका स्वरूप है, परिणमन स्वभावसे है। परिणमन औपाधिक नही हैं। परिणमन मात्र निरुपाधि है एव स्वाभाविक है। वस्तुके द्रव्यत्व गुणसे अपने आप व्यक्तता है। नित्यवृत्तिसे ग्रहण किया जो द्रव्य उसमे अपनी-अपनी पर्यायें हैं। उनमे शोभायमान जो पर्याय है उसमे उत्तर उत्तर पर्यायका उदय तथा पूर्व पूर्व पर्यायिका अनुदय होता है, किन्तु सबका परस्परमे मिलकर वह त्रिलक्षण सूत्रमे लक्षित की जाती है। जैसे किसीकी अच्छी बुद्धि है, कुछ समय बाद उसका दिमाग बिगड गया तो अच्छी बुद्धिका व्यय हुआ और खराब बुद्धिका उत्पाद हुआ अथवा खराबके बाद अच्छी बुद्धि आई तो अच्छीका उत्पाद हुआ है और खोटी बुद्धिका व्यय हुआ तथा मनुष्य वही है ध्रौव्य पर्यायकी अपेक्षासे। उत्पाद व्यय बिना दुकान भी नही चल सकती है, न रोटी खाई जा सकती है, न कुछ पढ सकते है, न सुन सकते हैं और न सुना सकते है। उत्पाद व्यय वस्तुका ऐसा स्वरूप है जो मेटनेपर भी नही मिट सकता।

सभी झडे वस्तुस्वरूपके प्रतीक हो सकते—कोईसा भी झडा हो उसमे जिनशासनके तत्त्व घट सकते है। तिरगे झडेमे उत्पाद व्यय ध्रौव्य घट सकता है। हमारे देशका राष्ट्रीय झंडा भी इन तीनोसे युक्त है। हरा रग उत्पादका सूचक है। जिस तरह कोई व्यक्ति धन, मकान, भाई, बन्धुओसे युक्त हो, उसको कहते है 'भाई तुम तो खूब हरे भरे हो।' केसरिया या लाल (लाल-पीला) रग व्ययका सूचक है तथा मध्यमे सफेद रग ध्रौव्य बना हुआ जो कि दोनोकी मध्यावस्था दर्शाता है। उत्पाद व्यय ध्रौव्यके विना कोई सिद्धान्त नही बन सकता। जिन्होने एक अद्वैत ब्रह्म माना है, वहाँ यह प्रश्न उठ खडा होता है कि अद्वैत ही है तो यह दृश्य क्या चीज है ? तो कहेगे यह उसकी माया और आराम है, तब ये दो बात ब्रह्म और माया हुई। देखो भैया ! यही तो द्रव्य पर्यायकी बात है। माया अर्थात् मा = मत, या = यह, जो ब्रह्म है सो यह नही। जो यह है सो ब्रह्म नही। ब्रह्म मा या। तब दो बात तो माननी ही पडी। माया मैं नही हू। अतएव आत्मा चैतन्यस्वरूपको प्राप्त कर लेवे। मायाका नाम पर्याय और आरामका नाम ब्रह्म। द्रव्यमे और भेददृष्टि लगाई तो गुण बन गये तथा गुणोपर सामायिक दृष्टि लगाई तो पर्याय बन गये एव गुण और पर्यायपर सूक्ष्मदृष्टि लगाई तो द्रव्य नजर आ गया। जो यह है वह सा मा याने ब्रह्म नही है। जो ब्रह्म है सो मत या। जो द्रव्य है वह पर्याय नही है और जो पर्याय है वह द्रव्य नही, यह अतद्भावका अन्तर पड गया।

जिसको सात तत्त्वोका यथार्थ परिचय नही हुआ, वह मिथ्यादृष्टि है। जिसको सात तत्त्वोका परिचय हो गया वह सुदृष्टि है।

सब कुछ दृष्टिमे एक है व अनेक है—प्रादेशिक भेदकी अपेक्षा चौकी, तख्त, पुस्तक है। मात्र सत् रूपसे यह सब ब्रह्म है। गोबर, लकडी, पशु, पक्षी, कीडे-मकोडे, गाय, हस, कौआ, उल्लू, स्त्री, नागिन, चेतन अचेतन सब ब्रह्म है। आपके यहाँ (जैनसिद्धान्तमे) सत् है वही यहाँ ब्रह्म हुआ। अद्वैतवादी कहते ब्रह्म व्यापक है और जैन कहते द्रव्य व्यापक है। वह ब्रह्मको क्षेत्र अपेक्षासे सर्वगत मानते है और अपना सत समस्त व्यक्तियोमें रहता है इसलिए सत है। मनुष्यत्व व्यापक है वह क्षेत्रापेक्षया है। यही बात अन्य मत धारण कर लेते है। मनुष्य बैठे हुए इन सबमे मनुष्यत्व है, यह जिनदर्शन है, लेकिन वह (अद्वैतवादी) मनुष्योके बैठनेके अन्तरसे मनुष्यत्व मानते है अर्थात् वहाँ भी मनुष्य हो सकता है, वह अभी आया नही है इसलिए खाली जगह पडी है। उनका तो हुक्म व्यापक है। जिस तरह कचहरीमे एक झूठ कह दो तो दस बातें उसके साथ और खोजनी पडती है। सत्यके लिए नही खोजना या सोचना पडती। वह कहेगे ब्राह्मणत्व व्यापक है तो यहाँ भी व्यापक है, प्रत्येक स्थानपर व्यापक है। वह अभी यहाँ आया नही और आ जायगा, ब्राह्मणत्व व्यक्त होकर प्रगट हो जायगा। यही अविचारित रमणीय है।

अपनी सामर्थ्यसे आगे बढो—जैनोके यहाँ कहा है, सत, द्रव्य, उत्पाद व्यय ध्रौव्य तत्त्व, आदिको यथार्थ मानना सर्वज्ञकी आज्ञा है, इसके विपरीत जरा भी जीभ हिलाई तो मिथ्यादृष्टि हो जाओगे। अन्य मत वाले कहते है अगर तुम ईश्वरको नही मानोगे तो नास्तिक हो जाओगे तथा मुसलमान कहते है अगर कुरानशरीफको नही माना तो काफिर वह जाओगे। यह शब्द धर्म मानने वालोके लिए रिजर्व है। यह जन्मजात तो सस्कार घर करे बैठे है, उनसे आगे नही चल सकते। जैनसिद्धान्तमे भय नही कराया गया। वहा तो स्पष्ट है कि अनुभव करो। अब अनुभवमे जो आ सकता है वही तो अनुभव किया जायगा। प्रयोजनीभूत जीवादि सात तत्त्वोका यथार्थ अनुभव किया जा सकता है। उसे जिसने किया उसे पता है कि जिन शासनमे जो कहा है वह यथार्थ है। यह अनुपम और हितके लिये सर्वोपरि अनुभव है। अब उसकी इतनी भक्ति बढ़ी कि परोक्षगत पदार्थ भी जैसे जैनशासनमे कहे गये वे भी सत्य है। जिसको सात तत्त्वोका यथार्थ परिचय नही हुआ वह मिथ्यादृष्टि है। जिसको सात तत्त्वोका परिचय हो गया वही उपेय तत्त्वोको अनुभवमे लावेगा तथा जैसा आगममे पढा था वैसा ही जीवनमे उतारकर आचरण करेगा, उसीको प्रमाण मानेगा। अज्ञानी भक्त जिनेन्द्र भगवानके डरसे ही आज्ञा पाल रहे हैं। ज्ञानी सर्वज्ञकी भक्तिसे प्रत्येक बातको मानता है। अज्ञानी सोचता है अगर नही पालेंगे तो नरकमें जावेंगे। ज्ञानी जन अनुभव और भक्तिमे प्रत्यय करते है। जब

ज्ञानियोकी समझमे यह आ गया कि जीवादि तत्त्वोका व अनुभव ध्यानोका व आत्मतत्त्वोका यह विवेचन अनुभवसिद्ध है तो उनका प्रत्येक वाक्य सत्य ही है। इस प्रत्ययके साथ युक्तियाँ और अनुभव भी साथ-साथ चलने लगते है। जिनका जो प्रत्यक्षसे सम्वध रखते हैं, वह उसपर विशेष लक्ष्य देते है, जैसे जो बात औरोके सामने आ जावे, उसे अधिक महत्त्व देते है—हजारो के दान देकर नाम प्रगट करवाना, पुस्तकोपर छपाना, गरीबकी दो रोटी या चार पैसा देनेकी भी सुध नही रखेंगे। बडे ठहरे, बडा ही दान देंगे और बडेको बडी जगह देंगे। छोटे या छोटी जगह (सस्थायें) तो रुदतेमे और रुद जावे, इसकी उन्हे चिंता नही, यह तो लौकिक बात है। ज्ञानियोको तो धुनि आत्मदृष्टिकी ही रहती है। प्रमाण सब करते चले जाते। सब आज्ञाओमे सर्वज्ञका सबसे पहले यह उपदेश है कि उत्पाद व्यय ध्रौव्ययुक्त सत्—सब उत्पाद व्यय ध्रौव्यसे कार्य चलेगा व चल रहा है। श्वेताम्बरोमे भी सबसे पहले उत्पाद व्यय ध्रौव्य ही लिया है।

रत्नत्रय भी त्रिलक्षणात्मक है—सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्राणिमे भी यह घटित होता है। सम्यग्दर्शन व्ययरूपसे जाना जाता है और सम्यग्ज्ञान उत्पादरूपसे जाना जाता है तथा सम्यक्चारित्र ध्रौव्यरूपसे जाना जाता है। विपरीत अभिप्रायको नष्ट करके, निज तत्त्वका निर्णय करके उससे चलित नही होना चाहिए, यह रत्नत्रय है। विपरीत अभिप्रायका व्यय करना सम्यग्दर्शन है, निज तत्त्वको स्थापित करना सम्यग्ज्ञान है तथा जो चलित नही होवे, उससे वह सम्यक्चारित्र है। कोई भी ग्रथ या शब्द लो, उसमे उत्पाद व्यय है। राजाका उत्पाद हुआ, यह क्या ध्रौव्य बिना है तथा साधारण मनुष्यपना व्यय हुआ। सूक्ष्म-सूक्ष्म पर्यायें व्यय हुआ करती है। मरना जब होता है तभी दूसरी पर्यायका उत्पाद हो जाता है। मरण याने पूर्वपर्यायका व्यय हो चुका। कोई भी बात हो सबमे उत्पाद व्यय है। वस्तुस्वरूप के विरुद्ध कही नही जा सकते। वस्तुका जो स्वभाव है वही धर्म है। वस्तुके स्वभावके अनुकूल प्रवृत्ति होवे वह भी तो धर्म है। दृष्टि और आश्रयभेद करके मन, वचन, कायके जो विकल्प चलें उसके कारण जो प्रवृत्ति हुई वह भी धर्म है। लोकमे किन-किन चीजोको धर्म कहते है। शुभ मन, वचन, कायके जो विकल्प चले उसके कारण जो प्रवृत्ति हुई वह भी धर्म है। अन्य पचकल्याणक उत्सव कार्य करनेके लिए जो कार्य किया जायगा वह भी धर्म है। उत्सव करनेकी अनुमति लेनेके लिए कलक्टर आदिसे मिले होंगे वह भी तो धर्म है। धर्म शब्दमे कितने-कितने व्यवहार चले, यह सब किसी मूल लक्ष्यको ठीक रख लें, व्यवहारधर्म है। वस्तु उत्पाद व्यय ध्रौव्यात्मक है।

उत्पाद व्यय ध्रौव्य भी त्रिलक्षणयुक्त है—उत्पाद व्यय ध्रौव्यमे भी प्रत्येकमे उत्पाद व्यय ध्रौव्य कहे जा सकते है। उत्पाद भी व्ययमय है और व्यय भी उत्पादमय है। स्याद्वाद वस्तुमे लगा करते है, किन्तु हमारे यह खेलनेके स्थान है कि „जहाँ चाहे लगाते जाओ। यह

स्याद्वादका विलास है। भगवान भी अपने गुणोंमें ज्ञानगुणसे अमुक्त है, कर्मसे मुक्त है। उसका आक्रमण प्रत्याक्रमण पास ही पास है। हमारा शरीर हमसे भिन्न है या अभिन्न? अगर भिन्न कहेगे तो तुम मार-पीटकर बराबर कर दोगे, क्योकि आत्माका तो कुछ बिगडता नही है। अभिन्न भी कहनेपर कहोगे आत्मा तो अमर है, इसलिए भी शरीरको पीट सकते हो। नारकियोके शरीरके तिल-तिल बराबर टुकडे हो जाते है, किन्तु मरते नही, फिरसे पाराके समान शरीर मिलकर इकट्ठा बन जाता है, ऐसा समझा दोगे। इसलिए कहना होगा कि कथचित भिन्न है और कथचित अभिन्न है। आत्माका स्वरूप पूर्ण जुदा है और शरीरका स्वरूप पूर्ण जुदा है। जब तक वह इकट्ठा बना है तब तक यह सब कार्य चल रहे है तथा जब इस शरीर से मुक्ति प्राप्त कर ली जायगी तब इस शरीरकी भी कीमत बढ जायगी, इसके पूर्व कोई नही पूछता है। जो पूछता है वह लोकव्यवहारके डरसे। व्यर्थका वितडावाद छोडकर स्याद्वाद कथित धर्मपर श्रद्धा करके उसीके अनुसार चलना चाहिए। अन्यथा प्रवृत्ति करनेसे कोई कार्य सिद्ध नही होगा। यह स्याद्वाद त्रिलक्षणसे लक्षित है।

उत्पाद व्यय ध्रौव्यमे अविनाभाव है—सत्का लक्षण उत्पाद व्यय ध्रौव्य सहित बतलाया है। अब उसमे अविनाभाव सम्बधको सिद्ध करते है। वैसे सामान्यतया सभी जानते है कि उत्पाद व्यय ध्रौव्यका अविनाभाव सम्बध है। तो भी उस बातको प्रकरणवश कहनेके लिए, स्थिरताके लिए सत्यपर प्रकाश डाला गया है अर्थात् उत्पाद व्यय ध्रौव्यको दृढ़ करके अविनाभाव बताते है या उत्पाद व्यय ध्रौव्यको दृढतापूर्वक कहना ही अविनाभाव सम्बधकी स्थापना है।

ण भवो भगविहीणो भगो वा णत्थि सभव विहीणो।
उप्पादोविय भगो ण विणा धोव्वेण अत्थेण ॥१००॥

सर्ग, संहार व स्थितिका अविनाभाव—उत्पाद व्यय विहीन नही है। व्यय उत्पादविहीन नही है। उत्पाद और व्यय दोनो ध्रौव्य अर्थके बिना नही है। इसीमे ये बातें भी गर्भित है कि ध्रौव्य उत्पादविहीन नही है, ध्रौव्य व्ययविहीन नही है। एक तत्त्वको ही अनेक दृष्टियोमे देखा जाता है। तत्त्व वही है जो उत्पाददृष्टिसे देखा, व्ययदृष्टिसे देखा, ध्रौव्यदृष्टिसे देखा। इसी कारण इन सबका परस्पर अविनाभाव है। उत्पत्ति जो है वह भग विहीन नही है तथा व्यय जो है वह उत्पाद बिना नही है। उत्पाद जो है वह व्यय बिना नही है, और भग कहिए व्यय वह उत्पादहीन नही है। उत्पाद व्यय बिना और व्यय उत्पाद बिना नही है तथा उत्पाद व्यय ध्रौव्य बिना नही है। इसीको अमृतचदाचार्य सूरि स्पष्टतया समझाते है।

सर्ग संहारके बिना नही होता है और सहार सर्गके बिना नही होता है। सर्ग एव सहार उत्पाद व्यय ध्रौव्यके बिना नही होता। ध्रौव्य जो है वह उत्पाद व्ययके बिना नही

होता है । एक मिट्टीका घडा है, उसमेसे कोई चाहे यह घडा नही फूटे और खपरियाँ (ठीकरे) मिल जावें अर्थात् घडेकी पर्याय तो व्यय न होवे, नष्ट न होवे तथा ठीकरे मिल जावें, यह हो सकता है क्या ? यह साक्षात् असभव है या इस तरह कोई चाहे घडा तो फूट जावे, किन्तु उसमेसे खपरिया न होवे । जैसा कि बच्चे चाहते है कि घरके बर्तन फूट जावें या गुस्सेमे आकर फोड डालें तथा माताजी को पता न चले, क्योकि वर्तन फोडनेकी प्रवृत्ति इसलिए हो जाती है, जब किसी बच्चेको माँ, भाई वगैराने पीट दिया तथा इच्छित वस्तु नही मिली तो घरके मिट्टीके बर्तन (गागर, मटकी घेला) फोडकर क्रोधका उपशम करता है, क्योकि 'खिसयानी बिल्ली खम्भा नोचें' यही हाल बच्चो तथा बडो तकका होता है । बच्चेका वह कार्य भी प्रकट हो जाता है । छिपाये कितना भी । उसी तरह घडा फूटनेपर खपरिया नियमसे होगी । इससे सिद्ध है उत्पाद व्ययके बिना नही और व्यय उत्पादके बिना नही है । कोई चाहे कि वस्तु रही आवे और व्यय न होवे, ऐसी कोई भी वस्तु नही मिलेगी ।

क्या सुमेरु पर्वत सर्वथा ध्रुव है—कह सकते हो सुमेरु पर्वत जैसाका तैसा रहा आता है, घटता-बढता नही है ? उसमे भी प्रति समय परमाणु आते रहते है और जाते रहते है । कोई भी हो उसमे आना जाना उत्पाद व्यय हर समय लगा रहता है । वस्तुका ऐसा स्वभाव ही है । जिस समय सर्ग (उत्पत्ति) है, उसी समय सहार है तथा जिस समय सहार है, उसी समय उत्पत्ति है । घडेका व्यय तो ठीकरेकी उत्पत्ति है तथा ठीकरेका उत्पाद घडेका व्यय है, और इसका विनाश सद्भाव बिना होता नही है । विनाश एव सद्भाव इनमे परस्पर अनुस्यूत ध्रौव्य है । ध्रौव्य कूटस्थ नित्यकी तरह नही है । लुहार जिसपर लोहा कूटता है वह उसके सामने जो मूढा होता है वह कूटस्थ है । धोकनी धोकी जा रही है, भट्टीमे लोहा गर्म किया जा रहा है, गर्म होनेपर लुहार सडासोसे गर्म लोहेको पकडकर निहाई (मूढा) पर ज़माता है, उसपर घन (हथौडे) पटके जाते हैं, तो यहाँ सडासीमे, हथौडेमे, मनुष्यके हाथमे हलन-चलन या अदला-बदली हो रही है, किन्तु निहाई नही बदल रही है, वह जैसीकी तैसी स्यित रहती है । हथौडो की सडासीकी, पिटने वाले लोहेकी सबकी दशा बदल रही है, किन्तु कूट वहीका वही है । वैसे तो उत्पाद व्यय उसमे है, किन्तु मोटा दृष्टान्त है, इस तरहकी द्रव्य ध्रौव्य होकर भी कूटस्थ नित्य नही है । इसलिए सर्ग है सो सहार है और सहार है सो सर्ग है और सर्ग सहार अर्थात् उत्पाद व्यय ही ध्रौव्य है ।

उत्पाद व्ययका आधार क्या है ?—क्षणिकवादने माना है कि जो बात (पदार्थ) पहले समयमे है वह दूसरे समयमे नही है तथा जो दूसरे समयमे है वह तीसरेमे नही, तीसरी वाली चौथीमे नही आदि । अगले-अगले समयमे नवीन-नवीन ही बात मानी है । जो पहले थे वह अब नही है, इस तरह मूलभूत तत्त्व कुछ नही माना है । जैनसिद्धात वाले मूलभूत तत्त्व

को लेते है। अनन्त उत्पाद व्ययका ध्रौव्य है। अनेक परम्पराओका नाम सतति है। इन दोनोमे अन्तर क्या रह गया ? कोई एक है उसमे परिणमन हुआ, इसमे भी उत्पाद व्यय ध्रौव्य समाया हुआ है तथा सततिमे एक परम्परासी हुई है, इसमे एक द्रव्य रहा नही। द्रव्य मान्यतामे बात निराधार नही। क्षणिकमे निराधार है। ध्रौव्य उत्पाद व्ययके द्वारा इसी तरह जाननेमे आता है। अगर उत्पाद व्यय न रहे तो ध्रौव्य क्या रहेगा ? यह परम्परा बराबर चल रही है और जो ध्रौव्यको स्थिति है वही सर्व सहार है तथा उत्पाद है, फिर स्थायी रहता क्या है ? इसी तरह द्रव्य रहता है। वर्तमान उत्पाद पूर्व सहार यही स्थिति है।

उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य तीनो एक साथ है—जिस समय जो घडेकी उत्पत्ति है, उसी समय मृत्पिण्डका व्यय है, क्योकि सद्भाव अन्यके अभावरूप है और अभाव अन्यके सद्भावरूप है। भाव अन्यके अभावरूप ही है। जैसे सद्भाव अभावरूप है, उसी तरह भाव भी समझना। जब मृत्पिण्डका व्यय है तभी घडेकी उत्पत्ति है। कोई कहे कि मृत्पिण्डको घडेरूप न बनाकर अन्यरूप परिणमन कर देंगे तो घड़ा नही बनेगा, यह भी ठीक नही, क्योकि घडा नही बनाया गया तब घडा नही, किन्तु अन्यरूप तो परिणमन हो गया। अभाव जो हैं वह भावान्तरके सद्भावरूप है। किसीने कहा कि भाई कमरेमे जाकर समयसार उठा लाओ। वह व्यक्ति समयसार उठानेके लिए कमरेके अन्दर गया, उसे समयसार नही मिला तब ऐसा तो नही है कि कमरा एव अन्य वस्तु फर्श वगैरा कुछ नही दिखा। समयसारके अभावका निश्चय चौकी, आलमारी, आला आदि देखकर ही तो हुआ। इसलिए यह नही कहा जा सकता कि कुछ भी नही दिखा और अभाव सिद्ध कर देवें। अभाव सद्भावरूप ही रहता है। सप्तभगी न्यायमे स्याद्अस्ति, स्याद्नास्ति और स्याद्अवक्तव्य यह तीन मूल भग मुख्य तौरसे कहते है। किसी दृष्टिसे है हो। अनेकान्तमे सर्वथा ही भी नही चलेगा।

स्यात् व एवका प्रभाव—अनयकारी शक्ति रोकनेके लिए स्याद तथा एव लगा है। ऊँची नीची लाइन होनेसे दोनो तरफ दो इजन लगाये जाते है। समान लाइन (पटरी) होनेपर एक ही इजनसे काम चल जाता है। जहाँ निर्णयकी जरूरत पडेगी, वहा स्याद्वादकी जरूरत पड़ेगी। अगर कोई गडबडी हुई तो स्याद्वाद सभाल लेगा। इसके लिए स्याद तथा एव निर्णायक तय किये गये हैं। यथा—द्रव्यदृष्टिसे वस्तु नित्य ही है, पर्यायदृष्टिसे वस्तु अनित्य ही है। दृष्टि लगा लो तो ही कहनेमे फिर सकोच क्या है ? द्रव्यदृष्टिसे नित्य बोलें तो ही तो कही नही गया, पर्यायदृष्टिमे भी दृष्टि न लगाओ तो ही लगानेसे भी कार्य सिद्ध हो सकता है। वस्तु है स्वद्रव्य क्षेत्र, कालसे है, परद्रव्य क्षेत्र, कालसे नही है। अभाव सद्भाव स्वरूप ही है। कल्पनामे कुछ न आवे और सद्भाव समझ जावे, यह हो नही सकता। प्रतीतिमे कुछ नही ह और सद्भाव समझ जावे, यह मिथ्या (झूठ) बात यहाँ नही चल सकती।

अटपट मिसमिरेजम नहीं हो सकता—मिसमरेजम वाले भी यो ही पदार्थकी उत्पत्ति नही कर देते । उन्हे भी कुछ न कुछ मूलभूत पदार्थ हड्डी, लकडी, मसाला आदि रखना पडता है व चीज रखते है या मगाते है, किन्तु यहा एक नया ही मिसमरेजम चालू हो जायगा । जहा कि बिना मूलभूत पदार्थके ही उत्पत्ति दमादम होने लगेगी । ऐसा नही है, व्ययके विना उत्पाद नही है । किसीके ३ वर्षका वच्चा होवे और वह उतना ही वना रहे, क्योकि माता पिता उतना छोटा भी देखना चाहते है और तभी १० वर्षका भी हो ले, क्योकि माता-पिता ऐसा भी देखना चाहते है तो क्या यह हो जायगा ? जव वच्चा चार वर्षका हुआ, उसके पहले तीन वर्षका भी था तथा आगे भी प्रतिदिन प्रति मिनट प्रति सेकड वढ़ता ही रहा तथा जव १८ वर्षका हो गया उसके पहले १७ का भी था तथा १७ के पहले १६ का भी था । १८ वर्षका होनेपर सत्रहवें वर्षका व्यय हो गया और १८वें वर्षका उत्पाद हुआ । इसलिए उत्पादके विना व्यय नही और व्ययके विना उत्पाद नही ।

व्ययके बिना उत्पाद नहीं—अगर व्यय बिना उत्पाद मानोगे तो असत्‌की उत्पत्ति हो जायगी । जिससे मूलभूत कोई भी द्रव्य नही ठहरेगा । घडेका तो दृष्टातभर दिया है । मृत्पिण्ड की अनुत्पत्तिमे कुम्भ पैदा हो गया, ऐसा ही सबका हाल समझें, सो सबकी अनुत्पत्ति हो गई । कुम्भ ही क्या जगतके सर्व पदार्थ अनुत्पन्न हैं ? घडा न होवे तो मनुष्य प्याससे व्याकुल हो जावे । अगर असत्‌की उत्पत्ति होने लगे तो आकाशके फूल मानना पडेगा । फूल तो वृक्षोमे ही पैदा होते है । खरगोशके सीग, गधेके सीग, मनुष्यके सीग भी मानना पडेगा एव बन्ध्या औरतके पुत्रोत्पत्ति भी कह सकते हो । जब यह वाते सिद्ध नही हो सकती तो कहना पडेगा कि असत्‌की उत्पत्ति न कभी हुई, न हो सकती है और न कभी होगी । व्ययके बिना उत्पाद नही है । मिथ्यात्वके व्यय विना सम्यक्त्व पैदा नही हो सकता तथा पूर्वपर्यायके बिना नवीन पर्यायकी उत्पत्ति नही हो सकती । कोई सोचे कि सासारिक सुख भी बना रहे तथा आत्म-कल्याण भी कर लेवें, यह दोनो साथ नही हो सकते । जब सासारिक सुख छूटेगा तब आत्म-कल्याण कर सकोगे । परपदार्थोंमे रुचि होगी तव आत्महितसे वचित रहेगा तथा आत्महित करते समय परपदार्थोंमे रुचि छूटेगी ।

उत्पादके बिना व्यय नहीं—यह विवाद चलनेपर किसीने कहा कि यह बात सिद्ध नही हुई तो हम उत्पत्ति उत्पत्ति न देखकर हम केवल व्यय व्यय ही मानेंगे । अब जो सहार को सिद्ध करना चाहेगा वह उत्पत्ति नही देखेगा । कुम्भका व्यय तो होवे तथा उत्पाद न होवे यह भी असभव है । यदि व्यय तो पदार्थोंका होता रहे और उत्पाद न हो तो फिर सर्व सहार का अवसर आ जायगा । एक अगुली है, अगर इसको सीधी करेंगे तब टेढोपनका अभाव रहेगा तथा टेढी करनेपर सीधीपनका अभाव रहेगा । दोनो एक साथ नही हो सकते कि टेढी

भी रही आवे तथा सीधी भी रही आवे। संहारको देखना चाहे तो सर्ग मानना ही पडेगा। उत्पाद ठीकरोका तो माना नही, फिर उत्पादके बिना सहार किसका और वह सहार कैसा ? उत्पाद नही मानते तो व्यय हो ही नही सकता। व्यय जब हुआ तब उत्पाद तो हुआ नही और व्यय होता रहेगा तो समूल नाश हो जायगा। इससे सत्का उच्छेद हो जायगा। उत्पाद है तब व्यय है और व्यय है तब उत्पाद है। उत्पादके अभावमे यदि व्यय मान लिया तो सत्का उच्छेद ही हो जायगा। अभी दो बातें सिद्ध की गई। मृत्पिण्डका नाश नही हुआ तो सभी पदार्थोंका नाश नही हो सकता, व्यय नही हो सकता, पर नष्ट होते जा रहे है ? मरते-मरते तो दुनियामे आफत ही आफत मच रही है। यह न होवे तो सभी मनुष्योका अवस्थान कहाँ होगा ? खैर, प्रकरणमे आवे। उत्पाद बिना व्यय होता ही है, अगर ऐसा ही मानोगे तो सभीका नाश हो जायगा।

सत्के नाशमे तुम भी कहां टिकोगे—अगर सत्का नाश हो जाय तो तुम्हारा ज्ञान सत है, तब तो उसका भी नाश हो जायगा। ज्ञानका उच्छेद होनेसे सभी विषय कठिन पड जायेंगे। कोई कहे हमारे जीभ नही है, बोल नही सकता हूँ। अगर जीभ नही होती तो क्या यह शब्द बोल लेता। ज्ञानका उच्छेद हो भी जावे, ऐसा कहो तो वह कैसे बन सकता ? जान तो रहे हो। जो जाननेकी शक्ति विशेषका काम है वही तो ज्ञान है। कुछ लोग मानते है सब माया है, भ्रमजाल है, कुछ भी नही है। यह सब झूठा है अर्थात् यह सच है। कोई कहे कि हमारे गाँवके सब मनुष्य झूठे है, चालाक हैं, चापलूस है। तो क्या कहने वाला इन सबसे भिन्न है ? उसने स्वय अपने बिना झूठेपनकी स्वय साक्षी देकर प्रतिनिधित्व किया है। यदि सब गाव झूठा है तो जो यह कहा जा रहा है वह भी झूठ है। क्या इसकी बातका विश्वास किया जा सकता है ? यह तो है ही नही कि सत्का उच्छेद हो गया हो। सबका सब भ्रमसा दिख रहा है। यहा कुछ है नही सब भ्रमसे दिखते है। सत इस दृष्टिसे है कि वह वास्तविक चीज सब अक्षुण्ण है। यह वास्तविक नही है। वर्तमान यह है। यह तो है ही। दुनियाभरके पदार्थ हमारे ज्ञानमे आ गये हैं, इसलिए है और जो हमारे ज्ञानमे न आवे वह नही है, क्या यह भी सही प्रतीत होता है ? हमारे ज्ञानमे यदि आ जावे कि यह चौकी है, पुस्तक है, चटाई है, दुकान है तो सब जगहसे भागकर दुकान, चटाईको हमारे पास ही आना चाहिए। तुम जानते जाओ दुकान है, करोड रुपया है तो क्या जाननेसे अपने पास आ गये ? दुकान अपने स्थानपर है, रुपया अपने स्थानोपर है और ज्ञान ज्ञानके साथ है तथा पदार्थ अपने स्थानपर है।

निश्चयतः सब ध्रुव है—यह जगत कैसा है ? प्रश्न होनेपर उत्तर दिया है, सत् है, अखड है। अनेक पर्यायोमे रहकर ध्रौव्य है। कोई पदार्थ किसीका स्वामी नही है। अपने-

अपने परिणमन भिन्न-भिन्न करते रहते है। दुःख है तो केवल इस बातका कि परमे अपनेको स्वामीकी भावनामे रत रखते हैं। परके स्वामी न आज तक हुए है, न कभी होंगे। न हमारा कोई स्वामी है। ममत्व बुद्धि अनादिकालसे दु ख देती आ रही है। अन्य लोग मानते है कि जब प्रकृति और पुरुपका मेल हो गया तब सब कार्य ठीक हो गये, और मानते हैं उसीकी इच्छापर यह सब कार्य चल रहे है। यह कल्पना अज्ञानान्धकारसे ही भरी हुई है।

भाववान भावका भेद बनाने वाला स्वयका कर्ता है। तो उसे यह दिखता है, रागद्वेष आदि किसके है ? यदि रागद्वेष पौद्गलिक है तथा उनको करने वाला, भोगने वाला जीव है, फिर भी विवेकपूर्वक उन सबका भेद कर लिया जाय तो यह आत्मा उन रागादिकका कर्ता नही रहेगा। यह बात भी नयविवक्षासे है। स्वभावमे जो रागादिक हुए है निश्चयनयसे उनका कर्ता आत्मा है तथा बाकी पौद्गलिक कर्मोंका कर्ता यह नही है। जीव जब जैसा परिणमन करता उस समय उसी तरहकी कर्मवर्गणायें आकर बध जाती है। ऐसा निमित्त-नैमित्तिक सम्बध है।

सब पदार्थ भिन्न-भिन्न है—स्वरूपास्तित्वमे कोई पदार्थ किसीका स्वामी नही है। सब पदार्थ भिन्न-भिन्न है। कोई किसीका कर्ता नही है। अपने-अपने कर्मके अनुसार फल भोगते है। परको कर्ता-धर्ता मानना दु खका कारण है। जीव स्वयका कर्ता है उसमे अन्य किसीकी चतुराई नही चल सकती। इस जीवने अपनी चतुराई बता-बताकर अनेकोसे रिश्ते जोडे। वह रिश्ता चाहे भले महत्त्व न रक्खें, किन्तु यह उसका पीछा नही छोडता। क्योकि धारणा जमी हुई है, यह हमारा उपकार कर देंगे या मैं इनका उपकार कर दूंगा जिससे यश मिलेगा। यही इच्छा गर्तमे ढकेले दे रही है।

व्यतिरेक बिना अन्वय नहीं—इसी तरह स्थिति रहती है। उत्पाद व्यय ध्रौव्य सहित सब पर्यायें रहती है, जो ऐसा न मानें उनसे पूछो कि तुमने व्यतिरेक तो माना नही, जिससे कि पर्यायकी स्थिति रहती है। क्योकि व्यतिरेक मान लोगे तो उत्पाद व्यय ध्रौव्य भी मानना पडेगा, फिर तो तुम्हारा सम्पूर्ण मसला ही बिगड जायगा। इसलिए उत्पाद व्यय ध्रौव्यके डर से व्यतिरेक भी नही माना। व्यतिरेक तो रहा नही तब अन्वय भी किसके आधारसे रहेगा और व्यतिरेककी सततिको छोडकर अन्वय किसको कहोगे ? क्योकि अन्वयमे ही व्यतिरेक समाया हुआ है। जैसे मृत्पिण्डसे घडेकी उत्पत्ति है तथा घडेके व्ययसे खपरियां रूप बनकर पुनः जर्रे-जर्रे होकर भी मिट्टीमे परिणम जाते है। कहो उत्पाद नही है और व्यय भी नही है तो आपत्ति ही आपत्ति उपस्थित होगी, और जब कुछ भी नही माना तो क्षणिक रह जायगा और उसी क्षणिकको नित्यपना रह जायगा। तब कहना होगा कि क्षणिक ही नित्य है। सबसे बडी आपत्ति तो यह है कि भेद माना तो उसीपर डटे है और अभेद माना तो उससे टससे

मस नही हुए । इसीको डाटशाही कहते है । डाटशाहीमे दुनियामे किसीको कुछ समझते ही नही है । पहले डाटशाही चलती थी अब नही रही । इस तरह जहाँ भी देखो वहाँ डाटशाही के बिना नाम ही और नही लेते । एक बार किसीकी बारात लडकी वालेके यहाँ आ गई । जब दरवाजेपर बारात ऊबने जाती है तो लडकेका टीका करनेका दस्तूर किया जाता है । तो टीकेमे लडकेको ५१) रु० टीका किये गये । इतनेमे लड़केका पिता तुनककर बोला कि अगर टीकामे लेंगे तो ५०१) रु० लेंगे, नही तो दूल्हेको खडा खडा जला देंगे । कहाँ तो नाता ऐसा कि रुपयोपर दूल्हेकी शानके साथ हम टिकेंगे, नही तो दूल्हेको ही खत्म कर देंगे । इसी तरह मानेंगे तो भेद ही मानेंगे और भेद नही मानेंगे तो अभेदपर ही डटे है । मिट्टी ही नही रही तो अन्य वस्तु कहाँपर रहेगी ?

अन्वय बिना व्यतिरेक नही—यह आपत्ति उन्हे अच्छी नही लगी तो क्षणिकको ही नित्यपना मान लिया जो कि अपनी बुद्धिका नित्य है । जीवका एक समयका जो परिणमन है उसीको द्रव्य मान लो अथवा जीवके जो कल्पना है या विकार है । उसीको तो द्रव्य माना है । लगता भी ऐसा है कि जो कल्पना है, विचार है, वही आत्मा है । यह माननेसे चित्त क्षणो मे भी आत्मा आ जायगी । जो कि यह सिद्ध नही होता । जो है नही, उसका सद्भाव करना आकाशके फूलोकी कल्पना करना है । इसलिए उत्पाद व्यय ध्रौव्य अलग-अलग है, नवीन-नवीन पर्यायोके उत्पादके द्वारा उन सबमे रहने वाला जो एक अन्वय है, उसके बिना न रह सकने वाला द्रव्य है । वह द्रव्य उत्पाद व्यय ध्रौव्यके बिना नही रह सकता है । जैनधर्ममे वस्तुस्वरूपकी बडी विशेषता बताई है । वर्षों तक पढते रहो, लिखते रहो तब कही उसके सारतत्त्वको जान सकते है । एक तरफ सबकी सब तुम्हारी कहानियां तथा एक तरफ वस्तु-स्वरूपका विशद विवेचन । यह बडा गम्भीर है । इसमे प्रवेश हो जानेपर अनेक झझटोसे निवृत्त हो जाते है । केवली भगवानकी कितनी विशाल-विशाल सभाये लगती थी ? उनमे सभी जीव आकर धर्म श्रवण करते थे । गणधर देव दिव्यध्वनिको झेलते थे तथा दूसरोमे उसको गुञ्जायमान करते थे । प्रत्येक जीव अपनी-अपनी भाषामे समझ लेता था । किसीको दिक्कत नही होती थी । उनकी महिमाका वर्णन कौन कर सकता है ? उन सब उपदेशोमे से प्रथम व प्रधान उपदेश वस्तुस्वरूपका है ।

अन्वित तत्त्व सत्य है—उद्योतमान प्रगट हुआ है निरतर त्रिलक्षणताका चिह्न जिसमे ऐसा द्रव्य अवश्य मानना चाहिए । मनुष्य कहते तुमने हमे लाञ्छन लगा दिया । लाञ्छनका यह मतलब नही कि कोई सच्चा झूठा दोष लगा दिया हो, किन्तु लाञ्छन अर्थात् विशेष बात दर्शाई गई है या प्रकट की गई है या उसका चिह्न दिखाया गया है । कातिक बदी अमावस्या को प्रात.कालमे भगवान महावीरको केवलज्ञानकी प्राप्ति हुई थी और शामके समय गौतम गण-

घरको केवल ज्ञानलक्ष्मीकी प्राप्ति हुई थी। उस दिन शामके समय लक्ष्मीकी पूजा करते हैं, किन्तु लक्ष्म शब्द लक्षणका पर्यायवाची है, इसलिए आत्माके लक्षणोकी पूजा हुई। वह लक्षण आत्माका द्योतक है, तब लक्ष्मीकी पूजा अर्थात् आत्माके लक्षणोकी पूजा या ज्ञानलक्ष्मी की पूजा चली थी। ज्ञानमय आत्माका स्वभाव है। उसकी आराधना करना चाहिए। अधिक उपादेय जो चीज है उसको लक्ष्म करके कहते है, जो पूर्ण उपादेय है उसे लक्ष्मी कहते हैं। मनुष्योने अब पूर्ण उपादेय समझ रखा चाँदी, सोना, रुपया पैसा आदि, इसलिए सबको छोड-कर चचला लक्ष्मीकी पूजा करने लगे। इसे ही उन्हे लक्ष्मी कहते ठीक प्रतीत हुआ।

रच भी खोट शुद्धिमे बाधक है—एक्सप्रेस डिलीवरी चिट्ठीपर १३ नये पैसेका टिकट लगता है और अगर १२ नये पैसेका ही टिकट लगा दिया तो वह एक्सप्रेस डिलीवरी नही मानी जायगी और १२ नये पैसे निरर्थक जायेंगे। इसी तरह अगर अपने द्रव्यस्वरूपके अनुकूल उपयोग बन गया तो श्रेष्ठ है। अन्यथा यहा भी थोडीसी खोट हो तो मोक्षमार्गमे बाधा हो जायगी। मनुष्य सोचता है यह तो थोडासा ही पाप कर रहा हू, उसे मैं अपने पुण्यके द्वारा चूर कर दूंगा। कितनी भूलसे भरा सिद्धान्त है? जैसे कोई अज्ञानमे पाप कर जावे वह पापबन्धका करने वाला है वैसे जो धर्म आचरण करते हुए, जानते हुए पापरूपी कीचडमे पैर डाले। वह भी पापका बन्धक है। वस्तुत. तो यहा भी अज्ञान है। व्यवहारमे ज्ञान वाला कहते है कीचडमे पैर डालकर धोनेकी अपेक्षा न डालना ही श्रेयस्कर है। यह कीचड ऐसा भी दलदल हो सकता हे जहासे निकलना ही कठिन हो जायगा। इसलिए परपदार्थोंको जानते हुए भी अपना उपयोग निजमे चित्त लगे, इस तरहका होना चाहिए तथा अपने आप मे उसको देखना चाहिए।

सर्ग, संहार स्थितिके बोधमे सम्यक्परिचय—वस्तुके स्वरूपके अवगमका वडा उच्च प्रसाद है। इससे ससारके सारे क्लेश समाप्त हो जाते हैं। देखो वस्तुमे सर्ग, सहार, स्थिति तीनो धर्म अनवच्छिन्न है। सर्ग सहारके बिना नही होता, सहार सर्गके बिना नही होता, सर्ग सहार दोनो स्थितिके बिना नही होते, स्थिति सर्ग सहार दोनोके बिना नही होती। जो ही सर्ग है वह ही सहार है। जो ही सहार है वह ही सर्ग है। जो ही सर्ग सहार दोनो है वह ही स्थिति है। जो ही स्थिति है वह ही सर्ग सहार दोनो है। सर्ग माने उत्पाद, सहार माने व्यय व स्थितिके मायने ध्रौव्य है। जैसे कि जो ही कुम्भका सर्ग है वह ही मृत्पिण्डका सहार है, क्योकि भाव भावान्तरके अभावके स्वभावसे ही अवभासित है। जो ही मृत्पिण्डका सहार है वह ही कुम्भका सर्ग है, क्योकि अभाव भावान्तरके स्वभावसे ही अवभासित है। जो ही कुम्भका सर्ग और मृत्पिण्डका सहार है वह ही मृत्तिकाकी स्थिति है, क्योकि व्यतिरेक मुखसे ही अन्वयका प्रकाशन होता है। जो ही मृत्तिकाकी स्थिति है, वह ही कुम्भका सर्ग है

और मृत्पिण्डका संहार है, क्योंकि व्यतिरेक अन्वयका उल्लङ्घन नही करते ।

यथार्थ ज्ञान ही सत्य शरण है—इन तत्त्वोको जिस तरहसे जिनेन्द्र भगवानसे कहा है उनसे विरुद्ध नही होना चाहिए । द्रव्यका यथार्थ लक्षण ही स्वीकार करना चाहिए अन्य रूपसे नही । स्वमेव करोतीति स्वीकरोति । मानना, मजूर करना, अगीकार करना और स्वीकार करना—इनका भिन्न-भिन्न अर्थ होता है । स्वीकारसे मानना शब्द नीची श्रेणीका है अर्थात् जिसे हम कहते है, उसे मानना चाहिए, इसमे निज जैसा भाव प्रकट नही होता । मजूर करना अर्थात् हमारी बातको जरूर मानना चाहिए । अगीकार करना अर्थात् अपना अग बनाकर ही रहना चाहिए तथा स्वीकार करनेमे विशेप अर्थ ही ध्वनित होता है । स्वीकार अर्थात् अपना जीवन सही स्वरूपमे रहना चाहिए, इसका नाम स्वीकार करना होता है । असली स्वीकारता अपने आत्मद्रव्यको स्वीकार करना है । प्रत्येक शब्द अपना जुदा-जुदा महत्त्व रखते है । आचार्योंने उनका बडा उत्तम विधिवत् रूप जमाया है । अग्रेजीमे भी इसी तरहके शब्द मिलते है । किन्तु हिन्दीमे उनको वाक्यमे विधिवत नही बैठाते । यह लडका अनाथ है, इसलिए आप नाथ, रक्षक बन जावें यही भाव तो है, किन्तु उसको यो ही हेय दृष्टिसे जानकर छोड दिया तो क्या महत्त्व रखा आपने कहने वालेका ? लोकव्यवहारमे जैसी दृष्टि रखकर बोला जाय वैसा ही ध्यान कार्यमे लाना चाहिए । अनुबोद्धव्यमू क्रियामे स्पष्ट झलक रहा है, द्रव्यका स्वरूप ही उत्पाद व्यय ध्रौव्यमय है । कोई सोचे मेरा क्या नुक्सान हुआ उत्पाद व्यय ध्रौव्य द्रव्यका स्वरूप है तो रहा आवे । लेकिन द्रव्यका सच्चा स्वरूप ज्ञात होनेसे आत्मद्रव्यको परखनेका यह एक सच्चा उपाय मिलता है । जैसा वस्तुका स्वरूप है वैसा ही और उसके अनुकूल अपनेमे घटाकर जानना चाहिये । इसके बिना पदार्थ को ठीक ढगसे न जाननेपर आत्माका श्रद्धान ही क्या होगा ? इस सम्बन्धमे एक उदाहरण बडा ही हृदयस्पर्श करने वाला है मोही प्राणियोको ।

यदि ऐसी अविनाभावनी त्रिलक्षणा पद्धति नही मानी जाती तो इसका यह परिणाम होगा कि सर्ग अन्य है, सहार अन्य है और स्थिति अन्य है । यदि ऐसी ही हठ कर ली जावे कि ये अन्य-अन्य है तो केवल सर्गमे आनेके यत्न वाले कुम्भका उत्पादन कारणका (पूर्वपर्याय युक्त उपादान अथवा पूर्वपर्यायिका) व्ययका अभाव होनेसे असर्ग ही होगा अथवा असत्की उत्पत्ति होना पडेगी । कुम्भका सर्ग नही हो सका, ऐसा ही सर्व भावोकी बात लगा लो, किसी भी भावकी उत्पत्ति न होगी । असत्का उत्पाद होना मानोगे तो आकाशपुष्प, खरशृङ्ग आदिकी भी उत्पत्ति हो पडेगी । इसी तरह केवल सहरमाण मृत्पिण्डको भी सहारका कारण (उत्तर पर्यायका उत्पाद) तो मिला नही तो सहार ही न हो सकेगा या सत्का उच्छेद हो जावेगा । यदि कहो कि न हो मृत्पिण्डका सहार, तो ऐसी सभी भावोकी बात है, किसीका भी सहार

न हो सकेगा। यदि सत्‌का उच्छेद मानो तो ज्ञानादिका उच्छेद हो जायगा। इसी प्रकार केवल स्थिति चाहने वाली मिट्टीको व्यतिरेकाक्रान्त स्थितिका अन्वय न मिलनेसे स्थिति (ध्रौव्य) ही न रहेगी या क्षणिकके ही नित्यता माननी पडेगी, मृत्तिकाकी स्थिति नही हो ले। ऐसी ही तो सब वस्तुवोकी बात है, सभीकी स्थिति न रहेगी। क्षणिकके नित्यता आ जाय, ऐसा मानो तो चित्तक्षणोके भी नित्यता आ जावेगी। अहो! कितने ऊचे तत्त्वज्ञानकी बात है? तत्त्वज्ञानके प्रसादसे सहज ही वे निर्मोहता आ जाती है। शिवपुरी जिलाके अन्तर्गत वहरवास नामका एक गाँव है। वहाँपर एक वैश्य हलवाई रहता था, वह हलवाई गिरीका काम करता था। ईश्वर भक्ति करनेमे भी बडा प्रसिद्ध था। सभी मनुष्य इसके गुणको देखकर दग हो जाते थे। उसके एक २५-३० वर्षका इकलौता पुत्र था। वृद्धकी वही लाठी था, जिसे जीवनमे सतोष दे पाता। वह बीमार हुआ और २-४ दिनमे ही मृत्युको प्राप्त हो गया। तब गाँवके सभी मनुष्य समझाने आये दुःखी होकर। गाँव वालोकी विचित्रता तो देखो, उसे सतोष दिलाना तो दूर रहा, लेकिन और दु.खी करना चाहते हैं। सभी आ आकर कष्ट देना चाहे, यह रोता क्यो नही? लेकिन उसकी दृढता देखो, वह कहे कि हमारा पुत्र होता तो रहता, सुख देता, वह तो ईश्वरका भेजा हुआ था, ईश्वरने ही उसे उठा लिया। उसने अपनी श्रद्धाकी बात कही तथा उसके चेहरेपर पहलेकी अपेक्षा जरा भी सिकुडन नही आई। देखा हो जो भीतरसे दु खी रहता है वह औरो से बोलता तक नही। अगर वह जबरदस्ती हसनेकी भी चेष्टा करे तब भी उसका उदास चेहरा अन्तरङ्ग स्थितिको प्रकट कर देता है। जब मामूली स्थितिमे यह धैर्य है तब जहाँ तत्त्वज्ञान भी हो तथा अन्य विकल्प चिन्ता, अफसोस आदि न हो वहाँ इस आत्मज्ञानको हो सर्वोपरि मानना चाहिए यह तो हो ही जाता है।

उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यमे दृढ़ मित्रता है—इस गाथामे उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यका अविनाभाव बताया गया है और अन्यथा रूपकमे यह भी टीकाकार पूज्य श्री अमृतचन्दजी सूरिने यह बताया है कि इनका अविनाभाव न मानोगे तो इन तीनोमे से कुछ भी नही ठहर सकता। इस कारण यह मानना चाहिये कि उत्तरोत्तर व्यतिरेकोके (पर्यायोके) सर्ग होनेके द्वारा और पूर्व पूर्व व्यतिरेकोके (पर्यायोके) सहार होनेके द्वारा और सर्वत्र अन्वयके अवस्थान होनेके द्वारा अविनाभूत और जिसमे त्रिलक्षणता निरन्तराय प्रकट है, ऐसा द्रव्य अवश्य मानना चाहिये। भैया! ऐसा ही सब मान लो, इसमे ही सिद्धि प्राप्त होगी। अब जो यह कहते हैं कि उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य यह द्रव्यसे भिन्न है, उनको इस हठग्राहिताको नष्ट करते है। उत्पत्ति आदिकी द्रव्यसे भिन्नता है, इसका सहार करते है। द्रव्यसे उत्पाद व्यय ध्रौव्यकी अभिन्नता है, इसे कह चुके कई बार। पुन प्रश्न उठ खडा हुआ, सो द्रव्यसे भिन्नता नही है, इसे न माननेपर कहते है अथवा लो पदार्थकी भिन्नता ही समाप्त कर देते है तो बोलनेका अवसर ही न मिलेगा।

इसीको भगवान कुन्दकुन्दाचार्य गाथामे कहते है—

उप्पादट्ठिदि भगा विज्जंते पज्जयसु पज्जाया ।
दव्वे हि सति णिपद तम्हा दव्व हवदि सव्व ॥१०१॥

अखंड द्रव्यके परिचयका द्वार—उत्पाद, स्थिति और भङ्ग पर्यायोमें होते है और पर्यायें नियमसे द्रव्यमे ही होती है। यह सब बात ध्रुव सत्य है। अतः यह सब द्रव्य ही है। उत्पाद और स्थिति और भग माने विनाश यह पर्यायोको आलबते है। पर्याये द्रव्यको अवलम्बित करती है। पर्याये नियमसे द्रव्यमे होती हैं। इसलिए पर्यायें ही द्रव्य कहलाई। वस्तु क्या ध्रौव्य मात्र है ? नही, तो देखो ध्रौव्य भी अश हो गया। द्रव्यका यह अग हुआ। किसीका वर्णन करना अर्थात् उसके टुकडे करना भग है, आत्मामे चैतन्य है यह भेदसे है तो उत्पाद स्थिनि और विनाश यह पर्यायोमे है और पर्याय द्रव्यमे है। वह द्रव्य सबका सब एक है, किन्तु प्रति समय उसमे जो परिणमन होता रहता है यह पर्यायें है। पर्याय यह तो एक धर्म है, एक चीज नही है। जो पहले कहा वह सब द्रव्य है। द्रव्यमे उत्पाद व्यय और स्थिति निरन्तर रहती है। सब मात्र नवीन-नवीन उत्पाद ही करते रहते हो, यह बात नही जिस समय नवीन उत्पाद है उसी समय पूर्वपर्यायका व्यय भी है। किन्तु समभना है यह बात हममे भी है और समभना है यह दशा इसमे भी है। यहा 'है' द्रव्यार्थिकनयका विषय है और 'दशा' पर्यायार्थिकनयका विपय है। द्रव्य ही जिसका प्रयोजन है वह द्रव्यार्थिकनय है तथा पर्यायार्थिकनय ही जिसका प्रयोजन है वह पर्यायार्थिकनय है, इसे अमृतचन्दाचार्यजी सूरि ही अपनी टीकामे स्पष्ट करेगे।

सर्गसंहारस्थितिके त्रिकमें परस्पर आलम्बन है—उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य यह द्रव्य से जुदे नही है। इसीको यहाँपर कहते है। उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य ये पर्यायोको आलम्बते हैं। उत्पाद व्यय और ध्रौव्य ये पर्यायोपर निर्भर है, यह कहना उतना अच्छा नही जितना कि अच्छा भाव आलम्बितमे है। तो उत्पाद व्यय ध्रौव्य पर्यायोको आलम्बते है और पर्यायें द्रव्यको आलम्बती है। उत्पाद व्यय ध्रौव्योमे से कोई एक पूर्ण द्रव्य है। उत्पाद भी एक पूर्ण द्रव्य नही है और व्यय भी एक पूर्ण द्रव्य नही है तथा ध्रौव्य भी एक पूर्ण द्रव्य नही है, क्योकि इसकी अनिष्टापत्तियाँ पहले ही कह चुके है। उत्पाद व्यय ध्रौव्य भी द्रव्यका अश है। जो अश होता है उसे पर्याये कहते है। ध्रौव्य तो अश होनेसे पर्याय है। ध्रौव्य उसे कहते हैं जो व्यतिरेकोमे अन्वय रखे। पर्यायोमे अन्वय रखने वाला है वह पर्यायोके आलम्बन बिना कैसे हो सकता है ? द्रव्य पर्यायोको और पर्याये द्रव्यको आलम्बती है। पर्यायें द्रव्यकी दशामे है। द्रव्य पर्यायोको आलम्बती है, पर्याये द्रव्यको आलम्बती हैं। चूकि उत्पाद व्यय ध्रौव्यको द्रव्य आलम्बता है। इसलिए समस्त उत्पाद व्यय ध्रौव्य, पर्याये एकमेक द्रव्य हैं, द्रव्यान्तर नही

है। जैसे अगुलीको एक द्रव्य मान लें। तो सीधी अगुली एक द्रव्य है। सीधापन उत्पाद पर्याय को आश्रित करता है। सीधेपनकी दशाको आश्रित करती है। इसको टेढी करनेपर सीधेपनका व्यय हो जायगा तथा टेढी अगुलीका उत्पाद हो जायगा तथा अंगुली पूर्वकी है ही।

द्रव्यकी निज विशेषतायें ही अनेक है—पुद्गल द्रव्य है, इसमे रूप है वह अभिन्न है या नही? चूंकि रूप रूपत्व रूपको आलम्बता है और रूप पुद्गलको आलम्बता है। सो रूप रूपत्व पुद्गलसे अनर्थान्तर है। अगुलीमे सीधेपनका उत्पाद हुआ या नही? सीधापन सीधी दशाको कहते हैं। यहाँ सीधापन अगुलीको आश्रित करता है। अब विशेष-विशेष देखो, व्यय उत्पादको आलम्बता है। उत्पाद व्ययको आलम्बता है। ध्रौव्य उत्पाद और व्यय (पर्याय) दोनोको आलम्बता है। दोनो दशाओमे एक स्थिति रही वह द्रव्यमे रहने वाले द्रव्यको आलम्बती है। उत्पाद व्यय ध्रौव्यने पर्यायोका आलम्बन किया और पर्यायोंने द्रव्यको आलम्बा, दूसरा द्रव्य नही आलम्बा, अतएव द्रव्य पर्यायोके द्वारा आलम्बित होता है और पर्यायें द्रव्यके द्वारा आलम्बित होती है, क्योकि समुदाय तभी होता है जब समुदायी होवे। समुदायी समुदाय को आलम्बता है।

वृक्षका उपयोगी दृष्टान्त—एक वृक्ष है। उसमे स्कध, तना, शाखायें, डालियाँ, टहनिया, पत्ते, फूल सब है, इससे उनके समुदायका नाम वृक्ष हुआ। वृक्षको पादप भी कहते है। अर्थात् जो पैरोंसे चलते-चलते थक गया है, इस तरहसे थके हुए पैरोकी रक्षा शीतल छायासे करे वह पादप कहलाता अथवा पैरोंसे जो पानी पावे सो पादप, पैरोसे याने जडोसे यह वृक्ष स्कध शाखाके द्वारा ही आलम्बित होता है। शाखा स्कध आदि वृक्षको आलम्बती है। देखो ना, जैसे समुदायी वृक्ष जो स्कध मूल शाखादि समुदायात्मक है वह स्कध शाखादिसे आलम्बित होता हुआ ही प्रतिभात होता है। इसी तरह समुदायी द्रव्य जो कि पर्यायोका समुदायस्वरूप है वह पर्यायोके द्वारा आलम्बित होता हुआ प्रतिभात होता है। इसका भाव यह है कि शाखा, मूल, स्कध आदिको छोडकर वृक्ष और क्या है? वृक्ष जाना ही जाता है शाखा, स्कध, मूल आदिके अवगमसे। पर्यायोको छोडकर द्रव्य और क्या है, कहाँ है? द्रव्य जाना जाता है पर्यायोके अवगमसे। हा तो पर्यायोसे आलम्बित द्रव्य प्रतिभात होता है। पर्यायें उत्पाद, व्यय व ध्रौव्यके द्वारा आलम्बित होती है अर्थात् उत्पाद, व्यय, ध्रौव्योपर पर्यायें आलम्बित हैं। ये उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य अशरूप धर्म हैं। जैसे बीज, अकुर और पादपत्व अश धर्म है। दृष्टान्तमे अशी तो पादप (वृक्ष) है और बीज, अकुर और पादपत्व अश है। जैसे बीज बोया, उसका अकुर हो गया तो यहाँ बीजका तो व्यय है, अकुरका उत्पाद है व पादपत्व सबमे है, सो उसका ध्रौव्य है। यहाँ अशी पादपके बीज, अकुर व पादपत्वरूप तीन अश व्यय, उत्पाद व ध्रौव्यरूप अपने धर्मोंसे आलम्बित होते हुए एक साथ प्रतिभात होते हैं। इसी प्रकार अशी

द्रव्यके उच्छिद्यमान (व्ययको प्राप्त हो रहे), उत्पद्यमान व अवतिष्ठमान भावरूप तीन अश व्यय, उत्पाद व ध्रौव्यरूप अपने धर्मीसे आलम्बित होते हुए एक साथ प्रतिभात होते है। यह एक दूसरेके उपकारके समान है। जैसे गुरु शिष्यका उपकार विद्या पढ़ाकर करता है तथा शिष्य गुरुका उपकार रुपया पैसा द्रव्य देकर अथवा भक्तिसे सन्तोष देकर करता है। प्रत्येक द्रव्य उत्पाद व्यय ध्रौव्यको आलम्बता है। द्रव्य उत्पन्न होता है तो यह विकल्प नही करना चाहिए कि मैंने उत्पन्न किया। द्रव्यको उत्पन्न करनेकी शक्ति किसीमे नही है वह तो स्वय पैदा होता रहता है और नष्ट होता रहता है। दो का मिलकर एक परिणमन कभी नही होता है तथा एक द्रव्यकी दो पर्यायें कभी नही होती है। तब फिर यह कैसे माना जा सकता है कि किसीके द्वारा द्रव्य उत्पन्न किया जा सकता है। आत्मा और शरीर दोनो जुदे-जुदे परिणमन कर रहे है।

दृश्यमान स्कंध एक चीज नहीं—एक स्कध जो अनन्त परमाणुके सघातरूप है उसमे भी एक-एक करके अनत परमाणु होते है, वह सब जुदे-जुदे परिणाम रहे है। उनमे जो प्रत्येककी एक-एक शक्ति है वह इसी तरह परिणाम रही है। निमित्तनैमित्तिक भाव होनेके कारण आत्मा और शरीर एक स्थूलरूप बन जाता है तब भी एक नही रहता है। तभी तो आत्मा जितना है उतनेसे भावदृष्टिका बोध हो जाता है। यह जाननेसे कोई कठिनाई नही होती है। शरीर और आत्माकी मिलकर एक पर्याय यदि होती तो मुक्ति असम्भव थी। उसी तरह दो पर्यायें एक साथ मिल जावें या दो आत्मायें एक साथ मिल जावें, यह कभी नही होता है। अगर तुम मानो भी तो विकल्प ही करते रहो वहा केवल विकल्प पर्याय है। द्रव्य-दृष्टिका भिन्न अनुभव रहता है और पर्यायदृष्टिका भिन्न रहता है। लेकिन एक द्रव्य दूसरे द्रव्यमे नही मिलता है और न एक पुद्गल दूसरे पुद्गलमे मिलता है। अगर जीव और पुद्-गल इन दो की मिलकर स्थूलतया यह व्यञ्जन एक पर्याय है। तो वहाँ भी शरीरके अस्तित्व मे शरीरका परिणमन है तथा आत्माके अस्तित्वमे आत्माका परिणमन है। एक दूसरेका परिणमन मिलकर इकट्ठा नही है। जैसे कोई मकानके छोटे दरवाजेमे से निकला, वहाँ चौखट सिरमे लग गई तो वहाँ खून भी निकल आनेपर भी या वेदना होनेपर भी शरीरकी बात शरीरमे है, आत्माकी बात आत्मामे है। यही कारण है, किन्ही-किन्हीको अपने दूसरे ही काम की धुन रहती है। उस समय उन्हे छोटी-मोटी चोट हो जानेपर उसका कुछ ज्ञात ही नही होता और कामकी धुनमे मस्त रहते है। जितने द्रव्य है उतनी पर्याये चल रही है। जितने कर्म स्कध है उनका उतना ही भिन्न-भिन्न परिणमन हो रहा है जितने अणु है। यह नही हो सकता है कि दो पर्याये एक द्रव्यको आश्रित कर लेवें तथा एक-एक द्रव्य दो-दो पर्यायोको आश्रित कर लेवे।

प्रत्येक द्रव्यका परिणमन उसमें स्वयंमे है—अभी कानखजूरा निकला तो उसने किसके पास जाकर क्षोभ किया ? आप लोग चार-चार छः-छः हाथ दूर बैठे हुए है तब भी क्या वह आपके पास पहुचा है ? नही पहुचा, फिर भी कुछ न कुछ व्याकुलता (हलन-चलन) आपमे हुई है व कुछ लोग तो डरकर दूर भाग गये थे। यह सबके उदयकर्मका नोकर्म या निमित्त तो जरूर था, किन्तु यह जो परिणमन हुआ है वह मेरा है या और किसीका है ? सबका परिणमन सबमे अपना-अपना है। तब शाखा, स्कध, टहनियाँ, पत्तेरूप आलम्बन एक दूसरेमे है, यह भी अभेदको नही बता सकता है। आश्रय, निर्भर आदि शब्दोमे आलम्बन शब्द बढिया मिला। क्या शाखा, तना, मूल, पत्तेरूपसे सबका समुदाय जो द्रव्य है वह पर्याय को आश्रित करके है ? क्या द्रव्यमे उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य है वे क्या द्रव्यको आश्रय करके हैं या स्वतत्र हैं ? इसके एकान्त उत्तरमे दो धारणायें बन जाती है। इसमे दो रहस्य छिपे हैं। एक वैशेषिक लोग है जो उस तरहके अभिप्रायको प्रकट करने वाले हैं। भारतवर्षमे जितने दर्शनशास्त्र प्रचलित है उनमे प्राय:कर वैशेषिक दर्शनकी मुख्यता है। वैशेषिकको जानता कोई नही है कि कौन है। लेकिन कोईसा भी किसी भी मतका स्याद्वादको छोडकर ग्रथ उठा लो, उनमे वैशेषिक दर्शन प्राय मिल जायगा। ईसाई, पारसी, मुसलमान, चार्वाक, सनातन धर्म आदि सभीमे प्राय: आधे शास्त्र वैशेषिक मतके सिद्धातके होंगे। वे साक्षात् प्रसिद्धिमे नही है, किन्तु प्रसिद्धि तो उपासनामे चलती है।

मूल सबका अहिंसा है—मुसलमान मुहम्मद साहबकी कल्पनाके अनुसार चलते हैं। एकने बताया कि पहले सब मुसलमान अहिंसापुजारी या जैन थे। अरबमे मक्का मदीना उनका तीर्थस्थान है। उसमे एक पाटिया लगा है, उस पाटियेके अदर जैनमूर्तिया उत्कीर्ण हैं। उसे न तो वे निकालते है, न और किसीको निकालने देते हैं। जिस तरह बद्रीनाथमे सुनते थे कि वहाँ जैनमूर्ति है। उसके लिए सैकडो आदमी देख भी आये हैं कि वह जैनमूर्ति है तथा उस मूर्तिके सरक्षकोसे पूछो तो वह भी कह देते हैं कि यह जैनोकी ही मूर्ति है। लेकिन ये और वे विशद रूपसे कह नही सकते हैं कि यह दिगम्बर जैनोंकी मूर्ति है। सुना है कि अरब देशमे एक बार एक व्यक्तिकी अश्रद्धा हो गई तो उसने विपरीत बातोका पोषण शुरू किया, किन्तु उसकी माँ के आदेशसे मूर्तियाँ नही उठाई, पत्थरका पाटिया लगा दिया। जैनधर्ममे बताया है कि जहाँ मोह और मद न हो वह जैनधर्म है। जैनमूर्तिका मुख पूर्व दिशामे होता है और दर्शन करनेपर पश्चिमको मनुष्यका मुख रहता है, इससे वह पश्चिमको मुख करते हैं, यह तो स्वाभाविक ही है। वही पद्धति उन सबमे है। प्राय यही तो होता है, अगर एक देशमे महगाई या मद्दी आती है तो दूसरे देशपर भी प्रभाव पडता है या कोई खोज होवे तो उसका आविष्कार भी दूसरे देशोंमे अपनाया जाता है। दूसरे देशमे क्या अपने ही देशमे किसी शहरमे धार्मिक प्रभा-

वना या कलह हो तो दूसरी जगह भी मनुष्योमें वह चिनगारी फैल जाती है, और वे वैसा करनेके लिए तैयार हो जाते है। इसी कारणसे पश्चिममे सभी मुसलमान भाई मुह करते है नमाज पढते समय। अरब रेगिस्तान है, रेत ही रेत अधिक पाई जाती है। वहाँ पानी जमीन मे काफी नीचे मिलता है। इससे पानी ज्यादा खर्च न हो, इससे मुनियो खरीखे टोटीदार कमण्डल, टोटीदार लोटा या डबला काममे लाते है तथा टेहुनीकी ओर उल्टे हाथ धोनेसे भी कम पानी खर्च होनेकी वजहसे कोचोंसे नीचेको हाथ धोते है तथा वह लोग जब मक्का मदीना जाते है तब जू, एकेन्द्रिय वनस्पति जीव तक नही मारते, यह अहिसाकी अपेक्षा कुछ अशोमे है तथा ध्यानमे एकाग्रता लानेके लिए कानोमे अगुली लगाकर चिल्लाने लगे, तब उन्होने सोचा, कोई कितना भी हल्ला मचावे, हमारे चिल्लानेके सामने किसका हल्ला वहाँ सुनाई देगा तथा अरबमे गेहू आदि पैदा न होनेसे अनुपयोगी पशुओसे पेटकी पूर्ति करने लगे हो तब दिनका बधन रखा हो याने शेप दिनोमे हिसा न करे।

प्राचीन शास्त्रोमे जो वैशेषिक दर्शन है, उसमे क्रिया और गुण जुदे-जुदे माने है। उनके यहाँ जो क्रिया है वह अपने यहाँ उत्पाद है तथा जो गुण है वह अपने ध्रौव्य है। तब उन्हे समझाया है कि क्रिया और गुण जुदे-जुदे नही है। दूसरी बात यह है रहस्यको कि यहाँ कर्ता कर्मवाही ज्यादा थे ? एक द्रव्य दूसरेको परिणमा देता है। यह उनका अहङ्कार था, उन्हे समझानेके लिए उत्पाद व्यय ध्रौव्यकी व्याख्या बताई है कि वह जुदे नही है। अगर जुदा माना तो उत्पादको दूसरा द्रव्य मानना पडेगा। यहाँ अगृहीत व गृहीत मिथ्यात्व वालो दोनोको समझाया है।

द्रव्य सभी त्रिलक्षणात्मक हैं—जिसमे शाखा, तना, टहनिया, पत्ते, फूल आदिका समुदाय पाया जावे उसे समुदायी कहते है। उन सबका समूह-विशेष वह वृक्ष है। इन सबके द्वारा वह आलम्बित है। इस तरह उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य इन त्रिलक्षण युक्त पर्यायोसे लक्षित वह द्रव्य है। उससे भिन्न नही है। पर्यायोका समुदाय ही जिसमे समाया हुआ है, ऐसा वह द्रव्य है। अब कुछ वर्तमान स्थितिमे भी देखो ससारी आत्मा भी पर्यायोसे सहित है। पर्यायोको छोडकर आत्मा नही पाया जाता है। इस तरहसे देखनेपर पर्यायोने द्रव्योको आलम्बा है तथा द्रव्य पर्यायोंके द्वारा आलम्बित होता है। द्रव्यसे पर्याय और पर्यायसे द्रव्य बना याने सिद्ध हुआ साधन, सिद्धि पर्यायसे द्रव्यकी निष्पत्ति है। यह इस तरह पर्यायोके समूहका नाम ही द्रव्य है तथा द्रव्यसे ही पर्याये उत्पन्न होती है। यह तो प्रसिद्ध ही है कि पर्यायोके द्वारा द्रव्य आलम्बित है तथा वह द्रव्य उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यके द्वारा आलम्बित है। कोई उत्पादका विचार करे तो उसके द्वारा नवीन निष्पत्तिका ज्ञान होता है तथा व्ययका विचार करनेपर पर्यायका सहार मालूम होता है एव ध्रौव्यपर विचार करनेसे उत्पाद व्ययको छोडकर एक

जुदी ही वस्तु स्थिरता है जो उत्पाद एव व्यय दोनोका मध्यवर्ती है।

उत्पाद व्यय ध्रौव्य आशिक धर्म है—जिस तरह बीज अकुर और वृक्षका परस्पर एकमेक सम्बन्ध है, बीजके व्यय बिना अकुर उत्पन्न नही हो सकता तथा अकुरके उत्पाद बिना बीज व्यय नही और दोनोके बिना वृक्ष नही है तथा वृक्षमे भी बीजका समुदाय है। बीज बोनेसे अकुर बन गया, यहाँ अकुरका उत्पाद और बीजका विनाश है, तथा पादपत्व धर्म बीजमे था व वृक्षके अकुर पत्ते आदिमे भी है। पादप (वृक्ष) तो अशी है उनका समुदाय जो हुआ वह एक एक करके सब अश है। यहाँ बीज तो भग लक्षणमे देखा, अकुर उत्पाद लक्षणमे देखा गया तथा वृक्षत्व बीज व अकुर दोनोमे है। वह तीनो भग एक साथ प्रतिपन्न होते है। अश जो धर्म है वह उत्पाद व्यय ध्रौव्य—इन सब पर्यायोसे सहित है। वह तीनो जो अश है—नष्ट होना उत्पद्यमान तथा स्थित होना—ये सब रहते हैं। यह उत्पाद व्यय ध्रौव्य इन तीन लक्षणोसे लक्षित है। वह नीनो एक साथ चलते है। द्रव्यसे यह भिन्न चीज नही है।

टूट फूट कल्पनामे होती है—कहा जाता है तुमने हमसे नाता तोड लिया, अमुकने हमारी मण्डलीका व्यक्ति तोड लिया। हालाँकि यहाँ नाता तथा पार्टीका आदमी तोडा नही गया है, भिन्नता दर्शानेके लिए इस तरह कहा जाता है। इसी तरह यहाँ आचार्य महाराज द्रव्यकी भिन्नताको तोड रहे है अर्थात् द्रव्य उत्पाद व्यय ध्रौव्यसे भिन्न नही है, सबका सब मिलकर एक ही द्रव्य है, ऐसा सिद्ध कर रहे है। उत्पाद व्यय ध्रौव्य अशोमे चलते हैं। अगर यह मानो कि ये पर्यायोमे नही चलते है ये उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य द्रव्यके ही होते हैं तो द्रव्य का उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य हुआ, यह अनिष्ट प्रसङ्ग आ जायगा। ऐसा मान लेनेपर साराका सारा विप्लव मच जायगा। यदि कहो कि द्रव्यका ही उत्पाद होता है तो उत्पादसे पहिले तो द्रव्य है ही नही, सो असत्का उत्पाद मानना पडेगा या जितने उत्पाद हैं उतने द्रव्य मानने पडेंगे अर्थात् उत्पाद मुद्रित द्रव्योके अनन्तपना आ जायगा। इसका तात्पर्य यह है कि एक द्रव्यमे भूत भविष्य वर्तमान सब पर्यायें अनन्त होती है, सो एक द्रव्यकी उन अनन्त पर्यायोको प्रत्येक पर्यायको एक-एक द्रव्य मानना पडेगा। यदि कहो कि द्रव्यका ही व्यय होता है तो सब द्रव्योका सहार होनेसे शून्यता आ जावेगी अथवा सत्का उच्छेद हो जावेगा। इसका तात्पर्य यह है कि व्यवस्था तो यह है कि एक द्रव्य है उसमे प्रति समयकी पर्यायें विलीन होती रहती है। अब पर्यायोके विनाशकी जगह द्रव्यका विनाश मान लिया, सो लो द्रव्य ही मिट गया। यह तो सबकी चर्चा है, सभी द्रव्य मिट गये। यदि कहो द्रव्यका ही ध्रौव्य या द्रव्यका ध्रौव्य ही रहता है तो क्रमभावी भावो (पर्यायो) का तो अभाव हो गया, इससे द्रव्य का ही अभाव हो जायगा अथवा उनमे अर्थक्रिया ही न रहेगी। भग उत्पाद व्यय ध्रौव्य पर्यायोके होते हैं और वह द्रव्यके ही हैं, ऐसा मान लिया। सब द्रव्यो कैसी हुई ? अमूल

हुई । क्षणमे भग हो गया, विप्लव मच गया तथा विनाशको प्राप्त हो गई । अर्थात् इतने समय तक दृष्टिमे आईं, फिर नष्ट हो गईं । इस तरह माननेपर यह हो जायगा, जैसे कि कहते कि हृष्ट पुष्ट छोटे बच्चोको बुरी (तिरछी) दृष्टिसे देखनेपर नजर लग जाती है उसी तरह द्रव्योके प्रति कटाक्ष किया गया है । यथा मोही जीव परपदार्थोंपर बुरी नजर करते है तो वह उन्हीको फसनेकी कारण बनती है । द्रव्यपर कटाक्ष आया, सबकी सब द्रव्य कटाक्षित है तो क्या वह थोडे ही समयमे ही नष्ट हो जायेंगी या उन्हे नजर ढीट लग जायगी । अगर द्रव्योकी इस तरहकी नजर लगने लगे तो वह क्षणभरमे कटाक्षित हो जायेंगी या समाप्त हो जायेंगी । द्रव्य ही शून्य हो जायगा । इन द्रव्योपर किसीका भी कटाक्ष नही ठहरता है । वह स्वय स्वतन्त्र सत है ।

चैतन्य विकास व चैतन्य प्रभु है—लोग तो ईश्वरका भी अपमान करनेमे नही चूकते । कहते है अमुक ईश्वरका अवतार हुए थे । अवतार अर्थात् उतरना, जिसने ईश्वर सज्ञाको मोक्षमे जानेसे प्राप्त कर पाई, उसे ही पुनः लोकमे उतारकर निन्दा की जाय । अगर कोई व्यक्ति १० वी कक्षामे पहुच जाये और उसे कहे यह तो प्राइमरीकी चौथी कक्षामे आ गया तो उसका अपमान ही होगा । और यहाँ हम ईश्वरको पुन ससारमे उतारकर पतन करना चाहते है । कैसा हास्यपूर्ण व्यग है तथा यह क्या ईश्वरकी महिमा गाना है या कि उसको गालियॉ देना है ? अगर कहो द्रव्य नही है तो सम्पूर्ण जगत शून्य हो जायगा, कहो द्रव्य शून्य नही होगा तो असद्की उत्पत्ति हो जायगी । जिससे अनेक आपत्तियाँ आ जावेगी ।

उत्पाद व्यय मूलभूत द्रव्यका नही—द्रव्यका उत्पाद होता है, यह मानोगे तब भी कहना ठीक नही है क्योकि उत्पाद तो द्रव्यकी पर्यायका होता है । द्रव्यका काम ही यह है कि प्रति समय अपूर्व अपूर्व पर्यायमे वर्तते रहना । द्रव्य स्वभावसे ही परिणमनशील है । वर्तते रहना द्रव्यका स्वभाव है । वर्तते रहनेमे दृश्य उत्पन्न हुई वह नया मौलिक सत नही आ गया है, किन्तु वह सतकी ही दशा हुई है । अगर द्रव्यका ही उत्पाद व्यय ध्रौव्य मानो तो क्या दोष है ? यदि ऐसा मानो तो व्ययसे सत्का उच्छेद ही हो जायगा । अगर द्रव्यका ही उत्पाद होता है तो प्रत्येक समयमे उत्पादसे मुद्रित जो द्रव्ये है उन द्रव्योकी अनन्तता हो जायगी अर्थात् अनतो द्रव्यें बन जायगी, जितनी दशा है वे सब द्रव्य कहलावेंगी, जैसा बौद्धोने एक सस्कारमे अनन्तो आत्माये मानी है । उनके यहाँ खत्म हुई दूसरी उत्पन्न हुई यह क्रम लगा रहना मानते है, यही क्षणभगुरपना है । उनके यहाँ जो आया वह नया द्रव्य है । जैन लोग कहते नयी-नयी दूसरी पर्याय है । द्रव्य तो उत्पादसे मुद्रित (रचित) था ।

व्यय भी पर्याय दृष्टिसे है—द्रव्यका ही व्यय मानोगे तो जगत द्रव्य शून्य हो

जायेगा तथा द्रव्यसे उत्पाद माननेपर अनन्ते द्रव्य हो जायेंगे। सीधे रूपमे वही एक ही अगुली है तो टेढी रूपमें वह एक थी, यदि ऐसा नही मानते तो यह भाव हुआ कि फिर नयी अगुली ही पैदा होना चाहिए और नई अगुली भी नही है तो असदका उत्पाद हो जायगा। जो वस्तु चाही वही प्रकट हो जाना चाहिए इच्छा करनेपर। तब घडे ही घडे उत्पन्न हो सकते है, मनुष्य ही मनुष्य, चौकी, पत्थर आदि उत्पन्न हो जायेंगे तो सिर भी फूट जायेंगे। और जो नही है उसका उत्पाद हो जायगा। द्रव्य उत्पन्न नही होता है द्रव्यकी पर्यायें उत्पन्न होती है, द्रव्य अपने स्वभावसे विपरीत नही परिणमता है। कहो द्रव्यमे ही ध्रौव्य है तो उसमे यह आपत्ति रहती है कि द्रव्य ध्रौव्यात्मक होते हुए भी उत्पाद व्ययसे सहित रहती है। वह उत्पाद व्ययसे जुदी नही रह सकती है। क्रमसे होने वाली जो पर्यायें हैं उनमे क्षणिकता जैसे है वैसे द्रव्यमें क्षणिकता आ जायगी। द्रव्यका ही उत्पाद व्यय ध्रौव्य है, यह बात नही है। वह पर्यायोंमे ही घटित होना है। पर्यायें द्रव्यसे जुदी नही हैं।

उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य तो स्पष्ट है—आत्माके बारेमे भी विचारो। आत्मा एक पदार्थ है। वह प्रति समयमे नवीन-नवीन पर्यायें धारण करता रहता है। यह आत्मा पहले था, अब भी है और आगे भी रहेगा। आत्माका स्वभाव ही इस तरहका है। उसमे उत्पाद व्यय ध्रौव्य चलता रहता है। द्रव्यकी ध्रुवता है, ध्रौव्यमे कुछ भी अदला-बदली नही होती है। द्रव्यके बलसे उत्पाद व्यय ध्रौव्य है अर्थात् ध्रौव्यात्मक भी द्रव्यमात्र ध्रुव है। उत्पाद व्यय ध्रौव्य यह प्रत्येक द्रव्यका एक स्वभाव ही है। जो सबने किसी न किसी रूपसे माना है। कुछ लोग कहते ज्ञानसे मोक्ष होता है। अज्ञान नष्ट हुआ और ज्ञान पैदा हुआ, यही तो मतलब रहा। जैन लोग भी यह मानते हैं कि ज्ञानसे मुक्ति है तथा और लोग भी कहते है कि ज्ञानसे मुक्ति होती है। अज्ञानावस्थामे जीव है, अज्ञानावस्था नष्ट हुई, ज्ञानावस्था पैदा हुई तथा आत्मा वही रही जो पहिले थी। यथार्थ चिन्तवन हुआ, यही मोक्षका उपाय है। कुछ भी कहो, बिना उत्पाद व्ययके कार्य नही निकल सकता। भोजन करनेपर क्षुधा दूर हो गई तथा उदरपूर्ति होनेसे असन्तोषका व्यय हो गया तथा सन्तोषका उत्पाद हो गया। अतएव कहना होगा कि सब जगह उत्पाद व्यय ध्रौव्यकी सिद्धि है।

वस्तुस्वरूपका जयवाद—यहाँ आचार्य कहते है कि हे उत्पाद व्यय ध्रौव्यो! तुम पर्यायोको आलम्बो, और हे पर्यायो! तुम द्रव्यको आलम्बो। तो क्या ऐसा नही है, और आचार्य उन्हे हुक्म या आशीर्वाद दे रहे हैं क्या? नही, बात तो ऐसी ही है अकाटच। इस वस्तुसिद्धिकी सफलतासे सतुष्ट होकर आचार्य जयवाद कर रहे है। भगवानसे कहते कि जयवन्तो रहो। तो क्या वह तुम्हारे कहनेसे जयवन्ते हो रहे हैं? इसके पहले क्या वह जयवन्ते नही है? यहाँ कह रहे है कि हे उत्पाद व्यय ध्रौव्य! तुम पर्यायोका आलम्बन करो। हे

उत्पाद व्यय ध्रौव्य युक्त अंशो। तुम द्रव्यका आलम्बन करो। उत्पाद व्यय ध्रौव्यके द्वारा पर्यायें आलम्बित की जाती है। जो सही बात है उसे सिद्ध करनेके लिए सतोष मना रहे हैं। इस तरहसे कि पर्यायें द्रव्यका, द्रव्य पर्यायोका आलम्बन करो। जिस तरह बेटासे दादी खुश हो जावे तो कहती है कि 'बेटा चिरञ्जीव रहो, जुग-जुग जियो, नातन-पूतन फलो, दूधन कुल्ला करो, तुम्हारी खूब आयुबेल बढे।' हालाँकि वह पूतरा बेटा हृष्टपुष्ट समृद्धिशाली सब कुछ है, फिर तो इस दादीका उल्लास है। इसलिए वह सदैव अच्छा ही अच्छा देखना चाहती है, कष्टो को वह थोडे भी नही देखना चाहती, अतएव मनकी आन्तरिक भावनाये प्रकट की जाती है। नही तो बेटेपर कष्ट भी आ जावे तो यह वृद्धा दूर करनेके लिए क्या कर सकती है? केवल प्रेम बढा सकती है या दवायें दे सकती है, किन्तु होनहारका निर्माण इसके हाथमे नही है। इसी तरह द्रव्योके लिए उनके सही लक्षणमे लोगोके चित्तमे विकार न आवे, इसकी कामनाये अमृतचन्दजी सूरिने की है। एक परिणतिकी सिद्धि की गई है। उत्पाद व्यय ध्रौव्यको यथार्थ नही जान रहे थे, अब जान गये तो हमे तो नवीन ही खोज है। उत्पाद व्यय ध्रौव्य पर्यायोमे है व पर्यायें द्रव्यमे है यह स्पष्ट हुआ।

आत्माको जानकर भी जाननेसे परे ज्ञानशक्तिमय है—इससे प्रतीत होता है कि आत्मा एक अजर अमर स्वतन्त्र द्रव्य है तथा परिणमनशील भी है। वह अनादिकालसे कर्माधीन हो घूम रही है। अतएव आत्मद्रव्यको सामने मानकर भावोकी निर्मलतामे वृद्धि करनेकी कोशिश सदैव करनी चाहिए। मलिन भावोसे बचते रहनेमे लाभ है। यह सब द्रव्योसे सम्बध रखता हुआ भी आत्मा निर्मल ज्ञेयाकार रहता है। अब उत्पादिकका क्षण भेद खण्डित करके द्रव्यका स्वरूप प्रकट करते है, द्योतन करते है। द्रव्यपना तो है ही, उसे ज्ञानज्योतिमे प्रकाशित करते है।

समवेद खलु दव्व सभवठिदिणाससण्णिदट्ठेहि।
एकम्हि चेव समये तम्हा दव्व खु तत्तिदयं ॥१०२॥

द्रव्य सभव, स्थिति, विनाशसे सज्ञित अर्थोंसे समवेत है। इसलिये एक ही समयमे द्रव्य तन्त्रितयात्मक है अर्थात् उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यमय है। द्रव्य एक ही समयमे सभव (उत्पाद) स्थिति और विनाशसे सहित है। वह तीनोसे युक्त एकमेक होकर ही द्रव्य रहता है। यह अक्रम हो गया है। मतलब उत्पाद व्यय ध्रौव्य सहित जो अर्थ सत्ता है उनसे समवेत है। भले प्रकारसे सर्वांगमे प्राप्त है। तादात्म्य सम्बध है, समवेतमे सम व अव उपसर्ग है, इत. क्रिया है और पूरी क्रिया द्योतक सज्ञा है अर्थात् जो भले प्रकारसे सर्वाङ्गमे व्याप्त होते है उसे समवेत कहते है। तो द्रव्य उत्पाद व्यय ध्रौव्य कर सहित है या समवेत है। इसलिए वह तीनो मिलकर द्रव्य है। द्रव्य उत्पाद व्यय ध्रौव्य स्वभाव वाला है। द्रव्यमे जो पदार्थ है वह भी

उत्पाद व्यय ध्रौव्य कर सहित है। पदार्थमे स्वभाव पडा है कि वह प्रतिसमय अपूर्व अपूर्व पर्यायोमें उत्पन्न होता रहता है, विलीन होता है तथा स्थित रहता है बनता। विगडता और बना रहता है। इसको बहुत-बहुत क्यों समझाया गया, अवश्य ही पदार्थ स्वभावसे उत्पन्न होते, विलीन होते तथा बने रहते है। यह सब बातें द्रव्यको विरासतमे मिली है। अगर यह न माने तो अनेक विकल्प उठ खडे होंगे।

द्रव्यको पैदा करनेकी शक्ति किसीमे नहीं है—द्रव्य अपूर्व-अपूर्व पर्यायोमे चलता है। यह जान गये कि द्रव्यको अन्य पैदा नही करता है। इससे कर्तृत्वपनेकी वातका खडन हो गया है। द्रव्य स्वभावसे पैदा होता है। यह कहनेसे पर्याय या क्रिया द्रव्यसे भिन्न नही है। यह न माननेपर क्रियायें द्रव्यादि यह भिन्न है, इस तरह भेद मानना पड़ेगा। इस तरह एक वस्तुकी बात अन्यमे न छेडना चाहिए। नही तो आत्माकी क्रियामे भी भिन्नता माननी पडेगी। तब कल्याण मार्गमे बाधा उपस्थित होगी। भिन्न एक नही बनेगा तब फिर स्वानुभव नाम किसका रहेगा ? स्व जुदा और अनुभव जुदा कहने लगो तो निर्विकल्पता कैसे आवेगी ? फिर इस तरह पद-पदपर आपत्तियाँ आ जावेगी। निर्विकल्पता तब आती है जब द्रव्यका अभेद अनुभव होता है।

मोह दूर कैसे होता है—द्रव्य स्वभावमे उत्पन्न होता है, यह प्रतीति होनेपर मोही जीवोके कर्तृत्वका भाव खत्म हो जाता है। मैंने अमुक मकान दुकान बनाई, पुत्र भाई आदि का पालन-पोषण किया आदि विकल्प भी छूट जाते है। क्योकि पर्यायसे द्रव्य द्वारा ही बनने का विश्वास आने लगता है। इस विश्वाससे मोह दूर होता है।

ध्यान उपयोगके लिए तत्त्व ही मुख्य है। द्रव्यमे पर्यायें स्वभावसे विलीन होती हैं। यदि ऐसा न माना जावे तो अर्थ हुआ कि द्रव्यकी पर्यायें किसी अन्यके द्वारा व्ययको प्राप्त होती है। द्रव्यका व्यय तब तो पराधीन ठहर जायगा। पराधीन रहनेसे सूचना देनी पडगी। किसीको स्मरण न रहा तब उत्तरपर्याय ही क्या बनेगी ? द्रव्यकी पर्यायें स्वभावसे द्रव्यमे विलीन हो जाती है। यह अहङ्कार जो लगा है वह मिटना कठिन है कि द्रव्यकी पर्यायें मेरे द्वारा नष्ट होती है, मिटा सकता हू, यह बुद्धि होनेपर कर्तापना अपनेको सिद्ध करना चाहता है, जो कि कहना कोई अर्थ नही रखता, इसे पहले खण्डित कर चुके हैं।

द्रव्यस्वभावके ज्ञानकी महिमा—द्रव्यमे पर्यायें स्वभावसे विलीन होती है। द्रव्य स्वभावसे स्थिर रहता है। यह दृष्टि आनेपर सब शकायें चकनाचूर हो जाती हैं। इस तरहकी जो भी विशेष बातें है उन्हे विज्ञान युक्तिसे देख लेवें। जब यह तत्त्व चित्तमे समा जाता है तब सतोष होता है, जो घबडाहटका नाम नही लेता। सभी पदार्थ अपनी सहायतापर ही स्थित है। लेकिन जो अपना सहायक दूसरेको मानते है तथा दूसरेकी सहायता करने वाले

अपनेको मानते है उसे ही अनेक तरहके विकल्पजाल आते है। विकल्पजालोसे वह बच पाता है जिसने मान लिया है—अनन्तानन्त पुद्गल, अनन्त जीवद्रव्य तथा एक धर्मद्रव्य, एक अधर्मद्रव्य, एक आकाशद्रव्य और असख्यात कालद्रव्य इन सबसे रहित मैं एक निराला हू। वह अपने बलसे रहेगा एव अशान्तिका पात्र नही बनेगा। जिसने यह समझा है कि मेरे सहाय यह लोग है या मै इनकी सहायता करता हू उसे कितने विकल्पजाल नही करना पडते ? द्रव्य स्वभावसे विलीन होता है, स्वभावसे अवस्थित रहता है तथा स्वभावसे ही उत्पन्न होता है। चूकि वह द्रव्य पर्यायसे भिन्न नही है। यहा द्रव्यका वर्णन किया गया है। मै भी एक द्रव्य हू, तुम भी एक द्रव्य हो, सभी अपनी स्वतन्त्र सत्ता रखते है। द्रव्यका स्वभाव ही ऐसा है कि प्रतिसमय अपूर्व अपूर्व पर्यायोमे आता है तथा पूर्व पूर्व पर्यायें उसमे विलीन होती है और द्रव्यत्व बना रहता है, इसलिए वह त्रिलक्षणसे युक्त द्रव्य ही है।

प्राकृतिक शङ्का—यहाँ कोई शङ्का करते है—बहुत सुना, किन्तु व्यवस्थित बुद्धि नही हो सकी। जो वस्तुका जन्मक्षण है या पदार्थकी उत्पत्तिका समय है वह उत्पन्न करनेमे ही लगा है। व्ययके कार्यमे उसकी शक्ति नही लग रही है। पर्याय उत्पन्न हुई यह उत्पत्तिका ही समय है, वहा व्ययका कार्य नही होना चाहिए। लम्बी शङ्का होते हुए भी शकामे व्यवस्थित बुद्धि रखना है। जो पर्यायके उत्पादका समय है वह उसीमे व्याप्त है। उत्पादके समय उत्पाद ही है, यह शङ्काकार कह रहा है कि एक समयमे अपोजिट (उल्टे) दोनो काम होते रहेगे। पदार्थके ध्रुव रहनेका जो समय है उसके अन्तरालमे उत्पाद व्यय दुर्ललिता होनेसे हटानेपर नही हटाये जा सके। जो हठात् बनकर रहे उसे दुर्ललित कहते है। जो स्थितिका समय है वह जन्मके व नाशका समय नही होना चाहिए। जब उत्पाद हुआ तब उत्पाद कहना चाहिए एव व्ययके समय व्यय कहना चाहिए और अब ध्रौव्य हुआ, इस तरह होना चाहिए। इस तरह दुनियाके कार्य चलते हुए भी नाश, उत्पाद तथा स्थिति यह समझमे नही आता। उत्पाद रहनेपर उत्पाद ही रहने दिया जाय, क्योकि उत्पत्तिके समयमे मरणकी चर्चा शोभा नही देती। जो जन्मका समय है वह उसीमे ही व्याप्त है, जो व्ययका समय है वह उसीमे व्याप्त है तथा जो स्थितिका समय है वह उसीमे व्याप्त है। ऐसी शकाकार शका करता है।

उक्त शंकाका उत्तर—इसे बच्चे भी जानते हैं कि उत्पाद व्यय ध्रौव्य तीनो साथ रहते है। यह तो ठीक है पर उसे स्पष्ट समझे तब है ना। व्ययकी बात होते समय उत्पाद भी उसी समय नियमसे हो जाता है। नाशका क्षण तभी आवेगा जब उत्पत्तिका समय होगा। प्रश्न—वस्तु उत्पन्न तो हुई नही और नाश कहते हो कि यह नही हो सकता। जो नाशका क्षण है वह मिलेगा कैसे ? जब उत्पन्न हो चुकेगा तब नाशकी बात आवेगी। उत्पन्न हो गया और उसी समय नष्ट भी हो गया, यह कैसे बनेगा ? नाशका लक्षण उत्पन्न तथा स्थिति

का लक्षण एक नही है, फिर भी उत्पाद व्यय एक समय मान तो लो तुमने द्रव्यके प्राण ही घोट डाले कि उसी एक ही समयमे उत्पन्न और नाश हो रहा है। जो नाश होता वह जन्मता नही, जो जन्मता वह नाश नही। इस तरह हम उत्पादिकमे विचार करते है तो यहा विशेष तौरसे विचार करनेपर बहुत विचार करनेपर भी उत्पादादिक क्षणभेद हमारे हृदयमे उतरता है। वस्तुका उत्पाद उसी समय होगा जब उत्पन्नकी शक्ति होगी। नाशका समय होता है तभी व्यय होता है तथा ठहरनेके समयपर ही ठहरना चाहिए। इस प्रकार तीनो कार्य एक साथ नही हो सकते। उत्पाद स्थिति और व्यय इस तरहका क्रम शकाकारकी समझमे आया। आचार्य अमृतचन्द जी सूरि समाधान करते है कि भाई "द्रव्य ही अपने द्वारा उत्पन्न होता है, अपने द्वारा नष्ट होता है व अपने ही द्वारा स्थित रहता है" यदि ऐसा माना जाता तो यह क्षणभेद अवश्य हृदयभूमिमे उतरता, किन्तु ऐसा तो माना ही नही गया। पर्यायोका ही तो उत्पाद है, पर्यायोका ही व्यय है, पर्यायोका ही एक प्रवाहरूप ध्रौव्य है। इसमे क्षणभेदकी बात कहासे उठावोगे ? जैसे कि घडा बनने व मृत्पिण्ड मिटने व मृत्तिका बने रहनेमे यह बात देखें—कुम्हार, दण्ड, चक्र आदिसे आरोप्यमाण सस्कारकी सन्निधि होनेपर वर्धमान (घडा) उत्पन्न हुआ तो यहा घडेका जो जन्मक्षण है वही तो मृत्पिण्डका नाशक्षण है और खूब परख लो, वही समय मृत्तिकाकी स्थितिका भी है। इसी प्रकार अन्तरङ्ग बहिरङ्ग साधनोंसे आरोप्यमाण सस्कारकी सन्निधिमे द्रव्यकी उत्तरपर्यायका उत्पाद हुआ। जो उत्तरपर्यायके उत्पाद का समय है वही तो अनन्तर पूर्वपर्यायके नाशका क्षण है और खूब परख लो, वही समय द्रव्यत्वकी स्थितिका है। जैसे देखा ना, घडा है, उसका बनना, फूटना तथा मिट्टी रहना, यह अवस्थाये तीनो एक साथ हुईं। इसी तरह प्रत्येक पदार्थमे पर्याये उत्पन्न अवस्थित तथा नाश को प्राप्त एक साथ होती हैं, यह प्रतीति हो जानेपर आत्मामे प्रकाश हो जायेगा एव सारे भ्रम ध्वस्त हो जायेंगे। जब प्रत्येक वस्तु स्वभावमे उत्पन्न, विलीन तथा अवस्थित रहती है, फिर आगे कहनेको मौका ही नही रह जाता। अगर कोई अधे मनुष्यसे पूछे कि तुम्हे क्या चाहिए ? तो वह दो आखोको छोडकर और कुछ नही मॉगेगा। इसी तरह हम दुखियोको वह ज्योति चाहिए जिससे सारे दुःख ध्वस्त हो जावें। इतना लम्बा-चौडा प्रकरण होनेपर तत्त्व यही निकलता है कि द्रव्य वही उत्पाद व्यय ध्रौव्यसे युक्त है। दिगम्बर जैनाचार्योंकी प्रत्येक बात सत्य होती है। अगर आप उत्पाद व्यय ध्रौव्यको समझनेके लिए साक्षात् आँखोंसे देखना चाहो तो गेहू, चना वगैरा पेटीमे बन्द करके दो-तीन वर्षको रख छोडो, उनमे उतने समयमे कुछ न कुछ परिवर्तन होकर मिल जायगा। कोई कुछ करने तो नही गया और परिवर्तन हो गया अर्थात् घुन लग जानेसे कुछ हिस्सा आटे रूप परिणम जायगा तथा गेहू भी रहा आयेगा और कुछ गेहूकी पर्याय नष्ट व्यय भी हो जायगी। अतएव कहना होगा कि प्रत्येक द्रव्यका

स्वभावसे विकसित होना, विलीन होना और अवस्थित रहना ही तीनो कार्य एक साथ है।

प्रत्येक वस्तु स्वयमे उत्पाद व्यय ध्रौव्ययुक्त है, अतः अत्यन्त स्वतंत्र है—मै किसीका कर्ता नही, मेरा कोई उपकार करने वाला नही है। यह व्यर्थका अहकार कर रहा था, अमुक को मैने बनाया, धन कमाया, उत्पन्न किया आदि अथवा मै उक्त कोई कार्य करता हूं, कर सकूंगा, इन विकल्पोसे कोई लाभ नही होगा। इन विषयभोगोने जन्म-जन्ममे अनेक दु ख दिये, फिर भी उन्हीमे लिप्त है। भला उनका कौनसा सुख मिलनेका है ? उनका जितना सेवन किया जायगा उतना ही ताप बढेगा। इन विकल्पोसे पिण्ड छुडाकर परमपिताके ध्यानमे अपने सर्वस्व को लगा देवे तब सब कुछ मिलनेका है। द्रोणाचार्यने वृक्षपर कागजकी चिडिया रखकर सर्व शिष्योसे पूछा कि तुम्हे क्या दिखता है ? कोई वृक्ष कहे, कोई पत्ते, डालिया तथा कोई चिडिया बतावे। लेकिन जब अर्जुनसे पूछा गया तो उसने कहा कि हमे आँखके सिवाय (चिडियाकी) कुछ नही दिखता। जब इस तरहकी ध्यानकी एकाग्रता आ जावे कि आत्माके अलावा कुछ नही दिखता। उस समय कोई निन्दा करता रहे या तुम्हारी चुगली करे, कष्ट देनेका प्रयत्न करे, द्रव्य हरणको विचारे, शरीर विदारणकी सोचे तब भी तेरे आत्मप्रभुका कुछ भी नही जानेका है। पूजन करते समय पढा जाता है—'अर्हन् पुराण पुरुषोत्तम पावनानि, वस्तूनि नूनमखिलान्ययमेक एव। अस्मिन ज्वलद् विमल केवल बोधवह्नौ, पुण्य समग्रमहमेकमना जुहोमि ॥' हे अरहत भगवान् ! पुराण पुरुषोत्तम ! मै जो अष्ट द्रव्य चढा रहा हू, यह मुझे एक ही मालूम पड रहे, उसे मैं जुहोमि, चढाता हू। यही नही मै सम्पूर्ण वस्तुओका होम करता हू अर्थात् मै उन सबसे मोह छोड विरक्त होता हू। इसपर भी सन्तोप नही, तब कहता कि मेरे पुण्यभाव जो ससार वैभवका कारण है, उसे भी मै छोडता हू। केवल अपना स्वात्मानुभव स्वरूप ही ग्रहण करता हू। जिन पुण्यभावके द्वारा कर्म बँधते थे उसे भी होमता हू। यही पूजा सच्ची पूजा है, न कि बदलेमे कुछ माँगना।

द्रव्यमें उत्पाद, व्यय व ध्रौव्य एक साथ हैं—द्रव्यके उत्पाद व व्ययके समय जुदे-जुदे नही है। व्ययका क्षण जुदा है तथा उत्पादका क्षण जुदा है, अगर यह बात सिद्ध हो जाय तो द्रव्यको अपने ही द्वारा उत्पन्न होना चाहिए व अपने ही द्वारा नष्ट होना चाहिए तथा स्थिर भी अपने बलपर कुछ अन्य चीज होना चाहिए तो तुम्हारी शका सिद्ध हो जायगी। तब क्षण-भेदकी जरूरत पडेगी। ऐसा होनेपर उत्पाद व्यय ध्रौव्य तीनोका क्षण और-और मानना पडेगा। परन्तु इसको तो माना नही है कि द्रव्यको ही उत्पाद व्यय ध्रौव्य माना है। वह पर्यायोमे रहकर उत्पाद व्यय ध्रौव्यको प्राप्त होता है। वह तीनो असंमय है। अगर यह नष्ट नही माना जायगा तो ध्रौव्य किस समयमे कहेगे, उत्पाद किस समयको कहेगे व व्यय भी किस समयको कहेगे ? मृत्पिण्डसे घडा बनाया गया। वहाँ घडेकी उत्पत्ति तथा मृत्पिण्डका

विनाश (व्यय) हो गया और मिट्टीका सद्भाव दोनो अवस्थाओमे रहा कहलाया। शङ्काकारकी शङ्का यह थी, मृतपिण्डका समय जुदा होता है, घडा बननेका समय जुदा होता है और स्थित रहनेका समय अलग होता है। समय जुदा-जुदा तो तब हो सकता है जब हम मिट्टीका ही उत्पाद मानते, मिट्टीका ही व्यय मानते तथा मिट्टीको ही ध्रौव्य मानते। तब तुम्हारा कहना ठीक था। जिस समय मृत्पिण्डका व्यय हुआ, उस समय मिट्टी नष्ट नही हुई, मिट्टी वही है तथा मृत्पिण्डसे घडेकी उत्पत्ति हुई, तो क्षणभेद कैसे हो सकता है? पूर्व पर्यायका व्यय किया तो उत्तर पर्यायका उत्पाद हो गया या उत्तरपर्यायका उत्पाद तथा पूर्वपर्यायका व्यय यह क्रम चलते हुए भी दोनो कार्य साथमे होते हैं। जैसे मृत्पिण्डका अभाव घडेके सद्भाव रूपमे है। किसीके घरमे पडौसीका लडका गिलास फोड जावे तो काँचके टुकडे लेकर लडकेके माँ-बापको बताने जाता है और कहता है कि देखो तुम्हारे लड़केने हमारा काचका गिलास फोड दिया। हालाँकि वहाँ गिलास नही है, लेकिन पूर्वमे गिलास था, इसलिए वह गिलासका ही भाग है। गिलासका अभाव वहाँ उन टुकडोके सद्भावरूपमे है, इससे सिद्ध हुआ अभाव सद्भावरूप होता है। पर्यायकी स्थिति भी एक समय है। वही व्यय तथा उत्पत्तिका समय है। उसीको व्यय कहते हैं तथा वही उत्पत्तिको प्राप्त होता है। इस तरह क्षणभेद नही है।

पर्यायमात्र ही द्रव्य मत समझो—पर्याय ही को द्रव्य नही मानना चाहिए। जिसने पर्यायको द्रव्य माना, उसे गालियाँ मिल रही है। पर्यायमे सलग्न व्यक्तिका कौन आदर करता है? स्रोतभूत द्रव्य अनादिकालसे है। ऐसा कौनसा द्रव्य है जो नया बन रहा है तथा पुराना मिट रहा है। कोई भी द्रव्य मूलसे नष्ट नही होता तथा पुरानेके आधारको छोडकर नया द्रव्य उत्पन्न नही होता। देखो—जैसे घडा, मृत्पिण्ड व मृत्तिकात्वमे प्रत्येकमे रहने वाले उत्पाद, व्यय व ध्रौव्य त्रिस्वभावस्पर्शिनी (तीनो स्वभावका स्पर्श करने वाली) मृत्तिकामे सामस्त्यरूपसे एक समयमे ही देखे जाते हैं। इसी प्रकार उत्तरपर्याय, पूर्वपर्याय व द्रव्यत्वमे प्रत्येकमे रहने वाले उत्पाद, व्यय व ध्रौव्य त्रिस्वभावस्पर्शी द्रव्यमे सामस्त्यरूपसे एक समयमे ही देखे जाते है। इससे यही सिद्ध हुआ ना कि उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य सब एक ही समयमे अर्थात् साथ-साथ ही है। अब और देखो—जैसे घडा, मृत्पिण्ड व मृत्तिकाकालमे रहने वाले उत्पाद, व्यय व ध्रौव्य मिट्टी ही है, कोई अन्य पदार्थ तो नही। इसी प्रकार उत्तरपर्याय, पूर्व-पर्याय व द्रव्यत्वमे रहने वाले उत्पाद, व्यय व ध्रौव्य द्रव्य ही तो हैं, अर्थान्तर नही हैं। भैया! द्रव्यका स्वरूप अच्छी तरह समझमे आता है तो द्रव्यकी स्वतंत्रता समझमे आ जाती है, और जब द्रव्यकी स्वतत्रता समझमे आती है तब मोह ठहर नही सकता। जिनके वस्तुस्वरूपका अवगत नही है वे ही बहिरात्मा परपदार्थोंकी ओर आकृष्ट होकर व्यर्थका नाच नचाते हैं।

मदारी लोगोको देखा होगा—वह डमरू डम-डम-डम-डम करके बजाते चलते है और

भीड इकट्ठी होनेपर अपना खेल शुरू करते है। कई खेल दिखाते-दिखाते किसी लडकेको जमूडा बनाकर कहता है कि बोलो जमूडे क्या खाओगे ? जमूडेदाऊ कहते है कि मथुराके पेड़े या आगराका पेठा खायेंगे। तब फिर वह हाथकी सफाईसे पेडे और पेठा तैयार दिखा देता है। लेकिन वह पेडा और पेठा केवल मुहमे पानी भरने मात्रको होता है। कुछ दिखाना मात्र है। खानेके लिए कुछ नही मिलता जमूडेको। जमूडे जैसेके तैसे रह जाते है। अगर उनमे जीव-जन्तु, रुपया, पैसे, पेडा, मिठाई या फल आदि बनानेकी ताकत होती तो वह स्वय क्यो इस तरहके पैसे-पैसेको अपना खेल दिखाते फिरते ? यही हाल हम ससारी जीवोका हो रहा है। यह मनमोहक पदार्थ जमूडे बनाकर आते है और हमे खूब नाच नचाते है। हम उनकी सेवा करते है दिन-रात, और वह अपना लुभावना रूप दिखाकर हमसे विदा ले जाते है। हमे कुछ नही मिलता। अगर उन पदार्थोंने विदा लेनेमे देर की तो पहले वह हमारी इस पर्यायसे विदा कर देते हैं। यह चक्र सदैव चलता ही रहता है। इसमे कोई क्या सुधार करेगा ? सुधार करना है तो अपने आत्मद्रव्यको सबसे भिन्न निराला अनुभव किया जाय। यह सब पर्यायोके ही खेल है।

नया द्रव्य न उत्पन्न हुआ और न होगा—मनुष्यपर्यायका व्यय हुआ तथा देवपर्याय की उत्पत्ति हुई, लेकिन आत्मद्रव्य जो पहले था वही स्थित है, उसमे तबदीली नही हुई। अतएव द्रव्य अपने आप किसी पर्यायरूपमे उत्पन्न होता है तथा खूब ही स्थित रहता है एवं स्वत ही पूर्वपर्यायके अभावरूपमे नष्ट होता रहता है। यह बात माननेसे बहुतसे सन्देह समाप्त हो जाते है। जैसे कुलाल, दड, चक्र, चीवर बाह्य पदार्थ हैं, इनसे आरोपमान सस्कारोकी सन्निधि होनेसे वर्धमान (बढता हुआ घडा) का जो जन्मक्षरण है वही मृत्पिण्डके नाशका क्षरण है तथा वर्धमानके उत्पाद व मृत्पिण्डके नाशमे रहने वाला व मूल तत्त्वकी स्थितिका क्षरण एक है। मृत्पिण्डको कुम्हारके द्वारा धीरे-धीरे बढ़ाया जाता है। सो वर्द्धमान है तथा छोटे-छोटे डबलोको कुम्हार ठोक-ठोककर घडा तैयार करता है, सो घडा है। इसके पूर्व घडा नही है। ठुक-पिटकर घडा तैयार हो जाता है। फूटा होनेपर कुम्हार पानी तथा मिट्टीके घोलसे जोडता जाता है। राख उसके लिए ठोकते समय बनने वाले घड़ेपर जरूरी होती है एव घडा बननेपर फूटे घडेके मुहपर (घघरा) उसे सूखनेको जमा देता है। तत्पश्चात् पककर पक्का घडा बन जाता है। पानी भरे जानेपर उसीको कलश भी कहते है। इन सब पर्यायोमें क्षणमे उत्पाद व्यय ध्रौव्य है। माघनन्दि मुनि कुम्हारके यहाँ रहने लगे थे। उन्होने भी वहाँ थप-थप करना, मिट्टी कमाना, आवा लगाना कार्य देखा होगा व किया होगा। उन्होने उसी वातावरणमे एक महत्त्वपूर्ण स्तुति बनाई थी। वहाँ मुनिके जीवमे प्रतिक्षण उत्पाद व्यय ध्रौव्य है। वर्धमानके बाद सामान्यतया घड़ा कहते है। वर्धमानका जो जन्मक्षण है उससे आरोपित होनेपर पदार्थ

सामान्य नियत है। कोई पदार्थ रुककर नही बनता। जैसी योग्यता होती है, उसी तरहका निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध मिल जानेपर वैसी पर्याय बनती है। अक्षुण्ण द्रव्यमे यथायोग्य सन्निधान व सम्बध पाकर पर्याय पैदा होती है। किसीने उसकी रचना नही की है। जिन किस्मो की योग्यता होती है उसी तरहका बाह्य सन्निधान मिट जाता है तो वह निमित्त होता है। द्रव्य अपने अक्षुण्णपनेसे जुदा नही होता। जो वर्धमानकी उत्पत्ति है वही व्ययका क्षण है तथा स्थितिका क्षण भी वही है।

नय पक्षके आग्रह व्याधिका नय पक्ष इलाज—किसी व्यक्तिको अगर शरीरमे गर्मीका रोग हो जाय तो उसको शीतल गुण वाली दवा दी जाती है, उसमे भी कुछ गर्मपनकी दवा साथमे रहती है। नही तो शरीरमे जाकर वह नुक्सान कर जावेगी। उसी तरह ठंडका रोग हो जाने वाले व्यक्तिको गर्म दवा दी जाती है। उसमे शीतल दवाके अशका ध्यान रखना जरूरी है, हीनाधिकता होनी चाहिए, नही तो ठड गर्मका रोग सन्निपातका रोग हो जायेगा। इसी तरह जो अपनेमे यह धारणा बनाये बैठा है कि मैं किसीको कर देता हू, मेरे द्वारा ही यह कार्य चलता है, उनके लिए निश्चयनयका इलाज है, वह कार्यकारी है। कोई निश्चयपक्ष के रोगी हैं तो ये कहते हैं कि आत्मामे सब पर्याय हैं, स्वभावसे प्रकट होती हैं, उनकी दृष्टिमे उनका इलाज ही नही क्या ? जब स्वभावसे होती हैं तो अब क्या करे ? उनके लिये व्यवहारका इलाज है। उसमे भी स्याद्वादका जो ध्यान रखा गया है, उसका अनुसरण करना चाहिए। उसका पक्ष भी साथमे रहनेसे कार्य चलेगा। व्यवहार बिना भी तो कोई कार्य नही हो सकता। निश्चयनयको लेकर कोई मुनिको भी आहार न दे तो तीर्थके प्राण ही सकटमे डाल देगा। निश्चयनय बिना तो समाधिकी पात्रता नही आवेगी। अगर एककी बुराई है तो सबपर उसे घटित नही करना चाहिए। कोई एकान्तके भी रोगी हैं तो उनकी भी चिकित्सा करनी चाहिए अनेकान्तसे। इस तरहका कोई ग्रन्थ नही मिलेगा, जिसमे निश्चयके साथ व्यवहारका वर्णन नही किया गया हो। समयसारकी एक गाथा व प्रकरण भी इस तरहका नही है जिसमे निश्चयके साथ व्यवहारका वर्णन न हो तथा व्यवहार एकान्त भी नही मिलेगा। तत्त्वार्थसूत्र (मोक्षशास्त्र) मे सामान्यज्ञान होते हुए ही निश्चय व व्यवहारका वर्णन साथ-साथ चलता है। 'सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्ग ।' इसमे सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र व्यवहार है तथा मोक्षमार्ग निश्चय है। 'तत्त्वार्थ श्रद्धान सम्यग्दर्शनम्' तत्त्वोका अर्थ याने वस्तुस्वरूप सहित श्रद्धान करना व्यवहार है और सम्यग्दर्शन निश्चय है। 'तन्निसर्गादधिगमाद्वा'। इसमे निसर्गज सम्यग्दर्शन निश्चयनयका प्रतीक है और अधिगमज सम्यग्दर्शन व्यवहारनयका प्रतीक है। 'जीवा जीवास्रव बन्ध सवरनिर्जरामोक्षास्तत्त्व' इस सूत्रमे जीव, अजीव, आस्रव, बध, सवर, निर्जरा और मोक्ष व्यवहारनयसे हैं व तत्त्व निश्चयनयसे है। इसी तरह प्रत्येक सूत्रमे

अर्थ निकल सकता है। ये आचार्य भी स्याद्वादके कितने मंजे हुए पुरुष थे कि बात बातमे बात यथार्थ चल रही है।

हितदृष्टि निश्चयनयमें ध्वनित होती है—केवल निश्चयनय है तथा व्यवहारनय नही है ऐसा तो नही है। प्रमाण न हो तो वह बात कैसे मानी जाय या जानी जा सकती है? निश्चयनय वीतरागताका निमित्त है। जिस दिन तत्त्वका यथार्थ निश्चय होगा उस दिन व्यवहारसे सभी मुख मोड लेगे। जो वर्धमान (घडा बनने) का समय है वही नाशका समय है। उत्पत्तिमे पूर्वपर्यायिका नाश तथा उत्तरपर्यायकी उत्पत्ति है। व्ययमे पूर्वपर्यायिका व्यय उत्तरपर्यायिका उत्पाद है। स्थिति सदा है। इस तरह सत्की पहिचान होती है। मै भी सत् हू। नवीन-नवीन पर्याये प्रगट होती है तथा पुरानी पर्यायका विनाश होता है। कोई नया द्रव्य उत्पन्न नही होता तथा पुराना द्रव्य विलीन नही होता है। उन दोनो समयोमे रहने वाला स्थितिका काल है। मैं एक होकर नवीन पर्यायमे जाता हू तथा पुरानी पर्यायको छोडता हू। एक ही समयमे उत्तरपर्यायिका उत्पाद व पूर्वपर्यायिका नाश होगा। देख लो असलियत, जो सहज निरपेक्ष ध्रुव तत्त्व है उसे तो देखता जानता कौन है और जो मायाजाल है उसपर ही प्राणी हामी हो रहे है। वस्तुकी इस त्रितयात्मकताको ही कुछ दार्शनिकोको प्रामाणिक अखण्ड की दृष्टि न रखकर अद्वैत व माया—इन दो प्रकारोमे रखना पडा है। इसपर प्रश्न होना प्राकृतिक है कि मायाका आधार क्या है? तब इसके उत्तर अनेक कल्पे जान पडे।

देखो मोहकी लीला—जो क्षणभरको ठहरते व नष्ट हो जाते है उस क्षणभर ठहरी हुई चीजमे मोह हो रहा है। मेरी बात नही मानी तो गुस्सा आ गया। मेरी बात नही रही। बात तेरी थी भी नही। जब बोला तब भी तेरी बात नही थी। जिस समय बसा रहे उस समय भी नही है। थोडासा धन, बल, विद्या, नेतागिरी आ गई तो अब तो अहकार मे बात नही करते। चक्रवर्तीके धनकी कल्पना भी तो करो जिसके यहाँ ९६ हजार रानियाँ, ८४ लाख हाथी, १८ करोड घोडे तथा ३२ हजार मुकुटबन्द राजा सेवा करते थे। इस तरह का वैभव होनेपर भी ज्ञानी होनेसे उनमे सुख नही मानते, वैराग्यमे सुख मानते हैं और देखो अज्ञानी असन्तुष्ट है परपदार्थोंके न मिलनेसे। अज्ञानी इस तृष्णामे लगा रहता है, कुछ धन पुत्रादिसे सपन्न और हो जाऊँ। वैभव तो सुखका हेतु है नही। विकल्पोंसे धनी गरीब मान रहा है, विकल्पोपर ही गर्व करता है तथा दुःखी भी होता है। जब अपने स्वरूपमे आया तो सब गर्व चला जाता है। अपना कुछ है नही और अब गया भी कुछ है नही, फिर गर्व व दुःख किसका किया जावे? ज्ञाताद्रष्टा बनना ही कल्याणप्रद है।

शान्ति पानेका सच्चा उपाय करो—जगतके सभी प्राणी शान्ति चाहते है। प्रयत्न भी जो कुछ करते है वह शान्तिके लिए करते है। ठीक प्रयत्न कौनसे हैं, इस बातपर मोही

जीवोने विवेक नही किया। उन्हे मनमे जो कुछ आया उसे ही करने लगे। इसीसे ससारी जीव भूठे प्रयत्न करनेपर शान्ति नही पा सके। तुम शान्ति दिलाना किसीको चाहते हो तथा शान्तिका स्वरूप क्या है ? किसे शान्ति देना चाहिए ? शरीरको शान्ति देना चाहते या आत्माको, जिसे शान्ति देना उसे जानो व शान्तिको भी जानो। आत्माकी वात किसी न किसी रूपमे सर्वत्र प्रसिद्ध है। लोगोके मुँह सुना जाता है, अमुककी आत्मा विलप रही है। सन्तान नही थी, धन नही था तो सन्तान होनेपर कह दिया—सन्तोप हो गया, धन मिल गया तो कह दिया भगवानने सुन ली। वृद्धावस्थामे सहारा मिल गया। कुछ लोग कहते है वह बाल-बच्चोकी खबर नही लेता है जिससे अमुककी आत्मा विलप रही है। बहुतसी बातें है, किन्तु ज्ञानियोका उपाय तो देखो सबका एक लक्ष्य, एक मार्ग। ज्ञानी वही है जिसने आत्मस्वरूपको यथार्थ तथा अवगत कर लिया। वह आत्मस्वरूपको पानेका इच्छुक बाल-बच्चोका मोह छोड कल्याणके मार्गमे चल पडता है। आत्मस्वरूप जाने बिना शान्ति नही मिलनेकी। जब तक आत्मस्वरूप नही जाना तब शान्ति नही मिलेगी। किसको ? जिसको शान्ति देना है उसीका निश्चय नही कर पाया, तब वह शान्ति किसको दी जायेगी ? धन इकट्ठा हो जावे तो यह क्या आत्माको शान्ति दे देगा ? सन्तान हो जाय तो क्या वह दे देगा ? इनमे शान्ति नही, इनमे स्वयका शान्तिपना भले हो किन्तु वह हमे शान्ति देनेको समर्थ नही है। इन कार्योंमे रत रहने वाले शान्तिका अवलोकन कर पाते होंगे, इसमे सन्देह है। हाँ इन्द्रियोकी कुछ इच्छायें मर जावें तो शान्तिका सुख देखा जा सकता है इसे स्वीकार कर सकते है। दुनियामे जन्म लेकर ऊचे-ऊचे ओहदे प्राप्त करना, सन्मान पानेके भूखे रहना, यह आत्माको शान्ति दिलानेके साधन नही किन्तु तृष्णाग्निको प्रज्वलित करनेके ही कारण है। किसी देशका राज्य भी मिले वह शान्ति नही दे सकता। छह खण्ड पृथ्वीका अधिपति चक्रवती भी सारे वैभवको ठुकराकर निर्जन बनमे जाकर ध्यान करता है। उसे परपदार्थ बेडियाँ व हथकडियाँ मालूम हो रही थी, अतएव उन्हे छोडकर सहज आनन्दमे रमण करनेका उत्सुक इहलोकके पदार्थोंको धूलके समान छोड आता है। स्वादिष्ट भोजनमे भी शान्ति नही, रगबिरंगे औरोको मोहित करने वाले सुवर्णाभूषणो तथा कपडोमे भी शान्तिका लेशमात्र नही। इन सबको हित जानकर आत्मा विह्वल है। इन लौकिक सुखो तथा दुःखमे शान्ति नही। शांतिका स्वरूप समझनेके लिए व्याकुल है। कुछ विरक्त चित्त वाला वह इनमे फसना नही चाहता।

तब तो विरक्त होनेसे ही लाभ है—अब तो दिमागमे समा चुका विवेकके बलसे आत्मबल बढाकर शान्तिका साम्राज्य प्राप्त किया जाये। जिसके कारणसे अशान्तिमय जीवन बिता रहे है वह कोई भी वस्तु काम नही आवेगी। घरके लोग, पडौसी आदर सत्कार करें, इससे भी सुख नही, न शान्ति ही है। इन समागमोको पाकर अशान्त हो रहे हैं। इन दुष्ट

समागमोमे प्रीति करनेके अवसरोको भी टाल देवे तब शान्ति है। इस स्थितिके लिए सतत अभ्यास रखना पडेगा। बिना अभ्यासके तो कोई भी कार्य सिद्ध नही होता है। मनुष्य दूसरो की प्रशसा करते है कि अमुक व्यक्ति कितना शान्त है, क्षमापरिणाम वाला है तथा विद्वान है, धनवान हो गया, किसी कला विशेषमे प्रवीणता पा गया है। यह प्रशसा करना ठीक है। करना चाहिए, किन्तु उसके इन गुणोकी परीक्षाके लिए यह भी तो अनुमान करें कि इसके जीवनमे कितने समयके अभ्यासका इतिहास छिपा हुआ है ? कोई भी व्यक्ति किसी गुणमें बिना प्रयासके आगे नही बढ जाता। उसे अपने जीवनके अमूल्य क्षण उस कार्यकी बलिवेदी पर अर्पण कर देना पडते है। तब कही वह समाजका कुशल कर्णाधार माना जाता है। भैया ! पदार्थका यथार्थस्वरूप समझ चुके तब भी प्रयास न करो तो दोष किसका ? वह भय भी निराधार है कि अमुक वस्तु हमे मिलेगी या नही ? यहाँ तो सासारिक सुखोको होमकर एक चिरकालसे जो न मिला, इस तरहके स्वसवेद्य आत्मसुखकी अभिलाषा होना चाहिए। मनुष्यके द्वारा इस तरहकी कौनसी वस्तु है जिसे वह प्राप्त न कर सके ? लौकिक कार्योंमें गजबकी मानसिक शारीरिक शक्ति लगाकर उन्हे प्राप्त कर लेते है। तब क्या अपने अन्दरकी वस्तुके लिए भीख माँगनेकी आवश्यकता है ? कदापि नही, केवल तत्त्वनिर्णय कर अटल हो जाना चाहिए। तब अपनी ज्योति स्वय जागृत होकर स्वात्मानुभवका बोध करा देगी।

ज्ञेयोका यथार्थस्वरूप समझा जाना बड़ा पुरुषार्थ है—यहाँ ज्ञेयाधिकारमे वस्तुस्वरूप का ही वर्णन चल रहा है। यह विस्तृत वर्णन आश्चर्यमे डालने वाला है। यह विकल्पमे आने वाली वस्तु क्या है ? इस सत्को यथार्थ समझाया है। इस बातके आनेपर नीव मजबूत बनाकर इसपर जो वैराग्यका महल खडा होगा वह अनेक विकल्पके झकोरे, धूप, पानीसे ढलने वाला नही होगा। दुनियाके सम्पूर्ण पदार्थोंमे मैं एक अद्वितीय पदार्थ हू। इन सबको समझने के लिए 'सत्सख्या क्षेत्रस्पर्शन कालान्तरभावाल्प बहुत्वैश्च' पदार्थको जाननेके लिए सत, सख्या, क्षेत्र, स्पर्श, काल, अन्तर, अल्प बहुत्व और भावकी मतिकी आवश्यकता होती है। उदाहरणके लिए घडी समझना है—एक घडी है यह सत् हुआ। कितनी है ? करोड़, अरब आदि। यह सख्या हुई। कहाँ मिलती है ? शहरमे, यह क्षेत्र हुआ। स्वामी अमुकचन्द की है। संभवतया क्षेत्रकी अपेक्षा अमेरिका, इगलैण्ड कही भी जा सकती है। यह स्पर्शन है। कितने समय रहेगी ? २० वर्षकी गारन्टी है। यह समय हुआ। यह न रहे और फिर आये, यह अन्तर हुआ। यह घडी न रहेगी तो दूसरी घडी कितने समय बाद आवेगी या कब तक रहेगी ? किस ढगकी घडी बनी है यह अल्पबहुत्व है। यह घड़ी फूट गई तो उसी तरहके परमाणु कत्र तक बनेंगे आदि आदि भाव गुण हैं। डिजाइन इस तरहकी है, यह प्रदेशात्मक है। इस तरह की शीलसे चिह्नित है तथा निर्मित है। इस तरह सब बाते समझमे आती हैं। इसी तरह

की विशेषतायें प्रत्येक पदार्थपर घटित होती हैं। यही बात षट्खण्डागम ग्रथमे (धवल, महा-धवल) है। इन विवेचनाओंको जाननेके लिए पदार्थका स्वरूप ज्ञात करना होगा।

ये पदार्थ कितने हैं—जितने अखण्ड है उतने ही पदार्थ हैं। क्या यह दिखने वाला सब कुछ एक पदार्थ है ? नही, यह तो अनेक द्रव्योका समूह है। तभी ये अलग-अलग हो जाते। जिसके टुकडे करते-करते अन्तिम टुकडा रह जाय वह एक अखड पदार्थ है। शरीर भी एक चीज नही है। जो भी दिखता है वह एक नही है। जिसके टुकडे हो सकें, वह अनेक हैं। कुछ सघातोंके मेलसे यह दीखता है। खड-खड होकर अविभाज्य अश समझमे आवेगा, वह अन्तिम टुकडा होगा। वह आखिरी हिस्सा अपने आप होगा। घडीमे अनन्त परमाणु हैं। जो अखण्ड है वह एक है। शरीर तो यही बिखर गया, फिर रहा क्या ? अन्य कहते है कि आत्माके टुकडे नही हो सकते है। इस तरह जगतमे कितने आत्मा है ? अगुलके असंख्यातवें भागमे निगोदिया जीव रहता है तथा उसके सहारे अनन्त जीव रहते हैं। आलूमे निगोदिया जीव रहते है तथा अपने शरीरमे भी तो निगोदिया जीव रहते हैं। जरासे देहमे अनन्त जीव है।

सत्की उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तता—जो सत् होता है, वह उत्पाद व्यय ध्रौव्यसे सहित पाया जाता है। वह उत्तरोत्तर नव्य नव्य आविर्भाव करता है। वह स्वयमे चलता है उसे कोई अन्य नही कर सकता। द्रव्यमे उत्पाद व्यय ध्रौव्य बने ही रहते है। सतसे उत्पाद व्यय ध्रौव्य भिन्न है क्या ? आचार्योंका कहना है कि भिन्न नही है, वह एक ही है। शका यह थी उत्पादका क्षण, व्ययका क्षण तथा स्थित रहनेका क्षण जुदा-जुदा मानना चाहिए। वर्धमान जो मृत्पिण्ड हो उसी समय मृत्पिण्डका व्यय है तथा घडेका उत्पाद है और मिट्टीका वही स्थितिक्षण है। मिट्टी पूर्वमे थी तथा घडेमे भी है, अगुली जिस समय सीधी है तब टेढीसे हुई है। कोई कहे कि हे अगुली ! तुम टेढी मिट जावो, किन्तु सीधी मत होओ या सीधी मिट जावो, किन्तु टेढी मत होओ तो क्या वह रुक जायगी ? रुकेगी भी नही तथा दोनोका एक समय है। क्षणभेद नही है। जो उत्पादका समय है वही व्ययका समय है तथा स्थित भी दोनो समयमे समान हैं। आत्मामे अज्ञानका व्यय तथा ज्ञानका उत्पाद एव चैतन्य आत्मा स्थित रहा वह आत्मा ही है, अन्य चीज नही। यह सब अन्य अधिकरणनिष्ठ नही है, उत्पाद व्यय ध्रौव्यसे भिन्न चीज नही है। हमारा उत्पाद व्यय हममे ही है दूसरेमे नही। मेरा परिणमन मुझमे ही है, दूसरेमे नही।

आत्मामे शरीरके अणुके साथ भी स्वामित्व है क्या ?—जैसे आपके पास १०) का नोट है। सौदा लिया तो दूसरेको दे दिया, दूसरेके पाससे तीसरेके पास गया। यह क्रम बरा-बर चालू है। इसी तरह इस शरीरका परमाणु आज कुछ और रूप है, कल दूसरे रूप हो गया। एक शरीर दूसरे शरीररूप भी परिणम सकता है। यह शरीर मांसपिण्ड ही तो है।

ऊपरसे त्वचाका आवरण पडा है, जिसका पालिश दिख रहा है। यह शरीर अपवित्रताका घर है तथा इसपर स्वामित्व भी नही है। जब इस तरहका है तब रमनेकी कौनसी प्रिय वस्तु रह जाती है ? दूसरोकी कुलीगिरी ही तो कर रहे है। मालिकाई नही तो फिर राग करनेकी व रमनेके लिए क्या अच्छी चीज रह जाती है ? शरीर ही रागका विषय नही रहा तब दुनियामें रहा क्या ? यह वैभव किसके लिए जोडें, रिश्तेदारियाँ भी बढाकर क्या करेंगे ?

हम आठ वर्षके बचपनसे ही विद्यालयमे पढते रहे। एक महीनाको घर आये, जिसमे भी घरपर ही रहे। रिश्तेदारो आदिके यहाँ नही गये। इस तरह २० वर्षकी उम्र हो चुकी थी, तब तक रिश्तेदारोको जानते ही न थे। माँ कहे कि यह तुम्हारे फूफा है, ये चाचा है आदि। तो मै कहू 'सो हमे क्या करना।' माँ बोली—जानना पहिचानना पडता है, आगे काम आवेंगे। तब यह कह देता—'तुम्ही जानती पहचानती रहना। बहनोईसे भी वास्तविक काम नही पडता, सालेसे भी काम नही पडता। इसी शरीरपर ही स्वामित्व नही' फिर दुनियापर क्या स्वामित्व होगा ? मकान ईट, गारेका बनाया तब तक तो भद्दा लगता है, बाद मे सीमेन्ट, कलईकी पालिश कर देते है तो सुहावना लगता है। इसी तरह माँसपिण्डपर त्वचा की पालिश है। यह आत्मा इस शरीरको देखते-देखते एक सेकेण्डमे छोडकर चला जायगा। इसका कोई भी विश्वास नही। सफर करने जाते है, कब इस तरहका मौका आ जाय कि प्राणोसे हाथ धोने पडे। आये दिन सुनते व अखबारोमे पढते रहते है कि अमुक व्यक्तिने अमुक को मार डाला और मारने वाला फरार हो गया, चोर डाकुओनें खत्म कर दिया आदि या रेल मोटर पलट गई, गिर गई। तब इस शरीरका क्या विश्वास किया जाय, कब तक सुरक्षित रहेगा ? यह उत्पाद व्यय ध्रौव्य वाला होकर भी इसका दूसरेमे स्वामित्व नही जा सकता। प्रेम करे, मोह करे वह दूसरेमे नही जा सकता, केवल कल्पनाओंके पुल बाँधना है। द्रव्यकी द्रव्य, क्षेत्र, कालकृत विशेषतायें पर्यायें है। यह द्रव्यके अंश है। अब द्रव्यके उत्पाद व्यय ध्रौव्य अनेक द्रव्य पर्यायके रूपसे विचार करते है।

पाडुब्भवदि य अण्णो यज्जाओ यज्जओ भवदि अण्णो।
दव्वस्स त पि दव्व णेव पणट्ठ ण उप्पण्ण ॥१०३॥

उत्पन्न होनेपर भी अनुत्पन्नता—द्रव्यकी अन्य (उत्तर) पर्याय तो उत्पन्न होती है और अन्य (पूर्व) पर्याय व्ययको प्राप्त होती है तथा द्रव्य न तो उत्पन्न होता है और न नष्ट होता है। इसमे अनेक द्रव्यपर्यायके रूपसे द्रव्यके उत्पाद व्यय ध्रौव्यका चिन्तन किया गया है। चिन्तन विचार करना भी अर्थ है और चिन्ता करना भी अर्थ है, सो यहाँ विचार किया गया है यह बात तो ठीक है, किन्तु साथ ही भीतर चिन्ता भी की गई है, क्योकि यह आत्मा अनेक द्रव्यपर्यायोमे ही चलकर तो हैरान है, दुःखी है, सो जो दुःखका कारण है उसकी चर्चा करते

हुए विसे अफसोस न होगा ? द्रव्यकी अन्य पर्यायें उत्पन्न हो रही है तथा दूसरी पर्यायें व्यय को प्राप्त हो रही है और द्रव्य न उत्पन्न हुआ और न व्ययको प्राप्त हुआ। द्रव्य वह है जो अखड हो, जिसे वहिरात्मा कहते है। 'मैं' वह तो एक चीज नही। देखो शरीरके अदर आत्मा है वह अखड द्रव्य है, तथा नोकर्म वर्गणायें अनंत है। तैजस वर्गणाये उनसे भी अनत हैं। इस तरह अनत द्रव्य है। उनमे जो पर्याय दिखती है वह स्थूलपर्याय है। अनेक पर्यायोंके द्वारा जो मिलकर प्रादेशिक पर्याय होती है उसे द्रव्यपर्याय कहते हैं। द्रव्यमे रहने वाले प्रदेशोमे उत्पाद व्यय ध्रौव्य घटानेके लिए देखो, एक ही द्रव्यके अनेक प्रदेश हैं। जैसे-जैसे चिन्तनके लिए दृष्टि गई वैसे-वैसे पूर्वपर्यायका तिरोभाव तथा उत्तरपर्यायका आविर्भाव होता जाता है। द्रव्यकी प्रत्येक शक्तियाँ परिणमती रहती है, पूर्वपर्यायका उच्छेद होता रहता है तथा उत्तरपर्यायका उत्पाद होता रहता है। द्रव्यकी पर्यायें अनुस्यूति सूत्रित ही हैं, उनमे अन्तर नही पडता।

अनेक द्रव्योके संयोगमे कैसी दशा होती है—अव कहते है कि दो द्रव्य मिल गये तो कैसी बात वन जाती है व कैसा परिणमन हो जाता है, इसे कहते है। यह प्रकरणके अन्तर्गत ही प्रकरण बदला है। अनेक द्रव्य मिलकर कैसे परिणमन होते है, इसे कहते है। द्रव्य मिलते है वह एक जातिके तो पुद्गल ही पुद्गल मिलते है व जीव पुद्गल, इन दो जातिके भी मिलते हैं अर्थात् जीव और पुद्गल ही मिलते है। धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य और कालद्रव्य तो एक-एक है। इनका न कोई ऐसा परिणमन है जिसे दो का कह सके। वह जुदी-जुदी ही परिणमती रहती है। अब रह गये जीव और पुद्गल। पुद्गलका पुद्गलसे मिलकर कुछ हो सकता है व पुद्गल तथा जीव भी आपसमे मिल सकते है, किन्तु जीवका जीवमे मेल नही होता। तीन काल व तीन लोकमे भी जीवका जीवसे मिलकर परिणमन नही होता है। फिर भी कहता है कि यह मेरा है, मै इनका स्वामी हू, यह मेरे द्वारा रचा गया है, मैं इनकी रक्षा करता हू। मैं नही होता अथवा आश्रय नही देता तो पेट भरना भी मुश्किल हो जाता। पुद्गल-पुद्गल मिलकर परिणमन वन जायगा, जीव पुद्गलका मिलकर परिणमन हो जायगा। लेकिन जीवका जीवमे मिलकर परिणमन नही होता है। साधारण वनस्पतिका जीव भी एक साथ जीते-मरते हुए कभी भी आपसमे नही मिलते हैं, वह सब अपना स्वतत्र-स्वतत्र अस्तित्व रखते हैं। प्रत्येक जीव अपने-अपने पुण्यके अनुमार सामग्री प्राप्त करता है। जो यह कह रहा है कि मैंने इसका यह कर दिया, कर रहा हू, यह भ्रममात्र है। पुद्गल-पुद्गल मिलकर यह किताव बनी, चौकी बनी। अनत पुद्गल स्कध मिलकर चौकी आदि बनी हैं तथा पुद्गल व मिलकर मनुष्यका पुतला बना है। द्रव्यपर्यायमे भी सूक्ष्मदृष्टिमे लानेसे कोई द्रव्य किसीमे नही मिलते है। वहाँ तो एक ही का प्रकट तौरसे देखनेमे आता है। यह अवगत होना कि जीव व पुद्गल आपसमे मिलकर इस रूप परिणम जाते हैं—यह स्थूलदृष्टिका परिणाम है। निश्चय-

नयसे वह दोनो भिन्न-भिन्न है। पुद्गल भी आपसमें मिलकर स्कध बनते है तथा वही स्कध अनन्त पुद्गल परमाणुओसे वेष्टित होता हुआ विशाल आकारकी वस्तु बन जाता है। जीवका जीवके साथ बधन नही है।

द्रव्यपर्यायोसें उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य—हाँ तो द्रव्यपर्यायोमे उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य देखे—जैसे एक समानजातीय द्रव्यपर्याय त्र्यणुक स्कंध है। देखो इसमे ३ पुद्गल द्रव्य है, उनके विशिष्ट ससर्गमे यह स्कध पर्याय हुई है, सो इसे समानजातीय अनेक द्रव्यपर्याय कहते है। इस त्र्यणुक पर्यायमें एक अणुका सम्बध और हो जाय तो देखो अब चतुरणुक स्कंध हो गया। सो चतुरणुक द्रव्यपर्यायका उत्पाद हुआ, त्र्यणुक द्रव्यपर्यायका व्यय हुआ, किन्तु वे तीन व चार पुद्गल अविनष्ट व अनुत्पन्न होते हुए ही अवस्थित है। सो यहा उत्पाद, व्यय व ध्रौव्य तीनो प्रसिद्ध हुए। इसी प्रकार सभी समानजातीय द्रव्यपर्यायें उत्पन्न होती है व नष्ट होती हैं और समानजातीय वे सब द्रव्य अविनष्ट व अनुत्पन्न होते हुए ही अवस्थित रहते है। ये सब पर्यायें अध्रुव है अतः मायास्वरूप है। अब असमानजातीय द्रव्यपर्याय देखें—कोई मनुष्य है वह आयु पूर्ण कर देव हो गया तो क्या हुआ देवत्वनामक असमानजातीय अनेक द्रव्यपर्यायका तो उत्पाद हुआ और मनुष्यत्वनामक असमानजातीय अनेक द्रव्यपर्यायका व्यय हुआ, किन्तु जीव-द्रव्य और वे सब पुद्गल द्रव्य जिनके कि सम्बधमे वह द्रव्यपर्याय हुई व है, वे सब द्रव्य अनु-त्पन्न व अविनष्ट होते हुए अवस्थित रहे। ये सब पर्यायें अध्रुव है, अतः मायास्वरूप है।

अहङ्कार बड़ा पाप है—हम ही सब कुछ है, और दूसरोका हमारे सामने कोई महत्त्व नही है। मनुष्यकी पर्यायकी सफलता इसमे नही है। जितना गौरव आपका है उससे ज्यादा दूसरा भी तो समझता है। निर्भीकताको कोई नही छुडाता, किन्तु दूसरेको अपनेसे टकरानेकी कोशिश अहितकर है। मनुष्य भी होकर लपेरे घसीटे रहे आये तो जीवनमे क्या कर लिया? तिर्यंच होते रहे तब भी कौनसा बड़प्पन कर पाए? नारकी जीवोंके दुःख सुनकर तो शरीरके रोम खडे हो जाते हैं। देव भी छोटी जातिके हुए, तब भी कोई लाभ नही। बडे भी हुए तब भी क्या? इस लोकमे भी बहकाने वाले बहुत मिलेंगे। सहारा देनें वाले बहुत कम ही मिलेंगे। अगर कोई निर्मोही जीवन बितानेकी मनमे ठानता है तो माता-पिता हुए तो वह समझाकर रोकेंगे, स्त्री घरसे जानेमे सर्वप्रथम बाधक होगी। किसी-किसी स्त्रीको पति भी धर्मसाधन नही करने देता, यहाँ तक कि अगर स्त्री रात्रिभोजनका त्याग करे हो तो पति रात्रिमे जबरदस्ती खिलानेकी कोशिश करेगा, सफल न होनेपर उसके प्रति उपेक्षाभाव धारण कर लेगा। निर्मोही इनके मनानेसे भी नही रुका तो फुआ, मामी, चाची, भाभी आदिका झमेला होगा। कहेगी कि इस वनमे यह क्या करते बैठे हो, पराई लड़कीको ब्याहकर तड़फती छोड़े जा रहे हो। दादीका इन सबसे ज्यादा मोह रहेगा समझानेका, मगर इन बाधाओसे न रुककर तत्त्वज्ञानी

अपने लक्ष्यमे सतत बढता जाता है। तत्वज्ञानी घर रहता है तब भी विवेकसे रहता है तथा घर छोडता है वहाँ भी विवेकसे रहता है। ज्ञानी घी, मीठा, मसाले, दूधकी आवश्यकता समझता है तो लेता है अन्यथा उन्हे भी हेयदृष्टिसे आवश्यक न समझकर छोड देता है। वह देखता है कि मेरे शरीरका काम रूखा-सूखा खानेसे चल सकता है तो उसीमे सन्तुष्ट रहता है। घरमे भी उपेक्षाभावसे समय देखता हुआ रहता है कि कब मैं इस बधनसे छूट सकू ? विवेकके बल पर घर रहता है तथा अपने परिणामोको यहाँके आधीके झकोरोसे बचाता है। यह बातें दूसरो को बार-बार सिखानेपर भी गले नही उतरती। उनसे बार-बार मोह छोडनेकी कहो तब भी लेशमात्र टससे मस नही होते हैं।

ज्ञानीको ज्ञानकला कोई सिखाने नहीं जाता है—बादशाही राज्यमे छोटे-छोटे राज्य भी रहते थे। एक छोटे राज्यका राजा गुजर गया। उसका बच्चा था जो कि नाबालिग था। तब राज्यका सारा प्रबध बादशाहके हाथमे आ गया, बच्चेका पालन-पोषण वगैरा होता रहा, उचित धन खर्चको मिल जाता। अब वह बच्चा १८ वर्षका बालक हो गया। बालक राजकुमारने अपने राज्यकी माग की। इसके पूर्व ही राजमाता राजकुमारको बुलाकर समझाती है। अगर बाहशाह इस तरह कहे तो यह जवाब देना, इस तरह उत्तर देनेकी कई बातें समझा दी। दसो बातें समझा दी गई। बादमे राजपुत्रने कहा—इतनी बातोमे से अगर राजा कुछ भी न पूछेगा तो क्या कहेगे ? इसपर राजमाता बोली—अब तुममे सही प्रतिभा आ गई है। बादशाहने राजकुमारको बुलाया और आपसमे दोनोकी बातें हुईं। बातें होते-होते बादशाहने राजकुमारके दोनो हाथ पकड लिए। बादशाहने पूछा कि अब तो जकड लिया, अब तुम क्या कर सकते हो ? तब राजकुमार प्रसन्न होकर बोला—अब तो आनद हो गया। क्योकि जब विवाह होता है उस समय तो लडका लडकीका एक-एक हाथ ही मिलता है जिससे जीवन भर निभाना पडता है। आपने तो दोनो हाथ ग्रहण किये है, अब तो कोई चिन्ता ही नही रही। तब राज्य सम्मानके साथ लौटाकर बादशाहने राजा बना दिया। कहना होगा कि यह कुशलतायें पूर्व जन्मके सस्कारोसे वर्तमानमे पल्लवित होकर फूलती-फलती है। उत्तम धर्म भी पूर्व भवके शुभ सस्कारोसे मिलता है। ज्ञानीको ज्ञानकला कोई सिखाता नही है। स्वय ही ज्ञानी ज्ञानकलासे वर्तमान होने लगता है। जैसे राजपुत्रमे प्रतिभा थी तो किसीके बिना बताये भी उत्तर दे दिया। वैसे ही ज्ञानी पुरुषका अलौकिक अहिंसाका लक्ष्य हो जाता है तब समस्त आचरणमे ज्ञानकलाकी ही छटा रहती है।

स्कन्धोका प्रादेशिक उत्पाद व्यय—जीव और पुद्गलका प्रकरण चल रहा है। जैसे किसी तीन अणु वाले पुद्गलमे तीन ही परमाणु हैं, वह दिखेंगे नही। सख्यात असख्यात पुद्गलका स्कध भी आँखोसे नही दिखता है तब तीनकी बात ही कौनसी ? एटम बमको अणु-

कहते है, वह भी तो अनत पुद्गल परमाणुओंके स्कंधसे बना होता है। तीन अणु बाल्म स्कध है उनमे एक और मिलनेसे चार पुद्गल परमाणुओका स्कन्धका हो गया। तो यहाँ तीन वाला नही रहा अब चार अणुका स्कन्ध ही कहलावेगा। जैसे पहले एक तिगड्डा था, उसमे से एक रास्ता और निकल आनेसे चौराहा कहलाने लगता है। उसमे तिगड्डेका अस्तित्व होते हुए भी चार रास्ता (चौराहा) ही कहलावेगा अथवा तीन लडकेका पिता जो था उसके चौथा लडका हो जानेपर चारका बाप कहलाने लगता है। पुद्गलमे पुद्गल मिलकर जो पर्याय बने उसे समानजातीय पुद्गल कहते है। तिर्यंच कीडे, देव वगैरा मिटकर मनुष्य बने तो वह असमानजानिके कहलाते है। भिन्न-भिन्न जातिके मिलकर जो द्रव्यकी पर्याय बने उसे असमानजातिकी कहते है। तीन अणुके स्कन्धमे चौथा अणु मिल गया। तब त्र्यणुकता नष्ट हुई चतुरणुकता उत्पन्न हो गयी। इसी तरह समानजातिक पर्याय प्रति समय नष्ट होती रहती है और पैदा होती रहती है।

प्रावेशिक पर्यायमें भूतार्थता नही है—इस समानजातिक पर्यायमे भूतार्थपना नही है, मायापना है। कभी बादल दिखते है, उसमे मन्दिर, हाथी, महल, पहाड जैसे दृश्य दिखते है और देखते देखते नष्ट हो जाते हैं। शरीरके भी अणु समय पाकर बिखर जाते है। एक राजा था। वह अपने महल पर बैठा हुआ बादल देख रहा था। उससे उसे एक मन्दिर का दृश्य दिखा। वह बहुत अच्छा मालूम हुआ। उसने विचारा—इस तरहका मन्दिर मैं बनवाऊगा। इसलिए वह नीचे से स्याही दवात (कूची रग) के साथ कलाकारको बुलाने लगा। कलाकार आ नही पाया। वह देखते-देखते ही मन्दिर वहाँसे अदृश्य हो गया। बस उसने सोचा हमें भी इसी तरह देहसे उठ जानेमे देर नही लगेगी। एकदम विरक्त हो गया। क्योकि जिस-जिसका सयोग हुआ है उस उसका वियोग नियमसे होगा। द्रव्योका दुःख नही है, वियोगकी पीडा नही है। दुःख तो इसका है, यह मेरा है। अपने लडकेकी नाक किस तरह से धोती आदिसे पोछ लेते है। दूसरेकी देखी तो कह दिया, यह लडका किसका है, नाक साफ करलो। दूसरेके लडकेसे क्यो इस तरहका प्रेम नही है? कारण उसे अपना नही मान रहा है। अगर वियोगका दुःख होता तो जिन्होंने घर त्यागी मुनि हुए, उन्हे ज्यादा दुःख होना चाहिए था। कानी लडकी मर जाये तब जितना दुःख होता है, उसकी अपेक्षा चक्रवर्ती ९६ हजार रानिया, ६ खण्ड पृथ्वीका वैभव छोड देता है उसे उतने गुना ही दुःख होना चाहिए। दुःख केवल भ्रमका है। दुःख भी आया, गया, वह भी स्थायी नही रहता। विप्लव हुआ, अचानक घटना आ घटी तो प्राण निकल गये अथवा खुद मौतसे मर गये। धन, वैभवकी भी यही दशा है। या तो देखते नष्ट हो जाता है या स्वय छोडकर चल बसते है। रहता किसीके पास कुछ नही। अगर आपका ५) रु० का नोट भी गिर जावे तो

विषाद होता है तथा हाथोसे हजारो रुपया दान कर देते है जिसका पश्चाताप नही होता है। वस्तु बिछुडेकी कोई विशेपता नही, भात्रमे आया। हाय! वह मेरे इष्ट थे, मुझे छोडकर चले गये, दुःख तो इसका है। अज्ञानी कुछ भी सोचे परन्तु पदार्थ फिर भी स्वतन्त्र होकर जुदा जुदा परिणमन कर रहे है। ससारावस्थामे त्याग स्वय करके ही कल्याणसे पात्र बन सकते है। पात्रको दान देने पर पात्रदान कहलाता है, तथा साधर्मी भाइयोको दिया हुआ द्रव्य समदान कहलाता है; किन्तु जिन्होने कुछ दिया या नही दिया और वैराग्यभाव छोडकर चल दिये वह सर्वदान कहलाता है। जितने भी माया रूप दिखते है उनका आकर्पण नियमसे बिछुडेगा।

जिसमें लाभ हो वही काम करो—सर्वत्र अपने आपको ज्ञानधन एकाकी मानता रहे यही सबसे बडा वैभव है। अगर आपको व्यापारमे १००) मिलनेकी जगह १५०) की उम्मीद हो तो १००) का प्रलोभन छोड दोगे। उसी तरह इस नश्वर देहसे स्वर्ग मोक्षकी सम्पदायें प्राप्त की जा सकती हैं तब इसी देहकी साज सभालमे पडा रहना कहाँ तक श्रेष्ठ है? इन मायामय पदार्थोसे काफी प्रेम बढा चुके। तुमने जितना प्रेम बढाया उन्होंने उतना ही धोखा दिया। यह इन्द्रजाल समान जरामे आँखें बरकाकर ओझल हो जाते है। आपको अगर भोजनके समय रोटी व पूडी दोनो परोसी जा रही होवें, तब रोटी पसन्द नही होनेसे 'ऊ हू' कर देते है तथा पूडीकी पूछनेपर 'हू' कहकर इच्छा प्रकट करते हैं। यह मोहका ठाट तो देखो जिसपर प्रमत्त ज्ञानी हसे बिना न रहेगे। मोही जीव दाँतो तले अगुली दबाकर सोचते हैं कि अमुक व्यक्ति किस तरह इतने वैभवको छोडकर चला गया होगा? इसके उत्तरमे वह स्वय सोचे—६ खड पृथ्वीसे भी बढिया कुछ प्रतीत हुआ होगा तभी तो ध्यान मुद्राको प्राप्त करनेके लिए सबको छोड जाते है। बच्चेको कोई पकडकर जबरदस्ती अ आ इ ई पढावे और उसका खेलनेमे मन होगा तो वह कैसे पढ लेगा? वह तो आँसू पोछता हुआ बिलखेगा। जिसका चित्त आत्मीय आनदके लिए उत्सुक हो रहा है वह क्या यहाँ फसनेमे सुख मान सकता है? वह तो स्वप्नमे भी उनसे शान्ति सतोप सुखकी आशा नही कर सकता है। जबसे धर्ममे, आत्मकल्याणमे मन लग रहा है तभीसे जीवनकी शुरुआत समझना चाहिए। आत्मीय सुख स्वाधीन स्वतत्र है। उसकी उपासनामे यह जीवन रत रहे, यही भावना योग्य है।

मिलकर भी भिन्न-भिन्न होकर भी मिले—यहाँ द्रव्यपर्यायमे उत्पाद व्यय ध्रौव्य घटाया जा रहा है। अनेक मिलकर जो क्षेत्रपरिणमन है उसे द्रव्यपर्याय कहते हैं। जैनधर्म की द्रव्यस्वरूप कथनकी बडी विशेषता है। अनन्त-परमाणु मिलकर जो चौकीरूप बने हैं उसे द्रव्यपर्याय कहते हैं। पशु, मनुष्य, देव, तिर्यञ्च आदिकी पर्याय भी जीवमे-पुद्गल मिलकर इस रूप बन जाते हैं। समानजातीय और असमानजातीय इस तरह दो तरहकी पर्यायें होती

है । पुद्गल-पुद्गल मिलकर जो पर्याय बनी वह समानजातीय है तथा जीव और पुद्गल मिलकर जो पर्याय बनी वह असमानजातीय है । त्रिअणुकसे चतुरणुक बनना वह तीनसे चार अणु हुए है कि वह तीन नष्ट नही हुए है और चौथा अणु पैदा नही हुआ है । हाँ त्र्यणुकका चतुरणुक हो गया । जितनी भी समानजातीय पर्याय है उन सबमे यह कार्यक्रम लगा है । सयोगकी वजहसे जो आकार बना है वह द्रव्यकी पर्याय है । पूर्वपर्याय नष्ट होना तथा उत्तरपर्याय उत्पन्न होना यह लगा ही रहता है तथा नष्ट होते हुए एव उत्पन्न होते हुए भी वह ध्रुव है । यह समानजातीय चर्चा करनेके बाद असमानजातिका कथन चलता है । जो एक जातिकी होती है वह असमानजाति होती है, किन्तु यह न होकर जीव और पुद्गलोका जो मेल हो वह असमानजाति पर्याय कहलाती है । जो बराबर न हो वह असमानजाति हुई । आकाशको भी तो आसमान कहते है । इन सबमे सारतत्त्व या सारभूत क्या है ? यह देखना है । पुद्गल जीव मिलकर यह ढाँचा बना है । वह बिछुडेगा नियमसे, किन्तु असमजसमे पडा है । तत्त्वज्ञान न होने तक असमजस बनी हुई है । किसीको देखते हो किस तरहके परिणाम होते है ? अगर अपना माना तब तो ममताके मारे उसी तरह झुक पडता है । अगर उसे अपना नही माना तो उपेक्षा बुद्धि धारण कर ली । वह मेरा पुत्र है, यह मेरी श्रीमती जी है, यह नौकर, दासी मेरी है, मकान मेरा है, दौलत मेरी है—यह विश्वास जमा बैठा है । यहाँ तक कि ४-६ आदमियोके समूहको अपनी गोष्ठी मान लेता है । औपाधिक भाव ये भिन्न पदार्थ फिर भी अपने बनाता है ।

निश्चयनयका तो उपयोग न करो—तत्त्वज्ञान वह है जहाँ निश्चयदृष्टिसे पदार्थोंका ज्ञान होकर फिर निर्विकल्पता लाई जावे । निश्चयनयका विषय है केवल अखण्ड विभक्त एक पदार्थ है । यदि निश्चयनयसे देखे तो यह स्कध सब बिखर जायगा याने उपयोगमे एक-एक असयुक्त द्रव्य ही आवेगा । निश्चयनय कहते है उसे जहाँ न जोड देखा जावे और न तोड देखा जावे । जोड-तोड देखना व्यवहारनय है । जैसे कहा कि आत्मामे कर्म बधे है तो यह व्यवहार हो गया । जीवमे रागादि है, यह व्यवहार हो गया । क्योकि इनमे जोड बताया गया है । यदि कहा जाय कि आत्मामे ज्ञान है, दर्शन है, चारित्र है आदि तो यह भी व्यवहार हो गया, क्योकि इसमे अखण्ड आत्माको तोडा गया है । जहाँ न जोड हो और न तोड हो, ऐसे अखण्ड परिपूर्ण द्रव्यको देखो । निश्चयका अर्थ है—'निर्गत. चयः यस्मात् स निश्चय. ।' जहाँसे चय अर्थात् सचय निकल चुका है याने जोड खत्म हो चुका है उसे निश्चय कहते हैं । इस परिभाषासे यह सिद्ध है कि जहा जोड न देखा जावे वह निश्चयनय है अथवा निःशेषेण चयः यत्र स निश्चयः याने स्वयंमे जो कुछ है उसका ऐसा चय हो कि तोड न करना पडे वह निश्चयनय है । बहुतसे आदमी खडे कर दिये जावें जिसमें अमरीका, जापान, इगलैड, भारत, अफ्रीका

आदिके सम्मिलित हो। उन सबमे किसी देशका एक आदमी खडा कर दिया जावे तथा सबसे कहा (पूछा) कि यह किसका रिश्तेदार है, तो उनमे कोई भी नही बता सकेगा। लेकिन जो उस देशका परिचित व्यक्ति होगा वह शीघ्र कह देगा कि यह अमुकका भाई, चाचा, मामा आदि है। जिससे पहिचान हो गई उसे अपना मान लिया। पुद्गलमे राग प्रकृति भाव हुआ है, यहाँ भी आत्मामे राग नही है। यह अत्यत भिन्न है। शरीर भी अपना नही है, फिर बाहरी परिग्रह अपना कैसे हो सकता है ? निश्चयनयसे सबको इकहरा देखें तो एक-एक परमाणु नजर आवेंगे। सब स्वार्थवश ही नाते-रिश्ते है। जब किसीकी मृत्यु हो जाती है तो शरीरसे कौन प्रेम करता है ? जीवसे भी कौन प्रेम करता है ? न कोई जीवसे प्रेम करता है और न कोई शरीरसे प्रेम करता है। अपनी कषायसे प्रेम करता है। छोटे मुन्नाको खिलाते समय उसे छातीसे जोरसे मसलते है, लेकिन मुन्नाको कितना दर्द हो रहा है, इसे वे क्या जानें ? यहाँ तो उनकी कषाय पुष्ट होनी चाहिए। जब पवनञ्जयको अपनी कषाय पुष्ट करनी थी तब वह अञ्जनाको बिना देखे तीन दिन भी नही रह सका, शादीके पहिले और अञ्जनाके पास दौडा हुआ गया। उसके बाद २२ वर्ष तक भी नही देखा। बादमे आया और अञ्जना नही मिली तो बोला—चिता लगाकर मर जाऊगा। अपने कषाय परिणमनसे सभी इस तरह का व्यवहार करते है।

जीव व्यञ्जनपर्यायदृष्टिमे भी उत्पाद व्यय ध्रौव्यात्मक है—असमानजातिके जितने भी भव धारण किये—देव, नारकी, मनुष्य, तिर्यञ्चगतिके (यह सब असमानजाति पर्यायें है) उनमे एकमे उत्पन्न हुआ, पुन दूसरीमे जाकर पैदा हो गया। जीव और पुद्गल तो अविनष्ट और अनुत्पन्न है। कोई आत्मा मनुष्यपर्यायमे था सो देव उत्पन्न हो गया, मनुष्य मिट गया, जीव वही है। इसी तरह समस्त असमानजातिमे लगा लेना। प्रत्येक द्रव्य स्वभावसे उत्पाद और व्यय करता है। जब तक तत्त्वज्ञान नही है तब तक दरिद्रता है। अज्ञान मिटा और दरिद्रता हटी, तत्त्वज्ञानका यही मूल है। यह द्रव्य एक है, वह अपनेमे उत्पाद व्यय कर रहा है। यह चौकी है वह अपने स्पर्श, रूप, रस, गंधसे परिणम रही है। इसमे अनन्त परमाणु है वे सब ही अपनी सत्ता रखते हैं, अपने परिणमनसे परिणमते हैं। जगतके सब द्रव्योको इकहरा अलग-अलग देखो। एक मनुष्य जाति पर्यायरूपमे आत्मा स्वय उत्पन्न होती है व नष्ट होती है। देवोको त्रिदश कहते है, क्योकि उनकी तीनो अवस्थायें एकसी रहती हैं। उत्पन्न हुए और अन्तर्मुहूर्तमे युवा अवस्था हो गई, वह जवानी उनकी वृद्धावस्था तक बनी रहती है। जीव न नया उत्पन्न हुआ और न नष्ट हुआ तथा वे पुद्गल भी अनुत्पन्न अविनष्ट रहते है। पुद्गल न नष्ट होते हैं और न उत्पन्न होते है। द्रव्य अपने आपसे ध्रौव्य है चूंकि यह द्रव्य-पर्यायका प्रकरण चल रहा है सो पर्यायरूपमे वह उत्पन्न हुआ और नष्ट हुआ कहते हैं। अनेक

को देखकर एकको देखे तो वह द्रव्यपर्याय है तथा एकको देखकर बहुतोको देखे तो वह गुण-पर्याय है। तत्त्वार्थसूत्रमे आया है—'शब्द बन्ध सूक्ष्म स्थूल सस्थान भेद तम छाया।' शब्द सुनाई दिया, यह द्रव्यपर्याय है। अगुली बध गईं आपसमे और कहे पर्याय किस अगुलीकी है। किसी एककी है ? नही। दोनोंकी भी नही है। द्रव्यपर्याय बधन है। बधन टूट गया, दोनो भिन्न-भिन्न हो गईं, यह भेद भी द्रव्यपर्याय है। हल्का, पतला, सूक्ष्म है यह किस गुणकी पर्याय है ? यह द्रव्यपर्याय है, मोटे बन गये तो यह भी द्रव्यपर्याय है। चौकीका यह क्रम आकार बन गया, यह भी द्रव्यपर्याय है। अधकार यह भी द्रव्यपर्याय है। प्रकाश भी पर्यायके रूपमे नजर आता है, यह भी द्रव्यपर्याय है। आतप यह पुद्गलमे हुआ।

जीवके भी विचित्र परिणमन—जीव समाज यह क्या है ? जीव पुद्गलके सम्बधसे एकेन्द्रिय आदि हुआ है, यह द्रव्यपर्याय है, गुणस्थान गुणपर्याय है। आत्मामे अनेक गुण है। उनमे वे सम्यक्त्वगुण और चारित्रगुण आदि सब परिणतिमे चल रहे है, यह गुणपर्याय है। इन्द्रियमार्गणाके भेद एकेन्द्रिय आदि ये सब द्रव्यपर्याय है। कायमार्गणा यह भी द्रव्यपर्याय है। कषाय गुणपर्याय है। जो गुणका विकार है वह गुणपर्याय है, वह चाहे विभाव या स्वभावपरिणमन रूप हो अपने स्वरूपसे यह द्रव्य ध्रौव्य है तथा गुण परिणति रूपसे उत्पाद व्यय रूप है। उनमे जो मूलभूत द्रव्य है वह नष्ट नही होता है। उत्पाद व्यय ध्रौव्यके बिना कुछ बात नही चलती है। अगर हम ध्रौव्यमात्र होवें तो हाथ भी नही हिलना चाहिए तथा ध्रौव्य न होवें तब भी हाथ नही हिल सकता। उत्पाद बिना भी न हम हाथ हिला सकते, न पैरोसे चल सकते और न मुँह चला सकते तथा व्यय न होवे तो भी हाथ, पैर, कान सचालन नही कर सकते, न चक्षु, कान आदि भी काम दे सकते। वस्तुतत्त्वका स्वरूप जैनधर्ममे विशद मिलता है। सुभवितव्यता बिना इसको समझनेका भाग्य नही है तथा समाजमे दया नही है, अतः वे इससे वचित रहते है। क्योकि इसको प्राप्त करनेका उद्योग करें तो समय, पैसा एव श्रम लगाना पडता है। द्रव्यको जब इकहरा-इकहरा समझनेकी वृत्ति आ गई तो आकुलता किस बातकी रह जाती है ? समस्त द्रव्य स्वतत्र हैं, स्वत सिद्ध है, वे इसी तरह अनंतकाल तक वर्तते रहेगे।

रागद्वेष भी खुद-खुदमें ही कर पाता है—बन्दरियाको अपने बच्चेपर सबसे ज्यादा मोह होता है। सदैव छातीसे लिपटाये या पीठपर बैठाये फिरती है। अगर कही वह पानीकी बाढ आ जाय और पानी यहाँ तक आ जाय कि बन्दरिया डूबने लगे तो वह अपने बच्चेको नीचे करके उसपर ही बैठ जाती है। भैया! सब अपनेसे ही तो प्रेम करते है। आप लोग भी ठीक करते है। अगर आपपर भी कर्मोंकी प्रबल बाढ आने लगे तो सब छोड देना। जब देख लिया कि सभी सामग्रियाँ मौजूद है इनमे कोई सारतत्त्व न निकला है और न निकलनेका है

तो सबको छोडकर आत्मकल्याणके लिये चल दिये। मुनि भी तो यही कहते है। अगर ज्ञान पर आपत्ति आने लगे तो सर्वसे विरक्त हो, निजमे लवलीन हो जावे और शरीरकी भी प्रीति छोड देनी चाहिए। दुनियामे एक-एक द्रव्य है—यह समझनेकी अधिक-अधिक दृष्टि आवे। राजुलको नेमिनाथसे नौ भवकी प्रीति थी। यहाँ तो थोडा भी राग हो जाय तो कहते हैं कि स्त्रीसे अपन दोनोंका अगले भवमे भी सम्बंध जरूर होगा। अगले भवमे सम्वध हो इसका मतलब है भव-भवकी वेदकूफी साथ लिये आ रहा है। प्रेममे कभी न आ जावे, इसके लिए अनेक-अनेक प्रकारके पति-पत्नी हाव-भाव बनाते हैं। कपडे इतने बारीक कि शरीर भी अदर से दिखता रहे तथा आजकल तो क्यासे क्या प्रसाधन चले हैं, जिन्हे देखकर आजका मानव दग रह जाता है। कालिजो वगैरामे पढाने वाली अध्यापिकायें तक क्यासे क्या बेढगा रूप बनाकर आती है? इसका लडकियोपर क्या प्रभाव पडता होगा सो वही जाने। इन सबमे प्रत्येक जीव अपना भाव ही करते है। ज्ञानी इन्हे देखकर विरक्त हो जाते हैं। दुनियामे क्या है? सब मायाका नाच है। मायामे ढके हुए वस्तुस्वभावको जो पहिचान जाते हैं, वे तत्त्वज्ञ है, कृतार्थ हैं। देखो भैया! पदार्थ तो प्रत्येक एक-एक है और सबके साथ माया भी है, परमार्थ स्वभाव है। माया बिना परमार्थ नही, परमार्थ बिना माया नही। इन अनेक द्रव्यपर्यायोमे भी देखो—द्रव्य अनेक हैं, वे सब अपने-अपने स्वरूपसे ध्रुव हैं और द्रव्यपर्याय द्वारसे उत्पाद व्यय रूप हैं। इस तरह द्रव्य उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक प्रसिद्ध ही हैं।

द्रव्यका निष्कम्भ और विस्तार—द्रव्यको पर्यायें दो तरहसे देखी जाती हैं—(१) द्रव्यके प्रदेशोंके रूपमे। (२) गुणकी परिणतिरूप पर्याये है। जैसे चौकी है वह दो प्रकार से परिणमी हुई देखी जा सकती है। (१) नर्म, कठोर, भारी आदि रूपमे देखी जा सकती है तथा (२) अणु त्रिअणु, चतुरअणु सख्यात असख्यात और अनन्त अणु वाले स्कन्धोके पिण्ड रूपमे स्कन्ध हुआ करते हैं। यह अनन्तो परमाणुओंके स्कन्धोमे चौकी देखी जाती है। शक्ति की अपेक्षासे चरित्र, सम्यक्त्व आदि गुण भी देखे जाते है तथा प्रदेशोकी अपेक्षा मनुष्य, तिर्यंच आदि गतिमे जीव देखा जाता है। अभी पूर्व गाथामे उत्पाद व्यय ध्रौव्य घटाकर बताया है। अब गुण पर्याय रूपमे उत्पाद व्यय ध्रौव्य घटाते हैं। अब द्रव्यकी तीनो अवस्थाये उत्पाद व्यय ध्रौव्य घटाते हैं। एक द्रव्यकी पर्यायो (गुणस्थानो) के रूपसे उत्पाद व्यय ध्रौव्यका विचार करते है।

परिणमदि सम दव्व गुणदो य गुणतरं सदवतिट्ठ।
तम्हा गुणयज्याया भणिया पुण दव्वमेवेत्ति ॥१०४॥

द्रव्य गुणसे गुणान्तररूप स्वय परिणमता है। इस कारण गुण पर्याय ही अवशिष्ट सत् होते हुए द्रव्य ही है ऐसा तत्त्ववेदियोने कहा है। यहाँ गुणसे शक्ति अर्थ नही लेना है,

किन्तु पूर्व गुणपर्यायको छोडता हुआ अन्य गुणपर्यायरूप द्रव्य परिणमता रहता है यह भाव लेना। गुणविकास या गुणविकारको भी गुण कह देते है, क्योकि गुण परिणमनसे गुणसे पृथक् अन्य नही है। उत्थानिकामे कहा है कि विचार करते है या चिन्ता करते है। विचार एक खुशीका होता है तथा दूसरा परेशानीमे, गम्भीरतासे या समझदारी आदिसे होता है। यह गुणपर्याय है जो कि असली बात है। यह आत्मा ऐसा परिणमा था, इस तरह था, इत्यादि विविध परिणमन बताये जावें वहाँ चिन्ताकी बात नवीन प्रतीत होती है। सम्बन्धकी अपेक्षा से गुणपर्यायमे मोह, राग, द्वेप पर्यायें है उनका विचार किया जाता है। गुणपर्यायोमे सिद्धो के गुणोकी भी पर्याय आ गई है तो भी याने ससार अवस्थामे विषय परिणमन है। कैसे लक्ष्यमे देकर यह प्रकरण समझना सुगम होगा ? उत्पाद व्यय ध्रौव्य घटाना है यहाँ।

गुणपर्यायका आधार एक द्रव्य—द्रव्य जो है वह एक गुणसे दूसरे गुणपर्यायरूप परिणमता है। व्यवहारमे कहते है पहले अमुक व्यक्तिमे बहुत अच्छी आदत थी। अब इस तरहके दुर्गुण गये है या पहले अमुक व्यक्तिका कितना बुरा चाल-चलन, बोलना आदि था, अब देखो तो बोलीमे फूल झरते है। द्रव्य एक पर्यायरूपसे दूसरे पर्यायरूप स्वय परिणमता है। जो द्रव्यकी पर्याय है वह द्रव्यसे भिन्न नही है। आत्मामे ज्ञान, दर्शन, सम्यक्त्व, चारित्र आदि गुण पाये जाते है। यह गुण अनादिसे है और अनन्तकाल तक रहेंगे। सब जीवोमें यह गुण पाये जावेंगे। ज्ञानगुणकी क्या पर्याय है ? मतिज्ञानादि। दर्शनगुणकी क्या पर्याय है ? चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन—ये आत्माकी ही पर्यायें है। सुख आनन्द भी जीवमे होते है। चारित्रगुणकी पर्यायें सयम असंयम है। सम्यक्त्व गुणकी क्या पर्यायें है ? उपशम सम्यक्त्व, क्षायिक, मिश्र आदि यह सम्यक्त्व गुणकी पर्यायें है। क्रियावती शक्तिकी पर्याये गमन आदि। जिस द्रव्यमे जितनी शक्तियां होती है वह अपने परिणमनकी ही करती हुई होती हैं। परसंयोगमे यह द्रव्य ऐसा बन गया। जो गुणपर्याय है वह एक द्रव्यकी पर्याय है। आत्मा रागपरिणामका ही कर्ता है तथा उसीका भोक्ता है एव उसीको ग्रहण करने वाला है। अशुद्ध निश्चयपनसे कर्मके उदयसे होने वाले भावोको ही देखकर रागी है यह बतलाया है।

द्रव्यका शुद्धाशुद्धत्वेन निरूपण—द्रव्य शुद्ध और अशुद्ध रूपसे देखा गया है। शुद्ध अर्थात् अकेला मात्र देखना और अशुद्ध अर्थात् दो का सयोग रूपसे देखना। दोनोके मिलनेसे यह जीव और पुद्गलका पिण्डरूप शरीर बना है। अशुद्धकी बात देखना व्यवहार है, केवल की बात शुद्ध है। अशुद्ध निश्चयपनसे यह साधकतम है। हमारी केवलताके साध्यमे निश्चय-नय साधकतम है वह उपादेय है। व्यवहारकी बात भी सही है। विरोध करके चलें तब तो वह ठीक नही बन सकता है। बात पूरी मान लो, किन्तु साध्य है निश्चयनय। शुद्धरूपसे

साध्य क्या है ? केवल आत्मा सिद्ध करना चाहते है। तुम्हे सिद्ध करना है आत्माको। तब साध्य क्या है ? तुम्हारा साध्य आत्मा मात्र है। जो दो की दृष्टि है वह साधकतम नही है। वह न हो, ऐसी बात नही है। शरीरका एकक्षेत्रावगाही सम्बन्ध है। उस सम्बन्धका ही नाम यहाँ सयोग है। साधकतम क्या है ? तुम्हे किसका सहारा लेना चाहिए। यह गुणपर्यायें जो होती है यह केवल एकमे है। यह आकार जो बन गया, उनमे विचित्र सम्बन्ध ऐसा होता है, उसमे कर्मोदय बाह्य है। यह एक द्रव्यमे आते हैं। गुणपर्याय बोलो या आयतक्रम, एक द्रव्यपर्याय कहो, यह सब गुण द्रव्यपर्याय है। एक एक कर सभी अपने स्वरूपास्तित्वमे हैं निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध होनेपर भी प्रत्येक द्रव्य अपनी परिणतिमे परिणमता है। कोई किसीका नही है। सब अपने-अपने प्रसन्न होनेके नाते चल रहे है। अगर किसीको बुखार आ गया तो घरके आदमी कहने लगते है—इसकी अपेक्षा यह हमे हो जाता तो अच्छा रहता, यह तो कहना मात्र है। कोई भी किसीका दो डिग्री भी बुखार नही ले सकता। जिसपर यह बीतती है उसे ही भोगना पडता है। दूरकी न सोचकर इतना ही तो कर लिया जाय कि अपने शरीरको वृद्ध न होने देवें। एक भी बालको सफेद न होने देवें। निमित्तनैमित्तिक भावसे सभी कार्य होते हैं, पर कोई किसीका कर्ता नही है।

अपनी आकुलताकी निवृत्तिके लिये ही जीवका यत्न—आचार्य महाराज ग्रन्थ लिख गये, उससे हम तो यही मालूम करते है कि उन्होने दया करके लिखा है। लेकिन जो शुभ विकल्प आचार्य कर रहे थे उसकी आकुलता न सही गई, इससे उन्हे यह लिखना पडा—हम तो कारण बन गये तथा आचार्य महाराज अच्छे काममे लग गये जिससे अशुभोपयोग न हो। जगतके प्राणी दुःखी हैं इससे प्रेरित होकर लिखा होगा तथा वह विषय कषायोंसे छूट सके, खोटे परिणाम न होवें तथा खाली बैठ कौन सकता था, इससे पूज्याचार्योंको जिनवाणी रुचि, उसे लिख दिया। उनके यह परिणाम न होते होगे कि इसे लिखो। अपनी रुचिसे प्रेरित होकर रक्षाके लिए आचार्योने लिखा है। यह सज्जनोकी ऐसी प्रवृत्ति होती है कि मौलिक लाभ हो जाय, ऐसे पुरुषोके निकटमे ही वह लाये हैं। आचार्योका लोहा महान् है, वह स्वय ज्ञान ध्यानमे रत रहते थे, वह भी दूसरोको कल्याणमार्गमे लगानेके लिए सकेत करते रहे। जो त्यागी बनकर यह समझें हमने दूसरोके उपकारके लिए त्याग किया है इससे इन्हें हमारी आज्ञा माननी ही चाहिए, सेवा करना ही चाहिए, यह उनके उस पदके विरुद्ध है। क्रोध न करनेका उपदेश दूसरोको देवें और स्वय उसमे प्रवृत्त हो जाय तब उनकी बात कौन मानेगा ? जो भी कार्य किया जाता है वह स्वयके लिए किया जाता है। तपस्या की जाती है वह अपने लिए ही की जाती है। कोई किसीके लिए कुछ करता ही नहीं, वह तो अपनी विषयकषाय शान्त करनेके लिए करता है। कभी-कभी देहातोमे पूजन करने वाला तक नही मिलता। शहरो

तकमें भी अगर दूर मन्दिर हुआ, एकके सुपुर्द ही काम रहा, जब शहरोमे पूजन होनेमे देर हो जाती है तब मनुष्य कहते है—भगवान कितनी देर तक उपासे बैठे रहे। सभीने भोजन कर लिया, किन्तु भगवानका पूजन करनेसे वह तो उपयोग करते नही, जो ऐसा कहते है वे तो अपने गुणोमे वृद्धि लानेके लिए नित्य पूजन की जाती है और करना चाहिए। यह श्रावकोका प्रथम कर्तव्य है।

अब यहां उत्पाद व्यय ध्रौव्य आम्रफलपर घटित करते है—आमको सहकार कहते है। सहकार अर्थात् यह अज्ञानी जीवोकी रसनाइन्द्रियकी पुष्टिके लिए बारहो महीने काम देती है। अचार बनाकर मनुष्य काममे लेते है। लेकिन इसके बारेमे कहा है—'जो खावे अचार, उसके रहे न कोई विचार।' इसमे अनत त्रस जीवोकी उत्पत्ति हो जाती है। जैनियोकी सतेज इन्द्रियाँ शुद्ध वस्तु खाने वाले फिर भी महीनो वर्षोंका अचार खाते है यह ही उनके पथभ्रष्ट का कारण है। इसके अतिरिक्त सूखा अमचूर मर्यादित लिया जावे तब उत्तम है। वर्षों महीनों का अचार (अथाना) है, वह खाने योग्य नही। २४ घटेका ही अचार खाद्य होना चाहिए। उसको चलित नही होने देना चाहिए। अचार याने जिसमे अनेक आत्मा विचरने लगें। खैर, अब उत्पादादि देखें—आम स्वयमेव हरित भावरूप है, वह पकानेपर पीलेरूप होता है, वह पूर्वोत्तर परिणत होता है। पूर्वकालमे हरा रंग था, उत्तरकालमे पीला हो गया। उन दोनोमे अनुभव न हुआ। अपनी सत्ताको जो पहले प्राप्त था वही सत्ता आमकी अब भी है। जिस तरह कोई मनुष्य पूर्वभवमे देव था वह अब मनुष्य हो गया तो उसकी आत्मा तो वही है। उसी आत्माके पूर्वपर्यायका व्यय हुआ। एक अगुली वही है जिसे टेढ़ी की गई तथा सीधी की गई। आम जो हरित था वही पीली पर्यायमे आ गया, किन्तु अश वहीके वही है तथा इस प्रकार भी वह पर्याय नही बदलता कि मुहसे बात निकाली और आम नीला पीला रूपमे हो जावे। एक पुरुष मानकषायके वशीभूत था, कारण पाकर क्रोधमे आ गया। यहा मनुष्य तो नही बदला, मनुष्य तो वहीका वही है। केवल मानका व्यय और क्रोधका उत्पाद हुआ है। कोई अज्ञानसे ग्रस्त था और ज्ञानमे आ गया, तब भी पूर्वकी आत्मा पूर्वका मनुष्य ही है। किसीके ज्ञानका व्यय हो जाता है तथा अज्ञानका उदय हो जाता है। कुछ लोग कहते है कि हम ५० या ४० वर्षके हो गये तो यहाँ शरीरपर दृष्टि गई। यदि सही तौरसे विचार करें तो हमसे अधिक अवस्थामें वृद्ध और कोई नही। जिस तरह अनादिकालसे हम घूम रहे है, उसी तरह अनादिकालके सभी जीव है। तब अवस्थामे अनादिकालकी अपेक्षा सभी बराबर हुए।

अपने अपराधका दण्ड खुदको भोगना पडता—इस जीवने ११वें गुणस्थानमे भी जाकर राग किया तो वहाँसे आ करके निगोदिया जीव तक हो जावेगा। ससारमे कितने भव धारण करना पडे इसकी कोई तादाद नही। अनन्त भव धारण कर रहे है, किन्तु वह राशि

अक्षय अनन्त नही है। निगोदिया जीव १ स्वासमे १८ बार जन्म-मरण कर लेता है। वह स्वास नाकसे ली जाने वाली नही है, किन्तु जितने समयमे एक वार नाडी खटकनी है, उस स्वासको ग्रहण करना चाहिए। इस तरह ग्यारहवें गुणस्थानसे गिरे हुए जीवकी भी यह दशा होती है, तब अपनी तो बात कौनसी ? युवा अवस्थामे विवेक नही किया, तव तो चमक-दमकमे पतनसे कौन बचा सकता है। अपनी बात सोचें जो पुरुष बाल्यावस्थामे तो ज्ञान प्राप्त नही करता, अभ्यास नही करता, जवानीमे विषयरत रहता है वह बुढापा आनेपर होनेपर अर्धमृतकसम करेगा क्या ? आत्मतत्त्वका उपयोग क्या करेगा ? अपने अपराधका फल खुदको भोगना पडता है।

द्रव्यको गुण, पर्यायोसे पहिचानो—प्रत्येक द्रव्यमे अनत शक्तियाँ होती हैं। वह अपूर्व-अपूर्व परिणमनसे परिणमती रहती है, उनमे उत्पाद व्यय और ध्रौव्य रहता है। यह गुण और पर्यायोमे चलता है। बहुत प्रसिद्ध है तो वह उत्पाद व्यय है। जहाँ क्रोधसे मान कषाय आयी वहाँ क्रोधका व्यय और मानका उत्पाद होता है। मानका व्यय होकर माया उत्पन्न हो सकती है या मायाका व्यय होकर लोभका उत्पाद हो सकता है अर्थात् किसी कषायके बाद कोई दूसरी कषाय हो जाती है। जीव पुद्गलका मेल होनेसे असमानजातिक पर्याय होती है। स्वभावव्यन्जन पर्याय तथा स्वभाव अर्थ पर्याय भी पर्याय है। यह सब बनता है, बिगडता है और बना रहता है। जो सत् होगा उसमे उत्पाद व्यय होता ही है। उदाहरणके लिए जैसे आम है, वह शुरूमे हरित भावसे था तथा समय पाकर पीले रूपमे उत्पाद हो गया है तो यहाँ हरे रगका व्यय हो गया। वह इस रूप स्वभावसे ही परिणमा है तथा सहकार (आम) जो एक फल है वह शुरूसे ही है। जिसमे दोनो अवस्थायें अनुभव न की गई हैं। आम वृक्षपर लगते ही शुरूमे काला होता है, बादमे नीला तथा नीलेसे हरा व हरेसे पीला एव साथ साथमे लाल रग भी किसी-किसीमे हो जाता है तथा जब सड जाता है उस समय सफेद हो जाता है। यहाँ सब रगोका उत्पाद व्यय क्रमश. चलते हुए भी आम द्रव्य स्थानीय मौजूद है। प्रत्येक पदार्थ स्वयमेव उत्पाद व्यय ध्रौव्यसे युक्त है। वह किसीकी दयासे उत्पाद व्यय नही कर रहे है। इसी तरह प्रत्येक पदार्थ अपने-अपने स्वभावमे रहते है। कोई पदार्थ मेरा उत्पाद व्यय नही कर सकता। कोई सोचे कि मैं इसका यह कार्य कर दूँगा या इसको इस तरह बना दूँगा, अमेरिका भेजकर पढा दूँगा आदि यह सब व्यर्थके विकल्पमात्र हैं। यह विकल्प आकुलतायें ही मचाती हैं। यह कार्यक्रम चलता है। स्वरूपास्तित्व उसके ज्ञाननेत्रमे भूल रहा है। सब पदार्थ अपनी-अपनी सीमा लिये हुए है। सब अपनी-अपनी परिणतिसे परिणमते हैं। ऐसा वह द्रव्य पूर्वावस्थासे उत्तरावस्थामे पहुचा। पूर्वावस्थामे जो गुण थे वे उत्तरावस्थामे परिणम गये। गुण तो दूसरे गुणरूप परिणम नही सकते, किन्तु उसका अर्थ हुआ जैसे बालकपना व्यय

हुआ और युवावस्था प्राप्त हुई। आप कह सकते है कि बाल्यावस्थामे अवस्थितपने वाला मनुष्य मिट गया और जवान अवस्थामे अवस्थित वाला मनुष्य हो गया या बालपना नष्ट हुआ, युवापना उत्पन्न हुआ, पर बाल्यावस्थामे स्थित मनुष्य जवानीकी अवस्थामे अवस्थित हो गया। इसमे गुणसे गुणान्तर हो गया।

अवस्थामे अवस्थित गुण भिन्न है या नहीं—पहले जो ज्ञानगुण मतिज्ञानरूप था वह केवल ज्ञानरूप हो गया, यह एक सत्त्वमे ही होता है। दोनोमे रहने वाली एक सत्ता ही हुई। कोई कहे बाबूजी! आप तो पहलेकी अपेक्षा बदल गये। इसका तात्पर्य पहले जैसी कषाय नही मिली, इससे ऐसा कहते है। जहा कषायसे कषाय न मिली वहाँ मित्रता बिगड गई। जहाँ दोनोकी कषाय मिल गई, मित्रता बन गई। जो लोग दूसरेको शत्रु मानते हे वह शत्रुके प्रति नम्रतासे दो दिन ही तो चलकर देखें। अगर एक समय भी प्रेमपूर्वक बोल लेवें तो सब सकट मिट जावें। जैसे कि रोग मिटानेके लिए थोडीसी चिकित्सा काम दे जाती है। एक मिट्टीकी पट्टी पेडूपर रखनेसे हल्का शरीर हो जाता है, उसी तरह प्रेमपूर्वक बोलनेसे या साथमे भोजन खिला देनेसे दुश्मन नम्र हो जाता है। कुछ बुजुर्ग तो यह स्वय चाहते है कि हमारा पुत्र या गावका कोई व्यक्ति थोडेसे प्रेमके शब्द तो बोल लेवे। भैया! अनेक विकल्पोसे भला तो यह है कि निज स्वरूपकी दृष्टि करो सब स्वय हो लेगा। अज्ञान अवस्थामें ही मनुष्य सदैव नही रहता है। कभी-कभी अज्ञान छोडकर ज्ञानमे आ जाता है। मिथ्यात्वसे सम्यक्त्वमें भी आ जाता है। एक दृढताकी आवश्यकता है तब जो सकट अनादिकालसे लग रहे है, उन्हे छोडकर निजहितमे रत हो जावें। यह क्या शरीरके वशका काम है? जो चक्रवर्ती हो जावे अथवा तीर्थंकर, कामदेव आदि हो जावे, यह सब आत्मबलसे प्राप्त होता है।

बड़ा-बड़ा वैभव भी आत्मबल बिना नही मिलता है—जब तक उस निज तत्त्वपर दृष्टि नही गई तब तक आपत्ति है। जो भी उत्तम सामग्रियाँ मिली है उनका निमित्त पुण्योदय है। उनमे पुण्य कार्यका आत्मबल भी तो कारण है। इसके लिए आत्मधर्म जैसा उत्तम रत्न किसे मिलेगा? यह बडा दुर्लभ है। शास्त्र ज्ञानरूपी पैनी छेनीसे बार-बार पापकर्म रूपी कलकको धो सकता हू। इससे धन वैभव आदिपर भी कोई असर नही पडनेका। धर्मध्यानमें लगनेसे कुछ कमी आ जावे, यह सभव नही। उदयागत अशुभ पूर्वबद्ध कर्म भी होवें तो समझे कि थोडा उपसर्ग आया है। इससे गरीबी आदिके दुःख भोग रहा हू। सोचे कि धर्मके प्रतापसे सकट टलकर थोडा अवश्य हो जायगा या पूर्णतया टल जावेगा। संकल्प दृढ़तासे करनेपर सब कार्य सिद्ध हो सकते हैं। कहा भी है—'शनै पन्था' अर्थात् रास्ता धीरे-धीरे ही तय किया जाता है। यकायक २० मील १ घटेमें पैदल नही चल सकते। धन भी धीरे-धीरे इकट्ठा होता है। किसीके पुण्यके उदयसे धन पुराने मकानमे रखा मिल जाय, यह बात दूसरी है।

पर्वतपर भी धीरे-धीरे चढा जा सकता है । यदि जरूरतसे ज्यादा दौडकर चढ़े तब आधे रास्ते मे ही थकावटसे चूर हो जावोगे । 'शनै. कन्था' कथरी भी धीरे-धीरे सिली जाती है तथा धैर्य से विद्या और ज्ञानकी उपलब्धि होती है । छोटा बच्चा यकायक चाहे एम. ए. हो जावे तो होना असम्भव है । इन सबका अपवाद भी हो सकता है । जैसे विशिष्ट तपस्या करनेसे चौथे कालमे अल्प ज्ञानके बाद ही केवलज्ञान पैदा हो जावे । पूर्व भवके सस्कारसे विद्या विना पढे ही या अल्प यत्नसे आ जावे या जैसे राकेटमे वैठकर आकाशके ऊपरी हिस्सेपर पहुच जावे । सभी कार्योंमे धैर्यकी अपेक्षा आवश्यक है । अगर प्रति दिन आध-आध घटा समय धर्मध्यानके लिए देवें तो एक माहके पन्द्रह घटे हुये । उतने समयके लिए सब दुनियाके कार्योंसे निश्चिन्त हो जावें तथा सोचें कि मुझे इस समय और कुछ करना ही नही । अपनी आत्माको इसके प्रति उडेल देवे । उसी समयमे १०-५ मिनट दृढ़ सकल्प हो, जिनेन्द्रदेवका स्मरण या सर्व विकल्पोको छोड एकाग्र सर्व विचार बद करके तल्लीन होनेकी कोशिश करें । प्रति वर्ष १ माह या १५ दिन एकान्त स्थानमे धार्मिक वृत्ति वाले त्यागी मुनिके सपर्कोंमे जाकर आत्म-लाभ लेवें, तब उस आनदको देखें । प्राय कर चौमासेके समय तो व्यापार मदा होनेसे व्यापारी वर्गको भी अच्छा सुअवसर धर्मध्यानका मिलता है ।

आत्मदर्शनमे ही आत्महित है—प्रत्येक द्रव्य स्वतन्त्र-स्वतन्त्र परिणमन करता हुआ अपने उत्पाद व्यय ध्रौव्यसे जुदा नही होता है । पुण्यके फलसे अगर थोडी लक्ष्मी मिली और उसीमे हर्षित हो गये तो कोई निजी हित नही दीखता । पापमे दुखित रहना यह भी विषम रास्ता है, जहाँ ककड-पत्थर, काँटोसे मार्ग युक्त रहता है । परकृत आपत्ति आजावे यह भी तो विषम समस्या है । इससे निवृत्त होनेके लिए ज्ञानी जीव यह विचार करता है । सब पदार्थ क्षणभगुर हैं, इस भयकर अटवीमे सकटोका सामना करते हुए स्वकर्तव्यसे विचलित न होनेपर वह उपहार मिलता है जो सदैव जीवनमे बहार देता हुआ अगले भवको भी सुख-सम्पन्न करता है । ज्ञानीका बल विशेष दर्शनीय होता है, जो अपने बलपर खडा होकर सर्व कार्य करता है ।

धर्मकार्य बिना जीवनकी खुटाई—एक कथानक है—किसी समय एक मनुष्य मर गया । जिसे ले जाकर मरघटमे डाल आये । वहाँसे एक स्याल (लडई) निकला, उसने मनमे सोचा आज तो ज्यादा परिश्रम नही करना पडा और भोजन मिल गया । तब वह हाथोकी तरफसे उसको खाना शुरू करना चाहता है । इतनेमे एक कुत्ता जो वही खडा था, वह रोकता हुआ कहता है, भो ! भो ! स्याल ठहरो 'हस्तौ दान विवर्जितौ' इस मनुष्यके हाथोको खाना योग्य नही क्योकि इन हाथोने कभी भी दान नही दिया । तब स्याल कानकी तरफसे खानेको जाता है । तब वहाँ भी कुत्ता कहता है 'श्रुतिपुटौ सारस्वत द्रोहिणौ' अरे स्याल ! इन कानो

को नही खा, इन कानोंने कभी धर्मकी बात नही सुनी। फिर स्याल पेटकी ओर खानेको गया। कुत्ता रोककर कहता है—'अन्यायोपार्जितवित्तपूर्णमुदरम्' इस पेटमे अन्यायसे कमाया हुआ धनके द्वारा भूख शान्त की गई है। इसलिए इसे मत खा। पीठकी ओर स्याल लपका। तब श्वान (कुत्ता) बोला—इस ओर मत जा, इसने कभी परस्त्रीको पीठ नही दिखाई। अब क्या था पैरोकी ओर खानेको गया। तब कुत्ता कहता है—ठहरो जी, 'पादौ न तीर्थं गतौ' इसने इन पैरोसे कभी तीर्थयात्रा नही की है। इसके पैर तो खुदके उदरपोषणार्थ ही यहा वहाँ दौडते फिरे। आँखके समीप स्याल गया तो कुत्ता बोलता है—इन आँखोसे देव, गुरु शास्त्रके दर्शन कभी नही किये। कलेजा भी खानेको गया तो कुत्ता कहने लगा—इसके कलेजे में (मनमे) कभी भी शुभभाव नही आये। वैज्ञानिकोके अनुसन्धानसे पशु, पक्षी आदिका शरीर नाना काम आ सकता है, किन्तु इस शरीरकी न चमडी काममे आती है और न हड्डी, बाल आदि कुछ भी काममे नही आता। यह भी इसका पुण्यकर्म समझना चाहिए कि मनुष्यका अवयव काममे नही लेते अन्यथा काममे लेते होते तो कितने गरीब मनुष्योको खरीदकर सहार कर दिया जाता। जिस तरह हजारो बन्दरो, मछलियो, मुर्गियो तथा बकरो आदिको मौतके घाट उतार दिया जाता है। पशुओके पापकर्मका उदय समझना चाहिए जिससे वह अपने जीवनभर जी भी नही पाते। कसाईखानोमे उनको बर्बरतासे मौतके घाट उतार दिया जाता है।

हे मानव इस शरीरके स्वरूपसे शिक्षा लो—इस शरीरकी अपवित्रतापर भी विचार करनेसे वैराग्यकी तरगें उठ-उठकर टकराती है। नश्वर शरीरके बारेमे सोचना भी श्रेयस्कर है, तभी तो वह हितके कार्योंमे लगेगा। देवोका वैक्रियक सुन्दर शरीर होता है। भोग-भूमियो (मनुष्यो) का भी सुन्दर शरीर होता है जिससे उन्हे विरक्त होनेका अवसर ही नही आता। उसका दुरुपयोग करनेपर एकेन्द्रियमे जाकर पैदा होना पडता है। जहाँ शरीरका विकास ही नही कि इन्द्रियाँ सहनन होनेसे कुछ किया जाय।

उत्पाद व्यय ध्रौव्यकी अपनेमें निगरानी कर अपनेको परखो—भैया! वस्तुस्वरूपके भीतर प्रवेश करो। एक द्रव्य जितना होता है उतनेपर ही दृष्टि रखकर पूर्वोत्तरकालवर्तिनी परिणतियोको भी देखो। एक द्रव्यकी पर्याय गुणपर्याय रूपसे दिखती है, क्योकि गुणपर्यायका समुदाय ही तो द्रव्य है। गुणपर्यायोकी एकद्रव्यता कैसे है ? सो आमके दृष्टान्त द्वारा समझ ही लिया होगा। जैसे कि आम फल स्वय ही हरितरूपसे पीतरूप परिणमता हुआ पूर्वके हरित भाव व उत्तरके पीतभावसे अनुभूत की है अपनी सत्ता जिसने, ऐसा होता हुआ वही आम्र-फल होनेसे एक ही वस्तु है, वहा कोई जुदी-जुदी वस्तु नही हैं, जुदा-जुदा आम्रफल नही है, वही एक है। इसी प्रकार द्रव्य स्वयं ही पूर्वावस्थामे अवस्थित गुणसे (पूर्व गुणपर्यायसे) उत्त-

रावस्थामे अवस्थित गुणरूप परिणमता हुआ पूर्वपर्याय (पूर्वावस्थित गुण) व उत्तरपर्याय (उत्तरावस्थित गुण) के साथ अवशिष्टसत्ताक होनेसे एक ही द्रव्य है, वहा कोई द्रव्यान्तर नही है। तथा जैसे ही कि पीतभावसे उत्पद्यमान, हरितभावसे व्ययमान, सहकार फलत्वसे अवतिष्ठमान, वह एक वस्तुके पर्यायद्वारसे सहकार फल ही है, इसी प्रकार उत्तरावस्थावस्थित गुणसे उत्पद्यमान, पूर्वावस्थावस्थित गुणसे व्ययमान व द्रव्यत्व गुणसे अवतिष्ठमान वह एक द्रव्यपर्याय द्वारसे द्रव्य है। इस तरह एक द्रव्यमे गुणपर्यायद्वारसे होने वाले उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य एक द्रव्य ही हैं। यह द्रव्यका साधारण स्वरूप है। इन सब उत्पाद, व्यय, ध्रौव्योको आत्मस्वरूपमे देखो।

आत्मज्ञानके उद्यमकी वास्तविक उपासना—जिस अपने ज्ञानके विना यह जीव अनादिकालसे विकल्पजालोमे भ्रमण करता आया है वह आत्मज्ञान कैसे हो ? प्रथमानुयोग शास्त्र मन बहलानेके लिए नही बना है। जिसमे महापुरुषोके जीवन-चारित्रको पढकर स्वयमे उथल-पुथल मच जाती है कि इन महापुरुषोंके पास इतना विशाल वैभव था उसे ये यो ही छोडकर चले गये, तब मैं क्यो न उद्यम करूँ ? चरणानुयोग शास्त्र बना वह भी सनकमे आकर नही बना, किन्तु चारित्ररहित जीवन कोई महत्त्वप्रद नही, इसी तथ्यपर लिखा गया है। करणानुयोग शास्त्रमे महान् ज्ञान भर दिया। इसका तात्पर्य यह नही कि उससे कोई मौलिक मौज लेना हो तथा द्रव्यानुयोगमे द्रव्यकी चर्चा करके भीतरसे खोखला बना रहना, यह भी इसका विपय नही। समस्तका प्रयोजन यह है कि जो अनेक प्रकारकी तरग उठ-उठकर जीवनकी शान्ति भग कर देती है, वह टिकाऊ रह सके। वह सब इस प्रयोजनको लिए हुए है कि स्वाध्याय करके ज्ञान बढाया जाय। जैसे धनकी महिमा है, वैसे ज्ञानकी महिमा आत्मामे दृढ कैसे हो ? वह किस रूपका हुआ करता है तब आत्माका प्रत्यय भी दृढ कर लेवे। कुशल कारीगर महलकी नीव दृढ़ करके आगे बढते है। तत्त्वज्ञान और वैराग्यका महल उठानेके लिए आचार्यों ने एक ठोस नीव रखी है। आत्मा सत् है, यह सत् उसे कहते है जिसमे सत्ता है। वह सत् सत्तासे जुदा नही है। केवल समझने और समझानेका भेद है। इसीको आज फिर कहते हैं। अब सत्ता और द्रव्यके अभिन्नपनाको वताते है। इनमे केवल एक भाव और भाववानका फर्क है। एक स्वरूप दृष्टिसे देखा तो आत्मा नजर आया। द्रव्यमे सत्ता उपन्यस्त है। कितना उत्तम शब्द दिया है कि अर्थान्तर है, सत्ता द्रव्यसे जुदा पदार्थ नही है। इसीका उपन्यास है अर्थात् ये पासमे रखते हैं। उपन्यास पढने वाला भी अपने लिए उसी रूप बनानेकी चेष्टा करता है। अगर उसमे अच्छी शिक्षा हुई तो ग्रहण कर लिया। यदि उसमे किसी भोले पात्र का वर्णन है तो अश्रुपात तक होने लगता है अथवा किसी छली पातकी पात्रका वर्णन है तो उसपर खिजलाहट उठती है। उपन्यास पढते समय कोई जेब भी काट लेवे तो ध्यान नही

रखते । सत् सत्तान्तर नही है । इसको उपन्यास करते है, इस रूप अपना उपयोग बनाते है । इसे कुन्दकुन्दाचार्यदेव कहते है ।

ण हवदि जदि सद्दव्व असद्धुव हवदि तं कह दव्वं ।
हवदि पुणो अण्ण वा तम्हा दव्व सय सत्ता ।।१०५।।

द्रव्यकी सद्रूपता—यदि द्रव्य सत् नही है तो क्या निश्चय हो गया कि वह असत् बन गया । है ही नही तो द्रव्य ही क्या ? द्रव्य तो सत् रहा नही तब द्रव्य सत्तासे अन्य रहा, सत्तासे पृथक् रहा, यह कैसे हो सकता है ? कोई भी मूलसे असत् बात नही कर सकता । ऐसा कोई नही है जिसका मूल नही और उसे मान लेवे । जैसे ईश्वर जगतका कर्ता है तो यहाँ ईश्वर तो है ही तथा जगत भी है । तुम्हारा यह विकल्प 'ईश्वर जगतका कर्ता है,' यह हो गया । बस अब इस विकल्पका मडन-खडन है, आकाशका फूल है । यहापर आकाश होता ही है और 'है' भी तथा फूल भी होता है । 'गधेके सींग' गधा होता है उसके सीग नही होते । तब भी यह ज्ञात होता है कि किसीके सीग होते है । गधेके सीग यह विकल्प असत् है । सर्वत्र मूल तो होता ही है यहाँ कुछ मूल भी नही, तो असत्का भी कोई आधार है । विवक्षा-वश असत्का आधार तो अन्यका सद्भाव पाया जाता है । दुनियामे जितने शब्द है उनका मूल्य है । यह शब्द निर्वाच्य भी नही है । अगर निर्वाच्य होते तो उनका महत्त्व भी क्या रहता ? जैसे मै कहू 'घ, ला, ट, ओ' इनका भी कुछ महत्त्व है । उनको बखेडकर इस तरह कर सकते है, घट लाओ । कोई द्रव्य ऐसा है जिसमे स्वरूप अस्तित्व नही हो । यदि एक द्रव्य स्वरूपसे सत् न हो तो क्या बनेगा ? कोई भी द्रव्य दूसरे द्रव्यका अकर्ता है । ईश्वर भी जगत्का अकर्ता है । हम भी अपने द्रव्यके कर्ता है, क्योकि प्रत्येक द्रव्य स्वरूपसे सत् होता है । सत्से सत्ता भिन्न नही है ।

अभाव भी किसी न किसीके भावरूप रहता है—एक व्यक्ति विलायत गया, वहां उसका भाषण होना था । वहां उसके लिए विषय दिया गया 'शून्य' पर बोलनेके लिए तो उसने वहांपर भी दो तीन घटा बोल दिया है । 'है' के लिए ही यहाँ जिक्र कर रहे है । यहा तो 'है' के स्वरूपका जिक्र कर रहे है । 'है' ऐसा है । कुछ लोग यह कहे कि आत्मा सो पर-मात्मा, किन्तु आत्मा भी है, इसपर दृष्टि नही है । जो है वह स्वयं अपने आप है, किसीकी कृपासे नही है । दो विकल्प किये थे—अगर द्रव्य स्वरूपसे सत् नही है तो दोनोमे विकल्प उत्पन्न होते है । द्रव्य असत् हो गया तो ध्रौव्यपना तो रहा ही नही । आत्मा अपने आपको धारण ही नही कर सकता अर्थात् अपना स्वरूप अस्तित्व ही नही रख सकता । यहाँ तो ऐसा कह देते है कि उसने अपना अस्तित्व ही मिटा दिया, अपनी बात ही नही रख सका सो गिर गया । द्रव्य अस्तित्वसे रहित नही, मैं स्वय हू । मेरा कोई बिगाड या सुधार करने

वाला नही है। हम ही अपने बिगाडसे सुधार तथा सुधारको बिगाडरूप कर लेते है। कोई किसीका सुधारने वाला नही, फिर भी मोहवश परद्रव्यके लिए आकुल-व्याकुल होते चले जा रहे है। अगर धन है तो उसको चोर डाकू लूट भी ले जावें, किन्तु इस अनुपम ज्ञानधनको कौन लूटने वाला है, वह सदैव काम देता रहता है। जब सन्तोष मिलेगा तब तत्त्वज्ञानसे मिलेगा। अगर कही द्रव्यस्वरूपसे ही असत् हो जाय तो असत्पनेको प्राप्त हो जायगा। सत्ताके बिना अपना स्वरूप धारण कर लिया। जब मान लिया या मानते हो द्रव्य है तो अब सत्तासे लिपटने की क्या जरूरत है ? सत्ताके बिना ही वह है और वह सत्ताके बिना ही हो गया है। द्रव्य सत्ता को नष्ट कर देगा, अप्रयोजन कहने या करने वालेकी कोई विशेषता नही रहती। अनर्थक चीज ही क्या हो सकती है ? लोकव्यवहारमे इस तरह लगा लो, कोई भी वस्तु न होवे, यह होना सम्भव है क्या ? बडे-बडे आफीसर लोग आजकल सबकी जानवरोकी उपयोगिता सिद्ध कर रहे हैं। इसे अर्थक्रिया नही कह सकते। सब निज अर्थ क्रियाकारी है, सब अपने-अपने अदर क्रिया करते है। कोई किसीका कर्ता होता तो कोई पदार्थ कही रख दो और उसका ध्यान न रहे तथा फिर कुछ समय बाद देखा जानेपर उसे नही मिलना चाहिए था या ज्योका त्यो रहना चाहिये था।

आत्मचिह्नकी प्रतीति बनाये रहो—एक लडकेका नाम रुलिया था। उसकी माँ लडके से बोली—बेटा, साग-भाजी बाजारसे जाकर खरीद लाओ तो रुलिया कहता है कि हम बाजार जावेंगे तो वहाँ रुल जावेंगे। इसलिए मैं नही जाता। तब माँ ने उपाय सोचा और कहा कि तेरी कलाईमे कपडा बाँधे देती हू, उसे देखते रहना और कहना कि हम नही रुले। वह बाजारमे गया और साग-भाजी खरीदकर घर आने लगा, तो कपडा कच्चे धागेसे बधा था, जिससे भीड-भडक्कामे वह टूट गया। तब चिल्लाता हुआ आया और घर आकर बोला कि माँ मैं रुल गया, माँ मैं रुल गया। तब माँ बोली कि यह मेरा लडका जैसाका तैसा खडा है, इतनेपर कहता है—'मैं रुल गया।' यह क्या बबाल है ? तब माँ ने उसे सुला दिया और सोतेमे माँ ने उसे वैसा ही कपडा बाध दिया। तब वह सोकर उठा तो दिखाया कि यह तो कपडा तेरा जैसाका तैसा बधा है, इससे वह सन्तुष्ट हो गया। इसी तरह जब तक स्वरूपास्तित्वमे नही है तब तक यह भ्रम हो रहा है कि परपदार्थोसे मेरा भला बुरा होता है। स्वरूपास्तित्व ध्यानमे आ जाय तो क्यासे क्या हो जाय। एक यहीके राजेन्द्रकुमार लडकेके बारे से सुना था। एक समय सेठजी के यहा हाथी खरीदा हुआ आया तो बोला—हमे तो हाथी चाहिए और रोने लगा। तब उसे उसके पिता हाथीके पास लिवा ले गये और कहा कि यह है हाथी। तब भी नही माना तो उसके ऊपर बैठा दिया, फिर भी नही माना और कहने लगा कि इसे खरीद लो। उस हाथीको आगनमे खडा करा दिया। तब भी वह न माना और बोला

कि तुम तो इसे हमारी कुज्जी (लोटा) मे रख दो। वह कुजियाकी जगह यह भी कहने लगे कि जेवमे रख दो तो उसकी इच्छा कौन पूर्ण कर सकता है ? इसी तरह यह जीव अनेक प्रकारके झूठे-झूठे विकल्प करता रहे तो उसे कौन समझा सकता है ? अगर कोई भी अनुकूल या प्रतिकूल चले तो तुम्हारा क्या बनाता बिगाडता है। कुछ लोग इस बातपर गुस्सा होते हैं कि अमुक-अमुक व्यक्ति आदि मदिरमे नही आते। लेकिन उनके इस क्रोधसे क्या लाभ मिलने का ? क्रोधित न होकर उन्हे वस्तुस्वरूपका उपदेश समझाया जाय तब कही हृदयमे बैठ जावे तो उत्तम है।

जिसको अपने आपकी दया नहीं है वह क्या अपना भला करेगा—अपनी खुदकी गर्ज होगी तभी तो शुभ व आत्मकल्याण सम्बधी कार्य करेगा। दुनियामे और भी तो देश है। अमेरिका, इंगलैण्ड, जापान, चीन, अफ्रीका, आस्ट्रेलिया आदिमे भी तो है। क्या उनका भी यह सुधार कर सकता है ? जो भी व्यक्ति भला-बुरा कार्य करता है वह अपने माफिक अच्छा ही तो करता है। क्योकि मिथ्यात्वसे ग्रस्त है चित्त जिसका वह तो उसी तरहके कार्यमे प्रवृत्त होगा। यदि उसका पुण्योदय होता तो वह उन कार्योंसे मुख कभीका मोड लेता। जगतमे अनत आत्माये तो है, फिर इन्ही एक या थोडेसे व्यक्तियोको देखकर क्यो दुःखी होते हो ? जितने भी जीव है वह अपनी-अपनी योग्यतासे परिणमन करते चले जाते हैं। कोई किसी द्रव्यको परिणमा देवे, यह नही हो सकता। प्रत्येक द्रव्य अपने-अपने स्वरूपमे स्थिर है। पुराणो मे पढो तो ज्ञात होगा। बड़े वैभवशाली महापुरुषो, राजाओ, सेठोंने खूब गृहस्थीका साज-सामान इकट्ठा किया और जव दिल ऊब गया तो उन्हे दृष्टि पसारकर पुनः देखनेकी भी इच्छा नही हुई और विरक्त होकर जगलकी राह ली, जहा उनकी परीक्षा ठडी, गर्मी, धूप, बरसात, वायु प्रकोप एव जीव-जन्तुओ आदिने खूब ली तथा उसमे यह १०० के खरे सोनेके सामान उतरे। ऐसे ही आत्मायें पूज्य है। अपने आत्मतत्त्वको देखो—तुम शुद्धसत्ताक हो, स्वय सत् हो। द्रव्यका स्वरूप ऐसा ही है। द्रव्य स्वभावसिद्ध है, स्वयं सत्स्वरूप है। यदि द्रव्य स्वरूप से सत् न हो तो या तो वह असत् हो जायगा या सत्तासे पृथक् हो जायगा। असत् होता हुआ तो ध्रौव्य असभव होनेसे द्रव्य अपने आपको भी न धार सका, तव द्रव्य अस्तको प्राप्त हो गया, शून्य हो गया। द्रव्य (सत्) सत्तासे पृथक् है तो जब सत्ताके बिना ही द्रव्यने अपनेको कायम रखा तो सत्ताका इतना ही प्रयोजन था कि सत् कायम हो सो तो बिना सत्ताके ही सत् होगा, सो सत्ता ही अस्तको प्राप्त करा दी गई। फिर यथार्थ बात क्या है ? बात यथार्थ यह है कि स्वरूपसे ही सत् होता हुआ द्रव्य ध्रौव्यके सभव होनेसे आप अपनेको धारता हुआ द्रव्यको उठा देता है अर्थात् प्रसिद्ध कर देता है तथा सत्तासे अपृथक् होता हुआ द्रव्य (सत्) अपनेको धारता हुआ इस ही प्रयोजनको रखने वाली सत्ताको भी प्रकट कर देता है, प्रसिद्ध कर देता है।

द्रव्य स्वयं सत् है—द्रव्य स्वय सत् न होवे तो दो आपत्तिया आवेंगी—(१) द्रव्य असत् हो जायगा। (२) सत्तासे न्यारा मानना पडेगा। द्रव्य असत् होनेसे कुछ भी नही रहेगा। जब सत्ता ही नही है तो द्रव्यकी मौजूदगी ही कैसे रहेगी? सत्ताके बिना अपना स्वरूप नही रह सकता। सत्ता ही मुख्य है और देखते जाओ, फिर उत्पाद व्यय ध्रौव्य वाला सदैव बना रहता है। यह लक्षण द्रव्यका निरखते जाओ। कार्य यह हो जावे और यह नही हो पावे, यह सब अपने-अपने विकल्पमे कार्यक्रम बनाता रहता है। वृद्धता न आवे इसके लिए उस प्रकारके कार्य किये जावें तब है। तीर्थंकरोको कहाँ वृद्धपना आता है या अत्यधिक पापसे उत्पन्न नरक मे नारकी जीवोको भी वृद्धपना नही आता है। द्रव्य स्वभावसे तथा स्वरूपसे ही सत् है किसी की कृपासे नही है। विलीन हो मोह जावे तो निज स्वरूप समझमे आवे। स्वरूपसे सत् है तभी द्रव्य है, नही तो द्रव्यपना भी प्राप्त किसको होता है? सम्बधकी बात भी देखो तो जीव का पुद्गलके साथ सम्बध होनेसे कुछ बनता भी है। लेकिन जीवसे जीवका कुछ भी नही बनता। जो इतना पृथक् है तब भी जो मोह होता है वह जीवको लक्ष्य लेकर होता है। यह जीव मित्रोंसे मोह करता है, स्त्रीसे मोह करता है, पुत्र, भाई, पिता, माता, बहनोई, साला, चाचा, भतीजा आदि किस-किससे मोह करता है? यह मोहकी लीला विचित्र है। यह सब व्यावहारिक मोह करता है। अगर द्रव्यको लिया जावे तो पुद्गल व जीवसे भी मोह नही करता। शुद्ध चैतन्यसे मोह किया जाता है क्या? बिगडे जीव पुद्गलसे मोह करते हैं। शुद्ध चिद्रूप आत्मतत्त्वका विचार करो, स्वरूपसे सत् हो गया तो ध्रौव्यपना सभव हो गया। वस्तु-स्वरूपसे सत्ता है, सत्तासे अभिन्न है, वह स्वत सत् है तथा उसकी सत्ता द्रव्यसे अभिन्न है। स्वरूपसे सत् न मानो तो आपत्ति। सत्तासे अभिन्न न मानो तो आपत्ति। द्रव्यमे सत् और सत्ता दोनो रहते हैं। यहाँ ऋजुसूत्र नय जैसी विशेष्य विशेषणके अभाव वाली दृष्टि चलती भी है और तीर्थप्रवर्तनके लिये नही भी चलती है। जैसे कोई कहे—"कौआ काला" यह ठीक नही है, क्योकि जितना सारा कौवा है वह सारा काला नही और जो-जो काला है वह सब कौवा नही, यहाँ जो-जो सत्ता वाला है वह सत् है और जो-जो सत् है वह-वह सत्तावान है। जैसे कहो—काला कौआ। तो कौवेसे काला रग क्या भिन्न है? वह कृष्ण वर्णके सयोगसे नही बना। कौआ जब अपने आप काला है तो उसको जुदा कहनेकी जरूरत क्या है? उसी तरह सत्ता और सत् स्वयं अभिन्न है, उनको भिन्न-भिन्न कहनेकी जरूरत क्या है? द्रव्य अपने आप परिणमता है उसे कोई परिणमाता नही है। द्रव्यमे जो विशिष्ट परिणमन है वह भी निमित्तका सन्निधान है तो वह अपने आप परिणमता जाता है।

किसी भी द्रव्यका स्वभाव औपाधिक नही होता है—स्वभावसे ही प्रत्येक द्रव्य परि-णमता रहता है। इसलिए द्रव्यको स्वत. सतके साथ मानना चाहिए। द्रव्यके पास जाओ

अथवा आत्माके पास जाओ, दोनोका फल एक है। विशेष पर्याय या भेदमे विकल्पता चलती है । विकल्प करनेका सस्कार है । उसे द्रव्यस्वरूपके उपयोगरूपी करण से नष्ट करो सत्से द्रव्यको मानना चाहिए, उसके समीप पहुचना चाहिए । निरखकर क्या करना ? उस रूप उपयोग बनाकर अनाकुल रहना । भोजनको देखने मात्रसे सतुष्टि नही होती है । किन्तु उस भोजनको खा लेना चाहिए तव सतुष्टि होगी । उसी तरह सत्व देखनेका प्रयोजन क्या ? निर्विकल्प शान्ति एव निर्मोहता होवे तो आगे बढा जावे जिससे कर्मनिर्जरा होवे । हमे तथा आपको कौनसा कार्य करना है ? मुख्य लक्ष्यपर दृष्टि होना चाहिए । ऐसा तत्त्वज्ञान हो कि निर्विकल्पताका स्वाद लेते रहे । कोई कहे सन्तानको पढ़ा लिखाकर योग्य बना देवें, अच्छी नौकरी दिला देवे तब कुछ करेंगे तो क्या यह सोचने वाले वृद्ध नही होंगे या मृत्यु नही आवेगी । जब वृद्धता आ जाती है तब अपना शरीर स्वयपर नही सवता है । वचन लटपटाने लगते है, पैर कमजोर हो जाते हैं; नाक, कान, आँखोकी शक्ति कमजोर हो जाती है । मृत्युका भरोसा नही, फिर भी ख्याली पुलाव बनाता रहता है । तुम इन्हे खास मानो तो उनका कार्य होगा और न मानो तो उनका कार्य न होगा । जब तक राग भाव बना हुआ है तभी तक तो तुम धन वैभव, कुटुम्बीजनोमे मोह कर रहे हो । सोचते १ लाखका धन हो जावे, फिर १ लाखसे, १ करोड हो जावे और एक अरब भी हो जावे, किन्तु साथमे इसका भी पता है खुदपर क्या बीतेगी ? लोगोके मुँह सुना जाता है कि जिसके पोता, पडपोता, पती सती अर्थात् पाँचवी पैरी हो जावे और बुड्ढा आँखोसे देख लेवे तो उसके साथ सोनेकी नसैनी (छोटी सी) मरनेपर रखी जाती है । क्योकि नसेनी स्वर्गके चढ़ानेके काम आती है, लेकिन नसेनी उतरनेके भी तो काम आती है । तुम क्या स्वर्गमे भेजनेके ठेकेदार हो जो इस प्रकारकी लीला करते हो ? उसने लडकेमे मोह किया, नातीमे मोह किया, पोतेमे मोह किया, पतीमे मोह किया और सतीमे मोह किया तो इतनी पीढीका मोह ही करता रहा, ऐसी दशा मे चढना सभव है या उतरना । यह मोहका ही तो फल है कि तुम इन्ही सन्तापोमे पलते रहो । इस मोहमे मिथ्या वुद्धि, मिथुनवुद्धि और युग्मवुद्धि हो जाती है तव अपनेको अन्यके मोहसे पृथक् कहाँ कर सकेगा ? मोहरूपी ममता पिशाचिनी परमे ही भ्रमण करती है ।

निज स्वरूपास्तित्वकी प्रतीति धर्मका मूल है—अपने स्वरूपास्तित्वमे आना यही धर्मका मूल है और यही धर्मकी शुरुआत समझना चाहिए । यही स्वरूपास्तित्व सर्वश्रेष्ठ है और वह सत्से जाना जाता है । सत्ता जुदी है और मैं जुदा हू, यह भेद इसमे उत्पन्न नही होता, इसलिए इसे नही करना चाहिए । किसी व्यक्तिके लिए भोजन वनाया और उसे परोसा नही तथा कहे यह हलुवा है, इसमे गंजबासोदा मिलकी सूजी पडी है, सहारनपुर शुगर मिलसकी शकर है, चदोसीका उत्तम घी पडा है तथा अमुक-अमुक प्रकारका मेवा इसमे

है । यह छुहारा, छोटी दाखकी साग है, पूडियाँ, कचोडियाँ आदि है । वर्णन तो दुनियाभर का कर डाले और परोसनेमें विलम्ब करे तो बुद्धिमत्ता नही, किन्तु वह वर्णन सुनकर थालीमे लेकर मुँहमे रख लेगा तो सब विशेषतायें उस भोजनकी समझ जावेगा । अनेक विकल्प बनानेसे क्या फायदा होता है ? जिसको समझा रहे है उसे मुखपर रखनेमे एक सेकेंडमे सब समझमे आ जावेगा । दुनियाके इसी तरहके वर्णन मेरे कोई काम नही आनेके । ससारका कौनसा पदार्थ मेरा आलम्बन हो जायगा ? केवल अपना स्वभाव ही साथ रहेगा, वही समझमे शीघ्र आ सकता है । भाव और भाववान अपृथक् नही है । चेतनका चैतन्य ही स्वभाववान हुआ, पृथक् नही है । बुद्धिकृत ही तो अन्तः क्रिया है और कुछ भिन्न नही है । यह स्वय अपने परिणमनमे परिणमता चला जाता है । कोई विरक्त होवे और मंत्री उल्टा समझाने लगे, कुटुम्बी लोग भी ऐसा ही समझाने लगें तो भी उसे कोई भी नही रोक सकता है । तत्त्व ज्ञान जग गया फिर उसे परपदार्थोंमे फसनेकी क्या आवश्यकता रह जाती है ?

वैराग्यको कोई कैद नहीं कर सकता—सुकमालको विशाल महलोमे बन्द किया गया, अनेक प्रयत्न किये कि यह बाहर नही निकल पावे । सुकमालमे जब तत्त्वज्ञान जग चुका तो कपडोंकी पोटलियाँ उठाकर धोती साडियो आदिको ऐंठकर रस्सी जैसी बनाता है और महलके पिछले भागपर लटकाकर उसके सहारे उतर जाता है । जिसके ध्यानमे यह समा चुका कि इस ससारमे अनादिके दुःख भोग रहा हू । अब इन बन्धनोको तोडना है, वह कदापि इस मोहजालमे नही रुक सकता । कुछ लोग कहते हैं—जिनेन्द्रदेवकी पूजन कर लो, पाठ किया करें, माला जप लिया करें जिससे तुम्हारा वैभव सुरक्षित बना रहेगा और मनोवाञ्छित फल मिलेगा । कुछ अशो तक तो इसे ठीक कह सकते है, कारण वह अन्य देवोपर श्रद्धा न कर जिनेन्द्रपर श्रद्धा कर रहा है, जिससे फल तो मिलेगा ही, लेकिन लक्ष्य यह न रहे कि मै पूजन, सामायिक, पाठ, दर्शन, भक्ति इसलिए कर रहा हू कि मेरे धन वैभव आदि बढ़ जावें । बिना फलकी इच्छासे यह कार्य होना चाहिए । क्योकि इन धार्मिक कार्योंसे मोक्ष के संस्कार जो परम्परासे दृढ हो रहे थे, उनके बदले हमने यहींपर इस भूसे रूप सपत्ति मागकर उसको नष्ट कर दिया या उस फलसे वचित हो गये । वह बञ्चना रत्न पाकर चिडिया उडानेमे फेंक देनेके समान है तथा पूर्व भवका जो पापबध होगा उसे तो धर्म करते हुए भी भोगना होगा । अपनी तो बात क्या श्रीरामचन्द्र, श्रीपाल, सुकमाल, सुदर्शनसे महापुरुष जैसे व्यक्ति नही छूटे । हा धार्मिक कार्य करनेसे उस पापकर्मका अनुभाग कम हो जाता है । सातिशय सम्यग्दृष्टिके सातिशय पुण्य बंधता है । पुण्यकी सीमा है वह उसे प्राप्त होगा । कोई महान पुण्यके प्रभावसे इन्द्र, चक्रवर्ती, तीर्थंकर, कामदेव आदि हो जाता है । सम्यक्त्वसे पुण्य नही बधा, किन्तु सम्यक्त्वरूप निर्मल परिणामोंके होते हुए जो राग रहा है, उसके

निमित्तसे पुण्य बधा है । एक प्रधानमंत्रीकी कोठीका चपरासी भी प्रधानमंत्रीके प्रसङ्गमे होनेसे काफी इज्जत पा जाता है । अगर कोई त्यागी अकेला स्कूल आदिमे जावे तो उसे वहांका चपरासी भी नही पूछता, किन्तु चार सेठ साथमे होवे तो वही मास्टर, मुनीम, चपरासी सेठोसे ज्यादा आवभगत (आदर) त्यागीजी की करते है । यह बात तो यो ही कह दी, अचरज करते हुए न देखें ।

तत्त्वदर्शनकी महिमा—सम्यग्दृष्टिके जो राग रहता है उससे बडे-बडे वैभव मिलते है । अगर यह गल्ती न रहे तब कहना ही क्या ? मोक्षलक्ष्मीका स्वामी शीघ्र हो सकता है । इस वैभवके मुकाबले वह कितनी अनुपम अनमोल निधि सदैवको मिल जाती है, वह हमारे अनुभवमे नही आ पा रही । सर्वार्थसिद्धिका मूल तत्त्वज्ञान है । द्रव्य स्वय सत्स्वरूप है, यह यहां बताया जा रहा है । इससे अनेक बातें प्रकट हुई, द्रव्य सत्तासे पृथक् नही है, द्रव्य सत्ता के समवायसे सत् नही है, द्रव्य उत्पाद व्यय ध्रौव्यात्मक है । द्रव्य प्रदेशगुणपर्यायात्मक है इत्यादि । इस गाथामे द्रव्य व सत्तामे अनर्थान्तरता बतानेके लिये युक्तिया देकर अब अतमें आचार्यदेव कहते है कि द्रव्यको स्वय सत्त्वरूपसे मानना चाहिए, क्योकि अब भाव भाववानमें पृथक्ता न होनेसे उनमे अनन्यता है । यहा मानना चाहिये इसका वाचक 'अभ्युपगन्तव्य' शब्द दिया है—"अभि-उप-गन्तव्य" अर्थात् सर्व ओरसे अति निकट जानना चाहिए जिससे शिक्षा मिलती है कि द्रव्यके सामान्य शुद्ध स्वरूपके उपयोग द्वारसे सामान्य आत्मतत्त्वमे उपयुक्त होना चाहिए। अब पृथक् तथा अन्यत्वका लक्षण खोलते हैं । यहाँ उन्मुद्रति शब्द दिया है, जिसका अर्थ हर्षपूर्वक प्रकट करते है । जिस तरह शीशीमे सत् आदि द्रव्य भरे हो उनको निकालते है, उस भरे हुए तत्त्वपर अपृथक्त्व व अन्यत्वपनेकी छाप लगाकर उद्घाटन करते है तथा अपृथक्त्व एव अन्यत्वको जानते हुए वह हमारे सामने है, उसका उपयोग करना हमारी शक्तिपर निर्भर है । मनुष्य एक पैसेकी हडी भी ठीक बजाकर लेता है । उसी तरह जिस तत्त्वको ग्रहण करना चाहते है, उसे खूब ठोक-बजाकर स्पष्ट करके प्राप्त करो, तब उसका अनुसरण करो । जो उसे विवेकपूर्वक गहण करेगा वह असली तत्त्वको पावेगा । अब पृथक्त्व और अन्यत्वका लक्षण उन्मुद्रित करते हैं ।

पविभत्तपदेसत्त पुधत्तमिदि सासण हि वीरस्स ।
अण्णत्तमतब्भावो ण तब्भव हवदि कथमेग ॥१०६॥

प्रविभक्तप्रदेशपना होनेसे पार्थक्यकी सिद्धि तथा अतद्भाव होनेसे अन्यत्वकी समझ—प्रविभक्तपदेशपना (जुदे-जुदे प्रदेश होने) को ही पृथक्त्व कहते है । ऐसा श्री वीर भगवानका शासन (उपदेश) है तथा अतद्भाव (लक्षण एक न होने) को अन्यत्व कहते हैं । जो तद्भवत् (सर्वथा एक ही लक्षणरूप) नही है वह कैसे एक है ? पृथक्त्वमे तो सब कुछ अलग-अलग है

हो, किन्तु अतद्भावको ऐसा समझना कि एक ही वस्तुमे व्यवहार प्रवृत्तिके लिये जो गुण गुण की स्थापना की जाती है उसमे लक्षणमात्रका भेद करना होता है, उस दृष्टिसे एक वस्तुमे ही अतद्भाव सिद्ध होता है। अन्यपना देखना चाहते हो तो सही सत्तामे, जिसमे विभाग न हो, उसे इस तरह मानो—विभक्त हो गया है पृथक्त्व प्रदेशपना जिसमे, ऐसा वह प्रदेश पृथक् नही हुए, इस तरह देखो। यह अगुली है, इसमे गुलाबी रग है, वह अगुलीसे पृथक् नही है। जो अगुली है उसीके साथ उसका रग है तथा जब हम रगका वर्णन भिन्नपनेसे करना चाहे तो भिन्न है भी, किन्तु उसका प्रदेश जुदा-जुदा नही है। वहाँ अन्यत्व लक्षण भेदसे है। सत् और सत्तामे फर्क (डिफरेन्स) तो है, किन्तु पृथक् (सपरेशन) नही है। जिस तरह सपरेटा दूध (मक्खन निकला दूध) रहता है, इस तरह जुदा-जुदा नही है। जिसमे बिल्कुल जुदापन हो गया है, इस तरह सत् सत्तासे जुदा नही है। प्रदेश जिसमे पृथक् हो जावें, उसे प्रविभक्त प्रदेश कहते है। यह वीर भगवानका शासन है, इसमे तत्त्वका मथन खूब किया गया है। मथन करनेके बाद जैसे मक्खन निकलता है, उसी तरह यहाँ तत्त्वको खूब वाद-विवादपूर्वक ग्रहण किया गया है। अन्यत्वमे अतद्भाव है। अतद्भावी मात्र ऐसा अन्यत्व है, जो समझमे एक रूप न हो। अतद्भाव होनेसे वे सब सत् है, यह कैसे कह सकते हो? सत् अपने गुणोसे परिपूर्ण है, उसमे किसीका मिश्रण नही है। इस तरहका मैं एक आत्मा अपने-अपने गुणोमे परिणमता हुआ स्वभावसे पृथक् नही हू। इसीके ऊपर आगे भगवान कुन्दकुन्दाचार्यकृत गाथा पर आचार्य अमृतचदाचार्य सूरि जी प्रकाश डालेगे।

द्रव्य और सत्ता जुदी चीज है या एक—'द्रव्य और सत्ता जुदी चीज है या एक' इसपर विचार चल रहा है। द्रव्य और सत्ता प्रदेशसे जुदी नही हैं किन्तु वाच्यवाचक भावसे तथा लक्षणसे जुदी हैं। साधारण रूपसे यह भी मालूम है कि द्रव्य पिण्डपनेकी अपेक्षा क्षेत्रपने की अपेक्षा, कालपनेकी अपेक्षा, भावकी अपेक्षासे पहिचाना जाता है। अन्यत्वका यह दूसरा स्वरूप है। दो भाई एक घरमें रहते हो और उनमे आपसमे मनमुटाव हो जावे तो कहा जाता है अब तो तुम दूसरे हो गये। हालाकि भाई वही है किन्तु दिल फटनेसे बीचमे भेदकी एक दीवार पड गई है। इससे दूसरे कहे जाने लगे। कुछ समय बाद अलग-अलग घरमे रहने लगे। चकिया चूला जुदे-जुदे बट गये। तब कहा जाता है अलग अलग घरमे रहने लगे। सत् और सत्ता जुदे-जुदे है या अन्य अन्य है। जुदे जुदे हैं या पृथक् पृथक् हैं। दोनो जुदे तो हैं तथा अतद्भावरूप अन्यपना है किन्तु प्रदेशपनेकी अपेक्षा जुदे नही हैं, बिल्कुल पृथक् हैं प्रदेश जिसके, ऐसा वह पदार्थ, प्रविभक्त जुदे-जुदे हो गये है प्रदेश जिसके ऐसा वह पदार्थ पृथक् है, यह अनेक द्रव्योमे घटित है। यह बात सत्ता और सत्मे सभव है क्या? यह सत्ता और सत्मे सभव नही है। कोई कहे आग वही पडी रहे और गर्मी यहाँ दूर आ जावे तो यह सभव नही।

जैसा कि देहाती लोग कहते है—आँच (गर्मी) दे दो। अगर ऐसा होने लगे तो केवली-जुदा रहना चाहिए तथा उसकी गर्मी विशिष्ट जुदी रहनी चाहिए। सत्ता और सत् जुदा नही किया जा सकता। पदार्थोका यथार्थ सत् समझ जानेपर स्वरूप जाना जायगा, कौन किस तरह द्रव्यको मानते है। प्रथम दार्शनिकोमें लो, वह कहते है—सत् अलग है, सत्ता अलग है और समवाय अलग है। अब व्यवहारी जनोकी बात लो तो वह कहते है हमारा सुख दु:ख इन भाई साहब पिता आदिपर निर्भर है, जीना मरना भी पुत्रादि या पिता पर निर्भर है। अपनी अवस्थाके अनुसार कहते है। सुख दुःख यह भी तो सत् है। यह क्या दूसरेसे आवेगा ? यहाँ शून्य है तो उन्होने कहाँ अपनी सत्ता मानी है। तुम सत्ताके पुञ्ज हो। तुम सत्ताके केन्द्रबिन्दु हो। सत्तासे ही तुम्हारा सत् एकमेक होकर प्रकाशित है। हम कैसा भी खेल खेले, जिससे आत्माका विकास हो, वही हमारा प्रधान लक्ष्य सत् है।

'आत्मा सो परमात्मा'—आत्मा और परमात्मामे एक भी गुण कम नही है। आत्मा मे परमात्मा होनेकी शक्ति है, किन्तु यहाँ वह अज्ञानान्धकारसे लुप्त प्राय: है। वह भी समय पाकर अपना विकास परमात्मा जैसा कर सकता है। हममे और परमात्मामें यह भेद नही है कि एक यह जीवित घोडा है और दूसरा लकडीका काल्पनिक घोडा हो। अगर यह काल्पनिक घोडा होता तो वह परमात्मा नही बन सकता, जिस तरह कि बच्चे लकडी पैरोके नीचे डालकर टिक-टिक करके हाँकते है और दौड पडते है, उस लकडीके घोडेमे चाल नही आ सकती। यह समझ लीजिए हम कुमार्गपर चलने वाले घोडे है जो कि तिरछे टेढे-मेढे रास्तेपर चलते है। लेकिन चैतन्य प्राण परमात्मा समान ही है। तत्त्वज्ञान जिस दिन हो गया उस दिनसे सीधे चलने लगेंगे, उल्टा चलना छोड देंगे। मुझे ऐसा न दिखे, न कुछ ऐसा प्रतिभासमान होवे कि एक द्रव्यके द्वारा दूसरे द्रव्यका परिणमन हो रहा हो "भात्रैक द्रव्वेण द्रव्य द्वयपरिणाम: कियमाणः प्रतिभातु," एकके द्वारा दो का परिणमन किया जा रहा हो, ऐसा न दिखे। मुक्ति मिले न मिले, हमे प्रभुकी कुछ चाह नही, केवल रागद्वेषकी ज्वालासे छुटकारा हो और रागमे अंधे न होवें। हे भगवन् ! मुझे मोक्ष मिले अथवा न मिले, किन्तु रागके वशीभूत होकर मैं अंधा न हो जाऊ और न द्वेषकी ज्वालामे मै झुलसा जाऊं। हे देव ! मुझे केवलज्ञानकी जरूरत नही है और न अनन्तज्ञानकी भी जरूरत है। मै तो केवल यह चाहता हू कि खुदको जानता रहू तथा खुद ही खुदको जानूँ तो देखता रहू। मुझे अनत सुख नही चाहिए, किन्तु आकुलताका तापभर मिट जावे। मुझे अनत शक्ति भी नही चाहिए, किन्तु खुद ही खुदमे समा जाऊ। खुदका खुदके समा जानेमे भी वीर्यकी आवश्यकता होती है, क्योकि वृद्ध अवस्था मे अपना शरीर भी सभालना कठिन हो जाता है। ऐसी ऊपरी बात तक तो देखी जाती है। नाकसे लवाब निकल पडता है, मल मूत्रकी बाधा हो जाती है, आँखोसे मैल लगा रहता है।

शरीर कमजोर होनेसे थोडेसे परिश्रमसे ही पसीना आने लगता है। इस तरह हमारे शरीरकी दशा इनको सभालनेकी बनी होवे तो भी इनकी बाधायें मेरे उपयोगमें दखल न देवें। जो आत्माका उपयोग है उसको रखनेकी जरूरत है। हमको यहाँ वहाँकी पूजा, मान-बडाई मिले या न मिले, किन्तु जो चैतन्य तत्त्व है उसकी पूजा करता रहूं। रागमे अधे हो जाना और द्वेष मे जलना, ये दो ही धन्धे इस प्राणीके चल रहे हैं।

राग द्वेषके आकर्षणसे जीवका संसरण—दही बिलोते समय मथानीमे एक रस्सी रहती है जिसे रई (नेतना) कहते हैं। उसके दो छोर निकालकर बिडोलन किया जाता है। जब रईके एक छोरको खीचते है तो एकको ढीला कर दिया जाता है। इसी तरह रागद्वेष रूपी दो रस्सियाँ लगी है तथा आत्मा मथानी बनकर यहाँ वहाँ (चारो तरफ) घूम रहा है। अगर आपके किसी प्रेमी मित्रादिका किस्सा सुनावें, वह आपकी बहुत प्रशसा कर रहा था, आपसे मिलनेको उत्सुक है, तुम्हारी कीर्ति व उत्कर्ष सदैव चाहता है, यह सुनकर आप बडे खुश होगे, अत्यधिक राग बढेगा। अगर इसीके विपरीत कहना शुरू कर देवें, अमुक मित्र होकर भी तुम्हारी सदैव निन्दा करता है, गालियाँ बकता रहता है। तब उसके प्रति द्वेपकी भावना जागृत हो जायगी। देखो हुआ क्या ? केवल मनकी कल्पना। यह प्राणी अज्ञानसे ससार-समुद्रमे घूम रहा है। दूसरे मतानुयायी भी रागद्वेषसे पिण्ड छुडानेमे कुछ-कुछ सफल हुए हैं। इससे उच्च श्रेणीका एव वस्तुस्वरूपका सच्चा कथानक वीतराग शासनमे है। राग द्वेष तो आत्माकी तरगे हैं। समुद्रकी तरगें खूब जोरसे उठा करती है, फिर वह उर्समे समा जाती है। आत्मा खुदमे समाया हुआ बन जावे तो वह मूलसे सुखी बन जावे। आत्माके द्वारा आत्मा ही जानने योग्य होता है। अभी सामान्य द्रव्यका प्रकरण चल रहा है। इसीमे विशेष द्रव्यका प्रकरण आवेगा। हमारा, तुम्हारा उत्पाद व्यय स्वभावसे चल रहा है। तुम्हारे उस परिणमनमे विशेषता आती जाती है वह विशिष्टता औपाधिक है, किन्तु परिणमन औपाधिक नही है। रेलगाडीका चलना गाडीमे हो रहा है, किन्तु उसका जो निर्दिष्ट पथसे चलना हो रहा है, वह औपाधिक है। आत्माका परिणमना स्वभाव है, वह परिणमता रहता है, किन्तु जो विशेपता उत्पन्न होती है वह औपाधिक है।

पृथक्पना सत्ता और सत्मे संभव नहीं है—गुण और गुणीपनेका उसमे अतद्भावरूप अभाव है। वह प्रदेश जुदा नही रह सकता। सफेद वस्त्रमे है, वस्त्रसे सफेद जुदा नही है। अगर वस्त्रसे सफेद गुण जुदा रहता हो तो उसे बुलाना पडेगा जरूरत होनेपर। कहेगे—ओ सफेद गुण तुम यहाँ आओ, नाराज मत होओ, किन्तु इस तरह तो नही है, कपडेका शुक्ल गुण वस्त्रसे न्यारा नही है उसी तरह सत्ता सत्से भिन्न नही है। जिस स्थानपर शुक्ल गुणका प्रदेश क्षेत्र है उसी स्थानपर कपडेका क्षेत्र है। उसमे गुण गुणीका प्रदेश विभाग नही

है। जो ही सत्ता गुणका प्रदेश है वही सत् गुणका प्रदेश है। इसलिए सत्ता और सत्के प्रदेश विभाग नही है। तब आत्मा चैतन्य जुदा-जुदा नही है। इस तरह होनेपर भी दोनोमे अन्यत्व बना है, क्योकि सत्ताका लक्षण जुदा है और सत्का लक्षण जुदा है। इन दोनोमे अन्यपना नही हो तो कपडेको टटोलनेपर सफेद गुण टटोल लेना चाहिए। तब जो जो वस्त्र है वह सफेद गुण है, इस तरहकी व्याख्या करनी पडेगी और जो जो सफेद है वह वह वस्त्र है। वस्त्रके लिए हवासे फडफडाता हुआ समझकर कानसे जान सकते है। नाकसे भी उसको गन्ध द्वारा जाना जा सकता है। स्पर्शनइन्द्रिय अर्थात् हाथसे छूनेपर भी जाना जा सकता है। रसनाइन्द्रियके द्वारा भी वह जाना जा सकता है, किन्तु सफेद गुण केवल चक्षु (आँख) इन्द्रियो द्वारा ही जान सकते है, ऐसा अन्तर है। फिर भी सफेद जुदे स्थानमे हो और वस्त्र जुदे स्थानमे हो, यह बात नही है। इस तरहका होनेपर भी अन्यपना है। आम है उसे हाथके स्पर्शसे जान सकते हैं। अन्य इन्द्रियोसे भी जान सकते है, किन्तु रसको सबसे नही जान सकते। वह जीभसे चखनेपर ही जाना जायगा। अगर आम और रस एक होते तो आप देखने मात्रसे सतुष्ट हो जाते, वही आप दूसरेको दे देते, वह भी पेट भर लेता, इस तरह कई को देनेपर भी उसमे कमी नही आती।

चेतनसे चैतन्य जुदा नही है—यही बात आत्मा और चैतन्यमे है। चेतन स्वभाववान है और चैतन्य स्वभाव है, ज्ञान स्वभाव है, ज्ञानी स्वभाववान है। आममे रूप, रस, गध, वर्ण भी रहता है, किन्तु किसी गुणमात्र ही आम हो जावे, ऐसा नही है। इस दृष्टिसे चैतन्य और आत्मा भी जुदे कहलाये, किन्तु प्रदेशसे भेदकी बात नही है। आग तथा गर्मी जुदी नही है, अनन्य हैं। 'आँच दे दियो हमे तनकसी' तो यहाँ आँच (गर्मी) अग्निसे जुदी नही है। यहा वह आगकी याचना ही तो कर रहा है। यह आग और केवला जुदा नही है। सत्ता और सत् भिन्न-भिन्न इस दृष्टिसे हो सकते है। वस्तुका सहजस्वरूप अभेददृष्टिसे ज्ञात होता है। आत्माके स्वरूपमे एक टकोत्कीर्ण ज्ञायकभावको ग्रहण करना चाहिए। एक पत्थरकी मूर्ति बनवानी है तो आप विशालकाय लम्बे-चौडे पत्थरको लेंगे। बादमे कारीगरको बुलाया गया और कहा कि इस पत्थरमे इस आकारकी मूर्ति बनानी है। इस चित्रको तुम खूब सोच समझकर देख लो। तब कारीगर कहता है—हाँ इसी तरहकी मूर्ति बन जायगी। कारीगरके हृदयमे वह मूर्ति समा चुकी, उसका भव्य पूर्ण प्रतिबिम्ब दिख गया है। हालाकि मूर्ति बनी नही। जिस तरहकी मूर्ति कारीगरको दिखी है, उसी तरहसे वह पत्थरमे का मुलम्मा (क्रिचे) छेनी हथोडाकी ठोकरसे अलग कर देता है और मूर्ति प्रकट हो जाती है। अब जो मूर्ति निकली है वह वहीसे निकली है बाहरसे नही बनाई गई, जिस तरह मिट्टी मसाले आदिसे बनाई जाती है। चेतनमें जो बाहरी भाव है उसे प्रज्ञावान कारीगर रागद्वेष रूपी पत्थरोको हटाता जावे तब

परमात्मा प्रभु परिणतिमे भी विकसित होनेको तैयार है। वह इसी आत्मामे है, प्रदेशसे भिन्न नही है।

प्रदेशभेदके अभावमे एकत्वकी प्रसिद्धि—जुदे-जुदे प्रदेश होनेको पृथक्त्व कहते हैं। यह पृथक्त्व सत्ता और द्रव्यमे सम्भव ही नही, क्योकि गुण गुणीके प्रदेश भिन्न-भिन्न नही होते। जैसे सफेद वस्त्रोमे जो ही शुक्ल गुणके प्रदेश हैं वे ही वस्त्र गुणीके प्रदेश हैं। इस तरह देखो उनमे प्रदेशभेद तो नही रहा। इसी तरह सत्ता और द्रव्यमे जो सत्ताके प्रदेश हैं वे ही द्रव्यके प्रदेश है। इस तरह देखो उनमे प्रदेशभेद तो नही रहा, फिर भी उनमे अन्यत्व तो है, क्योकि अन्यत्वका लक्षण वहाँ घटित है। अन्यत्वका लक्षण अतद्भाव है सो अतद्भाव सत्ता व द्रव्यमे है, क्योकि गुण और गुणीमे तद्भाव नही होता। जैसे कि एक ही चक्षुरिन्द्रियके विषयरूप और अन्य चार इन्द्रियोके विषयसे परे शुक्ल गुण होता है और वस्त्र कैसा होता है कि वह सभी इन्द्रियोका विषयभूत है। सो भेद हुआ ना। मात्र चक्षुरिन्द्रियका विषयभूत शुक्ल गुण समस्त इन्द्रियोका विषयभूत वस्त्र कैसे हो सकता है? देख लो, तद्भाव तो इनमे न रहा। इसी प्रकार सत्ता तो ऐसी है कि वह आश्रय करके रहती है, निर्गुण है, एक गुण-स्वरूप है, विशेपणको बनाने वाली है, वृत्तिरूप है और द्रव्य कैसा है कि वह अनाश्रित होकर रहता है, गुणवान है, अनत गुणोका पिण्ड है, विधीयमान विशेष्य है, वृत्तिमान है। सो देख लो भैया! तद्भाव तो इनमे न रहा।

जो अन्यत्वकी पृथक्त्वके साथ व्याप्ति नियम नहीं—पृथक्त्व और अन्यत्व जुदे अर्थको द्योतित करते है, जिस तरह स्वभाव और स्वभाववानकी पृथक्ता है। जैसे सफेद वस्त्र है, यहाँ सफेद गुण वस्त्रसे जुदा नही रहता है। वस्त्रका वाच्य जुदा आता है तथा शुक्लका वाच्य अलग ढगसे आता है। जो शुक्ल गुण है वह कैसा है? सफेद गुण चक्षुरिन्द्रियसे देखनेमे स्पष्ट मालूम पड जाता है। बाकी चार इन्द्रियोके सफेद गुण विषयभूत नही हैं। इस तरहका वह शुक्ल गुण है। उत्तरीय वस्त्र कैसा है, वह सभी इन्द्रियके द्वारा जाननेमे आता है, क्योकि वह सर्वपर्यायात्मक शोभायमान होता है। आम आँखोसे भी दिखता है तथा चूसनेमे भी मालूम पडता है तथा घ्राणेन्द्रिय, रसनाइन्द्रिय, कर्णइन्द्रिय, स्पर्शनेन्द्रिय एव चक्षुसे भी जाना जाता है। लेकिन आमका रस रसनाइन्द्रियसे जाना जाता है तो क्या आम व रस अथवा वस्त्र व सफेदी दोनो एक बात हो गई। जिसका विषय एक रसनाइन्द्रियसे जाना जायगा वह सब इन्द्रियोका विपय कैसे बन जायगा? चक्षु इन्द्रियको प्राप्त होने वाला सफेद वर्ण है। वह समस्त इन्द्रियोंके द्वारा जाना जाने वाला वस्त्र कैसे हो जायगा? यह बात ऋजुसूत्रनयसे नही चल रही है। ऋजुसूत्रनयका विषय तो अति सूक्ष्म है। इसकी दृष्टिसे काला कौआ कहना असत्य है। अन्य नयोमे सच है। वह सर्वांग काला ही नही है। अन्दर शरीरका खून लाल

भी है तथा जो-जो काला होता है वह कौआ ही नही होता है। कोई कहे कि रुई जल रही है। यह कहना सच भी है और झूठ भी है, क्योंकि जो जलती हुई है वह रुई नही है तथा जो जली नही वह रुई है। चौकी ऋजुसूत्रनयकी अपेक्षासे नही बोल रहे है। जो चौकी है याने चार कोने वाली है वे सब विवक्षित चौकी नही है। किसी आदमीको गुस्सा आया तो आप क्या इसे जान जाओगे ? जिस समय क्रोधको पर्यायदृष्टिसे कहोगे, उस समय वह क्रोध नही, जब बोल लोगे उस अन्य समयमे लक्ष्यभूत पर्याय नही। दूसरी चीज गुस्सा है, इससे क्या जान गया ? यह नयोकी वकालत है। हम जब चौकी कहते हैं तब उस शब्दसे भिन्न है चौकी या अभिन्न ? यदि भिन्न है तो वाच्यवाचक सम्बध कैसा ? फिर तो चौकी शब्दसे घडी, पुस्तकको भी तो कह सकते है। चौकी शब्दसे घोडा, गधा भी तो भिन्न हैं। यदि वाच्यवाचक अभिन्न हो जाय तो चौकीसे अभिन्न कह सकते है। इस तरह हम सही कही भी नही बोल पाते है। जब सही नही बोल पाते तो ज्ञातादृष्टा बने रहो, दुनियाके विकल्पजालोमे नही पडो। यहाँ शुक्ल वस्त्रको सामान्य दृष्टिसे घटा रहे है। जो शुक्ल गुण है वह आँखसे जाननेमे आने वाली चीज है। पाँचो इन्द्रियो और केवल एक इन्द्रियके द्वारा ही उस वस्तुको जानना, यह एक ही समान नही है। प्रदेशकी अपेक्षासे शुक्लकी सत्ता भिन्न नही है। जो-जो शुक्ल है वह-वह वस्त्र नही है तथा जो-जो वस्त्र है वह भी शुक्ल गुण वाला ही नही है, क्योकि वस्त्र लाल पीले रगका भी हो सकता है।

यदि कुछ है तो उसमे सत्ता व परिणमनशीलता नियमसे है—सत् अर्थात् 'है' और उसमे रहने वाला अस्तित्व सत्ता है। मेरा स्वभाव सत् है। मै स्वय ही परिणम रहा हू। मेरा अन्य कोई परिणमन नही करता है। बाहरी वैराग्य थोडे समयमे लुप्त हो जाता है। स्वरूपास्तित्वसे उठा वैराग्य लुप्त नही होता है। भ्रमसे रस्सीको सर्प जान लिया। अब समझमे सर्प आनेपर भी वीरता, निर्भयता बतानेके लिए रस्सीमे जो भ्रम है उसे हठात् छुपावे व उस समय वह रस्सी भी बोले तो झूठ है। इस समय वह रस्सी भी कहे तो भी अन्दरसे कपकपी लगती रहेगी। भले किसी कारणसे यह कह देवे कि रस्सी है। अन्तरङ्गमें यह बात आ जावे कि सर्प है तथा बाहरसे यह भी जानते हुए कि रस्सीमे भ्रम है, तब भी वह डरता हुआ आगे बढेगा। लेकिन वह बढना उसके लिए हृदयसे सहायक नही है। इसी तरह जब तक द्रव्यके स्वतत्र स्वरूपास्तित्वकी प्रतीति नही है तब तक मिथ्या बुद्धि है। कोई सोचे मै अमुक कार्य करता हू, इतनी बडी भारी गृहस्थीका सचालन करता हू, सभीको आपस मे एक साथ रहनेके लिए बाध्य किये हुए हूँ या मेरा कार्य अमुक राज्यकर्मचारी गुरु, सेठ, मित्रके द्वारा होता है, मै बडा भारी त्यागी हू, मेरे उपदेश द्वारा मनुष्य धर्माचरण करते हैं आदि कल्पनायें जब तक बनी हुई है तब तक स्वरूपास्तित्वकी प्रतीति नही हुई समझना

चाहिए। जब तक स्वरूपास्तित्व प्रतीतिमे नही आया तभी तक वह इन पदार्थोंसे हिताहित की कल्पनाओके दृढ बन्धनसे जकडा है किन्तु स्वरूपास्तित्व होनेपर उन पदार्थोंके प्रति कोई भी लगाव नही रह जाता है। सर्पको रस्सी जानकर भी चले तब भी आकुलता है, किन्तु जहाँ रस्सी समझ चुका वहाँ भ्रम नही रहता। उसी तरह जब तक पदार्थोंका स्वतन्त्र-स्वतन्त्र स्वरूपास्तित्व नजरमे नही आया तब तक कितना ही बल क्यो न लगाया जावे, वह सब निरर्थक जाता है। जब तक भीतरकी गति स्थिर नही हुई तब तक वह असफल ही होता रहेगा।

निजस्वरूपास्तित्वकी दृढ़ प्रतीति करो—यह जो खेल लगा हुआ है, वह बन्द होकर स्वरूपास्तित्वकी दृढ प्रतीति हो जावे तब उसे विचलित कोई भी नही कर सकता। अच्छी तरह ज्ञान हो गया यह रस्सी है, तब उससे कोई हजार बार भी क्यो न कहे कि इसे सर्प जान जाओ तो भी नही जाननेका। यह कह सकते हो कि कुछ प्रलोभनसे नाम मात्रका उच्चारण भले कर देवें, लेकिन उसके अन्तरङ्गमे वह स्थान नही जमनेका। वह ज्ञानी निश्चय किसी भी दबावमे नही कह सकता कि सर्प है। जिसके उत्पाद व्यय ध्रौव्य सत्ताके परिज्ञानसे स्वतन्त्र अस्तित्वका निर्णय हो गया, तब कोई उससे कहे कि थोडी देरको तुम इसे अपना लडका, अपनी स्त्री कह दो तो वह नही कहेगा। स्वतन्त्र स्वरूपास्तित्वका अद्भुत प्रभाव है। जब सुकौशल राजसुत विरक्त हो गये तो उनको रोकनेका काफी षड्यन्त्र रचा गया। घरके कुटुम्बी जन समझा रहे है, राज्यकर्मचारी समझा रहे, यहा तक कि राज्यमत्री कहता है कि आपकी रानीके जो गर्भ है उससे सतान होनेपर १ वर्षके भीतर ही घर छोडकर चले जाना, विरक्त हो जाना तो सुकौशल कहता है—जो भी गर्भमे सन्तान है मेरी तरफसे उसके पैदा होते ही राज्यतिलक कर देना और एकाकी सबको छोडकर चल देते है। कभी कभी लडाईमे भी तो वैराग्य हो जाता है, वहाँ विगत राग है। लडाई हो गई तो आपसमे मुहसे बोलते तक भी नही। उनसे कोई कहे कि तुम पहले इतना भर कह दो—हमसे जो कसूर हुआ होवे उसे क्षमा कर दो तो वहा वह रुचिके विरुद्ध नही बोलेगा और कहेगा कि हम शुरूमे क्यो बोल जायें? नही तो गौरव घट जायगा। जब पदार्थोका स्वतत्र अस्तित्व ज्ञात हो गया तो वह शरीरमे फसा रहनेपर भी आत्माके आनन्दको पावेगा। ज्ञानी जीव शरीरसे विरक्त रहते हैं।

तत्त्वज्ञान हो तो विरक्त होते देर नहीं लगती—जब एकान्तमे सीता दर्पणके सामने बाल पोछ रही थी उस समय कहीसे नारद आ गये, जिनकी परछाईं आइनेपर पड गई। परछाईं आते ही सीता डरकर भाग गई। नारदने इसे अपना अपमान समझा। वह सोचता है कि जिस नारदका राजा महाराजा भी सम्मान करते है, सिंहासन देते है, उस नारदके लिए

यह राज्यघरानेकी छोकरी मेरा यह अपमान करे, पीठ दिखाकर भाग जावे। तब नारदने सोचा, इसका मजा चखाना चाहिए। इसलिए नारदने सीताका चित्रपट बनाया और जहाँ विजयार्द्ध पर्वतपर भामण्डल घूम रहा था वहीपर इसे डाल दिया और नारद छिप गया। घूमते-घूमते भामण्डलने चित्रपट देखा और उसपर अकित युवा लडकीका चित्र देखकर एकदम मोहित हो गया। बस हाय! मेरा जीना निरर्थक है जो कि इसको प्राप्त नही किया। उसके बिना भोजन पानी भी छोड दिया। अगर आज भी कोई यह बात सुनावे कि हमारा लडका अमुक लडकीपर मोहित होनेसे भोजन नही करता है, तो मनुष्य ताज्जुब करेंगे और उस लडके की निन्दा ही करेंगे। लेकिन मोक्ष जाने वाले महापुरुष जीव भी बिना जाने रागमे इस तरह अधे हो जाते है। भामण्डल रागमे अधा होकर चित्रपटकी लडकीकी तलाशमे चल दिया। आगे जाते ही वह स्थान आता है जहाँ सीता और भामण्डलका भाई-बहिनका सम्बध था। भामण्डलको एकदम जातिस्मरण आया, वह तो मेरी बहिन है और विरक्त होकर चल देता है। तत्त्वज्ञान हो तब विरक्त होते देर नही लगती।

पापवृत्तिके कारण जिसमे महानता है वह विडम्बनासे उपस्थित होनेपर एकदम सभलता है। जब स्वरूपास्तित्व समझमे आ चुका, शरीर और आत्मा भी न्यारी-न्यारी है, तब किसीमे कर्ता कर्मपनेकी बुद्धि नही रहती है।

किसीके स्वरूपास्तित्वमे सन्देह मत करो—मनुष्य सोचते है कि मेरा लडका है, अगर मै आत्मकल्याणमे लग गया तो इसका पालन-पोषण कौन करेगा? इसकी चिता क्या, जिसका जैसा पुण्योदय होगा उसे वैसा निमित्त दूसरा मिल जायगा। दूसरोका पुण्योदय है इससे मैं उनकी सेवामे निमित्त बन रहा हू, मैं बच्चेका सेवक बन रहा हू। बच्चा ठाटसे मौज करता है, किन्तु पिता यहाँ-वहाँ पैसा कमानेके लिए मारा-मारा फिरता है। वह भूख प्यास मानापमानके भी दुःख सहता है, सत्य, झूठ बोलता है, दूसरोको फदेसे फसाता है, तब द्रव्य उपार्जन कर पाता है। अगर उसी समय यह तत्त्वज्ञानकी लहर उठ खडी होवे कि मेरा परिणमन स्वतत्र होता है, दूसरेका स्वतत्र होता है। एक द्रव्य दूसरेका परिणमन नही करता है। मैं व्यर्थमे ही रागद्वेष कषायरूपी भट्टीमें जल रहा हू। मुझे यह प्रतीतिमे न आवे कि मेरे द्वारा दूसरेका परिणमन होता है तथा दूसरेके द्वारा मेरा परिणमन होता है तो कर्तृत्व बुद्धिका घोर क्लेश तो न रहे। बच्चे तालाबमे नहाने जाते है और ठडका समय होनेसे सभी बच्चे पानीमे उतरनेसे डरते है। कोई डरसे सीढियोपरसे नहाना चाहता है, तो कोई पानीमे धीरे-धीरे प्रवेश करता है जिससे उसे पानी ठडा महसूस हुआ और भाग आता है। लेकिन कोई बच्चा विलम्ब न करके हिम्मत भर तथा दौडनेकी कसरत कर और एकदम ऊपरी हिस्सेसे शीघ्र गिर पडता है। उसे ठड महसूस नही होती। इसी तरह जो धीरे-धीरे धर्म करते है वह जाड़ेका कारण

है, किन्तु जो तत्त्व निर्णय करके एकदम उतर पडता है वह सच्चा आत्मकल्याणी है।

'है' की विशेषता बताना ही गुणभेद है—सत् और सत्तामे जुदापन नही है, यह सिद्ध करनेके पश्चात् अब सत् और सत्ताका लक्षण जुदा कहेगे। यहां भिन्नता दर्शायी जा रही है, वह सर्वथा सम्भव नही है। अतएव इसे सत् और सत्ताका भेददृष्टिसे वर्णन करना कह सकते है। यह भेद प्रदेशकी अपेक्षासे नही है, केवल लक्षणभेद है। जैसे शुरूमे दृष्टान्त दिया था, सफेद वस्त्र है. यहाँपर सफेद रूपका वाच्य दूसरा है और वस्त्रका वाच्य दूसरा है। सफेदरूप चक्षुइन्द्रियसे देखनेमे आ सकता है, लेकिन सफेदरूप ही वस्त्र नही है और वस्त्र मात्र रूप नही है। इसी पद्धतिसे सत् और सत्तामे विशेषता है। सत्ता आश्रयवर्तिनी है, आश्रय करके रहने वाली है अर्थात् वह सत्को छोडकर नही रहती है। यहाँ केवल स्वभाव और स्वभाववानका वर्णन है। रूप वस्त्रका आश्रय करके रहता है, यह कहनेसे वस्त्र और रूप अलग नही हो जाता है और न यही बात है कि वह सफेदरूप वस्त्रके ही आश्रय रहता हो। सफेद रूप कागजमे भी हो सकता है, दीवारकी कलईमे भी होता है। सफेद सगमरमर मारबलमें भी होता है। सत्ता किस तरहकी है ? आश्रय करके रहने वाली है, निर्गुण है, एक गुण समुदित निर्गुण है अर्थात् एक गुणसे समुदित है। उसमे अन्य गुण नही, सत्तामे निर्गुण है। यदि सत्तामे भी सत्ता हो तो उस सत्तामे भी सत्ता है या नही। तब इस तरह कहोगे कि सत्तामे सत्ता है, उस सत्तामे दूसरी सत्ता है, दूसरीमे तीसरी सत्ता है। इस तरह अनेको विकल्पजाल खडे होते जावेंगे। इसलिए यहाँ कहते है सत्ता स्वय गुण है। अतएव इस सम्बधमे प्रश्न नही उठता, क्योकि गुणके गुण नही पूछे जाते, भावका भाव नही जाना जाता। वस्त्रमे सफेदी है तो उस सफेदीमें अन्य सफेदी नही पूछी जाती है। अगर कहो चेतनमे चैतन्य है तो चैतन्य के सम्बध बिना पहला चेतन जड हो गया। कोई पुरुष वस्तुमे यह बात उपस्थित कर देते हैं, जिससे दोष आ जाते है। वह अन्योन्याश्रित हो जाते है। उसको समझानेके लिए जो भेद किया जायगा वह अपने-अपने आधारसे चलेगा। सत्ता कैसी है ? जो द्रव्य है उससे युक्त है।

'है' समझमे ठीक आया तो सब समझमे आ गया—यहाँ 'है' इसको ही सिद्ध कर रहे है। 'है' अर्थात् सत् है। 'है' मे भेद तो नही है, किन्तु अतद्भाव है। इन्सानकी इन्सानियत कहना, यह इन्सानसे भिन्न नही है। इन्सानियत इन्सानके ही आधारपर है। उसी तरह सत् सत् आश्रय रहती है। वह सत्ता आश्रित होते हुए निर्गुण है और एक गुणकी शक्लमे उदित हुई है। जो एक गुणकी बनी हुई है वह गुण ही हुआ। वह एक गुणरूपसे प्रकट हुई है। गुणके रूपमे ही उदित हुई है। लेकिन गुणके रूपमे किसीके द्वारा बनी नही है। वह तो स्वतः वस्तु अश है तथा निर्गुण है, एकरूपसे समुदित हुई है। सत्ता विशेपणरूप भी है। विशे-

पणको बनाने वाली है। सत्तासे क्या ज्ञात हुआ अर्थात् द्रव्य सत्तावान है। सत्ताको कोई बनाने वाला नही है। सत्ता विशेषणवान भी है। सत्ता द्रव्यका सद्भाव बनाने वाली है। इसलिये सत्ता विशेषण बनाने वाली व स्वयं विशेषण है तथा सत्ता वृत्ति स्वरूप है। वर्तना ही जिसका स्वरूप है। विशेषण रूप है विशेषणकी विधायिनी है, ऐसी वह सत्ता द्रव्यमे ही बन सकेगी। वह द्रव्य और रूपसे भिन्न है। जैसे इन्सानमे इन्सानियत रहती है। यहाँ कोई प्रश्न करे, इन्सानियत किसमे रहती है ? इन्सान स्वय अपने गुणोसे युक्त रहता है, वह स्वतन्त्र है। सत्ता भी किसीको आश्रय करके रहती हैं, किन्तु द्रव्य स्वतत्र है वह किसको आश्रय करके रहता है, स्वय निर्भर है। वह अनेक गुणोके रूपमे समुदित हुआ है। अनेक गुणोका पुञ्ज है, अनेक गुणो से समुदित है।

विशेषणत्व भिन्नत्वका नियामक नही—जैसे वृक्षमे तना, डालिया, टहनियाँ, पत्ते आदि है, वह सब मिलकर एक वृक्षरूप है, विशेष्य है। वैसे तो दुनियामे जो भी नाम लो वह विशेष्य वही है। दुनियामे किसीका भी नाम नही है। चौकी कहोगे तो चार कोनो वाली जो वस्तु है वह चौकी हुई। पुद्गल जो पूरे और गले, वह है। भीत कहोगे तो जो ईंटोसे चिनी गई है वह भीत है। सब विशेषण शब्द है। किसीका कुछ भी नाम नही है, तब भी मरे पचे जा रहे है। दिन-रात इसीमे लगे रहते है कि किस तरह पैसा कमावें, किस तरह बच्चोका पालन-पोषण करें, कीर्ति कैसे प्राप्त हो ? जिसे दूसरे शब्दोमे नामवरी कहते है। किसीको अच्छी नौकरी पाकर नाम पानेकी भूख है, किसीको अच्छे कपडे पहनकर अच्छे माने जानेकी भूख है, कोई अपने रूपको सभालनेमे ही घटो बिता देता है। एक नामकी भूख पूरी नही हो पाई और दूसरीने अड्डा जमा लिया। अगर थोडा पैसा हाथमे हुआ या कमानेका जरिया मिल गया तब तो कहना ही क्या है ? आज एक साइकिल चाहिए तो कुछ दिन बाद एक फट-फट गाडी चाहिए, रेडियो चाहिए, फिर घरमे या दुकानपर लाउडस्पीकर (ध्वनि विस्तारक यत्र) चाहिए। बढिया रहनेको मकान, फर्नीचर, जेवरात, मोटर, घडी, आलमारियाँ आदि न जाने कितनी इच्छाये दिन दूनी रात चौगुनी बढती ही जाती है। उनका शमन नही। इन पदार्थोंकी कुछ अशोमे पूर्ति हो गई तो फिर निज चेतनकी खबर न लेकर दूसरे चेतनोको पानेकी या उन्हे सभालनेकी पडती है। यदि स्वयकी स्त्री है तो पुत्र चाहिए, उसे ऊची शिक्षा दिलानेकी धुनि सवार रहती है जिससे वह सुखी रहे। उसके शादीके खटराग मिलाने पडते है, शादी हो पाई, नाती चाहिए। कई माता-पिताओं तथा सास समुरकी यही इच्छा रहती है कि एक लडकेका मुह भर देख लेवें। वैसे मुह तो प्रतिदिन कई लडकोका देखते है, किन्तु उनसे उतना राग नही है। यदि पुत्र या नाती है तो उसके स्वस्थ रहनेकी चिन्ता दिन-रात सवार रहती है। यह चक्र सर्वथा जीवनभर चलता ही रहता है।

वस्तुका नाम होता ही नही—यह सब होते हुए फिर भी नाम नही है, वह तो विशेषणोके द्वारा बना दिया गया है। सम्पूर्ण दुनियामे किसीका नाम नही है, सभी निर्नाम है। विशेषता दिखानेके लिए नाम रख लिया है। अगर नाम भी लेना है तो ब्रह्म (आत्मा) का नाम लो लेकिन वह आत्मा भी बिना नामकी है। ब्रह्म उसे कहते है जो गुणोंसे वर्द्धनशील हो। नामका भी नाम नही है। नाम उसे कहते है जो प्रचलन करावे, सम्पूर्ण जगत् एव सम्पूर्ण जगतके पदार्थ निर्नाम है। लेकिन हमे उसकी विशेपता बतानेके लिए नाम लेकर बोलना पडता है। सब लोगोंने जो पसन्द कर लिया उस नामके द्वारा उसे बोलने लगते है और वही विशेषता नाम या सज्ञा बन गई। सज्ञाये बनाई जाती है, इसके अतिरिक्त और कुछ नही है। इस तरह होते हुए पदार्थ, उनमे विकट मोह चल रहा है। जमीन भी क्या किसीने उपहारमे दी है ? वह स्वय प्रकृतिदत्त है, अनादि कालसे है। उस जमीनके लिए भी एक एक इचपर मरने मारनेको तैयार हो जाते हैं। वर्षों तक सेसन जज हाईकोर्ट आदिमे मुकद्दमा चलते है। बार-बार पचायतें बैठती हैं। पच फैसला दिया जाता है। उसपर भी कोई गौर नही किया जाता। इस मोह महाराजकी विकट लीला है, इसने कहाँ कहाँ अड्डा नही जमा रखा है ? मन्दिर, मस्जिद, मठ, त्यागी, आश्रम, साधु-सन्तो आदि किसीको भी निर्मोह नही छोडा है।

मोहकी विचित्र लीला—अपने नामका सस्कार सभीमे जमा हुआ बैठा है। अगर किसीके सामने १०० व्यक्तियोंके नाम लिखकर दिये जावें तो वह अपना नाम शीघ्र खोज लेगा, अगर दूसरेका खोजनेको कहे तो काफी समयकी आवश्यकता होगी। रागद्वेष जो दुःखके स्रोत है उनमे बौद्धोने नामको भी एक कारण माना है। पहले जाना तो कर्म बध जावेंगे, पीछे जानते रहो तो कर्म बध जावेंगे। नामको ही कर्मबन्धका कारण माना है। यथार्थमे नाम किसीका कुछ नही है, जो जिसरूप है वह उसी रूप है। दुनिया नाम रखती है तो शरीरके पिण्डको लक्ष्य करके रखती है, जिस शरीरमे कि आत्मा समाया हुआ है। यदि शरीरका ही नाम है तो मरनेपर याने देह छोडकर जीवके चले जानेपर शरीरसे वह व्यवहार क्यो नही किया जाता ? इससे कहना होगा यह नाम साझेका है। जैसे जम्बुप्रसादजी। यह नाम केवल न शरीरका है और न आत्माका ही है। एक तरहसे दोनोकी साझेदारीको फर्म चल रही है और विशिष्ट नामसे उच्चारण करते रहते है। प्राइवेट लिमिटेड इसकी विशेषता है अर्थात् इसकी गुप्त (प्राइवेट) सुरक्षा और परिणमन उसी तक सीमित है, इससे आगे नही। आत्मविकासकी अन्तिम लिमिट (सरहद) मोक्ष है। उसे पानेको कुछ भी न उठा रखे तब इससे क्या बाकी रह जाता है ? इसकी विशेपताये अगली अगली पर्यायोमे जानेपर बदल जाती है। पर्यायका नाम भी अपना अर्थ रखता है। मनुष्य, तिर्यञ्च, नारकी, देवगति

की अपेक्षा भी पर्यायोमे विशेपता रखते हैं। जैसे—तिर्यञ्च, जिनके तिर्यक् टेढे-मेढ़े छल-कपट रूप परिणाम (भाव) हो वह तिर्यक है। मनुष्यो आदिके नाममे व्यक्तिगत विशेपता भी देखने को मिलती है। जैसे राकेश अर्थात् कर्मोको जी मे चन्द्रमाका स्वामी जैसा निर्मल है। जब यह समझमे आ जाय तो समानताका नाम बने, तब हमे नियमसे उसको उसी रूप आचरण करते देखना चाहिए। इसके बिना समानता आ सके, यह बात बनना कठिन है। स्वामी रामतीर्थने अमेरिका आदि देशोका पर्यटन किया था। वह जिसे भी देखते, पुकारते थे, उसे राम कहकर पुकारते थे। रामकी आत्माके समान अन्य आत्मामे भी शक्ति है, जो मोक्षगामो बन सके। राम नाम रख लिया तो कुछ विशेषता तो आ गई। जब सत् एक अखण्ड स्वरूप द्रव्यमे आता है तब जाना जाता है। जैसा एक आत्मा है उसी तरह अन्य आत्मायें है। न वह आत्मा प्रमत्त है और न अप्रमत्त है।

नाम नहीं फिर नाचना क्यों—कई मनुष्य तो आत्माका ख्याल रखकर गाली सुनते हुए भी यह कल्पना कर लेते है, गाली मेरे शरीरको नही दी जा रही तथा आत्माको दे नही सकता है या एक व्यक्तिके दो नाम होवें तो सोच लेता है—मेरे नामको नही दी जा रही है। जिसे तत्त्वज्ञान हो गया वह किसी भी प्रकारसे अपनी ओर झुकता है। ग्वाला गाये चराने जगलमे ले जाता है, वहाँ वह पेट भरती है। जब शामका समय हुआ तो उसने गावके समीप से उन्हे ढील दिया, छुटकारा कर दिया, तब वह अपने बच्चेके लिए पूँछ हिलाती हुई रंभाकर आती है और अपना प्रेम प्रकट करती है। वह गोल-मटोल पूछें हिलाती चली आती है। कोई बाडी याने छोटी पूछकी गाय हो तो वह भी हिलाती जाती है। इसी तरह गृहस्थको भी विवेक हो गया, सम्यग्दर्शन रत्नको पा चुका तो वह अपना हित करनेके लिए उत्सुक है। मुनिमे और गृहस्थमे यह अन्तर चारित्र मोहनीय कर्मकी अपेक्षा है, दर्शन मोहनीयकी अपेक्षा नही है।

सत्ता सत्का मात्र अभिन्न गुण—सत् और सत्तामे प्रादेशिक भेद नही है। लेकिन लक्षण छूटकी अपेक्षासे सत् और सत्ता जुदी-जुदी रहती है। जैसे इन्सान और इन्सानियत। यहाँ इन्सानियत इन्सानसे अलग नही है। लेकिन जो अतर है वह अतद्भावका है। जो सत् है वह सत्ता नही तथा जो सत्ता है वह सत् नही है। जिस तरह सफेद वस्त्र है। यहाँ वस्त्रसे सफेदी भिन्न नही है तथा सफेदी वस्त्र नही है। जब कि वस्त्रसे सफेदी भिन्न नही है, इसी तरह सत् और सत्तामे प्रादेशिक भिन्नता न होते हुए अतद्भावका अन्तर है। सत् द्रव्यका आश्रय करके रहता है। सत्ता निर्गुण है, गुणमे अन्य गुण नही। यदि हो तो जिस गुणके कारण वह पूर्वका गुण कहलावे, उस दूसरे गुणको और-और गुण होना चाहिए। इस तरह अनवस्था दोप होगा इसलिए सत्ता गुण है। सत्तामे अन्य गुण नही रहते, नही तो सम्पूर्ण

अव्यवस्था पैदा हो जायगी। एक गुणके लिए दूसरे-दूसरे गुणोकी जरूरत पडेगी। मनुष्यको गुणोसे युक्त देखनेके लिए मनुष्यत्व कहते है। कुछ लोग और साथमे मनुष्यत्वपना कह देते है। जब यहाँ त्व गुणोका द्योतक प्रत्यय रूप है तब वहाँपर पना और लगानेकी जरूरत प्रतीत नही होती। जैसे बोलते है—वेफजूलमे 'फजूल' शव्द स्वत· निरर्थक अर्थको प्रकट करता है। साथमे 'बे' कहकर फजूल शव्दकी निरर्थकता दिखाना है। इसका अर्थ हुआ 'ठीक कर रहे हैं' क्योकि फजूल ही निरर्थक हो गया तब वह कार्य आदि मजूर है। वास्तवमे उस शव्दका यह अर्थ हुआ। इसी प्रकार निर्गुण गुणरहित है। सत्ता एक गुणसे समुदित है, वह विशेषणरूप है। एडजेक्टिव तो सत् है और नाउन (सज्ञा) सत्ता बन गई। सत्ता सज्ञा है, वह किसीका एक विशेष धर्म है। गुण विशेपण है और वह गुणी उसका विशेष्य। सत्ता एक विधि बताने वाली है। विशेषणोको बताने वाली है।

सत्ताके तादात्म्य सम्बधसे ही तो सत् कहलाया—सत्ता वृत्ति स्वरूपसे पाई जाने वाली है अथवा उसीमे रहने वाली है। सत्ता सत्का ही आश्रय करने वाला है तो सत्ता सत् से जुदी नही है। इन्सानियत इन्सानसे जुदी नही है। वह इन्सानका आश्रय करके ही रहती है। सत्मे साधारण अमूर्तत्व, सूक्ष्मत्व आदि अनेक गुण हैं। वह सब एक गुण कैसे हो जायगा ? फिर भी प्रदेशभेद तो नही, यथा अगुलीका सीधापन तथा टेढापन उससे जुदा नही है। अगर केवल सीधापन ही अगुलीका लक्षण रहे तो टेढापन नही कहना चाहिए। लेकिन सीधापन तथा टेढापन एक ही अगुलीकी अवस्थाये है। एक गुणवान द्रव्य है, वह अनेक गुणो से समुदित है। द्रव्य अनेक गुणोसे प्रकट हुआ है, अनेक गुणोसे उदित है। जब कि सत्ता विशेषण है तब सत् विशेष्य है, विधि वाला है, वर्तना वाला है। सत्ता विधायिका व वृत्तिरूप हैं वह सत् कैसे हो जायगा ? इसलिए गुण गुणीमे तद्भाव नही है। सत्ता सत् नही है तथा सत् सत्ता नही है। सत्ता और सत्मे सत्ता भावका अभाव है। अतएव इस ही कारणसे सत्ता और सत्मे अनर्थान्तर होते हुए भी भिन्नता है, एकता नही मान लेना चाहिए, क्योकि तद्भाव होना तो एकत्वका लक्षण है। सत्ता अस्तित्व तो एक है। सत्ताके जितने भी पर्यायवाची शव्द है वह तद्भावमे आ जावेंगे, किन्तु सत् और सत्तामे अतद्भाव आ जायगा। फिर भी वह उसमे होता हुआ नही लग रहा है, वह एक कैसे हो जायगा ? इसलिए गुण गुणीमे एकपना कैसे हो जायगा ? इन्सान इन्सानियतकी क्या सर्वावस्था एक है ? अगर एक नही है तो जिस दिन इन्सानसे काम पडा तो उसे बुला लिया जायगा तथा जिस दिन इन्सानियतसे काम हुआ उस दिन उससे काम ले लिया जावेगा। यह बात नही है, वह मात्र गुण गुणी रूपमे भिन्न है। अर्थ क्रियाकारी इन्सान है।

खुद ही मे देवत्व प्रकाशमान है—बहुतसे देवी देवता बन गये, वह कुछ तो अलकार

से बन गये। २४ तीर्थंकरोंके प्रबन्धक यक्ष विशेष हुआ करते थे। प्रायःकर उन्हींमे से माने जाने वाले अनेक लोगोंके देवी देवता है। अब अध्यात्मदृष्टिसे देखो—जिसे अपने निजस्वरूपकी प्रतीति हो गई, उसके लिए वही उपास्य है। क्योंकि आत्माका गुरु आत्मा है, उसके अनुकूल वह चल सकता है, लेकिन वह उच्छृखल प्रवृत्तिसे चलनेको नही कहता। अपनी उपासना की जाय तो कुछ मिलेगा। इसका यह मतलब नही कि अपने शरीरकी पूजा की जाय। लेकिन शरीरसे ममत्व छोडकर आत्मामे आत्माके लिए ही रमण किया जावे। यही निजात्म उपासना है। इसके लिए पञ्चपरमेष्ठीके गुणोका अनुसरण करना जरूरी है। अरहत सिद्ध परमेष्ठी का पूजन करते समय यही लक्ष्यमे रहना चाहिए, मुझमे निर्विकल्पता आवे, समता भाव परिणाम आवें, शान्तिका आगार जो मेरा स्वरूप है उसे मैं प्राप्त कर सकूँ, यह सुबुद्धि मुझमें दीजिए। यह भावना क्या कोई कुदेवोको पूजकर कर सकता है, वह स्वय रागी द्वेषी है तथा दु खके साधन गदा आयुध वगैरा समीप रखते है। सुखका साधन स्त्री वगैरा रखते है। उनकी पूजासे लाभ नही होगा, ससार सम्बधी वासनायें ही बढेगी। दुर्गा २४ तीर्थंकरोके सेवक देवताओमे से कोई एक है, जिसकी व्युत्पत्ति इस तरहसे होगी—'दु खेन गम्यते प्राप्यते या सा दुर्गा।' जो कठिनाईसे पाई जा सके वह दुर्गा है। इस तरहकी स्वानुभूति बडी मुश्किलसे प्राप्त होती है। स्वानुभूति प्राप्त करनेपर कितने ही कष्ट कलक दूर हो जाते है तो स्वानुभूतिका नाम दुर्गा है। चन्द्रघन्टा भी कोई एक देवी है, ऐसा रूपक है। 'अमृतस्रावणे चन्द्रघण्टयति सा चन्द्रघण्टा' जो अमृतदानमे चन्द्रमासे भी ईर्ष्या करके आगे बढने वाली है, वह स्वानुभूति है, उसको चन्द्रघण्टा कहते है अर्थात् चद्रमासे भी उज्ज्वल आत्मगुण जो है उन्हे प्रकट कर सके। भद्रकाली—'कलयति भद्रे सा काली' जो भव्य जीवोको हितमे प्रेरित करे वह काली है। स्वानुभूति ही हितका मार्ग है तथा रागद्वेपादि शत्रुओको जो भक्षण कर जावे उसका नाम काली है। सरस्वतीकी मूर्ति बनाते है तो उसके चार हाथ होते है तथा कमल उसका वाहन है। हस कमलके पास बैठा रहता है तथा तालाबके अन्दर कमल रहता है। सरस्वती शब्दकी व्युत्पत्ति होगी—सर. प्रसरण यस्याः सा सरस्वती, जिसका सर याने फैलाव हो वह सरस्वती है। वह सरस्वती एक हाथमे वीणा लिए हुए है तथा दूसरे हाथमें पुस्तक लिए हुए है तथा तीसरे हाथमे माला तथा चौथे हाथमे शख लिए हुए है। मगलाचरण शास्त्रके शुरूमे करते है, उसमे पढते है। 'सरस्वती हस्तु नो दुरितान्' वह जिनवाणी वही हुई सरस्वती वह पापोको दूर करे—जिसका फैलाव हो वह सरस्वती है। इस जिनवाणीका भी फैलाव है। सर फैलाव है। इसलिए तालाबको सर बोलने लगे। तालाब इस बातका सूचक है कि इसका क्षेत्र बडा भारी है। इसका समस्त ज्ञानपर अधिकार है तथा उस सरस्वतीका कमलपर आसन है याने हृदयमे जिनवाणी बसती है। हस जैसा स्वच्छ विवेकी आत्मा ही तो ज्ञानी बन सकता है,

अन्य जीव नही। क्योकि इसमे क्षीर-नीरका विवेक होता है तथा यह मानसरोवरसे मोती चुगता है।

जिनवाणीकी आराधनाका दिग्दर्शन—जिनवाणी भी विशाल हृदय वालेके पास ही आती है। कहते हैं कोई—मिथ्यादृष्टि जीवको जिनवाणी न सुहाय। के ऊंघेके लरपरेके उठ घरको जाय॥ हस जैसा स्वच्छ आत्मा होना चाहिए। वही सरस्वतीका उपासक बन सकता है। सरस्वतीके जो चार हाथ है वह प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग के सूचक है। इस तरहकी पवित्र जो जिनवाणी है, उस सरस्वती देवीकी भव्य जीव आराधना करें। कवियोंने कुछ समय तो अलकार-अलकारमे ही लिखा था, वही अब सरस्वती हो गई। ज्ञान कहो, उपासना कहो, उसके साधन हाथ बताये है। पुस्तक ज्ञानका साधन है। अर्थात् भव्य जीवोको स्वाध्याय करना चाहिए, जिससे ज्ञानका विकास हो और चारित्रकी दृढता हो तथा मालासे अपने निज स्वरूपको ध्यान कर प्राप्त करना है। पचपरमेष्ठीके वाचक मत्रोका जाप करनेसे स्वात्म तत्त्वपर आया जा सकता है तथा एक हाथमे वीणा लिए हुए है जिसका मतलब है अन्तर्ध्वनिकी शक्ति अनहर ध्वनि प्रकट कर रही है। अगर कोई व्यक्तियो को ही 'सा रे, गा, मा, पा, धा, नि, स' आदि प्रथम स्वरसे बोलना शुरू करें तथा पीछे हटते हटते दूसरे सप्तकके सतक पर पहुच जावेंगे। तब वहाँ सर्वप्रथम 'स' मिलेगा। वह इतना कोमल स्वर है कि उसका उच्चारण करते रोम-रोम खडे हो जावेंगे तथा उस समय दुनिया की सारी बातें भूल जावेंगे। लोकोक्तिमे कहा भी है—सगीतसाहित्यकलाविहीन" सगीत और साहित्यसे रहित जो है उसे सभी कलाओसे विहीन समझना चाहिए। जीवनकी मुख्य ये ही दो कलायें है। जिसमे समता लानेका गीत भरा है वह सगीत है, वह कितने ही विकल्पजालो को मिटा देता है। साहित्य, जिसमे हितका भाव समाया होवे वह साहित्य है। इनको सीख कर आत्मध्यानके सगीतमे रत हो सकते हैं। सरस्वती देवी चौथे हाथमे शख लिए हुए है। वह शख बजाकर आह्वान कर रही है। ससारके मायाजाल छोडो। शान्तिका स्थान कही नही है, वह अपनी आत्मामे ही है। यहा वहा भटकनेसे कोई लाभ नही मिलेगा। शख युद्ध के बाजेका भी प्रतीक है। वह जता रहा है विकट भर जो कर्म कलक लगे हुए हैं उन्हे शीघ्र हटा दिया जावे। वह अपनी आत्मध्यानकी अग्नि द्वारा ही प्रज्वलित होगे। उसके लिए प्रथमानुयोग आदि चारो योगोका सहारा लेकर अपना उज्ज्वल परिणाम बनाया जाय। वस्तुस्वरूपके विज्ञानसे मोह दूर होता है। मोह दूर हुआ कि निर्मलता प्रकट होती है। अतः निर्मोहता पानेके लिए, शान्ति पानेके लिए वस्तुस्वरूपका अध्ययन, मनन करना चाहिए। यही प्रथम उपाय है। इस गाथामे यह बताया है कि द्रव्य सत्स्वरूप है। द्रव्यमे और सत्तामे प्रदेश भेद नही है सो तो दोनो एक है और गुण गुणीके भेदकी दृष्टिसे इनमे अतद्भाव है सो एक

नही है, अर्थात् गुणगुणीकी अपेक्षासे अनेक है, किन्तु यह सब सावधानीके साथ जानना व सुनना चाहिए, क्योकि एक ही वस्तुकी यह सब चर्चा है ।

धन दौलत ही सब कुछ नही है—धनके लिए मोही दर-दर मारे फिरते है । कोई धन कमानेके लक्ष्यसे विद्या पढने अमेरिका जाता, कोई इगलैड जाता तो कोई किसी निर्जन बनमे धूल छानता हुआ फिरता है । लेकिन उस विद्याके सामने यह उत्कृष्ट जिनवाणी सरस्वतीका अध्ययन कल्याणप्रद हो सकता है । वह आचार्योकी वाणी हृदयमे धारण करने योग्य है, जो अनादि जन्मसन्ततिके बन्धन काटनेको समर्थ है । यह सौभाग्य जीवोको ही मिलता है । इसमे छलछिद्र नही चलते हैं । यह दूधका दूध और पानीका पानी बताने वाला अद्भुत महारथी है । इसका सहारा लेकर अन्यकी ओर मुँह ताकनेकी जरूरत नही रहेगी । श्री कविवर प० दौलतरामजीके शव्दोमे 'निज पीजो धीधारी जिनवाणी सुधा सम जानेके ।'

अखंड वस्तुको विस्तारसे समझनेके लिये अतद्भावका आविष्कार—पदार्थ है, उसमे अस्तित्त्व है । सत्मे सत्ता है, इस सम्बन्धमे चर्चा चल रही है । वह एक वस्तु है या मिली हुई है । सत् और सत्ता मिली हुई नही है क्योकि उनमे अतद्भाव पाया जाता है । वह एक नही है । क्योकि वहाँ स्वरूपभेद है, इसीको प्रकट करते है । अतद्भाव अर्थात् 'अ—नही, तद्—वह' तथा भाव—भाव—उसका भाव यह नही है । ऐसा जो भेद है उसे अतद्भाव कहते है । जैसे चेतन चैतन्यमे प्रदेशभेद नही, फिर भी चेतनाका जो भाव है वह चैतन्यका नही है तथा चैतन्यका जो भाव है वह चेतनका नही है । जैसे बोलते है इस चेतनमे चैतन्य है, इस तरह आपसमे एक दूसरेका ज्ञान हो जाता है । होशियारसे होशयारी अलग नही है । होशयारीका जो अर्थ है वही होशियारका नही है । उत्कृप्टरूपसे फैला हो (समन्तात्) इस तरहका हुआ उदाहरण उसे प्रकट करते है, पृथक् करते है । यह सब प्रयोजनभूत होनेसे स्पष्ट कहते है, घोपणा करते है, निष्कर्ष निकालकर कह देते है । अभी तो अपनी गोष्ठीकी चर्चा थी अव सामान्य तौरसे प्रकाशित करते है ।

सद्दव्व सच्च गुणो सच्चेय य पज्जओत्ति वित्थारो ।
जो खलु तस्स अभावो सो तदभावो अतब्भावो ॥१०७॥

एक ही सत्मे द्रव्य गुण पर्यायकी समझ—सत् द्रव्य है और सत् गुण है और सत् ही पर्याय है, यह एक द्रव्यका विस्तार है । अव जो उसका अभाव है (अर्थात् गुणका लक्षण गुणका है, द्रव्य या पर्यायका नही, पर्यायका लक्षण पर्यायका है, द्रव्य या गुण नही, द्रव्यका लक्षण द्रव्यका है, गुण या पर्यायका नही) उसे तद्भाव कहते है और इसीको अतद्भाव कहते है । इस ज्ञेयाधिकारकी १५वी गाथामे गुण, द्रव्य और पर्याय यह सत्का विस्तार कहा है । जैसे किसी सेठका वहुत कुटुम्ब है तो कहते हैं उन सबका एक कुनवा है या सेठजी का इतना

विस्तार है, यह सत्का परिवार है। सत्के विस्तारमे सत् द्रव्य है। सत् गुण है, सत् पर्याय है और जो एकका एकमे अभाव है, उसीको अतद्भाव कहा है। किसीका किसी और दूसरेमे अभाव है वही अभाव है। जो सेठके पोतेका लक्षण है वही क्या सेठजी का लक्षण है? यह कहाका विस्तार है? वह विस्तार कहा है? विस्तार इसलिए कि स्वतत्र द्रव्य गुण नही है, गुण पर्याय नही, पर्याय द्रव्य नही, पर्याय गुण नही, गुण द्रव्य नही और द्रव्य पर्याय नही है। फिर भी गुण और पर्याय रहित द्रव्य नही है। द्रव्यरहित गुण पर्याय नही है। यह तीनो सत्के अश है। यहाँ अभेद स्वभावको लेना तथा भेद स्वभावको साथमे ही कह रहे है। द्रव्य अभेद स्वभावरूप है तथा गुण भेदस्वभावरूप है एव पर्याय क्षण-क्षणवर्ती है। ज्ञेयाधिकारकी सबसे पहली गाथामे द्रव्य गुणमय तथा गुण पर्यायमय और द्रव्यमय अर्थ, इस तरहसे विवक्षा की थी। इसलिए द्रव्य गुण, पर्याय सम और अर्थ द्रव्य हुआ, यह सब अविवक्षा भेद का नाम है। जैसे एक मोतियोकी माला है, उसमे तीन तरहसे विस्तार है। उसीका नाम हार है तथा उसके अन्दर ही सूत्र (डोरा) है और उसीमे मोतियोंके दाने हैं। मोतियोकी माला और हारमे क्या अन्तर है? तीन विस्तार किये हैं। (१) हाररूपमे, (२) सूत्ररूपमे तथा (३) मोतीके दाने रूपमे। हार और दाने जुदे भावको लिए हुए है। मोतियोकी माला हार रूपमे देखी जाती है। हार मोतियोंके रूपमे देखा जाता है।

सत्का विस्तार द्रव्य, गुण, पर्याय है—जो जो उसकी वृत्ति है, कार्य कलाप है, वह उसकी विशेषतायें है या उसकी दशायें है, वे सब उसके विस्तार हैं। सत्का जो स्वभाव है वह विस्तार है। वृक्षका विस्तार क्या है? तना, डालियाँ टहनियाँ, पत्ते, कोपलें यह सब उस वृक्षका विस्तार है। वृक्षमे गुणकी अपेक्षासे भेद तथा एक वृक्ष रूपके ग्रहण करनेसे अभेद स्वभाव भी पाया जाता है। यद्यपि जो हार है वह सूत्र नही तथा जो सूत्र है वह हार नही तथा धागा माला भी नही है। किन्तु हारसे धागा, मोती जुदे रखे हो सो बताओ। जो बजाज है वह क्या सर्राफ है? किन्तु उन दोनोमे अतद्भाव पाया जाता है और उनमे प्रदेश भेद नही है। जैसे मोतियोकी एक माला है, मालाका सफेद गुण है, वह तीन रूपसे विस्तारित है। एक द्रव्यका सत्ता गुण है, उसका सत् द्रव्य है तथा सत् ही पर्याय है। ऐसा तीन तरहसे कहा है। उस मोतियोकी मालामे जो हार है वह मोती नही, शुक्ल गुणहार नही है। मोती के दाने सूत्र नही है। परस्पर एक दूसरेका अभाव है यही अतद्भाव है। यही कारण है वह हार मोती धागा रूप नही तथा धागा हार रत्न नही है। जो ज्ञानका स्वरूप है वह आत्माका स्वरूप नही है, जो आत्माका स्वरूप है वह ज्ञानका स्वरूप नही है। यह अन्यत्वका कारण भूतस्वरूप है। जो ज्ञान गुण है वह दर्शन नही बन जाता तथा दर्शन गुण चारित्र नही बन जाता, न दर्शन ज्ञान बन जाता है तथा न चारित्र दर्शन बन जाता है और न ज्ञान बन जाता

है। वह तीनो ही एक दूसरेका काम नही कर सकते है। अग्निमे कई गुण हैं, जलानेका गुण है, प्रकाश करना भी उसीका काम है। भोजन सामग्री आदि पकाना भी अग्निका काम है तथा शोषण करना भी अग्निका काम है, लेकिन जो जलानेका गुण है वह प्रकाश करनेका गुण नही है तथा जो प्रकाशका गुण है वह शोषण करनेका काम नही है तथा शोषण करना पकानेका काम नही है। जिस तरह दो तीन भाई इकट्ठे रहते हो अगर वह कारणवश न्यारे भी हो गये हो तो भी वह भाई रूपसे वही कहलावेंगे तथा एक दूसरे पर कब्जा (अधिकार) भी रख सकते हैं, फिर भी एक दूसरेका काम नही करता। कभी-कभी मनुष्य इकट्ठे काम करते है तो वह उस कामको बन्द भी तो कर देते हैं तथा कहते है यह काम हमारी शक्तिके बाहर है अतः करनेमे असमर्थ है। यह काम तुम्ही सभालो। चारित्र गुण चाहता है कि ज्ञान इसको जाना करे। परन्तु ज्ञान गुण चारित्रकी मानता नही। चारित्र गुण मनाता है। हे ज्ञान! तुम उद्दण्ड मत हो, तुम हमे दुःख मत दो। तुम हमारे साथ ऐसा उपयोग कार्य मत करो जिससे हमारे विकासमे क्षति पहुचे। लेकिन चारित्र गुणने कभी हडताल भी की क्या? तुम मानते नही हो तो जाओ, हम अपना अकेले काम बना लेंगे, यह भी असभव है। यहां श्री अमृतचन्द्राचार्य सूरिने इतनी सत्य युक्तिसे समझाया है। ज्ञानमे दर्शनका अतद्भावरूप भेद ही है। ज्ञान गुणका काम जानना है। ज्ञान गुणमे चारित्रकी अपेक्षा अतद्भाव है। ज्ञानगुण और जानना इसमे प्रदेशभेद है क्या? प्रदेश भेद नही है फिर भी अतद्भाव है। द्रव्यका पर्यायमे अतद्भाव नही है।

स्याद्वादमे कृपणता (कंजूसी) की गुंजाइश नहीं—स्याद्वादमें बुद्धिका उपयोग खूब किया गया है, पर कजूसीसे काम नहीं लिया है। जैसे कि कुछ मनुष्य धन जोड-जोडकर खूब रखते है, लेकिन उसमेसे दान नही देते और न निजी उपयोगमे ही पूरा खर्च करते है तथा धन पडा रहता है जिसका उपयोग दूसरे ही करते हैं। यह बात यहाँ स्याद्वादमें नही है। स्याद्वादमे दिल खोलकर तत्त्वको स्पष्ट किया गया है। द्रव्यको जितना भी विलक्षण समझा है उसे स्पष्ट कह दिया। जहाँ कुछ भी विशेषता दिखी, गुण कहनेकी जरूरत हुई वहाँ गुण कह दिया तथा जहाँ पर्याय की वहाँ पर्याय कहा है। जहाँ भी अन्तर ज्ञात हुआ वहाँ शीघ्र कह दिया कि अमुक वस्तुका गुण है। वैशेषिक गणेशका चूहा है। उसने खूब द्रव्यको कतरा है। अद्वैतवादी गणेशकी सूड है। मनुष्यके आकारमे तिर्यञ्च हस्तीकी सूड एकसी जमानेमे सिद्ध रहे। उनसे इस तरह कथानक है। पार्वती तालाबपर अकेली नहा रही थी। पार्वतीने अपने पुत्र गणेशको आज्ञा दी थी कि तालाबमे जब तक मैं नहाऊँ तब तक किसीको तालाबमें नही आने देना। इतनेमे महादेव गणेशकी बिना आज्ञाके तालाबमे घुसने गये, तब गणेशने रोका। इस प्रसगमे महादेवने उसे खतम कर दिया। तब पार्वतीको पता चला तो उसने आज्ञा

दो कि इसे शीघ्र जोडो। वहांपर एक हाथी फिर रहा था। महदेवने उसकी सूंड लेकर गणेश मे जोड दी। ऐसा फिर द्रव्यको एक करे इसे अद्वैतवाद कहते हैं। क्या ईश्वर कहा जाने वाला इस तरहका कार्य भी कर सकता है ? यह अद्वैतवादियोकी अभेदकी कला है। जिसे वह भेद होते हुए भी फिरसे जोड देते है। तब भिन्न-भिन्न नही मालूम पडते है। वैशेषिक लोग भी कहाँ तक किसी वस्तुका भेद करेंगे, जितना जैनोने किया है। जैनोको बखेडा (तितर-बितर) करके मिलाना आता है। वैशेषिकोंको बखेडा करके मिलाना याद नही है, वह वस्तुभेद मानते है। जिसका मूल भेद भी नही बढ पाता तथा पर्याय भी नही जँचती। इस आत्माका कुटुम्ब ही दृष्टिभेदसे बना सकते है। ज्ञान, दर्शन, चारित्र गुण है। यह सबका सब यदि परस्परमे भिन्न है तो अतद्भाव रूप है, किन्तु ध्रौव्यपनेसे रहित नही है।

कुछ भी करो होता है सबका निजमे परिणमन—घरमे अगर भाइयो-भाइयोमे लडाई हो जावे तो वह एक दूसरेको मार-पीट तक भी देते हैं, क्योकि जहाँ जितना गाढा मोह रहता है वहाँ उतना विवाद भी किया जा सकता है। जब एक दूसरेके अधिकारोपर नाजायज कब्जा जमाने लगते हैं वही विवाद उत्पन्न होता है। ममताका परिवार जो बन गया उसमे ऐसा करना चाहिए। मोहकी व्यवहारमे ही एकता है। इसी तरह वस्तुस्वरूपकी वस्तुमे एकता है। कैसा ही कितना बडा मालिक हो, वह अपने आधीन कर्मचारी या सेवकोंके हकको नही छीन सकता है। अगर ऐसा किया तो विप्लव मच जायगा। प० जवाहरलाल नेहरू भारतके प्रधानमत्री थे। वह सदैव देशकी उन्नति चाहते थे तथा सभीको एक सूत्रमे बधा देखना चाहते थे, किन्तु यह सब कुछ होते हुए भी जनताको जब किसी वस्तुकी अत्यधिक कमी प्रतीत होती है और उसका मुख्य कारण प्रधानमत्री या अन्य कोई पडता है तो वे आपसमे ही भडक उठते हैं। कोई किसीके द्वारा नही परिणमता यह सब होते हुए भी। अगर एकके द्वारा दूसरा परिणमने लगे या परिणमा देवे तो अधेर मच जाय। जिस दिन प्रलय होगी उस दिन भी प्रत्येक प्राणी अपने-अपने परिणमन जुदे ही करेंगे। जहा जो चल रहा है वह अपनी योग्यताके अनुसार ही परिणम रहा है। वस्तुत्वको देखो, ससारमे बेईमानी है ही नही। कही भी वस्तुस्वरूप मे बेईमानी तीन कालमे न आई है और न आ सकती है। बेईमानी तो तब कहलावे जब कषाय करे, पचेन्द्रियोके विषयभोगोमे रत रहे और सद्गति होवे तो बेईमानी है। सारा जगत अपनी ही परिणतिसे परिणम रहा है। इसका कोई सुधारक या बरबाद करने वाला नही है।

अनुभवका आनन्द और उसका प्रदर्शन—श्री अमृतचन्दाचार्यजी सूरि एक-एक गुणका विस्तार जुदा-जुदा बना रहे है। अनुभव भी बडा भारी कार्य है। वह निर्विकल्प पद्धतिसे हुआ था। उसका आनन्द लेनेके बाद विकल्प अवस्थामे आये उसका विस्तार कर रहे हैं। अपने आपको मौजमे पाकर विस्तार कर रहे है। इतनी बढिया चीजका अमृतपान आचार्य

महाराज हम लोगोको करा रहे है। वह हम प्राणियोके बीचमे ही अनुपम तत्वका विस्तार कर रहे है। आत्माका अनुभव आना प्रथम कार्य है। आत्मामे अनुभवोका विस्तार करना दूसरा कार्य है तथा उन अनुभवोको अपने आत्मबलसे सबके सामने प्रकट करना तीसरा कार्य है। स्वयका अनुभव अन्य जनोको किसी न किसी रूपमे प्रकट करना कल्याणप्रद है। इन तीन बातोसे ज्ञानी जीवकी शोभा ही बढती है तथा उसके लिए प्राय आवश्यक भी हो जाती है। जैसे किसीके यहाँ बढिया भोजन बनाया गया और उसको अकेलेने खाया, खते समय भोजनकी ही धुनि रहती है। उस स्वादको किसीके सामने प्रकट न किया। खिलाकर तो वह सतोष नही पाता। दूसरे आत्मतत्त्वको जान जावे फिर ऐसा कौन सामर्थ्यवान् होगा जो उसे पानेकी चेष्टा न करे ? उसी तरह ज्ञानी जीवोने जो पूर्वभवके सस्कारसे ज्ञान पाया है उसको उन्होने अपने आत्मानन्द द्वारा चखनेका मुहावरा प्राप्त कर लिया। अब जब तक अनुराग है तब तक उसको दूसरोमे बिना कहे रहा जाना असभव है। भले वह शब्दोमे कहने मे कठिन प्रतीत होता हो, फिर भी उसकी विशेपताये बताकर सबके सामने प्रकट किया है। आचार्योंने जो स्वय आस्वादन किया वह दूसरोके लिए भी स्रोत प्रकट किया है। वह झरने का जल विभिन्न प्रवाहोसे निकलकर हम सबको पान कराता है तथा कभी-कभी पूर्णतया अवगाहन करना जरूरी हो जाती है। जब वह एक बार भी अनुभवमें आ जाता है फिर उसे छोडे बिना नही रहा जा सकता। यह आत्मानुभवका आनन्द अनुपमेय है।

अभिन्न धर्म धर्मीमें स्वरूपभेद—एक ही द्रव्यमे जो सत्ता गुण है वही उसका द्रव्य स्वरूप भी है। द्रव्यमे सत्ता रहती है वह सत्के बिना नही रह सकती है। फिर भी दोनों एक स्वरूप नही है। अगर किसी एक व्यक्तिने भोजन किया तो वह दूसरे भाईके पेटको सन्तोष नही दे देगा। वही दोनो लडने भिडनेको भाई-भाई है। उसी तरह एक अनुभवके लिए सत्ता और सत् एक है। प्रकृत बातको समझनेके लिए जो भी बात लेंगे उसे लक्षण भेद से जुदा कहते हैं। जीव सिद्ध करनेके लिए उसीका दृष्टान्त दे दिया तो समझनेमे कठिनाई होती है। जीवको सिद्ध करनेके लिए अजीवका उदाहरण भी देना पडेगा। कुछ वस्तुए इस तरहकी होती है जो देखनेपर एकसी मालूम पडती है। फिर भी उनके लक्षण जुदे-जुदे होते है। उसी तरह द्रव्य गुणोके सहित भी है तथा उसमे अर्थ भी पाया जाता है। वह तीनों इकट्ठे रहते हुए भी एक ही वस्तु नही है। अभावमे दो दार्शनिक पद्धति गर्भित हैं, न के दो अर्थ होते है। अभावके भी दो अर्थ होते है। व्याकरणमे यह दृष्टान्त बहुत चलते है। जैसे 'अब्राह्मणा भुज्यन्ता' अर्थात् ब्राह्मणको न खिलाओ। इसका एक यह भी अर्थ हो सकता है ब्राह्मणको न खिलाकर दूसरोको खिलाया जावे तथा यह भी भाव निकलता है कि ब्राह्मणो को भी न खिलाओ। इस भिखारी को मत दो, दूसरे को दे दो तथा दूसरा अर्थ भिखारीको

भी मत दो ।

'तुच्छाभाव कैसे जाना जा सकता है—जैनसिद्धातमे सर्वथा अभाव तो नही है । जिसे दूसरे शब्दोमे तुच्छाभाव कह देते है । जैसे कहे कमरेमे से समयसार ले आओ । तब जिससे लानेको कहा था वह आकर कहता है कि हमने कमरेमे समयसार देख लिया, वह वहाँपर नही है । लेकिन वहाँ समयसारका सर्वथा अभाव तो दिखता नही । पूछा— दिखाओ तो, समयसार नही होनेपर वह चौकी लाकर दिखाता है कि चौकीपर समयसार नही है । यहाँ समयसारका अभाव चौकीरूप पडा । जैनसिद्धान्तमे निरर्थक बातोको स्थान नही दिया जाता है । जैसे वही से ईश्वरको ग्रहण कर लिया, कही जगतको लिया तथा कर्तापनको सम्मिलित करके कहने लगे—'ईश्वरने जगतको बनाया या वह कर्ता है । इसीको कहते है । 'कहीकी ईंट कहीका रोडा भानुमतिने कुनबा जोडा' इससे वह विवश है । यद्यपि ईश्वर भी है, जगत भी है, कर्तृत्व भी है, किन्तु इस रूपमे नही । कुछ न कुछ तो उनके लिए कहना आवश्यक हो गया । इसलिए जहाँ तक जैसी बुद्धि चली वैसा जिस किसी उनके मुख्य पुरुषने कह दिया उसीपर आगे भी कहने लगे । उन्हे हितकी भी बात समझाई जाय तो समझमे नही आती । क्योकि वह तो कहते है कि जो हमारे शास्त्रोमे लिखा वह झूठ नही है । इसीसे वह ईश्वरको जगतका कर्ता मानने लगे । लेकिन ईश्वर तो उसे कहते है जो अपने स्वादके भोगमे अत्यत स्वाधीन हो, जिसे वैभवमे दूसरेके मुहको न ताकना पडे । जिस तरह कुछ जमीदार इस तरहके होते थे या राजा लोग जो सभी पूर्ति अपने यहासे कर लेते थे, अनाज अपने खेतसे पैदा कर लिया, फल साग-सब्जी भी । कपास उगाकर कपडा बनवा लिया, नमक भी बनवा लिया, रस वाले पदार्थ गुड, शक्कर आदि भी स्वय बना लिये । धातुए भी उन्हीकी जमीनोसे निकल सकती है । इनको कहते है ऐश्वर्यवान । अपने भोगके अर्थ किसी अन्यका मुह न ताकना पडे । जिसे दूसरे का मुह ताकना पडे, उसे 'ऐश्वर्यवान' नही कहते । यह स्वाधीनता नही कि नौकरसे कहा—पानी लाओ पीनेको । तो नौकर कहता है कि जो काम मै कर रहा हू, उसे पूर्ण कर लू, बाद मे लाऊगा या शरीरके सहारेसे काम करना, मुहसे बोलना, यह भी तो पराधीनता है । क्योकि शरीर तो पुद्गलसे निर्मित है । तब दुनियामे ऐसा कौनसा ऐश्वर्य है जो स्वत मिलता है ? वह ऐश्वर्य भगवानमे है, उसे निहारना चाहिए । द्रव्यदृष्टिसे अपनी आत्मा और भगवान समान हैं, पर्यायदृष्टिसे भिन्न-भिन्न है । मनुष्योमे भी सर्वोत्कृष्ट प्रशसनीय नारायण माना जाता है । नारायण = नरके समान जिसका आचरण हो । मनुष्य प्रायः कहा करते है—किस जगह अचानक नारायणके दर्शन हो जावें ? एक गरीब पुरुष, विद्वान, त्यागी आदिमे भी उस नारायणके दर्शन हो सकते हैं तब किसीके भी प्रति खोटा भाव क्यो रखा जाय ? जिसमे उत्कृष्ट ज्ञान पाया जावे, उसे भगवान कहते हैं ।

अपराधका व्यय होते ही पवित्रता आ जाती है—बगालमे द्रोपदी नामकी एक लडकी थी। पिता सम्पन्न घरानेका था। उसने बचपनमे लडकीकी शादी कर दी। वह बचपन मे ही विधवा हो गई। लडकीका पिता जमीदार था, इसलिए उसने लडकीको बुलाकर काफी जमीन, बगीचा, कुँआ आदि दे दिया। वह कुछ समय बाद व्यभिचारिणी हो गई। सभीमे उसकी अपकीर्ति फैल गई। कुछ समय बाद उस लडकीके मनमे ज्ञान जगा। तब पिताके पास आकर कहने लगी कि मै तीर्थयात्राको जाना चाहती हू। पिताने समझाया—जीवन काफी बडा है, अभीसे क्यो इतनी व्यग्र होती है? तब उसने कहा—मेरा जीवन अभी तक पापोमे सना रहा, अब मै उन्हे छोडकर आत्माराधना करूँगी। बडे पिताकी पुत्री, अतएव गाँव वालो को बुलाया गया। सभी मनुष्य आये, लडकीने सबमे घोषणा की मैं अब अपना जीवन पवित्र ढगसे बिताऊगी, इसलिए सबसे क्षमा माँगकर तीर्थवन्दनाको जाती हू। तब सभी मुह बन्द करे कोई हाथ लगाकर, कोई कपडा लगाकर हसने लगे। यह देखकर लडकीने कहा—भाइयो! मैने विषयलोलुपी बनकर जीवनके इतने भागका पतन कर दिया अब मै उसे घृणाकी दृष्टिसे देखती हू तथा उसका महान् प्रायश्चित् लेनेके लिए प्रयाण कर रही हू। इसलिए तुम्हे हसना हो भले हसो, क्योकि मेरे अब तकके कार्य ही ऐसे थे, जो कि आप सबकी दृष्टिमे इस तरह जच रहे है—'नौ सौ चूहा मार बिलैया हज को रूठी'। उसके पहलेके पापसे बगीचेके आम आदि फल कडुवे हो गये थे, बावडीका जल दुर्गन्धित कीडोसे युक्त हो गया था। उसके विरक्त होते ही उस लडकीने यकीन दिलानेके लिए कहा कि आप सब बगीचेके फल चखकर देख लो, वह सभी मीठे हो गये तथा बावडीका जल सुगन्धित निर्मल हो गया। तब वह फल वगैरा कहेके अनुरूप ही निकले। उस लडकीने तीर्थमे जाकर देवताके ऊपर जल चढाया एकाग्र मनसे तथा बादमे ध्यानमे लयलीन होकर उसीमे समा गई। इससे ज्ञात होता है पूर्वमें किसीने कितना भी पाप किया हो वह आधा तो स्वयके पश्चात्ताप करनेसे छूट सकता है तथा उस पश्चात्तापमे जो ज्ञान होगा वह भी विशुद्ध होगा। लेकिन यह चेष्टा सच्ची आत्मकल्याण की भावनासे होनी चाहिए। इसका भाव यह नही है कि जानकर पापकार्योमे प्रवृत्त हो जावे और सोचे मै भक्ति, दान पश्चात्तापसे उन पापोसे छूट जाऊगा। इस तरह सोचकर पापकार्य करनेसे अधिक पतनके कारण बनते है।

वस्तु स्वपरकी अपेक्षा सत् असदात्मक है—सत् और सत्ता दो का आधारभूत एक ही वस्तु है। वही सत् अन्यका असत् रूप है। अज्ञान मिटा वह सर्वथा अभावरूप नही है। हममे दुनियाभरके अभाव है तो क्या कुछ भी नही है? हममे दुनियाभरका अभाव है। [illegible] सत्यको देखनेसे शरीर व कर्म हममे नही है। जब आत्मजन्य लक्ष्य नही है तब कर्म व शरीर मानना ही पडेगा। अभाव सर्वथा शून्य रूप नही होता है। अभाव द्वारसे प्रत्येक पदार्थ ४

तरहसे जाना जाता है—(१) प्रागभाव, (२) ध्वसाभाव, (३) अन्योन्याभाव, (४) अत्यन्ताभाव। आगे होने वाली अवस्था नही है। इसे दिखानेके लिये पहलेकी अवस्था पेश (उपस्थित) कर दी। यहाँ पहलेकी अवस्था पेश करके उत्तर अवस्थाको दिखाया है, यह प्रागभाव है। उत्तरावस्था दिखाकर पहिली अवस्थाका अभाव बताना प्रध्वसाभाव है। कपडोमे चौकी नही है और चौकीपे कपडा नही है, फिर भी यह एक दूसरेके परमाणु समय बीतनेपर दूसरे रूप भी बन सकते है। कपासके परमाणु सडगलके खेतमे पहुचनेसे कपासमे भी जा सकते हैं, यहाँका अभाव अन्योन्याभाव है। जीवमे पुद्गल नही है तथा पुद्गलमे जीव नही है, यह अत्यताभाव है। कोई पदार्थ दूसरे रूप परिणम गया या एकके नही होनेपर दूसरा है। इस तरह पदार्थका सर्वथा अभाव नही है।

भिन्न-भिन्न पदार्थोंका भिन्न-भिन्न व्यवहार—मनुष्य एक दूसरेसे स्वार्थकी प्रीति करते है। जब तक हित सधता है तब तक प्रेम करते है। यहाँ तो अगर सुबह प्रीति है तथा कुछ समय बाद स्त्रीने ही पतिको भोजन अच्छा नही दिया तो वही पति प्रेम नही करेगा। क्षणमे वैमनस्यता हो जाती है। दूसरे भवमे भी कौन किससे प्रेम करता है? सेठ जिनदत्तका अचानक स्वर्गवास हो गया। वह मरकर मेढक हुआ तो उसकी स्त्रीको मुनि द्वारा पता चला जो तेरे घडेमे बार-बार मेढक आ जाता है वह तेरा पति था, जिनदत्त ही मरकर मेढक हुआ है। तब उसकी पत्नीने मेढकको लाकर छने जलमे रखा व उसको भोजन दिया करे। क्या इस तरहके भी प्राणी कोई मिल सकते है? भैया! वहाँ भी पत्नीने मेढकका कुछ नही किया। पत्नीने अपना भाव ही पोषा। ससारमे अनादिसे भ्रमण करते हुए इस जीवका प्राय. सभीसे किसी न किसी रूपमे परिकरताका नाता हुआ। कौन किसका भाई कुटुम्बीजन नही हुआ? उन्हीको हम देखकर घृणा कर देते है। एक पैसा भी गरीब भाईके लिए हाथसे देना कठिन हो जाता है। जैनधर्मकी रक्षा करते हुए आत्माका जो लक्ष्य है वही सच्चा स्वार्थ है। खुदगर्जी छोडकर आत्माका स्वाद ग्रहण करा लिया जावे, यह कल्याणप्रद है। कोई बुरा है तो वह अपने लिए तथा भला है तो वह अपने लिए ही है। कोई भला है तो मुझपर क्या ऐहसान कर रहा है? वह अपने ही भलेमे तो मस्त है। कोई बुरा है तो क्या मेरा बुरा कर रहा है, वह अपना बुरा करनेमे प्रयत है।

द्रव्य, गुण, पर्यायमे पृथक्त्वका अभाव—द्रव्यके स्वरूपकी समझ निर्मोहता उत्पन्न करती है। इस गाथामे बताया है कि द्रव्य एक शुद्ध सत्ताक है उसमे व्यवहारनयसे भेद किये है। यहाँ दृष्टान्तपूर्वक समझा दिया गया है कि देखो—जैसे एक मोतियोकी माला है, उसका तीन प्रकारसे विस्तार है—हार है, डोरा है, मोतीदाना है। इसी प्रकार एक द्रव्य (पदार्थ) का तीन प्रकारसे विस्तार है—द्रव्य है, गुण है, पर्याय है। जैसे उस एक मालाके शुक्ल गुण

का तीन प्रकारसे विस्तार है—शुक्ल हार है, शुक्ल सूत्र (डोरा) है, शुक्ल मोतीदाना है, इसी प्रकार एक द्रव्यके सत्ता गुणका तीन प्रकारसे विस्तार है—सत् द्रव्य है, सत् गुण है, सत् पर्याय है। जैसे एक मोतीमालामे जो शुक्ल गुण है, वह न हार है, न सूत्र है, न मोतीदाना है और हार है, सूत्र है अथवा मोतीदाना है, वह शुक्ल गुण नही। ऐसा जो एकमे दूसरेका अभाव है, उसे तद्भाव लक्षण वाला अतद्भाव कहा गया है। इसी प्रकार एक द्रव्यमे जो सत्ता गुण है वह न द्रव्य है, न अन्य गुण है, न पर्याय है और जो द्रव्य है अथवा अन्य गुण है अथवा पर्याय है वह सत्ता गुण नही। ऐसा जो एकमे दूसरेका अभाव है वह तद्भाव लक्षण वाला अतद्भाव कहा गया है। यही अतद्भाव अन्यताका कारणभूत है, अन्य प्रकारसे अर्थात् प्रादेशिक पृथक्त्व उनमे नही है।

वीतराग महर्षियोंकी अपार करुणा—वीतराग प्रभुने ससारमे रुलते हुए जीवोंपर मानो अलौकिक करुणा की है। उन्होंने आत्म-प्रेरणासे प्रेरित होकर ससारी जीवोको भी कल्याणमार्गकी ओर उन्मुख किया है। उन्होने ज्ञानका उपदेश दिया है। सत् द्रव्यका लक्षण है। 'है' बिना समझे एक तिल भी बढनेकी गुजाइश नही है। 'है' का मर्म जाने बिना आत्मा की बात जानी जाय, यह असभव है। आगे जानेके लिए मौलिक सत् जानना आवश्यक है। जगत्के पदार्थ न्यारे-न्यारे है। यह सत्के द्वारा जाना जाता है। सत्के परिज्ञानसे अज्ञानका आवरण हटाया जा सकता है। यहाँ अमृतचन्द्राचार्य सूरिने सत्का ही विस्तार किया है, जिसे बहुमुखी प्रतिभासे स्पष्ट दर्शाया है। पूर्वोमे जो ज्ञान कराया जाता है उसमे कर्मप्रवादपूर्व तथा आत्मप्रवादपूर्व भी है। इन दोनो पूर्वोमे से मुख्यतया कर्मप्रवादपूर्व वाले धवल, महाधवल सिद्धान्त ग्रन्थ है। उनकी कितनी विस्तृत टीका है, वह विशालकाय ज्ञानकोषसे भरे हुए है। उनको पढ जानेपर भी नयी-नयी उत्कठा उत्पन्न हो जाती है। उनके भी पढे जानेपर कुछ और जाननेकी अभिलाषा बनी ही रहती है। उन्हीका कुछ सार भाग सिद्धान्त चक्रवर्ती नेमिचन्द्राचार्यने गोमट्टसार (जीवकाड, कर्मकाड) की रचना की है। अगर यह धवल महाधवल (षट्खण्डागम) लुप्तावस्थामे ही पढे रहते तो बडा भारी शास्त्र-प्रवाह रुक जाता। इससे कुछ अधिक जिनवाणी समयके प्रवाहमें कालकवलित हो गई है। लेकिन जितनी भी आजकल जिनवाणी उपलब्ध है उन्हे ही सुनकर थकित हो रहे है। आत्मप्रवादविषयक बातका भी बडा विस्तार है, यह तो अति संक्षेप है। प्रतिदिन नया-नया भोजन किया जाता है तथा बुभुक्षा शमन की जाती है, फिर भी भोजनके प्रति नया-नया राग उत्पन्न होता रहता है अथवा प्रतिदिन उसकी आवश्यकता बनी रहती है, उसी तरह हम जिनवाणी प्रतिदिन सुनते है, उससे नयी-नयी वस्तुओका ज्ञान मिलता है, उस ज्ञानकी हृदयमें कोपलें फूटती है, जो ज्ञान को हरा-भरा करके मन्द-मन्द वायुसे सुगधित किये रहती है। यह ज्ञानका भोजन है, इसका

स्वाद बेजोड है । शुरूसे अपने ऊपर भी यही बात चल रही है । कोई क्षण नही है जहाँ ज्ञान की बात नही मिलती हो । जैनियोको जीवनमे अनेक अवसर आते है ज्ञानपथमे आगे बढनेके, लेकिन उन अमूल्य क्षणोंको प्रमादमें खो देते हैं । जिससे हम पूर्व जैसे तथा उससे भी ज्यादा गिरे हुए रह जाते है । इन ज्ञानकणके क्षणोमे लाभ लेवें तो वह विस्तृत नही होना चाहिए ।

अनुभूत तत्त्वके स्मरणमे भी आनन्द—जैसे किसीको गोमटेश्वर बाहुबलिकी मूर्तिका आश्चर्य हुआ । तब उसकी दर्शन करनेकी भावना बलवती हुई । भावना करते-करते, साधन जुटाकर दर्शन करनेके लिए पहुच गया । दर्शन करनेसे दृढ प्रतीति हो जाती है जो लोगोंसे सुना वह पूर्ण नही है । बाहुबलिने महान पराक्रमशाली होते हुए भरतसे सभी युद्धोमे जीतकर भी इन विषयोको धिक्कारते हुए दिगम्बरी दीक्षा ग्रहण की थी । उन्होंने घोर तपश्चरण किया था जिससे उनके शरीरके पास सर्पोंने बामी भी बना ली थी तथा बेले उनके शरीरपर लिपट गई थी । यह सब होते हुए भी तपस्यामें अटल रहे थे । भरतने आकर बाहुबलिकी भक्ति एव प्रार्थना की थी । तब बाहुबलि नि शल्य तप करके मोक्ष पधारे थे । वह अनुपम मूर्ति आत्म-विस्मृत कर देती है तथा विरोधीसे विरोधी जीवका भी माथा वहाँ जाकर चरणोंमे श्रद्धासे नत हो जाता है । अब उस मूर्तिके प्रति कोई कितना भी बहकावे, लेकिन वे बहकानेके कारण हमारी श्रद्धाको अटल बनानेके ही कारण बनेंगे । हम किसी भी तरह उस मूर्तिकी मनोज्ञता को भूल नही सकते । उसी तरह जिसने अपनी आत्माकी एक बार खबर ले ली वह क्या उसे भूल सकेगा ? धर्म करना स्वभाव ही आत्माका है । हम अपने मुहसे भी जैन न कहे, किन्तु हमारे आचरण आत्माका कार्य करनेमे ही सलग्न होवें तो कौनसी भव्य आत्मा हमारी ओर आकर्षित होकर पद-चिह्नोपर चलनेका प्रयास न करेगी ? इसके विपरीत हमारा आचार ऊचा न हो, अपनेपर ही एव धर्मपर विश्वास न हो तथा जैन-जैन चिल्लाते रहे, अखबारोमे छपवाते रहे, आम जनतामे भी प्रचार करे तो उसका प्रभाव उतना नही पडेगा । बिना आच-रणके कौन किसके पास जाता है ? आत्मश्रद्धा होनेपर कुगुरु, कुदेव, कुशास्त्र कितने ही बह-काते रहे, चमत्कार दिखाते रहे, फिर भी वह हमपर लेशभर भी अधिकार न जमा सकेंगे । आत्माकी प्रतीति जो करेगा वह आनन्द पावेगा ।

तू स्वय आनन्दमय है, अन्तरमे अपनेको तो देख—हरिणकी नाभिमे कस्तूरी रहती है । उसकी सुगधसे वह आकृष्ट होकर जगलमे खोजता फिरता है, किन्तु वह अपनी सुगधसे बेसुध है । इसी तरह हमारा आनद हममे असीमित समाया हुआ है, उसे पानेके लिए यहाँ-वहाँ मुह ताकते फिरते है । लेकिन इस समय गुरुदेव कहते है कि तू जरा भी तो अपनेमें शाति से बैठ, बाहरी कल्लोलोको ज्ञानरूपी मन्द हवासे शान्त कर दे, तब फिर अपनी आत्माका आनन्द ले । तब तेरे ऊपर कोई भी आक्रमण क्यो न होवे, वह बेसुध नही कर सकेगा । जब

तक तुझे 'मैं कौन हू' का भान नही है, तभी तक तू यहा वहा भटक रहा है। तू दर्पणके समान निज ज्ञेयाकारका भोक्ता है। दर्पणमे कुछ भी झलकता रहे, किन्तु दर्पण पदार्थोंके झलकनेके पदार्थस्वरूप नही होता है। सुख दु:ख जो झलक रहा है, उस रूप मै नही हू। विकल्प मुझमे झलके वह तो मै हू तथा विकल्प जो आये वह मैं नही हू। विकल्प आनेका जानकार तो मै हू, यह दृष्टि आतमामे आनेपर बाहर नही देखेगा ? सिद्ध प्रभुके समान शुद्ध स्वभावमय इस प्रभुकी क्या दशा हो रही है ? कानी लडकी भी हो गई तो सोचता है कि सर्वस्व यही है। परपदार्थपर तो दृष्टि जा रही है, किन्तु अपने आपका पता ही नही। जिसे सर्वस्व समझ रहा है उसमे तो लेश भी अपना नही है। बाह्यको स्पर्श करनेसे भी क्या तेरा लाभ होगा ? अन्तरङ्गकी ओर तो झुको, अन्तरङ्गकी आवाज पहिचानमे आ जावे तब कितने दु:ख नही टल जावें। सबमे पाया जाने वाला 'है' का स्वरूप चल रहा है। एकका उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य दूसरेका नही बन सकता। वह 'है' किसी न किसी रूपमे परिणमन बनाये रहता है। अपना जो बन रहा है वह दूसरेका नही हो सकता है। तब फिर ऐसी स्थितिमे कौन कर्ता है, कौन स्वामी है ? परपदार्थ जो भी जितना प्यारा लग रहा है वह उतना ही घातक है। वस्तुत तो हमारी प्रीति ही घातक है। निमित्तमात्र यह तुम्हे मिले है, और कोई स्थायित्व समझमे नही आता है। बाह्य पदार्थसे दृष्टि हटनेपर आत्मलाभ नियमसे मिलना चाहिए। जो महापुरुष हुए हैं उन्होने जीवनके पूर्वभागमे खूब सग्रह किया। पश्चात् उत्तरावस्थामे उन सबकी निःसारता जो समाई हुई थी, उसे प्रकट करके एक क्षणमे सभीमे लात मार देते है। हम मोहियोको तो मिला क्या है, वह तो हममे ठोकर ही लगा रहे है। हमने ऐसा अलौकिक पाया क्या ? जिसपर फूल जावें। सत्य तो यह है कि बाह्यपदार्थ कैसा भी हो वह तीन काल मे भी सुख देनेको समर्थ नही है। जिसके पास जितना वैभव है, क्या उसपर पूर्ण कब्जा बना रहता है, उन सबमे क्या वह लिपटा रहता है ? धन वैभव, हाथी, घोडा, मोटर एक तरफ खडे रहते हैं, उन्हे देख-देखकर झूठा हर्षित होता है। तीन लोकका जो भी वैभव है वह मेरा नही है। यह विश्वास हो गया तो सत्का ज्ञान समझमे आ जायगा। सत्के ज्ञान बिना मौलिक वैराग्य होता भी नही है।

हे पदार्थों ! तुम स्वतन्त्र-स्वतन्त्र ही परिणमो—जो भी जिससे खुश होता है वह उसे आशीर्वाद देता है। एक भिखारी सेठके पास आता हैं, सेठ उसे रूखी-सूखी चार रोटिया देता है। सेठका उतना वैभव है, मौजसे रहता है। कहाँ भिखारीका दर्जा, तब भी वह कहता है—'तुम खूब फूलो फलो।' वहा वह छोटा बडा नही देखता है। द्रव्यस्वरूपसे जिसका ज्ञान पवित्र हो जाता है वह कहता है कि हे द्रव्यो ! तुम स्वतत्र-स्वतत्र परिणमो, एकके द्वारा दूसरे का परिणमन मुझे मत जंचो। उत्पाद व्यय ध्रौव्यसे युक्त रहते हुए भी प्रत्येक द्रव्य स्वतत्र-

स्वतत्र परिणमन कर रहे है। सत्मे और भी विलास है, जो द्रव्य है वह गुण नही है, जो गुण है वह तत्त्व नही है तथा तत्त्व अर्थ नही है। तत्त्वमे और द्रव्यमे अन्तर है। तव अन्तर सहित तत्त्वको द्रव्य कैसे वना सकते है ? यहा यद्यपि यह सव अनर्थान्तर है तव भी अतद्भाव है। वस्तुको ४ तरहसे देख सकते हैं—(१) द्रव्य रूप, (२) तत्त्व, (३) पदार्थ तथा (४) अस्तिकाय। जैसे जीवद्रव्य, जीवतत्त्व, जीवपदार्थ और जीवास्तिकाय। व्यवहारमें भी हम मनुष्यादि को कई रूपोमे देखते है तथा जिस रूप जब देखते हैं, तव वह अपना जुदा-जुदा महत्त्व रखते हैं। कभी भक्त रूपमे, कभी नेता रूपमे, कभी समाजके समान स्तरमे, कभी सेठ रूपमे, कभी दानीके रूपमे आदि। इनमे अर्थान्तरका अन्तर है। जो त्रिकाल पर्यायोको ग्रहण करे ऐसा चेतन द्रव्य है। इस तरहसे देखा गया वह चेतनद्रव्य है। एक पिण्डरूपसे अथवा जिसे कहते हैं—कोई वस्तु (ऐनी थिंग) इस रूपसे देखा गया चेतन चेतनपदार्थ है। प्रदेश अथवा क्षेत्र-विस्तारकी दृष्टिसे देखा गया चेतन चेतनअस्तिकाय है। भावरूपसे देखा गया याने गुण अथवा चैतन्यस्वभावकी दृष्टिसे देखा गया चेतन चेतनतत्त्व है। यहाँ कहेगे जो द्रव्य है वह गुण नही है। सो गुण और तत्त्व दोनो भावदृष्टिसे मुकाबलेके है, तथापि यहाँ तत्त्व शब्द द्रव्यके लिये दिया है। जो द्रव्य है वह तत्त्व नही है। जो गुण है वह द्रव्य नही है। जो अगुली है वह हाथ नही है। सत्का सत्त्वका परस्परमे अतद्भाव है। यह एक ही वस्तुमे होकर अतद्भाव है। जव उसके भेद करने होते हैं तो विस्तार करना होता है। यहाँ सभी सत्के भेद किये हैं। सर्वथा अभाव हो ऐसा नही कहा है। जैसे पुस्तकका अभावमात्र घडी कहा और घडीका वर्णन या निर्देश या लक्ष्य भी नही किया तो फिर रहा ही क्या ? लेकिन घड़ीका वर्णन नही किया, लक्ष्य नही किया तो उसका लोप तो नही हो जायगा। किसीके अभावको भगवानने सत्के सद्भावका निर्देश किया है, तुच्छाभावका निर्देश नही किया है। सर्वथा अभावरूप कोई चीज नही होती। जो भी शब्द है उसका वाच्य है और जिस किसीका भी अभाव कहो वह अन्यके सद्भावरूप है। यदि पूछो कि तुच्छाभाव किसके सद्भावरूप है ? उत्तर यही होगा कि तुच्छाभाव तुच्छाभाव सोचे जाने वाले विकल्पके सद्भावरूप है। यह तुच्छाभाव तुम्हारे विकल्पके सद्भावरूप है। तुम्हारे विकल्पमे जो बात समा रही है उसका निर्देश यहाँ नही कर रहे है। कोई पदार्थ है वह सत् है, सत्ता उसका गुण है। यह समझनेमे काम आने वाला भेद है, अन्य तरहका भेद नही है। यह जाननेपर समझो जिनेश्वरके लघुनन्दन हो गये तथा जब यह अनुभूत है तब यह भेद नही है तथा कहे कि यह मेरा पुत्र है, यह मेरी स्त्री है, मैं इनका स्वामी हू, पालन-पोषण करता हू। इस तरहके भावोसे ग्रस्त होवे, तब समझो कि वह मोहेश्वरके पिता हैं। घरमे रहने वाला लडका भी अपना कुछ नही है। वह तो इसलिए पिताजी, बाबू जी मान रहा है कि उसके मनोनुकूल हम नाचते हैं। विद्या पढानेमे कारण पढते हैं। जिस-

जिसका राग है वह सब ऐसा करते है। सबका पुण्य पाप सबके साथमें लगा है। तब कहे मैं इसका कुछ करता हू, कहाँ तक उचित है? प्रत्येक कार्य अपने-अपने परिणमनसे हो रहे है। हम या आप कोई भी जो कुछ कर रहे है वह तो हम निमित्तमात्र पड गये है तथा जो भी कुछ कर रहे है उसमे अपने ही भलेकी या सुखकी इच्छा समाई हुई है।

अपना-अपना आनन्द तत्त्वज्ञानपर निर्भर है—अपना जीवन सुरक्षित अपने हाथमे है। परपदार्थका मोह कितना भी करें, जब तक हमारा इस तरहका पुण्य नही होगा तब तक वह मिलनेका नही। मिला भी तो उसने तृष्णायें ही बढा दी और कुछ नही किया तो पुण्य समागमसे निराकुलता तो नही हुई, यह समझकर उनके प्रतिसे निर्मोह रहना ही श्रेयस्कर है। दिलमे यह अच्छी तरह समा जाना चाहिए, सब पदार्थ अपना-अपना परिणमन कर रहे है, मै कुछ भी नही करता हू। मैं तो केवल ज्ञाताद्रष्टा मात्र हू। यही प्रयत्न सदैव चलता रहे जो जीवनका सारभूत तत्त्व और मोक्ष पानेका सरल उपाय है। इति शम्।

सत्ता और सत्‌में प्रदेश भेद तो है ही नही, अतः उनमे पृथक्त्व रूप भेद तो पाया नही जाता। हाँ विशेष्य विशेषणरूप व लक्षणरूप व अतद्भावरूप भेद पाया जाता है। सो अतद्भावका तात्पर्य सर्वथा अभावरूप नही है, किन्तु एकका वाच्यार्थ दूसरेमे नही है, इतना ही अतद्भावका मतलब है। इस ही मर्मको श्री कुन्दकुन्द आचार्य महाराज कहते हैं—

ज दव्व तण्ण गुणो जोवि गुणो सो ण तच्च मत्थादो।
एसो हि अतब्भावो णेव अभावोत्ति णिद्दिट्ठो ॥१०८॥

जो द्रव्य है वह गुण हैं और जो गुण है सो द्रव्य नही है। वास्तवमे ऐसा ही यह अतद्भाव है, किन्तु अभाव है ऐसा अतद्भाव नही निर्दिष्ट किया गया है। जो एक द्रव्यमे या एक वस्तुमे गुण है वह द्रव्य नही है। जो द्रव्य है वह गुण नही है। जैसे आत्मामे ज्ञान, दर्शन, चारित्र, सुख गुण है। ज्ञानका स्वरूप जानना है, ज्ञान न हो तो किसीको जानेंगे भी कैसे? आत्मा अनतदर्शन, अनतज्ञान, अनतसुख और अनंतवीर्य गुणो वाला है। तब द्रव्यका स्वरूप दूसरा मानना पडेगा तथा गुणोका स्वरूप दूसरा मानना पडेगा। जैसे आम स्पर्श, रूप, रस, गध वाला है। वह अनेक गुणोसे सहित है, किन्तु रंग एक ही तरहका है। उसमे फिर भी प्रदेशभेद नही है, क्योकि आमका रूप तथा आम भिन्न नही है। तो द्रव्यका जो एक गुण है वह द्रव्य नही है तथा गुणका द्रव्यरूपसे अभाव है और गुणका द्रव्यरूपसे अभाव है। जैसे आप व्यापक हैं तथा आपका रग व्याप्य है या जब हम कहे चौकीको कि एक फुट ऊँची है तथा कहे चौकी है। यहाँ चौकी और एक फुट ऊँची इन दोनोका अर्थ एक नही है। यहाँ विशाल क्या है? चौकी कठोर, लम्बी-चौडी, अमुक रंग वाली, साफ, चिकनी, काठ या पीतल की आदि नई विशेषतायें लिये हुए है, किन्तु एक फुट ऊँचीमे और दूसरा अर्थ क्या है? यहाँ

चौकी अशी है और एक फुट ऊँची अश है। अशअशीका भेद है और दूसरा भेद नही है। इतने ही मात्रसे अन्य व्यवहारकी सिद्धि है। दृष्टान्तसे चौकी और एक फुट ऊँची लिया है, किन्तु वह एक फुट ही रहे, यह बात नही है तथा चौकी भी भिन्न-भिन्न तरहकी हो सकती हैं।

जितने शब्द हैं उतने स्वरूपभेद हैं—किसीका नाम घसीटेमल है, वह किसीका बाप, किसीका बेटा, मामा, चाचा, भानजा, भाई भी हो सकता है। लेकिन जब कहे मुन्नीका बाप तथा घसीटेमल — यहाँ इन दोनोका एक अर्थ नही है। इसी तरह द्रव्य तथा गुण भी भिन्न भिन्न अर्थ रखते है। अगर घसीटेमल पुजारी, व्यापारी, रिश्तेदारी, इन्जीनियर, डाक्टर, मास्टर आदिके रूपमे देखे जावें तो उस समय उनके भिन्न-भिन्न अर्थ होगे। एक व्यापक दूसरा व्याप्य है। जैसे मुन्नीके बाप कहनेपर कुछ और मतलब निकलना है तथा घसीटेमलसे कुछ और मतलब निकलता है। अगर अन्य प्रकारसे अभावरूप अन्तर करोगे तो गुणका अभाव द्रव्य हो गया तथा गुणका अभाव द्रव्य हो गया, कहना होगा। इस तरह नही है। एक फुट ऊँची चौकी स्वरूप नही है तथा चौकी एक फुट ऊची मात्र हो, सो नही है। कोई कहे हमे तो बिल्कुल अन्यत्व सिद्ध करना है यह भी करना असभव है। जैसे सत् और सत्ता जुदी-जुदी होते हुए भी एक ही वस्तुमे रहती हैं। धर्म और धर्मीका भेद पाया जाता है। सोधा तथा सीधापन एक होते हुए भी दोनोमे भेद है। सीधापनका अभाव सीधामे है तथा सीधाका अभाव सीधापनमे है। ऐसे लक्षण वाले अन्यत्वका नाम अतद्भाव ही है, सर्वथा अभावका नही। ऊँचाईके न होनेका नाम चौकी नही है तथा चौकीके न होनेका नाम ऊचाई नही है। ऊँचाई और चौकी जुदी-जुदी कर लो। ऊचाई अलग तथा चौकी अलग है। कोई कहे ऊचाई लाओ तो दो वस्तुए भिन्न-भिन्न हो जावेंगी। इस तरह होनेपर ऊचाईके अभावका नाम चौकी कहना होगा तथा चौकीके अभावका नाम ऊचाई कहना होगा।

हमे अपनेको सही समझना है—यह सब प्रकरण इसलिए चल रहा है कि आत्मा मात्र निज स्वभावमय मैं हू, सत् स्वरूप अखण्ड हू, चिदानन्दमय हू। इनमे गुणगुणीका भेद है, सर्वथा भेद तथा अभेद नही है। अपनी आत्माकी बात अपने लिए समझना है। मैं चैतन्य आत्मा हू। आगमे गर्मी कही अलगसे नही आई है। इसी तरह जगतके जितने पदार्थ हैं वे स्वय सत् हैं। वे सब उत्पाद ध्रौव्य वाले हैं। कोई किसीको न उत्पन्न करता है और न नाश करता है। अनन्तानुबधी क्रोध, मान, माया, लोभ क्या है ? वस्तुका स्वरूप समझमे न आना, यही अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ है। यह वस्तुका समझमे न आना अपने आपपर डबल क्रोध करना है। कोई तो एक घंटा ही क्रोधसे रुलेगा, किन्तु इसकी सीमा नही है। पर्याय वृद्धिमे मीठा क्रोध सभीको अच्छा मालूम पडता है। अपनेको भूलकर क्रोध करता है तो सुहाता है। अगर किसीकी दूसरेसे लडाई हो गई, उसी बीचमे कोई समझाने आया तो

क्रोध कुछ कम होनेपर उसे फिरसे लानेकी चेष्टा करता है। क्योंकि क्रोध चला गया तो बदला कैसे लेंगे ? हमारे मनमे यह ठेस लगी रहेगी, यह सोचकर फिरसे तावमे आकर बौखला पडता है। कभी-कभी समझाने वालेपर भी आफत आ जाती है। वस्तुस्वरूपको न जाननेसे इस तरह का क्रोध होता है। वस्तुस्वरूपको न जाननेसे ही अभिमान आता है। सम्पूर्ण दुनियाकी डेढ आँख मानना। सबमे विभाग करें तो एक आँख अपनी और आधी आँख बाकी दुनियाकी मानना। इस तरहका कोई भी व्यक्ति नही मिलेगा जिसे गाना और रोना न आता हो। अपना गाना सभीको अच्छा लगता है। कोई ज्ञानके मदमे चूर है, कोई धनके मदमे चूर है, कोई ताकतके मदमे चूर है, कोई अपने रूप लावण्यके सामने दूसरोको कुछ भी नही समझता। दिलका ताप (दुःख) निकालनेके लिए रोना एक शस्त्र है, वह दुःख हल्का जैसा हो जाता है, उसी तरह चिन्तातुर मनुष्यके लिए गाना रामबाण औषधि है, जो भीगे दिलमे हर्षका सचार करता है। पद्य या गीत परम्परा आदिकालसे मिलती है। हिन्दी साहिन्यकी रचना शुरू-शुरू मे प्राय पद्यमे ही हुई थी। वह काफी समय तक चलती रही तथा बादमे हिन्दी गद्य साहित्य का प्रादुर्भाव हुआ। जब हम इन कारणोको देखते है तो पद्य साहित्य शुरूसे आगे बढा पाया जाता है। अपनी कविता किसीको भी बुरी नही लगती है। उसमे भले ही स्वर, मात्राये, तुकबन्दी, दोहा आदि छन्दोका यथोचित निर्वाह न हो, फिर भी वह उसे खराब नही लगती है। जैसा कि कहा है—'निज कवित्त केहि लगे न फीका, सरस होय चाहे अति नीका।' इसी तरह कुछ मनुष्योको अपने मनगढ़त विचार बड़े उत्तम लगते हैं। वह सबको अपने विचारोंके अनुरूप ही देखना चाहता है। यदि कोई किसीके विचारोके अनुकूल चलने लगे तब तो 'भिन्नरुचि हि लोकः' मनुष्य जुदी-जुदी रुचिके होते है। यह सिद्धान्त ही उठ जाना चाहिए। यहाँ प्रकरण सत् और सत्ताका चल रहा है। प्रसगवश यह कहना पडा।

मोही जीवोको पर्याय ही रुचती है—मोही पर्यायमें आसक्त होकर सुख मानते है। उन्हें अपने परिवार भाई, बान्धवो, स्त्री, पुत्रके सामने कुछ अच्छा नही लगता है। क्या जितनी बढिया उसकी स्त्री है उतनी बढिया विदेहमे भी नही होगी। उसी तरह उस जैसा पुत्र भी क्या विदेह क्षेत्रमे भी नही होगा ? इतना सब सोचते-सोचते आँखें मिचनेको आ जाती तब भी नही चेत पाता। आँखे मिचनेपर सब छोड़कर चले जाते है। मोहमे ही सब कुछ दिखता है। पूरा गाँवका गाव जल जावे तथा अपना घर बच गया तो सोचता है कि अभी कुछ नही जला तथा अपना घर जल जाय, गाँव भले ही बचा रहे तो सोचेगा सब जल गया। यह मोहकी दशा हो रही है। पर्याय बुद्धि रहने तक यह विचारधारा चलती ही रहती है। बचपनमे किसे धन कमानेकी इच्छा थी ? अपनी मौजमे समय निकालते थे। शुरूमें यहाँसे वहां, वहाँसे यहाँ गोद-गोद लिए फिरे, कुछ बड़े होनेपर पिताके आधीन हो विद्या उपार्जन की, खूब ठाठसे खर्च

किया । मित्र-मण्डलीमे प्रभाव जमाया । बादमे शादी हुई तो धन कमा की चिन्ता सवार हो गई । घरकी व्यवस्था बनानेकी धुन सवार हुई । उसी तरहका राग पैदा हुआ तथा वैसे कार्यों मे प्रवृत्त हो गया । बचपनसे जिन्होने गृहस्थीका राग नही देखा उन्हे बचपनके विरुद्ध चिन्ता महसूस करनी पडती है । वह बचपन जैसी अवस्था न आ पाई तो कुछ न कुछ शल्य चलती ही रहती है । पढनेके लिए बडे आदमी भी आवें तो उनमे पुस्तक लेते ही बच्चा जैसे भाव पैदा हो जाते है, परिणामोमे शुद्धि आने लगती है, कषाये हटने लगती हैं, पुस्तकके ज्ञान की तरगें उठने लगती हैं, उस विषयको मन छूने लगता है । जैसे विषयका ग्रन्थ हाथमे है उसी तरहके उत्कृष्ट भाव बार-बार टक्कर लगाने लगते है । जिस तरह गाँधीजी ने चर्खे चलाने मे उपयोगको परिवर्तन करके रोटी खानेके समान उसे प्रति दिन कातना जरूरी बताया था । क्योकि उससे मन एकाग्र होकर पचेन्द्रियां वशमे होती हैं । गरीबोकी बात सामने आ जाती है । सूत न टूट जाय—इसपर दृष्टि रहती है । उससे समुज्ज्वल यह ज्ञानरूपी धागा न टूट जाय यह प्रयत्न सदैव रहना चाहिए । क्योकि एक बार टूटा ज्ञानका क्रम फिर उसमे गाँठ लगाना पडेगी जो कि खटकने वाली रहेगी । ज्ञानकी उन्नति जीवनमे सदैव सुख देती है । ज्ञानार्थीको पुस्तक सदैव साथ रखनी चाहिए । समय मिलते ही उससे ज्ञान प्राप्त करनेकी लगन रहे । कल्याणार्थीको पग-पगपर ज्ञान बढानेकी बात मिल रही है । वह उस रसको पीकर सतुष्ट है ।

यथार्थ ज्ञान तो कर लो फिर जो चाहे करना—किसीके एक दामाद थे । वह बिना पढे लिखे थे । एक समय ससुरालमे गये । वहा सभी इन्हे आदर करते तथा इनका चित्त बहलावा करते थे । दामाद साहबके पिता जी कुछ समयसे बीमार हो गये थे । सबको पता चल गया था । ससुरालमे पिताकी अर्थात् इनकी पत्नीके ससुरकी चिट्ठी आई । उसमे लिखा था, अब तबियत अच्छी हो रही है, चिन्ता करनेकी जरूरत नही । सभीके सामने पत्र गया, औरतें नही पढ सकी, तब कहा लाला जी साहब (दामाद) से पत्र पढा लाओ । उन्हे दिया गया, तो वह पढे न होनेसे पश्चात्ताप कर पत्रको हाथमे लेकर रोने लगे । तब किसी स्त्रीने सबके बीच कह दिया, बेचारेके पिता मर गये । क्योकि बीमार तो थे ही, अब क्या था सब मे रोना-धोना शुरू हो गया । तब वहाँसे एक आदमी निकला, वह बोला क्यो रो रहे हो ? तब उन्होने कहा इनके पिता मर गये, इससे सब रो रहे हैं, क्योकि पत्र आया है । तब मुसा-फिरने कहा—देखें चिट्ठी । चिट्ठी पढकर कहता है—अरे बेवकूफो, तुम्हे तो खुश होना चाहिए । इसमे तो यह लिखा है कि पिताजी बीमारीसे अच्छे हो रहे हैं । तब सभी इस अज्ञानपूर्ण कार्य पर पछताये । इसी तरह पहले पदार्थके स्वरूपको तो जान लो, फिर रोओ, हसो, कुछ भी करो । इसके बिना प्रमादपूर्ण घूमना लाभदायक नही है । प्रत्येक पदार्थ अपने स्वरूपमे परिणम

रहे है, यह दृष्टिमे जच जावे ।

स्याद्वादका अवलम्बन लेकर विज्ञान प्राप्त करो—सत् और सत्ता जुदी-जुदी वाच्यता वाली होते हुए भी एक द्रव्यमे ही पाये जाते है। सत् और सत्ता लक्षण भेदकी अपेक्षा भिन्न-भिन्न है । वह दोनो अन्य तो है, किन्तु पृथक्-पृथक् नही है । किसीने हठ किया, हम तो सत्के अभावको सत्ता मान लेंगे तथा सत्ताके अभावको सत् मान लेंगे । इस तरह माननेमे क्या दोष है ? क्योकि हमारा अभाव तुममे है और तुम्हारा अभाव हममे है । आप और हम अलग-अलग होते हुए सद्भाव जुदा-जुदा है । इसी तरह माननेपर सत् और सत्ता दो वस्तुएँ हो जावेगी । जैसे चेतन द्रव्यका अभाव अचेतन तथा अचेतन द्रव्यका अभाव चेतन है । इस तरह अनेकता आ जावेगी । एक शब्दके कई अर्थ होते है । एकका मतलब समान होता है । जैसे कहे यह तो तुम्हारी बिरादरी वाले ही है, सब एक ही है । यह समानताका अर्थ हुआ । दूसरा अर्थ एकका सख्या भी है । जैसे एक मनुष्य, एक मुनि, एक प्रधान मत्री आदि । तीसरा अर्थ अनुपम भी है । जैसे यह अपने नियमके एक ही है या अपनी शानके एक बेजोड ही है । अमुकका उपदेश लासानी है । दूसरे मत वालोने माना है, ब्रह्म एक है, क्योकि सभीमे आत्मद्रव्यकी अपेक्षा समानता पाई जाती है । उसे तो वे भूल गये और सख्यारूपमे एक मान लिया । जैन भी कहते है कि ब्रह्म एक है, अर्थात् आत्मद्रव्य सभीका स्वतन्त्र स्वतन्त्र है, किन्तु है समान स्वरूप वाला । उनकी दृष्टिमे ब्रह्म अद्वैत है तथा जैनोने स्वतन्त्रताकी अपेक्षा जुदा-जुदा माना है । यहाँ दोनोका कहना सही है । उनकी दृष्टिमे भी ब्रह्म एक ही है । अब रहा दृष्टि भेद, जिससे भेद आ गया । तब दोनोमे खटपटकी नौबत आई । जैन सिद्धान्त मानता है कि आत्मा सर्वव्यापक है तथा वह कहते है कि ब्रह्म सर्वव्यापक हैं । यहाँ हमारी दो दृष्टियाँ है—(१) ब्रह्मका ज्ञान एक आत्मस्थ होकर भी सबको जानता है । (२) लोकाकाशका एक भी प्रदेश बताओ जहाँ जीव न हो । यह लोक ३४३ राजू लम्बा चौडा है, उसमे ऐसा कोई भी एक स्थान नही है जहा जीवद्रव्य नही पाया जाता हो । तब सर्वत्र जीव है सो व्यापक कहा जा सकता है । वर्तमानमे वैज्ञानिकोने जितनी दुनिया बताई है यह लोक उससे असख्यात गुणा है । कुछ लोगोका कहना है ब्रह्म एक है, वह सब जगह व्यापक है । तब यही तो मानना पडेगा कि यह जीव शरीर जहाँ जायगा वहा ब्रह्मका सम्बन्ध मानना ही पडेगा । मन अचेतन है किन्तु ब्रह्मके चेतनसे चेतनता आ गई । सत् सत्ताको यदि जुदा सर्वथा मानो तो यहा अनेकता आ गई । पुस्तकका अभाव घडीमे है, घडीका अभाव पुस्तकमे है, यह दो वस्तु हो गई । द्रव्यका अभाव नही किया जा सकता । जब एक वस्तुका किसी अपेक्षासे अभाव कहोगे तो दूसरेका सद्भाव होगा ही । 'द्रव्यस्य अभावः गुणः, गुणस्याभावः द्रव्यम्' । द्रव्यका अभाव कहना या होना गुणका सद्भाव कहना या होना है तथा गुणका अभाव द्रव्य

का होना है। इसी तरह सत् और सत्ता दो चीजें है, आपत्ति आ गई, अगर सत्मे सत्ताको जुदी मान ली जाय तो यह दोप आ जायगा। कुछ लोग 'है' पना भी भिन्न मानते हैं। यदि उनसे पूछो तो कभी सत् व सत्ता जुदे भी रहे या रहेगे तो कहते हैं इनका समवाय शुरूसे चल रहा है। स्वरूपभेदकी भिन्नता दिमागमे ज्यादा जम गई। अपने शुद्ध वितर्क स्वरूपभेद की भिन्नता नयसे मानते है।

निष्पक्ष होकर एक बार भी तो वस्तुस्वरूपका परिचय पा लो—देखो तो कुछ मोही जन सिद्धान्तमे एक द्रव्यकी अनेकता माननेको तैयार हो जाते है तो कुछ मोही अनेकको एक बनाये फिरते है। यह व्यवहार अपने अनेक विराट रूप दिखा रहा है। व्यवहारकी बातोमे तो अनेकताकी चर्चा कठिनाईसे हृदयमे स्थान पाती है। जब सिद्धान्तमे तथा स्वरूपमे भेद डालकर यह बात लाते हैं तब व्यवहारमे मोह ममता करके एकत्व ही स्थापित करते है। पर्याय व द्रव्यमे हम और आप सभी एक नही हैं। लौकिक व्यवहार तकका भी विश्वास नही है, क्योकि आपसमे उन्हे एक दूसरेकी बोल-चाल, रहन-सहन नही सुहाया तो अलग-अलग हो जाते हैं। सब रागद्वेषके कार्य चल रहे हैं, इनमे विश्वास क्या ? इनकी दोस्ती निभती ही रहेगी यह कौन कह सकता है ? आपसमे कषाय पुष्ट हुई तो मित्र बन गये। कपाय नही मिली तो वही राग मन-मुटावमे बदलकर शत्रुताका रूप धारण कर लेता है। जिनके कषाय की पकड नही है तो हजारो मुनि एक साथ इकट्ठे रहते थे। सिखर सम्मेदजीसे करोडो मुनि मोक्ष पधारे है तो उनके सघ भी तो भिन्न-भिन्न समयपर विराजते होगे। आपसमे धर्मचर्चा होती होगी, शिक्षा लेते होगे। जिन्हे कषायकी पकड है उनको जीवनभर क्या एक दिनको भी निभना मुश्किल हो जाता है। कषायकी ग्रस्ततामे कभी-कभी क्षणभरके लिए एक दूसरेका आचार-विचार, रहन-सहन नही सुहाता है तथा मन ही मन घृणा एव नफरत करने लगते है तथा उसे पेटमे नही रख पाते तो उस विपका बीज बाहर वमन करने लगते है। जो रागी है वह मित्रताकी पकड करते हैं। ज्ञानी जीव सबको अन्य-अन्य गिनते है। ज्ञानियोकी भक्ति तथा मोहियोकी भक्तिमे बडा अन्तर है। बहुत तेज भक्ति मोहीकी मिलेगी। वह भक्तिमे पसीना बहा देगा, चिल्लावेगा तथा दूसरोको अपनी ओर आकर्षित करनेके लिए अनेक तरहके हाव-भाव बनावेगा। ज्ञानीकी भक्ति समताकी गलीमे से चलती है। वह गम्भीरता मिली हुई होती है। समता रसका पान करते है। उनकी भक्ति जमीन आकाशको एक न करके स्वय मे शान्ति पानेके लिये है। अज्ञानी लोग विसवाद कलह करेंगे, तडक-भडक दिखावेंगे, ममता बतावेंगे, अगोपाङ्ग चलावेंगे।

ज्ञानी अपने स्वरूपमे सावधान रहता है—ज्ञानी सहज स्वभावका आनन्दका भोक्ता है। भक्तिसे भी ऊची बात निज स्वरूपावलोकनमे मिलती है। यहाँ तो निज प्रभुके स्वरूपका

आनन्द समाया हुआ है। दो लडके एक साथ पढते है। उनमे एक होशियार है तथा दूसरा पढनेमे मन्द है। उन दोनोको एक सवाल मास्टरने करनेको दिया। मन्दगति वाला तो डरते-डरते करता है तथा होशियार चटसे कर देता है। दोनो सवाल करके मास्टरके पास ले जाते है। मास्टर होशियारके उत्तरको सहीक विश्वास करके दोनोका सवाल मिलानेको कह देता है। मिलाते समय मन्दगति वाले छात्रका सवाल मिलता जाता है। वह अपने ही अन्दर बडा खुश होता जाता है। जब पूर्ण सही उतर निकल आता है तो उसकी खुशीकी सीमा नही रहती। यह प्रभु जिसमे किसी तरहका दोप नहीं है जब उपयोगमे आ जाता है तब यह अपने विकल्पोको हटाता हुआ निर्मल भाव बनानेका प्रयत्न करता है। इस समय हम अपना सवाल उस परमात्म प्रभुके स्वरूपसे मिला रहे है। ज्यो-ज्यो हमारा स्वरूप मिलता जाता है, तब उसका आनद एक विलक्षण जातिका होता है; किन्तु मोहीका आनद किस तरहका होता है? वह कहता है कि पहलेसे हमारे यहाँ यह कार्य चलता आया है, उसे करना चाहिए। वह पितरोको तर्पण न करे, फिर भी उनमे देवत्व मानकर उनका दिन मनावेगा, दुखी होगा। वह कहेगा कि पुरखे ऐसा करते थे। उसकी दृष्टि सदैव बाहरपर ही जाती है। मोही मोहमें बडे-बडे कठिन काम कर डालते है। समझदार आदमी समझते है, यह बडा दृढ़ लगनसे कार्य करने वाला है, किन्तु उसके निजमे कुछ भी बात नही जगती। ज्ञानी जीव अपनेमे ही बैठता है। दुनियाकी झझटोको तिलाञ्जलि देता है। ज्ञानी मन ही मन निर्णय करता है, हमारा काम ठीक हुआ या नही? अच्छा हुआ ये मालूम होनेपर सोचता है, हमारा कार्य ठीक चल रहा है।

आत्माकी बात इतनी सुगम है कि वह स्वयं देखी जा सकती है—आत्मा आत्माके द्वारा आत्मासे ही कुछ पा सकता है। मिलान करके कुछ पाना है तो अरहत सिद्ध परमेष्ठीके गुणोसे अपनी तुलना करनी चाहिए। कोई चाहे कि अपने गुणोका मिलान आकाशसे कर लूं तो वह वहाँ नही मिलेंगे। परको अपना मानना, अहकार करना दुःखका कारण है। अहकार शब्दके पर्यायवाची शब्द और भी है। समथ, घमड, अभिमान करना, मान करना तथा अपनी नाक रखना। जब तक यह बातें रहती है तब तक हितबुद्धि कुछ भी नही दिखेगी। दीक्षार्थी यह सोचे कि मैं सबसे कोई अनोखा थोडे ही हू जिसपर गर्व करूँ? गर्व याने नाकपर ही से परमात्मा नजर नही आता। एक नकटा था अर्थात् उसकी नाक कटी थी। उसे कई मनुष्य चिढावें। तब उसने औरोको भी नकटा बनानेका चक्र रचा। अतएव चिढाने वालोंसे कहने लगा कि तुम क्या समझो नाक कटे रहस्यको? तुम्हारी जो नाक है उसकी नोककी आड़में शकर भगवान छिपे हुए है, वह नही दिखते है। मेरी नाक कटी होनेसे मुझे साक्षात् शकर भगवान दिखते हैं। तब उस चिढाने वालेने नाक कटवा ली। तब वह बोला भगवानके दर्शन

तो होते ही नही । तब वह पहला नाक कटा व्यक्ति बोला—तुम तो बेवकूफ हो, जो कहते हो कि भगवान नही दिखते । तुम तो सबसे कहना कि हमे तो भगवान साक्षात् दिखते है, नकटे तो हो ही गये । तब दूसरोंने उसे भी चिडाना शुरू किया तो वह भी बोला कि तुम इस नाक कटेके स्वादको क्या समझो ? तुम्हे भगवान नही दिखते नाककी ओटमे । हमे साक्षात् भगवान दिखते है । तब नाक उसने भी कटवा ली और पहलेने उससे भी कहा कि तुम सबसे कहना कि हमे साक्षात् भगवान दिखते है । इस तरह एक दूसरोसे कह-कहकर सभीने नाक कटवा ली । अब केवल एक मुखिया बच रहा । एक दिन सभीकी सभा भरी थी । सबकी नाक कटी देखकर मुखियाने इसका कारण पूछा । तो सब बोले कि नाकके कट जानेसे हमे भगवानके साक्षात दर्शन होते है । तब मुखिया जी भी नाक कटानेको तैयार हो गये । इतनेमे शुरूके मूल नकटेके मनमे दया आई । उसने सोचा कि सब तो मेरे पीछे मूर्ख बन गये, इसे तो बचने दू । इसलिए उसने मुखियाको एकान्तमे बुलाकर कहा कि यह तो सब हमारी सृष्टि है । भगवान वगैरा कुछ नही दिखते, मनुष्य मुझे चिढाते थे, इसलिए ऐसा किया गया । जो अपनी नाक रखनेका घमड करते थे उसका मजा उन्होंने चखा है । इसी तरह अहकार जो करते हैं उन्हे इसी तरहकी सूरतपनेको इस लोकमे विपदायें उठानी पडती हैं तथा परलोक भी बिगडता है । अमूर्त आत्मा है, इसकी तरगें चल रही हैं । बाहरसे समझते सुन्दर लग रहे है । भीतर भी तो जरा देखो तो सबके भद्द खुल जावेगी, हाड-मासके ऊपर चमडीका वेष्टन चढा है । आनन्दका घात बाहरके पदार्थका अभाव नही कर रहा है और न सयोगका ही दु ख है । दुःख तो विकल्पोका है । सत् समझमे आनेपर विकल्पजाल बिखर जाते हैं ।

धर्म और धर्मी जुदी-जुदी चीज नहीं है—सुवर्णका अभाव सुवर्णत्व नही है और न सुवर्णत्वका अभाव सुवर्ण है । अगर इस तरह मानोगे तो सुवर्णत्व व सुवर्ण—इन दोनोका अभाव हो जायगा । अगर सत् नही है तो सत्ता क्या तथा सत्ता नही है तो सत् क्या रहेगा ? दोनोका अभाव हो जायगा, उभय शून्यत्व आ जायगा । जैसे इन्सानियतका अभाव इन्सान नही है । इन्सानियतके आधारके बिना इन्सान कहाँ रह सकता है तथा इन्सानसे रहित इन्सानियत नही है । अगर यह मानोगे तो दोनोका अभाव हो जायगा, उभय शून्यता आ जावेगी । द्रव्यके अभावका नाम गुण तथा गुणके अभावका नाम द्रव्य मानना चाहते हैं यह उन्मत्त वचन है । घडीमे क्या सभी पदार्थोंका अभाव है ? कहे घडी लाओ, घडी अतिरिक्त सबका अभाव लाओ, तब वह क्या लायगा ? शायद पुस्तक ले आवे । सत् और सत्ता दुनियामे दो पृथक् ही है । उनका परस्परमे अभाव हो, ऐसा माननेपर सत्का अभाव है तो सत्ता निराधार हो जायेगी तथा सत्ता न मानें और सत् मानें अर्थात् सत्ताका अभाव सत् मानें और सत्का अभाव सत्ता मानें तो उभयशून्यता दोनोमे आ जावेगी । पहला दोष आया था अनेकपना । अनेक-

पना भले हो जाओ, किन्तु कोई स्वरूपसे नष्ट तो नही हुआ । तुम कहते हो कि अनेक हो जाओ, किन्तु वहा तो कोई एक ही नही है । जैसे यह मानो कि घडीका अभाव पुस्तक तथा पुस्तकका अभाव घडी । ऐसा कहनेपर पुस्तकका जो अभाव है वही घड़ी मानना पड़ेगा । वस्तुभूत मनमे न लाओ तो ऐसा होनेपर तुच्छाभाव हो जायगा ।

वस्तु स्वद्रव्य, क्षेत्र, काल, भावात्मक है—अब प्रकृत विषयका अर्थ लेते है । पटका अभाव मात्रको घडी माननेपर कही भी घडीका सद्भाव हो जाना चाहिए अर्थात् घडी पटको त्यागकर रहती है तथा पट खडीको त्यागकर रहता है । ऐसा माना जावे तो क्या दोष उत्पन्न हो जायगा ? यह बता रहे है । सत्‌के बिना सत्ता रह जावे तथा सत्ताके बिना सत् रह जावे तो अपोहत्व आ जायगा तथा नकारपना आ जायगा । पटके अभावमात्रसे क्या समयका पना चल जायेगा कि इस समय इतने बजे है ? इसका तो सकेत घडीसे मिलेगा, अपोहसे नही । तुम सद्भाव बिल्कुल नही मानते तो वहाँ सब अभावोंके लडनेसे शून्यत्व हो गया तथा यहाँ अपोह हो जावेगा । सुगतोंमे अपोह चलता है । उन्होने कहा कि घडी दिख रही है तो यह कुछ नही । अन्य सबके अभावका नाम घडी है । वह तो क्षणिक है, इसलिए उनमे ध्रुवता आनी ही नही चाहिए, क्योकि 'न रहेगा बांस न बजेगी बासुरी ।' नील रंगकी व्याप्ति, उसे छोड़कर सब रगोका न रहना ही व्याप्ति है या वही अपोह नीला रगका होना है, किन्तु ऐसा है नही । संव्यवहार प्रत्यक्षमे मालूम भी पडता है कि यह एक नीला द्रव्य है । उसमें भी प्रदेशभेद होते है । सुगत कहते है कि घडी तो कोई चीज नही है । घडी छोडकर सबका अभाव ऐसा कह दिया वही घडीका वाच्य है अर्थात् घडीका सद्भाव ही नही है वह तो अन्यापोह रूप है । जैसे एक घरमे दो लडके हो, उनमे एकपर अधिक स्नेह किया । इसलिए उसे कोई खानेकी वस्तु दे दी तथा दूसरेको नही दी । यह देखकर जिसे खाद्य वस्तु न मिली वह क्रुद्ध होकर भाईकी चीज छुडानेको जाता है । पहला चीज पाने वाला देना नही चाहता, इससे लडाई होती है । तब दोनोमे से पहला खाद्य वस्तुको तोड-मरोडकर मसल-कुचलकर फेंक देता है । तब वह किसीके खानेको नही रहती । इसी तरह सुगतोका सिद्धान्त है । उनके सिद्धान्तसे कुछ चीज है ही नही, तब मोह किसपर करोगे ? यही तोड-मरोडकर सुगतोंने बताया है । जो निर्विकल्प शुद्ध स्वरूप है वह द्रव्यस्वरूपको निरपेक्ष मानकर चलते हैं । यहाँ तो कुछ है ही नहीं । हाँ की तरह तो तब होवे जब कुछ जचे । दुनियाकी दृष्टिमे अपोह रूप तो कुछ जचता भी नही है । दुनियामे तो विकलपत्व जचे तब कुछ है । इनको तो 'न' अर्थात् जो कहते हो वह कुछ भी नही है, फिर भी हठात् इस तरहसे बना डालो तो क्या सुगत (अच्छी गति वाले) बन जावेंगे ? यह सब प्रतिभास मात्र है और कुछ नही है । अचेतनको तो इस तरह मिटा दिया, अब तो चेतन द्रव्य सीधा-साधा रह गया । वह भी एक कोई नही है, रागद्वेषादि मिटा

दिये। सीधा-साधा यह निर्विकल्प है।

जिसकी समझमें जो आया उसीमे वह संलग्न है—सभी मिटा दो तब किससे राग द्वेष करोगे ? इसी तरह सत् और सत्तामे मान लो तब कुछ चीज ही 'न' रहे, न 'न' का नाम सत् है। इस सिद्धान्तमे वस्तुत्व नही। अपने भी तो न करके सत्पर पहुचते हैं, किन्तु वस्तुपर नो पहुचते हैं। तुम विधि मत कहो केवल नेति-नेति-नेतिपर डटे रहो, क्योकि अगर कहो ज्ञान वाला आत्मा है। तो ज्ञान जुदा रहा तथा आत्मा जुदा और वाला (सहित) जुदा रहा। फिर कहो ज्ञानमय आत्मा है। तो इसे भी कोई बिना भेद देखे नही बोल सकता। तुम ज्ञानमय आत्मा जिसे कहना चाहते हो वह भेदरूप है नही, इसलिए ज्ञानमय आत्मा भी नही है। तब फिर कहो ऐसा भी नही, और ऐसा भी नही, यह भी नही। तब तुम्हे यही कहना होगा नेति नेति। नेति करके जो दृष्ट हो जाय वह आत्मा है। कैसा है आत्मस्वभाव ? परपदार्थोंसे जुदा है। परपदार्थोंके निमित्तोसे होने वाले जो भाव हैं उनसे भी जुदा है, इतनेपर भी नही समझे। जो मति श्रुत ज्ञान हो रहे है, उनसे भी जुदा है। यह कैसे ? खण्डरूप आत्मा हो तो समझे आत्मा खण्डरूप नही। पूर्ण जाने तो आत्मा है। जैसे केवलज्ञान आत्मा है, ज्ञानपूर्ण आत्मा है। नही, आत्माका तो आदि, मध्य, अन्त नही है। तब केवल ज्ञानकी तो आदि है, मध्य भी है। आत्माकी जितनी शुद्ध अशुद्ध परिणतियाँ हैं उनपर दृष्टि न देकर आत्मा एक है। अभी भी यह समझमे नही आया। तब फिर कहते है कि आत्मा एक है, जब तक सोचोगे तब तक आत्मा जाना नही जा सकता। फिरसे भेद मिल जायगा, वह आत्मा ही क्या रहेगा ? आत्मा तो प्रतिषेधगम्य है। नेति नेति है तो सुगतोने ऐसी प्रभेदता बढाई कि वह अन्यापोह रूप है, कुछ ही नही है। अगर ऐसा कहोगे तो अपोहत्व, शून्यता आ जायगी। ये दोष आ गये इसमे। यह सही है क्या ? यह दोष नही रहना चाहिए।

गुण गुणीमें व गुण गुणीमें अतद्भाव है प्रदेशभेद नहीं—अगर द्रव्यमे अनपोहत्व, अशून्यत्व तथा एकत्व आ जावे, ऐसा चाहो तो तुम्हे अतद्भाव रूप ही अभाव मानना चाहिए। जैसा पूर्व गाथामे कह आये वैसा मानना चाहिये, वह अतद्भाव ही (वह यह नही है) शरण है। तीर्थप्रवृत्तिके लिये सत्का लक्षण जो है वह सत्ताका नही है तथा सत्ताका जो लक्षण है वह सत्का नही है। घडीमे पुस्तकका अगर थोडा भी सद्भाव हो जावे तो आपसमे दोनो लडेंगे और लडते-लडते दोनो मर मिटेंगे। तब फिर रहेगा ही क्या ? इसलिए द्रव्यमे एक दूसरे द्रव्यका सद्भाव न हो जाय, यह जरूरी है। इसलिए द्रव्य और गुणको इसी तरह जैनाचार्यों की अमृतमयी चिरजीवी अमर वाणीको ही सही मानना चाहिए। लेकिन ऐसा कहनेपर गुण गुणीमे, धर्म धर्मीमे, अंश अशीमे तथा सत् सत्तामे एकत्व नही हो गया। अगर मित्रता सीमा के बाहर हो जाय तो नुकसान है तथा लडाई भी सीमाके बाहर हो जावे तो हानिकारक है।

यह दोनो सीमा उल्लघन करनेपर नियमसे टूटेंगी। किसी दूसरे द्रव्यका एक दूसरेमे सद्भाव आ जाय, ऐसा नही है। इसलिए द्रव्य गुणमे ऐसा ही भेद व अभेद मानना चाहिए याने प्रदेश से एक है, स्वरूपभेदसे भेद है। जब सत् स्वरूपका ज्ञान हो गया, मै इतना ही हूं, तब दूसरेके बारेमे विकल्प करके दु खी होना बुद्धिमत्ता नही। यह विकल्प सर्वथा त्याज्य होना चाहिए।

यहाँ पूज्य श्रीमद् अमृतचदजी सूरिने यह स्पष्ट किया है कि एक द्रव्यमे (पदार्थमे) जो द्रव्य है वह गुण नही है, जो गुण है वह द्रव्य नही है ऐसा जो द्रव्यका गुणरूपसे न होना है और गुणका उस द्रव्यरूपसे न होना है वह अतद्भाव है। इतने मात्रसे ही उनमे अन्यपनेका व्यवहार सिद्धि है, किन्तु ऐसा अतद्भाव न सोच लेना कि द्रव्यका अभाव तो गुण है और गुण का अभाव द्रव्य है, क्योकि ऐसी दोदापट्टी वाला अतद्भाव मान डालनेपर एक द्रव्यके अनेकपना आ जावेगा व उभयशून्यता आ जावेगी, अपोहरूपता आ जावेगी। इसका तात्पर्य यह है कि जैसे चेतन अचेतन पदार्थोमे अनेकता है न कि चेतन द्रव्यका अभाव अचेतन व अचेतन द्रव्यका अभाव चेतन बन जाता, इस तरह यदि यह कहोगे कि द्रव्यका अभाव गुण है, गुणका अभाव द्रव्य है तो उस द्रव्यमे अनेकता आ जावेगी, स्वतत्र-स्वतत्र कई बाते हो गईं। उभयशून्यता कैसे आवेगी, सो सुनो—जैसे सुवर्णके अभावमे सुवर्णत्वका अभाव व सुवर्णत्वमे सुवर्ण का अभाव, इस तरह न सुवर्ण ही रहा, न सुवर्णत्व ही रहा, दोनोका अभाव हो गया, इसी प्रकार द्रव्यके अभावमे गुणका अभाव व गुणके अभावमे द्रव्यका अभाव; इस तरह तो न द्रव्य ही रहा, न गुण ही रहा, दोनोका अभाव होना था। अब अपोहरूपताके प्रसगकी बात सुनो—जैसे घटका अभावमात्र पट है और पटका अभावमात्र घट है, इस तरह तो अपोहरूपता हुई, चीज कुछ न मिली, इसी प्रकार द्रव्यका अभावमात्र गुण है और गुणका अभावमात्र द्रव्य है। इस तरह तो अपोहरूपता हुई, वस्तु कही भी कुछ न विदित हुई। इसलिए भैया! यदि निर्दोष तत्त्व देखना है तो जैसा अतद्भावका लक्षण कहा गया है वही मानो।

ज्ञानीका आहार ज्ञानोपयोग है—तत्त्वज्ञानका भोजन तत्त्वरससे भरा हुआ है। उसे बाहरी भोजन कुछ भी नही रुचता। तत्त्वज्ञानीका सम्बध ऐसा है कि वह तत्त्वज्ञान और वैराग्यके अर्थ उत्साह पानेका निमित्त है। ज्ञानीके यह विचार है जिनके निमित्तसे अपना घात और सक्लेश होता हो तो उनसे क्या प्रयोजन पडा? उसे तो सत्का ज्ञान हो गया तो उसकी निजात्माका घात करने वाला कौन है? वह तो अपना ही उपयोग बनाकर अपनेमे ही मग्न है। यह शुद्ध उपयोग जन्म-जन्मके पाप काट देता है। इस जीवके साथ पापकर्म सख्यात असख्यात भवके चिपटे हुए है। उन सबको नाश करनेकी जीवमे ऐसी योग्यता है कि उनका कुछ सेकेण्डोमे समूल विनाश कर देवे। अन्तर्मुहूर्त इतने बडे नही है कि ४८ मिनट ही लगे। अल्प सेकेण्ड या सेकेण्डोका अन्तर्मुहूर्त है। जैसे होलीके लिए ईंधन (लकडी, कडे) १५ दिन

या माह भरसे पहले इकट्ठा करते है तथा उसमे अग्निकी चिनगारी लगाई तो एक रातमे जल जाता है सब ईंधन। कर्मोके जलनेमे इतनी भी देर नही है। वहाँ तो सेकेण्डो या और भी कमका काम है, लेकिन करे क्या ? यह पर्यायबुद्धि न छोडे तो विवश है। निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध चल रहा है, उसमे आसक्त होनेकी जरूरत नही है। निमित्त अपने आधीन परिणम रहा है। मै ही उसे अपना मान लू, यह बुद्धिका दिवाला निकल जानेके समान है। गीली धोती है, उसके धरतीमे गिर जानेसे धूल लग जाती है तथा सूखनेपर थोडी-थोडी हवाकी लपटोसे वह थोडी झर जाती है। बादमे उस धोतीको एक ताकत भरके फटकार दिया तो सब धूल झर जाती है। उसी तरह विषय कषायोका पूर्णतया शमन होकर आत्मध्यान अग्नि के द्वारा कर्मरूपी ईंधन शीघ्र कुछ सेकेण्डोमे जल जाता है। केवली भगवान क्या करते है ? चार अघातिया कर्म बाकी रह गये उसके लिए आयु बराबर सब कर्मोकी स्थिति करनेके लिए दडाकार, कपाटाकार तथा प्रतराकार लोकपूरण एव पुनः प्रतर कपाटाकार और दडाकाररूप समुद्घात किये। इस समुद्घातके झटकासे सम्पूर्ण कर्म झर जाते हैं। इसी तरह ससारकी असारता जानकर आत्मामे एकाग्र होकर कर्म-कालिमाको झरा सकता है।

ज्ञानी कर्म झरानेके लिये आडम्बर इकट्ठे करनेकी जरूरत नही है—भगवान्की शान्तिमुद्रा बार-बार अवलोकन कर जरा अपनेसे तो मिलान कर। मैं कितने धरातलपर हूं। वह शान्ति छवि मैं भी तो पानेका अधिकारी हू। उनका अवलोकन तथा वही स्थिति अपनेमें पैदा की तो उन जैसा बननेमे देर नही है। स्वभाव दृष्टिका यह विलक्षण गुण है। स्वभाव गुण परखनेपर फिर क्या आपत्ति हमारे सामने रह जाती है ? ससार-समुद्र हमारे द्वारा ही बढा है। उसे हटानेकी शक्ति भी हममे है। जीवनके अमूल्य क्षण व्यर्थमे खोने वाले को यह मिलना असभव है। पदार्थोंका स्वरूप न जाननेसे परमे नाटक रच रहे हैं। निज स्वरूपकी लगन वाला यह कारण पानेको व्याकुल है। वह अपना निमित्त जुटाता-जुटाता अन्तमे स्वय सिद्ध स्वरूप हो सकता है। कोई कहे जिनेन्द्रचन्द्र जिसका नाम है वही जिनेन्द्र-चन्द्र है। इससे क्या कुछ समझे, नही। यह अतद्भाव होगा तो काम नही चलेगा। प्रदेश-भेद नही है। सत् और सत्तामे यह तो ठीक है किन्तु असद्भावकी क्या आवश्यकता है ? यह अतद्भाव तीर्थप्रवृत्तिके लिए है जिससे समझनेमे सहायता मिले। सत्ता वह है जिससे सत् पहिचाना जावे। इसलिए समझनेको अतद्भाव आवश्यक हुआ। प्रदेशभेद नही है, किन्तु स्वरूपभेद है। इस तरह सर्वथा अभावरूप सत्ताका खण्डन करके अब गुण-गुणीको सिद्ध करते है। पदार्थमे गुण-गुणीभाव स्वय सिद्ध नही था क्या ? क्या वह स्वय नही साध सकते थे ? जिसको कहते हो गुण-गुणीको सिद्ध करते है। जो जाना जा रहा है वह दूसरोको भी समझ मे आ सके, इस उद्देश्यसे सत्ता और द्रव्यमे गुण-गुणीभावको साधना की गई है, इसे अब

सिद्ध करते है।

जो खलु दव्वसहावो परिणामो सो गुणो सदवसिट्ठो ।
सदवट्ठिय सहावे दव्वत्ति जिणोवदेसोय ॥१०६॥

द्रव्यका स्वभाव ही परिणमन करना है—जो द्रव्यस्वभाव है वह परिणाम है और वह परिणाम सदवशिष्ट (सत्मे अवशिष्ट याने सत्त्वसे पृथक् नही) गुण ही तो है। स्वभावमे अवस्थित सत् ही तो द्रव्य है ऐसा यह जिनेन्द्रदेवका उपदेश है। 'यः खलु द्रव्यस्वभाव' जो द्रव्यका स्वभाव है वह परिणाम है। जो उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यमे सहित है वह परिणाम है। अगर ऐसा नही है तो परिणमन कैसे कह सकते हो? क्योकि वह द्रव्यस्वभाव तो अकेला ध्रौव्य याने अपरिवासो है उसे परिणाम बोलते ही नही। वह उत्पाद भी नही है, क्योकि परिणमनका अर्थ ही यह है जो परिणमन हो। समाधान—द्रव्यस्वभाव उत्पादव्यय-ध्रौव्यात्मक है। यह परिणाम शब्दसे प्रकट हो जाता है। परिणमन करे वहाँ तीनो बात स्वय सिद्ध हो जाती हैं। अत. जहाँ उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य हो वह परिणाम है। परिणमन शब्दसे नही बोला जा सकता है क्या? परिणमन शब्दमे परिणाम शब्दका मर्म विशेष है। परिणमन करके उत्पाद व्ययकी सन्तान मानी है, जिन्होने उनके परिणमनसे परिणमनका अर्थ भी ध्रौव्य माना है।

परिणमनके लिए एक दृष्टान्त ले लें। एक आत्मा बडे विकल्प-जालमें चल रहा है, यकायक अपने ही बलपर उसे निरपेक्ष स्वभावकी खबर पड जाय तो चिदानन्द स्वरूपका अनुभव होने लगता है तथा जितने विकल्प-जाल थे उन सबका व्यय हो जाता है। इन दोनो अवस्थाओमे रहने वाला एक जीव है। जब विभाव व्ययका सस्कार बन जाता है तब बिना बाह्य निमित्तके यकायक निरपेक्ष स्वभावकी ओर मुड जाता है। जैसे कोई बैल खूब घास, बाट आदि खा लेनेसे सतुष्ट हो जाता है तथा ठडा पानी पीकर एक जगह बैठता है, वह उस समय जुगाली (येथना) करता है, उस समय उसके विकल्प-जाल (खानेकी चिन्ता) नही रहते हैं। उसकी मुद्रा देखकर जान जाते हैं शान्त भाव मस्त बैठा है। कदाचित् उसे निजकी खबर पड जाये तो वहाँ भी वह ज्ञानभावका उत्पाद, अज्ञानभावका विनाश करता है। ध्रौव्यमें उसकी एकता है ही। इसी तरह ज्ञानी जीवका पूर्व भवका भी सस्कार हो सकता है। जिस का पूर्वभवका सस्कार चल रहा है वह उससे प्रेरित होकर जुगाली करते करते बैल भी चेतन स्वभावमे जाता है, वहाँ वह अपनी अनन्त शक्तिका अनुभव करता है। उन सस्कारोकी वजह से ही वह निज समताका आराधन करता है। वह बाहरी पदार्थोंको अप्रयोजनभूत समझकर निज अमृत रसपानमे तन्मय हो जाता है। तत्त्व समझनेपर अन्तःदृष्टि खुलनेपर आत्मामें प्रकाश हो जाता है तब निराकुलता हो जाती है। नकुल, वानर, रीछ, बैल आदि चार पैर वाले

पशुओंकी भी यह अवस्था हो सकती है तब उत्तम कुलमे जन्म लेने वाले मनुष्य क्यो नही अपना कल्याण कर सकते है अर्थात् जरूर कर सकते है। उपशम होनेसे पहले निर्मल परिणाम होते है तथा निर्मल परिणामोको निमित्त पाकर कर्मका उपशम होता है। इसीसे औपशमिक सम्यग्दर्शन होता है। सबमे भी यथायोग्य जानना। यह विचित्र बात देखो अपने जो सस्कार चलते है, उनमे पूर्वभवका कारण भी रहता है। यदि यहाँ तत्त्वाभास किया और उसकी सफलता नहीं पाई तो अगर कही अगला भव खोटा भी मिल जाय तो वहाँ भी सफलता पाई जा सकती है। निसर्ग सम्यग्दर्शन जीवोको पूर्वके सस्कारोसे ही होता है। इस ज्ञानाभ्यासकी तत्त्वचर्चामे जो चलता है, कदाचित् वह इस भवमे पूर्ण पारगत नही हो सका या सफल न हो सका तो वह उसे अगले भवमे तो काम आवेगी। इसलिए—

जितना भी ज्ञान कार्य सतत् चालू रहे उतना हितप्रद है—रागद्वेष शुद्ध निश्चयसे आत्माके नही हैं, अशुद्ध निश्चयनयसे आत्माके है। वह दर्पणके समान उपयोगमे झलकते हैं। यदि उन्हे न लावें तो उनका आना सम्भव नही है, क्योकि इनसे शान्ति नही मिलती है और न कल्याणका मार्ग ही हाथ लगता है। ज्ञानी तो विपदाओका स्वागत करता है—

"प्यारी विपदाओ आवो। रति निद्रामे सोये जनको बार-बार जगावो। सपत्तिका छल जान न पायो याने वहुत रुलायो। आशहि आशहि ज्ञान गमायो, आशहि अश ठगायो। प्यारी विपदावो आवो।"

विपदायें आनेसे एकदम मान होता है। ओह! मैं इन दु खोमे पडा हुआ भी आज तक नही सभल रहा हू। इन विपदाओकी अपेक्षा कर्म-कलंक काटनेकी ही विपदायें ही क्यो न झेल लू? भोगभूमिया जीवोपर तथा देवोपर यहाँ जैसी विपदायें नही आती हैं जिससे यह बेवकूफ ही बने रहते है। भोगभूमिमे स्त्री पुरुष साथ-साथ रहते है तथा देवोंके भी हजारो देवाङ्गनायें रहती हैं। उनकी क्षुधा तृषाका हाल तो सुना ही होगा, इससे उनके कोई विपदा पैदा नही होती है। विपदायें उपकारके लिए ही हैं। जिन क्षेत्रोंमे विपदाये नही आती हैं वहाँ के जीव मुक्त नही होते है तथा जहाँ विपदायें आती हैं वहाँ अढाई द्वीपसे मनुष्य मोक्ष जा सकते है। लोक कहते हैं ना कि यह क्षेत्र अकालग्रस्त घोषित कर दिया। हम कहते है जो जो क्षेत्र विपदाग्रस्त घोषित कर दिये उनमे जन्मे मनुष्य मुक्त हो सकते है। यह मनुष्य उन सकटोंसे जूझता हुआ यही सोचता है कि कर्मोको इसी तरहका फल देना था, हमारा काम तो ज्ञाताद्रष्टा रहना है। कर्म व कर्मफल मेरा स्वभाव नही है। अतएव इन कर्मोंको क्यो न निर्मूल कर दिया जाय या शुभरूप बदले जावें, यह विचार हितके मार्गमे प्रवृत्त कराता है। अढाई द्वीपका मनुष्य ही कल्याणमार्गमे लग सकता है। धन कमानेमे भी विपदाये है। परिवारका भरण-पोषण जिसका लक्ष्य रहता है उसके अनेक विकल्प उठते रहते हैं। एक दु ख उठावे तथा

दूसरे उस दुःखका लाभ लेवें, यह इस संसारकी हालत है। यह सब बाह्य व्यवस्था है, जो यही रहती है। लेकिन जिसे केवल अपने शुद्ध स्वरूपास्तित्वकी खबर है वह विपदायें महसूस करना ही नही है। प्रश्न—तो जान-जानकर विपत्ति लाना चाहिये, विपत्तिके कारण पाप है उन्हे भी करना चाहिये ? उत्तर—जिसे विपत्ति मिले उसका भला ही हो, यह नियम नही है। पूर्वकर्मके उदयसे विपत्ति आती हो तो आओ, वह स्वयमेव आती है। इसके विपरीत जो विपदाग्रस्त जीवन स्वय बनावेगा उसके भाव निम्न ही रहेगे। इससे उसकी योग्यता जागृत नही हो सकेगी। वह स्वय कारण है दुःख देनेकी, ऐसेमे जिसका शुभ उदय होगा वह चेत भी सकता है। सम्पत्तियाँ भी आवें तो वह भी तो आपत्तिया हैं। सपत्ति तथा विपत्ति दोनोमें विपत्तिका सामना करना पडता है। भव रहनेके कारण अनेक जोखिमें उठानेसे भय ही रहता है। चोर, डाकुओका भय, रास्तेके सकट, प्रतिस्पर्धासे मुकाबला करनेका भय आदि अनेक कारण रहते है। जो सपत्ति और विपत्ति दोनोमे समान रहता है, उसका ज्ञाताद्रष्टा बना रहता है, उसकी योग्यता आत्मसाधनाके लिए ऊँचे दर्जेकी कहनी चाहिए।

जीवका नाता स्वपरिणामोंसे है—जब रावण बहुरूपिणी विद्या सिद्ध कर रहा था, उस समय अगर रामचन्द्र जी के पक्षके कुछ लोग उपद्रव मचाने नही जाते तो विद्या सिद्ध होनेमे देर हो सकती थी, किन्तु उनके आनेसे वह सभल गया और विद्या जल्दी सिद्ध हो गई या तो विघ्न आनेपर कार्य जल्दी सिद्ध हो जाता है अथवा पूरा कार्य बिगड जाता है। लौकिक अधिकतम उदाहरण उपसर्ग वालोके कार्य सिद्ध हुए ही मिलेंगे। मुनियोपर चौथे कालमे जहाँ भी उपसर्ग हुआ, वहाँ कुछ समय (३-४ दिन या घडी) तक रहा, बादमे केवल ज्ञानलक्ष्मीकी प्राप्ति हुई। देखनेको उपसर्ग मिला और जब केवलज्ञान हुआ तो उपसर्ग नही रहता। आठवें गुणस्थानमे आनेपर उपसर्ग नही रहता। वहाँ ध्यानमे दृढता आ जाती है। एकाग्रताके द्वारा पहले भावमे उपसर्ग न आना, ऐसा अभाव हो जाता है। फिर द्रव्य शरीरमे भी उपसर्ग नही आता। परिणामोका प्रकरण चल रहा था। यह आत्मा चिदानन्दमय शुद्ध ज्ञायकस्वरूप है। द्रव्यका स्वभाव ही परिणमन करना है। वह सत्से अविशिष्ट है, उससे भिन्न नही है। जैसी कोई मित्रता अविशेपता तक रहती है, उसके बाद मिट जाती है। स्वार्थसिद्धिका भाव जहाँ पर आ जाता है वहाँ मित्रता नष्ट हो जाती है। जब तक समानता रही तब तक वह चलती रहती है।

सत् सत् है उसमे अनेक विशेषतायें है—सत्ता गुण है। सत् गुणी है। जो स्वभाव मे स्थित है वह द्रव्य है, उसीका नाम सत् है। द्रव्य इसी तरहका है, यह जिनेन्द्र भगवानका उपदेश है। सत्ता अर्थात् परिणमन, सत्ता कहो या परिणाम ये पर्यायवाची है तो भी इन दोनोंसे अलग-अलग बात आती है। उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यका नाम सत्ता है। परिणाम ही परि-

णमन है। द्रव्यमे रहने वाला स्वभाव परिणाम कहलाता है, यह बना रहता है। द्रव्य स्वभावमे सदा रहने वाला है, स्वभाव द्रव्यमे सदा रहता है। इसलिए द्रव्य स्वभावमे अवस्थित ही है। उस परिणामका नाम स्वभाव है। जो ही द्रव्यका स्वभावभूत परिणाम है वही सत् अविशिष्ट गुण है, सत्से पृथक् न रहने वाला गुण है। उसका परिणामन सदैव होता रहता है। परिणमन होते समय एक बनता है और एक मिटता है तथा मूल द्रव्य ध्रौव्यरूप बना रहता है। यह उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य तीनो परिणामनमे गर्भित हो गये। बदलना ऐसा कोई रूप कहने पर मालूम पडा, किसी रूप था। अब वह इसरूप बन गया। सत्ता, परिणाम, परिणमन कुछ कहो वह द्रव्यका ही स्वभाव हुआ। परिणमन शब्द जहाँ बोला वहाँ तीनो बातें दिमाग मे आजाती हैं। परिणमन कहते ही समझमे आ जाता है। जो द्रव्यका स्वभाव पहले था वही अब है ऐसा द्रव्यका स्वभाव है। सब जीव अपने आप बदलते है। वहाँ कर्तृत्व बुद्धिको अवकाश नही है। कोई अपनेको बदले तथा दूसरेको भी बदल देवे, इस तरह कहना बुद्धिहीनता सिद्ध करना है। सभी केवल अपना ही परिणमन करते हैं। कदाचित् विकल्पके अनुसार परका भी परिणमन हो और यह कहो मैंने बदल दिया तो काकतालीय न्याय मानना पडेगा। कौआ पेडपर से उडा जा रहा था और पुल गिर गया तो क्या कौआने गिरा दिया ? अथवा जिस समय कौआ रास्तेमे जा रहा था उसी समय कोई छोटा फल गिर कर कौवे की चोचमे आ गया। सोचा ऐसा हो जाय तो वह आकस्मिक है। ऐसा भी हो जाय तो भी कोई किसी अन्यको परिणमा नही रहा है। वैसे कौआ आकाशमे भी नही ठहर सकता क्या ? वह फल कौआके मनकी भावना होनेपर ही गिरा है, ऐसा नही है। कोई सोचे मैं जो करूंगा वही होगा। इसके विरुद्ध नही तो कर्तापन हो जायगा। कोई कुछ भी जोडे बनावे उसके पास कुछ स्थायी नही हो जानेका। यह सब होनेपर उनका परिणमन तुममे नही आया और तुम्हारा परिणमन उनमे नही गया। तब मनके विकल्पमात्र करनेके अलावा और कुछ नही है। वैभव पुत्र, स्त्री, महल, गाय, भैंस, घोडे, मोटर कुछ स्थिर नही रहनेके। यह सब चकाचौंधी देने वाला खेल है।

आत्मस्वरूपास्तित्वकी प्रतीति करके थोडी देर परमविश्रामसे रह जाय, यह लाभदायक है। जितना अपनी आत्माके पास रहे उतना जानना चाहिए कि हमने लाभ किया तथा जितने समय बाहरके विकल्पोमे घूमा उतना खर्च किया, समझना चाहिए। अगर कोई नित्य की रोकडमे जमा न करके और खर्च करता जावे तो रोकड जमा खाते शून्य रह जायगा तथा नामका खाता अब भी चालू है तो जितना दूसरोका माल या नकद रोकड ली होगी उतना कर्ज चढ जायगा। इससे भिन्न-भिन्न स्वरूपास्तित्वकी प्रतीति हो गई तो सब कुछ पा लिया। कम्पनी खोजते समय शेयर आदि इकट्ठे करनेमें शुरूमे कुछ माह या वर्ष परेशानी उठानी

पडती है । बादमें इकट्ठा मुनाफाका उपभोग करते है ।

द्रव्यके तथ्यको जाननेसे होने वाली निर्मोहता ही सर्वोपरि लाभ है—लौकिक लाभ तो अपनी हानि व बरबादीका कारण है । द्रव्यस्वरूपके ज्ञानके द्वारा जो उपेक्षाभाव होता है उसमे आकुलता नही रहती, वही सत्य लाभ है । द्रव्य स्वयं सत् है, इसके ज्ञान होते ही यह पता पड जाता है कि सर्व द्रव्य सुरक्षित है, अपना-अपना ही परिणमन करते है, कोई किसीके आधीन नही । इस ज्ञानमे मोहको फिर अवकाश कहाँ ? स्वभावमे नित्य अवस्थित रहनेसे द्रव्य सत् है, यह पहिले कहा ही है । वह स्वभाव क्या है ? द्रव्यका परिणाम ही द्रव्यका स्वभाव है, सो यह द्रव्यका स्वभावभूत परिणाम है वह सद्विशिष्ट गुण ही है अर्थात् द्रव्यमे त्रिकाल रहने वाला और गुण पर्याय आदि द्रव्यके समस्त विस्तारोमे अविशेष रूपसे रहने वाला एक गुण है । जो ही द्रव्यके स्वरूप रूप रहने वाला अस्तित्व द्रव्यके प्रधान निर्देशसे सत् ऐसा निर्दिष्ट होता है । वह अस्तित्व अविशिष्ट गुणभूत होता हुआ ही द्रव्यका स्वभावभूत परिणाम है, क्योकि द्रव्यकी वर्तना (वृत्ति) भूत, भविष्यत्, वर्तमान तीनो कालोमे रहती है सो वह प्रतिक्षण उस ही स्वभावसे परिणमती है । अत वह परिणाम द्रव्यका स्वभावभूत गुण है । वह परिणाम अस्तित्वभूत द्रव्यका वृत्तिरूप होनेसे द्रव्यका विधायक (प्रसाधक) सद्विशिष्ट गुण ही है । इस तरह सत्ता और द्रव्यमे गुणगुणीभाव सिद्ध होता है । इनमे प्रादेशिक भेद नही है । जिनमे प्रादेशिक पृथक्त्व होता है वे स्वतत्र-स्वतत्र परिपूर्ण द्रव्य ही होते है । सो ऐसी पृथक्ताकी बात सत्ता और द्रव्यकी है ही नही । द्रव्य है, इस बातको विषाद करनेके लिए 'हैपना' और द्रव्यमे गुणगुणीभाव प्रसिद्ध किया है । द्रव्य तो स्वतः सत् है ।

वस्तुस्वरूपका विस्तार आशयविस्तारके द्वारा है—सत् और सत्ताका विषय चल रहा है । इन दोनोका लक्षण भिन्न-भिन्न है । अशुद्ध निश्चयसे रागद्वेष आत्माके माने है । शुद्ध निश्चयनयसे ज्ञान, दर्शन गुणके शुद्ध परिणमन आत्माके है । परम शुद्ध निश्चयनयसे दोनो आत्माके नही है । अमुक व्यक्तिने अमुकसे प्रश्न किया कि तुम्हारा कौन है ? वह उसका नाम बताता है । यहाँ पर्यायकी अपेक्षा नाम बताता है । लेकिन प्रश्नकर्ताका निश्चयपर लक्ष्य हो तो वह पिताका नाम भी नही बता सकता है । इसलिए प्रश्नकर्तासे ही इसके विपरीत कह सकते है । तुम्हारा लक्ष्य जिस आशयको लेकर प्रश्न करना है, उसीसे तुम हमसे समाधान पा सकते हो ।

आकुलताका मूल कारण रागद्वेषकी बीमारी है । इस बीमारीके निदानपर दृष्टि हो, इसके लिए ज्ञानका विस्तार है । उस ज्ञानको जानकर अपना आचरण उसी तरह किया जाय। परदृष्टि आत्माका विकृत परिणमन है । परपदार्थोंका विकल्प शान्तिसे शून्य रखता है । जो विकल्प सताते है वह विवेक बलसे दूर किये जा सकते है । उनको अपनेमे प्रवेश पानेका निषेध

किसीको आज्ञा देना मात्र नही है कि तुम हमारा इस तरहका कार्य कर दो या यहांसे चले जाओ आदि । वहाँ तो निजकी तर्कणा बुद्धि काम देगी । विकल्प अच्छे या बुरे ध्यानके लिए दोनो बाधक है । शुभ विकल्प पुण्यके कारण हो सकते है, जिससे क्षणिक पदार्थ अच्छे मालूम पडते हुए भी सच्ची शान्ति नही दे सकते है । अशुभ विकल्प, परपदार्थोंके प्रति चाह ससारकी परिपाटी भी नही हटा सकते, किन्तु उसमे घूमनेके सहायक हैं । परको अपनेमे न आने दे, यह सहज उपाय प्रयत्नसे प्राप्त किया जा सकता है । अपनेको ही जानें, आत्माके समीप ही ठहरें, परपदार्थोंसे रुचि स्वतः हट जायगी । विचारोका तारतम्य भी अपना-अपना अस्तित्व रखता है ।

जब तक प्रमादकी संभावना है तब तक निज आत्माके ही उपयोगमे यत्न करें—जिस तरह युवा स्त्री अगर स्वच्छन्द प्रवृत्तिसे दूसरेके घर आवे जावे तब वह शुद्ध भावसे भी क्यो न आवे जावे तब भी घरके मनुष्य उसे जानेसे रोकते है तथा बाहरके मनुष्य भी उस पर कुदृष्टि करते हैं । इसके विपरीत जो अवस्थाकी अपेक्षा वृद्ध हो चुकी है, विकार भावनायें जिसकी मर चुकी हैं उसके लिए आने-जानेको कोई भी मना नही करता है । इसी तरह ज्ञान मे अप्रमत्त दशा हो गई वहाँ तो कुछ भी जानो, किन्तु जहाँ प्रमादबहुलता है वहाँ परको जाननेमे जो यत्न करते हैं उसमे रागद्वेषकी तरगें उठे बिना नही रहती । इसीलिए उसका निषेध किया है । परपदार्थ जाननेमे न आओ । अगर आओ भी तो जो जीवादि प्रयोजनभूत तत्त्व है वही मेरे जाननेमे आओ, क्योकि वह आत्माको जाननेमे निमित्त है। शास्त्रज्ञानके द्वारा आत्माके परिणामोको विशुद्ध किया जा सकता है । साधर्मी जनका सत्सग जाननेमे आओ । सत्सगके द्वारा निजपरिणति सुधारी जा सकती है । यह चार मार्ग कल्याणके प्रमुख द्वार हैं । कोई व्यक्ति अगर उपवास किए हुए है, अगर वह भी हलुवा आदि सुगधित मिष्टान्नके समीपसे निकल जावे तो उसका विकल्प या विशिष्ट जानना उस हलुवेके प्रति हो ही जायगा । साधर्मी जनोका साथ कुछ अन्य प्रकारका है । यथार्थमे हमारी इतनी कमजोर दुकान है जैसे कि जब हम १) रु० गजका कपडा २) रु० गजसे बताना शुरू करते हैं । इससे ग्राहक १) रु० गजके भावपर ही आ जाता है । इसी तरह जीवनमे जितने भी ऊँचे-ऊँचे धार्मिक उपदेश सुने जावें, सत्सग किया जावे तो उनकी सुवासना अपनेमे यथायोग्य आकर ही रहेगी । जिसकी निज-कल्याणके प्रति भावना है वह वैसा समागम, सत्योपदेश पाकर कुछ न कुछ कल्याण करेगा ही । मन रुकनेकी दो स्थितिया हैं—एक स्वानुभूति होना और दूसरी प्राणायामके द्वारा मन वशमे करना । स्वानुभूतिमे सूक्ष्मतासे मन रुक जाता है । यहाँ विवेकमय अन्त:कार्य होता है अथवा बुद्धिपूर्वक स्थूलतासे मन रुक गया, यह कहना चाहिए । यही परसमता लक्ष्मीके दर्शन होने है । इसीका नाम समाधि है । प्राणायामके द्वारा रुका मन स्वानुभूतिका अबाधित कारण

नही हो सक्ता, क्योकि यहाँ तत्त्वका निर्णय करके कार्य नही किया गया ।

यथार्थ तत्त्वनिर्णय बिना समाधि नहीं हो सकती—ज्ञानी जन तत्त्वका निर्णय करके समाधिमे स्थित होता है । वह आत्मकल्याणके लिए कार्यकारी भी है । एक साधु थे । वह चार-चार दिनकी समाधि लगा लिया करते थे । अपना चमत्कार दिखाने एक राजाके समीप पहुचे । राजाने कहा कि आपकी समाधिको ख्याति काफी सुन रखी है, उससे मै काफी प्रसन्न हू । मैं भी प्रत्यक्षमे तुम्हारी समाधि देखना चाहता हूं । यह राजाकी बात सुनकर अब तो उन्हे अपनी कला बतानेका अवसर मिल गया । राजा साहबने कहा कि अगर तुम पाच दिनकी समाधि लगा दोगे तो जो चाहोगे वह इनाम मिल जायगा । साधुको मंजूर हो गया । पाँच दिन की समाधि लगाई गई । यहाँ राजाके पास एक बहुत बढिया काला घोडा था । वह अपने गुणोसे एव चाल-ढालसे सबके मनमे चमत्कार उत्पन्न करता था । यह उसके मनमे समा गया । साधुकी समाधिके पाँच दिन हो गये । वह एकदम समाधिसे निकले और राजासे बोले—'काला घोडा लाओ ।' यहाँ भी मन रोकनेपर पदार्थ मनमे बसा रहता है । इसे भी समाधिका नाम मिल जाता है । तत्त्वज्ञानीको तो केवल आत्माकी खबर रहती है ।

जिसकी जिस ओर श्रद्धा है उसकी उस ओर रुचि है—अगर किसीके कोई सकट आ जावे तो उसका मन उसी ओरको लगा रहता है । वह खाते-पीते व्यापार करते भी उस सकट को हटानेकी सोचा करता है । इसी तरह ज्ञानीको तो ज्ञानधन, आत्मधनकी सपत्ति मिल चुकी । वह जो कुछ भी कार्य करेगा उसमे आत्मज्ञान झलकता रहेगा, उसीके बारेमे विकल्प होगा । अन्य किसी सम्बधमें उसे सोचनेसे लाभ नही मिलता है । तत्त्वज्ञानीका ढलाव आत्माकी ओर ही रहता है । वह समाधिमे आत्माको ही आत्मामे बसाता है । अगर कोई बलपूर्वक आँख बद करेगा तो उसके मनमे आँखका विषय समाया रहेगा । ज्ञानी आँखोको जबरदस्ती बन्द नही करता, उसका स्वाभाविक झुकाव आँखोकी ओरसे नासा दृष्टिपर रहता है । वहाँ इन्द्रियोका दमन नही किया जाता, किन्तु उनमे स्वतः शिथिलता आ जाती है । इस क्रियामे नेत्र बद रहने पर भी अंधेरा नही रहता, किन्तु प्रकाश ही रहता है । यहाँपर प्रकाश जड है, जो जडका अनुभव करता है वह जड है । चेतन चेतनका ही अनुभव करता है । तत्त्वज्ञानीको मुख्यतासे प्राणायामविधिकी समाधि लगाना कही भी नही लिखा है, फिर भी उसका अभ्यास आत्मध्यान मे सहायक है । अन्य सिद्धान्तोमे प्राणायाम वगैराको मुख्यतासे लेकर लिखा गया है । जैसा सिद्धान्तमे उसका कोई महत्त्व नही, वह यदि आत्मज्ञान नही तो स्वास्थ्यके लिए उत्तम साधन है तथा स्वास्थ्यके सहारे धर्मसाधनमे सहायता मिल सकती है । अर्थात् किसी तरहका विकल्प शरीरके बारेमे न रहनेसे इच्छित कार्य निर्विघ्न किया जा सकता है । अगर शरीरके स्वास्थ्य रहनेको ही धर्म मान लिया जावे तो पहलवानोको अच्छा धर्मात्मा होना चाहिए था । जहाँ

कि कही-कही धर्मकी बू भी नही रहती। जैसा कि कालिदास कविने कहा है—'शरीरमाद्य खलु धर्मसाधनम्' अर्थात् शरीरका स्वस्थ रहना ही धर्मका साधन है। इसका तात्पर्य इतना ही है, धर्मसाधनके लिए शरीर स्वस्थ भी रखना चाहिए। क्योकि जिसका स्वास्थ्य ठीक होगा उसे अनेक प्रकारके विकल्प नही सतावेंगे। एक कहावत है—'आत भरी सो माथ भरी।' कब्जियतका न रहना अनेक बीमारियोंसे छुटकारा पाना है। जितनी भी बीमारियोका मूल कारण रहता है उनमे कोष्ठबद्धता ही पाई जाती है। शरीर स्वस्थ रहे, इसके लिए प्रकृतिदत्त पदार्थोंपर जीवन निर्भर रखना चाहिये तथा रोग हो जावें तो उन्हे प्राकृतिक उपचारोंसे निरस्त-नाबूत कर देना चाहिए। आत्मज्ञानके प्रसगवश स्वास्थ्यपर सक्षिप्त ध्यान रहे, मुख्यता आत्मा की है। किसी हिचकीसे वाले अचानक कह दिया जावे कि तुम अमुकके घर क्यो गये थे ? तो उस समय सुनने वाला ताज्जुबमे पड जायगा और उसका हिचकी बोलना बन्द हो जायगा। यह इतना कहने मात्रका यह प्रभाव पड सकता है। तब सदैवसे जो नाना गतियोमे घूम रहे है उनके लिए हम यह कल्याणकारी जिनेन्द्रदेवकी वाणी सुनते हैं। तब हम अपने बारेमे सुनकर स्तब्ध न होवें, यह विचारणीय है। उसी समय एक आघात जैसा होनेपर सोच सकता है। मैं कितनी गलतियोपर हू ?

जिसे आत्मीय आनन्द मिला वह किसीको बताता नहीं फिरता—जो आनन्दको नही जानते वह अपनी मुँहसे प्रशसा करते हैं—हमारी समाधि ठीक हो गई, मैंने मन एव इन्द्रियो को वशमे कर लिया, मुझमे ज्ञानज्योति जग गई, हमारे द्वारा दूसरे जीवोको सत्पथपर लगाया जा सकता है आदि। जिसने जबरदस्ती इन्द्रियोपर काबू किया तथा मन वशमे उसका कहाँ रहा कहलाया, जो कि दुनियासे अपनी प्रशसा पानेके लिए इस तरह करता है। सच्चा आनन्द सहजगम्य होता है, वह वचनातीत होता है। निर्विकल्पता उसकी सहगामिनी होती है। वह दुनियाके झझटोसे परे स्वात्मरमणमे सुखी रहता है। अलौकिक महापुरुषोकी आत्मा के समीप भी विचार चलते थे। उन विचारोमे निजहित रहता था, किन्तु परहित अनायास ही हो जाता था। वह परहितके लिए ही अपना कदम नही उठाते थे। उन्हे तो मुक्तिके आनन्द प्राप्त करनेका लक्ष्य सर्वोपरि रहता था। जिसमे कुछ भी तरङ्ग न उठे उसे निश्चल समाधि कहते हैं। वह सत्से अवशिष्ट गुण है। जो द्रव्यके स्वरूपकी वृत्तिभूत द्रव्यके स्वरूपमे रहने वाला अस्तित्वगुण है। द्रव्यको प्रधान दृष्टिसे देख कर बोला जाय उस सत्मे रहने वाला जो अस्तित्व है उसे सत् बोलेगे। जैसे पुरुष प्रधान कहनेपर इन्सान कहना तथा स्वभावको प्रधान लेकर कहेगे तो इन्सानियत कहेगे। जब उपयोग एक बनाओगे तब सत् ऐसा बोला जावेगा। जब द्रव्य प्रधान तो नही बनाते, किन्तु सत्की अपेक्षा स्वभाव ही मुख्य रहता है। स्वभावको प्राप्त करना, उसीमे बार-बार जाना परमकल्याणकारी है। उक्त प्रकार

से सत्ता और सत्में गुणगुणी भाव सिद्ध किया । इससे गुणगुणीमे नानापन आ गया अर्थात् ये दोनो भिन्न-भिन्न हो गये, ऐसा आशय कभी नही करना, क्योकि यह तो एक तो एक सत्का कथन है, जैसे समझमे आवे वैसे हमारे तीर्थनेताओने भेदव्यवहारका आश्रय कर समझानेकी कृपा की है । अब उसी गुणगुणी भावके नानापनको यही समाप्त करते हैं—

णत्थि गुणोत्ति य कोई यज्जाओत्तीह वा विणा दव्वं ।
दव्वत्त पुण भावो तम्हा दव्व सय सत्ता ॥११०॥

ऐसा कोई गुण नही है व ऐसी कोई पर्याय नही है जो द्रव्यके बिना हो । द्रव्यत्व क्या कोई द्रव्यसे पृथक् भाव है ? नही । इस कारण द्रव्य स्वयं सत्ता है अथवा सत्स्वरूप है । यहाँ सत्ता और द्रव्यमे गुणगुणी भावको सिद्ध करते है तथापि प्रदेशभेद कभी नही समझना । गुणगुणी भाव सिद्ध करनेके लिए एक-एक पृथक् जान लिया जाय तो भिन्न-भिन्न पदार्थोंमें गुणगुणी भेद तो नही होता । दो पदार्थोंमे भिन्न-भिन्न गुणगुणी होता है । अतः भिन्न पदार्थों मे गुणगुणी व्यवस्था नही है । अविभक्त प्रदेशमे ही गुणगुणी होता है । यहाँ वस्तुका एकपना सिद्ध करते है । जो ही द्रव्यका सत् स्वरूप अस्तित्व है वह सत् है, सत्ता है, द्रव्य है । जबसे द्रव्य प्रधानताकी विवक्षा है तबसे सत्ता नही कहो और न बोलो । वह तो उसमे गुणभूत बनाये जानेका परिणाम है । सत् नामसे जो बोला गया वह उसका अविशिष्ट गुण है । एक ही द्रव्यमें यह गुणगुणी भाव बताया जाता है । एक ही द्रव्य उसमे रहने वाला अस्तित्व द्रव्य प्रधानसे देखा जाय तो सत् प्रधानसे कहा जाता है । उसी सत्का अस्तित्व उस गुणसे पृथक् नही है, वह द्रव्यका स्वभावभूत परिणाम है । द्रव्यकी जो वृत्तियाँ है वे तीन कोटिकी पर्यायें है, चलती है । वही एक अस्तित्व तीन तरहसे सिद्ध किया जाता है । तीन नयोमे क्या वह बनकर परिणमता है ? वही स्वभाव बनकर परिणमता है ।

वस्तुका स्वरूप त्रयात्मकत्व सर्वत्र रहता है—गुण व गुणीमे सत्ता व द्रव्य भी कहे, इनमे त्रयात्मकता आ जाती है, बदलना कहनेपर उत्पाद व्यय ध्रौव्य मौजूद है या नही । कोई नई वस्तु बनी, पुरानी खतम हुई तथा बनने व खत्म होनेमे ध्रौव्य वस्तु मौजूद ही है । इसके साथ ही बदलना पुराने भावमे तथा अगले भावमे भी रहना यह स्थायित्व दर्शाता है । कोई कहे हमारे दर्शनमे यह लिखा है ।

एक ही वस्तु नई पर्यायमे आई, पुरानी गई, यह क्रम चलता ही रहता है । कोई किसीकी जबान जबरदस्ती बद करके रखे तो कब तक रखेगा ? एक क्षणके बाद दूसरी वस्तु आ जाती है । वहाँसे उठनेके बाद नई बात आ ही जाती है । वस्तुका स्वरूप है वह तो प्रकट होगा ही । इसलिए त्रयात्मकता वस्तुका स्वभाव है । श्रेयमार्गपर जाना, वस्तुकी प्रतीति करना, चारित्रमे लगना यह शिवमार्ग है । यह उत्पाद व्यय ध्रौव्य सहित है । समझमे आवे तो सब

हल हो जावे। आत्माको जाननेके लिए बडे-बडे यत्न किये जाते है। वे यत्न असफल इसलिए होते है कि तत्त्वको सूक्ष्म समझ नही पाते है। जो परपरासे व्यवहार कार्य चले आये है उन्ही पर प्रतीति रखना आत्मकार्यके लिये साधक है। वह सोच ले कि मुझे आत्माको जानना है।

पिण्ड छोड़ो मै अपना प्रबन्ध स्वयं कर लू गा—आत्मा ज्ञानमय है, यह सुनते ही लगता भी ऐसा है कि कोई जानने समझने वाला है। अब मै तो इसीके भरोसे सबको छोडता हू। वाहर देखनेपर नजर आ जाता है। जैसे तीर्थयात्राको जाते समय इलाहावाद, बनारस आदि जाता है तो वहाँपर पडे लोग आ-आकर घेर लेते है। सभी अपना-अपना जोर लगाते है, 'आप हमारे यहाँके निवास स्थानपर चलो, वहाँ उत्तम प्रबन्ध रहेगा' आदि वाते कह-कहकर फुसलाते है। तब यात्री सभीसे तग आकर कहता है कि मै अपना प्रबध स्वय अपने आप कर लूगा। मुझे किसीकी भी सहायताकी जरूरत नही है। इसी तरह यहाँपर हमे कई दर्शनो ने घेर लिया है। कई प्रकारके गुरुओकी विचारधारा हमारे ऊपर पड रही है। कहीपर जैन गुरुओ विद्वानोमे घिरा पाता हू, कभी दूसरे धर्मावलम्बी भी मिल जाते है जो सभी धर्मोंको समान कहते है। कभी कोई कहता है कि आप तो अमुक धर्मके सस्कारोमे पैदा हुए हो, इसलिए उन वातोकी पुष्टि करते हो। तुम्हे तो अपने सस्कार ही सुहाते है। किसीकी सुनना नही चाहते। इसी तरह अनेको पुटें रख-रखकर फुसलाते हैं। तब ध्येयार्थी भ्रममे पड जाता है। मुझे क्या करना योग्य है ? यह सब सुन समझ लेनेपर अपना मार्ग निर्धारित करता है। ठहर जावो, मै अपनेमे आप समझूगा। मुझे अपना कल्याण अपने द्वारा करना है। कोई किसीका रक्षक नही है। मै केवल अपना ही भाव वनाता हू, अपना ही उपकार करने वाला मैं स्वय हूँ। मैं केवल अपनी आत्माके भरोसे रहता हू। मुझे अन्य कुछ नही सुनना है। मैं किसीको देखकर भक्त बनूं, स्तुति करूँ। यहाँ अविवेक भक्ति यथार्थ मार्गपर नही लगा सकेगी जब तक अन्तरङ्गकी प्रेरणा काम नही करती होगी। लेकिन दूसरे महापुरुषोका निमित्त व प्रभाव कल्याणार्थीके लिए कल्याणप्रद सिद्ध होते है। मुझे विकल्पोका त्याग करना ही श्रेयस्कर है। मै इतना त्याग करता हू, इतना हितके मार्गमे चल रहा हू, इसे आत्मा स्वय परिणमनके द्वारा जान रही है। जाननेमे आत्मा स्वय प्रतीत होता है। वह आत्मा स्वानुभव प्रत्यक्षसे प्रमाण कर लेना चाहिए। यहाँ स्पष्ट कह रहे है, केवल कहने मात्रसे ही विश्वास नही कर लेना चाहिए। अगर यो ही बिना जाने, समझे दूसरोकी नकल उतारने मात्रको कष्ट सहा तो क्या लाभ निकलेगा ? इसीसे पूज्याचार्य अमृतचन्द्रजी सूरि भगवान कुन्दकुन्दाचार्यके वचनोको खुलासा करते हुए कह रहे है कि वह आत्मा प्रत्यक्षसे दिख जावे तो तत्त्वोपर आकर आत्मा का सत्य श्रद्धान कर लेना। शब्द मैं तो बोलता नही हू। वह तो नयको लिए हुए बोले जाते है। कुछ भी क्यो न कहना पडे, बिना नयके नही बोला जा सकता है। शब्द ही एक उपाय

है। शब्दोसे ही सम्पूर्ण वाङ्मय भरा हुआ है। शब्दोंकी ओरसे वकालत करते हुए कह रहे है आचार्य जी। अगर कही हम चूक भी जावें या तुम्हे समझमें न आवे तो इस तरहसे न समझना या कहना कि आतमा कुछ नही है या फिजूलका बवण्डर है।

तुम तो हो ही, उसे जाननेका यत्न कर ही लेना——यहाँ समझमे नही आवे, बुद्धिसे ग्रहण न हो सके तो उसे ग्रहण करनेकी आगे जाकर कोशिश करना। पूज्य गुरुओंके पास जाकर अपनी शङ्का प्रकट करके समाधान कर लेना। यहाँ भी तो इसीलिए आये हो कि जिनवाणीमें आत्माका स्वरूप मिलेगा। बिना श्रद्धाके तो कोई भी कार्य नही किया जाता। यदि पराधीनतावश किया गया तो उसमे कोई रस नही आवेगा और न उसका फल ही मिलेगा।

अगर आत्माकी बात समझमें न आवे तो भी छल करना योग्य नही है। स्वच्छन्द प्रवृत्ति किसको सुखकर रहती है? स्वच्छन्द प्रवृत्ति वाला आगे बढ़नेसे रुक जाता है। उसे किसी न किसीकी आज्ञामे चलना ही श्रेयस्कर है।

मुनि महाराज स्वय शास्त्रकी आज्ञाके साथ दीक्षा गुरु पूज्याचार्योंकी आज्ञामें चलते है। आगमकी आज्ञा सर्वथा शिरोधार्य होती है। सत्याग्रहसे और उपदेशसे जो जाना तब सब आलम्बनोंको छोड़कर किसी भी तरहके सस्कारोमे नही जाकर आत्माके आस्वादनका पथिक वन रहा हे। आत्मासे ही प्रश्न करे एवं समाधान करे कि यह क्या अनुभव कराता है? सत्याग्रहसे बेठ जावे तो वस्तुस्वरूपका विकास कहा जायगा? यहाँ लौकिक सुख या पदार्थोंके पानेका अथवा राज्यलक्ष्मी आदि पानेका सत्याग्रह नही कर रहा है, किन्तु सर्व विकल्पजालोको छोड आत्मापर विश्वास जमानेका, अनुभवमे लानेका सत्याग्रह (सत्यके प्रति आग्रह) कर रहा है। ऐसा करे तो इस आत्माको वैसे साथी भी मिल जावेंगे। पवित्रात्माओंकी परख आ जावेगी तथा उनमे श्रद्धा भी जागृत हो जायगी। ऐसी ही बातकी परिपूर्णताका रूप इसने समझ पाया, तब आत्माकी प्रतीति कही छिपी नही रहेगी।

जिसे अन्तरङ्गकी प्रतीति हो चुकी उसे देव शास्त्र गुरुकी भी श्रद्धा यथार्थ होगी। इसको जाने बिना उनपर दृढता नही हो सकती, वह विचलित ही होती रहेगी। जहाँ मन्द कषाय हो वह मार्ग अपनाना श्रेष्ठ है। जब तक आतमज्ञान नही है तब तक सब वेकार ढकोसला ही हे। आत्माको शुद्ध करनेकी आवश्यकता है। उसपर अनादि कालकी धूल चढी हुई है, फिर भी उसकी योग्यता अनत, अपरिमेय है। उसके समय आनेकी देरी स्वयमे हो रही है। भीतरसे पेरणा मिली तथा इसीके अनुरूप बाह्य निमित्त मिल गया तब वह दृढतासे आत्मकार्यमे अग्रसर हो सकता है। आत्माकी बात जानना तथा उसीकी चर्यामे चलना, यह तो हुआ आत्मसिद्धिका कार्य, अगर कुवस्तुमे चले गये तो निज प्रतीति होना भी असभव हो

जायगी ।

आत्मार्थिता बढनेपर परिग्रह विदा हो जाता है—आत्मार्थी स्वल्प परिग्रहसे कार्य चला सकता है । वह अपनी मर्यादायें बनाता जाता है । वह अपनी प्रयोजनभूत वस्तुओमे भी दर्ज वनाता जाता है । जितने-जितने पदार्थ कम होते जावें तथा विवेकका आश्रय लिया जाये तो शाति ही मिलेगी । इसके लिये श्रावकके ११ दर्जे (प्रतिमा) निर्धारित किये हैं । जिसका जितना ऊँचा दर्जा होगा वह उतना ही ममत्व हटा सकेगा । उत्कृष्ट मुनि अवस्थामे जीवोकी रक्षाके लिये पीछीकी जरूरत पडती है तथा शुद्धिके लिये कमडलकी आवश्यकता मात्र रह जाती है । इसके अतिरिक्त और क्या प्रयोजनभूत रह जाता है जिसके विना चल ही न सके ? ज्ञानवृद्धि के लिये शास्त्रोका मनन करना है । अब निष्परिग्रह अवस्थामे महाव्रत धारण करके जीवन-रूपी नौकाको सफल बनाया जा सकता है । ध्यानके समय पीछी कमडल भी आवश्यक नही, किन्तु चलना पडता है, इसलिये जीव-रक्षार्थ पीछी रखी जाती है तथा भोजन स्वाध्याय आदि करना पडता है, इसलिये शुद्धिको कमडलकी जरूरत होती है । ध्यानमग्न रहा जाय तो शास्त्रो का भी कोई प्रयोजन नही रह जाता है । जिन कार्योंसे शान्ति आवे उन कार्योंको करना चाहिये । शास्त्रोको मनन करते समय यह विचार उठें व दीखे—जो मैंने सोचा था, पढा था, जिसके लिये इच्छा थी, वही मैं आज ग्रन्त पढ रहा हू । खुदकी दुकान होनेपर व्यवहारसे भी काम चल सकता है । जिसकी निजी पूँजी लगकर भी दुकान है उसे दूसरोंसे भी उधार मिल सकता है । इसी तरह निजका आत्मविश्वास तथा दृढ श्रद्धा होनेपर, आत्माका स्वाद आनेपर व्यवहार या उपदेशको तथा शास्त्रोके पढने व सुननेसे भी काम चल जाता है । स्त्री, पुत्र आदि कोई भी अपना कुछ नही कर देगा । कर्तापनकी बुद्धि दु खका मूल है । मैं अपनेके अलावा और किसीका कुछ नही कर पाता हू । भेदविज्ञान जीवनका मूल मत्र होना चाहिये । भेदविज्ञान रूपी छैनीके द्वारा कर्म शत्रुओको हटाया जा सकता है ।

यह द्रव्य प्रतिक्षरण स्वभावसे परिणमता रहता है । इसलिये परिणाम ही द्रव्यका स्वभाव है, उससे पृथक् नही है । वह परिणाम क्या है ? अस्तित्वभूत जो द्रव्य है उसकी जो वृत्ति उसी स्वरूप परिणाम है । अस्तित्वभूत द्रव्यत्व रहे अर्थात् वह सत् रूप है । परिणमन जुदा नही, सत्ता जुदी नही, सत् भी जुदा नही है । सत्से अविशिष्ट पृथक् न रहने वाला सत्ता गुण है । जैसे कि आत्माके अविशिष्ट याने पृथक् न रहने वाला चैतन्य गुण है । इसका यह अर्थ है—जो बात इस द्रव्यमे है वह औरमे भी है । वह द्रव्यका विधान करने वाला एक ही है । गुणीका ख्याल करा देने वाला है । सत्ता और द्रव्यमे गुणगुणी भाव सिद्ध होता है । कही पृथक् भेदसे ये सिद्ध नही है । सत्ता स्वभाव है और सत् स्वभाववान है । यहाँ यह धन वा धनवान जैसा नही है । धनवानका धन उससे जुदा रहता है । यहाँ तो द्रव्यमे गुणका सम्बध

बनाया है, क्योंकि गुणगुणी तो त्रिकाल तन्मय हैं ।

बहुतसे सिद्धान्त जो अपने यहां कहे है वे अन्य दर्शन वालोंके यहाँ भी मिलते है, किन्तु अनेकान्त अन्य दर्शनोंमे नही मिलता है जिसके आधारसे तत्त्वकी पूरी भित्ति पडी हुई है । सत् और सत्ता अनर्थान्तर (भिन्न पदार्थ नहीं है ।) है । द्रव्य द्रव्यका जो सम्बध है वह संयोग सम्बध है । द्रव्य और गुणका समवाय सम्बध है । जैन सिद्धान्तमे द्रव्य गुणका नित्य तादात्म्य माना है और द्रव्य व पर्यायका अनित्य तादात्म्य माना है, क्योकि पर्याय जिस समय मे है उस समय द्रव्य उस पर्यायमे है ।

आत्मा अमूर्त है तथा शरीर मूर्त है । यह दोनो सम्बधको कैसे प्राप्त हो गये है ? अनादिकालकी परम्परासे चले आये हुये निमित्तनैमित्तिक सम्बधसे मेल है । हमे इसपर अफसोस होना चाहिये कि चैतन्यमय प्रभु किस दशामे बद्ध है ? आत्माका और रागद्वेषका जो सम्बध है उस समय वही विकृत पर्याय है । एक आत्मामे स्वभाव और विभाव दो पर्यायें नही होती है । हां ऐसा हो सकता है कि कोई पर्याय ऐसी हो जिसमे दो दृष्टियाँ बनती हों । इतना तो विभाव रहा, इतना नही रहा ।

स्वरूपमें आशयवश भेद बताया जाता है—कषाय तो एक ही है, किन्तु अमुक अंशमें इतनी है, अमुक अशमे इतनी नही है, यह भेदविवक्षासे होता है । किन्तु एक ही पर्यायमें बातें ग्रहण की गईं । जीवके आस्रव, बध, सवर, निर्जरा चारो एक साथ होते हैं । जिस समय आस्रव, बन्ध है उसी समय सवर, निर्जरा भी है । इन सबका आश्रयभूत वही परिणाम है । चारोका कारण एक साथ हो रहा है । पर्याय तो एक है उन सबकी विशेषतायें परखना चाहिये । जितने अशमें राग नही है उतने अशमे वैराग्य है तथा जितने अशमे वैराग्य नही है उतने अशमे राग है । मानो एक यह मिथ्यात्व भूमि है । इसपर उठते उठते ऊपर पहुंच सकते है । रागभूमिके भी अनेक स्थान होते हैं । जैसे मान लो नीचे रागभूमि है और उसके कितने ही ऊपर विराग पद है । उसकी कोई भी मध्यकी अवस्था, नीचेके तीव्र रागोसे रहित है और ऊपरके मन्द रागोसे सहित है, ऐसी स्थितिमे जितने अश राग नही हैं उतना तो सवर निर्जराका कारण है तथा जितने अश राग है वह आस्रव, बन्धका कारण है । किसी भी गुण की पर्याय एक समयमे एक होती है । वह परिणाम आस्रव, बध, सवर, निर्जरा सबका कारण हो रहा है । जितने अंश राग चल रहा है उतने अशमे विरागता नही है तथा जितने अशमें वैराग्य चल रहा है उतने अशमे राग नही है । जो पर्याय चल [illegible] रहती है । वह नियमसे नष्ट होगी । चाहे स्वभावपर्याय हो या [illegible] है कि स्वभावपर्यायके नष्ट होनेपर वैसी ही स्वभावपर्याय नहीं आता है, किन्तु विभावपर्यायमे विषमता रहती है

पर्याय औपाधिक होती है।

विज्ञानमे यह नियम है बद्धावस्था विकार भावमे होती है। अवद्धता एक एक क्षेत्रमे होती है, एक कालमें होती है, एक द्रव्यमे होती है तथा एक ही भावमे होती है। जैसे रागादिक हुए वह दो के बन्ध बिना नही हुए। उस जीव और कर्मका सम्बन्ध रहता है, एव जीव और पुद्गल बिना नही हो सकता है। बद्ध विकार भाव दो कालके बिना नही होता। यद्यपि एक पर्याय एक समयमे होती है दूसरे समयमें नही होती है तथापि अनेक समयके भाव बिना उपयोगमे चलता नही। कोई सततिगत राग ऐसा नही होता है जिसमे विकारका अनुभव न होता हो। जिस जीवको रागका अनुभव न होता है, वह ऐसा नही है जिसकी सन्तान न चले, वह समझमे आ जाय, हम उसे बुद्धिमे ला सकें, उसके लिये तडफ सकें, ऐसा राग अनवच्छिन्न अनेक समयके बिना नही। करणानुयोगमे इसकी अच्छी चर्चा है। दसवां गुणस्थानवर्ती जीव के क्षपक श्रेणी चढते समय जो कषाय भाव रह जाता है उसका जो जघन्य समय है वह भी उसी समयसे कुछ अधिक रागका जघन्य समय है। कोई भी (भाव) ऐसा भी हुआ करता जो एक समय हो और अगले समय न भी हो, किन्तु चर्चा करते हुए हट्टे-कट्टे बैठे हुए यह मनमें रखे, वह एक समयका परिणाम होता है जो कि राग विकारका अनुभव कराता हे तो वह असमझ है। राग पर्याय एक समयकी जरूरत होती है। अगर एक समयकी पर्यायपर दृष्टि डालता है तो वह ठहर नही सकता है।

विकार बन्धनकी जो बात है वह कई कालमे होती है। विकासमे स्वच्छता और विकार एक साथ नहीं हो सकते। स्वच्छताके कारण विकार आया तथा जो स्वच्छ है उसीमे विकार आनेकी योग्यता है। दर्पणकी स्वच्छतामे विकार आ सकता है, भीतमे नही आ सकता। जिस तरहका जो कार्य होता है वह उसीमे हुआ करता है। विषमभावका होना भी अनेक भाव है। समभावका नाम एक भाव है। विषयभावका एक नाम है। जो भी बन्ध होता है वह विषम होता है।

एक समयकी स्थिति जानना उत्कृष्ट ज्ञान बिना नही बन सकती है। गुण-गुणीका सम्बन्ध दोनोमे रहता हे। सम्बन्ध उसीको कहते है जो पहले न हो तथा बादमे हो, किन्तु यहाँ यह बात नही है। वैशेषिक कहते हैं गुण गुणीका समवाय सम्बन्ध है। जो विघट जाय उसे कहते नही। सत्ता और द्रव्यका तादात्म्य है, किन्तु उनके स्वरूपभेदसे वे बढे। स्वरूप भेदसे उठकर इतने बढे कि गुण-गुणीको भिन्न ही मान डाला। भेदमे तो विवक्षावश जैन दर्शन भी बढता है। वह तो इतना बढता है कि गुण व पर्यायके अनन्त अविभाग प्रतिच्छेद दिखाता है, परन्तु भेदाभेदका मर्म जानना आवश्यक है। वह जैनधर्मके तो तत्त्व स्वरूपभेद आगे भी नही पहुच पाये।

जैनधर्म तो एक गुणमें भी अनन्त अविभाग प्रतिच्छेद दर्शाता है—दूसरे दर्शन वालों को भेद करके अभेद करना याद नही है तथा अभेद बताकर भेद करना भी याद नही, किन्तु जैन खूब तोड मरोडकर भेद करना जानते है तो भेदोका अभेद करना भी जानते है जब अभेद व अभेदका प्रतिपक्षी वह दोनोको युगपत देखनेकी दृष्टि होती है। एक साथ एक वस्तु को लक्ष्य कर कहना तो यह है क्या, अवक्तव्य तथा एकको स्थापित करके सबको युगपत् कहे तो इसे अस्ति अवक्तव्य कहते है तथा जब एकका लोप करके सबका युगपत् वर्णन करना नास्ति अवक्तव्य है। एक-एकको प्रधान करना जिसको वक्ता कहना चाहे तथा सबको युगपत् कहना इसे अस्ति नास्ति अवक्तव्य कहते है। एक दृष्टिसे देखने वाले कहे यह सर्वथा नही है। वह ठीक नही अवाक गोचर जब कहे, जब उसे पहिचाना वह एक दृष्टिके विषयसे अवस्थित रहे। वह वस्तुतः विधि निषेधसे अवस्थित नही है।

कोई कहे यह घड़ी हे तो क्या घडीको देखकर उसे पत्थर, पुस्तक, चौकी, लैम्प तो नही मान लेगा। हमे तो 'है' की सनक है। वह रुचता है। कोई घडीको दिखाकर कहे यह रोटी है तो उत्तर मिलेगा नही, कपड़ा है, नही। पर वह नही हो ऐसी बात नही है। स्वभावतः यह बात है घडीमे अन्यका अभाव है। यह अनेकान्त ऐसा नही है जैसे कि वृद्ध नारी आदि छोटी बच्चीसे कहे—'बुमो मायके जावोगी, बुमो सासरे जावोगी ? तब सबको हाँ ही हाँ ही।' यहाँ दोनोका अर्थ भिन्न है। मातृ गृहको मायका कहते है तथा पितृ गृहको पीहर कहते है। कोई कहे बच्ची कैसी बेवकूफ है, दोनोको हाँ भरती जाती है, तो यहाँ अज्ञान दृष्टि का भेद है। घडी व्यतिरिक्तकी अपेक्षा है या नही। नास्तिकी बात कह रहा है, कोई-कोई इस सिद्धान्तपर उतरे है। घडी व्यतिरिक्त ससार भरके पदार्थोका नाम घड़ी है। यह दृश्य तो भ्रम है।

रही । यहाँ दूसरे अर्थ वाला अनेकात घटता है । अनेकत का अत, 'अनेकस्य अन्त यत्र विद्यते स अनेकान्त ।' गुणगुणी भाव जो बताये जा रहे है वह स्वरूपभेदकी अपेक्षा बताये जा रहे रहे है ।

ज्ञानमय आत्मा समझमे आ गया वही तक अनेकान्त समझने समझानेके लिए है । यह नही बनता तो कौन समझता ? निसर्गज क्या है, तीर्थ प्रवृत्ति क्या है ? सत्, असत्, द्रव्य, गुण, पर्याय, भेद, अभेद किस तरह समझमे आते ? अगर अनेकान्त नही होता तो तो वस्तु प्रवाह नही चल सकता था । वृत्ति, वृत्तिमान् है, स्वभाव, स्वभाववान् हैं ।

इस प्रकार सत् सत्ता याने द्रव्य व गुण सिद्ध हो जाते है । जिन विकल्पोंसे तत्त्वोमे विवाद झलक रहा था वह समाप्त हो जाता है । हम एक आत्मा हैं, मुझमे होने वाले यह गुण पृथक् पृथक् नही है । वह हमारे ही गुणकी दशामे बनती है । हमारा कर्तृत्व कही नही है । हम अपने ही कर्ता है, अन्यके कर्ता नही हैं तथा अपने ही भोक्ता हैं । यहाँ जिनवाणीका पवित्र प्रवाह जो है उसमे कही भी चले जाओ आत्मतत्त्वकी बात पग पग पर मिलेगी । वह प्रत्येक जीवकी कल्याणमाता है । उसकी गोदमे आश्रय लेने से अपूर्व शान्ति मिलती है । स्याद्वादके द्वारा ही अथाह ससार-समुद्र चुल्लूमे पानी लिए के समान मालूम पडने लगता है ।

गुणगुणीका नानापन कैसे समाप्त हो ? जब उनमे इतना अन्वय, सम्बध तथा तादात्म्य व एकपना है तब नानापन समाप्त हो है । द्रव्यके बिना गुण कुछ नही और गुणके बिना द्रव्य कुछ नही । द्रव्यकी स्वय सत्ता है । द्रव्यमे सत्ता रहती है, यह तो एक व्यवहार वचन है । द्रव्य स्वय सत्तासे सहित है । भाव भाववानका फर्क जानना है । सत् और सत्ताका नानापन खत्म कर दिया है ।

खंडन-मंडन विकल्पका ही हो सकता है—जो भी स्थापित किया जाता है उससे विकल्पोका खण्डन होता है तथा विकल्पोका ही मण्डन होता है । वस्तुत खण्डन-मण्डन इन दोनोंसे युक्त नही होता है । खण्डन-मण्डन सद्भूत असद्भूतमे नही होता है । वस्तुसे कोई काम नही पडता है, किन्तु विकल्पोंसे ही काम पडना है । काम नो अन्वय वस्तुके वस्तुत्वसे नही पडना, वह तो अपने भावसे ही पडना है । इसलिए अपने भावोका ही खण्डन-मण्डन करना है । पदार्थका कुछ भी खण्डन-मण्डन नही करना है । किसीने कहा कि खरगोशके सीग होते है । तब सीग जो कहे हैं वह वस्तुभूत चीज है या नही ? अगर वह वस्तुभूत चीज नही है तो उसका खण्डन क्या करना है तथा वस्तुभूत चीज है तो उसका खण्डन क्या करना है ? जब कोई वस्तु होगी तो उसीका ही तो टुकडा करा जावेगा ।

खरगोशके ही सीग तो नही है, तब खण्डन किसका करते और हैं तो खण्डन किसका करते ? यह प्रश्न किया तो उत्तर देने वाला बोलता है कि हम तो विकल्पका खण्डन कर रहे

है। विकल्प सत् है तो उसका खण्डन क्या किया जायगा तथा विकल्प असत् है तो उसका मण्डन क्या किया जायगा? यह प्रश्न हो सकता है? उत्तर—विकल्प हो रहा, इससे तो प्रतीति सत् है और यह वस्तुस्वरूपके अनुरूप नही बैठता। इसलिए असत् कहा है। वैशेषिक सिद्धान्तने नानापन ला दिया था कि गुण और गुणी पृथक् सिद्ध है। उस नानापनको खत्म किया गया वह विकल्पमे था। यहाँ आचार्यजी ने उपहन्ति शब्दका प्रयोग किया है। अगर वह 'हन्ति' ही लिखते तो 'मारता है' अर्थ होता, जिसे कि देहाती लोग लट्ठ मारनेको कहते हैं, किन्तु उपहन्ति अर्थात् अपने आपके उत्तर पर्यायमें वह भेदविकल्पक विकल्पको प्राप्त हो जाता है। गुणीगुणी भिन्न नही है, इसके दृष्ट भेदरूप पूर्वपर्यायिका विलय हो जाना यही उपहनन है। द्रव्यसे पृथक्भूत गुण तथा पर्यायसे पृथक् गुण इस तरह कुछ भी नही है। द्रव्यको छोडकर गुण नही है तथा पर्यायको छोडकर गुण नही है या द्रव्यसे अलग गुण कुछ नही, गुणसे अलग पर्याय कुछ नही, द्रव्यसे पृथक् कुछ भी तुम्हारा दिमाग बन रहा है, यह कुछ नही है। यह भ्रममात्र है। पर्याय कुछ नहीं हे। द्रव्यसे पृथक् गुण, गुणसे पृथक् पर्याय नही है। ऐसा विकल्प जो समाया रखा है वह कुछ भी नही है। जैसे सुवर्णसे पृथक्भूत सुवर्णत्व नही है और नया तत्त्वगुण ही पृथक् है याने सुवर्णसे पृथक् हो जाने वाला, सत्ता वाला यह पीतत्वादि गुण नहीं है। 'भू-सत्तायाम्' की मूलभूत धातुका अर्थ अस् है। सत्तोभावः सत्ता, सत्ता वाली धातुका क्या अर्थ है? 'अस् भुवि' भू का अर्थ सत्ता तथा सत्ताका अर्थ 'भू' है। यहाँ संस्कृतमे अन्तर नही आता है। जब कहते है—'होता है' तब इसका अर्थ 'है' तथा 'है' का मतलब 'होता है।' तात्पर्य क्या हुआ? ध्रुव कहो तो उत्पाद व्यय सिद्ध, उत्पाद व्यय कहो तो ध्रौव्य सिद्ध है। हिन्दी तथा अंग्रेजीमें क्रिया आदिके द्वारा स्पष्ट भाव नही खुलता है। हुआ अर्थात् कुछका कुछ हुआ। होना अर्थात् उत्पाद, व्ययका अर्थ, आता है ध्रुव अर्थमे। भुवि सत्ता अर्थ मे प्रयोग किया जाता है। अगर वह निकाल दिया जाय तो उसका प्राण ही निकल जायगा। उत्पाद व्यय सापेक्ष है, यह धातु प्रकरण बोल रहा है।

ज्ञानयुगमें प्रायः सब ज्ञानी अनेकान्तके उपासक थे—इस अनेकान्त व स्याद्वादका इस भारत खण्डमे बड़ा भारी डंका बज रहा था तथा प्रायः सभी उसके उपासक भाई-भाई थे। समय पाकर वह न्यारे-न्यारे हो गये, जिससे मतमतान्तर बढते गये। आगे जाकर उन सबके कई घर बस गये। उनमें भी झगडा हुआ तो भाई-भाईकी उपासना जुदी-जुदी बनने लगी। तब वह सभी भिन्न-भिन्न विचारधारा वाले हो जाते है। सबसे पहले एक ही घर था (सबका एक स्याद्वाद मत था)। झगडा होनेसे दिल फट गये। उनको जोडने वालोकी सामर्थ्य स्वल्प थी तथा जोडनेकी अपेक्षा अपनी नेतागिरीका खिताब पानेका लालच बढ गया और अनेको धर्म मे से शाखा प्रशाखामें निकलते ही गये, किन्तु पीछे नही हटे। इसका परिणाम हम आज देख

रहे है। उसका नगा ताडवनृत्यका भी रूप कही-कही देखनेको मिलता है। यह विशेपतायें अनेको जगह दृष्टिगोचर होती हैं।

जैनियोके धर्मके अनुयायियोके सभी साहित्यके अन्तर मर्म विशाल है। जैन व्याकरण तथा अन्य व्याकरण देखनेपर विवाद स्थलपर किसकी सच्चाई उतरती है? जो प्राकृतिक चीज है उसको नियमो (सूत्र, वार्तिकादि) के घेरेमे ऋषिकी इच्छाका बध कर दिया जाता है। अनेक व्याकरणोकी वार्तिकें वनाकर भी शब्दसिद्धिको कही-कही ऋषिकी इच्छाके बधनमे डाल दिया, किन्तु उसके लिए वह बन्धन उनका निजी नही था, वह उसपर लागू होता था, इसलिए ऐसा किया गया है। जैन व्याकरणमे प्रथम सूत्र आता है—'सिद्धो वर्ण समाम्नाय' वर्ण स्वय परपरासे सिद्ध है। शब्द कहीसे बनाये नही गये और न कहीसे लाये गये है, लेकिन पाणिनीकी इच्छा प्रधान मानी जाती है। तब वह शब्दोको लाये तथा वार्तिकें आदि रची गईं। जैन व्याकरण पढनेपर अनेकान्तके दर्शन अनेक स्थलोपर होते है। जैनोंके अनेक ग्रथ (व्याकरणादि) तिरोहित हो गये है, फिर भी जो बचे उनमे बल है तो जैनसाहित्यमे विशेषता मिलेगी। ज्ञानकी दृष्टिसे जैनसिद्धान्त समाप्त नही होता है। जिन्होने इस साहित्यको पढा है उन्हे यथार्थ आस्वादन मिला है। जैन ज्योतिष, आयुर्वेदिक ग्रथ, दर्शन ग्रथ आदि सभीमे अलौकिक स्याद्वाद छिपा हुआ है। बडे-बडे महान दर्शनके ग्रन्थ बन जानेपर भी मालूम होता है, अभी तो इसके कुछ और तत्त्वकी सूक्ष्मता है। धवला, महाधवला (षट्खण्डागम) तथा जयधवलाको पढनेपर भी ज्ञानकी उत्कण्ठा, क्षुधा बढती ही जाती है। नई-नई ज्ञान अभिलाषायें पैदा होती जाती है।

जैन वाङ्मयमे स्नान करने वाला विज्ञ शीघ्र कल्याण कर सकता है—जिसने अपना जीवन अन्य अनेकमे लगा दिया था, इस तरहके महाविद्वान पात्रकेशरीको जब जैनधर्मके तत्त्वोका ज्ञान होता है तब वह इस धर्मका अनुयायी व उपासक बन जाता हैं। इस तरहके एक नही अनेक उदाहरण मिल जावेंगे व वर्तमानमे यत्र तत्र खोजनेपर दृष्टिगोचर होते हैं। चौथे कालमे गौतम महान धुरधर विद्वान जैनधर्मसे घृणा करने वाला कट्टर विरोधी था, किन्तु जब उसे जिनेन्द्रदेव महावीरकी वाणीको पानेका अवसर आता है तो सारे विकल्पोको छोड जैनधर्मको क्या अपना परमहितैषी वह गौतम प्रथम गणधरके पदको सुशोभित करता है? जैन वाङ्मयी विभूतिकाका शब्दो द्वारा वर्णन करना असभव है। उसे समझनेके लिए पवित्र जिनवाणीके समीप ही अपनेको पहुचा देना होगा। इसकी कलायें विशिष्ट अवर्णनीय है। जिसमे कि जिन विकल्पोको स्वय बनाया है उनका ही खण्डन किया गया है। उन्ही विकल्पोको समाप्त करते हैं। अतएव 'उपहन्ति' शब्द दिया गया है। पीततत्वादि, कुण्डल पर्याय सुवर्णसे भिन्न नही है। वही वस्तु इस पर्यायात्मकपनेको प्राप्त है।

अब इस द्रव्यका स्वरूपवृत्तिभूत अस्तित्व नामक जो द्रव्यत्व है वह स्वरूपवृत्तिभूत कहलाता है। अगर इसे अलग कर दिया तो कुछ भी नही रहा। इस तरह प्रतीतिमे आनेपर वह जीवन ही उसी रंगमें रंग जावे, तब ज्ञानबिन्दु मिल पाती है। अगर उष्णता अलग कर दें तो अग्नि ही क्या रहेगी ? द्रव्यका गुण द्रव्यसे अलग नही रहता है। यहाँ अस्तित्व, सत्, द्रव्य, गुण, सत्ता आदि पर्यायवाची शब्द होते हुए भी अन्तरको दिखलाते है। जैसे वर्तते, विद्यते, अस्ति, भवति, समान अर्थको लिए हुए भी भिन्न-भिन्न भावको प्रकट करते हैं। 'पुस्तक वर्तते' अर्थात् पुस्तक समय-समयपर वर्तना करती हुई है। भवति = सत्ता अर्थको प्रकट करता है। विद्यते = मौजूदगी हालतको दिखाता है तथा 'अस्ति', 'है' इस सीधे अर्थको जताता है। अस्ति तथा भवति दोनोका आपसमे आदान प्रदान है। जैसे दो बहिनें अपने-अपने लडकोको लिए बैठी होती है, तब वह अपने-अपने लडकेको न खिलाकर दोनो एक दूसरेके लडकेको खिलाती हैं। इसी तरह भू धातु और अस् धातु एक दूसरेके वाच्यको स्वीकार करती है। जैसे भू सत्तायाम्, भू धातुका सत्ता अर्थ है, "है" अर्थ है और अस् धातु (जो "है" अर्थमे याने सत्तामे प्रसिद्ध है) का भुवि अर्थमे है अर्थात् अस् का 'होना' अर्थ है। इससे यह सिद्ध होता है कि 'है' की व्याप्ति होनेके साथ है और होनेकी व्याप्ति 'है' के साथ है। इसी तरह उत्पाद व्ययसे ध्रौव्य बन जाता है। ध्रौव्यसे उत्पाद व्यय बन जाता है। भू सत्ता कहो या अस्तित्व कहो ये दोनो 'किं पृथक् भूतत्वेन वर्तते ?' क्या पृथकपनेके भूतसे अलग होकर वर्तन कर रहा है ? इस तरह नही है। 'द्रव्य सत्ता अस्तु' अतएव द्रव्य सत्ता ही होवे। द्रव्यको सत्ता ही रहने दो। भाववाच्य पाकर अर्थ हो गया। द्रव्यको तोडो मत, उसे सत्ता ही रहने दो। अधिक या कम कहने गुननेसे कुछ काम नही चलेगा। हमारे कहनेसे बात बनी यह कुछ नही है। इसलिए द्रव्य ही स्वयं सत्ता स्वरूप होवे। एक-एक परमाणु, जर्रा जर्रा स्वयं सत् सिद्ध हुआ है। यह आत्मा परमाणु मात्रको भी कुछ कर सकता है, यह पूर्णतया असत्य है। जो यह सोचते है मैं अमुकका यह करता हूं, अमुकने मेरा काम बना दिया, यह कर्मबन्धका मार्ग बढाता है।

परिणामोकी सतत् सावधानी रखो—कोई सोचे चलो अच्छा कार्य (धर्म) तो सदैव करता हूं तब एक क्षणको खोटे भाव या पापकार्यमे भी चला जाऊं। वहाँ एक क्षणका भी खोटा भाव कोडाकोडी सागर कर्मबन्धका कारण हो सकता है। थोडीसी भी गलती यहाँ माफ नहीं हो सकती। कर्मोका न्याय कभी छोडने नहीं जाता, वह तो भावके अनुसार शीघ्र [illegible] है। यहाँ [illegible] नही। यहाँ यह मनुष्यभव पाकर भी स्वच्छन्द हो [illegible] [illegible] कर्म [illegible] बना ही भोगेगा। अगर धर्मका [illegible], [illegible]—[illegible], किन्तु पापकार्यमें मग्न रहे हैं या मनमें आया तो

सोचता है चलने दो, इनकी तडफन इनकी खुजली कुछ तो खुजा लूँ, किन्तु यह ज्ञात नही, यही खुजली शरीरको विदारण कर दारुण दु खका कारण बनेगी तथा तडफन भी अनन्त हो जायगी, यह कर्मोंका न्याय है। इसे विवेकी ही टाल सकता है।

एक अखण्ड शुद्ध सत्ताक ही तो अपनेको जानना है—धर्म तो आत्माका स्वभाव है उसको जानना और उसके अनुरूप कार्य करना सो धर्म है। आत्माका स्वभाव है जानना और उसके अनुरूप कार्य है मात्र जानना अर्थात् रागादि विकल्प न करके मात्र जानना। सो भैया! जब जानना मात्र ही धर्म है तब धर्मके पालनमे कठिनाई क्या ? जो उल्टा चले उसको तो कठिनाई क्या अज्ञानदशामे असम्भव ही है। हे आत्मन्! तुम अखण्ड शुद्ध सत्ताक हो। देखो द्रव्यसे पृथक्भूत न कोई गुण है और न कोई पर्याय है। इससे तुम अखण्ड हो और सभी द्रव्य ऐसे ही परिपूर्ण है। सो किसी भी द्रव्यका तुममे कुछ आता ही नही, इस कारण शुद्ध सत्ताक हो। अब देख लो उस द्रव्यका स्वरूपवृत्तिभूत अस्तित्व नामक जो द्रव्यत्व है तद्भाव (तस्य भावः तद्भाव द्रव्यस्य भाव द्रव्यत्वम्) नामका गुण ही तो है। वह द्रव्यत्व क्या द्रव्य से पृथक् रह सकता है ? नही रहता। तब द्रव्य ही सत्ता होओ, स्वय ही होवो।

त्रितयात्मक अर्थ ही द्रव्य, गुण, पर्यायमे व्यवस्थित है—वह द्रव्यमे पाया जाता है, गुणमे पाया जाता है तथा पर्यायमे भी पाया जाता है। अर्थके आशयसे द्रव्य, गुण तथा पर्याय तीनो अश हैं तथा अर्थ अशी है। जो भी जानते है वह अर्थ रूपसे ही जानते है। बिना अर्थके कुछ भी नही जाना जा सकता है। अर्यते निश्चियते इति अर्थः, जो निश्चय किया जाय वह अर्थ है। तत्त्वार्थ सूत्रकार श्री उमास्वामी जी ने सूत्र कहा है—'अर्थस्य' जो ज्ञान होता है वह अर्थका होता है। उस अर्थको द्रव्यकी मुख्यतासे जाना जाता है, गुणकी मुख्यतासे जाना जाता है तथा पर्यायकी मुख्यतासे जाना जा सकता है। जब इन सबका आश्रय साथ रहे तब भी जानना अर्थका होता है। वस्तुमे ही जानना होता है, अवस्तुमे जानना नही होता है। अस्तु, जैसे गधेकी सीग तथा आकाशके फूल है। भेदनयसे गुणगुणी भाव है। गुणगुणीमे नानापन नही है। द्रव्य, गुण, पर्याय सत्तासे अलग कुछ नही है। द्रव्यका नाम ही सत्ता है। जैसे सोना है, उसमे पीतत्व सुवर्णका गुण है तथा कुण्डलादि पर्याय है और सुवर्ण स्वय एक पुद्गल पर्याय है। यहापर एक बात और कहनी है, जब तुम अचेतन पर्यायको द्रव्य बनाकर ही दृष्टान्त पेश करते हो तो एक उदाहरण हमारा भी मान लो, जिसमे मुक्तात्मा द्रव्य हो जायगा, केवलज्ञान गुण हो जायगा तथा मोक्ष पर्याय हो जायगी। क्योकि घडा, वस्त्र, मिट्टी, सोनाके उदाहरणोमे कोई रोक-टोक (रुकावट) नही आती है। दृष्टान्तमे समझानेके लिये तो दृष्टान्तके लिए चेतन मुक्तात्मा तो और ही उत्तम रहेगा, लेकिन उसके केवलज्ञानादि गुण मुक्तात्माको छोडकर और कुछ नही हैं। मुक्तात्मा हुआ कैवल्य भाव तो कैवल्य स्वभाव ही अभेद मुक्तात्मा

कहलाता। जो गुण गुणी है वह सत्ता ही है, इन दोनोंसे भिन्न नही है।

वस्तु अपने स्वभावमात्रमें है—मैं स्वभावमात्र ही हू। 'एक स्वभावमात्रं वस्तु' स्वभावमात्र वस्तु है। ज्ञान होनेका स्थान आत्मा है तथा आत्मामे ही क्रोध होता है। लेकिन क्रोधका होना, यह आत्माका स्वभाव नही है। क्रोध केवल वर्तमान कालावच्छेदेन होता है तथा ज्ञान आत्मामे त्रिकालावच्छेदेन होता है। क्रोधका होना ज्ञानका होना नही है। ज्ञानका होना ही क्रोधका होना नही है। मैं ज्ञानमात्र हू, क्रोधमात्र नही हू। भेद करते-करते एक पदार्थका दूसरा पदार्थनही होता है, क्योकि एक पदार्थकी अपेक्षा दूसरेके दो प्रदेश होते है—'प्रदिश्यते उपदिश्यते ज्ञायते' जिसके द्वारा उपदिष्ट जाय उसका नाम प्रदेश है। क्रोधका निमित्तके साथ अन्वयव्यतिरेक है। कर्मणि सति भवति, कर्मणि असति न भवति। क्रोधको निमित्तको ही सौप दिया। एक दम्पति (पति, पत्नी) के दो बच्चे होवें या लडका तथा एक लडकी होवे तो उनमे आपसमे इस तरह तय कर लेते है। लडका पतिका तथा लडकी पत्नीकी, तब वह उन दोनो पर प्रेम भी उसी तरह करते है। वह दोनोमे जुदे-जुदे बँटे हुएसे प्रतीत होते है तथा दोनो मे अर्थक्रिया भी भिन्न-भिन्न होती है। अतएव हमे जिन-जिन बातोसे प्रयोजन सिद्ध हो वह तथ्य है तो क्रोध ज्ञानमय नही और ज्ञान क्रोधमय नही है, दोनो जुदे-जुदे है। एक त्रैकालिक अभेदस्वभावसे दृष्ट होता है, उसका नाम द्रव्य है। जो भेदस्वभावसे त्रैकालिक दृष्ट होता है उसका नाम गुण है तथा नियत कालसे विवक्षित कालावच्छेदेन हो वह पर्याय है। इन तीनोमे जो व्यवस्थित है उसे अर्थ कहते है। मुख्यतासे बहुत-बहुत जगह अर्थका वर्णन नही आता है, द्रव्य, गुणका वर्णन आता है। द्रव्यको छोड गुण तथा गुणकी छोड पर्याये नही है तथा इन तीनोके ज्ञानसे अर्थका अनुभवन होता है। जो देखकर जाना गया वह गुण है। एक गुण अर्थ नही है। अर्थ स्थानीय द्रव्य है, यह कहा जाता है। अनुभवकी दशामे पर्याय विषय नही, गुण विषय नही। अर्थकी ज्यादा टीका नही हो सकती है तथा द्रव्य व गुणकी व्याख्या विशेष हो सकती है, पर्यायकी और विशेष द्रव्यके बिना गुण तथा पर्याय नही है। 'द्रव्येषु गुणेषु पर्यायेषु व्यवस्थितोऽर्थः तर्हि द्रव्य स सत्ता अस्तु स्वयमेव।' द्रव्य गुण पर्यायोमे पाया जाता है। इसलिए द्रव्य सत्ता हो, स्वयं ही हो।

यहा तर्क किया जाता है। द्रव्यका सत्का उत्पाद है या असत्का उत्पाद है। उत्तर—सतुत्पाद भी है व असदुत्पाद भी है। अब सत्का उत्पाद रहे व असत्का भी उत्पाद रहे, विरोध न रहे, इसको सिद्ध करते है। सत्को एक दृष्टिसे कहा है तथा असत्को एक दृष्टिसे कहा है। जो वस्तु है उसका उत्पाद क्या तथा जो नही है उसका भी उत्पाद क्या ? एक: द्रव्यार्थिकनयको सिद्ध करता है तथा दूसरा पर्यायार्थिकनयको सिद्ध करता है। इसीको गाथामे कहते है—

एवं विह सहावे दव्व दव्वत्थ पज्जत्थ त्थेहि ।
सद् सब्भावणिबद्ध पादुब्भाव सदा लभदि ।।१११।।

इस प्रकार स्वभावमे वर्तमान द्रव्य द्रव्यार्थिकनय व पर्यायार्थिकनयकी अपेक्षामे सद्भाव व असद्भावमे निबद्ध प्रादुर्भावको सदा प्राप्त करता है । द्रव्य जो है वह स्वभावमे कैसा है ? द्रव्यार्थिकनयसे सद्भाव निबद्ध है । पर्यायार्थिकनयसे असद्भाव निबद्ध है । ऐसा द्रव्य विकास पर्यायको प्राप्त होता है । द्रव्य जो है उसीका उत्पाद कहा जा रहा है तथा जो नही है उसका भी उत्पाद कहा जा रहा है । जैसे आत्मद्रव्य अनादिसे है, किन्तु वह समय-समयपर अनेक पर्याये बदलता रहता है, 'है' वही एक, यह द्रव्यका उत्पाद हो गया और कोई आत्मा तिर्यंचगतिमें था वह वहाँसे मनुष्यगतिमे आ गया तो यहाँ मनुष्यगतिमे मनुष्यपर्यायका नवीन उत्पाद हुआ है । यह असत्का उत्पाद हो गया । लेकिन द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षा आत्मा जो पूर्वमे था वही अब है । यहाँ एक द्रव्य जो था वही नया रूप लेकर बन गया तथा दूसरा द्रव्य को आश्रय करके ऐसी पर्याय नही होते हुए भी बन गई । यहाँ इस तरहसे भाव आया, सदुत्पाद तथा असदुत्पाद । तब उत्पाद तो सत्का ही होता है, असत्का उत्पाद होता ही नही है । उन सब पर्यायोका नाम ही द्रव्य है, क्योकि द्रव्य अनेक पर्यायोका उत्पाद करता है या उत्पादको प्राप्त होता है ।

अभेद वस्तुके भेद आशयवश होते हैं—यथार्थमे यहाँ मूलमे कुछ भेद नही है किन्तु नय (द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक) लगाकर सत् असत्का उत्पाद कहना पडा है । किसी आलमारीमे चार पुस्तकें रखी हैं । वह कपडेसे ढकी होनेसे दृष्टिगोचर नही होनी है । वहाँ उनका उत्पाद नही किया गया है, किन्तु द्रव्यार्थिकनयसे उनका उत्पाद तो है ही । केवल रूपमुखेन कोई वस्तु नही जानी जा सकती । जैसे एक पका आम है, उसका बिना जिह्वाइन्द्रियके द्वारा स्वाद नही जाना जा सकता है । तब उसको रसमुखेन जानना होगा । उसे केवल पर्यायमुखेन नही जान सकते । द्रव्य गुण पर्याय सत् है । यह सब एक एक उपलक्षण है । जब द्रव्यार्थिक दृष्टिसे देखा तो सत् उत्पाद है तथा पर्यायार्थिक दृष्टिसे देखा तो असत् उत्पाद है । यह द्रव्य जैसा-जैसा भी ऊपर कह चुके हैं उस-उस प्रकारसे समस्त अकलकका लाञ्छन (चिह्न) है । अर्थात् एक अभेद वस्तुको भेदकर सम्पूर्ण चर्चा (प्रकरण) चल रही है । प्रयोजनवश द्रव्यको लाञ्छित कर रहे है । यह द्रव्यके समझनेके लिये दोषोको बता रहे हैं । चिह्न और अवगुणो के मध्यकी बात है । द्रव्यको चिह्नित कर रहे है । उसकी सभी विशेषतायें बता रहे है ।

द्रव्यका सही लक्षण यहाँ दर्शाया गया है । इस प्रकार यह निर्दोष दोष लगाया है । विशेषता यह है कि दोष भी लगाया है वह भी निर्दोष है । अकलक, कलकसे रहित यह लाञ्छन है, क्योंकि कलक वाला कालिमा (मैलेपनसे) युक्त होगा । वह द्रव्य समस्त रूपसे अनादि

निधन है । जिसका न आदि है और न अन्त है । वह स्वभावमे प्रादुर्भावको प्राप्त होता है । परिणामका अर्थ उत्पाद व्यय ध्रौव्यका होना है तथा परिणमनमे भी यही बात आती है तथा द्रव्यका स्वभाव कहने पर भी उत्पाद व्यय एव ध्रौव्य जाहिर होता है । उत्पाद असत्का भी होता है । वह प्रादुर्भाव विकार प्रकट करता है । वह द्रव्यकी अभिधेयतामे द्रव्यके लक्ष्यसे देखो तो सत्का उत्पादक है । जो द्रव्य है वही विकासमे आया तथा उसीका उत्पाद हुआ, यह सत् निबद्ध प्रादुर्भाव है तथा पर्यायको देखनेसे असत्का उत्पाद प्रतीत होता है । यह यकायक नया नही बन गया अथवा यहाँ नवीन द्रव्यकी उत्पत्ति हो गई हो, यह नही है । आधारपर दृष्टि रखकर नही कहते है तो असदुत्पाद हो याने नई बात बनी है । उसी असदुत्पादमें द्रव्याभि-धेयतामे सत् है तथा पर्यायाभिधेयतामे असदुत्पाद है । द्रव्यकी अभिधेयतामे सत्का उत्पाद होता है ।

जिस समय द्रव्य ही अभिधान किया गया तथा द्रव्य ही चर्चित किया गया जहाँ असदुत्पाद है वह सब पर्यायोकी ही चर्चा है । अगर द्रव्यका दर्शन होता है वहा कहो सत्का उत्पाद होता है, जहाँ पर्यायिका दर्शन है वहाँ कहो असदुत्पाद ही है । यहाँ द्रव्यदृष्टिको स्थान ही नही है ,किन्तु द्रव्यकी गौणता है । पर्यायकी मुख्यता तथा द्रव्यकी गौणता है । पर्यायको देखकर ही बोलता जायगा तब यहाँ असद्का उत्पाद किया जायगा । अन्वय शक्तियोका न तो उत्पाद है और न विनाश है । वह अन्वय शक्तियाँ एक साथ प्रवृत्त भी होती है । वह द्रव्यको सिद्ध करने वाली है, द्रव्यको ठीक ढगसे बताने वाली है । उन गुणोके दर्शन द्वारा पर्यायोंका सक्रमण कर दिया । प्रभव और अवसान जिनका लाञ्छन है ऐसी पर्यायें उत्पन्न होती हैं और विलीन होती हैं । वह पर्यायें क्रमप्रवृत्त होती है, किन्तु क्रमप्रवर्तन भी उनमे पाया जाता है । इसका अर्थ है कि वह युगपत् प्रवर्तन नही है । इसके बाद ही वह होती हैं । तात्पर्य मात्र इतना है सब पर्यायें एक साथ नही होती है । एक समयमे एक ही पर्याय होती है । किन्तु द्रव्यमे गुण योगपद्य प्रवृत्त होते है । द्रव्य सिद्धि चलनेपर गुणोका अक्रम प्रवर्तन, योगपद्य प्रवर्तन होता है । भिन्न-भिन्न समयोमे जिनका विकास होता है उन पर्यायोंमे उत्पादन कर दिया । योगमपद्य प्रवर्तन हो यह तो द्रव्यका निष्पादन करने वाली शक्तियाँ हुई तथा व्यतिरेक व्यक्तियाँ पर्यायको निष्पन्न करने वाली है ।

पदार्थोका विष्कम्भ विस्तार द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकी अपेक्षासे देखा जाता है—पदार्थोंको द्रव्यदृष्टिसे देखा जाय तो अनत शक्तियोका पिण्ड है । क्षेत्रकी अपेक्षासे देखनेपर इतने प्रदेशात्मक है, यह कहना होगा । वह तीन तरहसे जाना जाता है—क्षेत्रदृष्टिसे एक प्रदेशी, असख्यात प्रदेशो और अनत प्रदेश वाला है । पुद्गल सख्यात प्रदेशी, असख्यात प्रदेशी और अनत प्रदेशी नही है । यह तो दृष्टिसे क्षेत्र अपेक्षा देखकर सोच । कालदृष्टिसे देखनेपर द्रव्य

अनंत पर्यायात्मक है और भावदृष्टिसे देखनेपर एक स्वभावयुक्त ही है। जैसे यह एक चौकी है, इसके चार पैर है। द्रव्यदृष्टिसे उसे इतनी आकार-प्रकारकी तथा इतनी लम्बी-चौड़ी है, इस तरहके काठकी या पीतल आदिकी है, यह कहना होगा। क्षेत्रदृष्टिसे चौकी इतना स्थान विशेष घेरे है, इस तरह कहना होगा। कालदृष्टिसे कहेगे यह चौकी इतने समयकी पुरानी है या नवीन है अथवा जीर्ण-शीर्ण हो चुकी है। भावदृष्टिसे शक्ति मात्र देखनेमे आवेगा। द्रव्य इस तरह चार प्रकारसे निरखा जाता है। कौनसी दृष्टिसे देखें जिससे हमारा प्रयोजन सिद्ध हो जाय या सहायता मिले तो वह भावदृष्टि है। चैतन्य स्वभावमय ही आत्मा है और उसके बाद आत्मा अनंत गुणोका पिण्ड है, जिसमे कर्तृत्वबुद्धि हटानेमे मदद मिलती है। अन्वय शक्तियाँ द्रव्यका निष्पादन करने वाली है। यहाँपर द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावमे से द्रव्यका आश्रय लेना है। पदार्थ अस्तिकाय आदिसे पदार्थ आश्रय लेता है और बाकीको तिरोहित कर देते हैं। तब हम द्रव्यदृष्टिसे बोलें तो सत्का उत्पाद हुआ। यह सद्भाव निबद्ध कहलाया तथा उसका विकास हुआ कहलाया।

द्रव्यदृष्टिसे जो था वही पैदा हुआ, पर्यायदृष्टिसे जो न था वह पैदा हुआ—जैसे सुवर्ण है, वह पीला है। उस सुवर्णका दस्तबन्द या इमरतीके चूरा (कडा विशेष) बनवाये। उसमे सत्का उत्पाद है या असत्का ? द्रव्यदृष्टिसे देखनेपर सत्का उत्पाद है और पर्यायदृष्टिसे विचार करनेपर दस्तबन्द आदि असत्का उत्पाद है। जब सुवर्ण ही कहा जाता तब पर्यायदृष्टि गौण हो जाती है, क्योकि सुवर्ण पर्याय जब तक हम हैं तब तक जिन्दा रहने वाला है। 'उत्पत्ति और विनाशसे रहित' शब्द नही दिया है, किन्तु जब तक वह सुवर्ण है तब तक उसकी अन्वय जीवित शक्तियाँ है। जो देखा गया वह सीधा इन शब्दोंके द्वारा जान लिया गया है। कभी प्रभवावसान उनका होता ही नही। यह सिद्ध न हो, इसलिए हेमसमान जीवित कहा। जब तक सुवर्ण है तब तक जीवित रहने वाली शक्तियाँ है। अगर उन शक्तियोको कहे हटो तब भी क्या वह इस कहनेसे अलग हो सकती हैं ? नही। पीला रहना सुवर्णका गुण है। किसी दृष्टि से न पीला ही गुण है और न सुवर्ण ही गुण है। क्योकि पीला कहना जो गुण है वह इमरतीके कडोमे है। सुवर्णके दस्तबन्द, करदोनी, इमरतीके चूरा, कर्णफूल, शशिफूल, गलेका हार, बालिया, छन्निया आदि कई गहने बदल-बदलकर बनवाते जावे, और उसमे टाका भी हर समय लगता रहेगा, किन्तु सुवर्णका गुण जो पीलापन है वह दूसरे रूप नही बदल सकता। वह सुवर्ण नदियो, जमीनके अन्दर, नालियो और राख आदिमे पडा रहनेपर भी अपने गुणको नही छोडता है। उन शक्तियोंके द्वारा व्यतिरेक जो शक्तिया है वे पर्याय तक ही जीवित है। दस्तबन्द तभी तक जीवित है जब तक वह है। फिर दूसरी पर्याय अर्थात् दूसरा गहना घडा जानेपर उस नामको पा लेता है। इन पर्यायोके समान जीने वाला यह क्रम प्रवर्तमान है।

सुवर्णके द्वारा जो आभूषण बनने वाला है वह एकदम प्रकट नही हो जावेगा। लेकिन द्रव्यके गुण एकदम प्रकट हो जाते है। सत्भावनिबद्ध ही प्रादुर्भाव है अर्थात् सत्से सहित ही पर्याय की उत्पत्ति है तथा वह सत्तामे ही रहने वाला विकास है। अभेद कर दिखाया है, असद्का उत्पाद नही है। यह न होने योग्य कार्य नही किया गया। यह सत् निबद्ध ही कार्य किया है।

शब्दोंसे आत्माका सुधार बिगाड़ नहीं—अगर किसीने गालियाँ दी तो ये गालियाँ देना आत्माका काम नही है और न शरीर ही दे सकता है, क्योंकि शरीर पुद्गलका पिण्ड है और न वह भाषाका ही काम है। तीनो जुदा-जुदा परिणमन है। अगर यहाँ किसी देहाती अनपढसे कोई 'डेमफूल' कहे तो वह नही समझ सकेगा। उसी तरह इगलैंडमे किसीसे 'मिथ्यादृष्टि' कहा जाय तो वह भी उसका मतलब नही समझेगा। तब भाषाके द्वारा बोला हुई गाली भी कुछ अनिष्ट नही कर रही है। किन्तु चारित्र गुणका ही ऐसा प्रवर्तन चल रहा है, अपनी रुचि माफिक मान रखा है। अमुकने मेरा यह अपकार किया, यह गन्दे शब्द कहे, इनके द्वारा मेरा अपमान हुआ आदि। यह सब स्वय विचार करनेसे ऐसा मान लिया है, किन्तु वह इस रूपसे नही है। कोई किसीसे लुच्चा कहे तो लु चन केशोका किया जाता है। इतनी शुद्ध अवस्था होनेके लिए वह कह रहा है। 'लफगा' अर्थात् लफ गये हैं अग जिसके, इस तरहका वह नम्र पुरुष। 'धीट = धिया तिष्ठति इति धीष्ठः।' स्थिर है बुद्धि जिसकी वह हुआ धीट पुरुष। यथार्थमे सुनने वाला गालियोका स्वय निर्माण करता है। अगर कोई किसीको लक्ष्य लेकर गाली देता भी है तो वह शरीरसे चिपकती नही, आत्माका कुछ अहित करती नही, किन्तु वह तो कर्मोंकि बन्धन शिथिल करनेका एक उपाय हाथ लग रहा है। उस सम्बन्धमे सोचना शुरू कर दें, जब तक यह शरीर है तब तक अनादिकालसे दूसरोके द्वारा इसकी निन्दा हो रही है, गालियाँ मिलती है। मुह पर निन्दा नही करता कोई तो परोक्षमें वह भरपेट निन्दा करता है। दूसरोमे खिल्लियाँ उडाई जाती है। इस निन्दासे नेता, सेठ, विद्वान्, त्यागी, मुनि भी नही बच सकते। इसलिए गालियाँ देने वालेका बुरा विचारनेकी जगह स्वयके कर्म-कलकोको हटानेका उद्यम क्यो न किया जाय ?

प्रश्न किया गया कि असत्को सिद्ध किस कारणसे किया जा रहा है तब समाधान करते है, चिन्तित मत होओ किन्तु यह सत् निबद्ध ही है। क्योंकि अचानक कोई कार्य नही होता है। जिसका मूल नही है वह क्या बनेगा ? पहलेसे जरूर कुछ था अर्थात् पुद्गल स्कन्धों तथा जीव द्रव्यके मेलसे मनुष्यादि पर्याय प्राप्त होती है।

संपत्ति व विपत्ति भी अभिप्रायकी कल्पना है—मानलो १००), १०००) या और भी अधिकका घाटा आया तो क्या विपत्ति आई ? विपत्ति केवल जो मिथ्या आशय बना रखा

उसको है। जिसका जैसा ख्याल सही विचार बनता है वह वैसी ही विपत्ति मानकर दुःखी होता है। अगर कोई बालक किसी शहरसे २-४ मील गाव पर जाने वाला हो, जाते समय किसीने अचानक कह दिया, रास्तेमें अमुक स्थानपर वडके ऊपर हौआ (भूत-प्रेतादि) रहता है, जिसके वडे-वड़े दांत, नख है।' यह सुनकर बालक भयभीत हो जाता है या तो उसका जाना असंभव हो जायगा या फिर रास्तेमे डरता हुआ हौआका चित्र दिलमे बसाये हुए जावेगा। इसी तरहका दुःखका चित्र स्वयं बना रखा है। आत्माको क्या दुःख होता है, शरीर पौद्गलिक है उसका भी कुछ नही बिगडता। जिस तरह बेवकूफके सिरपर अनेको फजीहतें (दुःख) लगी रहती हैं, यही दशा अज्ञानमे प्रत्येककी हो रही है। जिन्होने अपना आशय ठीक बना लिया है, वह नरकमे रहते हुए भी दुःख नही मान सकते तथा स्वर्गके वैभवशाली सुखोंमें मदोन्मत्त नही हो सकते। फिर मनुष्य क्या कम विवेकवान् है ? फिर क्यो दिन-रात परिश्रम करता दिमाग जुटाता रहता है जो भी कुछ हो रहा है वह निमित्त और नैमित्तिकतासे हो रहा है। भाव जिस तरहका बनाया वैसा निमित्त आश्रय हो जाता है। फिर भी बाह्यका परिणमन बाह्यमे है तथा अन्तरङ्गका परिणमन अन्तरङ्गमे है।

द्रव्य परिणमनशील है अतः सदुत्पाद व असदुत्पाद दोनो सही बातें है—सत् या असत्का उत्पत्तिका विषय चल रहा है। जब किसी पर्यायपर लक्ष्य किया जाता है तब असद्की उत्पत्ति कहना होगा तथा जब मूल द्रव्यपर ही लक्ष्य रखा जायगा उस समय सद्की उत्पत्ति ही कहना होगा। केवल जब सुवर्णको कहेगे तब सद्का उत्पाद कहना होगा तथा उसके बने हुए आभूषण उसकी पर्याय कहलावेंगी। व्यवहारमे भी बनावटी चीजको, पुरुष, स्त्रीको, बालकको जो कि कपडोंके बनाव-ठनावसे सुसज्जित है, विचित्र-विचित्र आभूषणोको धारण किये हुए है उसे मनुष्य कह देते हैं। आज तो आप बहुत बन रहे। वाह क्या कहना तुम्हारी शानका ? तो यहा भी प्रकट होता है कि मूल चीज कुछ और है किन्तु उस पर मुल्लमा (कचरा या पलस्तर) चढाया गया है। यह सब पहलेका ही रूप बदल रहा है। सत्की उत्पत्तिपर दृष्टि रखना यह द्रव्यार्थिक नय है। इसके विपरीत जब पर्याय लक्ष्यमें आई तब असत्का उत्पाद कहना होगा। उत्पाद और व्यय ही है चिन्ह जिनका, इस तरहकी वह पर्यायें उत्पाद और विनाशके बिना नही जानी जा सकती हैं। ऐसी पर्यायकी व्यतिरेक व्यक्तिया ही भिन्न भिन्न विकास हैं तथा व्यक्त (प्रगट) हो गया है पर्यायका निष्पादन जिसमे इस तरहकी वह अवस्था विशेष है। इन विकासोसे ही पर्याय बनता है। जब पर्यायको गौण किया तथा द्रव्यको मुख्य किया तब सत् प्रधान रहेगा तथा पर्याय गौण रहेगी और जिस समय ध्यान नही देकर पर्यायका ही वर्णन करेंगे उस समय पर्याय ही पर्याय नजर आवेगी। इस समय सत्का उत्पाद हुआ या असत्का ? पर्यायको देखनेपर असत्का उत्पाद हुआ तथा

जब जो था वही उत्पन्न हुआ, यह सत् ही रहा । जब अगद अर्थात् (सुवर्ण आदिके आभूषण) आदि ही पर्यायें होवें, उस समय पर्यायें बोलनेपर सुवर्णको नही जाना, किन्तु सुवर्ण तथा उसके बने आभूषण व्यतिरेक विकास है । जितने आभूषण बने वह पूर्व-पूर्वकी पर्यायोको मेट कर बनते गये ।

वस्तु प्रति क्षण एक पर्यायमात्र है—अगर हम वस्तुवर्णको देखने लगें तो पर्यायका व्यतिरेक विकास ही नजर आवेगा । वह क्रमसे प्रवृत्त हुई । अगर यह न हो सके तो सोनेकी डली लानेपर उससे शरीरमात्रको स्पर्श करनेसे दस्तबन्द, बाजूबन्द, लल्लरी, तिदानी, गोप, ठुसी, गुञ्ज, करदोनी (तागडी-कमरसूत्र) आदि बन जाना चाहिए तथा सुवर्णकार (सुनार) को भी काम नही करना पडेगा जिससे उसकी रोजी मारी जायगी । अगदादि पर्यायोका निष्पादन करने वाली पर्यायें ही है । सुवर्णके विकासने दस्तबन्द, कर्णफूल, शीशफूल, छन्निया, चूरा आदिको ही उत्पन्न किया । इस सुवर्णके विकासने ऐसा बनाया, किन्तु दस्तबन्द, मुरकिया, झेला, उधरकना, बालिया, बिजली, काँटा आदिने क्या बनाया ? जो परिचायक है वह उत्पादक है तथा परिचयमे आने वाला उत्पाद्य है । तो इस सुवर्णके विकासने पर्यायको बनाया । जैसे अपनी अगुलीको गोल-मटोल, टेढी आदि करो तो वह सब अगुलीकी दशाये होगी, वह अगुलीसे भिन्न नही होगी । भिन्न-भिन्न पर्यायोके विकास द्वारा गौण हो गया है सुवर्ण, इस तरहका वह पर्यायोमे भी वही मूल शुद्ध रूपको झलकाता हुआ प्रकट कर रहा है । उसमे किसी तरहकी विवर्णता नही आ सकती है ।

पर्यायबुद्धिके परिणमन विचित्र होते हैं—इस सम्बधमे वर्तमान अवस्था अत्यधिक शोचनीय हो रही है । एक तरफ गरीब जनता गरीबीसे तडफ रही है । यहाँ तक कि भूखकी वेदना न सही जानेपर बच्चोके दुःखसे विह्वल होकर पति-पत्नी तथा चार बच्चोको पनि रोटियोमे शखिया (जहर) मिला स्वय खा जाता तथा बच्चे स्त्री भी खाकर सदैवको मृत्युकी गोदमें सो जाते है । इसके विपरीत धनवान मनमाना मुनाफा उठाकर, घूसखोरी करके मनमाना मुनाफा उठा रहे है । सहारनपुरके बारेमे ही सुना था कि किसी प्रमुखने यह सूचना दी अगस्त १९५८ मे कि ४-५ दिनमे गल्ला महगा होगा । तब उनके परिचित व्यापारीने ५००० बोरी गेहूका स्टाक कर लिया । इस तरहके और भी अनेक उदाहरण खोजनेपर मिल जावेगे । धनवान या पैसे वाले कहे जाने वाले मन माफिक जेवरात बनवाकर पहिनते है तथा वह कपडे जिनमेसे शरीरकी आभा दिख जाय, उन्हे पहिना जाता है । वह कपड़े भी [illegible] पहिने जाते है कि दूसरे प्रशसा करें । लेकिन जितनोके द्वारा वह प्रशसा नही मिलती [illegible], जब कि उससे ज्यादा अनेकोके द्वारा निन्दा होती होगी तथा दीन गरीब भूखोकी आहे [illegible] कर अश्रुपात उगलती होगी । क्या उनके मनमे इतनी निर्दयता सवार हो चुकी ? उनके पालन-

पोषणके वातावरणमे लेकर आज तक वह इस योग्य बन गये कि दुःख जानना उनकी सामर्थ्य के बाहर हो गया। आजकी महगाईमे गेहू ८०) रु०, ९०) रु० मन और चावल ८०) रु०, ९०) रु० मन बिक रहा है। इस समय गरीब मानव या साधारण परिस्थितिका व्यक्ति परिवारके भरण-पोषणमें भी कुटाई करता है। धनवानोका प्रभु उनकी आत्मामे ओझल हो गया। उन्हे कैसे कह देवें, वह आत्मदेव प्रभुकी खबर लेते होंगे। उन्हे तो सुननेमे ही मजा लेना है तथा सुनाने वालेकी सूरत देखनेमे ही सब कुछ समझ लिया है तथा जिस सोने आदि के जेवरात बनवाये और उसकी दुर्दशा न करके शोभा प्राप्त करना चाहो, किन्तु हो रहा है इसके विपरीत। वह सोना, चाँदी आदिका जेवर आज बननेपर कुछ दिनमे ही एक रुपयेके बारह आने या दस आने मूल्य कठिनाईसे पा सकता है। यह तो ठीक है कि अगर यह भी न किया जावे तो मजदूरीकी मजूरी ही नही मिल सकेगी। अगर आभूषणोको दिखानेका भाव नही होता तब उन्हे इतने चटकीले-भडकीले बनवाकर सादा कडा मात्र ही क्यो नही पहन लिया जाता? आजका त्यागी वर्ग भी कुछ मनचला बन गया। जो कि मलमलके धोती दुपट्टे आदि बहुमूल्य कपडोके द्वारा समाजमे अपना आदर्श उपस्थित करते हैं। यह बात सभीमे न होकर थोडोमे होनेपर भी सबके लिए दोषकारी बन जाती है। ऐसी अवस्थामे वह दूसरोको धन वैभवसे मुख मोडनेका उपदेश देवें तो उसे कौन अगीकार कर लेगा?

विकल्पोके आवरणने स्वभावका घात कर लिया—एक समयकी बात है कि मुझे घर वालोने बन्धनरूप गुज साकर व अन्य चीजे पहननेको कहा। हमने काफी मना किया, लेकिन वह नही माने, क्योकि उन्हे तो शोभा रखनी थी। यह भावना घर करे बैठी थी। तब हमने कहा कि अगर ऐसी ही बात है तब इस गुजको हाथमे लेकर चलते हैं जिससे सभी देखते चलेंगे। तब उन्हे भी मालूम हो जायगा कि अमुकके घरमे गुज साकर आदि हैं। यह विकल्प-बधन स्वतत्र विचरने वाले चेतनको कैसे सह्य हो जाता है? चेतनकी शक्तिपर जो आवरण डाल रखा है वह व्यक्त हो जाय तब मोक्ष पाना दुर्लभ नही रह सकता।

जिसने पर्यायपर ही ध्यान दिया तब सुवर्ण (हेम) गौण हो गया। सुवर्णके समान जिन्दा रहने वाली शक्तियाँ और गुण हैं। उन्हे गौण करनेसे मूल द्रव्यको किस तरह कहा जायगा? पर्यायदृष्टिको गौण कर दिया तब द्रव्यदृष्टिपर प्रधानता रहेगी एव जब द्रव्यदृष्टिको गौण कर दिया जावेगा तब पर्यायकी मुख्यता रहेगी, यह दोनो अपनी-अपनी विशेषतायें बता रहे है। पर्यायदृष्टिमे रहनेपर असत्का उत्पाद स्वीकार करना पडेगा। इस अपेक्षासे जो न था वही बन रहा, यह वर्णन असत्का हुआ और जो था वह बना, यह वर्णन सत्का हुआ। जैसे सुवर्ण।

इसी तरह आत्मापर भी घटाया जा सकता है। जैसे कोई आत्मा देवगतिमे था।

वह वहाँसे चयकर मनुष्यगतिमें आ गया। यह चेतनकी ही दशा है लेकिन पर्यायकी अपेक्षा देवसे मनुष्यपर्याय प्राप्त की तब मनुष्यपर्याय कहना पडेगी। यहाँ एक पर्यायका व्यय हुआ तथा मनुष्यका उत्पाद हुआ। तब असद्का उत्पाद हुआ कहलाया। किन्तु जब हम पर्यायको दृष्टिमे न रखें और द्रव्यको (आत्माको) लक्ष्यमे लेवे तो वही आत्मद्रव्य है जिससे सद्का उत्पाद हुआ कहलाया। इस तरह सत्का उत्पाद तथा असद्का उत्पाद दोनो बातें सिद्ध होती हैं।

द्रव्यमें पर्यायें उन्मग्न निमग्न हो जाया करती है—पर्यायकी विवक्षामे असद्की उत्पत्ति मानी गई। जिसे दूसरे शब्दोमे पर्यायकी अभिधेयतामे असदुत्पाद कह सकते है। यह भी द्रव्यका व्यतिरेक विकास है। जिन्होने पर्यायोका निष्पादन किया तथा दूसरी ओर द्रव्य भी साथमे अपने सच्चे सही रूपको लिए हुए है। 'निष्पन्न उत्पन्न', इनमे थोडा अन्तर हो जाता है। निष्पन्नमे कुछ उत्पाद होने पर भी जो दृष्टि शिथिल रहती है तथा एक सिद्धि करनेकी दृष्टि बनी रहती है। किन्तु कुछ भी नही है, उसे खडा कर देना उत्पाद है। उन व्यतिरेक विकासोमे जो पर्यायोका निष्पादन किया था वह गुणोसे जुदे है, वे प्रदेशसे जुदे होकर नही रहते है। भेदविवक्षामें पर्यायें योगपद्य प्रवृत्तिको प्राप्त करके रहते है। दृष्टान्तमे एक समय की अनेक पर्यायोको लेना चाहिए। वह सब एक साथ ही है। एक गुणकी अनेक पर्यायें एक साथ नही होती है। वह पर्याये जितनी है उनका उत्पत्ति आधार भी सोचे, वे पर्यायें गुणके विकास है। यह सोचनेपर गुणपर दृष्टि गई वह अन्वय शक्तियोको छोडती नही है। इस कारणसे उन विकासोने पर्यायोको द्रव्य रूप कर दिया अर्थात् वह उनसे भिन्न नही है, किन्तु द्रव्य-रूप ही है। सुवर्णके आभूषण बनें। वह विकासको प्राप्त हुआ है। वह क्या सुवर्णसे पृथक् है अथवा सुवर्णरूप ही है ? दस्तबन्दको, छन्नको सुवर्णरूप ही तो किया है। वह सुवर्ण अलग नही बैठा है।

इस गाथाके विवरणमे यह कहा गया है कि जब द्रव्य ही विवक्षित होता है, पर्यायें विक्षित नही है तब उत्पाद व्ययरहित, एक साथ प्रवृत्त होने वाली, द्रव्यकी निष्पादिका अन्वयशक्तियोके द्वारा उत्पादव्ययलाञ्छित, क्रमप्रवृत्त पर्यायकी निष्पादिका उन उन व्यतिरेक व्यक्तियोका संक्रमण कराते हुए द्रव्यका सद्भाव निबद्ध ही प्रादुर्भाव (उत्पाद) जानना। जैसे कि जब हेम ही विवक्षित है, अङ्गदादि पर्यायें नही तब हेमके समान (जबसे सुवर्ण है तभीसे व जब तक सुवर्ण है तब तक) जीवित रहने वाली, एक साथ प्रवृत्त, हेम (सुवर्ण) की निष्पादिका अन्वयशक्तियोके द्वारा अङ्गदादि पर्याय समान (जब तक जो पर्याय है तभी तक) जीवित रहने वाली, क्रमप्रवृत्ति, अङ्गदादि (बाजूबंद आदि) पर्यायोकी निष्पादिका उन उन व्यतिरेक व्यक्तियोका सक्रमण कराते हुए सुवर्णका सद्भाव निबद्ध ही प्रादुर्भाव है।

इसी प्रकार पर्यायप्रधान आशयका विलास देखो—जब पर्यायें ही विवक्षित होती हैं, द्रव्य विवक्षित नही तब उत्पाद व्ययचिह्नित, क्रमप्रवृत्त, पर्यायकी निष्पादिका उन उन व्यतिरेक व्यक्तियोके द्वारा उत्पाद व्यय वर्जित, एक साथ प्रवृत्त द्रव्यकी निष्पादिका अन्वय शक्तियो का सक्रमण कराते हुए द्रव्यके असद्भावनिबद्ध ही प्रादुर्भाव है। जैसे कि जब अंगदादि पर्यायें ही विवक्षित है, हेम नही, तब अगदादि पर्यायोंके समान (पर्यायके काल बराबर) जीवित, क्रमप्रवृत्त, अंगदादि पर्यायोकी निष्पादिका, उन-उन व्यतिरेक व्यक्तियोके द्वारा हेम समान जीवित एक साथ प्रवृत्त, हेमकी निष्पादिका अन्वयशक्तियोको सक्रान्त करते हुए सुवर्णका असद्भाव निबद्ध ही प्रादुर्भाव जानना।

तात्पर्य यह है कि जब यह सोचा कि वही वस्तु तो निष्पन्न हुई जो थी, इस दृष्टिमे सत्का उत्पाद समझा गया व जब यह सोचा कि नई बात हुई जो पहिले न थी, इस दृष्टिमे असत्का उत्पाद समझा गया।

अहङ्कारकी बू से दूर रहना ही ठीक है—शास्त्रोमें कर्तृवाच्य तथा कर्मवाच्यमे से कर्मवाच्यको ही प्रधानता दी जाती है। उसी तरह लोकमे भी कर्तृवाच्य और कर्मवाच्यका प्रयोग होता है। जब कहा जाता है, मैं समझाता हू 'तब कर्तृवाच्य हुआ और जब कहें' 'मेरे द्वारा समझाया जा रहा है, यह कर्मवाच्य हुआ। इन दोनोमे विशेष अन्तर है। कर्तृवाच्यमे 'मैं' पनेका अहकार भरा हुआ है। कर्मवाच्यमे कर्मभूत वस्तु अपना कार्य कर रहा है, वहाँ कर्ता निमित्त है जो कि अहकारकी बू से काफी दूर है। 'मैं पुस्तक लिख रहा हू' और 'मेरे द्वारा पुस्तक लिखी जा रही है' यहाँ पहले वाक्यका प्रयोग अहकारकी चूरतासे प्रकट किया जा रहा है और दूसरा वाक्य 'अन्तरगकी प्रेरणासे प्रेरित होकर रहा है' ध्वनित हुआ, उसमे वह अपना निमित्तमात्र बता रहा है अर्थात् मै तो कुछ नही लिखता हू। किन्तु जो पूर्वके प्रचलित शब्द है उन्हीका सग्रह कर सेवारूपमे आप सबके समक्ष उपस्थित हो रहा हू। अगर आपको हितप्रद सामग्री ही ग्रहण कर लेना तथा अन्यपर ध्यान नही होना, यह भाववाच्य नम्रताको द्योतित करता हुआ सरलता ज्ञापित कर रहा है। कर्तृवाच्यमे सम्बधको ढीला करने की गुजाइश कम है जब कि कर्मवाच्यमे सम्बध, सयोगमे रंगनेका पूर्णतया भाव जाहिर नही होता है। इसी तरह सभीके बोलचालमे इसी प्रकारकी भाषाका प्रयोग होता है। इसमे भी कर्मवाच्यके प्रयोग अधिक होने से ज्ञानरूप शब्द निकलते हैं, किन्तु जहाँ अपने को मुख्यतासे कहनेका आशय होता है वहाँ कर्तृवाच्यका प्रयोग होता है। जैसे 'मैं अमुक काम करता हू' यहाँ तत्त्व नही ग्रहण किया जा रहा है। जिन्हे तत्त्वज्ञान होता है उनका कर्तृवाच्य शिथिल हो जाता है। कर्मवाच्यको जो भी बात कहनी होगी वह इस ढगसे कही जावेगी जो दूसरेको अखरे नहीं। अगर वह कहेगा कि 'यह पुस्तक मैंने लिखी है' तो उसका

यही भाव रहेगा, इस पुस्तकको सब कोई समझे कि इसने लिखी है। ज्ञानीको बोलना पडे तो इसे वह कर्मवाच्यमें बोलता हुआ नम्रताको झलकाता है। यहाँ बनावटपनका काम नही रहता है। घुमा-फिराकर बोलने वालेकी तथा छलसे फसाने वालेकी कलई तभी तक छिपती है, जब तक वह ज्ञानियोकी दृष्टिमे नही आती। व्यवहारमे ऐसा कह देते है कि यह पुस्तक किसने लिखी है? तब शान्तप्रकृति वाला कहता है–'लिखी गई है।' यह कर्मवाच्यका प्रयोग कर्णमें मधुर लगने वाला है और कर्तृवाच्यमे कहे—'मैंने लिखी है।' इसपर ध्यान देनेसे उसकी अहं-कारता प्रकट होता है। साथ ही जिन्हे इस बातका ज्ञान नही है वह १० जगह अपना नाम छपवायेंगे, लोगोमे प्रचार करेगे। ख्याति पानेके लिए जगह-जगह इस सम्बधी बातको प्रकट करेंगे तथा कहेगे 'यह पुस्तक मैंने लिखी है, इसे पढना चाहिए।' यह चर्चा उस व्यक्तिके लिए दिल खुश करने वाली मालूम पडती है, किन्तु परिणाम भयंकर है। इन सबको छोडकर बोलने का अवसर आवे तो कर्मवाच्यका प्रयोग उत्तम है। कर्मवाच्यसे बढिया प्रयोग भाववाच्यका है। इसमे अहकारका तो पूर्णतया अभाव है और भाववाच्यकी भाषा मधुर एव कोमलतासे सहित होती है। भू और अस् धातुओका प्रयोग अधिक जगह होता है। असूसे एक वचनमें अस्ति बना, जिसका अर्थ–है। 'भुवि तथा भू सत्तायाम् से भवति' अर्थात् होता है। जिसका अर्थ है—"है"। इन दो धातुओको लेकर वर्षो बोलो, बडेसे बडा ग्रथ लिख डालो, तब भी वाक्यो के प्रयोगमे कोई कमी महसूस नही होगी। इच्छानुकूल अच्छेसे अच्छे सस्कृत या अन्य भाषाके ग्रथका अनुवाद कर डालो, कुछ भी बोलते जाइये, इस 'है' और 'होने' मे काम चल जावेगा। यहाँ इस तरह कह सकते है कि कुछ बोलिए या आपका भी कुछ इस विषयपर बोलना हो जाय। मैं तरसो (परसो) वहाँ जाऊँगा या मै वहा गया, मेरा वहाँ जाना हुआ था या जाना होगा। यहा है और हो रहा है मे कोई भी विषय बोल लो, कही परेशानी नही आनेकी और जब कहा जाता है कि मैं लिख रहा हू, पढ रहा हू आदि बोलनेपर कडाईका प्रयोग लिए मालूम पडते है। कर्मवाच्यसे शान्तिकी गुजाइश हो भी सकती है या सभावना की जा सकती है। यहा कर्मवाच्यका प्रयोग किया है कि जब द्रव्य ही कहा जा रहा है अथवा पर्यायें ही कही जा रही है।

पदार्थोंमे पर्यायें होती है उसका अहंकार क्या—पदार्थ है और वह परिणमता रहता है। जो परिणमन होता है वह पहिले न था, किन्तु जो पदार्थ पहिले किसी रूप परिणत था वही तो अब इस रूप परिणाम रहा है। वहा असद्भावकी उत्पत्ति है, जब कि पर्यायदृष्टि बनाई गई तब उसीका वर्णन किया जायगा। उस समग्र द्रव्य नही कहा जा रहा है। पर्यायकी दृष्टि मुख्य बनाकर कहा जावे और पर्याय समझमे आवे, वहा जितने भी व्यतिरेक विकास है उनमें क्या अन्वय शक्तियोका आश्रय छोडा? नही। जो पर्यायोकी निष्पादिकाएँ है उनमे अन्वय

शक्तियोका सम्बध पाया जाता है ।

आगे इसीको स्पष्ट करते है । दार्ष्टान्त पहले वह आये और दृष्टान्त बादमे कहा जा रहा है । वह जो सुवर्णका विकास उन विकासोके द्वारा सुवर्णकी शक्तियाँ थी उन्हीको प्राप्त किया है । क्या अगद पर्याय पीतत्वगुण सुवर्णको प्राप्त नही करती है ? अगद (आभूषण) पर्याय सुवर्ण तथा पीतत्वको छोडकर नही पाई जाती है । तो लो, उन विकासोने अगद आदि पर्यायोकी द्रव्य रूप कर दिया । पर्याय गुणको प्राप्त हैं, गुण द्रव्यको प्राप्त है, द्रव्य गुणको प्राप्त है । उन्ही पर्यायोको सुवर्णरूप कर दिया । अगर उन पर्यायोमे सुवर्ण नही रहता तो उन्हे कौन बनवाता ? सुवर्णका विकास दस्तबन्द टकआउर, हार (जजीर) मुद्रिका आदि आभूषण रूप न करे उसके लिए कौन ललचावेगा ? अतएव द्रव्यदृष्टिसे सुवर्ण सद्का उत्पादक है तथा पर्यायदृष्टिसे वहाँ असद्का उत्पाद है तथा पर्यायें भी सद् रूप हो रही है और असद्का विकास द्रव्यरूप ही रूप हो रहा है । विकासोंने पर्यायोको द्रव्यरूप कर दिया । जब द्रव्यकी विवक्षा की जाती है तब सत्की उत्पत्ति होती है । द्रव्यको निष्पादन करने वाले उन गुणोने क्रमप्रवृत्ति प्राप्त की, वे व्यतिरेक व्यक्तियोको प्राप्त क्या गुण नही हैं ? तब अन्वय शक्तियोंने द्रव्यको पर्यायरूप कर दिया । यहाँ पर कोई भी कर्ता निर्माता नही है, सब ही अपनी-अपनी सामर्थ्यसे परिपूर्ण है । सब ही कार्य स्वतः बन रहा है । सत् ही इस वजहसे हो रहा है ।

सबका अस्तित्व अपना-अपना काम करता है, चिन्ता विकल्प व्यर्थ है—अगर कोई पिता पुत्रका ध्यान न रखे, तब क्या उसमे कोई कमियाँ रह जावेंगी ? लडकेके पुण्यसे पिता अपने आप उसकी सेवा खुशामदमे लगा रहता है । उसके स्वास्थ्यकी चिन्ता रखता है । पिता सारी आपत्तियोको सिर पर न भी उठाये फिरे, तब भी लडकेमे कोई कमी नही आनेकी । उसे तो निमित्त सम्बन्ध उसी रूप मिला है जिस रूप उसका भवितव्य होना है । उसे कुपूत जानकर भी छोड देने पर कभी-कभी उसका भाग्य पिता तथा घरके कुटुम्बियो से भी अच्छा चमक जाता है । उसके अन्तरङ्ग व बहिरङ्ग काम कोई भी बाकी नही पडे रहते हैं । जगलके वृक्ष बिना पानी दिये भी लहलहाते रहते है । जब कि बगीचाके वृक्ष थोडेसे भी पानीकी कमी से मुरझा जाते है । दोनोने अपनी-अपनी सामर्थ्य व पुण्यके अनुसार उपयुक्त स्थान पाया है । इतने पर कोई सोचे मैंने इसे ऐसा कर दिया या अमुक गरीब घरानेकी लडकीको भी व्याह कर उसको ऊचा उठा दिया, मनुष्य बना लिया, दशा सुधार दी आदि । यहाँ उसका पुण्य ऐसा ही था, तब वह स्वय वैसे स्थानको पा सकी । पाप उदय हो तो रईस घरानेकी लडकी भी दुखोमे फस जाती है । तब वहाँ उसका पाप ही मानना होगा, तथा जिसे ऊँचा उठा दिया उस कारणसे स्वयकी ही उन्नति, तरक्की की । दूसरेका कुछ किया हो यह असत्य एव

असभव है। मेरे भले बुरे सोचनेसे न कोई बन सकता है और न बिगड ही सकता है तथा चेतनका जडसे कोई सम्बन्ध भी नही है। यहाँ कर्तृत्व बुद्धि तथा सयोग बुद्धि बनानेसे कोई कार्य भी सिद्ध नही होता है। जो भी धन वगैरा मिला है या कुटुम्बी जन मिले है वह भी मेरे वडप्पनकी वात नही है। भारतमे ही अनेको विभिन्नतायें नजर आती है। एक ओर दीन दरिद्रीका समूह है तो दूसरी ओर धनी मानी है। लेकिन क्या वह धनमे सबसे बडा माना जाता है ? लेकिन वह भी उस धनके दु खसे ऊब चुका है। उसे शान्तिका मार्ग दिखाने वाला कोई नही है। वह कितनी ही आत्माकी आवाज सुने, किन्तु वह सब बिना सच्चे ज्ञानके सांसारिक कार्योंमे फसाने वाली ही है। एक मोटरकम्पनीका मालिक अपने नौकरोके जीवन को देखकर ईर्ष्या करता था। लेकिन यहा उस धनको पानेके लिए सदैव लालायित रहता है जो दिन रात हवाई जहाज, रेल, मोटर आदिमे दौडा दौडा फिरता है, वह क्या शान्तिका अनुभव करेगा ?

यथार्थ ज्ञान होनेपर अज्ञान या भ्रमका क्लेश दूर हो जाता है—वस्तुका सही ज्ञान होनेपर अनेक चिन्तायें दूर भाग जाती है। किसी बालकसे कोई गणितका सवाल पूछा जाय, जब तक वह उत्तर नही दे लेता तब तक अशान्ति उद्विग्नता महसूस करता है तथा उत्तर दिमागमे आया और चटसे उसे प्रकट करके सन्तोषकी सास लेता है।

जो जल्दी-जल्दी बोलनेसे रूपक बन जावे वह पक्की सन्धि कहलाती है और अलग-अलग शब्द बोलनेसे कच्ची सन्धि कहलाती है। जैसे कच्ची सन्धिमे जिन + इन्द्र:, राम + ईश्वर, इन्हीको जल्दी-जल्दी बोलनेपर पक्की सन्धि इस तरह होगी—रामेश्वर', जिनेन्द्रः। बालकको आठ अट्ठे पूछा गया था तब उसने आठ अठैया ६४ उत्तर दिया। यहाँ आठ गुणित आठ है। उत्तर देनेपर बालककी समस्या सुलझ जाती है। वह प्रसन्नतासे भर जाता है। यह अनुभवसे समझमे आता है। जब बात दिलमे समा गई, पूर्ण समझ चुके तब विलक्षण जाति का आनन्द उत्पन्न होता है, किन्तु राग लगा रहनेपर बाधा आती है। आनन्द ज्ञानका होता है। कोई चाहे ज्ञानसे उपेक्षित होकर आनन्द पा लेवे, यह असंभव है।

महत्त्वकी बात विशेष होती है या सामान्य—तब सामान्य ही महत्त्वप्रद होता है। व्यापक विशेष होता है या सामान्य। समता विशेषसे होती है या सामान्यसे। सभी जगह सामान्यको मुख्यता दी जाती है। यहाँ इतने सज्जन भाई बैठे है, इनमे किसीको सेठ, रायबहादुर, मन्त्री जी, मजिस्ट्रेट आदिकी विशेषता दी जावे तो सोचने वालेके मनमे क्षोभ उत्पन्न होगा और मनुष्य सामान्य माननेपर क्षोभ नही होता है। समान दृष्टियोमे समता रहती है, विशेषको महत्त्व देनेपर क्षोभ होता है।

मायाचारीपर क्षोभ इसलिए करते है कि वह विशेष तौरसे दूसरोके प्रति मायाजाल

फैलाता है। वह प्रकट हुए बिना रहता नही। यदि उसे साक्षात् भले प्रकट न करे, किन्तु दिल ही दिल उसके अदर क्षोभके अगारे दहकते रहते है। लेकिन वही जब सबके प्रति समान दृष्टि रखकर अपने जैसा समझकर सरल स्वभावसे आचरण करता है तब उसके प्रति श्रद्धासे माथा झुक जाता है। यह सब सामान्यकी विशेषतायें है। रागद्वेषका नाम ही विशिष्ट परिणाम और विशुद्ध ज्ञानका नाम अविशिष्ट (सामान्य) परिणाम है। अनन्त ज्ञानका आनदके साथ अविनाभाव है, निरपेक्ष वृत्तिमानके साथ है। विशेषकी अपेक्षा सामान्य महत्त्वप्रद है। वह सामान्य विशेष परिज्ञान बिना नही समझा जा सकता। पहले ज्ञानको धीरे-धीरे प्राप्त किया जाता है। बादमे उसका भी आलम्बन मुख्य नही रह जाता। शुरूमे सागारधर्मामृत, रत्नकरण्डश्रावकाचार, मोक्षप्रकाशक, जीवकाण्ड, कर्मकाण्ड (गोमट्टसार) षट्खण्डागम, पचलब्धि, लब्धिसार, पचाध्यायी, सर्वार्थसिद्धि, समयसार, प्रवचनसार, योगसार आदि अनेको ग्रन्थ पढ गये और कहते कि बादमे सबको भूल जाओ। इससे अच्छा शुरूसे ही क्यो परिश्रम करते ? शुरूसे ही न पढनेसे कल्याणका मार्ग नही मिलता, अब उन विकल्पोके छोडनेमे भी कल्याण है। विशषके द्वारा सामान्यका समझना लाभदायक है।

यहाँ यह बताया है कि द्रव्यदृष्टिके सत्का उत्पाद है, पर्यायदृष्टिसे असत्का उत्पाद है सो यह बिल्कुल भिन्न-भिन्न बात नही समझना। पर्यायकी विवक्षामे भी असत्की उत्पत्तिमे पर्यायनिष्पादिका वे-वे व्यतिरेक व्यक्तियाँ (प्रतिसमयके विकास) एक साथ प्रवृत्तिको प्राप्त कर अन्वयशक्तिपनेको प्राप्त होती हुई पर्यायोको द्रव्यरूप करती हैं। जैसे कि अगदादि पर्यायोकी निष्पादिका वे-वे व्यतिरेकव्यक्तियाँ योगपद्य प्रवृत्तिको प्राप्त कर अन्वय शक्तियोको प्राप्त होती हुई अगदादि पर्यायोको भी हेमरूप करती है।

द्रव्यकी विवक्षामे भी सत्की उत्पत्तिमे द्रव्यनिष्पादिका अन्वय शक्तियाँ क्रमप्रवृत्तिको प्राप्त कर उन-उन व्यतिरेक व्यक्तिपनेको प्राप्त होती हुई द्रव्यको पर्यायरूप करती है। जैसे कि हेम निष्पादिका अन्वयशक्तियोके द्वारा, जो कि क्रम-प्रवृत्तिको प्राप्त करके उन-उन व्यतिरेक व्यक्तिपनेको प्राप्त हुई, हेम अगदादि पर्यायमात्र ही किया जाता है।

पर्याय द्रव्यका विकास है, द्रव्य उस-उस पर्यायमय है। यहाँ बिल्कुल भिन्नताकी बात नही है। इसलिये एक अर्थमे ही ये दो बाते देखना द्रव्यार्थिक आदेशसे तो सदुत्पाद है और पर्यायार्थिक आदेशसे असदुत्पाद है। यही निर्दोष निर्दशन है।

चेतना सामान्यविशेषात्मक है इस कारण दो आशय हो जाते हैं—जब द्रव्यका वर्णन मुख्यतासे किया जाता है तब द्रव्यार्थिक नय कहा जाता है और वह सत्का उत्पादक है और जहा पर्यायार्थिक नयसे वर्णन करेंगे वहा असत्का उत्पाद कहना पडेगा। द्रव्यकी जो शक्तियाँ है, द्रव्यका जिन्होंने निष्पादन किया है वह ध्रुव रहती हैं या उनका क्रम भी चलता है। गुण

की परिणतिया चलती है। जब वे गुण क्रमप्रवृत्तिको प्राप्त हुए तब व्यतिरेक विकास होता है। वहा उन अन्वयशक्तियोने द्रव्यको पर्याय रूप कर दिया। सुवर्णमे जो पर्याय विकास है वह क्षेत्र-विकास हुआ और आभूषण मिट-मिटकर दूसरे-दूसरे बनाये जाते है। यह पर्यायोमें परिवर्तन होकर असत्का उत्पाद होता रहता है। उस सुवर्णमे जो पीतत्वादि गुण है वह क्रमप्रवृत्तिको प्राप्त है। वह गुण इस तरहसे चलते है तब उन अन्वयशक्तियोने पर्याय रूप कर दिया। (सुवर्णका डला भी पर्याय है) और अन्वयशक्तिया किसी न किसी रूपमे रही। वह पर्याय और द्रव्यकी अन्वयशक्तियाँ (सम्बधित) हमेशा परिवर्तित होती रहती है। असत्का उत्पाद होनेपर भी सत्को पृथक् नही किया। इसलिए सिद्ध है कि द्रव्यार्थिक नयसे सत् होने पर भी पर्यायार्थिक नयसे असत्का उत्पाद होता है। यह अन्वय स्पष्ट किया गया। यह सुवर्ण मे घटाया गया।

चेतन द्रव्यमे एक आत्मा है। वह देवपर्यायसे मनुष्यपर्यायमे आया, यह दृष्टान्त कहलाया। जब द्रव्यमे सत् असत् दोनोका उत्पाद चल रहा है तब दृष्टान्त कहलाया। आत्मामे द्रव्यदृष्टिसे सत्का उत्पाद कहलाता है और पर्यायसे असत्का उत्पाद होता है। जैसे रामचन्द्र जी गृहस्थावस्थामे जब थे तब वह गृहस्थका निर्वाह करते थे। कुटुम्बीजनोका ख्याल रखते हुए राज्यव्यवस्था भी राजा होनेपर सभालते रहे। बादमे विषयोसे ऊबकर धन वैभवको हेय समझकर शिवपथकी ओर प्रयाण करनेके लिए मुनिदीक्षा ले ली थी। तब महाव्रत अवस्थामे भव्य जीवोको उपदेश देते हुए विचरण करते रहे। उनकी बाधायें भी कम नही थी, किन्तु बाधाओमे अपनेको भूल नही गये थे और न बाधाओके प्रति खुदको ही सुपुर्द कर दिया था। वह जानते थे कि बाधायें अपने कृत-कर्मोकी है उनसे विचलित क्यो होना ? बाधायें तो उनकी परीक्षायें लेने आई थी। बाधाओपर विजय पाने वाला ही सन्मानका पात्र होता है। गौरव रूपी गन्ध उसीके माथेसे विकसित होती है जो कि आदर्श बनकर जन-जनके मनको प्रमुदित कर सच्चे मार्गके राहीका आह्वान देता है। मुनि अवस्थामे विचरण किया, उसके पश्चात् ध्यानकी अन्तिम दिव्यज्योति प्रकट हुई, जिसे केवलज्ञान कहा जाता है या अरहत अवस्थामे रहे। यहाँ भी इतने विकासमे अरहत अवस्था तक मनुष्य ही रहे।

इसके पूर्व जो गृहस्थावस्था चल रही थी वह न रही, अब केवली हो गये। इस पर्यायदृष्टिमे असत्का उत्पाद था, क्योकि कितनी अवस्थाओको वह पार नही कर आये होगे, वह नई नही बन गई थी। जो आत्मा अज्ञानमे था वही ज्ञानका सम्बध पाकर अपने विकास को करता है। सम्यक्त्वका उत्पाद हुआ, वह भी सत्का उत्पाद है। पर्यायदृष्टिसे असत्का उत्पाद कहा जाता है। इस तरह यह निर्दोष कथन सर्वग्राही है तथा अब सत्का उत्पाद जो है वह अनन्य है। यह अन्वय शक्तियो द्वारा निश्चय किया जाता है।

सब दृष्टियोसे समझ लेनेपर सच्चा निर्णय होता है—निश्चय तब होता है जब सब ओरसे जानकर सर्व सग्रह कर लिया जाता है। अपने ज्ञानमे सब प्रकारका सग्रह हो जावे उसे निश्चय बोलते है। निश्चय और निर्णयमे अन्तर है। निश्चय जो पूरी तौरसे लक्ष्यका ज्ञान करा दे उसे कहते है। निर्णय उसे कहते हैं जो ज्ञानपदमे ले जावे तथा नि शङ्ककी ओर जिस का इशारा रहता है वह निर्णय है। इसके अतिरिक्त जो पूरी तौरसे किसी काममे दृढ कर देवे वह निश्चय है। इन दोनोमे निर्णयको मुख्यता दी जाती है। निश्चय बिना निर्णयपर भी नही जा सकते है। बिना निर्णयोंके कोई भी कार्य पूर्ण नही हो सकता है। इसी तरह निक्षेप शब्द भी अपना बडा भारी महत्त्व रखता है। नि = निर्णयमे, क्षेप = फेकना अर्थात् जो अपने दिमागको किसी निर्णयमे फेंक देवे। निर्णयमे फेंकनेका अर्थ मजबूत या दृढ विश्वास दिला देवे। इसके अतिरिक्त तुम कुछ भी नही कह सकते हो।

सत्का उत्पाद अभिन्नतासे सग्रह करते हैं। उसको यथा स्थान जमाते हैं। इसीको आचार्यप्रवर भगवान् कुन्दकुन्द कहते है।

जीवो भव भविस्सदि णरोऽमरो वा परो भवीय पुणो।
किं दव्वत्त पजहदि ण जह अण्णो कह होदि ॥११२॥

जीवद्रव्य होता हुआ मनुष्य, देव अथवा अन्य रूप हो होकर फिर होगा। इसमे क्या जीव द्रव्यत्वको छोड देता है? नही छोडता है तो फिर अन्य कैसे हो जायगा?

जीव हमेशा परिणमता हुआ होता रहेगा। मनुष्य, देव, तिर्यंच अथवा नारकी भी होता रहे किन्तु उसका क्या द्रव्यपना मिट जायगा? वह द्रव्यत्वपनेको नही छोडता हुआ अन्य कैसे हो सकता है? अर्थात् नही हो सकता है। उसका द्रव्यत्वपना वहीका वही है। क्योकि वह उसका स्वभाव है तथा वह वस्तु उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य करके रची गई है तथा उत्पाद-व्यय ध्रौव्य कर रच रही है। वह प्रति समय इस कार्यमे सलग्न है। कोई कहे काम बन नही पाया। तब क्या आगे रची जावेगी? वह सदैव रच रही है, ऐसा नही है कि आगे रची जावेगी। मकान बन चुका, तब भी उसमे रचना होनेका कार्य प्रति समय चल रहा है। जिसे कहते हैं 'भूत्वा भवन' होकर भी हो रही है। उसका होना बन्द नही है। वस्तु इस तरह चल रही है। वह इस रूप भी नही, अब बनकर इस समय तैयार हो गई, आगे नही बनेगी। जैसे चावलोका भात बनानेके लिए अग्नि तैयार की और उसपर पानीसे भरी डेकची बटलोई या काँसिया चढा दी, उसका पानी खौलने लगनेपर चावल डाल दिये जाते है। उनके पकनेमे अगर पूरा समय २० मिनट लगेंगे तथा १० मिनटमे अधपके हो जावेंगे तो वहाँ पच्यमान पक्व कहेगे अर्थात् वह पच रहे, पक रहे है। यदि उसमे से पक्व हटा देते हैं तो कुछ भी नही रहेगा। हालाकि यहाँ चावल पूर्ण पके भी नही है तथा कच्चे भी नही है। यह अधपके

दोनोका सम्मिलित शब्द है ।

एक समयका राग कैसा है—उस रागको रज्यमान रक्त कहेगे । अनुभवमे जैसा आवे वह तो रक्त हुआ । एक समयका राग विकार अनुभव करा दे, ऐसा नही होता है । एक एक समयकी जो पर्याय है वह केवलज्ञानीके ज्ञानमे आती है । हमारा ज्ञान इतना उज्ज्वल नही बन पाता कि एक समयकी पर्यायको ज्ञेय बना लेवें । यह प्रत्यक्ष ज्ञेय अवस्थामे होता है । एक समयकी जो पर्याय है वह विकारका अनुभव नही कराती, किन्तु मात्र ज्ञेय हो सकती है । वैसे तो अगुरुलघुकी पूरी षट्गुण हानि वृद्धि १२ समयोमे होती । लो, उन १२ समयोकी भी बात नही जानते, एक समयकी हम क्या प्रत्यक्ष करें ? खैर ! पर्यायदृष्टिसे तो विकास असदुत्पाद है और द्रव्यदृष्टि मुख्य करे तो वह सदुत्पाद है । पर्यायके बहुत-बहुत भेद हुए तब भी क्या, उनमे द्रव्य ही तो देखेंगे । अनादिकालसे रहने वाले सत्को देखेगे तो सभी अनन्य बन जायेंगे । पर्यायदृष्टिसे कहेगे तब एकको स्वीकार करना होगा । जैसे लोग कहते है कि बढ़े चलो । गिरते हो तो गिरकर भी उठो । द्रव्यमे भी यही बात देखी जाती है कि 'भूत्वा भवनम्, हो करके होना' याने एक पर्यायसे गिरना अन्य पर्यायसे उठना । इस तरह प्रत्येक द्रव्यो ! पर्यायरूपसे विलीन होकर अन्य पर्यायरूपमे उठे चलो । उन्नति वालेकी ऐसी दशायें होती है । द्रव्यका यह स्वभाव ही है । इस रूप हुआ काम अनादिसे चला आ रहा है तथा अन्त तक चला जायगा । छुटकारा नही मिलनेका, किन्तु अमुक पर्याय न हो तो शान्ति है एव अमुक परिणमन न परिणमे तो शान्ति है, किन्तु पर्याये न हो यह भी नही बन सकता है । वह पर्याये हो होकर होवेंगी । क्या ऐसा होनेपर द्रव्यपना छोड दिया ? द्रव्यपना सदैव साथ रहता है । बहुत पर्याये हुईं जिसमे विकासोने पर्यायोको द्रव्य रूप कर दिया । लेकिन द्रव्य वही अनादिकालीन चल रहा है ।

द्रव्य जो है वह द्रव्यत्वभूत जो अन्वय शक्तियाँ है उनमे तन्मय है । द्रव्यमे जो-जो पाया जावे वह नित्य है । जैसे अन्यको छोडता हुआ जो सहजभाव है उसे आत्मा कहा छोडता है ? सर्वत्र वही चैतन्य है । उसकी महिमा ही निराली है । काफी घूमनेके बाद विकास नजर आने लगता है । ग्यारहवें गुणस्थानमे आनेके बाद भी निगोदको जा सकता है । यह जीव कही भी चला जावे अपने स्वभावघनको नही छोडता है । वह अपने विकासको करता रहता है । जितनी भी पर्यायें हैं वह सब द्रव्यका विकास है ।

द्रव्य कभी भी अपनी द्रव्यत्वभूत अन्वय शक्तिको नही छोड़ता । इस कारण द्रव्य सत् ही होता है और जो द्रव्यकी पर्यायभूत व्यतिरेकव्यक्तिका प्रादुर्भाव है उसमे भी तो द्रव्यत्व अन्वयशक्तिका प्रच्यवन (परिहार) नही होता है । इस कारण द्रव्य नहीं है, अनन्य है । इसलिये अनन्य होनेके कारण द्रव्यका सदुत्पाद ही निश्चित किया जाता है ।

देखो जीव तो द्रव्य है ना। है तो वह नारक, तिर्यञ्च, मनुष्य, देव, सिद्धत्वमे से किसी भी पर्यायरूपसे हो, किसी न किसी पर्यायरूपसे ही होगा। द्रव्य पर्यायके बिना क्या है? पर्यायोसे ही द्रव्यकी द्रव्यता कायम है तो अब फिर देखो, जीव उस पर्यायरूपसे होकर क्या द्रव्यत्वभूत अन्वय शक्तिको छोड देता है? नही छोडता है। यदि नही छोडता है तो वह अन्य कैसे हो जायगा? सर्व पर्यायोमे वही तो है। इस प्रकार अनन्य होनेसे सत्का ही उत्पाद है, ऐसा निश्चय किया जाता है।

द्रव्य नया-नया पर्यायरूप होकर भी पुराण है—द्रव्य प्रतिसमय नया-नया विकास करता है, किन्तु वह अपने एकत्वपनेको नही छोडता है। पर्यायें अविच्छिन्न होकर नही रहती है। वह सदैव चलनी रहती है। उसमे आत्मद्रव्य एक ही तत्त्व है, अन्य नही। इसलिए सत् का ही उत्पाद है, अन्यका नही। जो जाननेमे आ रहा है वही बन रहा है, दूसरा नही बन रहा है। उस द्रव्यमे जो विकासका प्रादुर्भाव है, भिन्न-भिन्न समयमे भिन्न-भिन्न प्रकारकी अवस्थायें होती रहती है। उसमे व्यतिरेक उत्पाद वह पर्याय रूप है, उसका प्रादुर्भाव चालू रहता है। उसके होनेपर भी द्रव्यत्वभूत जो अन्वय शक्ति है उससे वह नही गिरता है। अन्वय शक्ति जो सब पर्यायोमे एकसी रहे, वह दूसरी नही है। हम एक ही है और आगे भी रहेगे। जैसी करतूत करेंगे वैसा आगे-आगे भोगेंगे तथा करतूतके अनुसार विकास करते जावेंगे। व्याकुलता अधिक रहनेपर दुःख भोगेगे और निराकुलता आनेपर स्वय सुखी हो जावेंगे। जीव पुद्गलको छोडकर चला जाता है। जिस पुद्गलकी पुष्टईके लिए दिन-रात पाप किये जाते हैं उसे स्वय उसकी आत्मा ही देख सकती है, दूसरा उसे कौन देख सकता है? यह जीवन समय से लेकर चौथे समयमे नियमसे दूसरा शरीर पा लेता है और जीव सदैव अपना योग और उपयोग ही करता है। इसके सिवाय वह कुछ भी नही कर सकता है। बाह्य पदार्थ अपनी सत्ता रखते है। हम भी अपनी सत्ता रखते हैं। हमारी सत्तामे कौन खलल डाल सकता है और उन बाह्य पदार्थोंकी सत्तामे भी हम क्या कर सकते है? सुखका रास्ता दूर नही है। वह तो पाने वालेकी कमी है। हम उपयोगसे इतनी दूर हटे हुए हैं कि सुखका रास्ता ही भूल चुके है। छोटी-छोटी चीजोमे सुख मान रहे हैं। दूसरे पदार्थमे अपने कर्तृत्वपनकी बुद्धि को नही छोडनेसे दुःखी है। दूसरे द्रव्यको कुछ भी करनेकी सामर्थ्य नही है। तब भी जबरदस्ती पिछलगा बनकर चल रहे है। यह सूत्रपाद हो जाय, प्रत्येक पदार्थ अपनी-अपनी परिणति करता है तब काफी दुनियाकी झझटें रफूचक्कर हो जावे। जीवमे अनेक तरहके विकार लगे हुए है। उनकी वजहसे सब स्वरूपकी याद ही भूल गया। इस विचित्र दशाको देखकर कोई ज्ञानी जीव तरस करता है, उद्धारकी सोचता है। वह अपने सुखोको लात मारकर आगे सेवाके लिए बढ जाता है। वह अपना आत्मकल्याण पहले लक्ष्यमे रखता है, किन्तु साथ ही

दूसरोकी सेवा होती जाती है। उसे भले भान नही है। जिस तरह दर्पण अपनेमे प्रतिबिम्ब झलकानेको किसीको बुलाता नही है, किन्तु जो भी उसके सामने आया वह स्वत ही झलक जाता है।

अपनी गलती हो तो निमित्तका आरोप भी होता है—यह दूसरेके निमित्त पाकर रागभाव करता है और कभी द्वेषभाव करता है, कभी स्नेहसे सिक्त होता है, कभी क्रूरताका नगा नाच दिखाता है। इस अमूर्त आत्माकी क्या-क्या दशाये सामने आती है? क्या-क्या विलक्षण दशामे चल रही है? कभी यह किसीके लिए जान अर्पण करनेको तैयार हो जाता है और कभी जान लेनेको तैयार हो जाता है। बाह्य पदार्थका विस्तार हो गया तब तो फिर कहना ही क्या? जैसे कोई नदी सूलमे किसी झरनेसे सकुचाती हुई निकलती है तथा और नालो, नदियोका साथ पाकर मरतीसे सिर उठाकर भागती है और समुद्रके पास पहुचते ही सारा मद चूर हो जाता है। बाह्य वस्तुओका आश्रय पाया है वह इतना फैल गया है, इसमें तत्त्वज्ञानकी गन्ध भी नही आ पाती। तत्त्वज्ञान परिपूर्ण होनेपर सारे मद भी नदीसे समुद्र मे पहुचनेके समान भूल जाते है। स्वरूपास्तित्व होनेपर सभी पदार्थ समान भिन्न जचने लगते है। परपदार्थोसे कोई ज्ञानानद नही मिल सकता है। ज्ञानानदका स्रोत गुप्त रूपसे अपने आपमे मन्द रीतिसे झर जाता है। घरमे रहने वाली स्त्रीसे क्या मिलना है और जब घरकी स्त्री से कुछ नही मिलना है तब दुनियाकी स्त्रियोसे भी क्या मिलेगा? अपने पुत्रसे भी कुछ नही मिलनेका है। तब ससारके पुत्रोसे भी कुछ नही मिलनेका है। तब औरोके पुत्रोसे भी क्या मिलेगा? घरके या परके पुत्रोको खूब खिलाओ, आखिर अपने ही समयपर खर्च करना होंगे। घरके धनसे क्या कभी शान्ति मिली? यदि नही तो दूसरोके धनसे, देशके धनसे, विदेश के धनसे भी कहाँ शान्ति मिलेगी? जो भी सुख मिलेगा वह निजसे मिलेगा। केवल निमित्त-नैमित्तिक भाव चल रहा है। मोक्ष भी जो जाता है वह ठाट-बाटसे जाता है। ये तो अपवाद रूप दृष्टान्त है कि अमुक मुनि घानीमे पेले गये, साकलोसे बाँधे गये, समुद्रमे गिराये गये आदि, किन्तु वहाँ भी कितनी परिणामोकी निर्मलता थी कि वहाँ कुछ पता भी नही है। चक्रवर्ती, तीर्थंकर जो भी हुए उनका वैभव सुनकर दातो तले अगुली दबानी पडती है। वर्तमानमें भी इस तरहके घर छोडने वाले मिल जावेंगे। जहाँ कि अटूट शान्तिकी प्यास रहती है, वहाँ इस विनश्वर धनमे क्या रखा? कहाँ शान्ति मिलनेकी है वहाँ? आत्मा धर्मभावमे आया तो तब से सर्वदा लाभ ही लाभ है, कदाचित् धर्मभाव हो तब जो कषाय बीचमे रहे, उससे पुण्य ही बधा करता है, किन्तु परम्परासे मुक्तिका कारण निज शुद्ध भाव होता है। धर्मभाव वालेको विपत्तिया महसूस नही होती है। वह तो अपने निज आत्मकल्याणके अलावा कही नही देखता है। सत् स्वरूपको जाने, यह जीवका सार है। बाह्य समागममे कोई सुख मिला हो, इसे कौन

कह सकता है ? वह तो ससारमे रुलानेका ही कारण था। वहाँ भटकानेके लिए आया था। जब चेतन तत्त्व समझमे आ गया, तब यहाँ वहाँ भटकनेकी आवश्यकता नही रह जाती है।

कुछ भी काम हो वहां योग उपयोग ही बनाया जाता है—इस जगतमे कोई किसी की बूझ करने वाला नही है, फिर भी भ्रमसे मान रहा है मेरी बूझ है, मेरा आदर सत्कार है। वह भी न मिले तो वैसा प्रयत्न किया जाता है। अनेक प्रकारकी चिकनी चुपडी बातें बनाई जाती है। बडी-बडी लीडरशिप की जाती है, सेवा करनेकी कसमे खाई जाती हैं। खुले आम प्रण किया जाता है, थोडेसे चन्द चाँदीके टुकडोंके लिए। उस समय भी कषायके तीव्र भाव चलते रहते है। जो जैसे भाव करता है वैसा ही परिणमन करता है। लाख उपाय करो तब भी कुछ कर सकनेमे समर्थ नही है। स्वय कल्याणमार्गपर चलनेपर सर्वसिद्धियाँ पीछे लग जाती हैं। यह जगत बेबूझ ही है। बाहरमे बाह्य निमित्त हो रहे हैं तथा अन्तरङ्ग मे अपना ही कार्य चल रहा है। सम्यक्त्वके बराबर कल्याणकारी तथा मिथ्यात्वके समान भव भ्रमण करानेवाली कोई औषधि नही है। मिथ्यात्व ससारका सर्वश्रेष्ठ जहर है, जो यहाँ से उबारने का नाम नही लेता है। मनुष्योकी इच्छायें स्वत. नही बढती हैं। जितनी कि दूसरोकी देखादेखी बढ जाती है। दूसरोके चटक मटक वाले कपडे, गहने, वेषविन्यासका शृङ्गारके प्रसाधन देखे और मन ललचा आया तथा उन्हे पानेके लिए कटिबद्ध हो गये। शुरू से सस्कार ही इसी तरहके चल रहे हैं। विद्या अध्ययनके सस्कारोके साथ ही यह बला साथ मे आ जाती है। अध्यापकोकी नेकटाई तथा बढिया पेन्ट, कमीज, जूते देखे तब छात्र जो समर्थ होते है वे अध्यापकोको लजा देने वाला वेष धारण करके जाते है। यह एक कम्पनी है जिसमे विद्या अर्जनके साथ वेपभूषाके अच्छे पुतले बन जाते है। ज्ञानीकी सगति मिलना दुर्लभ हो रही है। कदाचित् सज्जन पुरुषकी सगति मिल भी जावे तो उसका लाभ लेनेकी क्षमता इसमे नही है। ममताके लोभसे वह सज्जन पुरुषसे भी प्रशसा कराना चाहता है। यह सब होनेपर प्रत्येक द्रव्य स्वय सत् है। ससारकी असारता जान कर्तव्य-मार्गपर जुट जाना साध सिद्ध होगा। 'चार दिनकी चाँदनी फिर अधेरी रात है।' जो कुछ थोडासा पाया उसपर इतरा लो, दूसरोको अपना रूप दिखा लो, फिर पीछे तो उन्ही दूसरोकी आँखोंमे से अर्थीका साज सामान जायगा तब वह भी कह लेंगे, यही थे जो किसीको अपने सामने कुछ भी नही समझते थे।

यहाकी मौजका फल परभवमें क्लेश है—एक साधु था, राजाने उसे बुलाया। कई मनुष्य उसे मनानेके लिए गये। तब इस साधुने न जानेकी बहुत सोची, किन्तु वहाँ नही चली। तब इसने सोचा वहाँ तो लक्ष्मीका भडार भरा है। कही उस चमक-दमकमे मैं न फस जाऊँ। यह सोचकर वह अपना खूब गाढे रगसे काला मुँह बनाकर पहुच गया। राजाने जब

साधुको देखा तो ताज्जुब हुआ और कहा—यह भेष किसलिए बनाया है ? इसपर साधुने कहा—आपके विलास मुझे न बहलावेंगे, मैं उनपर न ललचा जाऊ, इसलिए अगले भवमे काला मुख होनेकी अपेक्षा अभी सबसे अच्छा था, क्योकि सबसे बढिया मुह माना जाता है। जबकि मुहके पास ही गन्दगी भरी पडी है। नाकसे लुबाव बहता रहता है। आँखोमेसे कीचड़ निकलता है। तब इसकी सुन्दरता कहाँ रह जाती है ? यह मुह रागभावसे अच्छा मालूम पड़ता है। चेहरेको देखनेसे पहले नाककी गन्दगीपर विचार तो किया जाय। तभी तो यह वैराग्यका कारण है। अगर देवो और भोगभूमिया जीवोका बराबर सुन्दर शरीर होता तो इससे विरक्त होनेके भी भाव नही होते। जो भी विरक्तिमे आयगा वह अपने ज्ञानसे ही होगा। समोशरणमे जानेपर भी अगर शुद्ध भाव नही बन सके तो अपना ही पापकर्मका उदय था। खुदको समझना था, खुदको ही न समझ सके तब कोई हस्तावलम्बन देकर नही समझा देगा। विवेकामृत इस जीवका सच्चा सहायक है। अन्य अभी तक दिखनेमे नही आया और न वह दिख सकेगा।

पर्याय रूप होते रहना ही द्रव्यकी ध्रुवता है—जीव द्रव्य होता हुआ किसी पर्याय रूप हो गया है। इनमेसे किसी पर्यायमुखेन अवश्य होगा। सतः भूत्वा भवन सद्भावः। होकर होना, होकर होना, होकर होना, यह क्रम चलता ही रहता हे। जो हुआ है वह होकर हुआ है। होकर होनेका नाम भाव है। सीधी-सी बात यह है, द्रव्य न हो तो पर्याय क्या रहे ? द्रव्यस्य पर्याग दुर्ललितवृत्ति।' द्रव्य पर्यायोसे सहित दुर्ललित वृत्ति वाला है। जिस तरह कोई बच्चा मिठाईके लिए मचल जावे और कहे हम तो जाते ही नही है। अमुख वस्तु लेकर ही रहेंगे। कोई भी समय ऐसा नही कि पर्याय हट जावे, क्योकि द्रव्य दुर्ललित वृत्ति वाला है। व्यञ्जनपर्यायोमे चार पर्याय है। धवला ग्रन्थमे नारकियोका वर्णन किया है। नैगम नयसे जो किसी प्रकारका प्रारम्भिक खोटा प्रयत्न करे, खोटा अभिप्राय बनावे, वह मनुष्य या तिर्यञ्चगतिमे रहता हुआ भी वैसा बन्ध कर रहा है। पाप कार्योको करनेमे प्रवृत्त रहे, उन्हीमें जुट जावे, वह सग्रहनयका नारकी हुआ तथा जो आपसमे नारकी जैसा व्यवहार करे वह व्यवहार नयका नारकी है तथा जो नारकियो जैसा तीव्र खोटे भाव करे, उन भावोको ग्रहण कर लेवे वह ऋजुसूत्र नयसे नारकी हे तथा जो नरकोंके ही दुःख भोग रहा है वह नरकमे ही रहने वाला नारकी एव भूत नयसे नारकी हे। जो मनुष्योको दुःख देवे वह नारकी है। जो अपनी पर्याय विशेषमे रत न रह सके वह नारकी है।

जीवके मुख्यतया छः शत्रु हैं—यह प्रायः सभी मजहब व धर्मोंमे भी बताये गये हैं। काम, क्रोध, मोह, मान, माया और लोभ ये भयकर छ शत्रु है। जो भी परेशान हे वह इन्ही की वजहसे है। अज्ञान अधकारमे इन्हीकी वजहसे पडा है। इनके वशीभूत होकर अपनी अस-

मर्थता प्रकट करते है । इसमे समझता है कि हमारा तो जीवन ही यह है । कामके वशीभूत होनेसे कोई खबर भी नही रहती । कभी-कभी तो इस तरहके पुरुप या स्त्रीको बेसुध या पागल मान लिया जाता है । कामकी पीडा शरीरके अनेक प्रकारके हाव-भाव बनाती है और उस समय अपनेसे बडोको तिलाञ्जलि देकर लोक-लाज भी खो दी जाती है । इतनेपर भी दूधके धुले बननेके लिए अपनी शेखी एव सफाईमे इतनी पटुता रहती है कि सच्चा शीलवान या शीलवती ऐसे ही विरले मिलते है । कहाँ तो अपनी स्त्रीमे अति आसक्त होना ही खराव है । तब दूसरी स्त्रियोकी तो बात ही भिन्न है । गृहस्थ एक स्त्रीको रखकर कितने ही अधर्मोसे बच रहे है, किन्तु वहाँ भी बन्धनसे रहित नही हैं । यह काम भोजन पानीकी भी सुध भुला देता है । इसके आधीन हो पशुओ तकसे रमण करनेके भाव मनमे लाता है और पशुओसे रमण करनेके विरले उदाहरण भी सुने जाते हैं । इस कामको योगी जन धिक्कार देते है । यह महापुरुषोकी दृष्टिमे निम्न माना जाता है । इसके होनेपर मनमे भव स्थान बनाये रखता है । शरीरका भी पतन हो जाता है । परलोकके भी दुःख भोगना पडते है । इसलिए यह छोडने योग्य है । सर्वप्रथम जिह्वाइन्द्रियपर कावू रखना जरूरी हो जाता है । उसकी बुराइयो पर दृष्टि करके वह त्याज्य होना चाहिए । पाँचो इन्द्रियाँ चचल घोडेके समान हैं, इसलिए उन्हे कावूमे करनेके लिए मनरूपी लगामको वशमे करना आवश्यक हो जाता है । अगर लगाम वशमे न रखी तो यह चचल घोडे कहीके कही ले जाकर पटक देंगे । हिताहितका विचार इसमे सर्वोपरि है ।

मोहकी तो लीला ही विचित्र है—मोहके वशीभूत होनेसे निन्द्य निन्द्य कार्य कर डालता है । मोहका ठीक अर्थ है मिथ्यात्व । प्रेमका अन्तर्भाव रागमे है । मोह, अज्ञान, मिथ्यात्व ये सब मोहके पर्यायवाची हैं । मोहमे वस्तुस्वरूपसे विपरीत विश्वास रहता है । मोहमे जगतको ही अपना मान रहा है । मोहमे अचेतन तस्वीर आदिमे चेतनकी कल्पना कर लेता है । मोह रुलता-फिरता है, यह तो सर्वविदित है ही । मोहमे आकर ज्ञानी भी अनेक प्रकारकी चेष्टायें करने लगता है । तब इस तरहके मोहीको ज्ञानी सज्ञा नही दी जाती है । उस लौकिक ज्ञानीसे भोला अज्ञानी अच्छा जो कि अपनी अज्ञानकारीमे बन्दर जैसे नाच नाचता है । क्रोध, मान, माया और लोभ सर्व विदित ही है । जो मायाचारी भावमे सने रहे, छल-कपट करना ही जिन्होंने अपना पेशा बना लिया हो, उनके सामने वृहस्पति भी एक बार समझानेको आ जाय तो असर नही होता । वह तो मक्कारी ही उत्तम समझते हैं और उन्हे तो घी गक्कड खानेसे ही मतलव रहता है । जैसे कि आजकल अन्नकी महगाईका नगा नाच मचा हुआ है । गरीब भूखो तडफते हे और कोई कृपण धनाढ्य अपनी गोदामे, कोठियाँ भरे रखे हैं । उन्हे तो पैसा इकट्ठा करना दिखता है । उनकी दृष्टि ही इस ओरसे बन्द हो जाती

है। जिस तरह बध्या स्त्री प्रसूतिके दु खको नही जान सकती है, उसी तरह धनलोलुपी गरीबी की तडफनको क्या जाने ? उनके दरवाजेपर कोई भिखारी भी पहुच जाय तो बडी चतुराईसे उसे टिसका देते है, क्योकि जो अपने दिमागकी खूबीसे हजारो लाखो रुपया कमा सकता है वह दो रोटीके भूखे भिखारीको भी हटानेमे सफल नही हो सकेगा। यह छल-कपट कहाँ ले जायगा, इसे जानना दुर्लभ है। मनुष्य मननशील माना गया है। समझदारीसे जो काम लेवे तभी ऋषियोकी सन्तान कहलाती है, क्योकि वह कुलकरोके द्वारा सम्बधित है। पिता भी दो तरहके माने गये है—एक जन्मपिता अर्थात् जन्म देने वाला और दूसरा शिक्षा देने वाला। रक्षा करने वालेकी अपेक्षा शिक्षा प्रदान करने वालेका महत्त्व अधिक है। तो जिन्हे ऋषि सज्ञा दी जाती है वह मनु कहलाते थे। उन्होने तत्त्वज्ञान लौकिक ज्ञानकी शिक्षा प्रदान की है। पिताने तो बुद्धिपूर्वक दया नही की है। उन्हे अपना ऐश विषय विलास करना था, इसलिए पुत्र पैदा हुआ। उसे उन्होने कहीसे आज्ञा देकर नही बुलाया है। पालन-पोषणकी आधीनतासे स्नेह कर रहा है। परमात्माको धर्मपिता बोलते है और इसका मूल अरहत भगवानकी दिव्य ध्वनि है। धर्मका उपदेश जो जिनेन्द्रदेवकी दिव्यध्वनिसे गिरा था, वही है।

पर्यायमात्र प्रतिक्षणवर्तिनी रहती है—देव वह है जो दिव्यन्ति क्रीडन्ति। जो मन-मानी क्रीडा करे, मौज करें वह देव है। यह तो चार गतिमे का देव है, किन्तु जो निर्मोह, वीतराग है, वह देवाधिदेव है अथवा जिनेन्द्रदेव है और जो एक ही समयमे ऊपर चल जावें व अनन्तकालको अनन्तसुखमे लीन रहे वह देव सिद्ध परमेष्ठी है। जहाँ आत्माका पूर्ण विकास हो चुकता है वह सिद्धगति है और जिन्होने अष्टकर्मोको दग्ध कर दिया है वह सिद्ध है। इस तरह इन पाँच गतियोमे से एक अवश्य कोई होगा। इन पर्यायोको छोडकर कही रह नही सकता है अथवा वह जीव होकर उस पर्यायके कारण, जीव द्रव्यभूत अन्वयशक्तिको छोड देता है क्या ? जीव द्रव्यभूत अन्वयशक्ति कभी भी नही छोडता है। मरते समय जैसे भाव होगे वैसे ही स्थानपर जाकर यह जीव पैदा होता है। मरते समय दुःख तो मोहका रहता है। मरते समय भी यह भाव रहे कि यह पर्याय नही सही, दूसरी पर्याय मिलेगी अर्थात् दूसरा घर सही तो क्लेश कम हो ,वेदना तो रहती है कि मैने इतना कमाया, जोडा, सब छोडकर चला। सबसे बडी परेशानी इन्ही भाव वालेकी है। यह कुटी इस जीवको मिली है, नये-नये इकट्ठे होते जा रहे है और पुराने-पुराने चले जा रहे है। जिन्हे इष्टसे इष्ट पदार्थ भी मिलें तो सुखी होकर मत्त नही होते और बिछुड जावें तो दु:ख नही होता है। मिलिट्रीको निशाना लगाना इसलिए सिखाया जाता है कि वह युद्धमे जाकर सफल हो सके। इसी तरह व्रतनियम, संयम, तप आदि इसीलिए पाले जाते है कि हम उस अन्तिम ध्यानाग्निके युद्धमे सफल हो सकें और मरते समय भी शुद्ध परिणाम बनते रहे। जिसे नरकमे जाना होगा वह अत्यत क्रोधमे सना

रहेगा और धन जोडकर भी खर्च न करना, लोभके परिणाम रहना देवमे जानेका कारण है। सामग्री मिलनेपर भी देवोमे लोभकी कमी नही हुआ करती है। वह तो दूसरोका ऐश्वर्य देखकर मन ही मन कुडते है। तिर्यंचगतिमे जानेके पहले मायाचार हुआ करता है और मनुष्यगतिमे जानेके पूर्व अन्तर्मुहूर्त तक मान रहता है। जीवने अन्वयशक्ति नही छोडी और जीव तो वही रहा, जिससे तीनो कालोमे सत्ता प्रकट होती है। यह वही न बने अर्थात् वही है। इस द्रव्यशक्तिको नही छोडता है। इस तरह इस गाथामे मैं हू, होकर होता रहता हू, प्रति समय होता रहता हू। मेरा परिणमन मेरे आधीन है। किसीके सोचनेसे मेरा परिणाम नही बनता है। इससे अजर-अमर हू। अनादिसे चला आ रहा हू और अनत तक चला जाऊँगा और पर्याय दुर्ललित है। अब मुझे कौनसी पर्याय इष्ट है? उसी तरहका प्रयत्न करना चाहिए। किसी कविने कहा है—'यादृशी भावना यस्य, सिद्धिर्भवति तादृशी।' जिसकी जैसी भावना होती है, उसको वैसी सिद्धि होती है तथा उसी भावनाके अनुसार आचरण करता है।

पर्यायपदमे आत्मबुद्धि न हो वही साधुता है—जो कोई त्यागी मुनि हो जाता है, उसकी अन्तरङ्गमे भी तो पवित्र निज आत्मतत्त्वकी भावना रहती है। वह किसीको दिखानेके लिए नही हो जाते है। सो मैं से कोई एकाध ऐसा निकल सकता है कि जिसकी वजहसे दूसरो के ऊपर भी दोष लगा दिये जाते है। यहाँ सभी धान बाईस पसेरीकी कहावत चरितार्थ होती है। जीव आठो कर्मोंसे मुक्त हो जाय इससे बढिया और क्या हो सकता? इससे बढ़िया न कोई वैभव है और न इससे बढिया कोई मिठाई ही है। वर्तमान स्वभावको देखो तथा आठ कर्मोंसे मुक्त होनेका प्रयास प्रशसनीय है। जैसा कि त्यागी लोग करते है। निश्चयनयसे देखा जाय तो यह जीव द्रव्यकर्म, नोकर्म तथा भावकर्म रहित है। शुद्ध भावका परिणमन ही मोक्षमार्ग है। निरपेक्ष स्वभावका आलम्बन तथा परिणमनमे अन्तर है। शुद्ध विकास करना ही मोक्ष है। स्वरूपाचरण चारित्र चौथे गुणस्थानसे लेकर १४वें गुणस्थान तक होता है। सिद्ध परमेष्ठी भी स्वरूपाचरण चारित्रमे लीन रहते है। वहाँ सामायिक व यथाख्यात चारित्र नही रहता है। आत्मस्वभावमे रत होनेका नाम स्वरूपाचरण चारित्र नही है। जितने अशोमे राग मिटता है वह स्वरूपाचरण चारित्र है। मैं आत्मस्वभावका चिन्तवन करूं, यह शुभ राग है और बन्धरूप है। कषायोके जानेसे जो ज्ञान हुआ है उसका नाम स्वरूपाचरण चारित्र है। कर्मस्वभावसे होनेके माने यह है कि परसे सम्बध पाकर द्रव्योसे द्रव्यान्तरका कारण पाना है। वह भी ज्ञानस्वभावसे होता है और कर्म उदयके कारण जो बात होवे, उसे द्रव्यान्तर पर्ययमे रहना कहते है।

आस्रव पहले गुणस्थानसे लेकर तेरहवें गुणस्थान तक होता है और बन्ध पहलेसे दसवें गुणस्थान तक होता है। निर्जरा प्रथम गुणस्थानसे चौदहवें तक होती है। सवर सिद्ध

परमेष्ठी तक रहता है और वह अनन्तानंत काल तक रहता है। ऐसा शुद्धोपयोग रहना कि कभी कर्म आ ही न सकें। धर्मका मूल सवरसे है और पूर्ति भी संवरसे है। जीवका सच्चा मित्र सवर ही है, जो कि नावमे आते हुए पानीके समान कर्मोका आना बन्द कर देता है।

आत्माके सर्वथा असंग रहनेमें सुख है—सच्चा सुख मोक्षमे है। वह अपनेसे काफी दूर इस पंचम कालमे हो चुका है। अब यहाँसे मुक्ति नही, किन्तु परम्परासे उसे पाना सरल है। अतएव वैसा प्रयत्न स्तुत्य माना जाता है। वैसे कर्मोकी निर्जरा प्रतिक्षण होती रहती है, लेकिन साथ ही बन्ध चल रहा है। यह सोचकर चुप बैठा रहना धर्म नही कहता है। दैवके साथ पुरुषार्थका लक्ष्य भी सर्वोपरि है। अगर पुरुषार्थके द्वारा कर्मकलक हटानेका निश्चय नही होता तो कौनसा विवेकी घर छोडता ? जिनकी अच्छी जायदादे थी, इस तरहके श्वेताम्बर साधु लाखो तककी सपत्ति छोडकर साधु हुए पाये जाते है। दिगम्बरोमे भी इस तरहके है। खोजनेपर मिलना दुर्लभ नही है। अगर पहले निधि भी नही थी तो अबकी ज्ञान-निधिकी तुलना कौन कर सकता है ? जीवका शरण तो तत्त्वज्ञान ही है। नियमसे सत्का ही उत्पाद होता है द्रव्यदृष्टिमे, किन्तु पर्याय अपेक्षा असत्का उत्पाद कह दिया जाता है। असत्का भी कहनेके साथ सत् कही जाता नही है। यथार्थमे सत्से असत्का उत्पाद न आज तक हुआ और न होगा। केवल पूर्व और पर (आगे) को विशेषता दिखानेके लिए आचार्य अमृतचन्द्रजी सूरिने भगवान् कुन्दकुन्दके वचन प्रकट किये है। जब बालक छोटा होता है तब वह माँ के पास सोता है, गोदमे खेलता है, काटता है, प्यारमे थप्पड भी मार देता है। लेकिन वही बालक जब २०, २५ वर्षका हो जाता है तो वह स्वय अवस्थाकी अपेक्षा बोलने-चालनेमे एव बात करनेमे मर्यादाका ख्याल रखता है। वह इस अवस्थामे माँ के स्तनोको नही छूता है तथा माँ भी स्वतन्त्र नही रहती है। बच्चा जब गोदमे खेलता था तब नगे सिर, पैर पसार कर बैठना भी अच्छा मालूम होता था। अब वही माँ यथोचित बात करती है, मुन्ना न कहकर अब भैया, साहब आदि शब्दोका प्रयोग करने लगती है। इस तरह असत्का उत्पाद अन्य अन्यपने से निश्चय करते है। जो पहले था बही अब है। उसमे परिवर्तन नही हुआ जचता है। सो आगे असत्का उत्पाद अन्यपनेसे निश्चय करते है।

मरगुवोरगो होदि देवो देवो वा मरगु सो व सिद्धो वा।
एव अहोज्जमाणो अणण्ण भाव कध लहदि ॥११३॥

पर्यायोंमें परस्पर अनन्यताका अभाव—जो मनुष्य है वह देव नही है। जो देव है वह मनुष्य अथवा सिद्ध नही है। इस प्रकार एक दूसरे रूप न होता हुआ वह अनन्यभावको कैसे प्राप्त हो सकता है ? जो मनुष्य है वह देव नही होता है तथा जो देव है वह मनुष्य वा

सिद्ध नही होता है । एक ही आत्मामे यह व्यवहार चलता है अथवा मनुष्य सिद्ध पर्याय नही होती है । देव मनुष्य नही होता है । वह वह नही है, वह वह नही है—इस तरहकी व्यवस्था पाई जाती है । मनुष्य देव नही है, देव मनुष्य नही है तथा मनुप्य या देव सिद्ध नही है। यह नानापन चलता रहता है, फिर यह अनन्य कैसे हो जायगा ? अगर तिर्यंचगतिसे आकर जो मनुष्य बन गया है उसे भूसा, बढिया हरी घास, कुट्टी, खल, बिनौले खिलाना चाहिए । तब वह काफी पुष्ट होगा । यह व्यवहार नही किया जाता है, उसे मनुष्य योग्य खुराक दूध, साग अन्न ही खानेको दिया जाता है । अधिक विकल्पमे न पडकर बच्चा जो छोटी अवस्थामे दूध पीता था, वही अब वडा होने पर स्तन तक नही छूता है तथा माँ भी बडे बच्चेके सामने बचपन सरीखी नही रहती है । पहले बच्चेको माँ डाँट देती थी, वही अब प्रेमसे बोलती है, उसकी आज्ञामे चलती है । यह सब अनन्य कैसे बन जायगा ? वही आत्मा है जो पूर्वमे थी । अगर २५ वर्पका लडका बीमार हो जाय तो माँ कहेगी, 'हमारा वही तो लडका है तथा सेवा शुश्रूपा भी बचपन सरीखे बच्चे जैसी करेगी । जब जैसी-जैसी विशेषपर दृष्टि डाली जायगी वैसा-वैसा कारण उपस्थित होता जायगा । जो अभी सुखी है, कुछ ही क्षणमे वह दु खी दिख सकता है ।

परवस्तु राग करनेकी वस्तु नही है—परवस्तुके प्रति जितना राग किया जायगा उतना ही दुःखका भागी होना पडेगा । हो सकता है कि आज आप धर्म कर रहे हैं जिसके पुण्य प्रतापसे अनेक तरहकी सुख सम्पदायें मिलती होवेंगी, किन्तु थोडासा धर्म किया और अधिक फल मागा जावे तो मिलनेका नही और ज्यादा धर्म करके छोटी वस्तुकी याचना कर ली तब वह मिल भी जावे, लेकिन उसके बदले जो हजारगुना फल (सपदाये) मिलना था वह व्यर्थमे ही चला गया । ज्ञानभाव अपने पास रहनेसे चित्त उद्विग्न नही होगा । व्यर्थकी वान्छायें नही की जावेंगी । कभी देखनेमे यह भी आया कि जिन स्त्री, पुरुप या पुत्र, पिना आदिमे अत्यत गाढा प्रेम था, उसकी मरणवेला उपस्थित होनेपर कहा जाय, 'आप हमारे आग्रहसे एक माह, एक वर्ष, एक दिन, एक क्षण भी तो और रुक जाओ, फिर चले जाना । तब क्या यह सभव है ? उस समय कुछ भी रियायत नही की जायगी । यह शुरूसे ही विचार कर राग करनेमे सावधान रहा जाय । उन विषयभोगों एव शरीरकी चमडीपर विचार करत रहे तो दु ख नही होगा और कर्मबन्धसे भी बच सकेगा । यहाँ तक कहनेमे नही चूकते 'हमार तुम्हारा आत्मा ही एक है ।' क्योकि अब तो यहाँ गाढकषायका कपैला रग (कत्था) चढ रह है । अतएव जिस तरह उसे पुष्ट किया जाय वैसा करते है । उस मूर्खतामे धर्म एक ओर छोड दिया जाता है और जो सुयाकु चेष्टायें की जा सकती है, वह करता है । सम्भवतया शरीरके खत्म होनेके बाद किसी लम्बे अर्सेमे दोनोके शरीरके पिण्डके स्कध जरूर इकट्ठे हो सकते है,

लेकिन आत्मा आज तक इकट्ठी हुई न होगी। इस तरह [देव मनुष्य नही होता, मनुष्य देव नही होता और देव सिद्ध परमेष्ठी नही होता तब अनन्य भावको कैसे पैदा कर सकेगा ?

द्रव्य जब जिस अवस्थामें हो वह उसकी पर्याय है—पर्यायमे जो है वह व्यतिरेक दशाके साथ अन्वित है। आत्माकी पर्याये आत्माके व्यतिरेक विकासके साथ है। विभिन्न विकासका नाम ही व्यतिरेक विकास पर्याय है। मनुष्य तिर्यञ्च भी हो सकता है जो कि पर्यायभूत नहीं है। वह विकासके कालमे है, अन्यमे नही है। आत्माकी प्रत्येक व्यतिरेक व्यक्तियाँ होती रहती है। जितने भी आदमी बैठे है उन सबमे व्यतिरेक विकास है। वह सब भिन्न-भिन्न है, यही व्यतिरेक विकास है। देवपर्याय गई, उस पर्यायका समय पूर्ण हो गया। तब असत् हो गया। यहाँ असत् उत्पादका कथन चल रहा है। असत्का उत्पाद नही हुआ तो क्या हुआ ? पर्यायोका अपने कालमे उत्पाद है। पर्यायोका जो अपने कालमे विकास है वह क्रमवान है। वह एक साथ मौजूद नही है, किन्तु क्रमसे गिरता है तथा क्रमसे उठता है। वह पर्यायें अन्वयशक्तिसे प्रसूत है। वह अन्वय शक्तिको छोडकर कही नहीं जाती है। जिस तरह सोनेके आभूषण अदल-बदलकर बनते रहते है। वहाँ अन्वयशक्तिका विकास है। ज्ञात हुआ है कि एक तरहका सफेद सुवर्ण निकला है, जो कि इस पीले सुवर्णसे मूल्यवान होता है। आचार्योंने भी जो कार्त स्वर, काचन, हेम, सुवर्ण आदि सोनेके पर्यायवाची शब्द दिये है वह उनसे मिलते-जुलते दूसरे तरहके सुवर्णकी विशेपता बताते है। जो पर्यायोका अपने काल मे प्रादुर्भाव हुआ है। सूक्ष्म पर्यायोकी बात तो यो नही जचती है। यह लाइट जल रही है, इसने ८ बजे भी जलनेका काम किया था और अब भी कर रही है। साढे आठ बजे और इसी तरह आगे भी करती जायगी, तो यहाँ वह परिणाम-परिणामकर भिन्न-भिन्न काम कर रही है। उसी तरह आत्माकी या पुद्गल द्रव्यकी पर्यायें परिणाम-परिणमकर भिन्न-भिन्न काम रही है। भूत, भविष्यत और वर्तमानका चक्कर उसके उपयोगी नही है। जैसा-जैसा प्रतिभास हुआ है वही-वही अगले-अगले भवमे या अगले-अगले समयमे क्रम जायगा। जैसे यथाजात बालक धीरे-धीरे विकासको प्राप्त करता जाता है। एक कमरेमे बहुत-सी वस्तुये रखी है, वह लाइट (बिजली) के प्रतिभासमे सब प्रकाशको प्राप्त हो रही है। तब भी बच्चेके ज्ञानमे यह नही हे कि किस तरह उन्हे जाना है। उनके ज्ञानमे विकल्प नही हैं। वहाँ भूत, भविष्यत्, वर्तमानका भेद नही है। द्रव्यका स्वभाव ही परिवर्तन करना है। हम तो निश्चयनयसे परको जानते ही नही है। दर्पण सामने रखा है, उसे हम या अन्य कोई देख रहे है। हमारे आजु-बाजु और पीछे भी बहुतसे लडके गुलगपाडा कर रहे है और हाथ आदि मटका रहे है, उन सब गडबडियो को ऐनकमे देख रहे है। उसी तरह बाहरके दृश्योको देखते हुए आत्माको जान रहे है। आत्मा के बाहर सब कुछ हो रहा है उसे जानते रहते है, फिर भी लक्ष्य आत्मापर हो सकता है।

निमित्तनैमित्तिकको देखकर ही कहा जाता है, इसका ऐसा प्रभाव है। एक बडा प्रभावक मनुष्य है। वह साधारण अधिकारीके सामने जाता है। लोग कहते है प्रभावकका प्रभाव गिर गया है तो यहाँ प्रभाव न गिरकर निमित्तको पाकर वह इस रूप परिणाम गया है। साधारण व्यक्ति प्रभावशालीके सामने अपनी बात जमाता है। पर्यायें जिस कालमे हैं वह उसरूप होती हैं।

वस्तुतः जीव अपने आपपर ही राग कर सकता है—श्रीराम और सीता जिन्दगीमे काफी साथ रहे। दोनोमे बडा स्नेह था। सीता रामकी तन-मनसे सेवा करती थी, जिस कारण वह वनमे भी साथ गई थी। लेकिन जब सीताकी विषयभोगोंसे अरुचि जग गई, तो यकायक विरक्त हो गई। रामचन्द्रजी हाथ जोडे फिरें, सीताको विरक्त होनेसे रोक रहे, किन्तु सीता अब आँख उठाकर भी नही देख रही है। राम सोचते है कि सीताको क्या हो गया है? राम व सीता आदि अपने जैसे ही तो थे। अगर इन दोनोका नाम बदलकर शुरूका चरित्र वर्णन किया जाय तो सीताकी अग्निपरीक्षा आदिको घृणाकी दृष्टिसे देखेंगे। बादका जीवन उनका अति उज्ज्वल रहा। इससे वह महान कहलाये। सब मोहके वशीभूत हो अपना पति, अपनी पत्नी मानते है, जब मोह नही रहता है तब पति-पत्नीको छोडकर चला आता है या घरमे से निकाल देता है। कई पत्नियाँ पतियोके द्वारा बहिष्कृत कर दी जाती है। जिससे उनका जीवन भी अति सकटमय हो जाता है। वह भूखो जिन्दगी बितायें या पथभ्रष्ट हो जावें, इसकी वह चिन्ता नही करता है। इसी तरह कही-कही स्त्रियोके द्वारा पति हेयदृष्टिसे देखा जाने लगता है और वह निज पतिसे उपेक्षा कर अन्यसे सम्बध कर लेती है या घर तक छोड देती है। इससे यह स्पष्ट है कि सभी मोहके वशीभूत होकर अपना काम निकलता देखकर आसक्त हो रहे है। मोह गया, परिणाम बदले, अब कोई रोकनेमे समर्थ नही है। अपने-अपने भावोके अनुसार प्रवृत्ति हो जाती है। जब सप्तपदी होती है उस समय पति-पत्नी प्रतिज्ञा करते हैं कि हम दोनो आपसमे जीवनभर साथ निभायेंगे, किन्तु बादमे विरक्त हो जावे और कहे, प्रतिज्ञा खण्डन कर दी। यह प्रतिज्ञा खण्डन नही करी। वहाँ तो मोहभावमे प्रतिज्ञायें ली थी। जब तक मोह रहा, निभाया। अब अपना-अपना रास्ता अगीकार करते हैं। तत्त्वज्ञान प्रकट हुआ, तब बिना एक दूसरेकी आज्ञा लिए जगलकी ओर चल दिये। कोई मूर्ख सोचे कि मैंने स्त्रीके साथ जीवनभर निभानेका वचन दिया था। तो वह मत्त पुरुषके रूपमे मोहमे दिया था। मोह गला तो दूसरा ही दीक्षा जन्म हो गया। ऐसी दशामे पहले जन्मके वायदे कोई भी अगले भव मे निभा सकता है? नही। यदि मोह छूटा तो मोहके ससर्गसे चलने वाले रिश्ते भी छूट गये। कोई बहाना करे तो वह भी नही चलता, निभता भी नही। तत्त्वज्ञानका ही वैराग्यके साथ अविनाभाव है। यहाँ द्रव्यस्वरूपके वर्णनमे आत्माका दृष्टात दिया जा रहा है और यह निर्दिष्ट

किया जा रहा है कि अब असत्का उत्पाद होता है। इसमें पर्यायदृष्टि रखकर ही सोचना है। पर्यायें पर्यायभूत आत्मव्यतिरेक व्यक्तिके कालमे ही है, उससे अन्य कालमें वे नही है, अत॰ असत् है। अब देखो—जो पर्यायोका द्रव्यत्वभूत अन्वयशक्तिसे अनुस्यूत क्रमानुपाती (क्रमसे व आने वाला) अपने कालमे प्रादुर्भाव है, उसमे पर्यायभूत आत्मव्यतिरेक व्यक्ति पूर्वमें (उत्पाद से पहिले) नही है, अत॰ पर्यायें अन्य-अन्य ही तो हुई। इससे यह कहनेमे तो कोई हिचकिचाहट तो नही भैया! कि असत् पर्यायका उत्पाद हुआ। जरा गहरा सोचते होगे तो इस बातको सोचते होगे कि द्रव्यका असदुत्पाद कैसे ? सो सुनो—द्रव्य पर्यायोसे पृथक्भूत है कि अपृथक्-भूत ? पृथक्भूत तो है ही नही, क्योकि द्रव्य व पर्यायमे प्रादेशिक भेद नही है और पर्यायस्व-रूपका कर्तृभूत, करणभूत, अधिकरणभूत तो द्रव्य ही है, इससे द्रव्य पर्यायोसे अपृथक्भूत है। अतः द्रव्यका असदुत्पाद कहनेमें पर्यायार्थिकनयका आदेश समर्थ है।

जो है वही हो रहा है, उसके ज्ञाता रहो—जो द्रव्य पहले था, उसीका उत्पाद अब हुआ है। वह दूसरा नही आ गया है, किन्तु पर्यायकी अपेक्षा असत्का उत्पाद हुआ है। कोई यह नही कह सकता है कि वह द्रव्य ही न था। वे पर्यायें भी इस तरह अन्य नही है द्रव्य अपेक्षासे। पर्यायको ही माननेसे अन्य मानना पडेगी। निश्चय किया जा रहा है कि द्रव्यमें असत्का उत्पाद है। इस समय वह पर्याय पृथक् है। जिस समय पर्यायमें देख रहे है उस समय द्रव्यके स्वरूपसें पर्यायका स्वरूप पृथक् है और अपृथक्भूत भी है। वह अतद्भावकी अपेक्षा है। पर्यायका स्वरूप द्रव्यसे भिन्न प्रदेशोमे नही बना, पर्यायका कर्ता, करण, आधार कोई अलग नही है, पृथक्भूत भी है। द्रव्यका अतद्भाव यहाँ दिखाना है। पर्यायदृष्टिसे जब देखते है तब अतद्भाव है। पर्यायका जब असदुत्पाद है तो द्रव्यका द्रव्यके साथ असदुत्पाद है, ऐसा व्यवहार होता है। पर्यायसे अपृथक्भूत है। इसलिए उसमे द्रव्य लगाना पडता है। कोई भोजन कर रहा है, उस समय कोई स्त्री भोजन परोस रही है। उस समय दूसरी महिला कहती है कि दूसरी तरहकी वह अच्छी साग परोसो इन्हे, क्योकि वह अच्छी जायकेदार है। इस परोसनेका नाम लेते ही अच्छापन वाक्यमें अन्डर स्टुड है। साग कैसी जो अच्छी छुकी है उसे परोसो तो यह बात आती है। वाक्यमे कुछ ऐसे शब्द होते है जो पचमी विभक्ति (अपा-दान) रूपसे नही कहे जाते है, किन्तु उसका भाव वही निकलता है। जिस तरह कहा जावे 'शिखर सम्मेदजी की चतुर्दशीको वन्दना करेंगे' यहाँ क्योकि शब्द छिपा हुआ है। चतुर्दशी १४ गुणस्थानोकी प्रतीक है। वह अनादिकालीन पर्व भी है। यह व्रतविधान नियमो आदिमे अधिक पवित्रता लानेमे कारण होता है। द्रव्यका उत्पाद है तो असत्का उत्पाद है, यह बात घटती नही है। उत्पाद तो पर्यायका होता है फिर सत्का उत्पाद हुआ, यह बात भी घटित नही होती। किन्तु अपनी-अपनी दृष्टिमें दोनो बातें घटित होती है। विशेषण भी पचमी

विभक्तिके रूपमे ही जाया करते है। पर्याय परदृष्टि वनानेपर द्रव्यका उत्पाद नही है, इससे असत्का उत्पाद है। जो मनु है तथा मनुसे उत्पन्न हुआ है वह मनुष्य है। कोई मनुष्य देव बन जावे तो देवकी जो निष्पत्ति है वह असत्की ही तो हुई, यही असदुत्पाद है, किन्तु जीव द्रव्य वही है जो मनुष्य पर्यायमे था, वही देव पर्यायमे हुआ है। इस तरह देखनेपर सत्का ही उत्पाद हुआ, क्योकि अत्यन्त असत्का उत्पाद ही नही हो सकता।

पदार्थ अनादिसे है, परिणमते चले आ रहे है—कोई शका करे शुरूमे कौन होगा? साराका सारा विश्व इसी तरह चला आया है। सब है और परिणमते चले जा रहे है। जो मनुष्य है वह त्रिदश तो नही है। जिसकी तीनो दशायें एकसी रहे वह त्रिदश है, अर्थात् बचपन, युवावस्था और वृद्ध अवस्था—यह तीनोमे युवा ही बना रहे, इस तरहके वह त्रिदश अर्थात् देव है। मनुष्य देव नही बन जायगा और देव सिद्ध नही हो जायगा। इसी प्रकार त्रिदश और सिद्ध मनुष्य नही वन जायगा। जब नही बन सकते तो अनन्य कैसे हो जायेंगे? इससे असत् ही तो रहे। वह अन्य नही कहलावेंगे। बात तो एक ही है, इसीमे एक और अनेक तथा नित्य और अनित्य घटा सकते हैं। जो अनेक है वह अन्य ही अन्य तो होगा। जीवद्रव्य भी अन्य-अन्य हो गया। पर्यायकी प्रधानतामे पर्यायको देखा। जब वह व्यतिरेक ही है तो जीव ही भिन्न-भिन्न हो गया। जिसमे मनुष्यादि पर्याय हो रही है वह पर्याय क्यो भिन्न नही हो जायेगी? किसीको दस्तबन्द पहिनना है और उसके लिए बहुतसे उठाकर छन्न (छन्नी) दे दिये तो वह औरत उन सबको उठाकर फेंक देती है। उसे सख्यामे छन्न १५ भी दे दो तो उनसे मतलब नही है। उसे तो डिजाइनदार दस्तबन्द आभूषणसे मतलब है। इसके विपरीत जिसे सुवर्णका सग्रह करनेकी रुचि है वह सुवर्णके बलय (कडा) को ही ले लेगी और उसे छन्न, दस्तबन्द, बाजूबद आदि कुछ भी मिलें, वह कहेगी—'इस बलयको लाओ, छन्न लाओ' जो भी हो लाओ, लाओ उसे मनाई नही करना हैं। जिसे शरीरकी शोभा बढाना ही प्रधान लक्ष्य है वह अच्छेसे अच्छे आभूषणमे नखरे लगाकर समय-समयपर नवीन डिजाइनके निकलने वाले आभूषण मगावेगी। अभी तक देवरानी, जेठानी सभी इकट्ठी रह रही थी, किन्तु जब वह अपना उत्कर्ष चाहती है और दूसरी भी चाहती है। अपना उत्कर्ष और साथमे रहनेसे कोई कमी प्रतीत हुई तो न्यारे होनेका मौका आ जाता है। न्यारे होते समय सुवर्ण आदिके आभूषणोका बटवारा किया जा रहा है। तब किसीको रुचिसे विरुद्ध हिस्सेमे आ रहा है। उस समय वह लेकर फेंक देती है, क्योकि न्यारे होते समय दृष्टिमे फर्क पड चुका है।

पर्याय पर्यायके प्रति प्रयोजन भिन्न-भिन्न है—उसी तरह जिसे पेटके गड्ढे मात्रको भरनेसे प्रयोजन है वह अनेक तरहके खाद्य स्वाद्य, लेह्य, पेय न मगाकर थोडेसे सीमित भोजन मे काम चला लेता है और जिसे अपनी जिह्वाइन्द्रियकी लोलुपता पूरी करनी है, वह अनेक

तरहकी चटनियाँ मिर्च मसाले, मिठाइयाँ, पक्वान, दूध, लस्सी, कॉफी, घी आदि खावेगा, क्योकि उसे तो जायका लेनेसे मतलब है। इस समय वह सच्ची भूखका ख्याल न रखकर खाता ही जायगा। ऐसा व्यक्ति भोजन कर चुकनेके बाद भी पेटमे बाजारकी बिकने वाली चीजको जगह निकाल लेगा। हमारा भाव तो यह है कि वर्तमानमे अन्नकी महगाईको देख-कर धनिक सेठ लोग भी एक समय भोजन करे और दूसरे समय फल खा लिया करें। फल भी अन्नके भाव है, इससे स्वास्थ्य अच्छा रहेगा, सुस्ती चली जावेगी, काम करनेमे मन लगेगा, वैद्य, डाक्टरोकी बार-बारकी फीसें भी देनेसे बचेगी और जो अन्न बचेगा उसे गरीब भाइयो को मुफ्तमे दे देना चाहिए। यह सच्चा त्याग होगा। तुम्हारे व्रत नियम भी ठीक पल जावेंगे और जनतामे जैनियोका त्याग भी जाहिर हो जायगा, जो कि गौरवका विषय होगा। ऐसा पाया गया है कि जरूरतसे ज्यादा भोजन करनेपर उसका पूर्ण रस नही बन पाता और अनेकों को बादी, गठिया, अपेन्द्रिय टसाइटिज आदि रोज घेर लेते है। जिसकी दृष्टि मात्र जीवनपर है, इस तरहके साधु एक तरहके भोजनसे सतुष्ट हो जाते है और दैनिक कार्यक्रम भी सुचारु रीतिसे चलाते है। आजकी स्थितिमे यह आवश्यकसा बन गया है, क्योकि यहाँ तो पेट भरने मात्रका प्रयोजन है। जिसकी पर्यायपर दृष्टि है वह कैसे छोड सकेगा इस तरहके भोजनको, वह तो अपने ऐशआराम तक ही सभी सीमायें रखता है। दूसरेकी अपेक्षा वह कुछ भी नहीं करता है। जब द्रव्य सामान्यपर दृष्टि रहती है तब वह एक तत्त्व समझता है। इस एकत्वको समझनेपर पर्यायदृष्टि शिथिल हो जाती है। पर्यायदृष्टिके शिथिल होनेसे विषयाभिलाषाये भी शिथिल हो जाती है। पर्यायदृष्टिके अनेकत्वके सस्कारका प्रताप ससारमे विलक्षरण है तो द्रव्य-दृष्टिके एकत्वके ध्यानका प्रताप मोक्षमार्गमे विलक्षरण है। द्रव्यमे अन्यत्व व अनन्यत्व दोनो धर्म हैं।

अब एक द्रव्यमे अन्यत्व और अनन्यत्वका विरोध धुनकर फेंके देते हैं—पर जो है उसकी परवाह नही करना है। धुनना दो तरहसे किया जाता है। एक मोटे-मोटे प्रहारोंसे जल्दी-जल्दी धुना जाता है और दूसरी बडी चतुराई कलाकारीसे आधी-आधी छटाक रुई लेकर धुनी जाती है। यह कोमल हाथोसे धीरे-धीरे कष्ट न देकर रुईको फीन-फीन किया जाता है। इसलिए एकदम लट्ठ न मारकर धीरे-धीरे धुनना अच्छा है, वह काम अच्छा है। इसका सूत भी बारीक निकाला जा सकता है, जिसके दाम अच्छे पैदा किये जा सकते है, जबकि लट्ठमार धुनाईसे धुनी हुई पाला आदिके सूतमे यह बात नही है। पढ़ना भी इसी तरह महत्त्व रखता है। जिसे दृढ बननेकी दृष्टिसे पढना है वह पाँच पृष्ठ पढकर भी अधिक जान सकता है और उसके आधारसे आगेके ग्रन्थका भाव ले सकता है और ज्यादा पढनेकी लिप्सा वाला कुछ भी नही प्राप्त कर सकता है। कहा भी है—'विद्या कालेन पच्यते' विद्या समयके अनुसार परि-

पक्व होती है । ऐसा भी पाया जाता है जो शुरूमे अधिक विद्या हासिल कर लेते है, वह विद्या वडेमे जाकर विकासको प्राप्त होती है । जीवनका विकास कव किसका होना है ? यह कोई निश्चय नही है । किन्हीके जीवनका विकास ६० वर्पकी अवस्था तकमे हुआ है और कुछ ऐसे भी पाये गये जो शुरूसे एकदम द्रुतगतिसे वढ रहे थे वह आगे जाकर मुरझा गये ।

स्वभाव व विकल्पकी सूक्ष्मसधिपर भेदविज्ञान कुठारका निपात—भेदविज्ञान इस तरहकी कला है जो अति सूक्ष्मतासे होती है । वह अति समीपकी मिली सधि है । क्या दुकान की और आत्माकी सूक्ष्म सन्धि होती है ? यह तो धर्मके गलेमे डेंगुर (लाठीका फदा विशेप) डाल देना है । जैसा कि मुहृदमित्रने ऊँटके गलेमे गधेको लटका दिया था । तव क्या परिव.र की और तुम्हारी सूक्ष्म सधि है ? यह नही तो क्या शरीर और आत्माकी सूक्ष्म सधि है ? यह नही तो क्या कर्म और आत्माकी सूक्ष्म सधि है या राग और आत्माकी सूक्ष्म सन्धि है ? इन किन्हीमे भी सूक्ष्म सधि न होकर स्वभाव व विभावकी सूक्ष्म सधि है । इससे भी बारीक सूक्ष्म सधि ज्ञानका जो विकल्प किया उसकी और स्वभावकी सूक्ष्म सन्धि है । इन सवपर कुल्हाडा मारकर जहाँ सभी सूक्ष्म सन्धियाँ खत्म कर दी है वह एक आत्माका विकासमात्र ही उपादेय है । सुवर्णमे बलय (कडा) आदिक विकार हुए है । बच्चोको जैसे आभूपणोसे प्रयोजन नही है, किन्तु उन्हे दूसरोका दुलार चाहिए, अच्छा भोजन चाहिए और मनमाना ऊधम करना चाहिए । इसी तरह जहाँ विकल्पोको भी तोड देना है, सबसे मुह मोड देना है, तव स्वभाववृत्ति बनेगी । भेदविज्ञानके द्वारा सम्पूर्ण विकल्पजाल, मोह, ममतायें तोडना चाहिए । जो हम भिन्न-भिन्न समयोमे जानते हैं, वह भी हमारा स्वभाव नही है । क्यो, जो भी विकल्प शुरूमे हुआ वह अगले समयमे नही चलता है । जो भी परिणमन चलने वाला है वह हमारा नही है ।

परिणमन किसीकी आधीनतासे नहीं किया जाता है—परिणमन तो प्रत्येक-प्रत्येक द्रव्यका अनादिकालसे चला आ रहा है और वह परिणमन अनन्तकाल तक भी चला जायगा । यह तो द्रव्यका स्वभाव ही है । द्रव्यका तो वह परिणमन है ही, किन्तु वर्तमानकी मनुष्यादि पर्यायिमे भी देखा जाता है । जिसके सस्कार पूर्वजन्मके धर्मके प्रति बने हैं और उसी प्रकारके माता-पिताके सस्कारोमे पैदा होकर विकास हुआ है उसे बलात् विमुख करना चाहे तो नही कर सकता है । इसी तरह जिसमे असत्य भापण, मायाचार आदिके सस्कार पडे है, उसे भी कोई नही पलट सकता है । स्वयके ही भावसे स्वय सुधर सकता है, ये तो परिणमन है । नवीन परिणमन होता है, पूर्व परिणमन प्रलयको प्राप्त होता है । बदलका स्वभाव तो द्रव्यमे है । हा स्वभावसे स्वभावान्तर नही होता । यहाँ दृष्टान्त जो दिया उसे देखो—मनुष्य देव नही अथवा नारक, तिर्यञ्च या सिद्ध नही है । देव, नारक आदि मनुष्य नही । ऐसा जब

असत् है परस्पर तो अनन्य कैसे कहा जा सकता, जिससे अन्य न हो। जिससे कि निष्पद्यमान हो रही है मनुष्यादि पर्याय जिसमे, एसा जीव द्रव्य भी प्रतिपर्याय अन्य न हो। तात्पर्य यह है कि पर्यायें अन्य-अन्य है, उसके सम्बधसे वह द्रव्य भी उस प्रवाहमें अन्य-अन्य है। एक अज्ञानी जीव है वह अब ज्ञानी हो गया तो पहिले अज्ञानी था अब ज्ञानी हो गया तो अन्य हो गया ना। हे आत्मन् ! मलीमसता और दु:ख लगे है, किन्तु पर्याय मिटकर निर्मलता व आनंद का परिणमन भी तो हो सकता है। सोच न करो, तत्त्वज्ञान करो। सब श्रेय आप अपने आश्रयसे स्वाधीन होकर सम्पादित कर सकते है। यहाँ तक एक द्रव्यके सम्बधमे अनेक प्रकार से विवेचनायें हुई।

श्री गुरुवर्य्य मनोहर जी वर्णी "सहजानन्द" महाराज द्वारा
संशोधित किया गया "प्रवचनसार प्रवचन चतुर्थ भाग" का यह सस्करण समाप्त हुआ।

॥ प्रवचनसार प्रवचन चतुर्थ भाग समाप्त ॥

प्रवचनसार प्रवचन पंचम भाग

प्रवक्ता—अध्यात्मयोगी सिद्धान्तन्यायसाहित्य शास्त्री, न्यायतीर्थ
पूज्य श्री गुरुवर्य्य मनोहर जी वर्णी

अब यह एक द्रव्य वही-वही है और अन्य-अन्य भी है। इस प्रकार एक द्रव्यमें अन्यत्व व अनन्यत्व दोनों धर्मोंका विरोध दूर करते हैं—

दव्वट्ठिएण सव्वं दव्वं तं पज्जयट्ठिएण पुणो।
हवदि य अण्णमणण्णं तक्काले तम्मयत्तादो ॥११४॥

नयविवक्षामें द्रव्यकी अन्यता व अनन्यताका प्रतिपादन—द्रव्यार्थिकनयमें वह सब द्रव्य है और पर्यायार्थिकनयमें वह अन्य-अन्य होता है, क्योंकि उस कालमें पर्यायमय होनेसे द्रव्य पर्यायसे अनन्य है। द्रव्यार्थिकनयसे सब पर्यायें द्रव्य हैं, अतः अनन्य हैं। वह दूसरी-दूसरी नहीं हैं, जुदी-जुदी नहीं हैं, अलग-अलग नहीं है अर्थात् वही-वही है। द्रव्यार्थिकनयसे जैसे एक जीव है, अगर वह नारकी है तो नारकी कहलावेगा। मगर जीव द्रव्य तो वही है और मनुष्य है तो मनुष्य ही कहलावेगा, परन्तु जीवद्रव्य तो वही है एवं देव है तो देव नाम से ही पुकारा जायगा और तिर्यञ्चगतिमें होनेसे तिर्यंच कहलावेगा, परन्तु जीव तो सर्वत्र वही है जिस गतिमें है वह वही-वही हुआ, दूसरा-दूसरा नहीं है। इस तरह सब द्रव्यें अनन्य हैं। पर्यायार्थिकनयसे उसी समयमें अन्य-अन्य होती हैं। द्रव्यार्थिकनयमें तीनों कालोंमें एक ही द्रव्य चलता है। इसके कहनेका यह प्रयोजन है कि द्रव्यार्थिकनयसे सब पर्यायोंका समूह एक ही द्रव्य है। पर्यायार्थिकनयसे एक-एक पर्याय अलग-अलग हैं तो वह भिन्न-भिन्न हैं, अन्य-अन्य हैं। सामान्य तौरसे देखें तो सभी मनुष्य एक समान हैं, किन्तु यदि वहीं गाय बैठी हो तो वह वहाँ सम्मिलित नहीं है। अनेक प्रकारसे द्रव्यको कहकर एक तरहसे देखना, यह तिर्यक सामान्य है। तिर्यक सामान्य और तिर्यक विशेष एवं ऊर्ध्वता सामान्य और ऊर्ध्वता विशेषकी अपेक्षा चार भेद होते हैं।

सामान्य दृष्टिमें विकल्पोंका क्लेश नहीं है—अनेक प्रकारके मनुष्य, वकील, मजिस्ट्रेट, सेठ, रायबहादुर, विद्वान, त्यागी, साहूकार आदि बैठे है। उन्हे सबको समान भावसे ग्रहण करना तिर्यक सामान्य है और एक ही तरहकी द्रव्योंमे विशेष-विशेष तौर ग्रहण करना, वकील को जुदा, सेठको जुदा और गरीबको जुदा यह तिर्यक विशेष है। ऊर्ध्वता सामान्य एक द्रव्यमें होता है और ऊर्ध्वता विशेष अनेक-अनेक द्रव्योमे होता है। जीव, पुद्गल, धर्मद्रव्य, अधर्म-द्रव्य आदिको कहना, यह तिर्यक सामान्य है। जीव कह दिया, यह तिर्यक सामान्य हो गया और अवान्तर सत्ताको कहना, यह तिर्यक विशेष हो गया अथवा जब मनुष्य कह दिया तो तिर्यक सामान्य कहलाया या गायें कह दी, यह तिर्यक सामान्य कहलाया और जब कहा कि यह काली गाय है, यह पजाबकी दुधारू गाय है, यह भूरी भैस है आदि यह तिर्यक विशेष है। जिसका दूध निकाला जाता है वह क्या तिर्यकसामान्य गायोमे मिल जावेगा ? नही, क्योकि जो दूध होगा वह जुदा-जुदा एक-एक गायसे ही तो निकाला जावेगा वह तिर्यक विशेष हुआ। गौ जातिका दूध नही मिल सकता। इसमे सभी गायोका दूध होना चाहिए। अर्थक्रिया वस्तु विशेषमे होती है। द्रव्य दो तरहसे देखा जाता है—(१) अनुगताकार और (२) व्यावृत्ताकार। जो द्रव्यमे सबमे चला जावे उसे अनुगताकार कहते है। व्यावृत्ताकार जो लक्षण इसमे है, वह इसमे नही है और जो इसमें है वह इसमे नही है। द्रव्यार्थिकनयसे सभी द्रव्य अनन्य-अनन्य है अर्थात् वही-वही है, दूसरे-दूसरे नही है। जब कहते है कि सभी द्रव्य एक है तो द्रव्यार्थिक नयसे ऐसा कहा जा रहा है और जब कहते है कि द्रव्यके अनेक भेद है तो पर्याया-र्थिकनय सापेक्ष द्रव्यार्थिकनय हो गया। जितने नयोको ग्रहण किया जाता है उससे भी अधिक हो सकते है। जिस अभिप्रायसे जो काम किया जाय और कही जाना पड़े, वह उसी तरहका नय हो जावेगा। पर्यायार्थिकनयमे गये तो अलग-अलग पर्यायें हो जावेंगी। द्रव्यके लक्षण ८०-८५ तरहसे कहे है। उनमे कई लक्षण सब द्रव्योमे घट जावेंगे और कुछ नही कर सकेंगे। इससे यही अर्थ ग्रहण किया जावेगा, तीन कालकी पर्यायोका समूह द्रव्य है। यह कहना सत्य भी हो सकता है और सत्यसे रहित भी हो सकता है। द्रव्यार्थिकनयसे उपर्युक्त कथन सत्य है और पर्यायार्थिकनयसे सत्य नही है। वर्तमान पदार्थ मात्र द्रव्य है। यह कहना पर्यायार्थिक नयसे सही है और द्रव्यार्थिकनयसे गलत है। बच्चेको माँ अगुली बताकर कहती है कि वह चन्द्रमा है। वहाँ माँ अंगुलीसे चन्द्रमाको स्पर्श करके तो नही बता रही है। यहाँ भी नयमे भिन्नता पड जावेगी। जितने भी स्याद्वाद है, वह प्रमाणपर पहुचानेके लिए हैं। इससे वस्तुका खुलासा हो जाता है।

वस्तुमें सामान्य और विशेष दोनों धर्म है—जिस समय पर्यायार्थिकनयसे ही वर्णन करेंगे और उसीको मानकर रह जावेंगे, तब दूसरे समयमें वह द्रव्य ही नही रहेगा। तब फिर

वह उस पर्यायमे रहा या अगले पर्यायमे। अगर वह नही रहे तो अन्य-अन्य ही द्रव्य मानना पडेगा। तन्मय द्रव्य देखा था। उसे देखा क्या था ? पर्यायमय द्रव्य सब वस्तुयें सामान्यविशेषात्मक है। वस्तुमे अनुगत और व्यावृत दोनो धर्म मौजूद है। वस्तुमे सामान्य विशेष दोनो है। इसलिए जो जाना जाता है वह सामान्य है और उसमे बारीकीसे भेद करके जानना विशेष है या तुम्हारे ज्ञानमे सामान्य विशेष मालूम हुआ। वस्तुमें सामान्य विशेष सिद्ध करता है। ज्ञानको शुरूमे सिद्ध करते है। जहाँ सामान्य और विशेषकी ओरसे वर्णन करेंगे वहाँ वस्तु सामान्यविशेषात्मक है। वस्तु अनुगताकार और व्यावृत्ताकार दोनो तरफसे ग्रहण की जाती है। अतएव मनमे जो धारणा बना रखी है वस्तु उसी तरहसे नही है। किसी अपेक्षासे उसका अन्य भाव हो सकता है और किसी अपेक्षासे उसका दूसरा-दूसरा भाव (अर्थ) निकल सकता है। किसीके दिमागमे आवे कि वस्तु इसी तरहसे है, दूसरी तरहसे नही है या जैसा सोच लिया वैसा वस्तुको बनना पडेगा, यह बात यहाँ नही घटती है, किन्तु जैसा हमने वस्तुको सोच लिया, उसीके धर्मको लक्ष्यमे रखना पडता है। वस्तुमे कोई खासियत जरूर है। वह स्पष्ट समझमे आ रही है। तत्त्वको छूते हुए चलना चाहिए। कोई जैसे कहे खम्भा वगैरा कुछ नही है। इस तरह कहना सब विडम्बनायें हैं। कुछ लोग कहते है कि यहाँ पत्थरमे भी आत्मा है और तुममे भी आत्मा है। जहाँ देखो वहाँ आत्मद्रव्य है। इसपर नयवादसे विचार करनेपर सभी बातें सही उतरती हैं। ज्ञानसे दु खी क्यो है ? सविकार परिणाम ही अज्ञान है। कोई कहते हैं कि ज्ञाननिवृत्तिसे सुख है और कोई अज्ञाननिवृत्तिसे सुख बताते है। स्वभावमे स्थित होनेसे सुख होता है यह ठीक है और अज्ञानसे सुख है, यह भी ठीक है। जितनी भी वस्तुएँ हैं वह सामान्यविशेषात्मक हैं। सामान्यको देखनेकी दृष्टि भिन्न है और विशेषकी दृष्टि भी भिन्न है। मनुष्य है, मनुष्य है—इस तरहसे होने वाला अभिप्राय व्यक्ति विशेषकी दृष्टिसे भिन्न है और एक-एक करके देखनेसे जुदा-जुदा प्रतीत होता है। यह विशेष आशय है।

दो प्रकारके ज्ञानचक्षु—सामान्यसे देखने वाली आँखका नाम द्रव्यार्थिकनय है, इसके लिए दाईं आँखकी कल्पना कर सकते हैं और विशेषकी अपेक्षासे देखनेका नाम पर्यायार्थिकनय नय है। इसमे बाईं आँखकी कल्पना कर सकते हैं और दोनोसे देखना सामान्य विशेष है एव किन्ही आँखोंसे नही देखना तथा जो पूर्वमे देख चुके वह भले रहे, तब वह आँखोंसे आत्मानुभवकी कला जीवनमे उतारी जाती है। जितनी भी तरहकी आँख हैं वह काम सभी आती हैं। मतलब यह सारा नय समझ लो और फिर सारा नयवाद हटा दो। नय वस्तुको जानना मात्र है। राजाके दरवाजेपर द्वारपाल रहता है। उस समय कोई मिलने जाता है। तब द्वारपाल द्वारा राजा मिलनेकी आज्ञा माँगी जाती है। आज्ञा मिलनेपर मिलने वाला व्यक्ति द्वारपालके साथ जाता है। द्वारपाल उसे महलके दरवाजेपर छोड देता है और अब

मिलने वाला अपनी हिम्मतसे जाता है राजाके पास। अगर उसकी हिम्मत नही हुई तो वह ऐ ऐ करके शर्मिन्दा होकर नीचा मुह करके खडा रह जाता है। धुकधुकी हटे तब वह हिम्मत कर सकता है। उसी पचडेमें पडते रहे तब कुछ लाभ नही होगा। वस्तु सामान्य-विशेषात्मक है। यह जानने वालेकी दो आँखे होती है। एक सामान्यकी और दूसरी विशेषके जानने वालेकी है। यह सारा नयवाद वस्तुस्वरूप रूप राजासे मिलाने वाला द्वारपाल है। इस द्वारपालका काम वस्तुस्वरूपके आँगन तक पहुचा देनेका है। आगे तो यह प्रतीतिका काम स्वय करता है।

इन आंखोमे द्रव्यार्थिकनयसे देखो और पर्यायार्थिकनयसे देखो और दोनो आँखको बन्द करके देखो और दोनो आँखोको उन्मीलित करके देखो। इसमे जो देखा जाता है वह अभेद, भेद, भेदाभेद व अनुभय देखा जाता है। द्रव्यार्थिकनयसे जीव दिखा, पर्यायार्थिकनयसे नरक, तिर्यंच, मनुष्य, देव व सिद्ध दिखा, उभयसे समग्र दिखा, अनुभयसे अनुभव हुआ।

द्रव्यसामान्य पर्यायोमें अनुगत है—नरकगति, मनुष्यगति, तिर्यंचगति, देवगति और सिद्धगति—इस तरहसे पाच भेद होते है। इन गतियोमे किसीमे भी व्यवस्थित रहने वाला जीव सामान्य एक है। उसे अवलोकन करने वाला विशेष अपेक्षासे नही देखे। ऊर्ध्वता सामान्य एक द्रव्य है और तिर्यंच सामान्यका एक द्रव्यमान लेवे। सब वस्तुओको जो द्रव्य बनाया वह तिर्यक् सामान्य है और सबको एक दृष्टिसे बनाया वह विशेष सामान्य है। जिस दृष्टिसे द्रव्य को देखा जाता है, वैसा ही अन्तर पड जाता है।

एक समयकी बात है—भोजन करनेके पश्चात् श्रावकके घर कुछ समय ठहरे। बैठनेपर या तो वहा धर्मचर्चाकी बात होती है या परिचय आदि पूछा जाता है। तब वहां एक स्त्री थी, जो वृद्ध जैसी मालूम पडती थी और पुरुष नवयुवक लडका जैसा। तब उस नवयुवकसे यकायक प्रश्न कर दिया—यह तुम्हारी मा होगी, जबकि थी पत्नी। उस समय जिस पतिको स्त्रीका लडका समझ लिया था वह पासमे ही बैठे लडकेको बताकर कहता है कि इसकी माँ है। प्रश्नकर्ता एव उत्तरदाता दोनोको झिझक खानेका मौका नही आया। यह अन्तर इसी तरह पाये जाते हैं। किन्ही किन्ही पति-पत्नीमे, पति पिता जैसा वृद्धसा मालूम होता है और पत्नी छोटी लडकी जैसी नवोढा मालूम पडती है या उसके लडकेकी बहू समान। इस तरहके अन्तरको उन्हीके मुखसे जाना जा सकता है। इसी तरह वस्तु है तो कुछ और तथा उसे मान कुछ और रहे हैं। मनुष्य, देव, नारकी तिर्यंचमे रहने वाला वह सब जीवद्रव्य है। इस तरह प्रतिभास होता है, किन्तु उसको भ्रमसे मान रहे है, यह नही है और यह इस तरह नही है। यह द्रव्यार्थिकनय और पर्यायार्थिकनयकी दृष्टिमे फर्क पड रहा है। आगे बतावेंगे दोनो दृष्टिया ठीक रही। द्रव्यका स्वरूप किस तरह है, वह जाननेमे आवेगा।

वही वस्तु सामान्यविशेपात्मक है। अत वस्तुके स्वरूपको देखने वाले पुरुषोके यथा-क्रम सामान्य व विशेषका परिच्छेदन (ज्ञान) कराने वाली दो चक्षु (दृष्टिया) हो जाती है। एक तो द्रव्यार्थिकनयकी, दूसरी पर्यायार्थिकनयकी। उनमे पर्यायार्थिकनयकी दृष्टि (चक्षु) को बिल्कुल बन्द करके केवल खुले हुए द्रव्यार्थिक चक्षुसे देखा जाता है। तव नरक, तिर्यंच, मनुष्य, देव व सिद्धपर्यायात्मक विशेषोमे व्यवस्थित एक जीव सामान्यका अवलोकन करने वालोको नही देख रहे है। विशेपोको जो पुरुष उनको वह सब (प्रतिपर्याय) जीवद्रव्य प्रति-भास होता है, परन्तु जब द्रव्यार्थिककी चक्षु (दृष्टि) बिल्कुल बन्द करके केवल खुले हुए पर्यायार्थिक चक्षुसे देखा जाता है तब जीवद्रव्यमे व्यवस्थित नारक, तिर्यंच, मनुष्य, देव व सिद्धत्व पर्यायात्मक अनेक विशेषोके देखने वालो को, नही देख रहे सामान्यको जो पुरुष उनको, वह अन्य-अन्य प्रतिभास होता है। प्रश्न—पर्याये अन्य-अन्य है इससे वह द्रव्य क्यो अन्य-अन्य प्रतिभास होता है ? उत्तर—उन उन विशेपो (पर्यायो) के कालमे वह द्रव्य (दृष्टान्त मे जीव) तन्मय है अर्थात् उस-उस पर्यायमय होनेसे अनन्य है। सो द्रव्य ही पर्यायार्थिकनय की दृष्टिसे अन्य-अन्य प्रतिभास होता है।

पदार्थ सामान्य और विशेष दोनो दृष्टियोसे जाना जाता है—द्रव्यको द्रव्यार्थिक एव पर्यायार्थिकनय दोनोसे ही जाना जा सकता है। कोई एकान्तनयको लेकर वस्तुकी सिद्धि नही हो सकती है। जब द्रव्यार्थिकनयसे देखा गया तो नारक, तिर्यंच, मनुष्य, देव आदि हुए, वह भिन्न-भिन्न नही हैं, किन्तु जीवकी विशेष-विशेष परिणतियाँ है। जैसे व्यवस्था शब्दका पर्यायवाची प्रबन्ध है। व्यवस्था = विशेष अवस्था बनाना है। जो चीज पहलेसे चल रही है, उसका नाम व्यवस्था है और प्रबध प्रकर्ष रूपसे बांध देना, इसका नाम प्रबध है। जब आपस मे स्वर (मिलाप) होवे वहाँ व्यवस्था की जाती है और जहाँ टेढे-मेढे चलते हो वहा व्यवस्था नही होती है, किन्तु प्रबन्ध करना पडता हैं। शुरूमे प्रबन्धकी आवश्यकता होती है और बाद मे व्यवस्थाकी जरूरत होती है। इन दोनो शब्दोमे अतर है। जीवद्रव्य पहलेसे व्यवस्थित है। ऐसा तो जीव सामान्य देखने वाले भव्य जीव पर्यायार्थिकनयकी आँखको बन्द कर लेते है और द्रव्य वाली आँखको खोल लेते हैं। 'द्रव्य इति प्रतिभाति' जीवद्रव्य इस तरह प्रतिभासित होता है और जब द्रव्यार्थिकनयको एकान्तसे बन्द कर लिया और पर्यायार्थिकनयसे उन्मीलित करके आँखसे देखा तो पर्यायें नजर आवेगी। मनुष्यका 'पर' शब्दका डरपोक अर्थमे प्रयोग करते हैं, किन्तु 'कायर = कस्य आय राति आत्मा कायर' अर्थात् आत्माको जो लाभ करा देवे वह ऐसे जीवका नाम कायर है। सोचा फिर दुनिया इन सबको कायर क्यो कहने लगी ? तब तत्त्वज्ञानी भी तो कायर हैं, क्योकि जो मन, वचन, कायकी क्रियाको कुछ नही कर सके, इस तरहका ज्ञानी मोही सुभटोकी दृष्टिमे कायर ही तो कहलाया। जैसे कोई कजूस दान देने

आदि उदारताकी बातं बखानने लगे तो वह बात करनेकी अपेक्षा विश्वास करने योग्य है, किन्तु अन्तरंगकी परिणतिसे विश्वसनीय नही कहलाता है। क्योकि उससे जद दान देने या महान कार्य करनेके लिए कहा जावेगा तब वह गुपचुप सिर नीचा करके रह जायगा या बातों मे टाल देगा। केवल पर्यायार्थिकनय देखो या द्रव्यार्थिकनय देखो तो दोनोमे दृष्टि सजग रहती हैं। पर्यायार्थिकनयसे जब देखा तब जीव द्रव्यसे व्यवस्थित नारक, तिर्यंच, मनुष्य, देव और सिद्ध है। इनमे देखने वालोको किया है अवलोकित जिसको वह अन्य है, अन्य है, इस तरह कहते है कि इस ग्रन्थमे जिसका मन है वह अन्यपना अर्थात् अनमना है।

अनमने मत बनो—कोई कहे कि तुम अनमने क्यो हो ? आज तुम्हे क्या हो गया है ? अनमना अर्थात् जिसका मन दूसरेमे है, दूसरे पदार्थोंको दिलसे चाहता है। ऐसा व्यक्ति और मिट गया है अनमनापन जिसका, ऐसे व्यक्तिको बोलेगे निजमना। जो भी उदास मिलेंगे वह इसीलिए कि उनका मन औरमे बसा है। जब-जब भी दुःख है, क्लेश होता है तब अनमनापन रहता है। जो बडे खुश हो रहे है, वैभवमे मस्त हो रहे है, रगरेलियोके सामने और कुछ नही मुहाता है। सदैव आहारकथा, राष्ट्रकथा आदिकी चर्चायें चल रही है। उन्हीकी विशेपताओपर बुद्धि खर्च की जा रही है। ऐसे व्यक्ति अनमने ही होते है। वह धनी हो, वकील हो, पडित हो, नेता हो या बाबू आदि कोई भी हो, वे यदि यह सब जो अन्य-अन्य प्रतिभास होते है उनमे उपर्युक्त है तो अनमने ही है। जीवको (मेरे लिए) तो एक पर्याय भी अन्य मन बनानेमे पटु है। जीव चाहता है कि मै ध्रुव रहू। मै करोडपति हू तो इस धनका मालिक तुम्हे (पुत्रादि) बनाता हू। इसका तात्पर्य यह है कि धन अध्रुव है। ध्रुवको हर कोई स्वीकार करता है, अध्रुवको कोई भी नही चाहता है। जीव भी अध्रुव नही रहता है। अगर ध्रुव बनना है तो दृष्टि भी ध्रुवपर देनी पडेगी। जिसकी दृष्टि अध्रुवपर रहेगी वह ध्रुव नही बन पावेगा। सदृशकी वजहसे वही तो पर्याय है ऐसा लगे, किन्तु पर्याय क्षणवर्ती है। ध्रुवपर दृष्टि दें तो ध्रुव बन जावेंगे। अविनाशीपर दृष्टि देवें तो अविनाशी बन जावेंगे। निस्तरग होना जो पसद करेगा वह निस्तरग हो जावेगा। मोहमे लीन रहने वाला मोही हो जावेगा और निर्मोहकी अवस्थाको अच्छा समझने वाला वैसा आचरण करेगा। इस तरह सभीपर बहुत-बहुत बीतती है। अपना हित एव अहित करना हाथमे है। इसी प्रवचनसारमे एक जगह लिखा है। यह केवलज्ञान क्या है ? अनादि, अनन्त, असाधारण, अहेतुक ज्ञानस्वभावको कारण रूपसे ग्रहण करके स्वय ही परिणमता हुआ ज्ञान है। सभी गुणोके सभी परिणमन स्वय विपरिणममान होते है। स्वभावका आश्रय करके विपरिणममान परिणाम स्वभावपरिणमन है। स्वभावके आलम्बनसे आत्मापर विजय पाना है, क्योकि वह ध्रुव अहेतुक आदि ज्ञानरूप भाव वाला आत्मा है। स्वभावपर विजय पानेसे आत्मा स्वय ही वैसा परिणाम

जाता है। यह परमात्माकी हालत है। अनादि अनन्तको कारण बनाकर केवलज्ञानी स्वय ही परिणम रहे है। तत्त्वज्ञानीकी हालत क्या है ? ज्ञानी सब उपद्रवोपर विजय पाकर निश्चिन्त निर्बाध रहता है। हर एक कोई निज स्वभावसे परिणमता है, परन्तु कोई पदार्थोंमे ममत्व बुद्धि रखता हुआ विभावरूप परिणमता है, कोई निज मर्मको समझ कर निजत्वपर लक्ष्य रखता है और स्वभाव परिणमनरूप परिणमता है।

पर्यायरूपमें प्रनिसमय परिणत पदार्थको सामान्यभावसे देखना अध्यात्म कला है—ज्ञानस्वभावका कही बाहरसे प्रवेश नही है। वह तो आत्माका विकास ही है, किन्तु वह नाटकीय भाषामे पहले नही था, बादमे आ गया, इस तरहसे प्रदर्शित करते हैं। इसीको प्रवेश करना कहते है। चीज पहले नही थी और अब बन गई है ऐसा भी नही है, किन्तु उस ज्ञान विकासपर पर्दा पडा था। प्रति समयमे एक ज्ञान शक्तिसे जाने गये, अन्य-अन्यसे नही, इस तरह द्रव्यार्थिकनयसे मालूम पडता है। पर्यायार्थिकनयसे देखनेपर अन्य-अन्य प्रतिभासित होते है। जैसे कि एक आग है। वह कडा, घास, पत्ता, काठमे लगी हुई है। उस समय वह केवल आगरूप ही देखी जा रही है। हालांकि वहाँ लकडीकी आग, कडेकी आग, तृणकी आग तथा कडेकी आग, तृणकी आग तथा कडेकी (उपले) आग—इस तरह भी पर्यायरूपोमे कह सकते है। किन्तु पर्यायें जुदी-जुदी ग्रहण न करके एक आग द्रव्यके रूपमे वह ग्रहण की जा रही है। उस वक्त कडा, घास, पत्ते, भूसे, काठ, कपडे, मिट्टीका तेल, पावर आदिकी आग सब गौण हो गई हैं। यह कडेकी, पत्तीकी, लेंडी आदिकी है, इस तरह भेद नजर नही आवेगा। यहाँ दृष्टान्तमे आगको द्रव्य बनाया। द्रव्य जो है वह अपने-अपने पर्यायमे है। द्रव्य उन विशेषो से तन्मय है। यह एक सीधी अगुली है, तब यह सीधेपनसे युक्त है तथा इसीको टेढी करनेपर अंगुलीका द्रव्य वही है, किन्तु पर्यायार्थिकनयसे अनेक अवस्थाओरूप हो रही है। जब-जब जिस-जिस पर्यायका जो-जो समय है, वह उस-उस समय उस-उस रूप होता है। पर्यायकालमे द्रव्य अन्य-अन्य होता है। जैसे कि कडे आदिकी आगमे दिखाया है। अग्निको हव्यवाह भी बोलते है। जिस समय जो होता धार्मिक अनुष्ठानके लिए हवन करता है, तब हव्यवाह बोला जाता है। ऐसा नही है कि कोई चिलम पीनेके लिए हव्यवाह माँगता हुआ आ जावे। उसी तरह अग्निको वैश्वानर भी कहते हैं। जिसका बिगडा हुआ रूप बुन्देलखण्डकी तरफ वैसान्दुर भी है। यह शब्द भी अपने स्थानपर बडा महत्त्व रखता है। वैश्वानर शब्द पूजन करते समय धूप खेने को ही किया जाता है। शब्दोंके जो-जो अर्थ हैं वह अपने-अपने स्थानपर अलग अलग महत्त्व रखते हैं। अग्निकी तरह उन सबको जुदी-जुदी अपेक्षाको लेकर प्रयोग किया जाता है।

दोनों दृष्टियोकी उन्मीलना व तुल्यता—कोई सामने एक फोटो टगी है। उसे एक

दाईं आँखसे बन्द करके देखनेपर उसका कुछ रूप नजर आवेगा और बाईं आँख बन्द करके देखनेसे फोटो कुछ सरकीसी मालूम पडेगी। कई चित्र इस तरहके होते है जो कि उन्हे देखनेसे अपनी तरफको नजर मिलातेसे मालूम पडते है। वह किसी भी ओरसे देखे जावें उनका मुह आपसमे मिलता हुआसा मालूम पडता है। मोटरमे दो लाइटें जलती है, उनमे एकको बन्द कर देनेपर उसका जुदा तिरछासा प्रकाश फिकेगा और जब दोनो रोशनियोको जला दिया जावेगा तब प्रकाश अधिक होगा व तेज रहेगा और अपनी सीधमे काफी जगहमे फैल सकेगा। यही वृत्ति आँखोकी है। द्रव्यार्थिकनयसे वस्तुको देखो तो वस्तुका असली निरपेक्ष स्वभाव ही कहनेमे आवेगा और उसको सब तरफसे देखनेपर पर्यायार्थिकनय नजरमे आवेगा। तुलना करनेको तुल्यकाल कहते हैं। एक ही समयमे उसे स्पष्ट कर दिया जावे। तुल्य समानताका भी पर्यायवाची है। सम या समान कहनेकी अपेक्षा तुल्य शब्द बढिया है। जिस क्षणमे तुलना हो गई, उस समय भावमे द्रव्यार्थिकनय खोला गया। उसीमे यह पर्यायार्थिकनय खोला गया तो केवल द्रव्य ही द्रव्य नही है। उसे द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकी अपेक्षासे उन्मीलित कर दिया गया। फिर देखो तो नारक, तिर्यंच, मनुष्य, देव और सिद्धत्व पर्याय भी व्यवस्थित स्थिर ज्ञात हो जावेंगे।

द्रव्यार्थिक—देखो—जिस समय द्रव्यार्थिक दृष्टि व पर्यायार्थिक दृष्टि दोनो एक ही कालमे खोल करके, उन्मीलित करके यहाँ-वहाँ सब ओरसे देखा जाता है, तब नारक, तिर्यंच, मनुष्य, देव व सिद्धत्व पर्यायोमे व्यवस्थित जीवसामान्य व जीवसामान्यमे व्यवस्थित नारक, तिर्यंच, मनुष्य, देव व सिद्धत्व पर्यायात्मक विशेष एक कालमे ही देखे जाते है। इसका भाव यह हुआ कि प्रमाणसे यही प्रमाणित हुआ कि जीवसामान्य व जीवविशेष सब कुछ ठीक है। प्रमाण सब नयोका समूह है, नय प्रमाणका एक देश है। मूलमे नयके दो भेद है—(१) द्रव्यार्थिकनय, (२) पर्यायार्थिकनय। अभेद प्ररूपक नयोका द्रव्यार्थिकनयमे अन्तर्भाव हो जाता है व भेदप्ररूपक नयोका पर्यायार्थिकनयमें अन्तर्भाव हो जाता है। यहाँ नयको चक्षुकी उपमा दी है। इन दोनो चक्षुओमे से एक चक्षु द्वारा देखना, सो एक देशका अवलोकन है और दोनो चक्षुओसे देखना, सो सर्वदेशका अवलोकन है। सर्वावलोकनमे द्रव्यकी अन्यता व अनन्यता दोनो प्रतिभास होते है, उनका विरोध या विप्रतिषेध नही होता। अहो! कैसे वैभवशील, स्वतत्र, परिपूर्ण, अखण्ड द्रव्य हैं? यह सब द्रव्यसामान्यका वर्णन चल रहा है। देखो भैया! द्रव्यके स्वरूपके परिचयसे ही मोह भागा जा रहा है। अहो देव, अहो वीतराग महर्षि, अहो जिनशासन! तुम्हे मेरी अभिवन्दना है। तुम्हारे परिचयके प्रसादसे मै कृतार्थ हू, अनुगृहीत हू, आभारी हू।

इस प्रकार ज्ञेयाधिकारकी इन २२ गाथाओमे द्रव्यस्वरूपका वर्णन हुआ। अब आगे

की गाथामे इसी सिलसिलेको लेकर कि द्रव्यमे सदुत्पाद व असदुत्पाद और अन्यता व अनन्यता आदि सर्वविरोधका निवारण करनेके लिये सप्तभगी, स्याद्वाद, अपेक्षावाद, अनेकान्त प्रदर्शन, समन्यवाद, दृष्टिवाद आदि सब पर्यायवाची शब्द हैं। यह विषय बहुत महत्त्वपूर्ण है। इस विषयका वर्णन अब ज्ञेयाधिकारकी २३वी गाथामे भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्य करेंगे।

अज्ञानतिमिरान्धाना ज्ञानाज्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलित येन तस्मै श्री गुरवे नमः ॥

पदार्थोंकी गणना व एक पदार्थकी सीमा—जगतके पदार्थोको जाननेके लिए इतना तो जानना आवश्यक है कि ससारमे समस्त पदार्थ कितने है ? तब तो कोई बात उनके सम्बधमे कही जा सकती है। ममस्त पदार्थ कितने है ? यह जाननेके लिए यह समझना पडेगा कि एक पदार्थ कितना होता है ? एक पदार्थ इतना होता है जितना कि वह त्रिकाल अखण्ड रहे अर्थात् जिसका कभी टुकडा न हो सके, उतना एक पदार्थ होता है। जगतमे हमे जो कुछ दिखता है वह एक पदार्थ नही, वह अनेक पदार्थोंका कुञ्ज था सो वह बिखर गया, इसीको लोग टुकडा होना कहते है। जैसे हम एक जीव है, क्यो एक है ? इस लिए की हमारे दो टुकडे नही हो सकते। इसी प्रकार प्रत्येक जीवोकी बात है। दिखने वाले पुद्गलोंमे जो एक एक अविभागी परमाणु हैं वे एक एक पदार्थ है। जो कुछ दिखाई देता उसे एक व्यवहारमे कह देते हैं—वह एक नही है, किन्तु अनेकोका समूह है। तभी उसके कई हिस्से हो जाते हैं।

एकके विभागका अभाव—जैसे कोई दस चीजोका समूह है। वह बिखरकर ६ और ४ की सख्यामे बट जाय तो यह चीजका टुकडा होना नही कहलाता, किन्तु अनेक चीजें थी वे बिखर गईं। अनेकोको एक मानना भ्रम है, स्कन्धोको एक पदार्थ मानना मिथ्यात्व है। स्कन्ध परमाणु सारी दुनियामे भरे पडे हैं। ससारमे अगर ये दृश्य पदार्थ एक चीज होती तो उसके टुकडे नही हो सकते थे। यह दृश्यमान सब अनन्त परमाणुओका कुञ्ज है। जिसे हम देखते है वह अनन्त परमाणुओंसे बना हुआ है। जैसे मन भर गेहूकी बोरी है, वह एक चीज नही अनेको गेहुओका पुञ्ज है। गेहू एक एक है वह तो पूरी है। वस्तुत उसका गेहूका दाना एक चीज नही है, क्योकि वह भी अनन्त परमाणुओका एक पिण्ड है। अगर किसीके टुकडे हुए तो वह एक नही था, ऐसे देखो तो एक एक परमाणुका नाम द्रव्य है।

भ्रम और अविनय—अनेकोंके समूहमे एकका भ्रम करके इसीमे जीव ममता करता है। बिखरने वाला बिखर गया, आत्माकी और शरीरकी दुकान अलग-अलग है, इन दोनो के कार्य भी अलग-अलग हैं, दोनोमे पार्टिशन भी नही है। आत्माका व्यापार आत्मामे और शरीरका व्यापार शरीरमें चलता है। शरीर तो बेवकूफ बनता नही, क्योकि वह अनजान है, पर आत्मा बनती है, क्योकि वह जानती हुई भी मोहजालमे फसती है। शरीरका कार्य अनन्त

परमाणुओके रूप, रस, गंध, स्पर्श गुणके परिणमनसे चलता है, परन्तु आत्माका कार्य जीवमे चलता है तो जो ऐसा जानता हे वह अच्छा नही है। ऐसे बेवकूफ जीवोसे तो अजीव अच्छा। अजीव पदार्थ कभी आकुलता नही करता, इसलिए यह अच्छा है, न कि आकुलता करने वाला। अपने-अपने स्वभावके अनुसार पदार्थका एक-एक परमाणु द्रव्य है। हम जिन भगवान का पूजन करते हैं उनके गुणोको तो देखते नही है, हमे उनके गुणोको देखना चाहिए। हम रागतानमे मस्त रहते है। दूसरोकी कला देखते है, नाचना देखते और हाव-भावोको देखते है, उसकी आवाजकी ओर ध्यान लगाते है, यह तो अज्ञानता है। मन्दिरमे हम अपना ध्यान भगवानके गुणोकी ओर न लगाकर यहाँ-वहाँके ऊपरी आडम्बरोकी ओर लगाते है, यही सबसे बडी अविनय है। घरमे रहते तो यही सोचा करते कि यह अच्छा है, यह बुरा है, यह हमारा है, यह परका है, उससे ममत्व लगाये रहते है, यह भूल है। इस प्रकार विचारते, ममत्व भावनाये करते रहते, जिन्दगी भर यही गाडी चलती रहती है, पर एक बार भी ख्याल नही आता है कि यह सब जाल झझट मिथ्या है। इस ससारमे अपना शरीर तक अपना नही तो फिर दूसरा कौन अपना हे? तेरहवें गुणस्थानमे अनन्तवीर्य, अनन्त सुखोकी प्राप्ति होती है वैसी प्राप्ति हम भी कर सकते है, पर उस चीजको पालनेकी कोशिश नही करते है, करें कहाँ से? क्योकि बुद्धि तो ममत्व परिणाममे रगी हुई हे।

रागविधिमे आत्मलाभका अभाव—भैया! बाह्य पदार्थोंकी प्राप्तिकी बात तो बहुत मुश्किल है करना, पर यह तो करना कोई कठिन नही, जो हमारे भगवान महावीर स्वामी या श्री ऋषभदेव कर गये। जो वाणी उनके शब्द परम्परासे चले आये हुए है, उसपर विश्वास करना और उस रास्तेपर चलना भी साक्षात् भगवानका स्वरूप पानेके लाभसे कम नही है। फिर भी देखनेमे आता है कि प्रायः किसीकी भी उसके ऊपर उनके वचनोंपर रुचि नही है। किसीको विश्वास कम है, जो कुछ है तो उसमे भी आदर नही है। सिवाय मन कषाय भाव के और कुछ नही है। अगर कोई भजन अच्छे रागसे गा रहा है तो कहेंगे एक और भजन हो जाने दो। एक आदमी भगवानके रागमे मस्त होकर रागसे अगर भजन गाता है तो उसे चार आदमी कैसी शान्ततासे सुनते है? इसपर दृष्टि हो जाती तो क्या इन लोगोकी भगवान के प्रति दृष्टि होगी? पर इतना होनेपर भी उनसे कहेंगे तो कुछ बुरा भी होगा क्योंकि जो घरपर बैठे गुलछर्रे उडा रहे है, राग रगरेलियोमे मस्त हैं, उनसे अच्छे तो ये हैं। उनके अदर भी ऐसे विचार आवेंगे कि उनसे हम कुछ अच्छे तो हैं जो थोड़े समयके लिए भगवानकी स्तुति मे अपना भाग दे रहे है। पर फिर भी सोचेंगे कि हमारे स्वरमे ऐसी आवाज है कि जिस प्रकार २०-२५ आदमियोके स्वरोमे तो सब एक साथ एक ध्वनिसे बोलें और जितनी हमारे

बोलनेकी गति है उसी स्वरसे बोला जा रहा है तो वह सुन्दर प्रतीत होगा। इस प्रकारकी पार्टीमे हमारा ध्यान दूसरोके प्रनि बहुत ज्यादा रहता है। उस समय हम भगवानके प्रतिसे दृष्टि हटाकर वहाँपर ध्यानको ले जाते है—यह भूल है और इसी कारण धर्मव्यवहारमे भी आत्माको शान्ति नही मिलती है।

सम्यक्ज्ञानके बिना असिद्धि—अन्त स्वरूप देखो, सम्यग्दृष्टि कौन है ? जो एक पदार्थ को एक देखे वह सम्यग्दृष्टि है, क्योकि अनेकोको एक देखनेसे ममता बढती है। शरीरके एक परमाणुके स्थानपर अनन्त परमाणु भी हैं, फिर भी प्रत्येकके स्वरूप भिन्न-भिन्न है। जिस जीवके अन्दर स्वतत्रताकी प्रीति बैठ जाय, उसे ही शान्ति मिलेगी। सम्यक्ज्ञान होना ही एक शान्तिका मुख्य अग है। देखनेमे ज्ञानकी पूजा छोटी है पर उसका महत्त्व बहुत बडा है। तुम तप करो, अनशन करो, गर्मीमे पहाडके ऊपर महीनाभर तपस्या करो, पर जब तक ज्ञान नही हो एकाग्र ध्यान न हो, चित्तको शान्ति नही मिल सकती, तब तक जप तप सब व्यर्थ हैं। अगर ज्ञानीको ऐसा तप हो जाय तो उसे मोक्ष तक बढानेका कारण है।

व्यर्थ मायामद—शरीरको देखकर यह मद करना कि मैं रूपवान हू, मेरा शरीर मोटा है, पतला है, मैं बलवान हू, किसीसे भी नहीं डरूगा, मैं बूढा हू, इस प्रकारके विचार करना मिथ्या है। यह शरीर तो परमाणुओंसे मिलकर बना है और बिखर जाने वाला है, माया वाला है, फिर ऐसे शरीरसे ममत्व बुद्धि क्यो करता है ? अहा ! ससारमे मोहजालका ही दु.ख है। मान लीजिए तुम्हारे यहाँ जो पैदा है, अगर यह जीव नही आता, उसकी जगह दूसरा जीव आता तो तुम्हारी उससे ममता तो नही थी, फिर क्यो उस लडकेसे इतनी ममत्व बुद्धि रखते हो ? उसी प्रकार यह शरीरका भी हिसाब है। उस पुत्र शरीरसे ममता होना एक को एक जानना नही है। जो उस शरीरके परमाणु हैं वे अनत मिलकर एक रूप बने है। उसे अपना शरीर है, हम यह मानते हैं, पर वह तो भिन्न है। इस प्रकारके भ्रममे जीव पडा है।

एकत्वदृष्टिमे लाभ—एक कितना है ? यह देखो जब दीपककी ज्योति होती है उससे वहाँका सारा अन्धेरा नष्ट हो जाता है, क्योकि उसकी किरणें सारे प्रदेशमे फैल जाती है और अन्धकारपर अपना कब्जा जमा लेती हैं। उनमे इतनी शक्ति है, पर अपने तले अन्धेरा ही रहता है। यही परोपकारका बडा अच्छा नमूना पेश है। देखो यहाँपर पुत्रसे बापका, स्त्रीसे पुरुषका, मातासे बच्चेका, घर वालोका, कुटुम्ब परिवारसे मित्रोका, दोस्तोसे रिश्तेदारोंसे अपना कोई सम्बध नही, परिचय नही है। इतना होनेपर फिर उससे हमे क्यो ममत्व होता है, उसमे कौनसा तत्त्व है ? इस ओर भले ही दूसरेकी दृष्टि न जाय, पर हमे विचार जरूर करना है, सोचना है। कभी दृष्टि भी ठीक हो जायगी व आचरण भी ठीक हो जायगा। यदि अज्ञान भावमे रहकर धर्मके नामपर कुछ भी करोगे तो न कुछके समान है। तुम बडे-बड़े धर्म कर

डालो, पर ये क्रोध, मान, माया, लोभ जो सताने वाले है, उनको नही छोडा तो सब व्यर्थ है। अगर तुम्हारे पास धन नही है, दरिद्रता है, गरीबी है, तुम दु.खी हो, किसी भी सकटमे फसे हो, अगर तुम्हारे पास क्रोध, मान, माया, लोभ नही तो अपरिमित सुख शान्तिको पा लोगे। जहाँपर ये सब है और पैसा भी हो, सब बेकार है, क्योकि ये चारो ही सताने वाले है, अत. इनको छोडना जरूरी है। यहाँपर बैठे है तो अकेले ही हैं, घरपर है तो अकेले ही है, मित्र-मण्डलीमे बैठे है तो भी अकेले है। कोई किसीका नही है, कोई भी किसीके साथ नही जाता है। यह सब मानना मिथ्या है कि यह मेरा है, मै इसका हू। इस तरहसे शोक करना भ्रम है कि यह लडका मेरा है, उसके दुःखी होनेपर दुःखी सुखी होनेसे सुखी दु खी होना। जब कि शरीर और आत्मा (जीव) का कार्य एकसा नही है। शरीरका अलग और जीवका अलग है, फिर इस ससार (जगत) को क्या पूछना ? वह भी एक चीज नही हो सकती है।

आत्माकी विविक्तता—कवि श्री भूधरदासजी ने कहा भी है—'जहाँ देह अपनी नही, तहाँ न अपना कोय।' जब कि देह ही अपनी नही है तो फिर दूसरोका क्या विश्वास करना कि ये मेरे है। इसका अर्थ यह नही समझ लेना कि जहाँ याने मरनेपर घर भरमे शरीर अपना नही रहता है वहाँ अपना कोई नही है और घरमे तो सब कोई है (हसी), यह तो व्यावहारिकता है। कहनेका मतलब यह है कि देह और शरीरका व्यापार अलग-अलग है, अतः आतमा और शरीरका कोई सम्बध नही है। इसलिए परपदार्थ तो प्रगट पर है, कुछ भी अपना नही है। हमे 'पर मेरा कुछ है' ऐसा मानना भी नही चाहिए, क्योकि हमे तो आत्मासे सम्बध जोडना है जिससे कल्याण हो। पुत्र पुत्रादिक तो क्षणिक दिखनेके ही है, यह पानी जैसे बुदबुदे है। अतः परपदार्थसे मोह मिथ्या है। दर्शनमार्गणा, लेश्यामार्गणा, कषायमार्गणा, ज्ञानमार्गणा आदि तो आत्माके कार्य है और शरीरका दुबलापन जीर्ण, जवान रूप रगमे गोरा, काला, चमकदार, काति वाला, दिखनेमे मोटापन—ये सब शरीरके कार्य है। इन सबका शरीर अलग-अलग है। दोनोका किसीसे भी सम्बध नही है। अगर हमे भूख लगी, ठडी लगी, प्यास लगी, यह पुत्र अपना, घर हमारा, कपडे हमारे, इस तरहकी समस्त ममता शरीरसे ही है और हमे इज्जत मिली, मान मिला आदि भी शरीरकी ममतासे ही है।

एकत्वदृष्टिसे संसरणका अभाव—शरीरमे चैतन्यपनेका स्वरूप लिये जो आत्मा विराजमान है उसको कौन जानता ? अपनी परख न होनेसे ही तो ये भाव होते हैं कि मेरा अपमान हो गया है। किसने किया है, क्यो किया है ? शरीरके बगैर ससारमे रुलानेका कार्य नही चलता है। सयम भी शरीरके रहनेपर ही होता है, बगैर शरीरके नही हो सकता है, परन्तु आत्मामें दृष्टि लगानेसे ही तो सयम होगा। जब शरीरसे दुःखकारी ऐसी प्रवृत्ति होती है तो फिर क्यो शरीरसे ममता रखता है ? परपदार्थ भिन्न है, उनसे हमारा कोई सम्पर्क नही है।

मनमे यह विचार आये और फिर परपदार्थसे विविक्त निज आत्मतत्त्वमे रम जाये कि इस शरीरसे छुटकारा मिल जावे, फिर कभी भी इस शरीरमे न आना पडे, ऐसा ज्ञान उत्पन्न करना चाहिए। शरीरमे शरीर परिणमता है, यह शरीर अनत परमाणुओ वाला है। अगर तुम इस तरहके विचार अपने मनमे धारण करके अन्तरचर्यामे ही चलाते रहोगे तो तुम भी सिद्ध भगवान हो जावोगे। शरीर जुदा है, यह तब समझमे आवेगा जब प्रत्येक पदार्थका स्वरूप जुदा-जुदा समझोगे। जब इस प्रकारकी दृष्टि हो जावेगी एक-एक चीज एक-एक परमाणु है उस दिन शरीर जुदा और जीव जुदा है, यह अच्छी तरहसे समझ जाओगे। जब शरीरके एक-एक परमाणुको भिन्न माने रहोगे तब यह भी रहेगा उसकी निगाहमें कि शरीर बिखर गया। जिस उपयोगमे स्वतत्र परमाणु दिखें उस उपयोगमे शरीर बिखर गया। जिसके उपयोग, निगाहमे सही एक-एक है उसको किससे ममता हो, किससे प्रेम करे वह ? इस बार-बार के अभ्यासके भीतरकी ज्योति मिलेगी।

अखण्ड पदार्थ और उसका परिणमन—जो एक-एक अखण्ड है वह एक-एक पदार्थ एक-एक चीज है। अनन्तानत पुद्गल, एक आकाशद्रव्य, एक धर्मद्रव्य, एक अधर्मद्रव्य, असख्यात कालद्रव्य पदार्थ हैं। ये पदार्थ स्वत सिद्ध हैं, किसीने भी बनाये नही है, अनादिसे चले आये है। इनकी खास विशेषता हरदम परिणमनशील है। इस कारणसे प्रत्येक पदार्थकी कोई न कोई दशा है। जीवकी कोई न कोई अवस्था रहती है, वह प्रति समय जुदी-जुदी है, उसमे रहने वाला जीवत्व एक है। धर्म, अधर्म, आकाश, काल सबकी अवस्था भी जरूर बदलती है। जो पहली अवस्था है वह नही रहती, दूसरे परिणतिमे उसका परिणमन हो गया है, होता रहता है। जो अवस्था पहले समय थी वह दूसरे समय नही हो सकती है। हाँ, शुद्ध द्रव्यमे अवस्था सदृश समान होती है, विसदृश नही हो सकती है। जैसे स्कन्धोकी दशा विचित्र-विचित्र परिणमनरूप विसदृश अवस्था हो जाय, ससारी जीवकी अवस्था क्रोध, मान, माया, लोभ हो जाय, किन्तु भगवानकी सदृश अवस्था सदैव है, वह तीनो लोक काल जो पहले समय मे है वह दूसरे और तीसरे समय भी चौथे समय भी रहेगी। लेकिन ,कालकी जो अवस्था है उसमे परिवर्तन होता जाता है। जैसे आज जो अवस्था है वह एक मिनट पीछे नही रह सकती, उसमे परिवर्तन आ जावेगा। देखिये प्रभुमे उत्पाद और व्यय इन दोनोका एक साथ रहना और भगवानका भी परिणमन होता, किन्तु इसमे यह कहा नही जा सकता कि कैसा परिणमन होता है ? जो पहले समयका परिणमन वही दूसरे समयमे दूसरा हो जावेगा तो यहाँ तक इतनी बात जानना कि प्रत्येक द्रव्य स्वतत्र है और परिणमन करने वाला उसका स्वरूप है।

शुद्ध और आन्तरिक परिणमनमें परिवर्तनकी अगम्यता—एक सेकेण्डमे असख्यात

समय होते है, ऐसे सब समयोमे शुद्ध द्रव्यका भी परिणमन होता रहता है। जैसे एक बिजलीका वल्ब लगातार एक घंटेसे जल रहा है। मान लो जब वह १० बजे जला तो उसने वही प्रकाश किया, ७ बजकर एक मिनटपर वही प्रकाश, इसी तरह चाहे दस मिनट बाद भी उसे देखो तो प्रकाश ज्यो का त्यो रहेगा, पर उसकी अवस्थामे परिणमन अवश्य होता जाता है। अगर इन दोनों अवस्थाओमे तटस्थता आ जाय तो काम भी बन्द पड जाय। इसी प्रकार एक गोला है लोहेका, तुम उसे हाथमे ले लो, पर दूसरा देखने वाला यही सोचेगा कि तुमने क्या किया ? पर परोक्षमे देखो सोचो तो प्रत्येक समय अलग-अलग अवस्था होती रहती है। जैसे उसने आठ बजे गोला लिया पर आठ बजे जो ताकत उसने लगाई है उसके बाद आठ बजकर १ मिनट पर उससे ज्यादा ताकत लगेगी। अत यह स्वय सिद्ध है कि प्रत्येक पदार्थ परिणमनशील है। उसी तरहसे तुम अपने मकानको ले लीजिए जिसे तुमने आज बनाया है। उसको ५ साल बाद देखोगे तो वह तुम्हे दिखाई नही देगा कि उसमे क्या परिवर्तन हुआ है, पर उसकी अवस्था अवश्य ही बदलती रहती है। यहाँ तक यह बात जानली कि प्रत्येक पदार्थ परिणमनशील है। जो पदार्थ आज दिखाई देता है वही कल भी दिखेगा, पर उसकी अवस्थामे अन्तर अवश्य आ जावेगा। इसी तरह इस शरीरकी हालत है। जो पहले हमारे परिणाम थे वे इस समयमे नही है। परिणामोमे भी परिवर्तन हो जाता है। यह परिणमन अनादिसे अनन्त समय तक चलता रहेगा और चला आ रहा है। जिन चीजोकी सिर्फ अवस्थामे परिणमन चलता रहेगा वह चीज ज्योकी त्यो रहेगी। इससे यह सिद्ध है कि प्रत्येक पदार्थ परिणमनशील है।

सामान्य और विशेष दृष्टि का परिणाम—जिसके क्रोध, मान, माया, लोभ परिणाम ऐसे ही रहे वह हमेशा दुःखी रहेगा, कभी भी उसकी उन्नति नही हो सकती है। उदाहरण कि आम एक है उसकी भिन्न-भिन्न अवस्थाएँ बदल जाती है। पहले वह छोटा था फिर बड़ा हुआ, आखिर फिर पक गया नीचे गिरा पर कौन गिरा ? आम वही जो पहले था। उसकी अवस्थाओमे परिवर्तन हो गया है। इसी तरह पदार्थमे दशा एक हर समय बदलती रहती है। मगर पदार्थका स्वरूप सत्य ही नजर आयेगा। क्योकि दृष्टिसे अलग-अलग नजर आयेंगे। पदार्थको देखनेके दो तरीके है। जैसे यहापर २० आदमी बैठे है ऐसे समयमे एक आदमी आता है उसे किसी खास व्यक्तिसे कार्य है तो उसकी निगाह उसी आदमी पर है तथा उन उन्नीस आदमियोपर नही है। अतः यह भी है कि, कोई उनमे से एक सज्जन है तो उसकी दृष्टि शुद्ध है उसीकी दृष्टि भगवान्के स्वरूपको समझनेकी ओर जावेगी। उन्ही आदमी मे एक आदमी ऐसा है जिसको सबसे मतलब है वह सबको एकसा देखेगा। पर वह पहले वाला सिर्फ जिस आदमीसे कार्य है उसे ही देखेगा, अन्य आदमियोसे उसे कोई मतलब नही है। पहला पर्यायकी दृष्टिसे देखेगा क्योकि उसे एकसे कार्य है तथा दूसरा द्रव्यदृष्टिसे देखेगा

क्योंकि उसे सबसे कार्य है तथा समान दृष्टि भी उसकी है, अतः किसी भी प्रकारसे उसमे बाधा नही है । ये दोनो अवस्थाए ही पर्याय हैं । द्रव्यदृष्टिसे सामान्य विशेपसे पर्याय ही है । जीवमे जो विशेष पर्याय हुई वही विशेषमे, जिसमे जो चीजें उत्पन्न हुई वे सामान्यमे नही हुईं ।

सामान्य दृष्टिका महत्व—जगत्‌मे हमने विशेषको जाना पर सामान्यको नही जाना । जब तक सामान्यको नही जानेंगे तब तक मिथ्यात्व ही रहेगा । विशेष है पर सामान्यकी खबर ही नही है । अनादि अनन्तद्रव्य क्या होता है ? जगत्‌के पदार्थ दुनियाको जाननेमे आये पर विशेषमे उस सामान्यकी जरूरत थी जिसकी कुछ खबर ही नही रही । वस्तुका असली रूप देखनेके लिए सामान्यकी जरूरत पहले है बादमे विशेषकी । जैसे आप है एक, पर आपकी अवस्थाये हमेशा ही बदलती रहेगी । हम अनादि कालसे एकसे रहे हैं, रहेगे और रहते जावेंगे, पर अवस्थायें ही बदलती रहती हैं । प्रतिसमय हमारेमे क्रोध, मान, माया, लोभकी परिणति तो रही है । यह विशेषका ही कारण है जो हम बाहरी आडम्बरको ही मानकर चल रहे हैं । पदार्थ स्वरूपके विशेष मानकर अशान्ति मानता है व सामान्य मानकर शान्ति मानता है । जितने बाहरी पदार्थ है सब दुःखके देने वाले हैं, इनको मोही अपना मानता है । सामान्य, विशेष—ये दो दृष्टि पदार्थ देखनेकी है । जैसे किसी भी चीजको बाईं आंख बन्द कर दाहिनी आँखसे देखिये तो वही फिर दोनो खोलकर देखिये, फिर दाहिनी मीचकर देखिये तो वही बाहरी रूप दिखेगा । लेकिन जब दोनो आँखें बन्द करके देखोगे तो असली रूप दिखाई देगा । यही स्वभाव है । पदार्थोंके जाननेके चार उपाय हैं—सामान्य, विशेष, सामान्यविशेष, अविशेषसामान्य । सामान्यसे पदार्थ नित्यस्वरूप नजर आवेगा और विशेषसे बाहरी रूप नजर आवेगा । विशेषसे अभेद ध्रुव न दिखेगा । विशेष परिणाम, परिणमन भेदकी अपेक्षा है । सामान्यमे विशेष लगाओ तो परिणाममे विकलता आ जावेगी । अगर दोनो नयोको बद करके देखोगे तो निर्विकल्प क्षोभरहित अवस्था रहेगी । ये पदार्थोंको जाननेकी तरकीब है ।

आत्मसावधानीसे जीवनकी सफलता—मनमे ऐसा उत्साह लाना चाहिए जो होगा, देखा जावेगा किसीकी कुछ भी चिन्ता नही है । किसीके लिए क्यो रज करना, किसीपर क्यो मोह करना ? यह सब स्वार्थपरताके कारण ही दिखाई देते हैं । मैं एक चिदानन्द आत्मस्वरूप का ही ध्यान करूगा ऐसा विचार करें । यह सब ज्ञानका ही बल है जो हम प्रत्येक पदार्थको जान सकते हैं । अज्ञानीको बोध कहांसे हो सकता है ? जैसे मुनि जगलमे जाकर कठिनसे कठिन तप करते, यह सब कर्मोंका नाश करनेके लिए । यदि अन्दर उनको ज्ञान नही तो कैसे करें ? फिर सब व्यर्थ जावे । जैसा तुम परिणाम करोगे वैसा ही तुम अपने आप पाओगे । आप भी जो चतुर आदमी हैं, जिसपर आपका बस नही चलता उसे आप पानेकी कोशिश क्यो करते है ? उसीमे अपनी चिन्ताको क्यो लगा देते है, जैसे कि धन कमानेमे तुम्हारा बस

नही है । यह तो भ्रम है । तुम समझते हो कि मैं कमाता हूं, ज्यादा कमा लू, धनवान् बन जाऊ और दूसरेसे ज्यादा कमा लूँ, इस प्रकारकी प्रवृत्ति है, यह भ्रममूलक है । पूर्व भवमे जो वात उद्देश्यकी थी वही इसी समय प्रगटमे काम आई, अतः उस उदयके अनुसार यह व्रत है ज्ञानावरणने जानने नही दिया । जानकारी बढानेमे हितकी बातमें जानकारी लगा दे ना, जिस पर बस चले वह काम करो तो पूरा पड जावेगा । नही तो समय और व्यर्थ जावेगा । कोई समय ऐसा आवेगा कि बडे-बडे भी मृत्युमुखमे पडेगे किसी समय । इसको भी किसी समय मृत्युका ग्रास बनना पडेगा । उस यात्रागमनमे सुखका अनुभव करना, आकिञ्चन्यभावसे गुजर करना, आराम करनेकी कोई आवश्यकता नही है । जैसे रामचन्द्र जी ने जगलमे बेर खाकर दिन बिताये इसीलिए अयोध्या वाले उन्हे पूजते है । एक राजकुमार होकर आज्ञाका यो पालन किया तथा कठिन दु खोको भी सुख मानकर प्रतिज्ञा पूरी की, पिताकी आज्ञाका पालन किया। अगर खुदमे आत्माका स्वरूप रहा तो मनुष्य जीवन सफल हो सकता है । सारी वस्तुएं सामान्यविशेषात्मक है । सामान्य द्रव्यार्थिक दृष्टिसे विशेप पर्यायार्थिक दृष्टिसे ज्ञात होता । दोनो का काम बन्द कर दिया तो अपने-अपनेमे नामरहित चैतन्यस्वरूप दिखेगा । उसीको देखनेमे आनन्द है ।

आत्मस्वरूपकी दृष्टिमें परेशानीकी समाप्ति—रुडकीकी एक घटना है कि मन्दिरमे एक अजैन स्त्री हमारे पास आई और अपनी दु.खोकी गाथा सुनाने लगी कि मैं कुछ नही कर सकती हू, क्योकि मै स्त्री हू, मै उन्नति नही कर सकती । धर्म करनेमे शर्म आती है, चार आदमी नाम रखते हैं । तब मैने कहा कि तुम स्त्री हो, इस प्रकारका तुम्हे भ्रम है । कौन कहता है कि तुम स्त्री हो, तुम स्त्री नही हो । उसने कहा कि यह कैसे समझा जाय कि मै स्त्री नही हूं । मैंने कहाँ शरीर, जीव दो न्यारे-न्यारे है, फिर तुम शरीरमे अहबुद्धि लगाकर यह कहती हो कि मैं स्त्री हूं । तुम तो जीवमे अहभाव रक्खो तो फिर कभी भी यह नही कहोगी कि मै स्त्री हूं । जीव कभी न पुरुप होता, न स्त्री होता है, क्योकि आजकलके जमानेमे भी स्त्रीवेदी पुरुप हो सकता है और पुरुपवेदी स्त्री हो सकता है । तो फिर क्यो ऐसी तुम धारणा करती हो कि ये पुरुष है, मैं स्त्री हूं । यहाँपर इतने आदमी बैठे हैं, उनमे न जाने कौन पुरुप है, कौन स्त्री है और इतनी स्त्रियोंमें न जाने कौन स्त्री है और कौन पुरुप है ? यह सुनकर वह स्त्री खुश हुई और बोली कि आपने ठीक कहा, मुझे बहुत अच्छा लगा है । अगर इसी तरहसे प्रत्येक प्राणी अपनी-अपनी वातोका स्पष्टीकरण करके समझने लगे तो इस संसारसकट से हमेशाके लिए छुटकारा पा जावे ।

वक्तव्यकी मंगलाचरणमे झांकी—इस ग्रथमे दो मंगलाचरण है उसमे किने नमस्कार किया गया है ? जो कि सबमे व्यापक है एक चैतन्यस्वरूपमय जो परमात्मा हैं, उसको नम-

स्कार किया। सिद्ध परमात्मा है वह तो कार्यपरमात्मा है उसको नमस्कार नही कर सकते। क्योकि वह उसकी जगह है, हम दूसरी जगह है जो कुछ हम कर सकते है अपना कर सकते है परमात्माका नही कर सकते। हम दूसरेकी पूजा कर लेते, यह सोचना, विचारना भ्रममूलक है। दूसरा पदार्थ जो श्री कार्यपरमात्मा है वह अनतवीर्यवान अनन्तसुखसम्पन्न है। सो उससे तो भगवान अपने लिए सुख भोग रहे, न हमे कुछ देते है, न लेते हैं। हम ही अपने कर्ता हैं, भोक्ता है, कोई किसीका नही है, कोई किसीके लिए नही करता है। जो कुछ करता है वह अपने लिए ही करता है, भगवानका पूजन नमस्कार हम खुदके लिए करते है, न कि भगवानके लिए करते है। भगवानका हम कुछ करते, यह मानना भूल है। जैसे कि लोग समझते है कि परमे हमने यह किया, यह उनकी भूल है। उसने तो सिर्फ वहाँ भगवानके बारेमे अपना विचार बनाया और कुछ नही किया, इससे आगे रच भी उसने कुछ नही किया। जहाँ भावो मे इतनी कोमलता विनयशीलता है वहाँ कोमल परिणाम बनाया, हमने अपना विचार भाव व्यक्त किया। भगवानका उपयोगमे आश्रय करके हम गुणविकास करें, यह तो हमारी कला है। हमने भगवानको नही पूजा, मात्र अपने आपको पूजा। उसे शुभ अर्थात् अच्छे भाव कहते है।

ध्रुव तत्त्वकी आस्थामें विकास—अपने आपमे विराजमान जो शुद्ध चैतन्य है उसे जाननेकी कोशिश करो, जिससे आत्मकल्याण हो। जीवका स्वरूप भी चैतन्यस्वरूप है जो इस समयकी अवस्थासे विलक्षणस्वरूपी है, सामान्यरूप है। जो अध्रुव रहता है वह विशेष है। यहाँ विविध विशेष रहते हुए भी विशेप परिणति द्वारा सामान्यस्वरूप निज कारणपरमात्माको नमस्कार किया गया। यह चैतन्यस्वरूप है, उसको देखा जा रहा है, परमात्माको कोई बनाया तो जाता नही है। अज्ञानमे रागादि भाव आत्माके अन्दर उत्पन्न होते ही हैं और ज्ञान होने पर स्वभाव विकास बढता ही है। स्वभाव शक्तिरूप भावसे बाहरी रूप बाह्योपयोग रूप जो है वह स्वभावसे निकलनेका रूप है, वहाँ परमात्मा है ही नही। अगर अपने आपके बारेमे यह निर्णय हो जाय कि मैं परमात्मस्वरूप वाला हू तो परमात्म शक्तिकी प्रतीति वाला वह अपने शुद्ध स्वभावका आश्रय करके शुद्धविकास कर लेगा।

बेवकूफीमे फजीहत—ये तो सब पुण्यपापके वैभव ठाठ है, उनपर रीझना विडम्बना है। जो रीझे वह मूर्ख है व विपत्तिको बुलाता है। एक समयकी बात है कि एक महाशय थे, उनका नाम बेवकूफ था और उनकी श्रीमती जी का नाम फजीहत था। उन दोनोमे आपसमे कभी-कभी बनती नही थी। किसी तरहसे एक दिन दोनोमे ज्यादा झगडा हो गया तो श्रीमती जी वहाँसे चल दी। थोडी देर वाद उनके पतिने उनकी तलाश की, तो वे बेवकूफ जी जहाँ भी जिससे पूछे कि हमारी फजीहत देखी तो उस चीजको जो आदमी जानते थे उन्होने कह

दिया कि नही देखी । ऊपर एक अनजान आदमीसे मौका पड़ा । उसने कहा कि भैया ! हम वात समझे नही, आपका क्या नाम है ? वह बोला—मेरा नाम बेवकूफ है तो वह पथिक बोला कि बेवकूफ होकर कहाँ फजीहत ढूढने जाते हो ? बेवकूफको तो जगह-जगह फजीहत मिलती अथवा बेवकूफी स्वय फजीहत ही दिखाई देती है वह तो सब कर्मोंका खेल है । वह अपरिचित पुरुष अनभिज्ञ था, उसे यह मालूम नही था कि फजीहत उसकी स्त्रीका नाम है । इसी प्रकार अपना दुकानका कार्य होता है, उसमे यदि हमे ज्यादा नफा होता है तो हम मान बैठते है कि आज हमे कुछ लाभ हुआ है । वह यह नही जानता कि अज्ञानभावमे तो यह सब विपदाका काम करती । अगर हमे दुकानमे टोटा पड गया तो हम उसमे अज्ञानताके कारण दु:ख मान लेते है, यह हमारी भूल है । उसी प्रकार पुत्र आज्ञाकारी है तो सुख मान लेते है और आज्ञाकारी नही है तो दु खका अनुभव करते है । अज्ञानता जो है वह बेवकूफी है, मिथ्या व असत्य है ॥

प्रभुका अनुकरण प्रभुपूजा—यहाँ तो दु:ख काल्पनिक चीज है । हम ऐसी कल्पनाये करते है कि हाय वह कैसा धनी हो गया है, हम उससे गरीब है । हम क्या धनी है, हमसे भी ज्यादा धनी इस दुनियामे दूसरे आदमी पडे हुए है, इस लडकेको ज्ञान कब आयगा, कैसे जिन्दगी बितायेगा आदि अनेक प्रकारकी कल्पनाए मानस आगारमे उठती रहती है । अगर हमे ज्ञान हो जाय तो हम अपनी आत्मा जो चैतन्यस्वरूप वाली है, उसीके गुणोकी ओर अपनी शक्तिको लगावें । में तो एक सामान्य स्वरूप हू । अगर धनमें सुख होता तो भरत चक्रवर्ती, ऋषभदेव भगवान और शान्तिनाथ भगवानने फिर क्यो इस धनसे मोह छोड दिया है ? मैं मनको अहितरूप नही मान सका और अपनी आत्माको हितरूप न मानकर परपदार्थों को मानता रहा हू, यही सस्कार बेचैनी कर रहा है । जिसके ज्योति नही वह आदमी यही सोचेगा कि भगवान भी बेवकूफ है वह उनके गुणोकी परख नही कर सकता है । वह भगवान के स्वरूपको नही समझ सकता है, फिर महत्त्व कैसे जाने ? जिनको पूज रहे हैं उनको वैभव से अतीत जो न माने, वह भगवानके बारेमे यह नही सोच सकता कि भगवानने विवेकका अनुकरण किया है । इस दुनियामे कई लोगोने भगवानको अन्यथा ही समझा है । कुछ विरले बुद्धिमान ही भगवानको मानते हैं, क्योकि ज्योतिके अनुभव वालोकी दृष्टिमे यही बात है कि उन्होंने कैवल्य अवस्था प्राप्त करके निर्विकल्प ज्ञानको प्राप्त किया है । भगवानकी पूजा भी कर लें और भगवानको नही समझ पायें, ऐसे भाई भी इस समय है ।

स्वदृष्टिमें स्वगुणविकास—भैया ! जब तक हममे गुणकी बात नही आती तब तक जरा भी दूसरेके तथ्य ज्ञात नही हो सकते, जरा भी दूसरेके गुण ज्ञात नही हो सकते हैं । जो गुणको नही जानते वे किसीको क्या पहचानेंगे ? नही पहचान सकते है । आप जब भगवान्की

पूजा करते है उस समय मूर्ति चेहरा देखकर यह कहते हो कि भगवान् हस रहा है तो तुम पहले यह सोचो कि तुम्हारे मनमे पहले कुछ प्रफुल्लता है, इसीसे तुम्हारे लिए ऐसा दिखाई देता है। कभी-कभी तुम्हे चेहरा रंजमे दिखता है उस समय तुम्हारा मन किसी रजमे होगा अतः वह रजमे दिखता है। कोई मनुष्य वहुत उदार है उसकी उदारताकी पहिचान सिर्फ वही कर सकता है जो खुद उदार हो, नही तो और कोई उसकी कदर नही कर सकता है। इसी तरहसे जो कुछ थोडा भी ज्ञानी होगा वही भगवान्के महत्त्वको समझ सकता है। यहाँपर जीवने सिर्फ विशेषका ही परिचय किया है, सामान्यसे कुछ भी सम्पर्क नही रक्खा है। सामान्यके अवलोकनके बिना विनाश है। उदाहरणके लिए एक अगुलीकी अनेक अवस्थायें होती हैं, वही अगुली सीधी भी, वही टेढी भी हो जाती है तो अब यह बताओ जो सीधी है, टेढी है वह या है सब एक ही चीज है, न कि अलग-अलग, सिर्फ उसकी अवस्थाए अनेक व अलग अलग हैं। यह अंगुली तो एक ही है, इसे हम आँखोसे नही देख सकते, उसे तो सिर्फ मनसे ही जान सकते है। इसी प्रकार सामान्य आत्मा इन्द्रिय व मनसे भी नही जाना जा सकता है। अगर एक सेकेण्डके दसवें हिस्सेमे भी आत्माका अनुभव हो जाय तो भी काफी है। मन और इन्द्रिय अपना कार्य बन्द कर दें ऐसी स्थिति अधिक देर तक नही रह सकती है। मनसे ज्ञानकी उत्पत्तिका प्रारम्भ है, किन्तु आत्मानुभवके समय मनका काम नही है। खिन्नीकी लकडी पोली होती है, उस लकडीसे दो टुकडे कीजिये फिर उन दोनोको इस तरहसे तिरछे जोड दीजिएगा कि वे एकसे दिखने लगें। फिर एक लोटा भर पानीमे डुबोकर उस लकडीके सिरेको मुहके अन्दर रखकर ऊपरको सास खीचिये तो उस लोटेका जो पानी होगा वह उस लकडीके द्वारा ऊपर आकर टपकता रहेगा। उस कार्यमे जो पहले क्रिया हुई है वह मुहकी हुई, फिर बादमे पानी टपकनेकी क्रिया हुई है।

सामान्यके आश्रयसे ही निराकुलताका अभ्युदय—आत्माकी परीक्षा सामान्यपर विशेष के प्रयोग द्वारा होती है। मोहीने जो परिचय किया है वह परपदार्थोंसे किया है; इसने आत्मा से बिल्कुल परिचय नही किया है, अत. दु खोको भोगता रहता है। जो चिदानन्द आत्मस्वरूप आत्माका ध्यान करेगा वह एक दिन अवश्य ही उस परमात्माको अपनी ही आत्मामे पा लेगा। हम देखते है कि यह आदमी है, पर वास्तवमे वह खाली आदमी नही है, मनुष्य नही है। यह समझना भूल है कि वह मनुष्य है, क्योकि देखनेमे आती है कोई न कोई अवस्था। जब हम बच्चे थे उसी समय हमे मनुष्य कहते तो फिर जवान होनेपर भी हमे मनुष्य क्यो कहा जाता है? अगर हम बच्चे ही आदमी होते तो फिर हम मिटते नही, बच्चे ही रहना चाहिए था। इसी तरह जवानसे बूढे हो गये तो हमे बूढा कहने लगे, फिर मनुष्य कैसे रहे? नही रहे, क्योकि वह मनुष्यपना कभी बदलना नही चाहिए था, क्योकि वह तो एक है, जो चीज

सामान्यदृष्टि रहनेपर ही ग्रहणमे ग्रा सकी है। इसी तरहसे स्थूल रूपमे मनुष्यका दृष्टान्त है। जीव असलमे क्या है ? मनुष्य है। तो फिर वह आगे जीव नही हो सकता है। देव, नारकी, पशु, तिर्यंच, भवोमे रहने वाले जीव सामान्य अनादिसे अनन्तकाल तक एकसे रहते चले आये है और रहेगे, फिर उन अवस्थाओको ही जीव कहना भ्रम है। पर इतना होनेपर भी अवस्था प्रत्येक समयमे ही बदलती रहती है। व्यवहारमे पशु, नारकी, मनुष्य आदिको जीव कहना, क्योकि ये जीवकी दशामे रहते है। दस तरहकी विशेषोमे दृष्टि हो तो प्रत्येकके मनमे आकुलता रहती है। अत. यह कहना युक्त है कि उस चिदानन्दको पाये बिना विशेष विषयोका भार ढोना पडेगा। भैया ! इस विडम्बनासे बचनेके लिए हमे उसके गुणोको देखकर चलना चाहिए कि उसमे क्या ऐसा कार्य किया जाता है जिससे वह यहाँसे मुक्त हो सकता है ? हम करते क्या है कि बाहरी मायामे फसकर जन्म मरणके दु खोका ही अनुसरण करते हुए कर्मोको दोप देते रहते है। वास्तवमे अपनी भूलकी ओर ध्यान नही देते कि आखिर यह भूल मेरी है जो अपनी आत्मामे ध्यान नही लगाता हू।

शान्तिका प्रयोजक और विधान—इस ससारमे हम शान्ति चाहते है तो ऐसा सोचें कि शान्ति किसे दिलाई जाय, कैसे दिलाई जाय ? इन बातोको जाननेके बाद ही उसे शान्ति मिलेगी। शान्ति पानेके लिए हमे सबसे पहले यह जान लेना पडेगा कि मै और गैर ये क्या चीज है ? इसीको जाननेके लिए मै कोशिश नही करता हू। जब मैं कौन हू, ऐसा सत्य जान जाऊगा तो अवश्य ही शान्ति पा लूंगा तथा आत्मा और अनात्मा क्या है ? साथ-साथ यह भी जानना पडेगा। मैं और गैर इन दोनोमे मैं कौन हू ? यही सकल्प-विकल्प मनमे उठते रहते हैं। मै तो केवल एक है, पर गैर मै अनेक है। स्वके देखनेसे यह मालूम पडेगा कि जीव का स्वरूप क्या है ? यह जीव अपने आपमे विराजमान शुद्ध चैतन्य ही मैं है। जीवका स्वरूप चैतन्य है, जो हर अवस्थामे रहता है, हर अवस्थामे सामान्य है। जो दिखने वाले ये पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल है, ये मैं नही हू, ये तो सिर्फ गैरमे ही है। ये प्रत्येक परमाणु है, एक-एक द्रव्य है, ये सब द्रव्य परमाणु अपने नही है तो फिर ये द्रव्य मेरे कहाँसे हो सकते हैं, ये तो केवल परिवर्तन ही हैं। आत्मा व अनात्मा हे, अनात्मा कितनी है, यह जाननेके लिए समस्त जीवोको कैसे है ? यह जानना ही पड़ेगा। जो मैं अपने बारेमे जानता हू वैसे ही सब जीवोके बारेमे जानना पडेगा। तब ही सब जीवोका निर्णय हो सकेगा। माया मूर्तिपर दृष्टि रखकर कैसे अपना निर्णय हो सकता है ? वह एक चीज नही है, इन सब स्कन्धोका समूह है।

आत्मद्रव्यकी पर व परभावसे अत्यन्त विविक्तता—एक धर्मद्रव्य सारे लोकमे फैला है और एक आकाशद्रव्य लोकाकाशके बाहर भी फैला है और एक अधर्मद्रव्य सारे संसारमे

फैला है। एक-एक कालद्रव्य एक-एक प्रदेशमे ठहरा हुआ है। पुद्गल भी यहाँ सर्वत्र हैं। जब ये एकक्षेत्रस्थ पुद्गल द्रव्य भी हमारे नही है तो फिर अन्य कैसे हो सकते हैं ? ये रागादि भाव तो हमारे विपरिणमन है वह भी मेरी चीज नही है। असख्यात प्रदेशोंमे एक-एक जीवद्रव्य स्थित है उसमे रागादिक है, पर औपाधिक है। मैं और गैर मैं को जाननेपर ही यह मालूम पडेगा कि मै एक चैतन्य आत्मा हू। इस तरहसे मैं जो हू गैर पदार्थोंसे अलग हू, निर्विकल्प स्वरूप, ध्रुव निरपेक्ष हू तो फिर पारिणामिक ध्रुव मैं क्या हू ? इसपर विचार करें तो भेद-दृष्टिसे तो दर्शन, ज्ञान, चारित्रकी सत्ताका महत्त्व, उनकी क्रिया ही अलग नजर आवेगी। इनकी शीलता परिणमन करनेकी है, ये परिणमन अपने नही हैं। इसी प्रकारसे जो आठ प्रकारकी ज्ञान व्यक्ति है वह भी हमारी नही है। मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन पर्ययज्ञान, केवल-ज्ञान, कुमतिज्ञान, कुश्रुतज्ञान और कुवधिज्ञान—ये आठ ज्ञान ही जब अपने स्वरूप नही हैं तो दूसरे क्या हो सकते ? ये तो सिर्फ ज्ञानके परिणमन रूप है। हाँ केवलज्ञान केवल ही है, इससे सिर्फ आनद ही आनद हो सकता है। एक समयके केवलज्ञानसे दूसरे समयका केवलज्ञावका विषय पहलेका नही हो सकता है। इसकी इतनी शुद्धि है कि वह सदृश है। लोकमे कोई भी जीव ऐसा नही है जो किसी भी दशामे परिणमनशील न हो अर्थात् सब जीव परिणमनशील है। चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन, केवलदर्शन, इनका जीवसे शाश्वत सम्बध नही है। जीवमे अनेक परिणमन परिभ्रमण करते हैं, इन परिणामोसे कोई परिणमन चारित्र दर्शनका है। जब ये भी हमारे नही हैं तो फिर दूसरी चीज मेरी कैसे हो सकती है ? जो २६ प्रकारकी कषायें मार्गणा हैं जैसे अनतानुबधी, क्रोध, मान, माया, लोभ, अप्रत्याख्यान, सज्वलन, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुसकवेद और अकषाय, ये ही हमारे नही हैं तो फिर दूसरे आदमी परपदार्थ मेरे कैसे हो सकते हैं ? ये कषाय तो परिणमन रूप है। तुम्हे मालूम हो कि श्रद्धाके परिणाम औपशमिक क्षायिकभाव, मिश्रभाव ये भी हमारे स्वरूप नही, सिर्फ परिणमन रूप है तो फिर परपदार्थ मेरे कैसे हो सकते है ?

सहज अन्तस्तत्वके अवलंबनमे सम्यक्त्वका अनुभव—भैया ! कषायरहित मेरा स्व-भाव है वह एक निश्चल स्वतत्र चीज है, किन्तु इतना होनेपर भी प्रति समयमे अकषायका परिणमन चल ही रहा है। उसकी परिणतिमे अनवरत ये अकषाय चलता है वह सब परिण-मन है, मैं तो ध्रुव तत्त्व हू। जिससे ये आठ ज्ञानके भेद उपजते है वह हमारा स्वरूप है। जिसका चक्षुदर्शन आदि परिणमन होता रहता है यह पारिणामिक भाव है ज्ञानशक्ति दर्शन-शक्ति, चारित्रशक्ति आदि। उसे ही मैं अथवा मेरा है यह मानना तथा फिर सोचे—क्या मैं बिखरा हुआ जीव हू जो मेरेमे अलग अलग प्रकार हैं ज्ञान अलग, दर्शन अलग, चारित्र अलग होता है और प्रत्येककी शक्ति मेरेमे आ करके मिल जाती है ? नही, वह समस्त

आत्मा है। समस्त शक्तिके अभेदरूप जिसको कह सकने वाले कोई वचन नही है वह एक स्वभाव है वह मैं हू। अपनेको देखो तब मालूम पडेगा तुम्हारा स्वरूप क्या है ? जैसे तुम्हारा बच्चा है वह आपकी कल्पित कुटियामे है, किन्तु है तो भिन्न जीव, तुम उसे अपना मान बैठे हो पर यह भ्रम है। वह तुम्हारी कुटियामे रहता है, इसलिए तुम्हारा क्या है ? उसी प्रकार का दूसरा जीव भी समक्ष है जरा तुमसे थोडी दूर रहता है उसे अपना क्यो नहीं मानते हो ? अगर ये परपदार्थ अपने होते तो अपनेसे तन्मय होते। हमारे ये पूज्यपाद राम, हनुमान, भरत चक्रवर्ती सरिखे महाराजाओने अपने सारे राज्यपाटपर लात मार दी तो फिर हम क्यो इससे लिपटे फिरते है, अगर ये हमारे होते और हमारी भलाईके लिए होते तो फिर इतने बडे महाराजा इतने बडे पुरुष राजपाटको क्यो छोड देते ? उन्होने तो अपनी तीन खण्डकी विभूति तकको छोडकर इस चिदानन्द आत्माका ध्यान किया है। उन्होने इसे त्यागनेमे बिलकुल हिच-किचाहट नही की है। जड पदार्थ मेरा कुछ नही है, हमे अपनी जडको मजबूत बनानेके लिए सम्यक्त्वका आचरण करना चाहिए, नही तो यह जिन्दगी वैसे ही बीत जावेगी, कुछ भी अपना भला नही हो सकेगा। अगर हम ऐसा न करें तो भगवान्‌के सपूत कैसे कहे जा सकते है ? जब तक हम सहज अन्तस्तत्त्वका उपयोगमे धारण न करेंगे तो हमारा सम्यक्त्व व ज्ञान नही जगेगा जिससे हमारा आत्मकल्याण होने वाला है। उस सम्यक्त्वको धारण करने पर ही हम भगवान्‌के सपूत कहे जा सकते हैं।

यथार्थ परिचयसे आकुलताकी समाप्ति—यहा पर एक मर्मकी कहानीके रूपमे उदा-हरणार्थ सुनें। एक आदमी अपने गांवसे चला। चलते-चलते उसे रास्तेमे अधेरा हो गया। वह दूसरे गाँव पहुचनेकी तलाशमे था, पर अन्धेरा इतना तेज था कि वह दूसरे गॉवका जहाँ उसे जाना था रास्ता भूल गया, वह पगडडीका रास्ता था। वह एक घटे तक चला, फिर उसने सोचा कि अगर मैं ऐसे ही चलते रहूगा तो पहुच नही सकता। न मालूम कब तक चलना पड़े, कब वहाँ पहुचू ? रास्ता मालूम नही पडता, वह एक टीलेपर जाकर एक स्थानपर जाकर बैठ गया। उस समय वह बैठा तो था, पर उसके दिलमे वही घबडाहट थी कि वह कब अपने ठीक स्थानपर पहुचेगा तथा वह अपना रास्ता कहाँ ढूढ पावेगा ? इसी चिन्तामे मग्न था कि एकाएक बिजली चमकी और उसे वह सड़क व एक पगडडी दिख गई जिसपर होकर उसे जाना था। वह बडा ही खुश हुआ और वह फिर आनन्दपूर्वक वहाँ पर सोया। अब उसे उस प्रकारकी कल्पना नही थी कि वह कब पहुचेगा, कैसे पहुचेगा ? उसकी आत्मामे शान्ति थी। वह सो गया रात भर चैनसे सोया, फिर सुबह उठकर वह चल दिया और ठीक स्थानपर जाकर वह पहुच गया। इसी तरहसे यह जीव भी अज्ञानरूपी अधेरेमे एक पगडडीपर भटकता हुआ फिर रहा था। सोच रहा है कि क्या करू, कहाँपर जाऊ, किस प्रकारसे जाऊ ?

फैला ...न-एक ... की उसमे उसे अपना रास्ता दिखाई दे गया है। ... वाला नही, वह क्या सोचता है कि यह रास्ता तो अपने पास ... है ... हुआ, इसे कोई छीनने वाला नही है। यह ज्ञान होते ही सयमासयमकी पगडडीसे चलकर सयमकी सडकसे चलकर मोक्षके समीप पहुचता। अहो ऐसी शक्ति पाकर भी कोई मोहजालमे फसा हुआ सोचता है—अभी सासारिक सुखोको भोगना पड रहा है, दु खो को भोगना पड रहा है, किन्तु निकटमे कभी पासकी चीजका उपयोग करेगा, चीज पास है तो जब मनमे आयेगा तब उपयोग कर लेगा।

यह ससारी जीव मोह, रागद्वेष अज्ञान ममत्वमे पडकर ही जीवनको व्यर्थ गवा रहा है। सबसे बडा दुःख है मानसिक दु.ख। जब तक यह दुःख नही मिटेगा तब तक किसी भी मनुष्यको शान्ति नही मिल सकती है। भैया! शान्ति पानेके लिए ममत्वबुद्धिको दूर करना पडेगा तभी हमारा कल्याण होगा। जिस रास्तेसे हमारे साधुगण चले आये है उस ही रास्ते पर हमे भी चलना चाहिए, जिससे आत्मकल्याण हो। जिससे ये जो सकट आते है वे नही आवें। विवेकी पुरुष विषयोसे विराम लेता है। जब भी किसी उपदेशके द्वारा एक बिजली चमकी और उसने बताया कि तुम्हारा रास्ता वह है, पर तुमने उसे उपयोगमे नही लिया है। यह सब बाहरी पदार्थ क्षणिक है, जब समय ही क्षणिक होता है तो फिर परपदार्थोंकी तो बात ही क्या कहना है? इस मर्मके समझते ही सतोप हो जाता है। मिथ्यादृष्टिके अगर सम्यक्त्व व सयम हो जावे एक साथ तो उसके अप्रमत्तविरत गुणस्थान हो जाना है।

स्वभावाश्रयसे उत्तरोत्तर विकास—जहाँपर श्रद्धा व चारित्र गुणका कुछ भी शुद्ध-विकास नही है उल्टा ही परिणमन है ऐसे परिणामको मिथ्यात्व कहते है। मिथ्यात्वमे जीव शरीरको स्वय मानता है। रागद्वेषादिक विभावोंसे भिन्न शुद्ध ज्ञायकस्वभावका परिचय नही कर पाता। जिस जीवके श्रद्धा निर्मल हो गई वही जीव अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ आदि न होनेसे और रागके क्लेशको नही सहन कर सकनेसे तो अविरत गुणस्थानवर्ती होता है, उसके कोई भी व्रत नही हो सकता है। हाँ असयमका क्लेश है। वह सोचता है कि मैं भूला हू, पर मार्ग वह है उस सडकपर पहुचानेके लिए गुणाश्रय ही हमारी मदद करेगा दूसरा कोई भी नही कर सकता है। हम उस मार्गपर चलते हैं, पर उसपर एकदम नही चल सकते, धीरे-धीरे ही चल सकेंगे। धीरे-धीरे भी सही चलनेसे महाव्रत पर पहुच जावेंगे। हम इस समय विषयकषायोंके क्रूर घोर जगलमे पडे हुए हैं और उसी घोर जगलमे भटक रहे हैं। आगे जानेको रास्ता है, पर उसे पकडते नही है, वहीके वही चक्कर खा रहे हैं। जब उस रास्तेको पकड लेंगे, तभी इस जगलसे निकलकर मगलमे पहुचेंगे। वह है रास्ता सयमा-सयम, इससे चलकर सयममे आवें, फिर ध्यानमे आवें। इससे अपूर्वकरणकी प्राप्ति होती है।

इस मार्गसे अपूर्वकरण मार्गपर आकर जिसमे समान [illegible]
वह कषायोकी प्रतिध्वनि करके एकदम क्षीण अवस्थामे आ [illegible]
जो एक बार उजालेमे देख लिया था, क्षीण मोह बननेकी देर थी [illegible]
दर्शनकी प्राप्ति होती है। यह विकास विशेष अवस्थाकी दृष्टिसे नही होता। वहाँ तो सामान्य के परिचयकी जरूरत है। सयोगकेवली हुए फिर आखिर यह शरीर कब तक चिपका रहेगा? इन कारणोके खतम होनेपर एक कारणयोग, जो कुछ थोडी देर तक रहता ही है, इसका अभाव होते ही सदाको शरीर दूर हो जावेगा।

सामान्यमे स्वभावदृष्टिसे व विशेषमे पर्यायदृष्टिसे दिखने वाला द्रव्य है। सामान्यकी दृष्टि द्रव्यार्थिकसे व विशेषकी दृष्टि पर्यायार्थिकसे होती है। जब जीव द्रव्यदृष्टिसे देखा जाता है तो द्रव्यसामान्य ही नजरमे आता है। पर्यायोमे रहने वाला एक द्रव्य वही है जिसमे ये पर्यायें है। जब द्रव्यदृष्टिसे देखते है तो स्वभाव दिखता है। पर्यायदृष्टिसे देखनेपर पर्यायजाल दिखता है।

॥ प्रवचनसार प्रवचन पंचम भाग समाप्त ॥

पूज्य **श्री गुरुवर्य्य मनोहर जी वर्णी "सहजानन्द" महाराज** द्वारा
शोधित किया गया **"प्रवचनसार प्रवचन"** का यह नव सस्करण सम्पन्न हुआ।

अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक मनोहर जी वर्णी

'सहजानन्द' महाराज विरचितम्

सहजपरमात्मतत्त्वाष्टकम्

॥ शुद्धं चिदस्मि सहज परमात्मतत्त्वम् ॥

यस्मिन् सुधाम्नि निरता गतभेदभावा प्राप्स्यन्ति चापुरचल सहज सुशर्म ।
एकस्वरूपममल परिणाममूल, शुद्ध चिदस्मि सहजं परमात्मतत्त्वम् ॥१॥

शुद्ध चिदस्मि जपतो निजमूलमत्र, ॐ मूर्ति मूर्तिरहित स्पृशतः स्वतत्रम् ।
यत्र प्रयान्ति विलय विपदो विकल्पा, शुद्ध चिदस्मि सहज परमात्मतत्त्वम् ॥२॥

भिन्न समस्तपरतः परभावतश्च, पूर्णं सनातनमनन्तमखण्डमेकम् ।
निक्षेपमाननयसर्वविकल्पदूर, शुद्ध चिदस्मि सहज परमात्मतत्त्वम् ॥३॥

ज्योति पर स्वरमकर्तृ न भोक्तृ गुप्त, ज्ञानिस्ववेद्यमकल स्वरसाप्तसत्त्वम् ।
चिन्मात्रधाम नियत सततप्रकाश, शुद्ध चिदस्मि सहज परमात्मतत्त्वम् ॥४॥

अद्वैतब्रह्मसमयेश्वरविष्णुवाच्य, चित्पारिणामिकपरात्परजल्पमेयम् ।
यद्दृष्टिसंश्रयणजामलवृत्तितान, शुद्ध चिदस्मि सहज परमात्मतत्त्वम् ॥५॥

आभात्यखण्डमपि खण्डमनेकमश भूतार्थबोधविमुखव्यवहारदृष्ट्याम् ।
आनदशक्तिदृशिबोधचरित्रपिण्ड, शुद्ध चिदस्मि सहज परमात्मतत्त्वम् ॥६॥

शुद्धान्तरङ्गसुविशासविकासभूमि, नित्य निरावरणमञ्जनमुक्तमीरम् ।
निष्पीतविश्वनिजपर्ययशक्ति तेजः, शुद्ध चिदस्मि सहज परमात्मतत्त्वम् ॥७॥

ध्यायन्ति योगकुशला निगदन्ति यद्धि, यद्ध्यानमुत्तमतया गदित. समाधि ।
यद्दर्शनात्प्रभवति प्रभुमोक्षमार्ग, शुद्ध चिदस्मि सहज परमात्मतत्त्वम् ॥८

सहजपरमात्मतत्त्व स्वस्मिन्ननुभवति निर्विकल्प य ।
सहजानन्दसुवन्द्य स्वभावमनुपर्यय याति ॥